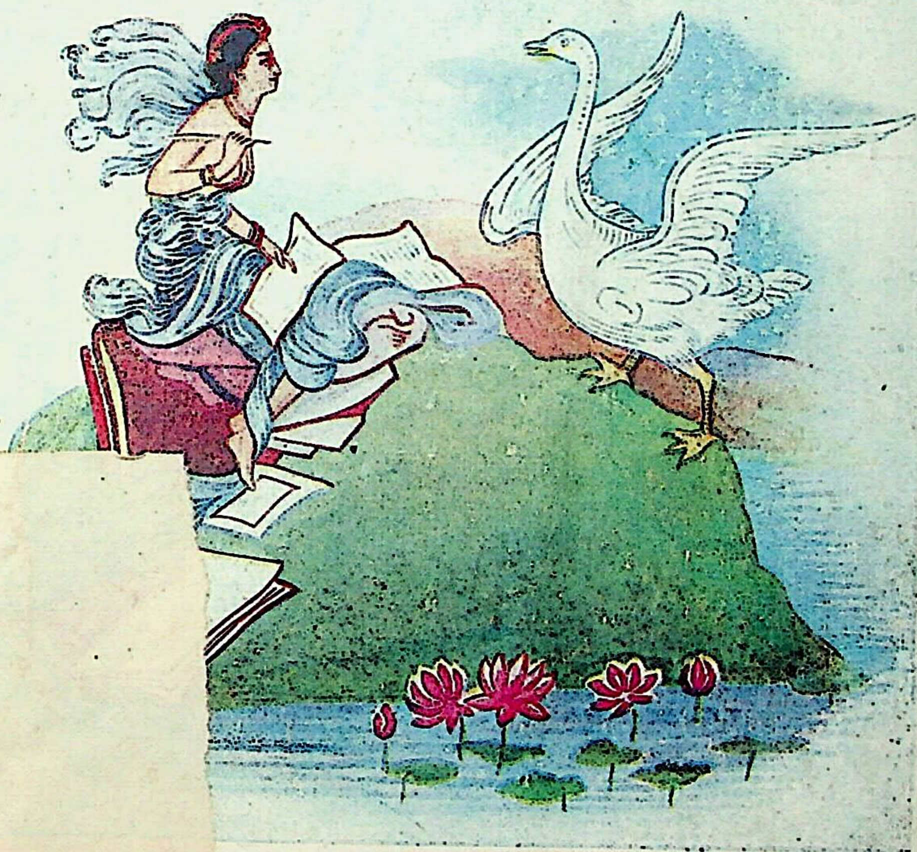
वर्ष १]

[संख्या ३

हंस



सम्पादक—प्रेमचन्द

[एक अंक ।=)

'हंस' की पसन्दगी का प्रमाण

'हंस' की पसन्दगी का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पहला अंक निकलते ही उसके हजारों ग्राहक और पाठक हो गये हैं। रोज ही नये ग्राहकों के आशातीत पत्र आ रहे हैं। भारत में दक्षिण, गुजरात, राजपूताना, मालवा, मारवाड़, मेवाड़, सी० पी०, बरार, यू० पी०, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, कनाड़ा आदि प्रान्तों से जहाँ सैकड़ों ग्राहक बने हैं, वहाँ नेपाल, भूटान, पुर्तगाल, जापान, अफ्रीका, जर्मनी, अमेरिका, लन्दन आदि बाहरी देशों में भी इसके ग्राहक और प्रेमी बन गये हैं।

हमारे अथक परिश्रम के अलावा इस ग्राहक-वृद्धि का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि बरेली से निकलनेवाले 'भ्रमर' और कानपुर से निकलनेवाले 'हिन्दी-मनोरञ्जन' के ग्राहक भी हमें प्राप्त हो गये हैं। उम्मीद है कि वर्ष के अन्त तक इसके कई हजार ग्राहक बन जायँगे। इसलिए आप अभी से अपना विज्ञापन इसमें छपाने लगेंगे, तो लाभ में रहेंगे। इस मास हमने विज्ञापन चार्ज बढ़ा दिये हैं। शायद आगे और भी बढ़ाने पड़ें; पर जो सज्जन अभी से १ साल का कन्ट्रैक्ट कर लेंगे, उनसे अधिक न लिया जायगा। विज्ञापन रेट्स नीचे देखिये—

'हंस में विज्ञापन-छपाई के रेट

साधारण स्थानों में—

एक पृष्ठ का	१५)	प्रति	मास
आधे „ „	८)	„	„
चौथाई „ „	४)	„	„

विशेष स्थानों में —

पाठ्य-विषय के अन्त में —

एक पृष्ठ का	१८)	प्रति	मास
आधे „ „	१०)	„	„
चौथाई „ „	५)	„	„
कवर के दूसरे या तीसरे पृष्ठ का	२४)	„	„
„ „ चौथे „	३०)	„	„
लेख-सूची के नीचे आधे पृष्ठ का	१२)	„	„
[illegible]		„	„

नियम—

१—विज्ञापन बिना देखे नहीं छापे जायँगे।

२—आधे पृष्ठ से कम का विज्ञापन छापनेवालों को 'हंस' नहीं भेजा जायगा।

३ विज्ञापन की छपाई हर हालत में पेशगी ली जायगी।

४—अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जायँगे।

५—विज्ञापन के मजमून बनाने का चार्ज अलग से होगा।

६—कवर के दूसरे, तीसरे और चौथे पृष्ठ पर आधे पृष्ठ के विज्ञापन नहीं लिए जायँगे।

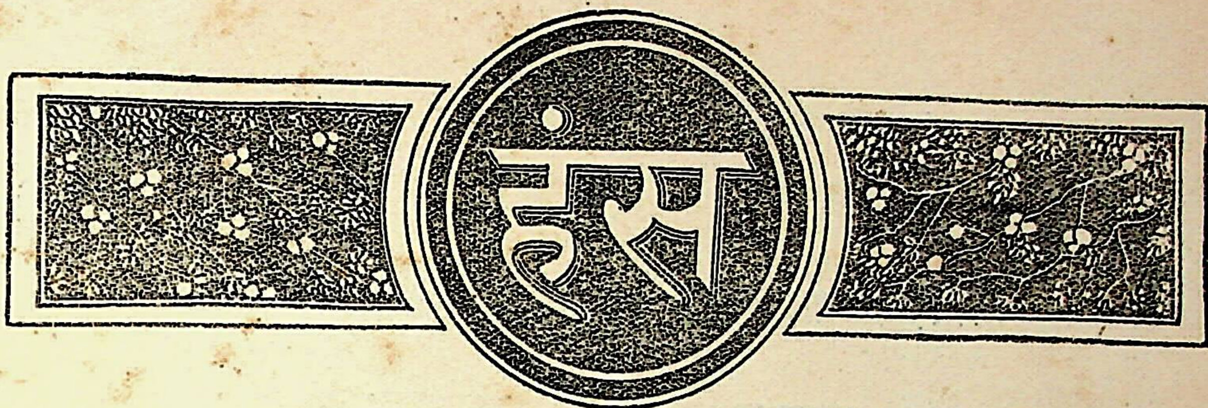
७—उपर्युक्त रेट में किसी प्रकार की कमी नहीं की जायगी; किन्तु कम-से-कम छः मास तक विज्ञापन छपानेवालों को =) रुपया कमीशन दिया जायगा। एक वर्ष छपानेवालों के साथ इससे भी अधिक रिआयत होगी।

८—साहित्यिक पुस्तकों के विज्ञापनों पर २५ प्र[illegible] कमी की जायगी।

व्यवस्थापक—'हंस' सरस्वती-प्रेस, बनारस सि[illegible]



कौन कहता है, महात्माजी जेल में हैं—नजर बन्द है ? वह देखो, हँसते हुए वह सबके सामने मौजूद हैं—सबके हृदय में विराजमान हैं।



विविध-विषय-सम्पन्न कहानियों का सचित्र मासिक-पत्र

वर्ष १	ज्येष्ठ १९८७ वि० :: मई १९३० ई०	अंक २

मानवता का विकास

(अप्रकाशित काव्य से)

डरो मत अरे, अमृत-सन्तान, अग्रसर है मङ्गलमय वृद्धि।
भरा आकर्षण जीवन केन्द्र, खिंची आवेगी सकल समृद्धि।
देव असफलताओं का ध्वंस, प्रचुर उपकरण जुटाकर आज।
पड़ा है मानवता के लिये, पूर्ण हो चेतनता का राज।
चेतना का सुन्दर इतिहास, अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य, अक्षरों से अङ्कित हो नित्य।
विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुञ्ज, और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प, कुचलती रहे खड़ी सानन्द।
आज से मानवता की कीर्त्ति, अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।
जलधि के फूटें कितने उत्स, द्वीप कच्छप डूबें-उतरायँ।
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़मूर्ति, अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसाता रहे उसे सविलास, शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति के विद्युत् कण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।

जयशंकर 'प्रसाद'

मा न - स रो व र

हत्यारे की शरण



गाँव के अन्तिम सिरे पर की बात है। एकाएक एक मकान की खिड़की खुली। एक आदमी दिखाई पड़ा। उसके चेहरे का रंग उतरता-चढ़ता था, उसकी आँखें भयानक दीखती थीं। उसके होंठ व्याकुलता से काँप उठते थे। दाहने हाथ में वह एक छुरा लिये था, जिससे ताज़ा खून बूँद-बूँद करके चू रहा था। उसने चारों ओर देखा—सन्नाटा था। वह धम्म से भूमि पर कूद पड़ा और खेतों से होकर भाग चला।

लगभग बारह मिनट के बाद वह बड़ी सड़क से बीस क़दम पर जंगल के किनारे रुका—थकावट से चूर—बेदम। उसने सबसे घना—सबसे निराला स्थान जंगल में ढूँढ़ा और उसी में घुस पड़ा। उसे काँटों की परवा न थी, जो उसके कपड़ों को चिथड़े-चिथड़े कर रहे थे। वह भीतर पहुँचा और छुरे से भूमि खोदने लगा। उसने जमीन करीब एक फ़ुट खोदी और उसमें छुरा छिपा दिया—ऊपर से मिट्टी डाल दी—घास और पत्तियों से उसे ढँक दिया। फिर वह हरी-हरी घास पर जा बैठा।

वह कान लगाकर सुन रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। उसके मन में भय उत्पन्न होने लगा। यह वह समय था, जिसे न रात कह सकते हैं, न दिन। पौ फट रही थी। सारी वस्तुएँ उसे भूत की भाँति दिखाई पड़ती थीं।

इस मूक अन्धकारमय प्रकृति के बीच उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह श्मशान में बैठा हो। एकाएक कुछ सुनकर वह चौंक पड़ा। यह सड़क पर जानेवाली गाड़ी के धुरे की 'चूँ चूँ' थी। गाड़ी काफी दूर पर थी; पर सन्नाटे में उसकी विचित्र आवाज साफ़-साफ़ सुनाई पड़ती थी।

प्रकृति धीरे-धीरे जगी। चिड़ियाँ भी उठ गईं। चारों ओर उनका चहचहाना और फुदकना सुनाई पड़ने लगा। जान पड़ता था, मानो सूर्यदेव के स्वागत में सब राग आलाप रही हैं।

धीरे-धीरे प्रकृति ने अन्धकार का आवरण हटाया—उसकी पवित्र सुन्दरता चारों ओर दिखाई पड़ने लगी। शोभा और सजीवता ही सारे वन में दिखाई पड़ती थी। वृक्षों के शिखरों पर कुहरे की नीली रेखा अभी तक छाई थी। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। दूर मैदान में सन्नाटा-ही-सन्नाटा था। उसका छोर दूर आकाश को छूता हुआ दिखाई पड़ता था। नीले स्वच्छ आकाश के प्रतिबिम्ब के कारण उसका मटमैला रंग विवर्ण हो रहा था।

हत्यारा उठा। उसका शरीर काँप उठा। उसके दाँत कटकटा उठे।

वह चोर की भाँति इधर-उधर देखने लगा। धीरे से डालियों को हटाता, रुकता, डरता, जरा-सी आवाज पर पीछे दबकता, वह आगे बढ़ा। अन्त में उस घने अन्धकारमय वन-प्रदेश से बाहर निकला, जहाँ उसने अपना छुरा छिपाया था।

वह और भी जंगल के भीतर घुसा। बीच-बीच

में वह रुकता, कान लगाकर सुनता और पीछे मुड़कर देखता जाता था। इसी प्रकार वह दिनभर चलता रहा, उसे थकावट तक न मालूम पड़ी—उसकी परेशानी ऐसी बढ़ी-चढ़ी थी।

वह रुका जाकर एक बरगद के पेड़ के नीचे, जिसकी असंख्य जड़ें असंख्य स्तम्भों की भाँति खड़ी थीं। वे चिकनी और सफ़ेद थीं। दिन की शान्ति, और निर्जनता के कारण वह स्थान बड़ा रमणीक जान पड़ता था; पर उन निर्जीव डालियों के बीच भी उसे कुछ चलता हुआ जान पड़ता था—उस शान्ति में भी उसे स्फुट रहस्यमय भयानक शब्द सुनाई पड़ता था।

उस भगोड़े को वहाँ भी शान्ति न मिली। वह साँप की भाँति पेट के बल रेंगकर एक काँटेदार झाड़ी में जा छिपा। यहाँ आकर उसे कुछ धीरज मिला।

उसने अपना हाथ सिर पर रखा और फिर पेट पर। वह बड़बड़ाने लगा—मुझे तो भूख लगी है।

वह अपनी ही आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा, काँप उठा। हत्या के बाद उसने पहले-पहल इसे सुना था—वह उसके कानों में गूँज उठी, जैसे कोई भयानक आवाज़ हो। कुछ क्षण के लिए वह एकदम स्थिर हो गया। उसकी साँस रुक गई। उसे डर था, कहीं कोई सुन न ले।

जब उसका जी कुछ ठिकाने हुआ, तो वह अपना जेब टटोलने लगा। उसमें रोटी के दो-एक टुकड़े थे। इतना काफ़ी होगा—उसने धीरे से कहा। छः घंटे में तो मैं सरहद के पार हुआ जाता हूँ। तब जो चाहूँगा, सो करूँगा। फिर कोई डर नहीं है।

घंटे-भर बाद उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानो सर्दी से उसका शरीर अकड़ रहा है। रात हो चली थी, ओस पड़ने लगी थी। उसके तन पर सिर्फ़ मामूली कपड़े थे। वह उठ बैठा और धीरे-से झाड़ी से निकलकर चलने लगा। पौ फटते-फटते वह रुक गया। वह जंगल पार कर चुका था। अब उसे खुले मैदान में चलना था। दिन निकलने ही वाला था। यह सब सोच कर उसकी बढ़ने की हिम्मत न होती थी।

वह झाड़ी में छिपा खड़ा था। उसे घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। वह भय से पीछे हट गया।

"दौड़ आ पहुँची"—उसने हाँफते-हाँफते कहा और जमीन से चिपक गया।

बात कुछ न थी, एक गाड़ी चली जा रही थी। कोचवान गाता हुआ अपना कोड़ा फटकार रहा था।

"रहमान" किसी ने पुकारा।

"कौन हमीद? इतने सबेरे कहाँ चले?"

"अरे! कहीं नहीं। लादी लेकर नदी पर जा रहा हूँ।"

हत्यारा उसे तब तक देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। तब उसके मुँह से एक आह निकल गई और वह मैदान की ओर देखने लगा।

"अब मुझे चल देना चाहिए।" वह बड़बड़ाने लगा—पूरे चौबीस घंटे हो गए जब मैंने..... । सब बात ज़ाहिर हो गई होगी। लोग मुझे ढूँढ़ते होंगे। अब घंटे-भर की देर हुई, और मैं कहीं का न रहूँगा।

उसने ढाढ़स बाँधा और जंगल से बाहर हुआ। थोड़ी दूर चलने पर उसे गाँव दिखाई पड़ने लगा। उसकी चाल धीमी हो गई, उसके मन में हजारों तरह के विचार आने लगे। भूख उसे गाँव की ओर ले जा रही थी—डर उसे ऐसा करने से रोक रहा था।

इसी सोच-विचार में वह गाँव के सीवान तक पहुँच गया। थोड़ा और आगे बढ़ा और गाँव में घुसने ही को था, कि उसे कुछ चमकता हुआ नज़र आया। यह गाँव के चौकीदार की चपरास थी। वह इसी ओर आ रहा था।

"अगर कहीं उसके पास मेरी हुलिया हो।" उसने मन-ही-मन सोचा और काँप उठा। एकाएक पीछे लौटकर वह भागा—पास के जंगल की ओर। और वहाँ जाकर छिप रहा। धीरे-धीरे वह डर से और भीतर घुसता गया—उसकी भूख-प्यास न-जाने कहाँ भाग गई थी। रह-रहकर उसे चौकीदार का

ध्यान आता था। वह उससे और गाँव से बचना चाहता था।

परन्तु वह थोड़ी देर में जंगल के उस पार पहुँच गया। उसके आगे फिर वही मैदान, जिसमें कहीं छिपने का ठिकाना नहीं।

उसने डालियों के बीच से देखा। उसे कोई घास पर बैठा हुआ खाना खाता दिखाई पड़ा। यह रहमान कोचवान था।

रहमान जहाँ बैठा रोटी खा रहा था। वह स्थान बड़ा ही रमणीक था। नाले के बीच पत्थर पर बैठा था। पानी के चारों ओर फूल फूले थे। इधर-उधर वृक्षों की रंग-बिरंगी पत्तियों के ढेर लगे थे। ऊपर नई कोपलों से लदी डालियाँ झूल रही थीं। घनी छाया थी—अच्छी सुहावनी। नाले के ऊपर नये जुते हुए खेतों का विस्तार था।

रहमान अपनी मोटी-मोटी रोटियाँ और थोड़ा-सा सालन लेकर खाने बैठा था। उसके चमकते हुए दाँत मोटी रोटी में कसकर बैठ जाते थे, जिससे उसकी भूख का अंदाज होता था। वह तन्मय होकर खा रहा था। बीच-बीच में अपने घोड़ों को पुचकारता जाता था। वे दोनों पास ही हरी-हरी घास चर रहे थे।

"वह सुखी है—वह मजे में है!" हत्यारा मन में कहने लगा। फिर उसकी आत्मा कहने लगी—"और क्या? मेहनत करनी! बाल-बच्चों से प्रेम रखना—सुख और शान्ति इसी में है!"

उसके जी में आया कि रहमान के पास चलूँ और उससे खाने को माँगूँ। पर अपने फटे-फटाये कपड़ों को देखकर उसकी हिम्मत सामने जाने की न हुई। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी सूरत हत्या की गवाही दे रही है; मानो हर चीज उसे धिक्कार रही है।

आहट सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा—चिथड़े लपेटे एक बूढ़ा आ रहा था। उसकी कमर झुकी थी। लाठी के बल, आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था। वह फ़क़ीर था।

हत्यारा उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगा और मन में बड़बड़ाने लगा।

"मैं फ़क़ीर ही होता तो अच्छा था! भीख माँगता; पर निडर तो रहता! जहाँ जी में आता मजे से आता-जाता। चित्त में शान्ति होती; आत्मा में संतोष। जो कुछ मिलता, सुख से खाता-पीता। न पुलिस का डर रहता, न हत्या का पाप, न सूली का भय। वाह! यही मजे में है—मुझसे तो लाखों दर्जे अच्छा है!"

एकाएक उसका चेहरा पीला पड़ गया, वह काँपने लगा, उसके हाथ-पैर फूल गए।

"वे सब आ पहुँचे!" उसने लड़खड़ाती हुई जबान में कहा। उसकी दृष्टि सड़क पर लगी थी।

भयातुर आँखों से वह चारों ओर देखने लगा—शरण ढूँढ़ने लगा। डर के मारे उसे कुछ न सूझता था—उसकी बुद्धि कुछ काम न करती थी।

पुलीसवाले पास आ रहे थे। घोड़ों की टाप और हथियारों की खनखनाहट सुनकर वह चैतन्य हो उठा—सामने इमली का घना पेड़ देखकर वह चटपट गिलहरी की तरह उस पर चढ़ गया।

वह अब सुरक्षित स्थान में था। पुलीसवाले पास ही में दम लेने के लिए ठहरे। वह सुन रहा था—निश्चल, भयभीत। उसका मन भयानक भावों का शिकार था—उसका दिल जोरों से धड़क रहा था।

"इस जंगल में भी ढूँढ़ा जाय, तो क्या हर्ज है?" एक सिपाही ने कहा।

"यह तो बहुत ही छोटा है।" दूसरे ने कहा। "इन दस पेड़ों में वह थोड़े ही छिपनेवाला है। उसने जंगल धर लिया होगा।"

"कुछ भी सही! देख लेने में क्या हर्ज है।"

"नहीं जी!" उसने साथी से कहा—"फजूल वक्त गवाना है। खूनी यों ही हमसे १० सं[illegible] आगे चल चुका है।"—और वे आगे सरपट बढ़े।

हत्यारे की जान में जान आई। मानो उसकी नई जिन्दगी हुई हो; परन्तु ज्यों ही वह जरा

निश्चिन्त हुआ, जरा उसे डर से छुटकारा मिला, उसे दूसरी बला ने आ घेरा। वह चिल्ला उठा— ओफ़! भूख से जान निकली जा रही है।

उसने ४८ घंटों से कुछ खाया न था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे, सिर चकराने लगा, उसके कान सनसनाने लगे। फिर भी उसकी हिम्मत गाँव तक जाने की न होती थी। पुलीस! सूली! ये दो शब्द बार-बार उसके ध्यान में आ जाते थे। उसकी भूख उनके सामने हवा हो जाती थी।

उसके कान सजग होकर हर आहट को सुनने में लगे थे। दूर मंदिर के घंटे की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। पूजा हो रही है। हत्यारा सुनने लगा—भय से विह्वल, सिर नीचा किये, घंटे की हर चोट पर काँपते हुए—मानो उसी के हृदय पर चोट पड़ रही हो। उसकी आँखों से बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं—उसे पता न था। उसने उन्हें रोकने की चेष्टा भी न की।

घंटे की आवाज ने उसकी कल्पना में अति भीषण, अति करुण चित्र उपस्थित कर दिया था।

"ओह! अभागा! मैं बड़ा अभागा हूँ!" उसने आह भरकर कहा और अपने हाथों से मुँह ढँक लिया।

वह फिर घंटे की आवाज सुनने लगा—घंटे की ध्वनि ने उसकी स्मृति को सचेत कर दिया। वह मन में कहने लगा—ओह! बेकारी! इसी के कारण मैं शराब पीने लगा। ओह शराब! इसने क्या गुल खिलाया? तीन अनाथ बच्चे—बेचारी औरत मरी पड़ी है और मैं—शैतान, पिशाच—पाजी—दुनिया की नजरों से गिरा हुआ—पशु की भाँति जान बचाता फिरता हूँ, जिसे लोग दम मारने तक की फ़ुरसत नहीं देते। ओह! वे बिना मुझे फाँसी पर लटकाये न छोड़ेंगे। फाँसी—ओह!! बड़ी भीषण वस्तु है, पर नहीं, यह तो इस अपराध के लिये साधारण दण्ड है।

वह रात आने तक उसी पेड़ पर छिपा बैठा रहा। जब उसे तारे दिखाई पड़ने लगे, जब उसे चारों ओर सिवा अपनी साँस के और कोई शब्द न सुनाई पड़ा, तब उसे उस पेड़ से उतरने की हिम्मत हुई।

दो-एक घंटे बाद उसकी भूख की तेज़ी ने उसके भय पर विजय पाई और अपनी बुद्धि लुप्त होते देख वह गाँव में भोजन के लिए जाने पर तैयार हुआ।

उसने अपने कपड़े झाड़ डाले, अपना मुँह पोंछ डाला, और जान-बूझकर बाहर मैदान में निकल पड़ा। पाँच मिनट में वह गाँव में दाख़िल हुआ। वह चल रहा था—धीरे धीरे, सिर झुकाए, मानो बहुत थक गया हो। घबराई आँखों से वह अपने दाहने-बाएँ देखता जाता था, कि कहीं ज़रा भी खटका हो और नौ-दो ग्यारह हो जाऊँ।

गिरजे के पास ही जो गाँव के बीच में था, उसे एक नानबाई की दूकान दिखाई पड़ी। उसने कान लगाकर सुना—कोई आवाज न आती थी। जाहिर था कि वह ख़ाली थी। वह भीतर घुसा।

"भाई क्या दूँ?" मालिक दूकान ने पूछा। वह तगड़ा, साफ़ तबीयत का आदमी था।

"रोटी और सालन!" हत्यारे ने कहा और खिड़की के पास मेज पर जा बैठा।

तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन हुआ।

"यह लीजिए!" दूकानदार ने कहा—"रोटी सालन और पानी।"

"मैंने तो रोटी-सालन ही माँगा था।" हत्यारे ने कहा और उसने आस्तीन से अपना मुँह ढक लिया।

"अजी! यह बात नहीं है आप जो चाहें लें—पर बुरा न मानिये—आपकी तबीयत अच्छी नहीं दिखाई पड़ती—आपको पुष्ट खाने की जरूरत है। यह लीजिए मजे में खा लीजिए। कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

"अच्छा! अच्छा!"

वह अभी खा ही रहा था, कि लोग आ पहुँचे। सारी दूकान भर गई। हत्यारा खाने लगा—वह अपना मुँह खिड़की की ओर किये था; ताकि

उसे कोई पहचान न सके।

पन्द्रह मिनट मुशकिल से बीते। हत्यारे के लिए बड़ी परेशानी और चिन्ता का समय था। वह बात-बात पर घबरा उठता, उसका चेहरा पीला पड़ जाता और वह काँप उठता। आखिर वह उठकर चलने पर तैयार हुआ कि एक ने चिल्लाकर कहा—यह लो हमारे थानेदार साहब आ रहे हैं।

हत्यारा एकाएक चौंक पड़ा। उसका दाहना हाथ उसके सिर पर जा पड़ा—उसके प्राण सूख गये, मानो काठ मार गया हो।

धीरे-धीरे उसे होश हुआ; पर उसके हाथ-पैर काम न करते थे। वह डर से बेबस हो रहा था।

थानेदार को आते देख वह मेज़ पर झुक गया और सोने का बहाना करने लगा।

थानेदार को सभी मानते थे। सब उठकर उसे कुर्सी देने लगे और अपने साथ खाने को बुलाने लगे।

"धन्यवाद" थानेदार ने कहा—"आप लोगों की दावत कबूल है; पर इस समय मैं जल्दी में हूँ ज्यादा देर तक नहीं बैठ सकता, जरूरी काम है।"

"जरूरी काम? आज रविवार को तो खुदा भी आराम करता है—तुम्हें क्या आफत है?"

"हाँ, खुदा करता होगा; पर हमको मयस्सर नहीं। हमें तो हर वक्त हत्यारों की खोज में रहना पड़ता है।"

"हत्यारों की खोज में? कहिए खैर तो है?"

"क्या आपने वारदात नहीं सुनी?"

"जी नहीं! कहिए तो, क्या हुआ?"

"अच्छा, सुनिये, मैं कहना ही चाहता था। आप लोग उस खूनी की हुलिया तो सुन लीजिए—हम लोग उसी को ढूँढ़ रहे हैं।"

हत्यारे का दिल ऐसे ज़ोर से धड़क रहा था, मानो बाहर निकल पड़ेगा।

"वह संगतराश है" थानेदार ने कहा।

"और हत्या किसकी की है?"

"अपनी औरत की!"

"चाण्डाल! उस बेचारी ने क्या किया था उसका?"

"मार खाने पर रोने लगती थी। कभी-कभी उससे लड़के-बालों के लिए खर्च माँगती थी। उससे उनका भूखों मरना नहीं देखा जाता था। बस यही उसका अपराध था—बेचारी इसी लिए बृहस्पति की रात को अपनी जान खो बैठी। उसके उमर ही क्या थी—२५ वर्ष! उस दुष्ट को तो उसके तलवे चाटना चाहिए था। बेचारी रात-दिन काम करती थी। लड़कों को देखती, घर देखती, इसका यह बदला उसे मिला!"

"नारकीय! चाण्डाल!" एक युवा ने जोश में मेज पर एक घूँसा जमा दिया और कहा—"उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाय, तो मुझे खुशी हो।"

"इसी से तो उसका हुलिया कह रहा हूँ, कि कहीं पा जायँ, तो उसे पुलीस के हवाले कर दें। वह जरूर यहीं कहीं आस-पास छिपा होगा। हम लोगों का यही विश्वास है।"

सब सन्नाटे में थे।

हत्यारे ने भी सुना—अमानुषिक प्रयत्न से वह अपनी घबराहट छिपा रहा था। उसका सिर चकरा रहा था।

"उसका हुलिया यह है" थानेदार ने एक कागज जेब से निकाल कर पढ़ते हुए कहा—"मझोला कद, छोटी गरदन, चौड़े कंधे, गाल की हड्डियाँ उठी हुई, लम्बी नाक, काली आँखें, खसखसी दाढ़ी, पतले होंठ, पेशानी पर एक तिल।"

कागज मोड़ते हुए उसने कहा—अब आप लोग उसे मजे में पहचान लेंगे।

"अब तो कोई कठिनाई नहीं दीखती!"

अच्छा अब चलता हूँ—अपने शिकार के फिराक़ में। आदाब!"

हत्यारे ने साँस खींच ली। थानेदार का जाना सुनकर वह सोचने लगा—"अब क्या है, सीमा पार करने में दो-एक घंटे की देर है।" वह अपने को 'बच गया' समझने लगा।

वह अपना सिर उठाने ही को था, कि उसे थाने-

दार के भारी बूट-जूतों की चरमर अपनी ओर आती सुनाई पड़ी।

थानेदार रुक गया और हत्यारे को ऐसा जान पड़ा, मानो वह उसी को देख रहा है।

उसके शरीर में काटो तो खून नहीं। वह पसीने-पसीने हो गया। मानो उसका दिल धड़कना बन्द कर देगा।

"इधर देखिये" थानेदार ने कहा—"इधर एक साहब सोने में मस्त हैं" और उसने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"अरे भाई! जरा सिर तो ऊपर उठाओ। तुम्हारा मुँह तो देखें!"

हत्यारे ने जल्दी से अपना सिर ऊपर उठाया। उसके चेहरे से भय टपकता था। उसका चेहरा सूखा हुआ और विकृत था। उसकी लाल-लाल आँखों से अंगारे निकल रहे थे। उसके होंठ डर से काँप रहे थे।

"यह तो वही है!" सब लोग एक साथ चिल्ला उठे। थानेदार ने उसकी गरदन पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया; पर इसके पहले ही हत्यारे ने उसकी आँखों पर दो घूँसे कसकर ऐसे जमा दिये कि वह चौंधिया गया और वह उचक कर खिड़की के रास्ते बाहर बाग़ में हो रहा और बात-की-बात में अदृश्य हो गया।

उसकी फुरती से सँभलकर सब लोग उसके पीछे दौड़ पड़े! एक छलाँग में वह झाड़ी के पार हुआ, दम-की-दम में उसने खेतों को पार किया और दस मिनट में वह गाँव से मील-भर दूर निकल गया।

ऊँची-नीची जमीन देखकर अपने को अदृश्य समझ कर वह क्षण भर के लिए दम लेने को रुका। वह बहुत ही थक गया था। अगर कुछ देर और दौड़ना पड़ता, तो वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़ता।

वह बैठा ही था कि उसे हल्ला-गुल्ला सुनाई पड़ने लगा। वह उठकर सुनने लगा।

लोग पीछे ढूँढ़ते आ रहे थे।

अब वह क्या करे? थका माँदा, बेदम। अब वह दौड़ न सकता था। लोग उसके पास आ पहुँचे थे। वह निराश होकर चारों ओर देखने लगा। दूर ओर उसे मैदान-ही-मैदान दिखाई पड़ता था। न कहीं नीची जमीन थी, न कहीं पेड़ या झाड़ी। एकाएक उसकी नज़र एक पानी से भरे गड्ढे पर पड़ी, जिसके चारों ओर ऊँची-ऊँची घास उग रही थी। उसकी जान-में-जान आई।

"आओ इसी में—"

वह किसी तरह उस तक पहुँचा और गले तक पानी में धँस पड़ा। सिर पर उसने घास और उसकी पत्तियाँ रख लीं और निश्चल खड़ा हो गया, मानो कोई निर्जीव लट्ठा हो।

जब लोग उसके पास पहुँचे, पानी स्थिर और साफ़ हो गया था—आगे आगे-थानेदार था। दूकान वाले के प्रयत्न से उसे जल्दी होश आ गया था।

"अब?" थानेदार ने घोड़े पर से चारों ओर देखकर कहा—"आखिर बदमाश चला कहाँ गया?"

"बड़ी विचित्र बात है" एक जवान किसान ने कहा, अभी मुझे साफ़ दिखाई पड़ रहा था—और अब एकाएक गायब! चारों ओर मैदान-ही-मैदान तो है—चूहे का एक बिल तक कहीं नहीं है कि उसमें समा सके।"

"कहीं दूर नहीं गया होगा" थानेदार ने कहा—"हम लोग दोनों तरफ़ से खोजते हुए चलें और फिर आकर यहीं मिलें।"

हत्यारे ने उन्हें जाते हुए सुना। वे तरह-तरह की धमकियाँ दे रहे थे।

उस गड्ढे के पानी में खड़ा हुआ वह स्थिर था; पर उसका अंग-अंग काँप रहा था—उसकी हिलने की हिम्मत न होती थी, कि कहीं लोगों को पता न लग जाय। लगभग एक घंटे तक वह इसी भाँति खड़ा लोगों की आहट लेता रहा—थोड़ी देर बाद फिर सब उसी स्थान पर आकर इकट्ठा हुए।

"हवा हो गया क्या" थानेदार ने झल्ला कर कहा—"आखिर वह इतनी देर में चला कहाँ गया? कुछ समझ में ही नहीं आता।"

"वह जादू जरूर जानता है" एक गँवार ने कहा।

"जो कुछ हो पर बचा की जान छोडने वाला नहीं हूँ" थानेदार ने दृढ़ता से कहा—"जरा घोड़े को पानी पिला लूँ और फिर सरहद की ओर सरपट बढ़ाता हूँ—देखूँ बचा जाते कहाँ हैं भागकर।"

उसने घोड़े को गड्ढे की तरफ़ बढ़ाया और उसी स्थान पर ठीक रोका, जहाँ वह हत्यारा छिपा था। घोड़े ने गरदन बढ़ाई, दो-एक बार सूँघा और फिर मुँह हटा लिया और आगे बढ़ने से इनकार किया।

थानेदार ने धीरे से उसके कान पकड़े और उसे पानी में घुसने पर मजबूर किया; लेकिन जानवर पीछे हट गया और फिर मालिक के लाख मारने-चुमकारने पर भी वह आगे बढ़ने को तैयार न हुआ।

"ओह आज आप भी अकड़ रहे हैं" थानेदार साहब ने घोड़े के अकड़ने पर झल्ला कर कहा—"देखें आज किसकी चलती है!"

वह घोड़े को पीटने ही पर था कि वह समझदार जानवर अपनी दुर्गति का हाल समझकर एकाएक मुड़ा और बाएँ तरफ़ थोड़ी दूर पर गड्ढे में धँस पड़ा।

'खैर अपने हक़ में अच्छा ही किया" थानेदार ने संतोष से कहा। घोड़ा पानी पीट रहा था। थानेदार किसानों से कहने लगा—"भाई अब तुम लोग जा सकते हो—अब मैं ही अकेले घोड़े पर जाऊँगा।"

किसान लोग लौट गये। घोड़ा भर पेट पानी पी चुका। दोनों अन्य खेतों में होकर तेज़ी से आगे सरहद की ओर बढ़े।

हत्यारा ज्यों-का-त्यों साफ़ बच गाय।

वह सर्दी से ठिठुर रहा था; पर वह १५ मिनट तक उनके जाने के बाद तक वहीं इन्तजार करता रहा। बाद को वह निकला। पानी उसके कपड़ों से चू रहा था। उसके सिर पर घास-फूस पड़ी हुई थी उसके कपड़ों और बदन में काई चिपक गई थी—वह थरथर काँप रहा था। उसका चेहरा मुर्दे की तरह मुर्झाया हुआ था। उसने दूर तक नज़र दौड़ाई—कहीं कोई दिखाई न पड़ता था। मैदान खाली पड़ा था। वह बोलना चाहता था; पर उसके दाँत कटकटा रहे थे। बहुत देर के बाद उसने कहा—"जान बची।" तब वह आशा छोड़ कर कहने लगा—"हाँ बच तो गया; पर सिर्फ इस मौके पर! थानेदार सरहद पर मेरे लिए बैठा होगा। सब पहरेदारों को खबर दे दी गई होगी—सभी मेरी फिराक में होंगे। वे मुझे फिर ढूँढ़ेंगे। अच्छी तरह ढूँढ़ेंगे। ऐसी जल्दी मुझे छुटकारा न मिलेगा। आदमी—ईश्वर—सभी मेरे पीछे पड़े हैं। अब तो बहुत हो गया—मेरी शक्ति के बाहर की बात है।"

यह कहता हुआ वह झाड़-पोंछ कर तैयार हो गया। वह सुनसान मैदान की ओर देखकर मानो डर रहा था। उसके दिल में भी वही निराशा, सन्नाटा और सर्दी मालूम पड़ती थी।

कुछ देर के लिये वह सिर पर हाथ रखकर सोचता रहा, अन्त में उसने हठता से कहा—"अच्छा यही सही!" और वह गाँव की ओर बढ़ा, जहाँ से भाग कर आया था। घंटे-भर बाद वह उसी दूकान में पहुँचा, जहाँ वह पकड़ते-पकड़ते बचा था। लोग वहाँ मौजूद थे

सबों ने आश्चर्य्य से चिल्लाकर कहा—"खूनी"

"हाँ" हत्यारे ने गंभीरता से उत्तर दिया—"मैं ही हूँ वह संगतराश, जिसने अपनी स्त्री की हत्या की है। लो मुझे पकड़ो। जाओ बुलाओ पुलीस को।"

वह दूकान के बीचोंबीच निडर डटकर जा बैठा।

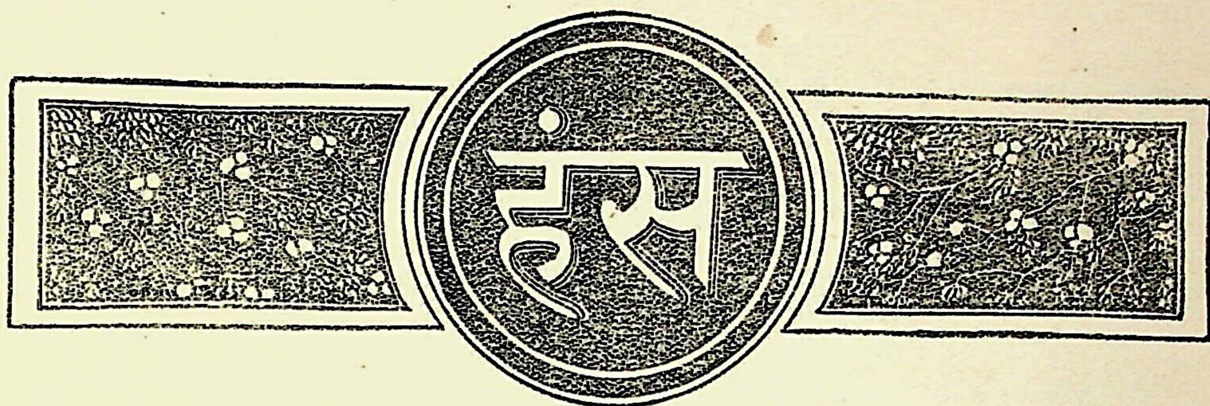
दो पुलीस के सिपाही भागे भागे आये। हत्यारे ने पहचाना। ये वही थे, जो उसे ढूँढ़ते हुए इमली के पेड़ के नीचे से निकले थे। उसने चुपचाप उनके आगे अपने हाथ बढ़ा दिये। उन्होंने हथकड़ी डाल दी और उसे तहसील के थाने की तरफ़ ले चले, जहाँ वे उस समय उसे रखना चाहते थे।

अब वह अकेला रह गया। हवालात में बन्द, दरवाज़ों पर ताला पड़ा हुआ था। फाटक पर पहरेदार बैठे थे। वह जमीन पर पड़े हुए पुआल पर गिरा और एक प्रकार के भीषण आनन्द से चिल्ला उठा—

"ख़ैर अब तो बखेड़ा टला!" *

—सत्यजीवन वर्म्मा।

*एक फ्रेंच कहानी का स्वतन्त्र अनुवाद।



विविध-विषय-सम्पन्न कहानियों का सचित्र मासिक-पत्र

वर्ष १	ज्येष्ठ १९८७ वि० :: मई १९३० ई०	अंक ३

मानवता का विकास

(अप्रकाशित काव्य से)

डरो मत अरे, अमृत-सन्तान, अग्रसर है मङ्गलमय वृद्धि।
भरा आकर्षण जीवन केन्द्र, खिंची आवेगी सकल समृद्धि।
देव असफलताओं का ध्वंस, प्रचुर उपकरण जुटाकर आज।
पड़ा है मानवता के लिये, पूर्ण हो चेतनता का राज।
चेतना का सुन्दर इतिहास, अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व के हृदय - पटल पर दिव्य, अक्षरों से अङ्कित हो नित्य।
विधाता की कल्याणी सृष्टि, सफल हो इस भूतल पर पूर्ण।
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुञ्ज, और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प, कुचलती रहे खड़ी सानन्द।
आज से मानवता की कीर्त्ति, अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।
जलधि के फूटें कितने उत्स, द्वीप कच्छप डूबें - उतरायँ।
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़मूर्ति, अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसाता रहे उसे सविलास, शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति के विद्युत् कण जो व्यस्त, विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।

जयशंकर 'प्रसाद'

हत्यारे की शरण



व के अन्तिम सिरे पर की बात है। एकाएक एक मकान की खिड़की खुली। एक आदमी दिखाई पड़ा। उसके चेहरे का रंग उतरता-चढ़ता था, उसकी आँखें भयानक दीखती थीं। उसके होंठ व्याकुलता से काँप उठते थे। दाहने हाथ में वह एक छुरा लिये था, जिससे ताज़ा खून बूँद-बूँद करके चू रहा था। उसने चारों ओर देखा—सन्नाटा था। वह धम्म से भूमि पर कूद पड़ा और खेतों से होकर भाग चला।

लगभग बारह मिनट के बाद वह बड़ी सड़क से बीस क़दम पर जंगल के किनारे रुका—थकावट से चूर—बेदम। उसने सबसे घना—सबसे निराला स्थान जंगल में ढूँढ़ा और उसी में घुस पड़ा। उसे काँटों की परवा न थी, जो उसके कपड़ों को चिथड़े-चिथड़े कर रहे थे। वह भीतर पहुँचा और छुरे से भूमि खोदने लगा। उसने जमीन करीब एक फुट खोदी और उसमें छुरा छिपा दिया—ऊपर से मिट्टी डाल दी—घास और पत्तियों से उसे ढँक दिया। फिर वह हरी-हरी घास पर जा बैठा।

वह कान लगाकर सुन रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। उसके मन में भय उत्पन्न होने लगा। यह वह समय था, जिसे न रात कह सकते हैं, न दिन। पौ फट रही थी। सारी वस्तुएँ उसे भूत की भाँति दिखाई पड़ती थीं।

इस मूक अन्धकारमय प्रकृति के बीच उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वह श्मशान में बैठा हो। एकाएक कुछ सुनकर वह चौंक पड़ा। यह सड़क पर जानेवाली गाड़ी के धुरे की 'चूँ चूँ' थी। गाड़ी काफी दूर पर थी; पर सन्नाटे में उसकी विचित्र आवाज साफ़-साफ़ सुनाई पड़ती थी।

प्रकृति धीरे-धीरे जगी। चिड़ियाँ भी उठ गईं। चारों ओर उनका चहचहाना और फुदकना सुनाई पड़ने लगा। जान पड़ता था, मानो सूर्य्यदेव के स्वागत में सब राग आलाप रही हैं।

धीरे-धीरे प्रकृति ने अन्धकार का आवरण हटाया—उसकी पवित्र सुन्दरता चारों ओर दिखाई पड़ने लगी। शोभा और सजीवता ही सारे वन में दिखाई पड़ती थी। वृक्षों के शिखरों पर कुहरे की नीली रेखा अभी तक छाई थी। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। दूर मैदान में सन्नाटा-ही-सन्नाटा था। उसका छोर दूर आकाश को छूता हुआ दिखाई पड़ता था। नीले स्वच्छ आकाश के प्रतिबिम्ब के कारण उसका मटमैला रंग विवर्ण हो रहा था।

हत्यारा उठा। उसका शरीर काँप उठा। उसके दाँत कटकटा उठे।

वह चोर की भाँति इधर-उधर देखने लगा। धीरे से डालियों को हटाता, रुकता, डरता, जरा-सी आवाज पर पीछे दबकता, वह आगे बढ़ा। अन्त में उस घने अन्धकारमय वन-प्रदेश से बाहर निकला, जहाँ उसने अपना छुरा छिपाया था।

वह और भी जंगल के भीतर घुसा। बीच-बीच

में वह रुकता, कान लगाकर सुनता और पीछे मुड़कर देखता जाता था। इसी प्रकार वह दिनभर चलता रहा, उसे थकावट तक न मालूम पड़ी—उसकी परेशानी ऐसी बढ़ी-चढ़ी थी।

वह रुका जाकर एक बरगद के पेड़ के नीचे, जिसकी असंख्य जड़ें असंख्य स्तम्भों की भाँति खड़ी थीं। वे चिकनी और सफ़ेद थीं। दिन की शान्ति, और निर्जनता के कारण वह स्थान बड़ा रमणीक जान पड़ता था; पर उन निर्जीव डालियों के बीच भी उसे कुछ चलता हुआ जान पड़ता था—उस शान्ति में भी उसे स्फुट रहस्यमय भयानक शब्द सुनाई पड़ता था।

उस भगोड़े को वहाँ भी शान्ति न मिली। वह साँप की भाँति पेट के बल रेंगकर एक काँटेदार झाड़ी में जा छिपा। यहाँ आकर उसे कुछ धीरज मिला।

उसने अपना हाथ सिर पर रखा और फिर पेट पर। वह बड़बड़ाने लगा—मुझे तो भूख लगी है।

वह अपनी ही आवाज सुनकर चौंक पड़ा, काँप उठा। हत्या के बाद उसने पहले-पहल इसे सुना था—वह उसके कानों में गूँज उठी, जैसे कोई भयानक आवाज़ हो। कुछ क्षण के लिए वह एकदम स्थिर हो गया। उसकी साँस रुक गई। उसे डर था, कहीं कोई सुन न ले।

जब उसका जी कुछ ठिकाने हुआ, तो वह अपना जेब टटोलने लगा। उसमें रोटी के दो-एक टुकड़े थे। इतना काफ़ी होगा—उसने धीरे से कहा। छः घंटे में तो मैं सरहद के पार हुआ जाता हूँ। तब जो चाहूँगा, सो करूँगा। फिर कोई डर नहीं है।

घंटे-भर बाद उसे ऐसा जान पड़ने लगा, मानो सर्दी से उसका शरीर अकड़ रहा है। रात हो चली थी, ओस पड़ने लगी थी। उसके तन पर सिर्फ़ मामूली कपड़े थे। वह उठ बैठा और धीरे-से झाड़ी से निकलकर चलने लगा। पौ फटते-फटते वह रुक गया। वह जंगल पार कर चुका था। अब उसे खुले मैदान में चलना था। दिन निकलने ही वाला था। यह सब सोच कर उसकी बढ़ने की हिम्मत न होती थी।

वह झाड़ी में छिपा खड़ा था। उसे घोड़ों की टाप सुनाई पड़ी। वह भय से पीछे हट गया।

"दौड़ आ पहुँची"—उसने हाँफते-हाँफते कहा और जमीन से चिपक गया।

बात कुछ न थी, एक गाड़ी चली जा रही थी। कोचवान गाता हुआ अपना कोड़ा फटकार रहा था।

"रहमान" किसी ने पुकारा।

"कौन हमीद? इतने सबेरे कहाँ चले?"

"अरे! कहीं नहीं। लादी लेकर नदी पर जा रहा हूँ।"

हत्यारा उसे तब तक देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। तब उसके मुँह से एक आह निकल गई और वह मैदान की ओर देखने लगा।

"अब मुझे चल देना चाहिए।" वह बड़बड़ाने लगा—पूरे चौबीस घंटे हो गए जब मैंने..... । सब बात जाहिर हो गई होगी। लोग मुझे ढूँढ़ते होंगे। अब घंटे-भर की देर हुई, और मैं कहीं का न रहूँगा।

उसने ढाढ़स बाँधा और जंगल से बाहर हुआ। थोड़ी दूर चलने पर उसे गाँव दिखाई पड़ने लगा। उसकी चाल धीमी हो गई, उसके मन में हजारों तरह के विचार आने लगे। भूख उसे गाँव की ओर ले जा रही थी—डर उसे ऐसा करने से रोक रहा था।

इसी सोच-विचार में वह गाँव के सीवान तक पहुँच गया। थोड़ा और आगे बढ़ा और गाँव में घुसने ही को था, कि उसे कुछ चमकता हुआ नजर आया। यह गाँव के चौकीदार की चपरास थी। वह इसी ओर आ रहा था।

"अगर कहीं उसके पास मेरी हुलिया हो।" उसने मन-ही-मन सोचा और काँप उठा। एकाएक पीछे लौटकर वह भागा—पास के जंगल की ओर। और वहाँ जाकर छिप रहा। धीरे-धीरे वह डर से और भीतर घुसता गया—उसकी भूख-प्यास न-जाने कहाँ भाग गई थी। रह-रहकर उसे चौकीदार का

ध्यान आता था। वह उससे और गाँव से बचना चाहता था।

परन्तु वह थोड़ी देर में जंगल के उस पार पहुँच गया। उसके आगे फिर वही मैदान, जिसमें कहीं छिपने का ठिकाना नहीं।

उसने डालियों के बीच से देखा। उसे कोई घास पर बैठा हुआ खाना खाता दिखाई पड़ा। यह रहमान कोचवान था।

रहमान जहाँ बैठा रोटी खा रहा था। वह स्थान बड़ा ही रमणीक था। नाले के बीच पत्थर पर बैठा था। पानी के चारों ओर फूल फूले थे। इधर-उधर वृक्षों की रंग-बिरंगी पत्तियों के ढेर लगे थे। ऊपर नई कोपलों से लदी डालियाँ झूल रही थीं। घनी छाया थी—अच्छी सुहावनी। नाले के ऊपर नये जुते हुए खेतों का विस्तार था।

रहमान अपनी मोटी-मोटी रोटियाँ और थोड़ा-सा सालन लेकर खाने बैठा था। उसके चमकते हुए दाँत मोटी रोटी में कसकर बैठ जाते थे, जिससे उसकी भूख का अंदाज़ होता था। वह तन्मय होकर खा रहा था। बीच-बीच में अपने घोड़ों को पुचकारता जाता था। वे दोनों पास ही हरी-हरी घास चर रहे थे।

"वह सुखी है—वह मज़े में है!" हत्यारा मन में कहने लगा। फिर उसकी आत्मा कहने लगी—"और क्या? मेहनत करनी! बाल-बच्चों से प्रेम रखना—सुख और शान्ति इसी में है!"

उसके जी में आया कि रहमान के पास चलूँ और उससे खाने को माँगूँ। पर अपने फटे-फटाये कपड़ों को देखकर उसकी हिम्मत सामने जाने की न हुई। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी सूरत हत्या की गवाही दे रही है; मानो हर चीज़ उसे धिक्कार रही है।

आहट सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा—चिथड़े लपेटे एक बूढ़ा आ रहा था। उसकी कमर झुकी थी। लाठी के बल, आहिस्ता-आहिस्ता चल रहा था। वह फ़क़ीर था।

हत्यारा उसे ईर्ष्या की दृष्टि से देखने लगा और मन में बड़बड़ाने लगा।

"मैं फ़क़ीर ही होता तो अच्छा था! भीख माँगता; पर निडर तो रहता! जहाँ जी में आता मज़े से आता-जाता। चित्त में शान्ति होती; आत्मा में संतोष। जो कुछ मिलता, सुख से खाता-पीता। न पुलिस का डर रहता, न हत्या का पाप, न सूली का भय। वाह! यही मज़े में है—मुझसे तो लाखों दर्जे अच्छा है!"

एकाएक उसका चेहरा पीला पड़ गया, वह काँपने लगा, उसके हाथ-पैर फूल गए।

"वे सब आ पहुँचे!" उसने लड़खड़ाती हुई ज़बान में कहा। उसकी दृष्टि सड़क पर लगी थी।

भयातुर आँखों से वह चारों ओर देखने लगा—शरण ढूँढ़ने लगा। डर के मारे उसे कुछ न सूझता था—उसकी बुद्धि कुछ काम न करती थी।

पुलीसवाले पास आ रहे थे। घोड़ों की टाप और हथियारों की खनखनाहट सुनकर वह चैतन्य हो उठा—सामने इमली का घना पेड़ देखकर वह चटपट गिलहरी की तरह उस पर चढ़ गया।

वह अब सुरक्षित स्थान में था। पुलीसवाले पास ही में दम लेने के लिए ठहरे। वह सुन रहा था—निश्चल, भयभीत। उसका मन भयानक भावों का शिकार था—उसका दिल ज़ोरों से धड़क रहा था।

"इस जंगल में भी ढूँढ़ा जाय, तो क्या हर्ज है?" एक सिपाही ने कहा।

"यह तो बहुत ही छोटा है।" दूसरे ने कहा। "इन दस पेड़ों में वह थोड़े ही छिपनेवाला है। उसने जंगल धर लिया होगा।"

"कुछ भी सही! देख लेने में क्या हर्ज है।"

"नहीं जी!" उसने साथी से कहा—"फ़जूल वक्त गवाना है। खूनी यों ही हमसे १० घंटे आगे चल चुका है।"—और वे आगे सरपट बढ़े।

हत्यारे की जान में जान आई। मानो उसकी नई ज़िन्दगी हुई हो; परन्तु ज्यों ही वह ज़रा

निश्चिन्त हुआ, जरा उसे डर से छुटकारा मिला, उसे दूसरी बला ने आ घेरा। वह चिल्ला उठा—ओफ़ ! भूख से जान निकली जा रही है।

उसने ४८ घंटों से कुछ खाया न था। उसके पैर लड़खड़ाने लगे, सिर चकराने लगा, उसके कान सनसनाने लगे। फिर भी उसकी हिम्मत गाँव तक जाने की न होती थी। पुलीस ! सूली ! ये दो शब्द बार-बार उसके ध्यान में आ जाते थे। उसकी भूख उनके सामने हवा हो जाती थी।

उसके कान सजग होकर हर आहट को सुनने में लगे थे। दूर मंदिर के घंटे की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा। पूजा हो रही है। हत्यारा सुनने लगा—भय से विह्वल, सिर नीचा किये, घंटे की हर चोट पर काँपते हुए—मानो उसी के हृदय पर चोट पड़ रही हो। उसकी आँखों से बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं—उसे पता न था। उसने उन्हें रोकने की चेष्टा भी न की।

घंटे की आवाज ने उसकी कल्पना में अति भीषण, अति करुण चित्र उपस्थित कर दिया था।

"ओह ! अभागा ! मैं बड़ा अभागा हूँ !" उसने आह भरकर कहा और अपने हाथों से मुँह ढँक लिया।

वह फिर घंटे की आवाज सुनने लगा—घंटे की ध्वनि ने उसकी स्मृति को सचेत कर दिया। वह मन में कहने लगा—ओह ! बेकारी ! इसी के कारण मैं शराब पीने लगा। ओह शराब ! इसने क्या गुल खिलाया ? तीन अनाथ बच्चे—बेचारी औरत मरी पड़ी है और मैं—शैतान, पिशाच—पाजी—दुनिया की नजरों से गिरा हुआ—पशु की भाँति जान बचाता फिरता हूँ, जिसे लोग दम मारने तक की फ़ुरसत नहीं देते। ओह ! वे बिना मुझे फाँसी पर लटकाये न छोड़ेंगे। फाँसी—ओह !! बड़ी भीषण वस्तु है, पर नहीं, यह तो इस अपराध के लिये साधारण दण्ड है।

वह रात आने तक उसी पेड़ पर छिपा बैठा रहा। जब उसे तारे दिखाई पड़ने लगे, जब उसे चारों ओर सिवा अपनी साँस के और कोई शब्द न सुनाई पड़ा, तब उसे उस पेड़ से उतरने की हिम्मत हुई।

दो-एक घंटे बाद उसकी भूख की तेज़ी ने उसके भय पर विजय पाई और अपनी बुद्धि लुप्त होते देख वह गाँव में भोजन के लिए जाने पर तैयार हुआ।

उसने अपने कपड़े झाड़ डाले, अपना मुँह पोंछ डाला, और जान-बूझकर बाहर मैदान में निकल पड़ा। पाँच मिनट में वह गाँव में दाख़िल हुआ। वह चल रहा था—धीरे धीरे, सिर झुकाए, मानो बहुत थक गया हो। घबराई आँखों से वह अपने दाहने-बाएँ देखता जाता था, कि कहीं ज़रा भी खटका हो और नौ-दो ग्यारह हो जाऊँ।

गिरजे के पास ही जो गाँव के बीच में था, उसे एक नानबाई की दूकान दिखाई पड़ी। उसने कान लगाकर सुना—कोई आवाज़ न आती थी। जाहिर था कि वह ख़ाली थी। वह भीतर घुसा।

"भाई क्या दूँ ?" मालिक दूकान ने पूछा। वह तगड़ा, साफ़ तबीयत का आदमी था।

"रोटी और सालन !" हत्यारे ने कहा और खिड़की के पास मेज पर जा बैठा।

तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन हुआ।

"यह लीजिए !" दूकानदार ने कहा—"रोटी सालन और पानी।"

"मैंने तो रोटी-सालन ही माँगा था।" हत्यारे ने कहा और उसने आस्तीन से अपना मुँह ढक लिया।

"अजी ! यह बात नहीं है आप जो चाहें लें—पर बुरा न मानिये—आपकी तबीयत अच्छी नहीं दिखाई पड़ती—आपको पुष्ट खाने की ज़रूरत है। यह लीजिए मजे में खा लीजिए। कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

"अच्छा ! अच्छा !"

वह अभी खा ही रहा था, कि लोग आ पहुँचे। सारी दूकान भर गई। हत्यारा खाने लगा—वह अपना मुँह खिड़की की ओर किये था; ताकि

उसे कोई पहचान न सके।

पन्द्रह मिनट मुशकिल से बीते। हत्यारे के लिए बड़ी परेशानी और चिन्ता का समय था। वह बात-बात पर घबरा उठता, उसका चेहरा पीला पड़ जाता और वह काँप उठता। आख़िर वह उठकर चलने पर तैयार हुआ कि एक ने चिल्लाकर कहा—यह लो हमारे थानेदार साहब आ रहे हैं।

हत्यारा एकाएक चौंक पड़ा। उसका दाहना हाथ उसके सिर पर जा पड़ा—उसके प्राण सूख गये, मानो काठ मार गया हो।

धीरे-धीरे उसे होश हुआ; पर उसके हाथ-पैर काम न करते थे। वह डर से बेबस हो रहा था।

थानेदार को आते देख वह मेज़ पर झुक गया और सोने का बहाना करने लगा।

थानेदार को सभी मानते थे। सब उठकर उसे कुर्सी देने लगे और अपने साथ खाने को बुलाने लगे।

"धन्यवाद" थानेदार ने कहा—"आप लोगों की दावत कबूल है; पर इस समय मैं जल्दी में हूँ ज्यादा देर तक नहीं बैठ सकता, जरूरी काम है।"

"जरूरी काम? आज रविवार को तो खुदा भी आराम करता है—तुम्हें क्या आफत है?"

"हाँ, खुदा करता होगा; पर हमको मयस्सर नहीं। हमें तो हर वक्त हत्यारों की खोज में रहना पड़ता है।"

"हत्यारों की खोज में? कहिए खैर तो है?"

"क्या आपने वारदात नहीं सुनी?"

"जी नहीं! कहिए तो, क्या हुआ?"

"अच्छा, सुनिये, मैं कहना ही चाहता था। आप लोग उस खूनी की हुलिया तो सुन लीजिए—हम लोग उसी को ढूँढ़ रहे हैं।"

हत्यारे का दिल ऐसे जोर से धड़क रहा था, मानो बाहर निकल पड़ेगा।

"वह संगतराश है" थानेदार ने कहा।

"और हत्या किसकी की है?"

"अपनी औरत की!"

"चाण्डाल! उस बेचारी ने क्या किया था उसका?"

"मार खाने पर रोने लगती थी। कभी-कभी उससे लड़के-बालों के लिए खर्च माँगती थी। उससे उनका भूखों मरना नहीं देखा जाता था। बस यही उसका अपराध था—बेचारी इसी लिए बृहस्पति की रात को अपनी जान खो बैठी। उसके उमर ही क्या थी—२५ वर्ष! उस दुष्ट को तो उसके तलवे चाटना चाहिए था। बेचारी रात-दिन काम करती थी। लड़कों को देखती, घर देखती, इसका यह बदला उसे मिला!"

"नारकीय! चाण्डाल!" एक युवा ने जोश में मेज पर एक घूँसा जमा दिया और कहा—"उसका सिर धड़ से अलग कर दिया जाय, तो मुझे खुशी हो।"

"इसी से तो उसका हुलिया कह रहा हूँ, कि कहीं पा जायँ, तो उसे पुलीस के हवाले कर दें। वह जरूर यहीं कहीं आस-पास छिपा होगा। हम लोगों का यही विश्वास है।"

सब सन्नाटे में थे।

हत्यारे ने भी सुना—अमानुषिक प्रयत्न से वह अपनी घबराहट छिपा रहा था। उसका सिर चकरा रहा था।

"उसका हुलिया यह है" थानेदार ने एक कागज जेब से निकाल कर पढ़ते हुए कहा—"मझोला कद, छोटी गरदन, चौड़े कंधे, गाल की हड्डियाँ उठी हुई, लम्बी नाक, काली आँखें, खसखसी दाढ़ी, पतले होंठ, पेशानी पर एक तिल।"

कागज मोड़ते हुए उसने कहा—अब आप लोग उसे मजे में पहचान लेंगे।

"अब तो कोई कठिनाई नहीं दीखती!"

अच्छा अब चलता हूँ—अपने शिकार के फिराक़ में। आदाब!"

हत्यारे ने साँस खींच ली। थानेदार का जाना सुनकर वह सोचने लगा—"अब क्या है, सीमा पार करने में दो-एक घंटे की देर है।" वह अपने को 'बच गया' समझने लगा।

वह अपना सिर उठाने ही को था, कि उसे थाने-

दार के भारी बूट-जूतों की चरमर अपनी ओर आती सुनाई पड़ी।

थानेदार रुक गया और हत्यारे को ऐसा जान पड़ा, मानो वह उसी को देख रहा है।

उसके शरीर में काटो तो खून नहीं। वह पसीने-पसीने हो गया। मानो उसका दिल धड़कना बन्द कर देगा।

"इधर देखिये" थानेदार ने कहा—"इधर एक साहब सोने में मस्त हैं" और उसने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"अरे भाई! जरा सिर तो ऊपर उठाओ। तुम्हारा मुँह तो देखें!"

हत्यारे ने जल्दी से अपना सिर ऊपर उठाया। उसके चेहरे से भय टपकता था। उसका चेहरा सूखा हुआ और विकृत था। उसकी लाल-लाल आँखों से अंगारे निकल रहे थे। उसके होंठ डर से काँप रहे थे।

"यह तो वही है!" सब लोग एक साथ चिल्ला उठे। थानेदार ने उसकी गरदन पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया; पर इसके पहले ही हत्यारे ने उसकी आँखों पर दो घूँसे कसकर ऐसे जमा दिये कि वह चौंधिया गया और वह उचक कर खिड़की के रास्ते बाहर बाग़ में हो रहा और बात-की-बात में अदृश्य हो गया।

उसकी फुरती से सँभलकर सब लोग उसके पीछे दौड़ पड़े! एक छलाँग में वह झाड़ी के पार हुआ, दम-की-दम में उसने खेतों को पार किया और दस मिनट में वह गाँव से मील-भर दूर निकल गया।

ऊँची-नीची जमीन देखकर अपने को अदृश्य समझ कर वह क्षण भर के लिए दम लेने को रुका। वह बहुत ही थक गया था। अगर कुछ देर और दौड़ना पड़ता, तो वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़ता।

वह बैठा ही था कि उसे हल्ला-गुल्ला सुनाई पड़ने लगा। वह उठकर सुनने लगा।

लोग पीछे ढूँढ़ते आ रहे थे।

अब वह क्या करे? थका माँदा, बेदम। अब वह दौड़ न सकता था। लोग उसके पास आ पहुँचे थे। वह निराश होकर चारों ओर देखने लगा। हर ओर उसे मैदान-ही-मैदान दिखाई पड़ता था। न कहीं नीची जमीन थी, न कहीं पेड़ या झाड़ी। एकाएक उसकी नज़र एक पानी से भरे गड्ढे पर पड़ी, जिसके चारों ओर ऊँची-ऊँची घास उग रही थी। उसकी जान-में-जान आई।

"आओ इसी में—"

वह किसी तरह उस तक पहुँचा और गले तक पानी में धँस पड़ा। सिर पर उसने घास और उसकी पत्तियाँ रख लीं और निश्चल खड़ा हो गया, मानो कोई निर्जीव लट्ठा हो।

जब लोग उसके पास पहुँचे, पानी स्थिर और साफ़ हो गया था—आगे आगे-थानेदार था। दूकान वाले के प्रयत्न से उसे जल्दी होश आ गया था।

"अब?" थानेदार ने घोड़े पर से चारों ओर देखकर कहा—"आखिर बदमाश चला कहाँ गया?"

"बड़ी विचित्र बात है" एक जवान किसान ने कहा, अभी मुझे साफ़ दिखाई पड़ रहा था—और अब एकाएक गायब! चारों ओर मैदान-ही-मैदान तो है—चूहे का एक बिल तक कहीं नहीं है कि उसमें समा सके।"

"कहीं दूर नहीं गया होगा" थानेदार ने कहा—"हम लोग दोनों तरफ़ से खोजते हुए चलें और फिर आकर यहीं मिलें।"

हत्यारे ने उन्हें जाते हुए सुना। वे तरह-तरह की धमकियाँ दे रहे थे।

उस गड्ढे के पानी में खड़ा हुआ वह स्थिर था; पर उसका अंग-अंग काँप रहा था—उसकी हिलने की हिम्मत न होती थी, कि कहीं लोगों को पता न लग जाय। लगभग एक घंटे तक वह इसी भाँति खड़ा लोगों की आहट लेता रहा—थोड़ी देर बाद फिर सब उसी स्थान पर आकर इकट्ठा हुए।

"हवा हो गया क्या" थानेदार ने झल्ला कर कहा—"आखिर वह इतनी देर में चला कहाँ गया? कुछ समझ में ही नहीं आता।"

"वह जादू जरूर जानता है" एक गँवार ने कहा।

"जो कुछ हो पर बचा की जान छोड़ने वाला नहीं हूँ" थानेदार ने दृढ़ता से कहा—"जरा घोड़े को पानी पिला लूँ और फिर सरहद की ओर सरपट बढ़ाता हूँ—देखूँ बचा जाते कहाँ हैं भागकर।"

उसने घोड़े को गड्ढे की तरफ़ बढ़ाया और उसी स्थान पर ठीक रोका, जहाँ वह हत्यारा छिपा था। घोड़े ने गरदन बढ़ाई, दो-एक बार सूँघा और फिर मुँह हटा लिया और आगे बढ़ने से इनकार किया।

थानेदार ने धीरे से उसके कान पकड़े और उसे पानी में घुसने पर मजबूर किया; लेकिन जानवर पीछे हट गया और फिर मालिक के लाख मारने-चुमकारने पर भी वह आगे बढ़ने को तैयार न हुआ।

"ओह आज आप भी अकड़ रहे हैं" थानेदार साहब ने घोड़े के अकड़ने पर झल्ला कर कहा—"देखें आज किसकी चलती है!"

वह घोड़े को पीटने ही पर था कि वह समझदार जानवर अपनी दुर्गति का हाल समझकर एकाएक मुड़ा और बाएँ तरफ़ थोड़ी दूर पर गड्ढे में धँस पड़ा।

'ख़ैर अपने हक़ में अच्छा ही किया" थानेदार ने संतोष से कहा। घोड़ा पानी पीट रहा था। थानेदार किसानों से कहने लगा—"भाई अब तुम लोग जा सकते हो—अब मैं ही अकेले घोड़े पर जाऊँगा।"

किसान लोग लौट गये। घोड़ा भर पेट पानी पी चुका। दोनों अन्य खेतों में होकर तेज़ी से आगे सरहद की ओर बढ़े।

हत्यारा ज्यों-का-त्यों साफ़ बच गाय।

वह सर्दी से ठिठुर रहा था; पर वह १५ मिनट तक उनके जाने के बाद तक वहीं इन्तजार करता रहा। बाद को वह निकला। पानी उसके कपड़ों से चू रहा था। उसके सिर पर घास-फूस पड़ी हुई थी उसके कपड़ों और बदन में काई चिपक गई थी—वह थरथर काँप रहा था। उसका चेहरा मुर्दे की तरह मुर्झाया हुआ था। उसने दूर तक नज़र दौड़ाई—कहीं कोई दिखाई न पड़ता था। मैदान खाली पड़ा था। वह बोलना चाहता था; पर उसके दाँत कटकटा रहे थे। बहुत देर के बाद उसने कहा—"जान बची।" तब वह आशा छोड़ कर कहने लगा—"हाँ बच तो गया; पर सिर्फ इस मौके पर! थनेदार सरहद पर मेरे लिए बैठा होगा। सब पहरेदारों को खबर दे दी गई होगी—सभी मेरी फिराक में होंगे। वे मुझे फिर ढूँढ़ेंगे। अच्छी तरह ढूँढ़ेंगे। ऐसी जल्दी मुझे छुटकारा न मिलेगा। आदमी—ईश्वर—सभी मेरे पीछे पड़े हैं। अब तो बहुत हो गया—मेरी शक्ति के बाहर की बात है।"

यह कहता हुआ वह झाड़-पोंछ कर तैयार हो गया। वह सुनसान मैदान की ओर देखकर मानो डर रहा था। उसके दिल में भी वही निराशा, सन्नाटा और सर्दी मालूम पड़ती थी।

कुछ देर के लिये वह सिर पर हाथ रखकर सोचता रहा, अन्त में उसने हठता से कहा—"अच्छा यही सही!" और वह गाँव की ओर बढ़ा, जहाँ से भाग कर आया था। घंटे-भर बाद वह उसी दूकान में पहुँचा, जहाँ वह पकड़ते-पकड़ते बचा था। लोग वहाँ मौजूद थे

सबों ने आश्चर्य से चिल्लाकर कहा—"खूनी"

"हाँ" हत्यारे ने गंभीरता से उत्तर दिया—"मैं ही हूँ वह संगतराश, जिसने अपनी स्त्री की हत्या की है। लो मुझे पकड़ो। जाओ बुलाओ पुलीस को।"

वह दूकान के बीचोंबीच निडर डटकर जा बैठा।

दो पुलीस के सिपाही भागे-भागे आये। हत्यारे ने पहचाना। ये वही थे, जो उसे ढूँढ़ते हुए इमली के पेड़ के नीचे से निकले थे। उसने चुपचाप उनके आगे अपने हाथ बढ़ा दिये। उन्होंने हथकड़ी डाल दी और उसे तहसील के थाने की तरफ़ ले चले, जहाँ वे उस समय उसे रखना चाहते थे।

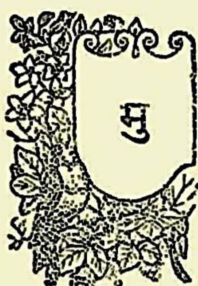
अब वह अकेला रह गया। हवालात में बन्द, दरवाजों पर ताला पड़ा हुआ था। फाटक पर पहरेदार बैठे थे। वह जमीन पर पड़े हुए पुआल पर गिरा और एक प्रकार के भीषण आनन्द से चिल्ला उठा—

"ख़ैर अब तो बखेड़ा टला!" *

—सत्यजीवन वर्म्मा।

* एक फ्रेंच कहानी का स्वतन्त्र अनुवाद।

भूत



मुझे अपने विद्यार्थी-जीवन की एक घटना कभी नहीं भूलेगी। मैं उस समय हिन्दी मिडिल स्कूल की छठीं कक्षा में पढ़ता था। स्कूल मेरे गाँव में नहीं था; बल्कि वहाँ से पन्द्रह मील दूर एक तहसील में था। मैं छात्रावास में रहता था। मेरे साथ मेरे गाँव का एक विद्यार्थी और पढ़ता था। वह मुझसे अवस्था में कुछ बड़ा था। हम दोनों एक ही कक्षा में पढ़ते थे। प्रति शनिश्चर की संध्या को हम दोनों अपने घर जाते थे। स्कूल से छुट्टी मिलती और चल देते। नौ-दस बजे घर पहुँच जाते। इतवार को रहते। सोमवार को फिर सबेरे चल पड़ते। हमारा यह घर जाना और आना यंत्र-चक्र की भाँति नियमित हो गया था। मुझे ऐसे किसी शनिश्चर का स्मरण नहीं आता—सिवा एक के और जिसका मैं उल्लेख करने बैठा हूँ—जब मैंने पन्द्रह मील का मार्ग तय करके अपने घर जाकर ब्यालू न की हो। घर-पर सब लोग मेरी प्रतीक्षा में बैठे मिलते थे। माँ खाने की कोई नई चीज़ बनाकर रखती थीं। बहन मुझे देखते ही दौड़कर मेरी गोद में आ जाती थी। शनिश्चर की संध्या को स्कूल से बाहर निकलते ही मैं घर की कल्पना करने लग जाता था। उस दिन मुझे न सर्दी लगती थी, न गर्मी सताती थी और न वर्षाऋतु की विघ्न बाधाओं का अनुभव होता था। डर भी नहीं लगता था; क्योंकि हम दो थे और वह अवस्था ऐसी थी, जब प्रत्येक युवक में दुस्साहस की थोड़ी-बहुत मात्रा अवश्य होती है। मुझमें यह कुछ अधिक थी। हम दोनों ही पन्द्रह मील मानों दौड़कर घर जाते थे। थकान का अनुभव होना तो दूर रहा, उसका ध्यान भी हमारे मन में नहीं आता था; परन्तु अब यह हाल है, कि काम पड़ने पर पाँच मील चलना भारी मालूम होता है।

शनिश्चर की संध्या मेरे लिए बड़ी सुन्दर और सुहावनी थी। भौंरों का मधुर गुंजार-जैसे कोकिल के लिए वसन्त का प्रिय सन्देश लाता है, शनिश्चर की संध्या के दिन छुट्टी का घण्टा मेरे लिए वैसे ही स्वर्ग का सन्देश लाता था। मेरे उस स्वर्ग में स्वतन्त्रता का उल्लास और घर का सुख-ही-सुख था। उन दिनों का स्मरण करके मेरा हृदय आज भी पुलकित हो रहा है, मानो आज शनिश्चर है। और मैं अपनी पाठ्य-पुस्तकों को कोठरी में बन्द करके, स्कूल के कठिन शासन और नियन्त्रण से एक दिन का छुटकारा पाकर अपने घर जा रहा हूँ।

एक ऐसे ही शनिश्चर की बात है। सबेरे से ही घर जाने के मनसूबे बँध गये थे; मगर उन सब पर पानी फिर गया। मेरे साथी रामाधार को दोपहर से ज्वर चढ़ आया। मैं बड़ी चिन्ता में पड़ा। नेत्रों के सामने निराशा की अँधियारी छा गई। रामाधार ने कहा—अब मत जाओ। मैं भी यही सोचनेलगा। सावन का महीना, अँधेरी रात्रि। निर्जन और बीहड़ मार्ग था; पर मैं अपनी कल्पना के नेत्रों से घर के लोगों की प्रतीक्षा का दृश्य अंकित करने लगा। चन्द्रमा को देखकर जैसे समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ने की चेष्टा करने लगता है, मेरा मन वैसे ही छुट्टी के स्मरण-मात्र से घर की ओर दौड़ गया। मैंने कहा—मैं तो जाऊँगा।

रामाधार ने मुझ पर अपनी मित्रता का अधिकार जताकर कहा—देखो, यह तो ठीक नहीं। तुम जाओगे, और मैं यहीं रहूँगा!

मैंने उत्तर दिया—इसी वजह से तो मेरा जाना और भी आवश्यक है; नहीं तो घर के लोग चिन्तित होंगे।

मेरे इस तर्क के सामने रामाधार कोई युक्ति-पूर्ण बात नहीं कह सका। उसने कहा—अच्छा, जाओ'

बमरौली के ताल पर भूत मिलेगा।

बमरौली के ताल के किनारे एक विशाल वट-वृक्ष के ऊपर रहनेवाला यह भूत अनेक लोगों को अनेक बार मिल चुका था; पर मैंने और रामाधार ने उसे कभी नहीं देखा था। इसके अतिरिक्त एक पढ़े-लिखे और समझदार विद्यार्थी होने की वजह से भूत पर मेरा विश्वास भी नहीं था; इसलिए रामाधार की बात को मैंने हँसी में उड़ाकर कहा—अजी, मैं भूत की परवा नहीं करता!

वह बोला—देख लेना। लम्बे-लम्बे हाथ, बड़ी-बड़ी खीसें, भयानक चेहरा—

"अच्छा, अच्छा!"

मैंने कन्धे पर चादर डाली, हाथ में डण्डा लिया, जेब में छोटी बहन के लिए मिठाई मँगाकर रक्खी और चल दिया।

(२)

रामाधार की बातों में, चलते-चलते बहुत विलम्ब हो गया। मैं सपाटे से कदम रखता हुआ बस्ती से बाहर निकला। उस समय सूर्य अस्त हो रहा था। संध्या निस्तब्ध और गम्भीर थी। सड़क के किनारे के वृक्ष न-जाने किस अनर्थ की आशंका से जड़ीभूत-से खड़े थे। सावन का महीना होने पर भी उस दिन आकाश मेघ-हीन था। केवल पश्चिम में नीले मेघ का एक सघन स्तर था। अस्तङ्गत सूर्य की सुनहली आभा में वह सम्पूर्ण मेघ शुक्तियों के अन्तर-भाग की तरह शोभित हो रहा था। नीचे हरी दूब थी। दूब और आकाश के बीच में एक बड़े से पद्मरागमणि की भाँति सूर्य चमक रहा था। वह अस्त होने ही वाला था। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो दिगन्त तक फैली हुई उस शस्य-श्यामला भूमि को देखने के लिए वह अब भी ललक रहा है। मैं उस समय न तो होनहार कवि था, न दार्शनिक था और न प्रकृति का आलोचक ही था—और न अब हूँ। फिर भी वह दृश्य मुझे बड़ा भला मालूम हो रहा था। सड़क पर गाड़ियाँ चल रही थीं। चरवाहे ढोरों को लेकर लौट रहे थे। बछड़े रँभा और दौड़ रहे थे। मैं इन सबसे बचकर सड़क के किनारे चल रहा था और सूर्य का अवसान देख रहा था। वह धीरे-धीरे अस्त हो रहा था, मानो समुद्र के शान्त जल में डुबकी लेने का आनन्द ले रहा हो। देखते-देखते वह क्षितिज में समा गया। मैं सोचने लगा 'यह कहाँ चला गया है? क्या इसे सचमुच किसी दैत्य ने निगल लिया है अथवा समुद्र ने आत्मसात् कर लिया है?'

अब उस नीले मेघ-स्तर की शोभा और भी बढ़ गई। मानो सूर्य के जाते ही किसी चित्रकार ने उसको रँगना प्रारम्भ कर दिया हो। रंगों का कैसा खेल था! देखते-देखते मिटने लगा। वह नीला बादल पहले रंग-बिरंगा, और फिर मटमैला होकर एकदम स्याही की तरह काला हो गया। मुझे वह सब बहुत बुरा मालूम हुआ। मैंने अपने चारों ओर दृक्पात किया। अवनीतल पर अंधकार की चादर पड़ चुकी थी और आकाश में नक्षत्र जगमगाने लगे थे।

मार्ग धीरे-धीरे निर्जन हो चला; परन्तु बीहड़ नहीं हुआ था। मेढ़कों का कर्कश-रव आगत यामिनी की निस्तब्धता को चीर-सा रहा था। कभी-कभी मोर भी बोल उठते थे। मैं यह देखने के लिए कि सड़क पर कोई मोर तो नहीं है, दोनों ओर नजर फेंकता और मोर जंगल में ही नाचता है इस प्रवाद की सत्यता का अनुभव करके फिर आगे चलने लगता। नक्षत्रों के प्रकाश में सड़क अच्छी तरह दिखाई पड़ती थी। मार्ग में दो-तीन राहगीर मिले। एक बैलगाड़ी भी मिली। उसके बाद फिर निर्जनता बढ़ चली और अंधकार भी।

मैं सात मील निकल आया था। आगे जो पुल था वहाँ से मेरे गाँव के लिए कच्चा रास्ता गया था। कंकरीट की पक्की सड़क बाईं ओर छोड़ देनी पड़ती थी। मैं कच्चे रास्ते पर उतरा। खूब दलदल और कीचड़ थी। गत शनिवार को इस मार्ग का और भी बुरा हाल था; परन्तु तब रामाधार साथ था। गप-शप करते हुए उस बरसाती कच्ची सड़क को पार करके किस तरह घर पहुँच गये थे, पता भी नहीं चला

था; आज अकेले होने की वजह से मुझे वह मार्ग बहुत अखरने लगा। जूते हाथ में लेकर, नक्षत्रों के क्षीण प्रकाश की सहायता से, कीचड़ आदि से बचता हुआ धीरे-धीरे चलने लगा।

दोनों ओर बबूल का घना जंगल था। उसके निकट पहुँचने पर मुझे ऐसा जान पड़ा, कि मैं बिलकुल अकेला हूँ। अकेला तो था ही, इस कारण अपने विचार पर मुझे हँसी भी आई। बात यह थी, कि वहाँ मेढकों की आवाज भी नहीं सुनाई पड़ती थी। मेरे मन को किसी से बात करने की आवश्यकता प्रतीत हुई; परन्तु वहाँ कोई ऐसा नहीं था। लाचार होकर मैंने गुनगुनाना शुरू किया। फिर गाने लगा। फिर सघन वन की निस्तब्धता को अपनी पाठ्य-पुस्तक में लिखित 'वृन्द-सतसई' के दोहे सुनाने लगा; परन्तु यह देखकर मुझे बड़ा खेद हुआ, कि उन दोहों के बदले में मुझे केवल किसी वन्य-पक्षी का विकट चीत्कार सुनने को मिला। मैं इससे निराश नहीं हुआ। धीरे-धीरे अपने ही मन को रामायण की चौपाइयाँ सुनाने लगा। मेरा मन इन्हें सुनने के लिए राज़ी नहीं हुआ। तब मैं उस जंगली चिड़िया के विकट चीत्कार को भुलाने की चेष्टा करता हुआ इधर-उधर देखने लगा।

वन की सघनता कम हो चली थी; परन्तु यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, कि अंधकार बढ़ रहा है। मैंने आकाश की ओर देखा। मेघ का वह काला टुकड़ा बढ़कर बहुत विशाल हो गया था। वह बढ़ता ही जाता था, मानो किसी ने 'सहस्र रजनी-चरित्र' में वर्णित उस डिबिया को खोल दिया हो, जिसमें धुएँ के रूप में एक दैत्य बन्द था और जिसने डिबिया के खुलते ही अपने विशाल आकार से समस्त अन्तरिक्ष को व्याप्त कर लिया था। हाँ, वह मेघ-खण्ड उसी प्रकार बढ़ रहा था। उसने उस दैत्य की भाँति ही अपनी भयावनी काया को फैलाकर समस्त आकाश को ढँक लिया। पृथ्वी पर नक्षत्रों का आलोक रुक गया। सर्वत्र अंधकार—घोर अंधकार! मुझे अपने सामने की जमीन नहीं दिखलाई पड़ती थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि मुझे डर लग रहा है। मेरे मन पर एक प्रकार की क्लान्ति और अवसन्नता ने अधिकार जमा लिया। मैंने पीछे घूमकर देखा। वहाँ कोई भी नहीं था। फिर भी किसी प्राणी—किसी चलती-फिरती वस्तु—को देखने के लिए मेरा हृदय अस्थिर हो उठा। मुझे चोर का डर नहीं था; डाकू का भय नहीं था; क्योंकि मेरी जेब में एक भी पैसा नहीं था। फिर भी मुझे डर लग रहा था और डर का कारण मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि कोई मेरा पीछा कर रहा है। मुझे उसके पैरों की आहट स्पष्ट सुनाई पड़ी। मैंने पुनः पीछे घूमकर देखा। कोई भी नहीं दिखलाई पड़ा। मुझे सर्दी लगने लगी। इसका कारण मैंने यही निर्द्धारित किया, कि ठंडी हवा चल रही है।

बमरौली का ताल अभी एक मील दूर था और गाँव डेढ़ मील। उसके बाद फिर मेरा गाँव था। मैं तेज़ी से चलने लगा। रामाधार ने मुझसे बमरौली के भूत के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, मैंने उसे भुलाने की चेष्टा की; परन्तु कोई मेरे साथ-साथ अवश्य चल रहा था और अब वह सामने आ गया! निस्सन्देह वही था, जो अभी मेरे पीछे चल रहा था। मैंने अपने सामने किसी की काली छाया देखी। मेरा हृदय धड़क उठा; परन्तु मैं बिलकुल कायर और दुर्बल-हृदय नहीं था। मैंने अपने हृदय को धमकाया—हश! कोई नहीं है!

परन्तु यह क्या? मुझे डर लग रहा था। मैं स्वयं अपने विचारों से डर रहा था और अपने पैरों की आहट से भयभीत हो रहा था। मैंने सामने देखना बन्द कर दिया; परन्तु भूत-प्रेतों की अनेक कथाएँ मेरे मस्तिष्क को उत्तप्त करने लगीं। भूत कभी मुर्गी बन जाते हैं, कभी भेड़ बन जाते हैं, कभी पथिक को मार्ग-भ्रष्ट करने के लिये आग जलाते हैं, और कभी उसे निगल जाने के लिए विकराल दैत्य का रूप धारण कर लेते हैं। ये विचार किसी प्रकार भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहे थे।

पर वह छाया क्या फिर मेरे पीछे आ गई ? मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मेरे आस-पास का प्रत्येक जड़-पदार्थ किसी माया-बल से सजीव होकर मेरे पीछे दौड़ रहा है। यह निस्सन्देह उसी की करतूत है। वह काली छाया मेरे पीछे आकर मुझे डराना चाहती है। मैं गर्दन नहीं मोड़ सका, फिर भी पीछे देखने की एक प्रबल और दुर्दमनीय इच्छा से विवश होकर मैंने देखा—वही काली छाया थी। मेरा श्वास रुद्ध हो गया, सर्वांग बेत की तरह काँपने लगा। मैं धरती पर गिरने को हो गया। मैंने संकटमोचन हनुमान का नाम लिया। इससे हृदय कुछ दृढ़ हुआ। मैंने कहा—भूत कोई चीज़ नहीं होती। मुझे केवल भ्रम हो गया था।

मैंने दृष्टि उठाई। वह फिर सामने था। अबकी बार बहुत ही निकट, बिलकुल निकट। वह निस्सन्देह पीछे नहीं गया था; बल्कि अपने स्थान पर खड़ा था। मैंने उसकी काली भयावनी छाया बहुत ही स्पष्ट देखी। पूर्व-पश्चिम की ओर फैले हुए लम्बे-लम्बे हाथ, भीषण बड़ी-बड़ी खीसें, और विकराल चेहरा; मानों वह मुझको, समस्त पृथिवी को और समस्त अन्धकार को अभी निगल जायगा। वह मेरी ओर बढ़ रहा था। भय से मेरे हाथ-पैर ढीले पड़ गये, पसीने से मेरा सर्वाङ्ग भींग गया। वह मेरे निकट आ गया था—बिलकुल—ओह—मैं बबूल के पेड़ का सहारा लेना चाहता था; परन्तु उस तक पहुँचने के पहले ही संज्ञाहीन होकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

× × ×

मैं रात-भर बेहोश रहा या सोता रहा, मुझे पता नहीं। प्रातःकाल प्रकाश के प्रथम स्पर्श से मेरी पलकें अपने-आप खुल गईं। कुछ तो खेतों की उन्मुक्त शीतल वायु के स्पर्श और कुछ गत-रात्रि की घटना के स्मरण से मुझे रोमांच हो आया। मैंने नेत्र फैलाकर सामने देखा। वहाँ, मुझसे पचास गज़ की दूरी पर घास की एक गाड़ी उलटी पड़ी थी। ज्वारी ऊपर और पीछे का भाग धरती पर। पास ही एक आदमी खड़ा था। उसके निकट जाकर मैंने पूछा—क्यों भाई, क्या हुआ है ?

वह बोला—संध्या को गाँव से बाहर निकलते ही धुरा टूट गया।

"फिर ?"

"कुछ नहीं। रात-भर गाड़ी यहीं पड़ी रही। अब धुरा ठीक होने पर जा सकूँगा।"

"और रात में तुम कहाँ रहे ?"

"पहले तो गाँव में चला गया था। फिर यहीं आकर सोता रहा।"

गाड़ीवान से अधिक पूछने की आवश्यकता नहीं हुई। पल-भर में मैंने रात्रि के उस निविड़ अन्धकार में इस उलटी हुई गाड़ी को देख लिया। ओफ़! यही गाड़ी मेरे लिए भूत बन गई थी! ऊपर का जुआ दो हाथ! और नीचे का हिस्सा धड़! भूत के पैर, सो होते नहीं! मुझे अपनी मूर्खता पर बड़ी हँसी आई और जब मैं सोमवार को स्कूल पहुँचा और रामाधार को सारा क़िस्सा सुनाया, तब वह तो हँसी के मारे लोटने लगा। उसकी हँसी दूसरे प्रकार की थी। बोला—कहो, मैंने मना किया था न ?

मैं सुनसान जंगल में रात-भर एक पेड़ के नीचे बेहोश पड़ा रहा, यह जानकर उसे कुछ दुःख भी हुआ या नहीं, यह वही जाने। मैंने कभी पूछा नहीं।

—कृष्णानन्द गुप्त।

एक लोकप्रिय औपन्यासिक



गत यूरोपीय महायुद्ध के विषय में यूरोप में जितने उपन्यासों का निर्माण हुआ है, उनमें से एक उत्तम उपन्यास तो अतिशय लोकप्रिय हो गया है। उसका नाम है—All quiet on the western front. इसका लेखक जर्मन का एक 'रिमार्क' नामक औपन्यासिक है। पहले-पहल १९२८ ई० के नवम्बर महीने में यह उपन्यास प्रकाशित हुआ। उसके बाद सवा वर्ष के अल्पकाल में ही इस उपन्यास का संसार की तेईस भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और इस प्रकार इस लोकप्रिय उपन्यास की बीस लाख प्रतियाँ खप चुकी हैं। हाल में ही फिल्म के रूप में भी इसका अवतरण हो चुका है। सिनेमा के शौकीन लोगों ने भी इसका खूब सत्कार किया है। 'हंस' के पाठकों के लिए इसके लेखक 'एरिक मेरिया रिमार्क' का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

रिमार्क का जन्म जर्मनी में हुआ है। इसके पूर्व-पुरुष फ्रांस की राज्यक्रांति के समय फ्रांस को छोड़कर जर्मनी में बस गये थे। अठारह वर्ष की जवान उमर में यह स्कूल को छोड़कर सेना में भर्ती हो गया। लड़ाई के समय ही उसकी माता का अवसान हो गया और उसके बहुत से मित्र भी मरण को प्राप्त हुए। उपर्युक्त उपन्यास को पढ़ने से ज्ञात होता है, कि उसका नायक 'पॉल' यह स्वयं ही है। लड़ाई समाप्त होने पर अपने कुटुम्ब में यह अकेला ही रह गया था। बड़ी उमरवाले सैनिक लोग तो अपनी घर-गृहस्थी की चिन्ता में रहकर लड़ाई में विशेष ध्यान नहीं देते थे। रणभूमि की भयंकर स्मृतियों ने रिमार्क के मन को विह्वल बना दिया। आराम और शान्ति की अभिलाषा से इसने एक ग्रामीण पाठशाला में शिक्षक का काम करना प्रारम्भ किया; परन्तु वहाँ पर यह बहुत समय तक न रहा। एक के बाद एक करके इसने संगीत-शिक्षक, मोटर का व्यापारी, शिल्पकार, नाटक-विवेचक आदि के रूप में अनेक धंधे किए। इसके जीवन का इतिहास विविध घटनाओं से भरा हुआ है। कुछ समय विदेश में रहकर तथा कुछ कमाई करके इसने यात्रा भी की है। यात्रा समाप्त करके स्वदेश लौट आने पर इसने एक बड़ी दूकान में पत्र-व्यवहार करने का काम किया और वहीं पर विज्ञापन विभाग का व्यवस्थापक बनकर भी रहा। यहाँ पर भी यह बहुत समय नहीं टिका और एक समाचार-पत्र का सम्पादक बन गया। अन्त में पुनः अपना मोटर का धन्धा प्रारम्भ किया। इस समय यह बर्लिन में रहता है और मोटरों का व्यवसाय करता है।

अपनी पुस्तक में इसने अपने तथा अपने मित्रों के लड़ाई के समय के संस्मरणों का उल्लेख किया है। उपन्यास में इसने लड़ाई के भयंकर अमानुषिक कृत्यों का, युवकों के दुर्भाग्य का तथा मातृभाव का विशेष वर्णन किया है।

अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही रिमार्क लिखता है—लड़ाई के साहसों का वर्णन करना इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है; क्योंकि जो लोग मृत्यु के मुख के सामने खड़े होते हैं, मृत्यु उनके लिए साहस नहीं है। जो लोग तोपों के गोलों की मार से बच गये हैं; परन्तु युद्धों ने जिन वीरों का जीवनमरण तुल्य बना दिया है, ऐसे पुरुषों की कथा इस पुस्तक में लिखी गई है।

इस उपन्यास का अँगरेजी अनुवाद १९२९ के मार्च महीने में प्रकाशित हुआ था और एक महीने के अन्दर ही इसकी आठ आवृत्तियाँ निकलीं। बहुत से विद्वानों का ऐसा अभिप्राय है, कि यह पुस्तक नोबल पुरस्कार के लायक है। अमेरिका के किसी प्रकाशक ने इसका नोबल-पुरस्कार से भी अधिक मान किया है। उसने रिमार्क की एक नवीन पुस्तक को एक लाख डालर में मोल लिया है।

—शंकरदेव।

बरात



सामने थोड़ी दूर पर बरात आ रही है। खूब बाजे-गाजे हैं। अँगरेज़ी बाजों का बैण्ड है। खूब धूम धड़ाका है। बरात में अमीर और ग़रीब हैं। साधु और संन्यासी हैं। बालक और बूढ़े हैं। जवान और प्रौढ़ हैं। बड़ी शान और शौकत के साथ बरात आ रही है।

बरात देखने के लिए लोगों की भीड़ जमा हो रही है। तिल रखने के लिए ज़मीन नहीं मिल रही है। छज्जों पर बालिकाओं, बच्चों और नवयुवतियों की भीड़ जमा हो रही है। वातायनों और झरोखों से वधुएँ झाँक रही हैं। बरात की शान और भीड़-भड़क्के को देखने के लिए स्त्रियों और तरुण-वधुओं की आँखें लगी हुई हैं। बाजे की आवाज़ को सुनकर उनके हृदय पुलकित और विभोर हुए जा रहे हैं।

"जीजी, जीजी, ज़रा बरात तो देख। कैसी भीड़ दिखाई पड़ रही है! कैसे बाजे-गाजे हैं! कोई छोटा-सा बच्चा बनरा बना होगा! अपनी दुलहिन को लेने के लिए जा रहा है। कैसे गर्व के साथ! कैसी शान के साथ!"

"उसकी जीजी ने, उसकी मौसी ने, उसकी चाची ने, उसकी भौजी ने, उसकी माई ने, उसकी दादी ने, उसकी बुआ ने, उसकी फूफी ने हँसते-हँसते बिदा दी होगी—क्यों जीजी? तरुण-वधुओं ने कण्ठ-से-कण्ठ मिलाकर एक स्वर से गाया होगा—

कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा।
तोरी माई को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी जीजी को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी भौजी के भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा!!

किसी का भरोसा नहीं है! न माई का, न जीजी का, न भौजी का, किसी का भरोसा नहीं है! बनरा, किसके भरोसे आज घर छोड़कर चला जा रहा है! घर की रखवाली कौन करेगा? घर की फ़िक्र किसको होगी बनरा? तू अपनी बारी बनरी लेने के लिए जा रहा है—नई दुलहिन लेने के लिए जा रहा है। इसी आनन्द में—इसी हर्ष में सब स्त्रियाँ जैसे पागल हो रही हैं। किसी को किसी बात का ख़याल नहीं है। माई पागल हो रही है, भौजी का हर्ष सारे शरीर में नहीं समाता, जीजी नई और छोटी-सी भौजी के मुखड़े की कल्पना करके, पूनों की चाँदनी से उसकी तुलना करके आनन्द से पागल हो रही है। उसे जैसे अपनी नई भौजी-जैसा सुन्दर और लावण्य-मण्डित मुखड़ा संसार में और कहीं दिखाता ही नहीं। इसी आनन्द की उद्भ्रान्ति में उसे घर की खोज-खबर नहीं है।

किसी का भरोसा नहीं है; इसलिए बारे बनरा भला बता तो, आज किसके भरोसे घर छोड़कर जा रहा है—

कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा!
तोरी माई को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी जीजी को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी भौजी को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा!!

आज कोई एक बनरा अपनी बनरी को लेने के लिए जा रहा है—अपनी माई से बिदा लेकर, अपनी जीजी से बिदा लेकर और अपनी भौजी से बिदा लेकर, इतने साज-बाज के साथ, इतनी शान और शौकत के साथ और इतने बाजे और गाजे के साथ! यही देखने के लिए, वातायनों पर खड़ी होकर, झरोखों पर खड़ी होकर, छज्जों पर खड़ी होकर वधुएँ उत्सुक हुई जा रही हैं। उन्होंने थोड़ी देर के लिए सारी लज्जा को उतार कर फेंक दिया है—घूँघट खोल लिया है। उस दूल्हे को देखे बिना भला कैसे चैन पड़ेगी? यदि दूल्हा न देखा जायगा,

तो आँखें तरसती रह जायँगी ? इसीलिए आज लज्जा नहीं है। केवल उसी ओर—भीड़-भड़क्के के भीतर पालकी पर बैठे उस दूल्हे को देखने के लिए आँखें भरसक लगी हुई हैं; पर, यह क्या !—यह क्या ! यह कैसी अनोखी बात है !—यह तो कोई मुर्दा जा रहा है !!

क्षण-भर में छज्जे औरतों से खाली हो गए। खिड़कियाँ और झरोखे खटाखट बन्द हो गए। यह क्या ! यह तो किसी बच्चे की अरथी जा रही है !

मैं अरथी के साथ चलने लगा।

यह कैसी बिदा है ! यह बिदा देते समय अभागे पिता का कलेजा फट गया होगा। यह बिदा देते समय माई की छाती फट गई होगी। यह बिदा देते समय भौजी चीख मारकर मूर्च्छित हो गई होगी। यह बिदा देते समय जीजी पछाड़ खाकर गिर पड़ी होगी—यह कैसी बिदा है !—यह कैसी बिदा है ! यह कैसा ठाट-बाट है ! यह कैसा साज-बाज है ! यह कैसे गाजे-बाजे हैं !—यह कैसी बरात है ! यह कैसा बनरा है, जो पालकी के ऊपर कफ़न से ढका हुआ आँखें बन्द कर चिर निद्रा में सो रहा है !—यह कैसी बिदा है ?—यह कैसी बरात है ?

एक आदमी कथा सुनाने लगा—१२-१३ बरस का बच्चा है। अभी अभी, रात को ११½ बजे ही उसने आँखें मूँद ली थीं; पर वैसे, जैसे कोई सोना चाहता है और सोने के पहले बोलता-बताता, चादर खींचकर सो जाता है। उसी तरह—हाँ, उसी तरह यह मौत हुई है !

बच्चे की माँ, पिता, दादी और घर के अन्य लोग सामने बैठे हुए थे। बुखार चढ़ा हुआ था। माँ पैंताने बैठी हुई बच्चे के पैर दाब रही थी। दीपक टिमटिमा रहा था।

बच्चे ने ज़मीन पर पलने में लेटी हुई अपनी छोटी—आठ महीने की—बहन को देखकर कहा—माँ, गिन्दी को दूध पिला दे।

माँ ने कहा—भैया, अभी तो दूध पिलाया है।

बच्चे ने कहा—नहीं माँ, गिन्दी भूखी है, उसे दूध पिला दे।

माँ ने उठकर गिन्दी को आँचल से लगा लिया।

बच्चे ने पिता से कहा—पिताजी, मुझे माफ़ी दो।

"क्यों बेटा, माफ़ी किस बात की ?"

बच्चा पहली अँगरेजी में पढ़ता था।

बच्चे ने कहा—पिताजी, तुम मुझे माफ़ी नहीं देना चाहते ? मैं अनाथ बालक हूँ—विद्यार्थी हूँ ! तुम मुझे माफ़ी नहीं देना चाहते !—तुम मुझे माफ़ी नहीं दे सकते ?

"क्यों नहीं दे सकता ?"

"तो दो, मुझे माफ़ी दो—मुझे माफ़ी दो।"

"देता हूँ बेटा; पर किस बात की मेरे लाल ?"

"तुम केवल मुझे माफ़ी दो।"

"अच्छा माफ़ी दी।"

"सच ?"

"माफ़ी देता हूँ।"

"सच ?"

"शक क्या है ? माफ़ी देता हूँ !"

बच्चे ने तीन बार पिता से वचन हराया और दम तोड़ दी।

आदमी ने कहा—आज उसी की बरात जा रही है !

"उसी की बरात जा रही है !—हूँ !"

छोटी-सी ज़िन्दगी !—और उसी में जन्म और मरण दो सगे भाइयों की तरह जीवन को भुजाओं से लपेटे हुए हैं। एक ही समय इतनी हँसी और रोदन ! अमृत और विष ! लय और प्रलय ! आनन्द और वेदना ! सुख और दुःख !

बच्चे ने कहा था—'माँ, गिन्दी भूखी है, जरा दूध पिला दे !" पर यह क्यों ? इसका कारण !

बच्चे ने पिता से कहा था—"पिताजी माफ़ी दो।" पर, यह क्यों ? यह माफ़ी किस बात की ? इतनी दृढ़ता के साथ, इतनी दीनता के साथ यह माफ़ी क्यों ?

बच्चे ने कहा था—"माँ, गिन्दी भूखी है !" बच्चे को भी जैसे अपनी याद हो आई। बहुत पुरानी बात—जैसे एक बहुत समय से भूली हुई बात—उसे स्मरण

हो आई। वह भी ऐसा ही पैदा हुआ था। पैदा होते ही उसने रोकर कहा था—"कहाँ—कहाँ!"

"कहाँ—कहाँ"—यह कहाँ आ गया? कहाँ था—कहाँ से कहाँ आ गया! यह एक बहुत दिनों की—पिछले जन्म की—भूली हुई बात उसे स्मरण हो आई। उसके बाद इतने वर्षों तक उसका वाणी-विहीन—जिह्वाहीन—अभ्यन्तर इसी समस्या को सुलझाने का यत्न कर रहा था। उसने पिता से माफ़ी माँगी; क्योंकि वह भूल में था—उसका उद्देश दूसरा था। वह कहाँ का कहाँ आ गया! इस बात से आकु॰ होकर, वेदना-विद्ध होकर उसने माफ़ी माँगो। उसने जाने की ठान ली; इसलिए उसने माफ़ी माँगो। पिछले जन्म के, मानो किसी महान् उद्देश्य को पूरा करने की—और उसे पूरा कर डालने की—प्रतिज्ञा की बात उसे स्मरण हो आई; इसलिए उसने बहुत थोड़े से केवल एक शब्द में कहा—"मुझे माफ़ी दो।"

आज उसी एक अज्ञात महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए—वह इतने आडम्बर के साथ, इतने ठाट-बाट के साथ, इतने बाजे-गाजे के साथ निकला है। बाजे की आवाज में और आवाज की प्रत्येक ध्वनि में, जैसे उसी महान् उद्देश्य की भावना—उसका रहस्य और उसका आनन्द ध्वनित हो रहा है। उसका उद्देश्य महान् है; इसलिए सब लोग—अमीर और ग़रीब, साधू और संन्यासी, बच्चे और बूढ़े उसका साथ दे रहे हैं। उसके साथ पढ़नेवाले बच्चे आगे-आगे चल रहे हैं—उसका साथ दे रहे हैं। बालकों में उत्साह है—सब लोगों में उत्साह है!

इसीलिए क्या बरात में इतना ठाट-बाट था? छोटा-सा बनरा नई दुलहिन को लेने के लिए जा रहा है, इसीलिए क्या नव-वधुओं ने आनन्द में चूर होकर गाया होगा—

कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा!
तोरी माई को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी जीजी को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
तोरी भौजी को भरोसो मोहे नहियाँ रे बनरा!
कौन के भरोसे घर छोड़ो रे बनरा!!

किस आनन्द में मग्न होकर वधुओं ने गाया होगा—बनरा, तू नई दुलहिन को लेने के लिए जा रहा है। माई का भरोसा नहीं है, जीजी का भरोसा नहीं है, भौजी का भरोसा नहीं है—किसके भरोसे घर छोड़कर जा रहा है? इसलिए तू जल्दी जा, और दुलहिन को लेकर आ जा।

प्रेम-सङ्गिनी के बिना जीवन अपूर्ण है! जीवन को पूर्ण करने के लिए वह प्रेम-सङ्गिनी को व्याहने के लिए निकला है। उसकी सङ्गिनी कहाँ है?—किस देश में? कब मिलेगी? कितने जन्मों में मिलेगी?

उसकी प्रेमिका कोई दैवी वस्तु है—कोई देवी है, इसीलिए वह इतने ठाट-बाट के साथ—इतने आनन्द के साथ निकला है। अब जब वह अपनी दुलहिन को लेकर आयेगा, तभी अपनी माँ को, पिता को, जीजी को और भौजी को अपना मुखड़ा दिखायेगा। जब तक उसकी साध पूरी न होगी, तब तक वह कैसे लौटेगा? जब तक उसका अतृप्त जीवन प्रेमिका के स्निग्ध रस से सिक्त न हो जायेगा, तब तक उसका जीवन आनन्द और सौन्दर्य से कैसे भर सकेगा?

एक आदमी ने आगे बढ़कर बाजेवाले से कहा—बैण्ड ज़रा जोर से बजा। पैसा क्या मुफ्त का लेगा!

बैण्ड की आवाज़ ज़ोर से गूँजने लगी।

—मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा।

संजोगीलाल



दुखनी ने कहा—सोमरी, तुम्हारी तकदीर खुल गई !

सोमरी ने आश्चर्य से पूछा—क्या बात है बहन ?

दुखनी—क्या तुम्हें नहीं मालूम ?

सोमरी—कुछ भी नहीं !

दुखनी का ब्याह बारह साल पहले पास ही के एक गाँव में हुआ था। उस वक्त उसकी उम्र कुल पाँच साल की थी। लड़का उस वक्त भी उससे कुछ दबता था; पर लोगों ने कहा—आगे चलकर बढ़ जायगा। दुखनी का उससे ब्याह हो गया; पर वह लड़का आज सत्रह साल का होने पर भी तेरह-चौदह का जँचता था और दुखनी पूरी जवान हो गई थी। इसलिये उसके माँ-बाप ने अब दूसरी जगह उसकी सगाई करने का निश्चय किया था।

दुखनी—अरे, तुझे मालूम ही नहीं ! तेरी सगाई एक अच्छे घर होने जा रही है।

सोमरी का मुँह ऐसा हो गया, जैसे किसी ने उसको थप्पड़ मार दिया हो। बोली—बहन, तुम क्या कहती हो ? क्या इतना भी नहीं जानतीं, कि सगाई किसकी होती है ?

दुखनी—जानती क्यों नहीं; पर जब दूल्हा छोटा—बहुत छोटा—है, तो उसका रहना, न रहने के बराबर ही है।

सोमरी—यह कैसी बात ! रहना न रहने के बराबर कैसे हो सकता है ? क्या छोटा कभी बड़ा न होगा ?

दुखनी—होगा, मगर जब होगा तब होगा। अभी तो नहीं है। मुझे ही नहीं देखती, तुमसे दो साल छोटी हूँ और दो बच्चों की माँ हो गई ! क्या तुम्हारी इच्छा नहीं होती, कि गोद में बच्चा खेले ?

सोमरी—(सकुचाकर) बहन, यह तो अपनी तकदीर है। जिसकी तकदीर में जो लिखा होता है, वही होता है।

दुखनी—ठीक है; मगर बहन, जिसमें अपना वश है, जिसके करने से हौसला पूरा होता है, किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती; उसे क्यों न किया जाय ? हमारी बिरादरी में सगाई का रिवाज है ही। पुरुष न रहे तो स्त्री सगाई जाय और स्त्री न रहे, तो पुरुष सगाई लावे। यहाँ तक तो ठीक है; पर तुम तो यह भी देख रही हो, कि पुरुष जिन्दा रहता है, और कहीं गरीब होता है, तो उसकी स्त्री को कोई बिरादरी का अमीर उड़ा ले जाता है और बिरादरी को भोज देकर चलता हो जाता है। बहुत करता है, दूल्हा छड़ैती ले लेता है। जब इतनी बात है, तो फिर तुम्हें क्या हर्ज ? तुम्हारे माँ-बाप तो कुछ बेजा कर नहीं रहे हैं। लड़केवाले से तीन-चार बरस से तकाजा कर रहे हैं; मगर जब वह सुनता ही नहीं तो क्या करें। कब तक तुम्हें अपने गले में बाँधे रहें। फिर उनकी भी तो इच्छा है कि नाती का मुँह देखें !

सोमरी—समझ गई। मालूम होता है, अम्माँ ने तुम्हें इसीलिए मेरे पास भेजा है। बहन, मैं तुमसे सच कहती हूँ, यह कभी न होगा। जाऊँगी तो उसी घर, नहीं तो कहीं जाऊँगी ही नहीं।

दुखनी—वहाँ कैसे जाओगी ? वहाँ तो छड़ैती वगैरहः दे दिवा कर तय कर लिया गया। तुम्हारी सगाई भी ऊँचेगाँव के नन्हकू महतो के लड़के के साथ ठीक हो गई। चार हल की खेती होती है। चार-चार गाय-भैसें हर वक्त लगती रहती हैं। दस-पाँच मजदूरे काम करते रहते हैं। समझ लो, रानी बनी रहोगी।

सोमरी—कुछ भी हो बहन, इस जिन्दगी में तो यह नहीं होने का !

(२)

जब निहोरी को मालूम हुआ, कि उसके बाप ने उसकी विवाहिता स्त्री से सम्बन्ध-विच्छेद करा कर छड़ैती के रुपए ले लिये, तो उसे बड़ा ही मार्मिक कष्ट हुआ। सोचा—मित्रों में कैसे मुँह दिखाएगा। मर्द नहीं, हिजड़ा है; तभी तो जीते-जी मेहरिया चली गई! सब यही कहेंगे। इस जीने से तो मरना ही अच्छा है।

निहोरी ने कम्बल उठाया और लाठी सँभाली। पूर्व की ओर बढ़ा। सोचा—कहीं चलकर काम-धन्धा करके जीवन-निर्वाह करूँगा—अब यहाँ न रहूँगा।

चलते-चलते दोपहर हो गया। निहोरी इतना तेज और दूर कभी न चला था। ज़रूरत ही न पड़ी थी। रूमाल में गुड़ की दो-तीन ढेलियाँ बँधी थीं, खाकर पुर चलते हुए कुएँ पर पानी पिया। कुएँ से कुछ दूर पर एक बरगद का वृक्ष दिखाई पड़ा। सोचा—वहीं विश्राम करके आगे बढ़ूँगा। जहाँ शाम होगी, रात गुज़ार लूँगा। बड़े-बड़े दाता पड़े हुए हैं। और यह मुहर और पगरे तो पहने ही हुए हूँ, यदि दोनों को बेचकर खाना चाहूँगा, तो कई महीने गुजर जायँगे। किसी की परवा क्या है। फिर मोटा-पतला कोई काम मिल ही जायगा। आखिर यहीं पर क्या करता था, झौआ ही न ढोता था! क्या उधर ढोने को कहीं न मिलेगा? कम्बल बिछाया और लाठी सिरहाने रखकर खर्राटे लेने लगा।

(३)

जब सोमरी से दुखनी हारकर चली गई, तो सोमरी बड़े विचार में पड़ गई। सोचा—यहाँ अब कुशल नहीं। क्या ससुराल चली चलूँ; मगर जब उन लोगों ने छड़ैती ले ली है, तो क्यों रहने देंगे। फिर किसी तरह रही भी, तो नन्हकू मुखिया क्यों छोड़ेंगे? बड़ी फजीहत होगी। क्या कुएँ-तालाब में डूब मरूँ? नहीं, यह भी ठीक नहीं। हज़ार बरस तक चुड़ैल होना पड़ेगा। कहीं एक बार वह मिल जाते, तो उन्हें लेकर कहीं चली चलती; किन्तु कहीं इस पर वे राजी न हों तो? क्या ही अच्छा हो! यदि हम दोनों सामने हों! तो न वे मुझे पहचानें और न मैं उन्हें। शादी क्या हुई थी, गुड़ियों का खेल था! शादी के वक्त माँ-बाप ने जैसे खुशियाँ मनाईं, वैसे ही जवानी-भर अब मुझे रोना है। अम्माँ भी मुझे कितनी मूर्खा समझती हैं। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा, कि दूसरी औरतें मुझे क्या समझेंगी। कहेंगी—बड़ी दुष्टा है, जीते-जी पुरुष को छोड़ आई है!

उसे उस घर में एक क्षण-भर रहना भी असह्य हो गया। सबेरा होते ही सोमरी घर से निकल पड़ी।

चलते-चलते जब दोपहर हो गया, तो वह भी वहाँ पहुँची, जहाँ निहोरी खर्राटे ले रहा था। सोमरी ने देखा, कि एक लड़का सोया हुआ है और उसके पाँव के पास ही एक विषैला साँप पहुँच रहा है। पहले उसकी दृष्टि साँप पर ही पड़ी। वह काँप उठी। भगवन्, यह साँप मुझे क्यों न डसे, उस बेचारे पर क्यों टूटा है? कुछ भी हो, चाहे मैं मर ही जाऊँ; पर उस लड़के को अवश्य बचा लूँगी। ठीक तो है, हीले रोजी बहाने मौत। यही तो मेरी मौत है। दौड़कर साँप की पूँछ पकड़कर जोर से दूर फेंका और चिल्ला उठी—साँप-साँप! काँपने लगी। यहाँ तक कि बेहोश हो गई। निहोरी एकाएक 'साँप-साँप' की आवाज़ सुनकर जाग पड़ा। आँखें खुलीं, तो देखा-सामने एक नौजवान स्त्री बेहोश पड़ी है और दूर से उसकी तरफ एक साँप तेजी से सनसनाता हुआ चला आ रहा है। उसने लाठी सँभाली और साँप से उलझ गया। इतने में सोमरी की बेहोशी भी दूर हो गई। उसने देखा, कि निहोरी साँप पर लाठियों के वार कर रहा है और साँप को भागने की जगह नहीं मिल रही है। सोमरी ने कहा—ऐ भैया, जाने भी दो। साँप को क्यों मारते हो? वह बे-ज़बान क्या जानता है?

निहोरी—तुम क्या जानो, साँप को देखकर छोड़ना नहीं चाहिए। यह मनुष्यों का शत्रु है, काल है। इसे अवश्य जान से मार डालना चाहिए।

सोमरी—हाँ, यह तो ठीक है; मगर अब क्यों लाठी चलाते हो? वह देखो न, उसका मस्तक फट गया, मुँह भी कुचल गया! अब मरे

को क्या मारते हो ? अब उसे उठाकर अभी उस नागफनी की झाड़ी में फेंक दो, नहीं तो रास्ते में देखकर लोग डरेंगे।

निहोरी—ठीक है, मैं अभी फेंके देता हूँ ; लेकिन जरा तुम ठहरो। मैं कुछ बातें करूँगा।

सोमरी ने मन-ही-मन कहा—मैं कहाँ जा रही थी और कहाँ फँस गई। मैंने तो साँप को अपना काल समझा था ; किन्तु मैं ही उसका काल हो गई। ईश्वर की लीला को कौन समझता है !

निहोरी साँप को फेंककर आया तो पूछा—तुम कहाँ से आ निकलीं ? क्या यहीं करीब ही तुम्हारा मकान है ? यह साँप तुमने कहाँ और कैसे देखा ? मैं समझता हूँ, यह मुझे डसने आया था ?

सोमरी ने कहा—पहले तुम तो बताओ, यहाँ खर्राटे क्यों ले रहे थे ? क्या तुम्हारा मकान यहाँ नहीं है ?

निहोरी ने कुछ सोच-समझकर सब बातें संक्षेप में बतला दीं और साथ ही यह भी कहा, कि तुम्हारा आना अच्छा न हुआ। यदि साँप काट खाता, तो मेरी बन आती।

"अरे भई, यह क्या करती हो ? मेरा पैर छोड़ो क्या मैं तुम्हारा भाई हूँ ? छोड़ो छोड़ो अरे, तुम रोने क्यों लगीं ? अजब मामला है। कुछ कहो भी तो ?"

सोमरी ने भी सब बातें बता दीं। सुनकर निहोरी परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। ईश्वरीय करतूत अजब होती है। निहोरी ने जब सोमरी को पूर्णतः देखा और सोमरी ने निहोरी को, तो दोनों एक क्षण के लिए किंकर्तव्य विमूढ़ से मौन हो रहे। फिर निहोरी ने कहा—सब कुछ तो अच्छा हुआ ; पर अब दोनों साथ कैसे रहेंगे ? कोई कैसे मानेगा, कि तुम मेरी स्त्री हो ?

सोमरी ने हँसकर कहा—कह देना मेरी भौजाई है।

(४)

निहोरी ने एक रेशमी साड़ी सोमरी को देते हुए कहा—बंगाली बाबू ने तुम्हें यह साड़ी बखशिश में दी है ?

सोमरी—और तुम्हें ?

निहोरी—एक रेशमी कोट, दुपट्टा और पगड़ी।

सोमरी—बेटी की बिदाई हो गई न ? परमात्मा जोड़ी को जुग-जुग जिलाए।

निहोरी—अच्छा, जरा साड़ी पहनो न, सँभालकर रखती क्यों हो ?

सोमरी ने लजाते हुए कहा—रहने दो, उसे बरही पर पहनूँगी !

निहोरी—यह भी ठीक सोचा। अच्छा, एक बात पूछूँ, बताओगी ?

सोमरी—कौन बात ?

निहोरी—यही कि यदि लड़की हुई, तो क्या नाम रखोगी ?

सोमरी—तुम भी कैसे आदमी हो ! पहले लड़की का नाम लेते हो, लड़की क्यों होगी, लड़का होगा !

निहोरी—मान लो, लड़का ही हुआ, तो क्या नाम रखोगी ?

सोमरी—यह तो तुम बताओगे !

निहोरी—मैं तो संजोगी नाम अच्छा समझता हूँ। तुम्हें पसन्द है ?

सोमरी—बड़ा अच्छा नाम है, मुझे भी बड़ा भला लगता है।

निहोरी—अच्छा, अब मान लो लड़की हुई, तो तुम क्या नाम रखोगी ?

सोमरी—तुम तो तंग करते हो। भई, मैं तो सुखदेई नाम रखती !

निहोरी—वाह-वाह ! बहुत प्यारा नाम है।

निहोरी—अब यह बताओ। घर चलने का कब इरादा है ?

सोमरी—मेरी तो राय है, कि जब अन्न-प्राशन कराना होगा, छुट्टी माँगकर चले चलेंगे ; मगर यह तो बताओ, जब तुम घर चलोगे, तो बग़ीचा कौन सँभालेगा ? देखते नहीं हो, बंगाली बाबू तुम पर कितना विश्वास रखते हैं। सच भी है, जब तुम घर चलोगे, तो बगीचा उजड़ जायगा !

निहोरी—इस बगीचे से तो मेरा भी मन लग

गया है। जल्दी ही लौट आऊँगा। केवल एक बार माँ-बाप को देखने की इच्छा है। सोचो तो सही, घर से आए आठ बरस हो गए, कभी एक पत्र भी तो नहीं लिखा।

सोमरी—एक पत्र क्यों नहीं लिख देते?

निहोरी—हिन्दी तो मैं जानता नहीं। बँगला वहाँ कौन पढ़कर बताएगा? फिर किसी से लिखवा ही दूँ, तो क्या, अब तो यही इच्छा होती है, कि अब घर चलूँ।

सोमरी—अच्छी बात है।

(५)

जिस दिन से निहोरी ने घर छोड़ा, उसकी माँ जलबासी रात-दिन रोया करती है। गाँव के छोटे-बड़े बहुत समझाते—निहोरी कहीं आराम से होगा, बहुत जल्द आएगा; मगर जलबासी को कुछ धैर्य न होता। बहोरी भी बेटे की चिन्ता में रात-दिन डूबा रहता है। न खाने-पीने की सुध, न काम-धन्दे करने का हौसला। उसका कोई परिचित स्थान न छूटा, जहाँ वह दस बार निहोरी को ढूँढ़ने न गया हो। जब कभी कोई कलकत्ता, बम्बई या किसी दूसरे शहर से लौटता, तो बेचारा दौड़ा हुआ जाता और पूछता—कहीं निहोरी भी दिखाई पड़ा था? जो लोग सहृदय होते, बहोरी की मुखाकृति देखकर झूठे ही कहते—हाँ दिखाई पड़ा था। बड़े मजे में है। जल्द ही आएगा; लेकिन पता मालूम नहीं। बताया तो था; मगर भूल गया। इस पर बहोरी कहता—भैया, मैं आने-जाने का खर्च देता हूँ, नहीं साथ ही चलता हूँ, चलो भैया को दिखा दो। आगत सहृदय फिर सान्त्वना देते—अच्छा-अच्छा, अबकी मैं चलूँगा, तो साथ लेता चलूँगा। नहीं, मेरा एक साथी वहाँ है, उसे चिट्ठी लिखे देता हूँ, वह निहोरी को भेज देगा।

इन बातों से जलबासी और बहोरी को कुछ धैर्य हो जाता। बहोरी ने कर्ज लेकर निहोरी के लिए एक गाय मँगाई थी, कि कुछ खा-पी लेगा तो सयाना हो जायगा। गौना लाना है; किन्तु गाय गर्भिणी थी, महीने-आध महीने की देर थी, कि निहोरी चला गया। अब गाय की कौन खोज-खबर ले! निहोरी की कभी इच्छा होती, कि जिस महाजन से रुपए लिए हैं, उसे गाय ही दे दे या इसे बेचकर दाम दे दे; मगर जब जलबासी रोकर कहती—भैया आया ही चाहता है, काहे को निकालोगे। तब वह चुप हो जाता।

गाँव के शरारती लड़के आकर जलबासी से कहते—बुढ़िया, निहोरी भैया आ रहे हैं। वह पक्के कुएँ पर बैठे हैं, तुम्हें बुलाते हैं। बुढ़िया को विश्वास हो जाता, दौड़कर जाती; किन्तु निराश होकर लौट आती। खाली हाथ देखकर लड़के हँसते, तालियाँ बजाते; किन्तु जलबासी सिवा रोने के कुछ न करती।

गाय की सेवा अच्छी न हुई, ब्याने के पहले ही बहुत कमजोर हो गई थी; अतः ब्याते समय पेट से बच्चा न निकला। गाय मर गई। इस पर बुढ़िया बहुत रोई, निहोरी को दूध कहाँ से लाऊँगी। बहोरी पर फिक्र सवार हो गई, महाजन के रुपए कैसे दिये जायँगे?

बुढ़िया इतनी सीधी और विश्वास करनेवाली थी, कि लड़कों के लिए खिलौना—तमाशा बन गई थी। सब उसे चिढ़ाया करते। आखिर, वह चिड़चिड़ी हो गई। लड़के उसे बहुत बुरे मालूम होने लगे। यों ही कोई लड़का उसके सामने आता और कुछ कहता भी न तो भी वह पचासों बातें कहती। शरारती लड़कों को अब और भी मसाला मिल गया।

कुढ़ते-कुढ़ते जलबासी और बहोरी अंधे हो चले थे। बहोरी बुढ़ापे में भी दो मन का बोझ चार कोस तक ले जानेवाला था; किन्तु अब पाँच सेर एक पग ले जाने में असमर्थ है। शक्ति आवे कहाँ से! एक तो फिक्र दूसरे फाका!

उससे मिहनत-मजदूरी न हो सकती थी। गाँव के जमींदार के यहाँ पंखा खींचने का काम करने लगा। इसी से दोनों के खाने-पीने का काम चलने लगा। बहोरी जब कभी किसी से मिलता, निहोरी की चर्चा के सिवा कोई बात न करता, वैसे ही जलबासी

जब किसी से मिलती, निहोरी के नाम पर ही रोती।

कभी-कभी जलबासी को अपने भाग्य पर बड़ा दुःख होता। उसके सामने की स्त्रियों ने पोते-नाती देख लिये। वही बड़ी अभागिनी है। सोना मिलकर खो गया। क्या कभी फिर मिलेगा? कौए जब उसके दरवाजे पर आते, तो सोचती—भैया आ रहा है तभी तो कौआ सन्देश लेकर आया है! कहती—कौआ गुसाईं, भैया आएँगे तो दूध-भात खिलाऊँगी। प्रति दिन आधी रात तक बहोरी और जलबासी निहोरी के नाम पर तड़पा करते।

जब कभी कोई आकर कहता—रेल लड़ गई। दोनों काँप उठते, कहीं भैया तो उस पर सवार नहीं हुए! नाव डूब गई, बीसों आदमी डूब मरे। भगवान् भैया की रक्षा करना। मिल में आग लग गई, पचासों आदमी जल गए। रोमांच हो जाता, बच्चा वहाँ तो काम नहीं करता। लाठी चल गई, हजारों घायल हैं। भैया न-जाने कहाँ कैसे होगा। हर वक्त दोनों इन्हीं चिन्ताओं में शरीर को घुलाते। उन दोनों को जिन्होंने चार साल पहले देखा था, शायद पहचान भी न सकते।

सूर्योदय हो रहा था। बहोरी खाट पर कराह रहा था, उसे कई दिनों से ज्वर आ रहा था। जलबासी उसे उठाकर दतौन करवा रही थी। बहोरी ने दतौन करते हुए कहा—निहोरी की माँ, आज रात को मैंने अजब सपना देखा। जैसे निहोरी आ गया है, उसके साथ सोमरी भी है और सोमरी की गोद में एक छः महीने का बालक है। ज्यों ही निहोरी ने उस बच्चे को मेरी गोद में देना चाहा, कि मेरी आँख खुल गई। क्या कहूँ, पछता कर रह गया।

जलबासी—किस समय देखा है?

बहोरी—सबेरा होते-होते!

जलबासी—इतनी तकदीर हम लोगों की कहाँ। पुराने लोग कहा करते हैं, कि सबेरे के सपने भूठे नहीं होते, अब यह भी भूठे होने लगे। यों तो कल से मेरी भी बाईं आँख फड़क रही है; किन्तु इससे क्या होता है।

बहोरी—एक बात तुमसे कहूँ, आज मेरा दिल कहता है, भैया आ रहा है? देखो न, आज कई कौए आए।

जलबासी—तुम भी खूब हो। पंडित हो न?

दोनों इसी प्रकार की बातें कर रहे थे, कि दरवाजे पर एक एक्का खड़ा हो गया। चौंक उठे।

निहोरी बहोरी के पाँव पर गिर पड़ा और सोमरी जलबासी से गले मिलकर रोने लगी। इस रुदन में संजोगी भी संयोग दे रहा था।

बात बिजली की तरह गाँव में फैल गई। मिलनेवालों की भीड़ लग गई।

(६)

जगरूप ने कहा—मन्ना की माँ, मुखिया बड़ा जोर दे रहे हैं, कि अब की मन्ना का ब्याह कर लो, नहीं तो आठ बरस के लिए रुक जायगा। दुआह लड़का है, फिर सगाई ही न करनी पड़ेगी।

जकली—जैसा समझो, मेरी तबीयत तो नहीं करती। देख और भोग तो रहे हो। सोमरी की वह गति हुई, मन्ना की यह गति। गाँव में जब चार औरतें बैठती हैं, तो यही चर्चा रहती है—सोमरी किसी को लेकर निकल गई। यह कोई नहीं कहती, कि कहीं डूब मरी।

जगरूप—इस बात को भूल जाओ।

जकली—भूली ही हूँ। लड़की है न! जब लड़का होता, तो मालूम होता। मर्दों को लड़की की जुदाई क्या अखरेगी, वह तो मैं ही जानती हूँ। लोक-लाज से रोती नहीं हूँ, इसीसे समझते हो........

जगरूप—अच्छा भाई, सोमरी तुम्हें प्राणों से प्यारी थी और मेरी वैरी, अब माना।

जकली—अरे उधर तो देखो, कौन पुकार रहा है?

जगरूप घर से बाहर निकला। देखा ऊँचेगाँव का नाई है। काँप उठा—क्या है भई?

नाई—महतो राम-राम!

जगरूप—राम-राम भई, आज तुम कैसे आए! बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं।

नाई—हाँ महतो, भगवान की मर्जी है। आता

कहाँ से, जब कभी मौका हाथ लगता तब न ?

जगरूप—हाँ भई, बिना हीले से कहीं जाते नहीं बनता। बहोरी महतो का क्या हाल-चाल है ? बेचारे निहोरी के लिए तड़प रहे होंगे। हम दोनों ही अभागे हैं। मौत नहीं आती !

नाई—महतो, वाह, रो क्या रहे हैं। यह नहीं कहते, कि आप लोगों की तरह भाग्यशाली कोई नहीं है।

जगरूप—क्या बात करते हो भई !

नाई—लाइए, बखशिश दीजिए, मैं लोचना लेकर आया हूँ।

जगरूप—लोचना ? भई यह किसकी लोचना ?

लोचना का नाम सुनते ही जकली भी बाहर निकल पड़ी। पूछा—कैसी लोचना ?

नाई—सोमरी को छोकड़ा पैदा हुआ है।

जगरूप—क्या स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ।

नाई—नहीं महतो सच है।

नाई ने सुनी हुई सब बातें बतला दीं। जकली और जगरूप का हृदय बल्लियों उछलने लगा।

जकली ने गाँव-भर की बड़ी बूढ़ियों को बुलाकर सोहिले गवाने लगी। ब्राह्मणियों को कई रुपए के पैसे बाँटे।

जगरूप ने एक नयी परात भरकर गेहूँ नाई को दिया और एक रुपया दक्षिणा।

(७)

वसंतपंचमी का दिन है। सोमरी सायत करने आई है। दुखनी भी अपने लड़के की सायत करने आई है।

दुखनी—सोमरी बहन, तुम बड़ी हिम्मतवाली हो ? याद है आज नवाँ वसन्त है। इसी दिन तुमसे और मुझसे बातें हुई थीं।

सोमरी—हाँ, ठीक है। सात साल के बाद तो मैं लौटी ही हूँ।

दुखनी—क्या बहनोई साहब नहीं आएँगे ?

सोमरी चुप रही।

दुखनी—बहन, आज मुझे इतनी खुशी है जितनी लल्लन की शादी में भी न हुई थी।

सोमरी—यह कौथा है ?

दुखनी—पाँचवाँ लड़का है। बहन, मैं बड़ी अभागिनी हूँ। अब तक दो लाल खा गई। भला इसका नाम क्या रखा है ?

सोमरी—बाप ने संजोगी रखा है।

दुखनी—बड़ा ही अच्छा नाम है। संयोग की बात तो थी ही, नहीं तो न-जाने दोनों की क्या दशा होती !

सोमरी—ठीक है बहन !

दुखनी—परमात्मा करे, संजोगी के बाद सँभोगी आवे !

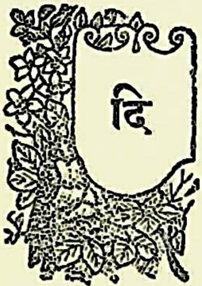
सोमरी हँस पड़ी।

दुखनी—बहन, संजोगी के आगे मेरी ओर से 'लाल' और बढ़ा दो। अब से मैं कहा करूँगी—संजोगीलाल !

—गुरुराम विश्वकर्मा,
पुरुषोत्तमराम।



विरक्ति



दिन-भर वन में घूमते-घूमते हताश होकर एक व्याधा घर लौट रहा था, उस दिन उसे कोई शिकार हाथ न लगा।

जाड़े का दिन था। सन्-सन् करके हवा चल रही थी। परिश्रम से कातर, भूख-प्यास से बेचैन हो रहा था। ठण्डी हवा से अंग-प्रत्यंग में कँपकँपी समा रही थी! वह अवसन्न होती हुई देह को लेकर किसी तरह घर को वापस आ रहा था।

रास्ते में एक नदी पड़ी। उसके गँदले जल में हंस का एक जोड़ा बहता जा रहा था। उनके कंठ का कलरव नदी के कलकल शब्द के साथ मिल रहा था।

हंस का मारना बहुत निर्दयता का कार्य समझा जाता है; लेकिन यह सोचने से काम नहीं चल सकता था, व्याधे की भूख प्रबल हो उठी थी।

व्याधे को आते देखकर दोनों हंस प्राण-पण से भागे; लेकिन एक हंस उसके निशाने का शिकार बन ही गया। वहाँ का जल एकदम लाल हो उठा।

रक्त की एक ताज़ी रेखा नदी के बहाव की ओर दौड़ गई। उसने व्याधे के पैर को स्पर्श किया। व्याधे ने काँपते हुए आँखें मूँद लीं।

(२)

हंस के मांस से किसी तरह भूख मिटाकर वह रात में सो रहा था। स्वप्न देखा, कि एक अत्यन्त सुन्दरी बालिका उसके सिरहाने की ओर खड़ी है। कमल के समान उसका चेहरा कुम्हलाया हुआ था। उसकी आँखों में आँसू थे, वह लंबी साँसें छोड़ रही थी। उसे देखकर व्याधे को करुणा हो आई।

वह बालिका उच्छ्वसित होकर रो रही थी। उसको रोते देखकर उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये।

वह बालिका रोती हुई कहने लगी—हाय निर्दयी! तूने क्या ग़ज़ब ढाया! उसने तेरा क्या बिगाड़ा था, जो उसकी जान ली? नदी के तट पर हम लोग क्या ही आनंद-पूर्वक रहते थे, तूने उस सुख को क्यों नष्ट कर डाला? हाय! मुझे भी साथ ही क्यों न मार डाला?

व्याधे को ऐसा जान पड़ा, मानो एक-एक वाक्य, विषधर सर्प बनकर उसे डस रहा है। वह पीड़ा से चिल्ला उठा—ठहरो-ठहरो, और कुछ न कहो।

तब बालिका धीरे-धीरे अस्पष्ट स्वर में कहने लगी—मैं ही उसे नदी में बुला लाई थी। हाय! उसे क्योंकर लाई थी? कभी उसे छोड़कर नहीं रहती थी, आज कितनी देर से वह मेरे पास नहीं है, आह! यह बात मन में भी नहीं आती थी।

इसके बाद उच्च स्वर में बोली—निर्दयी व्याधे, तुम इस पर ज़रा भी ख़याल नहीं करते हो, कि तुमने मेरी कैसी दशा कर डाली है—तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। कल सवेरे नदी के किनारे जाकर देखना, कि मेरी कैसी बुरी गत है।

बालिका धीरे-धीरे चली गई।

व्याधे की नींद भी टूट गई। उसने जगकर देखा—आँसुओं से बिछौना भींगा हुआ है। उसने मन में सोचा, कि मेरी आँखों से कभी आँसू नहीं गिरे, यह उसी बालिका की आँखों से गिरे हैं। उसका हृदय पश्चात्ताप की आग से जलने लगा। उसके कानों पर गूँजने लगा—कल सवेरे नदी के किनारे देखना, कि मेरी कैसी दशा है। व्याधा इस बात को न भूल सका।

आज उसके दिल में यह करुणा की बाढ़ कैसी! वह तो कभी किसी के लिये दुखी नहीं हुआ—कभी किसी के दुःख से वह घबड़ाया नहीं—स्वप्न में देखी एक बालिका के कष्ट से उसका हृदय क्यों रो रहा है?

(३)

व्याधा तड़के नदी के तीर गया। आज उसके हाथ में धनुष और बाण न थे।

नदी के गँदले पानी में एक हंस बहा आ रहा था। कल सन्ध्या-समय उसने दो हंस एकसाथ देखे थे। यह बात उसके हृदय से निकलकर नस-नस में व्याप्त होने लगी। इस उत्तेजना से वह पागल हो उठा।

हंस बहते-बहते उसी के पास आने लगा। कल की तरह उसके कंठ में वह कलरव न था—नदी के जल में वह कलकल शब्द भी न था—व्याधे को वैसी भूख भी न थी।

व्याधे को देखकर हंस भाग जाते हैं; किन्तु इस समय वह निर्भय होकर उसकी ओर बढ़ा आ रहा था। व्याधा अवाक् हो गया।

हंस व्याधे के पैरों के पास आकर स्थिर होकर खड़ा हो गया। इसके बाद उसकी आँखों के सामने अपनी चोंच से अपनी छाती एकदम विदीर्ण कर डाली! व्याधे ने यह देखकर आँखें मूँद लीं!

धनुष-बाण वह घर छोड़ आया था—उस घर को वह फिर न लौटा। वहीं से विरक्त होकर चला गया।*

—गणेश पाण्डेय।

यह चित्र

अन्यमनस्क होकर मैंने तेरी इस विशाल चित्र-शाला में अपनी अनुभव-शून्य तूलिका से चित्रपट को रँगना आरम्भ कर दिया।

कौन जाने कितने चित्र बन पाए और कितने बिगड़ गए?

मेरे हृदय में भाव नहीं थे; परन्तु तेरी आज्ञा का पालन करने की लालसा थी।

मेरी तूलिका चित्रपट पर थी; परन्तु मेरा मन धूल के कणों में छटपटा रहा था।

कौन जाने कब प्रभात की संध्या हुई, और कब संध्या का उदय। मैं तो अपनी तूलिका को रंग की प्यालियों में डुबोकर चित्रपट पर फेर रहा था।

चित्रपट पर कभी धूल में सने हुए प्रासाद खिंच जाते थे। कभी भविष्य की अस्पष्ट छाया फैल जाती थी; परन्तु मेरा हृदय न-जाने कहाँ भटक रहा था?

संध्या के ढलते ही तुमने चित्र-शाला में प्रवेश किया। मैंने अपने सब विफल प्रयत्न तुम्हारे सामने फेंक दिए। कहा—"माँ, मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा।"

तुम मुस्कराने लगीं। संध्या की सुनहली किरणें तुम्हारे मुख पर पड़ रही थीं। तुम्हारी मुस्कराहट मेरे चित्रों में फैल गई।

अभी चित्र गीले हैं। जब सूख जाएँ, तुम अपनी चित्रशाला में टाँग देना।

—शान्तिप्रसाद वर्मा।

---

* जापानी कहानी।

कविता पर कुछ विचार



संसार में जहाँ मनुष्य आवश्यकताओं की परवशता में हैरान रहता है, वहाँ सौंदर्य और आनन्द की लोल लहरों से भी घिरा है। पुरानी कहावत है, कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। बहुत ठीक भी है; क्योंकि संसार के प्रभात से ही मनुष्य भौतिक नियमों को खोज-खोजकर शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में, उनकी सहायता लेने की चेष्टा करता रहा है। जब तक बुद्धि का इतना विकास न हुआ था, कि मनुष्य समझ सके, कि प्रकृति के भीतर क्या रहस्य है, वह इसकी पूजा करता रहा। युगों तक मनुष्य यही न समझ सका कि मानव-बुद्धि इन भयानक प्रकृति शक्तियों से लाखों गुना शक्तिशाली है। वह इनसे बच्चों के समान डरता रहा।

विज्ञान ने मनुष्य को सिखला दिया है, कि प्रकृति के नियम कठोर हैं। मानव हृदय में, भावों—स्नेह, क्षोभ, करुणा आदि—से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य समझता है, कि बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् भिन्न हैं, फिर भी वह प्रकृति-सम्बन्धी ज्ञान से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ, न होता है। प्रकृति में भी वह हृदय के भावों का समावेश करता जाता है। भूख-प्यास ऐसी आवश्यकताओं के होते हुए भी, जो सभी जीवों में समान हैं, मनुष्य अपने को 'आत्मा' समझता है, चाहे कुछ काल के लिये शरीर के बन्धन में ही सही। विश्व को मनुष्य अपने ही सूक्ष्म शरीर का विशाल रूप समझता है। वह समझता है, हम दोनों एक हैं। विकास-सिद्धान्त ने उसके इस विचार की पुष्टि कर दी है। पहले पहल संसार में जीव का जो रूप प्रकट हुआ होगा, उसमें आत्मा अवश्य ही रहा होगा। परमाणु में अथवा एलेक्ट्रान में आत्मा अवश्य ही होगा। यही विचार आज-कल के विद्वानों के दिमाग़ में घूम रहा है, कि स्थूल जगत् और अन्तर्जगत् के बीच कोई ऐसी 'वस्तु' अवश्य होनी चाहिये, जो दोनों को मिला सके, जो दोनों से सम्बन्ध रखती हो। इस अन्तर्ज्ञान ने विज्ञान में नयी-नयी बातें खोज निकाली हैं।

यही अन्तर्ज्ञान सभी सुन्दर कविताओं की बुनियाद है। यही अन्तर्ज्ञान कवियों का ज्ञान है। डारविन के सिद्धान्त के पहले, रसायनशास्त्र की नवीन खोजों के बहुत ही पूर्व कवियों के हृदय में यह बात उद्भूत हो गई थी, कि मनुष्य और प्रकृति एक हैं। कवि ने पहले ही समझ लिया था—

'जड़चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि'

संसार केवल एक मशीन नहीं है, जो मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करती है। वह आनन्द और सौन्दर्य से परिप्लावित है। सुन्दर-सुन्दर फल, जिनके रंगों को देखकर नेत्र नाचने लगते हैं, पुष्पों का सौरभ, जो रसीले हृदय में एक तूफ़ान उठा देते हैं, क्यों बनाये गये हैं? यह अमितव्ययिता क्यों की गई है? विज्ञान कहेगा, कीट और भ्रमर को आकर्षित करने के लिये। हम तो नहीं समझते, कि यह कोई बहुत सन्तोषजनक उत्तर है; क्योंकि पुष्पों का रंग ही चित्ताकर्षक तो नहीं होता। उनकी पंखुड़ियों की बनावट, उनकी पत्तियों के रूप में, एक परोक्ष कला प्रदर्शित होती है। यह भी क्या भ्रमरों को आमंत्रित करने के लिये होती है? विज्ञान नियम-निर्माण कर सकता है; पर सौन्दर्य के बारे में कुछ कहने की उसमें शक्ति नहीं है। कवियों का कहना है, कि संसार केवल नियमों में ही बद्ध नहीं है, वह प्रेम तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण है। हाँ, सौन्दर्य का स्वयं एक विज्ञान हो सकता है; पर केवल उसका वैज्ञानिक अध्ययन मनुष्य को सौन्दर्य का वास्तविक रूप नहीं दिखा सकता। केवल व्याकरण पढ़कर कोई भाषा

में चतुर नहीं हो सकता।

कोई समय था, जब विज्ञान और फ़िलासफ़ी अलग-अलग अपना ध्येय समझते थे। अब सब खोजों का अभिप्राय यही है, कि अन्त में सब एक की ओर जा रहे हैं। सर जे० सी० बसु ने वनस्पति और जन्तुओं में अभिन्नता दिखलाई। इस बात की चेष्टा हो रही है, कि यह निश्चय कर दिखाया जाय, कि सारी भिन्नता अन्त में एक है; परन्तु अभी तक ऐसा न हो पाया; क्योंकि जीव तथा पदार्थ सभी शक्तिवान् हैं; इसलिये प्रगतिशील हैं।

कविता भी कुछ ऐसी ही है। भावों के संचार में कविता भी ऐसी ही गतिशीला है। कुछ लोगों का कथन है, कि कविता जीवन की आलोचना है। शायद यह ठीक नहीं है। कविता नवीनता है। जिस प्रकार विज्ञान नवीन खोजों के साथ बढ़ता चला जा रहा है, उसी प्रकार कविता आगे बढ़ती चली जा रही है। वैज्ञानिकों के समान कवि भी नये विचारों से पुराने विचारों तथा भावों का समन्वय करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस कारण मनुष्य के विचार और उसकी भावनाएँ भी कविता की प्रगति के साथ-साथ गम्भीर और परिपूर्ण होती जा रही हैं। यह साधारण बुद्धि की बात है, कि यदि कविता के विषय और कवि के विचार वही पुराने रखे जायँ, तो थोड़े ही दिनों में सब विचारों की समाप्ति हो जाय और वही-वही बातें बार-बार दुहराई जाने लगें; परन्तु कविता जीवन की छाया है; इसलिये ज्यों-ज्यों जीवन में परिवर्तन होता है, उन्नति होती है। छाया में भी परिवर्तन होता है, और होना चाहिये। जहाँ ऐसा नहीं होता, वह कविता भावों का सच्चा प्रतिबिम्ब नहीं है। जिस प्रकार पुराने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के स्थान पर नवीन सिद्धान्त प्रतिदिन निकले चले आते हैं, जैसे पुराने दार्शनिक विचारों का स्थान नवीन विचार ले रहे हैं, उसी प्रकार पुरानी कविता के स्थान पर नवीन कविता जन्म ले रही है।

जिस प्रकार से विज्ञान अथवा दर्शन का अभिप्राय ज्ञान-उपार्जन है, उसी प्रकार कविता का अभिप्राय आनन्द देना है; इसलिये उसका ध्येय है मानव हृदय में 'रस' का उद्भाव करना। यदि इतना कर सकी, तो वह कविता, कविता है। इसके साथ-ही-साथ कविता—वास्तविक कविता—की भाषा ही यह कहे देती है, कि सब कविताओं के भीतर यह भावना छिपी है, कि विश्व और मानव-आत्मा एक हैं। संसार की सारी वस्तुएँ एक रहस्यपूर्ण बन्धन में बँधी हुई हैं; क्योंकि कविता की भाषा में अलंकारों की प्रधानता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि द्वारा भावनाओं का चित्र हम वाह्य जगत् की वस्तुओं के रूप में चित्रित करते हैं। संसार के पुष्पों, पल्लवों, जीवों और जन्तुओं के स्वरूप में अपने विचारों को प्रकट करते हैं। कविता को जाने दीजिये, प्रतिदिन की बोलचाल में हम इन्हीं की शरण लेते हैं। इसका कारण हम यह नहीं समझते, कि बिना इसके हम अपने विचारों को प्रकट नहीं कर सकते। बल्कि यह कि स्वभावतः हम यह समझते हैं, कि प्राकृतिक जगत् और मनुष्य-हृदय में एक अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यह एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं; इसलिये जब वाह्य जगत् का वर्णन करने लगते हैं, तब अपने विचारों, अपने अनुभवों के रंग में रँग कर उन्हें प्रदर्शित करते हैं और जब अन्तर्जगत् की भावनाओं को प्रकट करते हैं, तो वाह्य संसार की सहायता से उन्हें दिखलाते हैं। जब अपने मनोभावों को इस प्रकार से प्रकट करने में हम सफल होते हैं, तो हमें आनन्द होता है; क्योंकि उस समय अन्तर्जगत् तथा वाह्य जगत् का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। प्रकृति का नयनाभिराम रंग और उसका सौरभ हृदय में प्रविष्ट हो जाता है और हृदय की भावनाएँ जगत् में बिखर जाती हैं। एक दूसरे को अपने रूप में ढाल देता है और वहीं कवि की कला है, कविता है।

कुछ दिनों से यह विवाद उठ खड़ा हुआ है, कि कविता में अर्थ और भाव मुख्य हैं, अथवा छन्द, पिंगल और शैली। यह झगड़ा निरर्थक है। मेरे विचार से दोनों ही एक प्रकार से आवश्यक हैं और दोनों ही गौण। एक प्राण है, तो दूसरा

काया। दोनों आवश्यक हैं; परन्तु जब कवि उस विशेष अवस्था में पहुँचता है, जब वह साधारण जगत् की सीमा से बाहर चला जाता है, उस समय अनजाने ही वह दोनों का ऐसा समन्वय कर देता है, कि भाव और रूप दोनों में मिल जाते हैं और जिस प्रकार परमात्मा शरीर में प्राण डालकर एक सुन्दर सजीव प्रतिमा खड़ी कर देता है, उसी प्रकार कवि अपनी कविता रच डालता है; परन्तु यदि सत्य मान लिया जाय, कि किसी कवि ने अपनी विचार-धारा के प्रवाह में बहते हुए नियमों का बाँध तोड़ डाला है, छन्द और पिंगल की परवा नहीं की है, यदि उसकी रचना में वह लोकोत्तर आनन्द पाया जाता है, जो कविता में एक आवश्यक वस्तु है, यदि उसमें हृदय की अनुभूति का चित्रण है, तो हम उसे कविता ही कहेंगे। लोग भले ही उसे कँगारू और केंचुआ कहें। हाँ, उसे हम गा न सकें, यह दूसरी बात है।

कविता यदि गाई जा सकती है, तो बड़ी अच्छी बात है; परन्तु प्रकृति के उद्यान में नाना प्रकार के पुष्प-पुंज खिले हैं, उनका रंग-रूप भिन्न है, सुगन्ध अलग-अलग है; पर पुष्प सभी हैं। कोई यह नहीं कह सकता, कि सभी पुष्प चम्पई रंग के हों; अथवा सभी की पँखड़ियाँ पाटल प्रसून के समान हों। इसी प्रकार से कवि यदि सचमुच कवि है, तो वह रचना में कवित्व दिखला देगा, चाहे उसका रूप कुछ हो।

मगर हाँ, कविता लिख लेना सबका काम नहीं है। कविता, मानव-हृदय और परमात्मा से ज्ञात अथवा अज्ञात सम्मेलन का फल है। जब कवि कविता लिखने बैठता है, उसकी एक विशेष अवस्था हो जाती है। या यों कहिये कि कवि-हृदय की जब एक विशिष्ट अवस्था हो जाती है, तब स्वयं उसके हृदय से कविता की धारा निकल पड़ती है। जिसका हृदय जितना ही परिमार्जित है, उतना ही ऊँचा वह कवि है। वेदान्त में कहीं ऐसा लिखा है— 'आनन्द रूपम अमृतं यद्विभाति' जो कुछ संसार में दिखायी देता है, उसी का आनन्द स्वरूप है, उसी का प्रेम है। यही कविता है और जब हम यह देखने बैठते हैं, कि कौन अथवा किसकी रचना कविता है, तो हमें उसी आधार पर विवेचना करनी चाहिये।

—कृष्णदेवप्रसाद गौड़।

सौंदर्य्य

हृदय को रमण करानेवाला, दृष्टि को रिझानेवाला, आत्मा को अमृत पिलानेवाला, युग-युग की आयुष्य का सृजन करनेवाला और अखिल विश्व को अपने प्रवाह में बहानेवाला—कहाँ है, कहाँ है वह सौंदर्य्य? किस ओर है वह सौंदर्य्य?

अंग-त्रिभंग अनंग और विकसित कुसुम-ऐसे वदन-विलासवाला, हसित नयनों से सुधा बरसानेवाला, हृत्-हिंडोल को डुलानेवाला—कहाँ है, कहाँ है वह सौंदर्य्य? किस ओर है वह सौंदर्य्य?

हृदय-सर में पद्म-पराग ढालनेवाला, कुसुम-कुंज पर गुंजन करके अनुराग के अश्रु-मुक्ता बिखेरनेवाला—कहाँ है, कहाँ है वह सौंदर्य्य? किस ओर है वह सौंदर्य्य?

× × × ×

चंचला चमककर और मेघ गरजकर जहाँ अपने रस-सिक्त पंख फड़फड़ाते हैं, सूर्य-चन्द्र की साक्षी में जहाँ प्रिया और प्रियतम के प्रारब्ध घड़े जाते हैं—वहाँ है, वहाँ है वह सौंदर्य्य; उस ओर है वह सौंदर्य्य।

—'मालव-मधुकर'।

(गुजराती के महाकवि न्हानालाल के खयाल)

अनंत आशा



चिड़िया चहक उठी—आया—आया ...... वह आया......

आशा के आवेग से स्पन्दित हृदय को दबा कर सभी कह उठे—कौन आया—कहाँ आया ? कैसा उसका रूप है ?........

चिड़िया ने कहा—देखा नहीं, मैंने उसको अपनी आँखों देखा नहीं। वह जिस समय आता है, मैं अपने हृदय में उसके पाँवों की ध्वनि सुनती हूँ—इतना ही मैं जानती हूँ। उसके पाँवों के उठने और पड़ने का आभास-मात्र मुझे मिलता है .... जान पड़ता है, वह आ गया।—सम्भव है, हवा उसके बारे में कुछ अधिक जानती हो ....

हवा ने कहा—मैं ! नहीं-नहीं, कुछ नहीं जानती—कुछ नहीं......मैं केवल उसके स्पर्श का अनुभव करती हूँ—ऐसा जान पड़ता है, मानो मेरे सर्वांग में........ इसी से काँप उठती हूँ .... मोहन है वह ! मैं केवल इतना ही जानती हूँ। फूल उसकी सब बातें जानता है।

फूल ने कहा—अरे नहीं-नहीं ! मैं सब कैसे जान सकता हूँ ?—उसका क्या अन्त है ? मैं केवल उसकी हँसी को देखता हूँ..... कितना सुन्दर है वह ! और कुछ भी नहीं जानता मैं एक ही जगह......बहुत नीचे......बँधा हुआ हूँ......यहाँ से मैं उसे किस तरह जान सकता हूँ ? नदी जानती है—

नदी ने कहा—नहीं-नहीं, मैं नहीं जानती। उसके लिए तो मैं अपने गृह का द्वार तोड़कर निकल पड़ी। असीम है वह ! यही बात तो सब कहते हैं। इसीलिए सागर की ओर दौड़ी जाती हूँ। वह उसे जानता है।

सागर ने कहा—भूल-भूल ! वह मेरी असीमता के भी परे है ....मैं तो केवल अपने में ही भूल गया हूँ। निर्मल है वह ! आकाश उसके विषय में जानता है।

आकाश ने कहा—मैं तुम सबों की अपेक्षा और भी अधिक निरुपाय हूँ ! मैं उसके विषय में कुछ नहीं जानता। मैं अपनी करोड़ों चमकती हुई आँखों से ढूँढ़कर भी उसे नहीं पा रहा हूँ !..... जितनी दूर दृष्टि जाती है, मैं केवल अपनी शून्यता को ही देखता हूँ .... केवल अपने को......अपने से बाहर मैं कुछ भी नहीं देख पाता हूँ। वह अज्ञेय है ! निशीथिनी उसे जानती है।

निशीथिनी ने कहा—हाय-हाय !..... वह मेरे नयनों का मणि .....उसे खोकर मेरे पास कुछ भी नहीं बचा......इसीलिए तो चिड़िया के गाने को सुनने के लिए स्तब्ध भाव से पड़ी हुई हूँ। उसके गाने पर, जान पड़ता है, उसके आने का समय हो गया ....।

हवा ने कहा—मैं उसके स्पर्श माधुर्य को लेकर सारे संसार में विचरूँगी।

फूल ने कहा—मैं उसके लिए अपनी सुरभि को बहुत ही यत्न-पूर्वक संचित करके रक्खे हुए हूँ !

चिड़िया ने कहा—वह जब आयेगा, तब ऐसा गान गाऊँगी......परन्तु भई यदि उस गाने में स्वर न बँधे .... यदि आँखों में जल भर आये..... और मेरा गला रुंध जाय... .....?

हवा ने कहा—मैं भी यही सोचती हूँ। यदि उसका स्पर्श मुझे पागल बना दे—यदि पागल होकर चिल्लाती हुई मैं आकाश-पाताल तथा भूमि पर दौड़ती फिरूँ......... ?

फूल ने कहा—यदि उसके आने के पहले ही मेरी हँसी लुप्त हो जाय......यदि सुरभि सूख जाय .... मेरी झड़ी हुई सूखी पंखड़ियों से क्या उसकी तृप्ति होगी ? मेरी प्यारी चिड़िया—तुम तो पहचानती हो, उसके पद की ध्वनि अभी भी कितनी दूर है......।

चिड़िया ने कहा—क्या जानूँ ! पर सुनती हूँ प्रति पल एक-एक करके उसके पद की ध्वनि......वह आता है—आ गया जान पड़ता है ! कुछ ऐसा ही आभास-सा मिल रहा है—हवा ! तुम तो उसके स्पर्श को पहचानती हो... . एक बार देखो न वह कहाँ है ।................

हवा ने कहा—कुछ स्पष्ट मालूम नहीं हो रहा है। हाँ... कुछ नहीं मालूम हो रहा है। तनिक भी उसका आभास नहीं मिल रहा है। जान पड़ता है कि उसे पा गई—छाती से लगाए हुए हूँ......किंतु नहीं—कहीं कुछ भी नहीं है .. . ।

नदी ने पूछा—तब क्या वह नहीं है ? तब मेरी यह दौड़ क्या वृथा ही है ?.........

सागर ने कहा—नहीं—ऐसा नहीं ! फिर क्या मेरा यह रोना व्यर्थ है ?

आकाश ने कहा—क्या व्यर्थ है मेरा ढूँढ़ना...?

निशीथिनी ने कहा—क्या अनंत काल तक अंधी ही बनी रहूँगी ?—वह नहीं .....है क्या ?

"क्या तुम कहती हो—वह है ? तुम क्या उसे जानती हो ? उसे देखा है ?—तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मैं मिट्टी हूँ।"

"इस तरह मलिन मुख सबके पीछे क्यों खड़ी हो ? हम लोग सभी उसकी अपेक्षा में हैं। उसे पाऊँगी—उसे अपना सर्वस्व अर्पित करूँगी—कह कर तुम हम लोगों के बीच में आगे क्यों नहीं आतीं ?"

"मैं मिट्टी जो हूँ। मुझमें हँसी भी नहीं, सुरभि भी नहीं है......हृदय में केवल मलिनता भरी हुई है। उसे कहाँ ढालूँगी ? इसीलिए उसे अपने हृदय में दबा रक्खा है। तुम सभी शुभ्र और सुन्दर हो। इसी लिए मैं दूर-ही-दूर हूँ। वह जिस समय तुम लोगों के द्वार पर अतिथि होकर आयेगा, मैं केवल उसे एक बार देखूँगी—यहीं से ....।"

सभी कह उठे—अहा, उसके पास कुछ भी नहीं है ! आओ न हम सभी मिलकर उसे सजा दें—उसकी संपूर्ण मलिनता को ढँक दें.........

मिट्टी ने कहा—नहीं-नहीं, मैं यह सब कुछ नहीं चाहती ? मेरे पास भी यदि वह आयेगा, तो अपने हृदय की संपूर्ण मलिनता को उसके पाँव पर ढाल दूँगी—

फूल मन-ही-मन हँस पड़ा—हवा एक ओर से दूसरी ओर चली गई .... नील आकाश में अपने दोनों डैनों को फैलाकर चिड़िया बोलती हुई उड़ गई—आया-आया—वह आया........!"

सभी ने क्षुधित भाव से पूछा—कौन आया—कहाँ आया ? उसका कैसा रूप है ?

"यह तो जानती नहीं ! पर आया—वह आया—अब देर न करो... ....."

"किस पथ से ? अरे किस पथ से ....?"

"यह भी नहीं जानती......पर चलो, जिधर इच्छा हो उधर ही दौड़ चलो .... . "

× × ×

गाने का स्वर बँध गया, हँसी की ध्वनि गूँज उठी—सभी अपने-अपने उद्देश्य पर दौड़ चले...... हँसी, गान तथा दौड़ में समय बीत गया ! .....परन्तु कब, यह कोई नहीं जानता ! ... पर जो कुछ जिसके पास था, सभी ने उसको उसे समर्पित कर दिया...... अपने पास कुछ भी नहीं रक्खा।

सब समाप्त हो गया अन्धकार में अब कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता। आकाश की करोड़ों चमकती हुई आँखें छिप गईं – निशीथिनी रो उठी। कुछ पता न चला—उसे देखा तक नहीं—वह नहीं आया !

मिट्टी ने कहा—चुप-चुप । मैं भी युग-युगान्तर से उसकी आशा में पड़ी हुई हूँ। मेरी धूल-धूसरित छाती पर उसका पद-चिह्न पड़ेगा—अवश्य पड़ेगा—वह आवेगा—अवश्य आवेगा—उसे पाऊँगी—अवश्य पाऊँगी। इसीलिए बची हुई हूँ।

—अखौरी गंगाप्रसादसिंह ।

निर्भय बनो !



प्रत्येक मनुष्य, जब तक वह भय और चिन्ता से मुक्त नहीं होता, तब तक वह न तो पूर्णतया विचार कर सकता है, न बात-चीत कर सकता है, न काम-काज कर सकता है, न अपना मनोरंजन कर सकता है, न अपनी नींव मजबूत कर सकता है, न पाचन-क्रिया कर सकता है, न आराम कर सकता है और न जीवित ही रह सकता है।

मनुष्य-जाति के लिए भय अत्यन्त भयङ्कर राक्षस है। मनुष्यों के एक बहुत बड़े समुदाय को इस राक्षस ने अपनी गुलामी में जकड़ रखा है। इसलिये जब हम निर्भय बनने की बात-चीत करते हैं, तो गुलामी में जकड़े हुए लोगों के आश्चर्य का वारा-पार नहीं रहता। अमेरिका के एक बड़े प्रसिद्ध मानस-शास्त्री और शिक्षण-शास्त्री ने बहुत खोज कर चुकने पर कहा था, कि स्वयं अमेरिका में (जो देश स्वतन्त्र है) सात मनुष्यों में छः भय के गुलाम हैं। तो, फिर पराधीन भारतवर्ष का तो कहना ही क्या है ?

और यह बात निर्विवाद है, कि मनुष्य-जाति की मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, औद्योगिक और आर्थिक उन्नति के यदि कोई सबसे भयानक शत्रु है, तो वह हैं हृदय में छिपे हुए भय के कीड़े। युद्ध-द्वारा, अकाल-द्वारा, भूकम्प-द्वारा, ज्वालामुखी-द्वारा, प्रलय-द्वारा और अनेक प्रकार के रोगों-द्वारा करोड़ों मनुष्यों का नाश हो गया; पर संसार के पुराने भय और चिन्ता ने तो अरबों मनुष्यों को पीस डाला।

विषैली-वस्तुओं ने—अफ़ीम, शराब और क़ोकीन वगैरह ने—धीरे-धीरे मानव-जाति को नष्ट कर दिया है; पर उनसे कहीं ज्यादा जहर, भय और चिन्ता में है। इनसे मनुष्य-जाति की जो हानि हुई है, उतनी संसार के सब जहरों से मिलकर भी नहीं हो सकती।

किम्वदन्ती है—किसी देश में प्लेग बड़ी भीषणता के साथ फैला। अपनी प्रजा की रक्षा के लिए राजा ने प्लेग की देवी से प्रार्थना की। देवी ने कहा—यदि तुम मेरा खप्पर भर दो, तो तुम्हारी प्रजा रोग से छुटकारा पा सकती है।

राजा ने पूछा—कितने मनुष्यों से तुम्हारी तृप्ति होगी ?

देवी ने उत्तर दिया—दस हज़ार मनुष्यों से।

राजा ने कहा—अच्छा, तो इतने मनुष्यों को मैं तुम्हारी भेंट करूँगा। वर्ष समाप्त हुआ; पर गिनती की गई, तो मालूम हुआ, कि उसके देश के एक लाख मनुष्यों की मृत्यु हो चुकी है।

प्लेग की देवी राजा से मिलने आई। उसने कहा—मेरा खप्पर भर गया है, अब मैं तुम्हारे राज्य से विदा हो रही हूँ।

राजा ने निराशा के साथ कहा—पर, तुमने तो दस हज़ार के बदले एक लाख मनुष्यों का नाश कर डाला ?

देवी ने उत्तर दिया—नहीं, मैंने दस हज़ार की ही भेंट ली है। शेष नब्बे हज़ार को, तो भय ने ही भक्ष्य कर लिया है।

भयभीत मनुष्यों की हालत इस कथा से अच्छी तरह समझी जा सकती है।

(२)

भय के इस राक्षस का जन्म मानव-जाति के जन्म के साथ ही हुआ है। उस दिन से आज तक वह अपना चक्रवर्ती राज कर रहा है। हमारे पूर्वज तो सदा भयभीत रहने ही में जीवन व्यतीत कर रहे थे। वे मेघ-गर्जन से, बिजली से, ज्वालामुखी के विस्फोट से, प्रचण्ड बाढ़ के प्रलय से, भूकम्प से इतने भयभीत होते थे, कि उस युग के आर्य्यों ने इन सब प्रकृति के खेलों को देव की कल्पनाएँ करके, उनकी प्रार्थनाएँ गढ़ कर अपने-अपने गाय और

बैलों की, अपनी खेती-बाड़ी की और अपने सम्बन्धियों की रक्षा के लिए सर्वदा ऐसी प्रार्थनाएँ की हैं। यदि ऐसी प्रार्थनाओं से कभी उनका विनाश-काल टल न जाता, तो हिंस्र जीवों के पंजों से या उनके विरोधियों के हमलों से, वे अपनी रक्षा करने के शारीरिक बल और युद्ध-कौशल की युक्ति-प्रयुक्तियों के अतिरिक्त बच भी नहीं सकते थे।

इस प्रकार आदि काल से भय मनुष्य-जाति के व्यवहार में अवतरित होने के कारण, आज भी मनुष्यों में व्यक्ति और समूह की सहानुभूतियों में प्राधान्य पाता है। मानव-जीवन और मनुष्यों के काम पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। सिद्धान्त की दृष्टि से देखिये अथवा भावना की दृष्टि से खोजिये; पर सब अनर्थों का आरम्भ भय ही है। मार्शल फ्रोश कहता था, कि सबसे भयङ्कर हिंस्र जीव भय है। मनुष्य-मात्र को उसके दाँत और नाखून उखाड़कर फेंक देना चाहिए। इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

भय के कारण होनेवाली हानि इतनी बड़ी है, कि उसका अन्दाज लगाना मनुष्य की शक्ति के बाहर का काम है। और उसे निकालकर बाहर करना भी बड़ी बहादुरी, साहस तथा दृढ़ता का काम है।

पल्लवित भय के कारण कई बार मनुष्यों के मस्तक पर, हृदय पर तथा अँतड़ियों पर भी प्रभाव पड़ता है। यही नहीं, उससे कई मनुष्य पागल भी हो जाते हैं। एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से डरता हो, तो डरनेवाले मनुष्य के व्यक्तित्व के प्रभाव का नाश हो जाता है। उससे दोनों के पारस्परिक प्रेम तथा मैत्री का भी अन्त हो जाता है। यही नहीं, उस भयभीत मनुष्य के लिए उससे आगे बढ़ने का मौका नहीं मिलता, विजय का द्वार भी सदा के लिए बन्द हो जाता है।

भय और चिन्ता से ग्रसित मनुष्य दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा निर्बल हो जाता है। इससे एक प्रकार का उदासीन वातावरण एकत्र होता है। उस वातावरण का नाशकारी प्रभाव उसकी रीति-नीति और वर्तन पर तो पड़ता ही है; पर उसके संसर्ग में आनेवाले मनुष्यों पर भी उस उदासीनता की ऐसी छाप लगती है, कि सब मनुष्य उससे दूर रहना ही पसन्द करते हैं। जिस मनुष्य को प्रतिदिन बड़-बड़ाने की आदत हो, जो आशावादी की बजाय हमेशा निराशावादी ही बना रहे और अच्छे के लिए जो सदा मीठा बनने की ही कल्पना करता हो, ऐसा मनुष्य मित्र अथवा साथी की ओर से तथ्य-हीन हो जाता है; क्योंकि उसके सहवास में रहनेवाले को आनन्द की जगह दुःख का ही अनुभव होता है। इसलिए वैसा मनुष्य अपनी सुख-सामग्री तो एकत्र कर नहीं सकता; उलटे दूसरों के आनन्द में बाधा-रूप हो जाता है। अतएव ऐसे निराशावादियों से सब मनुष्य ऊब जाते हैं।

भय दुःख और घबराहट का अत्यन्त गहरा स्वरूप है। बड़ी-से-बड़ी चट्टानों को भी जिस प्रकार सुरङ्ग तोड़ डालती है, उसी प्रकार भय मनुष्य-जाति के अत्यन्त ही साहसी मनुष्य के साहस को छिन्न-भिन्न कर डालता है। इसके प्रभाव से मनुष्य के विचार लम्पट हो जाते हैं, सहानुभूति का नाश हो जाता है, कार्य बन्द हो जाता है, तुलनात्मक शक्ति कुंठित हो जाती है, वाचा रुँध जाती है, महत्वकांक्षाएँ अपूर्ण रह जाती हैं, और प्रयत्न शिथिल हो जाता है। जहाँ भय है, वहाँ संगीन निर्णयशक्ति का वास नहीं है। जिस मनुष्य से अथवा जिस वस्तु से हम डरते हों, उसे कभी अपने बराबर नहीं मान सकेंगे। भयभीत दशा में कोई साधारण काम भी हम नहीं कर सकते।

यह तो आन्तरिक बात हुई; किन्तु भय तथा चिन्तातुर मनुष्य की सुन्दरता का भी नाश हो जाता है। उसके नेत्रों में चेतनता की जगह उदासीनता दीख पड़ती है। मुख फीका पड़ा रहता है और अकाल में ही वह मनुष्य वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य अपनी जाति से, अपने परिवार से, मित्रों से, अपनी जान-पहचान के मनुष्यों से और अपने काम-धन्धे से किसी तरह भी डरता हो,

उस बेचारे को कोई चोर-डाकू भी नहीं लूट सकता, वह तो स्वयं ही लुट जाता है। वह प्रत्येक स्थान पर मंगलाचरण से ही अयोग्य बन बैठता है।

इसलिए जहाँ तक कोई मनुष्य भय तथा चिन्ता से मुक्त न हो जाए, अच्छी तरह सोच-समझ नहीं सकता, बात-चीत नहीं कर सकता, काम-काज नहीं कर सकता, भोजन नहीं कर सकता, पचा नहीं सकता, टहल नहीं सकता, आराम नहीं कर सकता और न अच्छी तरह जीवित ही रह सकता है।

(३)

ऐसे अनेक वक्ता, अभिनय-कला-विशारद और गायक हैं, जो केवल भूत से, लोगों के सामने खड़े रहते हुए भी डरते हैं। यदि वे निर्भय बन जाएँ, तो वे कुछ कर सकते हैं। इसी प्रकार संसार में ऐसे हज़ारों बुद्धिमान् स्त्री-पुरुष हैं, जो यदि भय के बन्धन से मुक्त हो जायँ, तो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलता के शिखर पर पहुँच सकते हैं। जब ऐसा होता है, तभी अनेक साधारण बुद्धि के स्त्री-पुरुष केवल अपनी शक्ति तथा मौक़ों का सदुपयोग करने के साहस के कारण ही संसार को आश्चर्य में डाल देनेवाली कीर्ति प्राप्त कर जाते हैं।

संसार ऐसे मनुष्य का सत्कार और सम्मान करता है, जो कि भय को गुलाम बनाने में समर्थ हो सका हो और उसे देखकर उसकी आँख ज़रा भी निस्तेज न होती हो। निर्भय मनुष्य के चरणों पर ही संसार सम्पत्ति, सत्ता और प्रतिष्ठा का कलसा समर्पित करता है।

कोई मनुष्य किसी भी काम में असफल होता है, तो उसमें सबसे बड़ा हाथ भय नामक राक्षस ही का होता है। इस बात के प्रमाण में अनगिनती उदाहरण दिये जा सकते हैं।

जिस समय तक मनुष्य भय के बोझ से कुचला हुआ और वेदना से पीड़ित रहता है, जिस समय तक उसे अपने असमर्थ तथा निराधार होने का अनुभव होता है, उस समय तक वह मनुष्य किसी भी जगह सफल नहीं हो सकता। इस स्थिति में मनुष्य चाहे जितने प्रयत्न करे, वे सब बन्दरगाह पर जंजीर से जकड़े हुए जहाज़ को लगनेवाले सिन्धु-जल के झकोरों की तरह निष्फल होंगे।

भय और चिन्ता को हृदय में स्थान न देने का अर्थ यह भी नहीं है, कि व्यर्थ ही अपनी बेवकूफ़ी से भय और ख़तरा पैदा कर लिया जाय। प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य भयंकर शत्रु के साथ काम पड़ने पर यह प्रयत्न करता है, कि वह उसे किसी प्रकार की चोट न पहुँचाए। और, इसके लिए वह सब शक्य मार्गों को ग्रहण करता है। उसी प्रकार जो मनुष्य ऐसा संयोग आने पर धैर्य्य और विचार-पूर्वक काम करता है, उसे भय का ग्रास बनने के लिए कोई कारण ही नहीं है।

हमको यदि कोई काम करना है, तो केवल यही। जैसे भी बन पड़े, आत्म-श्रद्धा और साहस को बढ़ाते रहना चाहिए। इन दोनों सद्गुणों को ज्ञान तथा अनुभव के द्वारा पर विकसित किया जा सकता है। हमें किसी भी विचारपूर्ण प्रश्न को हल करना हो, अथवा चाहे जैसा काम करना हो, उस समय हमें यह मालूम होना चाहिए, कि वह विचार-पूर्ण प्रश्न किस तरह हल किया जायगा। अथवा जो सावधानी का काम है, उसे किस प्रकार हम पूर्ण कर सकेंगे? इस प्रकार का विश्वास भय पर विजय प्राप्त करने में हमारा सहायक होता है।

भय को दूर करने का, अथवा आन्तरिक भय के भूत को भगा देने का, सरल उपाय यह है, कि हम भय के चित्रों को अपने हृदय-पटल पर कदापि अङ्कित न होने दें। इस भूत को सदा के लिए अपने द्वार से अन्दर प्रवेश न करने देने के लिए सम्भव है, कोई असमर्थ हो; पर अपने हृदय-मन्दिर में न घुसने देने का काम तो प्रत्येक मनुष्य कर सकता है।

जब सब काम सरलता के साथ हो रहे हों, तो भय और चिन्ता से दूर रहना बहुत सरल काम है; परन्तु जब कठिनता और ख़ास प्रसङ्गों में हम ग्रसित रहते हैं, तभी वे हमारी कठिन कसौटी होते हैं। इन मौकों पर श्रद्धा, आशा और साहस को

जिससे नवीन बल प्राप्त हो, उन्हीं विचारों की ओर बढ़ना चाहिए। जैसे-जैसे हमारे हृदय में ये गुण विकसित होते हैं, हमारे जीवन को एक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त हो जाता है।

वास्तव में भय-रहित तथा विजयी-जीवन व्यतीत करने के लिए सबसे पहले इन वस्तुओं की आवश्यकता है—(१) अपनी नैसर्गिक शक्तियों में पूरा-पूरा—सौ प्रतिशत विश्वास और (२) उन शक्तियों को जीवन के प्रत्येक दृश्य के समय बुद्धि और व्यवहार पूर्वक व्यय करने की योग्यता में पूर्णतया आत्म-श्रद्धा।

श्रद्धा भय पर विजय प्राप्त करती है। यहाँ श्रद्धा के अर्थ में हम साहस, आशावाद, आत्म-विश्वास, अटूट निश्चय, चेतन, इच्छा-शक्ति तथा सक्रियता का समावेश करते हैं।

हममें चाहे जितनी श्रद्धा हो; यदि वह सक्रियता-विहीन है, तो वह हमारे किसी भी उपयोग की नहीं। सक्रियता-रहित श्रद्धा छिद्र-युक्त जलपात्र की तरह है। भला ऐसे पात्र में पानी कितनी देर ठहर सकेगा? इससे कोई फ़ायदा नहीं। हम इसे मुर्दा श्रद्धा कहेंगे। श्रद्धा और कार्य, दोनों अंध और पंगु की तरह चलनेवाली शक्तियाँ हैं। बिना एक दूसरे की सहायता किये ये शक्तियाँ हमारे किसी काम की नहीं रह जातीं। इन दोनों शक्तियों की सहायता के बिना जो मनुष्य विजय की आकांक्षा से बाहर निकलता है, उसकी दशा सुन्दर वल्लरिकाओं से ढँके हुए कूप में गिर जानेवाले की-सी ही होती है।

संसार में जो लोग उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं, यदि हमको भी उनके पथ का अनुसरण करना है—जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना है, तो सबसे पहले हमको भय के भूत को जलाकर राख कर देना होगा। और उसके लिए हमको किसी की भी आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता है केवल अपने को पहचानने की; क्योंकि खुद को अच्छी तरह नहीं पहचाननेवाला ही हमेशा भयभीत बना रहता है। जिस मनुष्य को अपने सामर्थ्य की कुछ भी पहचान नहीं है, वह मनुष्य ही भय से काँपता रहता है और जहाँ तक उसे अपनी शक्ति का ठीक-ठीक भान नहीं होता; वह भय-मुक्त हो ही नहीं सकता।

जिस मनुष्य को सदा अपनी बल-हीनता, अयोग्यता और तुच्छता का ही ध्यान रहता है, वही भय-ग्रस्त रहता है। इसके विपरीत विचारवाला मनुष्य निर्भय होता है। यह मनुष्य के विचारों पर ही अपना आधार रखनेवाली वस्तुएँ हैं और जीवन के सुन्दर प्रसंग हमारे मानस की आन्तरिक दशा के ही सूचक होते हैं।

स्वास्थ्य, सम्पत्ति और विजय को प्राप्त करना, जो मनुष्य कठिन नहीं समझता, उसे ही उक्त बातों के लिए आवश्यक विचार सूझ पड़ते हैं। वे विचार उसे प्रयत्नशील बना देते हैं और अन्त में उसका परिणाम अच्छा ही होता है।

परन्तु एक मनुष्य, जो सदा रोगी बने रहने के, कार्यों में असफल होने के, निर्धनता के, तथा मृत्यु के मुख में पहुँच जाने के भय से काँपता हो, वह अपना ही नाश करनेवाली चीजों की सहायता करता है। और परिणाम-स्वरूप जिससे वह दुखित और कम्पित हो रहा था, उसे अपनी शक्ति को अच्छी तरह आजमा लेने का मौका देता है।

इसलिए भय पर—जिसके साथ चिन्ता, निराशा, अनिश्चितता और आत्म-हनन का निकट सम्बन्ध है—विजय प्राप्त करने के लिए सदा उसी के योग्य विचार करने की आदत डालना जरूरी है। ऐसा करने से भय पर आपको अभूतपूर्व विजय प्राप्त होगी।

(गुजराती 'नवयुग' से) —'नरेन्द्र'।



श्मशान



"अच्युत !"

"कौन है ? केशव ! ठहरो आया।"

बैठक का किवाड़ खोलकर मुस्कराता हुआ अच्युत बोला—आओ भीतर आओ।

केशव अंदर आया, तो उसके मुख पर विषाद की गहरी छाप लगी हुई थी। वह बैठकर करुण नेत्रों से उसकी ओर देखने लगा, फिर बोला—अच्युत ! तुमको एक संवाद देने आया हूँ। जिसको सुनकर तुम धीरज नहीं धर सकोगे।

अच्युत के ओठों पर की हँसी म्लान हो गई। शंकापूर्ण दृष्टि से वह केशव की ओर देखने लगा। धीरे से पूछा—वह क्या ?

उसके मुँह से बात नहीं निकली। गम्भीर होकर अच्युत की ओर देखने लगा। फिर बोला—ओफ़ ! तुम धीरज नहीं धर सकोगे। कमला का आज स्वर्ग-वास हो गया !

अच्युत ने सुनकर क्षण-भर के लिये दृष्टि नीची कर ली, हृदय में केशव के मुख से निकली हुई बात गूँज उठी—कमला आज मर गई है ! परन्तु हृदय पर इस आघात का कोई प्रभाव न पड़ा; कारण वह अनुभव न कर सका। विरक्त भाव से पूछा—क्या हुआ था ?

"टाइफाइड"

अच्युत ने मेज़ पर पड़ी हुई कापी की ओर आँखें कर लीं। हृदय में "कमला आज मर गई है" का अर्थ समझने की चेष्टा करने लगा। केशव उसके मुँह पर विषाद की छाया न देखकर कुछ विस्मित हो गया। उसके मुँह की ओर स्थिर नेत्रों से देखने लगा अच्युत ने दृष्टि उठाकर कहा—अच्छा तुम जाओ। कहाँ जा रहे थे ?

केशव—दफ्तर जा रहा था, रास्ते में भीड़ देखकर खड़ा हो गया, सुना कमला मर गई है। श्मशान जा रहा हूँ।



"अच्युत ने मेज़ पर पड़ी हुई कापी की ओर आँखें कर लीं।"

"अच्छा तुम जाओ" कहकर अच्युत खड़ा हो गया। हृदय में जो शोक का ज्वार उठ रहा था, वह उसे रोक रहा था। केशव के मुँह से सहानुभूति का वाक्य निकलकर उसके धैर्य के बाँध को तोड़ न दे, इस भय से वह केशव को भगाने की चेष्टा कर रहा था। केशव उसका यह निर्लिप्त भाव देखकर सोचने लगा, यह कितना बड़ा प्रतारक है। इसी प्रेम की कहानी यह मुझसे कितनी बार कह चुका है; पर इस संवाद से इसकी आँखों में दो बूँद आँसू तक नहीं आये, मुँह जरा भी म्लान नहीं हुआ। पूछा—तुम नहीं चलोगे?

अच्युत गम्भीर स्वर में बोला—नहीं।

केशव—तुमको एक बार जाना उचित है।

अच्युत बोला—नहीं, मैं जाकर क्या करूँगा। घर में मुझे बहुत काम है। मामूजी अभी बरेली जा रहे हैं, मुझे सब सामान ठीक कर देना है।

"अच्छा मैं चलता हूँ"—कहकर केशव चला गया। अच्युत को ऐसा मालूम हुआ, मानों शरीर के रक्त की गति स्थिर हुई जा रही है।

इतने में मोहल्लेवाले कमला को लेकर अच्युत के घर के सामने से निकले। अच्युत ने सिर्फ एक बार दृष्टि उठाकर देखा। फिर आँखें मेज की ओर कर लीं। केशव उसे देखकर मन-ही-मन हँसा।

मामूजी के चले जाने के बाद अच्युत ने सोचा—अब वे लोग लालबाग तक पहुँचे होंगे। उसके जी में आया, दौड़कर उनके पहले मरघट पर जाकर बैठा रहे। यही एक सुयोग है कमला को देखने का! वह कुरसी से उठा; परन्तु चिन्ता-धारा फिर पलट गई। सोचा—मेरे जाने से मोहल्लेवाले क्या ख्याल करेंगे? कमला पर हँसेंगे! मुझ पर कटाक्ष करेंगे? करें, कटाक्ष करें, पागल कहें, परवा नहीं; परन्तु कमला को वे बदनाम करेंगे। नहीं, नहीं, यह मुझसे नहीं सहा जाएगा। जिस वस्तु के लिए मैंने अपने को बलिदान किया है, उसे क्षण-भर की दुर्बलता के कारण कलंकित न करूँगा। नहीं-नहीं, यह मैं नहीं होने दूँगा। इससे तो इसी प्रकार तड़प-तड़प कर मर जाना अच्छा है। इसमें आत्मप्रसाद है, शान्ति है। उसके पति भी मुखाग्नि के लिए वहाँ गए होंगे। मोहल्लेवालों के मुँह से अगर मेरे और कमला के सम्बन्ध का हाल उनके कान तक पहुँचा, तो कमला के प्रति उनका जो प्रेम है, वह सब घृणा में परिवर्तित हो जायगा। क्षण-भर की दुर्बलता से मैं जीवन को व्यर्थ नहीं होने दूँगा। वह दरवाजे पर आकर कमला के मकान की ओर देखने लगा। उसमें उसे कुछ भी परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। वही चिक पड़ी है, बाहर शान्ति और झुनिया खेल रहे हैं, दोनों भाई-बहन मार-पीट कर रहे हैं, हँस रहे हैं। छत पर साड़ियाँ सूख रही हैं, रास्ते पर आदमियों की आमदरफ्त भी वैसी ही है। क्रन्दन-ध्वनि भी तो नहीं आती। अच्युत को प्रतीत हुआ, कमला मरी नहीं है वैसी ही इस मकान में है; परन्तु शरीर की रक्त-धारा शिथिल होने लगी।

उसका हृदय अब उमड़ा आ रहा था, वह अपने को सँभालने की प्राण-पण से चेष्टा कर रहा था; परन्तु इतनी चेष्टा पर भी दो बूँद आँसू आँखों के कोनों में आ ही गये। उसने उन्हें छिपाने के लिये मुँह फेर लिया। सुन्दरलाल को देर हो रही थी, वह चला गया। अच्युत के जी में आया, कि कमला के घर दौड़ जावे और चाची के पैरों पड़ कर रोवे; परन्तु मोहल्ले की स्त्रियाँ वहाँ आई होंगी, उसे इस प्रकार देखकर क्या ख्याल करेंगी—यह सोचकर वह खड़ा रह गया। चाची ने भी तो उसे एक दिन तिरस्कृत कर के निकाल दिया था! आज जाकर उनके चरणों पर गिरकर कहे—चाची जिसके लिए तुमने मुझे अपमानित करके निकाल दिया था, वह आज इस संसार में नहीं है, अब मुझको क्यों दूर फेंकती हो; परन्तु वह जा न सका, वहीं निश्चल खड़ा रहा।

इसी प्रकार शाम हुई, मोहल्लेवाले दाह-क्रिया समाप्त करके लौटने लगे। अच्युत केशव का आसरा देखने लगा। पाँच बज गये। जब केशव न आया, तो वह अकेला पार्क की ओर चला। पूर्व स्मृतियाँ सब याद आने लगीं, फिर धीरे-धीरे उनके घर में आना,

कमला को देखने के लिये आकांक्षा का उद्गम ; परन्तु सामने मिलने से दोनों की आँखों में किञ्चित संकोच, अच्युत के आज्ञा-पालन में कमला की उत्सुकता, चाची का सन्देह, फिर उनके घर से बहिष्कार, माता से बहाना कर कमला का उसके यहाँ आना, इन दीर्घ दो वर्षों के भीतर की घटनाएँ एक-एक करके उसे याद आने लगीं, वह बाह्य ज्ञान शून्य हो, अपार चिन्ता में मग्न हो गया। चिन्ता में इतनी शान्ति थी, आज यह बात उसकी समझ में आई।

रात को वह लेटा-लेटा सोचने लगा—किसी के मर जाने से औरों का क्या बिगड़ता है? कमला आज मर गई, किसी का क्या बिगड़ा ? मैं ही मर जाऊँ, तो किसी का क्या बिगड़ेगा, मामूजी अपनी दूकान का कोई-न-कोई उपाय कर ही लेंगे। अगर मैं न रहूँ, तो क्या उनका कारबार बन्द हो जाएगा ? जहाँ मुर्गा नहीं बोलता, वहाँ क्या विहान ही नहीं होती ? मेरे मरने से पृथ्वी का कुछ बिगड़ेगा नहीं, तो फिर मैं क्यों न मरूँ ? इस चिताग्नि से तो बच जाऊँगा। अच्युत और अधिक न सोच सका।

सवेरे उठा, तो उसे बड़ा आलस मालूम होने लगा। हाथ-पैरों में दर्द, दुर्बलता, जैसे छः महीने का रोगी हो। काम में आसक्ति नहीं थी। पर पीड़न इतना कठोर है। इसीलिये तो मनुष्य तुम्हें प्रायः ही त्याग करते हैं। वह एक दीर्घश्वास लेकर फिर दैनिक कार्य में नियुक्त होने के लिए उठा।

दिन-भर कामों में लगे रहने पर भी कभी-कभी कमला की चिन्ता घटा-सी छा जाती ; परन्तु कार्य-भार उस पर गिरकर उसे टुकड़े-टुकड़े कर देता, जैसे स्थिर पानी पर ईंटा गिरकर उसकी स्थिरता को क्षण-भर के लिये लोप कर देता है ?

कार्यों से छुट्टी पाकर अच्युत दोपहर को घर आया। कमरे में मामी और ममेरी बहन प्रमिला बैठी कमला की मृत्यु के विषय में बात-चीत कर रही थीं। अच्युत ने एक किवाड़ खोलकर अन्दर झाँका।

मामी के मुख से निकली हुई बात उसके कानों में पहुँची—उसका पति पागल हो रहा है। कल से उसने पानी तक नहीं छूआ। अच्युत ने कौतूहल से पूछा—क्या कह रही हैं ? मामी ने फिर अपनी बात दोहराई। अच्युत को किञ्चित हर्ष हुआ। जिस वस्तु के लिये मैंने इतनी चेष्टा की वह आज प्राप्त हो गई! वह खड़े-खड़े हृदय की वाणी सुनने लगा ; परन्तु इसपर आज यह यातना क्यों ? आज मेरा ऐसा सुखी तो शायद पृथ्वी में कोई नहीं होगा ; परन्तु हृदय में यह करुण स्वर आज क्यों बज रहा है ? परसों तक पृथ्वी मेरी आँखों के सामने नव वसन्त-सी खिल रही थी, कल से उसमें प्राण क्यों नहीं हैं, आज जीवन भार क्यों मालूम होता है ? भगवान् मुझे मृत्यु क्यों नहीं देते ?

"चलो बायस्कोप चलेंगे"—कह कर केशव ने शाम को चिन्तामग्न अच्युत का हाथ पकड़ कर खींचा। अच्युत प्रतिवाद न करके उसके साथ चल पड़ा। रास्ते में केशव ने दाह-क्रिया की सब घटना कह सुनाई। अच्युत चुपचाप सुनता गया। केशव ने अन्त में कहा—मुँह देखने से मालूम होता था, बड़े कष्ट से प्राण निकले हैं।

अच्युत शून्य नेत्रों से उसकी ओर ताकता रहा।

केशव ने फिर कहा—ऐसा मालूम होता था, कि उसे अन्तिम क्षण तक मरने की इच्छा नहीं थी, हृदय में किसी बात की आकांक्षा रह गई।

अच्युत कुछ चिन्तित हो गया। उसे याद आया, कि विवाह के एक पक्ष पहले सन्ध्या के समय खिड़की के नीचे एकान्त में दोनों की अन्तिम इच्छा .....। उसी दिन तो दोनों का बन्धन दृढ़ हुआ था—"एक के मृत्युकाल में दोनों का मिलन होगा।" अच्युत ने कहा था। कमला गम्भीर स्वर से बोली थी—चेष्टा करूँगी। कहते-कहते उसके आँखों से आँसू बहकर कपोल पर आ गए थे, उस दिन की कमला अभी तक अच्युत की आँखों के सामने है। क्या यह उसी उत्तर का प्रभाव है ? परन्तु कमला ने तो अपनी बात पूरी नहीं की। नहीं, इसलिये उसके मन में कष्ट नहीं था, होगी कोई दूसरी बात। अच्युत अपने मन को समझाने लगा।

केशव ने कहा—मगर तुमको एक बार श्मशान

तक जाना चाहिये था। वह तीक्ष्ण दृष्टि से अच्युत के मनोभावों को ताड़ने लगा।

अच्युत ने धीरे-धीरे कहा—नहीं केशव, मेरा श्मशान पर जाना उचित न था। मुझको अगर कमला मृत्युशय्या पर बुलाती, तो भी मैं न जाता। मेरी क्षण-भर की दुर्बलता से मेरी सारी साधना नष्ट हो जाती। मुझे यही आनन्द है, कि कमला ने नारी-जाति का सबसे बड़ा ऐश्वर्य्य पतिप्रेम पाया था। मेरे मरघट जाने से क्या होता, जानते हो? मैं अपने मार्ग से विचलित न हुआ, इसका मुझे आनंद है।

इतने में दोनों बायस्कोप के सामने आ पहुँचे। टिकट लेकर दोनों बायस्कोप में घुसे। फिल्म अच्छा था। केशव तन्मय होकर देखने लगा; परन्तु अच्युत केवल बाहरी आखों से देख रहा था। मन में कितनी पूर्व्व स्मृतियाँ उदय होने लगीं, वह अन्तर्दृष्टि से उन्हीं को देख रहा था। बायस्कोप खतम हो गया, दोनों बाहर निकले। केशव ने पूछा—कहो कैसा तमाशा था?

अच्युत मन में कुछ सोच रहा था। अन्यमनस्क होकर बोला—अच्छा नहीं था।

दूसरे दिन अच्युत बड़ी देर तक केशव की राह देखता रहा। जब केशव न आया, तो वह घर से निकल पड़ा। कमला के मकान के सामने आते ही उसकी इच्छा हुई, एक बार चाची से भेंट करे। हाँ, या नहीं की मीमांसा करते-करते वह मकान से कुछ आगे बढ़ गया था। मन में इच्छा हुई; परन्तु अपमान की बात याद आ गई। वह खड़ा रहा, फिर सोचा, जिसके लिये विवाद था, वह तो है ही नहीं, तो फिर जाने में हर्ज क्या है? वह लौटकर मकान में घुसा। सामने सुनीला पड़ी। अच्युत ने पूछा—चाची कहाँ हैं? "उस कमरे में" कहकर सुनीला दौड़ती हुई चाची से अच्युत का आगमन कहने गई। पीछे-पीछे अच्युत भी दरवाजे पर जाकर बोला—चाची!

वसुमती उसका आना सुनकर कुछ चौंक पड़ी, फिर उसे दरवाजे पर खड़ा देख कर बोली—आओ बेटा, आओ।

उसका मुख देखकर वसुमती की आँखों में अश्रु आ गये। अच्युत गम्भीर हो गया, दृष्टि फेर-फेरकर मकान को देखने लगा। वह मकान आज कुछ श्रीहत-सा मालूम होने लगा, मानों कोई वस्तु उसने देखी थी, वह आज मकान में नहीं है। वही सहन, सहन में तुलसी का पेड़, सहन के बगल में वही कमरा। वह उस कमरे में दृष्टि डालकर देखने लगा; परन्तु हृदय किस वस्तु का अभाव अनुभव कर रहा था, वह निश्चय न कर सका।

रोना खतम होने के बाद वसुमती, कमला की मृत्यु के बारे में बात-चीत करने लगी। अच्युत चुपचाप सुनने लगा। फिर बोला—जिसके लिये विवाद था, वह तो आज विवाद के बाहर चली गई है, अब फिर तुम अपने मातृ-स्नेह की वर्षा मुझ पर करो। फिर मुझे पहले-जैसा अपना बेटा समझो। यह कहकर अच्युत ने अपना सिर उनकी जाँघ पर रक्खा। आँखों से आँसू निकलकर वसुमती की जाँघ पर गिरने लगे। वसुमती की आँखों में भी आँसू आ गये। अच्युत के बालों को खुजलाती हुई बोली—नहीं बेटा, मैंने कभी तुमको गैर नहीं समझा है। उस दिन तुमको बकी थी केवल तुम्हारी और उसकी भलाई के लिये। तुम्हारे लिये मेरे प्राण रोया करते थे। प्रायः देखने की इच्छा हुआ करती थी; परन्तु मैं तुम्हें बुलवाने का साहस नहीं कर सकी, केवल धनेश के भय से। जिसके लिये इतनी सावधानी थी, वह तो चली गई, अब डर किसका। तुम्हारे हाथों में कमला को देने से वह बड़ी सुखी होती, शायद उसकी ऐसी अकाल......कहकर वह फिर साड़ी के आँचल से आँसू पोंछने लगी। फिर बोली—मैं उसकी अंतिम इच्छा पूरी नहीं कर पाई। हाय! अगर मैं जानती कि यही उसका अन्त है!...इतवार की शाम को मुझसे कई बार कहा था—अम्माँ अच्छू को बुला दो, माँ अच्छू को एक बार बुला दो। फिर आँसू आ गये। उन्हें पोंछकर मैंने नहीं बुलाया, केवल धनेश के भय से। तब अगर मैं जानती, यही उसका अन्त है!...कहकर वह सिसक कर रोने लगी। यह सुनते ही

अच्युत के हृदय में बिजली की धारा प्रवाहित हो गई, आँखों में अजस्र धारा बहने लगी। कमला ने अपनी बात पूरी की थी। वह तन्मय दृष्टि से वसुमती के मुँह की ओर देखने लगा। आँसू की बूँदें एक के बाद एक द्रुतगति से निकलती आ रही थीं, मानो उन मधुर वाक्यों को निकालने-वाले मुख को देखने आ रही हों। अच्युत के हृदय के कोने में जो क्षुद्र मेघ-खंड जमा था, वह अब बिलकुल हट गया। हृदय प्रशस्त हो गया, मुख पर तन्मयता छा गई, आँखें चमकने लगीं, बोला—अगर तुम बुलातीं भी, तो मैं न आता। मैं मरघट जा सकता था; मगर नहीं गया। कमला के विवाह के बाद से मैं उसके रास्ते नहीं चला था; ताकि मेरे उत्ताप से उसको कुछ हानि न पहुँचे; परन्तु अब हानि का क्या भय है। अच्युत की आँखों में आँसू आ गये। उसने उन्हें पोंछने की भी चेष्टा नहीं की। अब दुर्बलता प्रकाश करने में शान्ति थी, वह बोला—चाची मेरी बड़ी इच्छा थी, कि मृत्युकाल में एक बार उसे देखूँ। मुझे पूरा विश्वास था, कि हम दोनों की किसी एक के मृत्यु-काल पर भेंट होगी। मैंने ईश्वर से भी यही प्रार्थना की थी; परन्तु न-जाने किस पाप का विधाता ने यह दण्ड दिया।

वसुमती की आँखों में आँसू आ गए। दोनों में किसी ने भी उन्हें पोंछने की चेष्टा नहीं की। अश्रु-धारा ने निकलकर दोनों शोकार्त्त हृदयों को फिर पूर्व स्नेह में बाँध दिया।



"घर आकर अच्युत सोचने लगा—"

घर आकर अच्युत सोचने लगा—कमला ने अपना प्रण पूरा कर दिया। उसके हृदय में अब वृश्चिक् दंशन की यातना उठने लगी। विरह-वेदना मानो उसे ढूँढ़ ही रही थी, अब उसे पाकर साँप की तरह लिपट गई। वह फिर उसी पूर्व प्रश्न की मीमांसा करने लगा—मेरे मरने से पृथ्वी की कितनी हानि होगी, हानि तो कुछ सोचे न मिली, केवल लाभ-ही-लाभ दिखाई दिये, मामूजी के कन्धे पर से एक बोझ उतर जायगा, उनको भी इस यातना के हाथ से छुटकारा मिलेगा। ओफ! उसका ऐसा अभागा आज इस पृथ्वी में कोई नहीं है। ऐसा कोई नहीं है, जिस पर अपनी व्यथा प्रकट कर हृदय को कुछ हलका करे! इस समय उसे बाल्यकाल ही में मृत माता की याद आई। वह फूट-फूटकर रोने लगा।

कमला उसे छोड़कर चली गई। मालूम हुआ वहाँ

उसके इस कष्ट को देखकर व्यंग कर रही है। कह रही है मुझको बाँधने की चेष्टा की थी, देखो मैं कैसे भाग आई हूँ। पार्थिव यातनाओं के हाथ से छुटकारा पा गई हूँ, अब तुम जल-जलकर मरो—मानों यह कहकर वह विकट हास्य करने लगी।

दूसरे दिन केशव ने अच्युत के यहाँ आकर पुकारा। ऊपर की खिड़की से "ठहरो आया" कह कर अच्युत ने नौकर से कमरा खोल देने को कहा। थोड़ी देर में वह केशव के सामने आकर बोला—केशव, आज ही हमको कलकत्ते जाना होगा, अपनी किताबें लेते जाओ। अच्युत आज कुछ प्रफुल्ल मालूम होता था। केशव ने पूछा—आज ही जा रहे हो?

अच्युत दृढ़ स्वर में बोला—हाँ।

केशव—कब तक लौटोगे?

अच्युत—अब नहीं ...... शायद वहीं रहना होगा।

केशव चुप होकर मेज़ की ओर देखने लगा।

अच्युत केशव को चुप देखकर बोला—आज तुम्हें भी छोड़कर जाना होगा।

केशव ने कहा—वहाँ का पता देते जाना।

अच्युत का हृदय पते का नाम सुनकर कुछ काँप उठा। इस विषय को समाप्त करने के लिये उसने कहा—अच्छी बात है।

केशव—तो अभी लिख दो न, शायद बाद को भूल जाओ।

अच्युत मन-ही-मन डर सा गया; पर मन के भाव को छिपाने के लिये उसने मुस्कराकर कहा—क्या होगा, बेकार ममता बढ़ाकर? कोई किसी के साथ आया भी नहीं और जायगा भी नहीं।

केशव ने कहा—लिख दो, शायद कभी कोई जरूरत पड़े।

अच्युत ने अब बिना कुछ कहे-सुने एक कागज पर अपने घर का पता लिख दिया।

कागज़ का टुकड़ा जेब में रखते-रखते केशव बोला—अच्छा मैं खाना खाकर आता हूँ, स्टेशन चलूँगा।

अच्युत मुसकिरा कर बोला—तुम्हारे जाने की कोई जरूरत नहीं; समझे, बेकार तकलीफ होगी।

"चलो जरा सैर कर आयें"—कहकर अच्युत रास्ते पर उतर पड़ा। केशव अच्युत के मुँह की ओर आश्चर्य पूर्वक दृष्टि से देख रहा था। अच्युत को इतना प्रफुल्ल उसने पहले कभी नहीं देखा था। अच्युत के वाक्यों का निर्लिप्त भाव आज उसे अजीब मालूम होने लगा।

घर लौटते समय केशव ने पूछा—गाड़ी कब जाती है?

अच्युत—शायद साढ़े नौ पर। इस वक्त पौने नौ हैं।

केशव ने आश्चर्य्य-भाव से कहा—पौने नौ? फिर आज तुम जा चुके!

अच्युत ने धीरे-धीरे कहा—नहीं, सब सामान ठीक है। खाना खाकर इसपर एक कोट पहन लेगें और चल देंगे।"

केशव घर चला, तो अच्युत की आज की बातचीत सोचने लगा। उसे स्टेशन जाने से भी अच्युत ने मना किया, यह सोचकर उसे आश्चर्य्य हुआ। उसे अपने लौट आने पर कुछ पछतावा भी हुआ। इतने दिनों की घनिष्ठता के बाद आज मैं उसे स्टेशन तक पहुँचाने भी न गया! यह ठीक नहीं हुआ। मुझे उसको पहुँचाकर ही घर आना था।

अब समय ही कहाँ है। खाना खाने बैठूँगा, तो कम-से-कम दस मिनट और लग जायँगे। यह सोचकर वह आधे रास्ते ही से लौट पड़ा और अच्युत के घर पर आ पहुँचा।

केशव ने पूछा—अच्युत अभी हैं?

प्रमिला—नहीं, वह कहीं गए हैं।

केशव—क्या स्टेशन चले गए?

प्रमिला—स्टेशन क्यों जायँगे, ऐसी तो कोई बात नहीं।

केशव को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा—वह आज कलकत्ते जा रहे हैं न?

प्रमिला बोली—नहीं तो।

केशव की समझ में कुछ न आया। पूछा—आज जानेवाले थे, क्या जाना नहीं हुआ ?

प्रमिला ने जवाब दिया—वह कहीं जानेवाले नहीं थे। बैठिये कहीं गए हैं, अभी आते होंगे।

केशव को अच्युत के झूठ बोलने पर बड़ा दुःख हुआ। मुझसे भी कपट! अवश्य वह किसी गुप्त काम से जानेवाला था; इसीलिये उसने मुझे धोखा दिया है—यह सोचकर वह आगे बढ़ा। सहसा उसका मित्र नारायण मिल गया। केशव ने व्यस्त होकर पूछा—तुमने अच्युत को देखा है ?

नारायण ने कहा—हाँ, अभी कोई २० मिनट हुए, वह इधर गया है। कहता था सिकन्दरबाग जा रहा हूँ। ओह! कहकर केशव बिना कुछ पूछे हुए लम्बी चाल से चलने लगा। कुछ दूर चलकर वह फिर तेजी से भागने लगा, क्षण-भर की देर भी उसे भारी मालूम होने लगी। हृदय एक अज्ञात शंका और उद्वेग से भरा था। कभी दौड़ता, फिर थक जाने से रुककर कदम बढ़ाकर चलने लगता। मन में अद्‌भुत कल्पनाएँ भरी थीं। रात के प्रायः दस बजे थे। पथ निर्जन हो गया था। दोनों ओर पेड़ों की छाया जमीन पर गिर कर नाना प्रकार की सूरतें बना रही थी; परन्तु केशव ने यह सब कुछ नहीं देखा। उसका व्यग्र मन अच्युत को ढूँढ़ रहा था। दृष्टि सामने का पथ छोड़कर और कहीं नहीं जाती थी।

सामने एक पीपल का पेड़ पड़ा, मन में कुछ भय हुआ, केशव ने दृष्टि उठाई। देखा, वह पीछे चला गया। अचानक, केशव को सामने एक मनुष्य दिखाई दिया। वह गौर से देखने लगा—दूर होने के कारण, मनुष्य अच्छी तरह से पहचाना नहीं जाता था; परन्तु उसकी चाल से केशव को मालूम हुआ, वह अच्युत ही है, अपने अनुमान को पक्का करने के लिए वह अच्युत के पोशाक की याद करके इस मनुष्य के कपड़ों से धीरे-धीरे मिलाने लगा। जब, अच्युत की कमीज, धोती, चप्पल, सब ही इस मनुष्य के कपड़ों से मिल गये, तो उसे पूरा विश्वास हो गया, कि यह अच्युत ही है।

अच्युत को पहचानते ही उसकी शंका दूर हो गई। हृदय कौतूहल से पूर्ण हो गया। वह उस मनुष्य के पीछे छिप-छिपकर चलने लगा। अच्युत के कार्य्य कलापों को ताड़ने के लिए उसके हृदय में बड़ा औत्सुक्य था। उसकी आहट पाकर अच्युत घूम पड़े, तो सब मामला गड़बड़ हो जायगा, यह सोचकर केशव और कुछ दूर पीछे हटकर चलने लगा। धीरे-धीरे अच्युत मरघट के पास आया। सुनसान होने से केशव को किंचित् डर मालूम हो रहा था; परन्तु सामने मनुष्य है, यह सोचकर उसके हृदय में कुछ साहस आया। भय के कारण अच्युत ने एक बार दृष्टि दूसरी ओर कर ली थी। दृष्टि उठते ही देखा—वह मनुष्य अदृश्य हो गया है। केशव चकित होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगा; परन्तु कोई दिखाई न दिया। वह दौड़कर तीक्ष्ण दृष्टि से इधर-उधर देखने लगा। भय से मन एक बार काँप उठा; परन्तु उसने अच्युत को पहले ही पहचान लिया था, उसका यहाँ आने का कारण जानने के लिये वह बड़ा उत्सुक था और मन में कुछ अशुभ शंका भी थी। वह दौड़कर मरघट के सामने आया—वहाँ भी सुनसान था।

सामने बिल्कुल साफ मैदान देखकर उसे निश्चय हो गया, कि अच्युत आगे नहीं बढ़ा है, वह इधर-उधर देखकर दग्धभूमि पर उतरने लगा और चारों ओर अन्धकार भेद कर दृष्टि दौड़ाने लगा। निकट आते ही उसे एक मनुष्य बैठा दिखाई पड़ा। उसने जेब से सर्च लाइट निकाल कर जलाई। देखा अच्युत भूमि पर छाती के बल लेटकर एक हाथ से जमीन को इस तरह पकड़े हुए है, मानो किसी से आलिंगन कर रहा है, और दूसरे हाथ में कोई चीज लिये मुँह के पास ले जा रहा है।

केशव ने लाइट फेक दी और लपक कर अच्युत की कलाई पकड़ ली। अच्युत कुहनी के बल बैठ कर आश्चर्य से देख रहा था। केशव ने देखा, उसके हाथ में शीशी है। उसने शीशी छीन कर नदी में फेंक दी और गम्भीर होकर बोला—अच्युत! यह

क्या कर रहे हो ? अच्युत की दृष्टि ज्योतिर्हीन हो गई। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। बोला—केशव, तुमने ऐसी शत्रुता क्यों की ? मेरे हृदय की व्यथा को तुम नहीं जानते। मैं अब सह नहीं सकता। कहकर वह सिसकने लगा।

केशव ने गम्भीर भाव से कहा — आत्म-हत्या का - पुरुषों का काम है। ईश्वर ने मनुष्य को सुख - दुःख उसके मन को निर्मल रखने के लिये दिये हैं। आत्म-हत्या वही करते हैं, जो पशु से भी अधम होते हैं। जो अपना भार आप ही वहन नहीं कर सकते। देखो, पशु को भी अपने प्राणों की ममता होती है।


केशव ने लाइट फेंक दी और लपककर अच्युत की कलाई पकड़ ली।

अच्युत ने कहा—जब मनुष्य शोक से अधीर हो जाता है, तब अपना भार वहन करने के योग्य वह नहीं रह जाता।

केशव—शोक को धीरज और सब्र से पचा लेने में ही तो मनुष्यत्व है।

अच्युत — आज तुमने मुझसे फिर शत्रुता की। जिस भार से मैं आज अपने को मुक्त करने के लिये यहाँ आया था, उसी भार को तुमने और बढ़ा दिया। देखूँ अगर वहन करने का सामर्थ्य हो— यह कहकर वह वहीं बैठ गया। उस निस्तब्धता में उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। आँसू ही आज उसके पास केवल एक शांति देनेवाले थे।

केशव अच्युत को घर लाया— बहुत कुछ समझा कर वह निकल पड़ा। चलते-चलते सोचने लगा—क्यों ऐसा होता है ? ईश्वर ने जब दुःख का सृजन किया, तो मनुष्य को उसके सहन करने की शक्ति क्यों नहीं दी ? क्यों ऐसा होता है ?

—रथीन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय।



वह शराब

आह, प्रिये ! लाओ हाथों से, भर शराब की प्याली—
गत गुनाह, भावी आशङ्का की चिन्ता से ख़ाली ।

सघन कुंज के तले, हाथ में रोटी का हो टुकड़ा,
प्याले में थोड़ी शराब, गोदी में 'तेरा' मुखड़ा ।
और गूँजता हो कानों में 'तेरा' मधुर तराना,
किस बिहिश्त की आशा में फिर मुझको है अकुलाना ?

भरो प्राण ! आ प्याली ; जलती है वसन्त की ज्वाला, चलो झोंक दें पश्चात्तापों की, बेसुध हो, माला ।
समय, पंख पर देखो चढ़कर चाह रहा उड़ जाना, जोह रहा हूँ शून्य प्रान्त में प्रिये ! तुम्हारा आना !

किस चिराग़ की किरणों से मैं स्वर्ग-मार्ग पहचानूँ ?
अन्तस्तल की नाराज़ी को कैसे आज मना लूँ ?
पूछ रहे—पोथी के पन्ने तेरी प्यास बुझाते ?
नहीं ; चलो फिर अपने पथ पर, मन में क्यों सकुचाते ?

इसी लिये हे प्रिये ! मचलता है मेरा अनुराग ! भर कर प्याला निज हाथों से, बरसा दो ना फाग !!
जीवन की अस्थिरता को मत रुककर हाय ! बढ़ाओ ! प्यासे होठों तक मतवाली ! अपनी प्याली लाओ !!

जब तक खिली चाँदनी मेरे हृदय-गगन में रहती ।
तब तक बूँदें तव प्याले की कितनी मीठी लगतीं !
किन्तु हाय ! क्या सदा रहेंगी बहती मधुमय लहरें ?
ढलने दो प्याले ; चिन्ता की घड़ियाँ क्यों अब सिहरें ?

बरसा कर अधरों से अमृत हरी करो मृत आशा ! 'कुहू' कूकती, पतझड़ है ; यह कैसा अजब तमाशा !
दो अनुकम्पा का जीवन या बिखराकर चिनगारी, रोष भरे नयनों से, कर दो, मेरी अन्त तयारी ।

("उमर ख़य्याम" के पथ पर)

—"वीरात्मा"

मौलाना हसरत मोहानी



अगर तुम्हें क्रांति की तसवीर देखनी हो, जीती-जागती, बोलती-चालती तस्वीर, अपनी सारी विभूति, सारी कला के साथ, तो मौलाना हसरत मोहानी को देखो। तुम्हें ज्ञात होगा, कि क्रांति के रूप और तत्त्व में कोई सादृश्य नहीं होता। लेनिन क्या था? बिलकुल साधारण मज़दूर, जैसा रूस के किसी गाँव में देख सकते हो। चेहरे पर तेज और प्रतिभा और संग्राम का नाम नहीं। गांधी को देखो। इससे ज्यादा ग़रीब, सरल, देहकानी सूरत और किसकी होगी? बस ऐसा मालूम होता है, कि कोई मज़दूर अभी काम करके लौटा है। हसरत के चेहरे पर भी वही नम्रता है, वही दीनता है; पर उसके अन्दर क्रांति का अथाह समुद्र लहरें मार रहा है। ठिंगना क़द, स्थूलता की ओर झुकी हुई सुगठित देह, साँवला रंग, चेहरे पर चेचक के दाग़, ख़सख़सी दाढ़ी, फ़ैशन और नुमाइश से कोसों दूर, त्याग और निग्रह की मूर्ति, जिसे रूईदार दगले और खद्दर से स्वाभाविक प्रेम है। अलीगढ़ के ठाट-बाट, रंग-ढंग का जादू कभी उन पर नहीं चला। हम निश्चय नहीं कह सकते; पर हमने तो उन्हें हमेशा फ़ैशन के खिलाफ़ कमर कसे, तलवार खींचे पाया। मुसलमानों में शायद हसरत ही वह बुज़ुर्ग हैं जिन्होंने आज से पन्द्रह वर्ष पहले भारत की पूरी आज़ादी की कल्पना की और आज तक उसी पर क़ायम हैं। पहलेपहल वह स्वर्गीय महात्मा तिलक के अनुयायी हुए। नरम राजनीति में उनकी गर्म तबीयत के लिये कोई खिंचाव, कोई रुचि, न थी। थोड़े ही दिनों में वह अपने गुरु से भी चार क़दम और आगे बढ़ गए और उस समय पूर्ण स्वराज्य का डंका बजाया। जब कांग्रेस का गर्म-से-गर्म नेता भी पूर्ण स्वराज्य का नाम लेते काँपता था। उस ज़माने में हसरत का कोई साथी न था, लोग उन्हें झक्की समझते थे; पर वह शेर अपनी धुन का पक्का था। अपने लक्ष्य से उसने कभी मुँह नहीं मोड़ा। नेहरू-रिपोर्ट ने बहुत से मुसलमानों को कांग्रेस से अलग कर दिया। पूरी आज़ादी का दीवाना हसरत भी उस रिपोर्ट का दुश्मन हो गया। मौलाना के विचारों में उस वक्त हिन्दुओं से विरोध की झलक आने लगी थी। उनके हिन्दू मित्रों की समझ में उनकी यह नीति न आती थी। वे समझने लगे, इन पर भी नौकरशाही का जादू चल गया; पर अब विदित हुआ, कि मौलाना अपने मार्ग से ज़रा भी विचलित नहीं हुए थे। नेहरू-रिपोर्ट का आदर्श था डोमिनियन स्टेटस। मौलाना खूब जानते हैं, कि जब तक भारत की लगाम अँगरेज़ों के हाथ में रहेगी, हमारी शासन-व्यवस्था कितनी ही निर्दोष क्यों न हो, उसका संचालन इस प्रकार किया जा सकता है, भिन्न-भिन्न जातियों और मज़हबों को इस भाँति लड़ाया जा सकता है, कि नौकरशाही का हमेशा बोलबाला रहे। इसलिये ज्यों ही कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव स्वीकार किया, मौलाना हसरत संग्राम में कूद पड़े। उन्होंने हिन्दू-मुसलिम समझौते की प्रतीक्षा नहीं की, क्योंकि वह जानते हैं, कि वर्तमान दशाओं में कोई समझौता होना असंभव है। यह संग्राम का समय है, समझौते का समय बाद को आवेगा, जब कि विजय प्राप्त हो जायगी। कितने ही बने हुए लोग, जो कांग्रेस का विरोध इसलिये करते थे, कि यह तो डोमिनियन स्टेटस को अपना इष्ट बनाए हुए हैं और हम स्वाधीनता के उपासक हैं, कांग्रेस का क्यों साथ दें, वह लोग आज समझौते का बहाना निकालकर जाति की आँखों में धूल झोंकना और अपनी शान बनाए रखना चाहते हैं; पर क़ौम उन्हें खूब समझ रही है और अब उनके पंजे में आनेवाली नहीं।

मौलाना हसरत का समस्त जीवन ही व्रत है। औरों की तरह उन्होंने क़ानून पढ़कर धन कमाने की इच्छा नहीं की, सरकारी नौकरी के लिये कभी सरकार की चौखट पर नाक नहीं रगड़ी। डिग्री लेने के बाद ही उन्होंने 'उर्दू-मुअल्ला' नामक साहित्यिक पत्रिका अलीगढ़ से निकाली और एक मुद्दत तक उसे चलाते रहे। जब वह जेल चले गए तो पत्रिका बन्द हो गई। कुछ दिनों से आपने मुस्तकिल नाम का दैनिक पत्र निकाला है और उसी को चला रहे हैं। उर्दू-मुअल्ला के दो उद्देश्य थे—साहित्य और राजनीति। उसके साहित्यिक भाग में जितनी सुरुचि और मौलिकता होती थी, उसके राजनैतिक भाग में उतनी ही निर्भीकता और उदारता। उर्दू-साहित्य के उत्थान में मौलाना ने जो काम किया है वह चिर-स्थायी रहेगा।

मौलाना हसरत उर्दू के खास कवि हैं और उर्दू कवियों में उनका स्थान सबसे ऊँचा नहीं, तो किसी से कम भी नहीं। जागृति के भाव तो आपके कलाम में जितने मिलेंगे, उर्दू के किसी कवि के कलाम में नहीं मिल सकते। उर्दू कविता के पुराने रंग को निभाते हुए उन्होंने नई उमंगों और उद्‌गारों को उसमें ऐसा भरा है, कि उनका कलाम अपने रंग में निराला है। प्रेम के रहस्य जितनी खूबी से आपने दिखाए हैं, जितनी मार्मिकता से उसका चित्रण किया है, हम दावे से कह सकते हैं, कि उर्दू के किसी कवि ने भी नहीं किया और शब्दयोजना तो आपका हिस्सा है। उसमें कोई आपका सानी नहीं। आपके शेरों में कितने ही ऐसे शेर हैं, जिनमें दोहरे अर्थ निकलते हैं। साधारण तौर पर देखिए, तो वह मामूली शृंगार का शेर है; लेकिन जरा ग़ौर से पढ़िए, तो उसमें आपको एक दूसरा ही समाँ दिखाई देगा—उसमें आज़ादी के दीवाने की तड़प है, नाला है, फ़रियाद है। उर्दू के प्राचीन साहित्य की इतनी खोज भी किसी ने कम की होगी। आज उर्दू के पुराने कवियों से जो उर्दू की जनता को इतनी दिलचस्पी है, इसका सेहरा हसरत ही के सिर है।

१९२१ के असहयोग आन्दोलन में कानपुर में स्वदेशी कपड़ों की एक दूकान 'ख़िलाफ़त स्टोर' के नाम से खुली थी। हसरत उसके मैनेजर थे। उसी दूकान से मिला हुआ स्वदेशी वस्त्रों का भंडार था। भंडार में बिजली की रोशनी और पंखे थे; मगर ख़िलाफ़त स्टोर में इन तकल्लुफ़ात का गुज़र न था। राष्ट्र का यह सेवक ताड़ की एक पंखियाँ लिए बैठा रहता और जब गर्मी बहुत सताती, तो उसे झल लेता था। यह उनकी सादगीपसन्द या मुश्किल-पसन्द प्रकृति की एक छोटी-सी मिसाल है। अमीरी के चोंचलों से उन्हें घृणा है। जिस दिल में आज़ादी की लगन समाई हुई हो उसे टीमटाम से क्या मतलब! आज़ादी पहले दिल से शुरू होती है और दिल की आज़ादी यही त्याग—यही निग्रह—है। जो अपनी जरूरतों का गुलाम नहीं वह हमेशा आज़ाद है। जो लोग दिखावे और ठाठ के गुलाम होकर आज़ादी की रट लगाते हैं, वे आज़ादी को बदनाम करते हैं।

एक बार कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में इस प्रस्ताव पर बहस हुई—स्वराज छोटी-छोटी क़िस्तों में लिया जाना चाहिए। डिबेट अँगरेज़ी में था। डाक्टर दीवानचन्द प्रधान थे। हसरत भी मौजूद थे। शायद आपको अँगरेज़ी बोलने का अभ्यास नहीं है। कांग्रेस के कितने ही अन्य लीडरों की भाँति अँगरेज़ी में बात करना आप अपने लिये शान की बात नहीं समझते। आप मंच पर गए और दो-चार वाक्य बोलकर चले आए; पर उन थोड़े से शब्दों में आप एक पूरा व्याख्यान दे आए।

किसी अगले अंक में हम मौलाना हसरत की काव्य-कला की चर्चा करेंगे।

—प्रेमचन्द।

शराब की दूकान



ग्रेस कमेटी में यह सवाल पेश था—शराब और ताड़ी की दूकानों पर कौन धरना देने जाये? कमेटी के पचीस मेम्बर सिर झुकाए बैठे थे; पर किसी के मुँह से बात न निकलती थी। मुआमला बड़ा नाजुक था। पुलीस के हाथों गिरफ्तार हो जाना, तो ज्यादा मुश्किल बात न थी। पुलीस के कर्मचारी अपनी जिम्मेदारियों को समझते हैं। यों अच्छे और बुरे तो सभी जगह होते हैं; लेकिन पुलीस के अफ़सर कुछ लोगों को छोड़कर, सभ्यता से इतने खाली नहीं होते, कि जाति और देश पर जान देनेवालों के साथ दुर्व्यवहार करें; लेकिन नशेबाजों में यह जिम्मेदारी कहाँ? उनमें तो अधिकांश ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें घुड़की-धमकी के सिवा और किसी शक्ति के सामने झुकने की आदत नहीं। मार-पीट से नशा हिरन हो सकता है; पर शांतिवादियों के लिये तो वह दरवाजा बंद है। तब कौन इस ओखली में सिर दे? कौन पियक्कड़ों की गालियाँ खाय? बहुत संभव है, कि वे हाथा-पाई कर बैठें। उनके हाथों पिटना किसे मंजूर हो सकता था? फिर पुलीसवाले भी बैठे तमाशा न देखेंगे। उन्हें और भी भड़काते रहेंगे। पुलीस की शह पाकर यह नशे के बंदे जो कुछ न कर डालें, वह थोड़ा! ईंट का जवाब पत्थर से दे सकते नहीं, और इस समुदाय पर विनती का कोई असर नहीं!

एक मेम्बर ने कहा—मेरे विचार में तो इन जातों में पंचायतों को फिर सँभालना चाहिए। इधर हमारी लापरवाई से उनकी पंचायतें निर्जीव हो गई हैं। इसके सिवा मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता।

सभापति ने कहा—हाँ, यह एक उपाय है। मैं इसे नोट किये लेता हूँ; पर धरना देना जरूरी है।

दूसरे महाशय बोले—उनके घरों पर जाकर समझाया जाय, तो अच्छा असर होगा।

सभापति ने अपनी चिकनी खोपड़ी सहलाते हुए कहा—यह भी अच्छा उपाय है; मगर धरने को हम लोग त्याग नहीं सकते।

फिर सन्नाटा हो गया।

पिछली क़तार में एक देवी भी मौन बैठी हुई थीं। जब कोई मेम्बर बोलता, वह एक नजर उसकी तरफ़ डालकर फिर सिर झुका लेती थीं। यही कांग्रेस की लेडी मेम्बर थीं। उनके पति महाशय जी० पी० सक-सेना कांग्रेस के अच्छे काम करनेवालों में थे। उनका देहान्त हुए तीन साल हो गए थे। मिसेज सकसेना ने इधर एक साल से कांग्रेस के कामों में भाग लेना शुरू कर दिया था और कांग्रेस कमेटी ने उन्हें अपना मेम्बर चुन लिया था। वह शरीफ़ घरानों में जा-जाकर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं। जब कभी कांग्रेस के प्लेटफ़ार्म पर बोलने खड़ी होतीं, तो उनका जोश देखकर ऐसा मालूम होता था, आकाश में उड़ जाना चाहती हैं। कुन्दन का-सा रंग लाल हो जाता था, बड़ी-बड़ी करुण आँखें—जिनमें जल भरा हुआ मालूम होता था—चमकने लगती थीं। बड़ी ख़ुशमिज़ाज, और उसके साथ बला की निर्भीक स्त्री थीं। दबी हुई चिंगारी थी, जो हवा पाकर दहक उठती है। उनके मामूली शब्दों में इतना आकर्षण कहाँ से आ जाता था, कह नहीं सकते। कमेटी के कई जवान मेम्बर, जो पहले कांग्रेस में बहुत कम आते थे, अब बिला नाग़ा आने लगे थे। मिसेज सकसेना कोई भी प्रस्ताव करें, उसका अनुमोदन करनेवालों की कमी न थी। उनकी सादगी, उनका उत्साह, उनकी विनय, उनकी मृदुवाणी कांग्रेस पर उनका सिक्का जमाए देती थी। हर आदमी उनकी ख़ातिर सम्मान की सीमा तक करता था; पर उनकी स्वाभाविक नम्रता उन्हें अपने दैवी साधनों से पूरा-पूरा फ़ायदा न उठाने देती थी। वह जब कमरे में आतीं

लोग खड़े हो जाते थे ; पर वह पिछली सफ़ से आगे न बढ़ती थीं।

मिसेज़ सकसेना ने प्रधान से पूछा—शराब की दूकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं ?

सबकी आँखें उनकी ओर उठ गईं। इस प्रश्न का आशय सब समझ गए।

प्रधान ने कातर स्वर में कहा—महात्माजी ने तो यह काम औरतों ही को सुपुर्द करने पर जोर दिया है ; पर.........। मिसेज़ सकसेना ने उन्हें अपना वाक्य पूरा न करने दिया। बोलीं—तो फिर मुझे इस काम पर भेज दीजिए।

लोगों ने कुतूहल की आँखों से मिसेज़ सकसेना को देखा। यह सुकुमारी, जिसके कोमल अंगों में शायद हवा भी चुभती हो, गंदी गलियों में, ताड़ी और शराब की दुर्गंध भरी दूकानों के सामने जाने और नशे से पागल आदमियों की कलुषित आँखों और बाहों का सामना करने को कैसे तैयार हो गई !

एक महाशय ने अपने समीप के आदमी के कान में कहा—बला की निडर औरत है !

उन महाशय ने जले हुए शब्दों में उत्तर दिया—हम लोगों को काँटों में घसीटना चाहती है, और कुछ नहीं। यह बेचारी क्या पिकेटिंग करेंगी। दूकान के सामने खड़ा तक तो हुआ न जायगा।

प्रधान ने सिर झुकाकर कहा—मैं आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ ; लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है, कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको खबर नहीं, नशेबाज़ लोग कितने मुँहफट होते हैं। विनय तो वह जानते ही नहीं !

मिसेज़ सकसेना ने व्यंग्य भाव से कहा—तो क्या आपका विचार है, कि कोई ऐसा ज़माना भी आवेगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायँगे ? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्माजी ने कुछ समझकर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है ? मैं नहीं कह सकती, कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी ; पर इस कर्तव्य को टालने से काम न चलेगा।

प्रधान ने शशोपंज में पड़कर कहा—मैं तो आपको इस काम के लिये घसीटना उचित नहीं समझता, आगे आपको अख्तियार है !

मि॰ सकसेना ने जैसे विजय का आलिंगन करते हुए कहा—मैं आपके पास फ़रियाद लेकर न आऊँगी, कि मुझे फ़लाँ आदमी ने मारा, या गाली दी। इतना जानती हूँ, कि अगर मैं सफल हो गई, तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी, जो सोलहों आने अपने हाथ में ले लें।

इस पर एक नौजवान मेम्बर ने कहा—मैं सभापतिजी से निवेदन करूँगा, कि मिसेज़ सकसेना को यह काम देकर आप हिंसा का सामान कर रहे हैं। इससे यह कहीं अच्छा है, कि आप मुझे यह काम सौंपें।

मिसेज सकसेना ने गर्म होकर कहा—आपके हाथों हिंसा होने का डर और भी ज्यादा है।

इस नौजवान मेम्बर का नाम था जयराम। एक बार एक कड़ा व्याख्यान देने के लिये जेल हो आए थे ; पर उस वक्त उनके सिर गृहस्थी का भार न था। क़ानून पढ़ते थे। अब उनका विवाह हो गया था, दो-तीन बच्चे भी हो गए थे, दशा बदल गई थी। दिल में वही जोश, वही तड़प, वही दर्द था ; पर अपनी हालत से मजबूर थे।

मिसेज़ सकसेना की ओर नम्र आग्रह से देखकर बोले—आप मेरी खातिर से इस गन्दे काम में हाथ न डालें। मुझे एक सप्ताह का अवसर दीजिए। अगर इस बीच में कहीं दंगा हो जाय, तो आपको मुझे निकाल देने का अधिकार होगा।

मिसेज़ सकसेना जयराम को खूब जानती थीं। उन्हें मालूम था, कि यह त्याग और साहस का पुतला है और अब तक सिर्फ़ परिस्थितियों के कारण पीछे दबका हुआ था। इसके साथ ही वह यह भी जानती थीं, कि इसमें वह धैर्य और बर्दाश्त नहीं है, जो पिकेटिंग के लिये लाज़मी है। जेल में उसने दारोगा को अपशब्द कहने पर चाँटा लगाया था और उसकी सज़ा तीन महीने और बढ़ गई थी। बोलीं—आपके सिर गृहस्थी का भार है। मैं घमण्ड नहीं करती ; पर

जितने धैर्य से मैं यह काम कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते।

जयराम ने उसी नम्र आग्रह के साथ कहा—आप मेरे पिछले रेकार्ड पर फ़ैसला कर रही हैं। आप भूलती जाती हैं, कि आदमी की अवस्था के साथ उसकी उद्दंडता घटती जाती है।

प्रधान ने कहा—मैं चाहता हूँ, महाशय जयराम इस काम को अपने हाथों में लें।

जयराम ने प्रसन्न होकर कहा—मैं सच्चे हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

मिसेज़ सकसेना ने निराश होकर कहा—महाशय जयराम, आपने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है और मैं इसे कभी क्षमा न करूँगी। आप लोगों ने इस बात का आज एक नया परिचय दे दिया, कि पुरुषों के अधीन स्त्रियाँ अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकतीं।

(२)

दूसरे दीन, तीसरे पहर जयराम पाँच स्वयंसेवकों को लेकर बेगमगंज के शराबख़ाने का पिकेटिंग करने जा पहुँचा। ताड़ी और शराब दोनों की दूकानें मिली हुई थीं। ठीकेदार भी एक ही था। दूकान के सामने, सड़क की पटरी पर, अन्दर के आँगन में नशेबाज़ों की टोलियाँ विष में अमृत का आनन्द लूट रही थीं। कोई वहाँ अफ़लातून से कम न था। कहीं अपनी वीरता की डींगें थीं, कहीं अपने दान-दक्षिणा के पचड़े, कहीं अपने बुद्धि-कौशल का आलाप। अहंकार नशे का मुख्य रूप है।

एक बूढ़ा शराबी कह रहा था—भैया जिन्दगानी का कोई भरासा नहीं, हाँ, कोई भरोसा नहीं, मेरी बात मान लो, जिन्दगानी का कोई भरोसा नहीं। बस यही खाना-खिज़ाना याद रह जायगा। धन-दौलत, जगह-जमीन सब धरी रह जायगी!

दो ताड़ीबाज़ों में एक दूसरी ही बहस छिड़ी हुई थी—

"हम तुम रिआया हैं भाई, हमारी मजाल है, कि सरकार के सामने सिर उठा सकें!"

"अपने घर में बैठकर बादशाह को गालियाँ दे लो; लेकिन मैदान में आना कठिन है।"

"कहाँ की बात भैया, सरकार तो बड़ी चीज है, लाल पगड़ी देखकर तो घर में भाग जाते हो।"

"छोटा आदमी भर पेट खा के बैठता है, तो समझता है, अब बादशाह हमीं हैं; लेकिन अपनी हैसियत को भूलना न चाहिए।"

"बहुत पक्की बात कहते हो खाँ साहब। अपनी असलियत पर डटे रहो। जो राजा है, वह राजा है, जो परजा है वह परजा है। भला परजा कहीं राजा हो सकता है?"

इतने में जयराम ने आकर कहा—राम-राम! भाइयो राम-राम!!

पाँच-छः खद्दरधारी मनुष्यों को देखकर सभी लोग उनकी ओर शंका और कुतूहल से ताकने लगे। दूकानदार ने चुपके से अपने एक नौकर के कान में कुछ कहा—नौकर दूकान से उतरकर चला गया।

जयराम ने झंडे को जमीन पर खड़ा करके कहा—भाइयो, महात्मा गांधी का हुक्म है, कि आप लोग ताड़ी-शराब न पियें। जो रुपए आप यहाँ उड़ा देते हैं, वह अगर अपने बाल-बच्चों को खिलाने-पिलाने में खर्च करें, तो कितनी अच्छी बात हो! जरा देर के नशे के लिये आप अपने बाल-बच्चों को भूखों मारते हैं, गंदे घरों में रहते हैं, महाजन की गालियाँ खाते हैं। सोचिए, इस रुपए से आप अपने प्यारे बच्चों को कितने आराम से रख सकते हैं!

एक बूढ़े शराबी ने अपने साथी से कहा—भैया, है तो बुरी चीज, घर तबाह करके छोड़ देती है। मुदा इतनी उमिर पीते कट गई, तो अब मरते दम क्या छोड़ें? उसके साकी ने समर्थन किया—पक्की बात कहते हो चौधरी! जब इतनी उमिर पीते कट गई, तो अब मरते दम क्या छोड़ें!

जयराम ने कहा—वाह! चौधरी, यही तो उमिर है छोड़ने की। जवानी तो दीवानी होती है, उस वक्त सब कुछ मुआफ़ है।

चौधरी ने तो कोई जवाब न दिया; लेकिन उसके साथी ने जो काला, मोटा, बड़ी-बड़ी मूछोंवाला आदमी था, सरल आपत्ति के भाव से कहा—अगर पीना बुरा है, तो अँगरेज क्यों पीते हैं?

जयराम वकील था, उससे बहस करना भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। बोला—यह तुमने बहुत अच्छा सवाल पूछा भाई। अँगरेजों के बाप-दादा अभी डेढ़-दो सौ साल पहले लुटेरे थे। हमारे-तुम्हारे बाप-दादा ऋषि-मुनि थे। लुटेरों की संतान पिए तो पीने दो। उनके पास न कोई धर्म है, न नीति; लेकिन ऋषियों की संतान उनकी नक़ल क्यों करे? हम और तुम उन महात्माओं की संतान हैं, जिन्होंने दुनिया को धर्म सिखाया, जिन्होंने दुनिया को आदमी बनाया। हम अपना धर्म छोड़ बैठे, उसी का फल है, कि आज हम गुलाम हैं; लेकिन अब हमने गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ने का फैसला कर लिया है और"...

एकाएक एक थानेदार और चार-पाँच कांस्टेबल आ खड़े हुए।

थानेदार ने चौधरी से पूछा—यह लोग तुमको धमका रहे हैं?

चौधरी ने खड़े होकर कहा—नहीं हजूर, यह तो हमें समझा रहे हैं। कैसे प्रेम से समझा रहे हैं, कि वाह!

थानेदार ने जयराम से कहा—अगर यहाँ फ़िसाद हो जाय, तो आप ज़िम्मेदार होंगे?

जयराम—मैं उस वक्त तक ज़िम्मेदार हूँ, जब तक आप न रहें।

"आपका मतलब है, कि मैं फ़िसाद कराने आया हूँ?"

"मैं यह नहीं कहता; लेकिन आप आए हैं, तो अँगरेज़ी साम्राज्य की अतुल शक्ति का परिचय ज़रूर ही दीजिएगा। जनता में उत्तेजना फैलेगी। तब आप पिल पड़ेंगे और दस-बीस आदमियों को मार गिरायेंगे। यही सब जगह होता है, और यहाँ भी होगा।"

सब-इंस्पेक्टर ने ओंठ चबाकर कहा—मैं आपसे कहता हूँ, यहाँ से चले जाइए, वरना मुझे ज़ाबते की कारवाई करनी पड़ेगी।

जयराम ने अविचलित भाव से कहा—और मैं आपसे कहता हूँ, कि आप मुझे अपना काम करने दीजिए। मेरे बहुत से भाई यहाँ जमा हैं और मुझे उनसे बात-चीत करने का उतना ही हक़ है, जितना आपको!

इस वक्त तक सैकड़ों दर्शक जमा हो गए थे। दारोग़ा ने अफ़सरों से पूछे बग़ैर और कोई कारवाई करना उचित न समझा। अकड़ते हुए दूकान पर गए और कुरसी पर पाँव रखकर बोले—यह लोग तो माननेवाले नहीं हैं!

दूकानदार ने गिड़गिड़ाकर कहा—हजूर, मेरी तो बधिया बैठ जायगी!

दारोगा—दो-चार गुंडे बुलाकर भगा क्यों नहीं देते? मैं कुछ न बोलूँगा। हाँ, ज़रा एक बोतल अच्छी-सी भेज देना। कल न-जाने क्या भेज दिया, कुछ मज़ा ही नहीं आया।

थानेदार चला गया, तो चौधरी ने अपने साथी से कहा—देखा कल्लू, थानेदार कितना बिगड़ रहा था। सरकार चाहती है, कि हम लोग खूब शराब पियें और कोई हमें समझाने न पावे। शराब का पैसा भी तो सरकार ही में जाता है?

कल्लू ने दार्शनिक भाव से कहा—हरएक बहाने से पैसा खींचते हैं सब।

चौधरी—तो फिर क्या सलाह है? है तो बुरी चीज?

कल्लू—बहुत बुरी चीज है भैया, महात्माजी का हुक्म है, तो छोड़ ही देना चाहिए।

चौधरी—अच्छा तो यह लो। आज से अगर पिये तो दोगला!

यह कहते हुए चौधरी ने बोतल ज़मीन पर पटक दी। आधी बोतल शराब ज़मीन पर बहकर सूख गई।

जयराम को शायद ज़िंदगी में कभी इतनी खुशी न हुई थी। ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाकर उछल पड़े।

उसी वक्त दोनों ताड़ी पीनेवालों ने भी 'महात्माजी की जय' पुकारी और अपनी हाँड़ी जमीन पर पटक दी। एक स्वयंसेवक ने लपककर फूलों की माला ली और चारों आदमियों के गले में डाल दी।

(३)

सड़क की पटरी पर कई नशेबाज़ बैठे इन चारों आदमियों की तरफ़ उस दुर्बल भक्ति से ताक रहे थे, जो पुरुषार्थहीन मनुष्यों का लक्षण है। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति न था, जो अँगरेज़ों की भाँति मदिरा या ताड़ी को ज़िन्दगी के लिये अनिवार्य समझता हो, और उसके बग़ैर ज़िन्दगी की कल्पना भी न कर सके। सभी लोग नशे को दूषित समझते थे, केवल दुर्बलेंद्रिय होने के कारण नित्य आकर पी जाते थे। चौधरी-जैसे घाघ पियक्कड़ को बोतल पटकते देखकर उनकी आँखें खुल गईं।

एक मरियल, दाढ़ीवाले आदमी ने आकर चौधरी की पीठ ठोंकी। चौधरी ने उसे पीछे ढकेलकर कहा—पीठ क्या ठोंकते हो जी, जाकर अपनी बोतल पटक दो।

दाढ़ीवाले ने कहा—आज और पी लेने दो चौधरी! अल्लाह जानता है, कल से इधर भूलकर भी न आऊँगा।

चौधरी—जितनी बची हो, उसके पैसे हमसे ले लो। घर जाकर बच्चों को मिठाई खिला देना।

दाढ़ीवाले ने जाकर बोतल पटक दी और बोला—लो, तुम भी क्याकहोगे? अब तो हुए खुश!

चौधरी—अब तो न पियोगे कभी?

दाढ़ीवाले ने कहा—अगर तुम न पियोगे, तो मैं भी न पिऊँगा। जिस दिन तुमने पी, उसी दिन मैंने फिर शुरू कर दी।

चौधरी की तत्परता ने दुराग्रह की जड़ें हिला दी थीं।

बाहर अभी पाँच-छः आदमी और थे। वे सचेत निर्लज्जता से बैठे हुए अभी तक पीते जाते थे। जयराम ने उनके सामने जाकर कहा—भाइयो, आपके पाँच भाइयों ने अभी आपके सामने अपनी अपनी बोतल पटक दीं। क्या आप उन लोगों को बाज़ी जीत ले जाने देंगे?

एक ठिंगने, काले आदमी ने, जो किसी अँगरेज़ का खानसामा मालूम होता था, लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—हम पीते हैं, तो तुमसे मतलब! तुमसे भीख माँगने तो नहीं जाते?

जयराम ने समझ लिया, अब बाजी मार ली। गुमराह आदमी जब विवाद करने पर उतर आए, तो समझ लो, वह रास्ते पर आ जायगा। चुप्पा ऐब वह चिकना घड़ा है, जिसपर किसी बात का असर नहीं होता।

जयराम ने कहा—अगर मैं अपने घर में आग लगाऊँ, तो उसे देखकर क्या आप मेरा हाथ न पकड़ लेंगे? मुझे तो इसमें रत्ती-भर सन्देह नहीं है, कि आप मेरा हाथ ही न पकड़ लेंगे; बल्कि मुझे वहाँ से जबरदस्ती खींच ले जायँगे।

चौधरी ने खानसामाँ की तरफ़ मुग्ध आँखों से देखा, मानो कह रहा है—'इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है?' और बोला—जमादार, अब इसी बात पर बोतल पटक दो।

ख़ानसामा ने जैसे काट खाने के लिये दाँत तेज़ कर लिए और बोला—बोतल क्यों पटक दूँ, पैसे नहीं दिये हैं?

चौधरी परास्त हो गया। जयराम से बोला—इन्हें छोड़िए बाबूजी, यह लोग इस तरह माननेवाले असामी नहीं हैं। आप इनके सामने जान भी दे दें, तो भी शराब न छोड़ेंगे। हाँ, पुलीस की एक घुड़की पा जायँ, तो फिर कभी इधर भूलकर भी न आवें।

ख़ानसामा ने चौधरी की ओर तिरस्कार के भाव से देखा, जैसे कह रहा हो—क्या तुम समझते हो, कि मैं ही मनुष्य हूँ, यह सब पशु हैं? फिर बोला—तुमसे क्या मतलब है जी, क्यों बीच में कूदे पड़ते हो? मैं तो बाबूजी से बातें कर रहा हूँ। तुम कौन होते हो बीच में बोलनेवाले? मैं तुम्हारी तरह नहीं हूँ, कि आज बोतल पटककर वाह-वाह कराऊँ, कल फिर मुँह में कालिख लगाऊँ, या घर पर मँगवाकर पिऊँ?

यहाँ जब छोड़ेंगे, तो सच्चे दिल से छोड़ेंगे। फिर कोई लाख रुपए भी दे, तो आँख उठाकर न देखें।

जयराम—मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा है।

चौधरी ने खानसामा की ओर कटाक्ष करके कहा—क्या तुम समझते हो, मैं कल फिर पीने आऊँगा?

खानसामा ने उद्दण्डता से कहा—हाँ, हाँ, कहता हूँ। तुम आओगे और बद कर आओगे। कहो पक्के कागज पर लिख दूँ!

चौधरी—अच्छा भाई, तुम बड़े धर्मात्मा हो, मैं पापी सही। तुम छोड़ोगे, तो जिन्दगी-भर के लिये छोड़ोगे, मैं आज छोड़कर कल फिर पीने लगूँगा, यही सही। मेरी एक बात गाँठ बाँध लो, तुम उस बखत छोड़ोगे, जब जिन्दगी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। इसके पहले तुम नहीं छोड़ सकते।

खानसामा—तुम मेरे दिल का हाल क्या जानते हो?

चौधरी—जानता हूँ, तुम्हारे जैसे सैकड़ों आदमी को भुगत चुका हूँ।

खानसामा—तो तुमने ऐसे-वैसे बेशर्मों को देखा होगा। हयादार आदमियों को न देखा होगा।

यह कहते हुए उसने जाकर अपनी बोतल पटक दी और बोला—अब अगर इस दूकान पर देखना, तो मुँह में कालिख लगा देना।

चारों तरफ़ तालियाँ बजने लगीं। मर्द ऐसे होते हैं!!

ठीकेदार ने दूकान से नीचे उतरकर कहा—तुम लोग अपनी-अपनी दूकान पर क्यों नहीं जाते जी? मैं तो किसी की दूकान पर नहीं जाता!

एक दर्शक ने कहा—खड़े हैं तो तुमसे मतलब? सड़क तुम्हारी नहीं है। तुम ग़रीबों को लूटे जाओ। किसी के बाल-बच्चे भूखों मरें, तुम्हारा क्या बिगड़ता है। (दूसरे शराबियों से) क्या यारो, अब भी पीते जाओगे! जानते हो, यह किसका हुक्म है। अरे कुछ भी तो शर्म हो!

जयराम ने दर्शकों से कहा—आप लोग यहाँ भीड़ न लगावें और न किसी को भला-बुरा कहें।

मगर दर्शकों का समूह बढ़ता जाता था। अभी तक चार-पाँच आदमी बेग़म बैठे हुए कुल्हड़-पर-कुल्हड़ चढ़ा रहे थे। एक मनचले आदमी ने जाकर उस बोतल को उठा लिया, जो उनके बीच में रक्खी हुई थी और उसे पटकना चाहता था, कि चारों शराबी उठ खड़े हुए और उसे पीटने लगे। जयराम और उनके स्वयंसेवक तुरत वहाँ पहुँच गये और उसे बचाने की चेष्टा करने लगे, कि चारों उसे छोड़कर जयराम की तरफ़ लपके। दर्शकों ने देखा, कि जयराम पर मार पड़ा चाहती है, तो कई आदमी झल्लाकर उन चारों शराबियों पर टूट पड़े। लातें, घूँसे और डंडे चलने लगे। जयराम को इसका कुछ अवसर न मिलता था, कि किसी को समझाए। बस दोनों हाथ फैलाए उन चारों के वारों से बच रहा था। वह चारों भी आपे से बाहर होकर दर्शकों पर डंडे चला रहे थे। जयराम दोनों तरफ़ से मार खाता था। शराबियों के वार भी उसी पर पड़ते थे, तमाशाइयों के वार भी उसी पर पड़ते थे; पर वह उनके बीच से हटता न था। अगर वह इस वक्त अपनी जान बचाकर हट जाता, तो शराबियों की खैरियत न थी। इसका दोष कांग्रेस पर पड़ता। वह कांग्रेस को इस आक्षेप से बचाने के लिये अपने प्राण देने पर तैयार था। मिसेज़ सक्सेना को अपने ऊपर हँसने का मौक़ा वह न देना चाहता था।

आख़िर उसके सिर पर एक डंडा इतने जोर से पड़ा, कि वह सिर पकड़कर बैठ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं। फिर उसे होश न रहा।

(४)

जयराम सारी रात बेहोश पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह को जब उसे होश आया, तो सारी देह में पीड़ा हो रही थी और कमज़ोरी इतनी थी, कि रह-रहकर जी डूबा जाता था। एकाएक सिरहाने की तरफ़ आँख उठ गई, तो मिसेज़ सक्सेना बैठी नज़र आईं। उन्हें देखते ही वह स्वयं-सेवकों के मना करने पर भी उठ बैठा। दर्द और कमज़ोरी दोनों जैसे ग़ायब हो गईं।

एक-एक अंग में स्फूर्ति दौड़ गई।

मिसेज़ सकसेना ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—आपको बड़ी चोट आई। इसका सारा दोष मुझपर है।

जयराम ने भक्तिमय कृतज्ञता के भावसे देखकर कहा—चोट तो ऐसी ज्यादा न थी, इन लोगों ने बरबस पट्टी-सट्टी बाँधकर ज़ख्मी बना दिया।

मिसेज़ सकसेना ने ग्लानित होकर कहा - मुझे आपको न जाने देना चाहिए था।

जयराम—आपका वहाँ जाना उचित न था। मैं आपसे अब भी यही अनुरोध करूँगा, कि उस तरफ़ न जाइएगा।

मिसेज़ सकसेना ने जैसे उन बाधाओं पर हँसकर कहा—वाह! मुझे आज से वहाँ पिकेट करने की आज्ञा मिल गई है।

"आप मेरी इतनी विनय मान जाइएगा। शोहदों के लिये आवाज़ कसना बिलकुल मामूली बात है।"

"मैं आवाज़ों की परवाह नहीं करती।"

"तो फिर मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

"आप! इस हालत में!"—मिसेज़ सकसेना ने आश्चर्य से कहा।

"मैं बिलकुल अच्छा हूँ, सच!"

"यह नहीं हो सकता। जब तक डाक्टर यह न कह देगा, कि अब आप वहाँ जाने के योग्य हैं, मैं आपको न जाने दूँगी। किसी तरह नहीं।"

"तो मैं भी आपको न जाने दूँगा।"

मिसेज़ सकसेना ने मृदु-व्यंग्य के साथ कहा—आप भी अन्य पुरुषों ही की भाँति स्वार्थ के पुतले हैं। सादा यश खुद लूटना चाहते हैं, औरतों को कोई मौक़ा नहीं देना चाहते। कम-से-कम यह तो देख लीजिए, कि मैं भी कुछ कर सकती हूँ या नहीं?

जयराम ने व्यथित कंठ से कहा—जैसी आप की इच्छा!

(५)

तीसरे पहर मिसेज़ सकसेना चार स्वयं सेवकों के साथ बेगमगंज चलीं। जयराम आँखें बंद किये चारपाई पर पड़ा था। शोर सुनकर चौंका और अपनी स्त्री से पूछा—यह कैसा शोर है?

स्त्री ने खिड़की से झाँककर देखा और बोली—वही औरत जो कल आई थी, झंडा लिये कई आदमियों के साथ जा रही है। इसे शर्म भी नहीं आती?

जयराम ने उसके चेहरे पर क्षमा की दृष्टि डाली और विचार में डूब गया। फिर वह उठ खड़ा हुआ और बोला—मैं भी वहीं जाता हूँ।

स्त्री ने उसका हाथ पकड़कर कहा—अभी कल मार खाकर आए हो, आज फिर जाने की सूझी!

जयराम ने हाथ छुड़ाकर कहा—तुम उसे मार कहती हो, मैं उसे उपहार समझता हूँ।

स्त्री ने उसका रास्ता रोक लिया—कहती हूँ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है, मत जाओ, क्यों मेरी जान के गाहक हुए हो। उसकी देह में हीरे नहीं जड़े हैं, जो वहाँ कोई नोच लेगा?

जयराम ने मिन्नत करके कहा—मेरी तबीयत बिलकुल अच्छी है चम्मू, अगर कुछ कसर है, तो वह भी मिट जायगी। भला सोचो, यह कैसे मुमकिन है, कि एक देवी उन शोहदों के बीच में पिकेटिंग करने जाय और मैं बैठा रहूँ। मेरा वहाँ रहना जरूरी है। अगर कोई बात आ पड़ी, कम-से-कम मैं लोगों को समझा तो सकूँगा।

चम्मू ने जलकर कहा—यह क्यों नहीं कहते, कि कोई और ही चीज़ खींचे लिये जाती है!

जयराम ने मुसकिराकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो—यह बात तुम्हारे दिल से नहीं, कंठ से निकल रही है और कतराकर निकल गया। फिर द्वार पर खड़ा होकर बोला—शहर में तीन लाख से कुछ ही कम आदमी हैं, कमेटी में भी ३० मेम्बर हैं, मगर सब-के-सब जी चुरा रहे हैं। लोगों को अच्छा बहाना मिल गया, कि शराबखानों पर धरना देने के लिये स्त्रियों ही की जरूरत है। आख़िर क्यों स्त्रियों ही को इस काम के लिये उपयुक्त समझा जाता है? इसी लिये कि मरदों के सिर भूत सवार हो जाता है, और

जहाँ नम्रता से काम लेना चाहिए, वहाँ लोग उग्रता से काम लेने लगते हैं। वे देवियाँ क्या इसी योग्य हैं, कि शोहदों के फ़िक़रे सुनें और उनकी कुदृष्टि का निशाना बनें ? कम-से-कम मैं यह नहीं देख सकता।

वह लँगड़ाता हुआ घर से निकल पड़ा। चम्मू ने फिर उसे रोकने का प्रयास नहीं किया। रास्ते में एक स्वयंसेवक मिल गया। जयराम ने उसे साथ लिया और एक ताँगे पर बैठकर चला। शराबख़ाने से कुछ दूर इधर एक लेमनेड-बर्फ़ की दूकान थी। उसने ताँगे को छोड़ दिया और वालंटियर को शराबख़ाने भेजकर खुद उसी दूकान में जा बैठा।

दूकानदार ने लेमनेड का एक ग्लास उसे देते हुए कहा—बाबूजी, कलवाले चारों बदमाश आज फिर आए हुये हैं। आपने न बचाया होता, तो आज शराब या ताड़ी की जगह हल्दी-गुड़ पीते होते।

जयराम ने ग्लास लेकर कहा—तुम लोग बीच में न कूद पड़ते, तो मैंने उन सभों को ठीक कर लिया होता।

दूकानदार ने प्रतिवाद किया—नहीं बाबूजी, वह सब छटे हुए गुंडे हैं। मैं तो उन्हें अपनी दूकान के सामने खड़ा भी नहीं होने देता। चारों तीन-तीन साल काट आये हैं।

अभी बीस मिनट भी न गुज़रे होंगे, कि एक स्वयंसेवक आकर खड़ा हो गया। जयराम ने सचिंत होकर पूछा—कहो, वहाँ क्या हो रहा है ?

स्वयंसेवक ने कुछ ऐसा मुँह बना लिया, जैसे वहाँ की दशा कहना वह उचित नहीं समझता। और बोला—कुछ नहीं, देवीजी आदमियों को समझा रही हैं।

जयराम ने उसकी ओर अतृप्त नेत्रों से ताका, मानो कह रहे हों—बस इतना ही ! इतना तो मैं जानता ही था।

स्वयंसेवक ने एक क्षण के बाद फिर कहा—देवियों को ऐसे शोहदों के सामने जाना अच्छा नहीं।

जयराम ने अधीर होकर पूछा—साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते, क्या बात है ?

स्वयंसेवक डरते-डरते बोला—सब-के-सब उनसे दिल्लगी कर रहे हैं। देवियों का यहाँ आना अच्छा नहीं।

जयराम ने और कुछ न पूछा। डंडा उठाया और लाल-लाल आँखें निकाले बिजली की तरह कौंधकर शराबख़ाने के सामने जा पहुँचा और मिसेज़ सकसेना का हाथ पकड़कर पीछे हटाता हुआ शराबियों से बोला—अगर तुम लोगों ने देवियों के साथ ज़रा भी गुस्ताख़ी की, तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। कल मैंने तुम लोगों की जान बचाई थी। आज इसी डंडे से तुम्हारी खोपड़ी तोड़कर रख दूँगा।

उसके बदले हुए तेवर देखकर सब-के-सब नशेबाज़ घबड़ा गए। वे कुछ कहना चाहते थे, कि मिसेज़ सकसेना ने गम्भीर भाव से पूछा—आप यहाँ क्यों आ गए ? मैंने तो आपसे कहा था, अपनी जगह से न हिलियेगा। मैंने तो आपसे मदद न माँगी थी ?

जयराम ने लज्जित होकर कहा—मैं इस नीयत से यहाँ नहीं आया था। एक ज़रूरत से इधर से निकला था। यहाँ जमाव देखकर आ गया। मेरे ख़याल में आप अब यहाँ से चलें। मैं आज कांग्रेस-कमेटी में यह सवाल पेश करूँगा, कि इस काम के लिये पुरुषों को भेजें।

मिसेज़ सकसेना ने तीखे स्वर में कहा—आपके विचार में दुनिया के सारे काम मरदों ही के लिये हैं?

जयराम—मेरा यह मतलब न था।

मिसेज़ सकसेना—तो आप जाकर आराम से लेटें और मुझे अपना काम करने दें।

जयराम वहीं सिर झुकाए खड़ा रहा।

मिसेज़ सकसेना ने पूछा—अब आप क्यों खड़े हैं ?

जयराम ने विनीत स्वर में कहा—मैं भी यहीं एक किनारे खड़ा रहूँगा।

मिसेज़ सकसेना ने कठोर स्वर में कहा—जी नहीं, आप जायँ !

जयराम धीरे-धीरे लदी हुई गाड़ी की भाँति

चला और आकर फिर उसी लेमनेड की दूकान पर बैठ गया। उसे ज़ोर की प्यास लगी थी। उसने एक ग्लास शर्बत बनवाया और सामने मेज पर रखकर विचार में डूब गया; मगर आँखें और कान उसी तरफ़ लगे हुए थे।

जब कोई आदमी दूकान पर आता, वह चौंककर उसकी तरफ़ ताकने लगता—वहाँ कोई नई बात तो नहीं हो गई?

कोई आध घंटे के बाद वही स्वयंसेवक फिर डरा हुआ-सा आकर खड़ा हो गया। जयराम ने उदासीन बनने की चेष्टा करके पूछा—वहाँ क्या हो रहा है जी?

स्वयंसेवक ने कानों पर हाथ रखकर कहा—मैं कुछ नहीं जानता बाबूजी, मुझसे कुछ न पूछिए।

जयराम ने एक साथ ही नम्र और कठोर होकर पूछा—फिर कोई छेड़-छाड़ हुई?

स्वयंसेवक—जी नहीं, कोई छेड़-छाड़ नहीं हुई। एक आदमी ने देवीजी को धक्का दे दिया। गिर पड़ीं।

जयराम निस्पन्द बैठा रहा; पर उसके अन्तराल में भूकम्प-सा मचा हुआ था। बोला—उसके साथ के स्वयंसेवक क्या कर रहे हैं?

"खड़े हैं, देवीजी उन्हें बोलने ही नहीं देतीं।"

"तो क्या बड़े ज़ोर से धक्का दिया?"

"जी हाँ, गिर पड़ीं। घुटनियों में चोट आ गई। वह आदमी साथ पी रहे थे। जब एक बोतल उड़ गई, तो उनमें से एक आदमी दूसरी बोतल लेने चला। देवीजी ने रास्ता रोक लिया। बस, उसने धक्का दे दिया। वही, जो काला-काला मोटा-सा आदमी है। कलवाले चारों आदमियों की शरारत है।"

जयराम उन्माद की दशा में वहाँ से उठा और दौड़ता हुआ शराबखाने के सामने आया। मिसेज सकसेना सिर पकड़े ज़मीन पर बैठी हुई थीं और वह काला, मोटा आदमी दूकान के कठघरे के सामने खड़ा था। पचासों आदमी जमा थे। जयराम ने उसे देखते ही लपककर उसकी गर्दन पकड़ ली और इतने ज़ोर से दबाई, कि उसकी आँखें बाहर निकल आईं। मालूम होता था, उसके हाथ फ़ौलाद के हो गए हैं।

सहसा मिसेज़ सकसेना ने आकर उसका फ़ौलादी हाथ पकड़ लिया और भवें सिकोड़कर बोलीं—छोड़ दो इसकी गर्दन! क्या इसकी जान ले लोगे?

जयराम ने और ज़ोर से उसकी गर्दन दबाई और बोला—हाँ ले लूँगा। ऐसे दुष्टों की यही सज़ा है।

मिसेज़ सकसेना ने अधिकार गर्व से गर्दन उठाकर कहा—आपको यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं है।

एक दर्शक ने कहा—ऐसा दबाओ बाबूजी, कि साला ठण्डा हो जाय। इसने देवीजी को ऐसा ढकेला, कि बेचारी गिर पड़ीं। हमें तो बोलने का हुक्म नहीं है, नहीं तो हड्डी तोड़कर रख देते।

जयराम ने शराबी की गर्दन छोड़ दी। वह किसी बाज़ के चंगुल से छूटी हुई चिड़िया की तरह सहमा हुआ खड़ा हो गया। उसे एक धक्का देते हुए उसने मिसेज़ सकसेना से कहा—आप यहाँ से चलती क्यों नहीं? आप जायँ मैं बैठता हूँ। अगर छटाँक शराब बिक जाय, तो मेरा कान पकड़ लीजिएगा।

उसका दम फूलने लगा। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। वह खड़ा न रह सका। ज़मीन पर बैठकर रूमाल से माथे का पसीना पोंछने लगा।

मिसेज़ सकसेना ने परिहास करके कहा—आप कांग्रेस नहीं हैं, कि मैं आपका हुक्म मानूँ। अगर आप यहाँ से न जायँगे, तो मैं सत्याग्रह करूँगी।

फिर एकाएक कठोर होकर बोलीं—जब तक कांग्रेस ने इस काम का भार मुझपर रक्खा है, आपको मेरे बीच में बोलने का कोई हक़ नहीं है। आप मेरा अपमान कर रहे हैं। कांग्रेस-कमेटी के सामने आपको इसका जवाब देना होगा।

जयराम तिलमिला उठा। बिना कोई जवाब दिए लौट पड़ा और वेग से घर की तरफ़ चला; पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, उसकी गति मन्द होती जाती थी। यहाँ तक, कि बाजार के दूसरे सिरे पर आकर

वह रुक गया। रस्सी यहाँ ख़तम हो गई। उसके आगे जाना उसके लिए असाध्य हो गया। जिस झटके ने उसे यहाँ तक भेजा था, उसकी शक्ति अब शेष हो गई थी। उन शब्दों में जो कटुता और चोट थी, उसमें अब उसे सहानुभूति और स्नेह की सुगन्ध आ रही थी।

उसे फिर चिन्ता हुई, न-जाने वहाँ क्या हो रहा है। कहीं उन बदमाशों ने और कोई दुष्टता न की हो, या पुलीस न आ जाय।

वह बाज़ार की तरफ़ मुड़ा; लेकिन एक क़दम ही चलकर फिर रुक गया। ऐसे पसोपेश में वह कभी न पड़ा था।

सहसा उसे वही स्वयंसेवक दौड़ा आता दिखाई दिया। वह बदहवास होकर उससे मिलने के लिये खुद भी उसकी तरफ़ दौड़ा। बीच में दोनों मिल गए।

जयराम ने हाँफते हुए पूछा—क्या हुआ? क्यों भागे आ रहे हो?

स्वयंसेवक ने दम लेकर कहा—बड़ा ग़ज़ब हो गया बाबूजी। आपके आने के बाद वह काला शराबी बोतल लेकर दूकान से चला, तो देवीजी दरवाजे पर बैठ गईं। वह बार-बार देवीजी को हटाकर निकलना चाहता है; पर वह फिर आकर बैठ जाती हैं। धक्कम-धक्के में उनके कपड़े फट गए हैं और कुछ चोट भी.........

अभी बात पूरी न हुई थी, कि जयराम शराबख़ाने की तरफ़ दौड़ा!

(६)

जयराम शराबख़ाने के सामने पहुँचा, तो देखा मिसेज सकसेना के चारों स्वयंसेवक दूकान के सामने लेटे हुए हैं और मिसेज़ सकसेना एक किनारे सिर झुकाए खड़ी हैं। जयराम ने डरते-डरते उनके चेहरे पर निगाह डाली। अंचल पर रक्त की बूँदें दिखाई दीं। उसे फिर कुछ सुध न रही। खून की वह चिंगारियाँ, जैसे उसके रोम-रोम में समा गईं। उसका खून खौलने लगा। मानो उसके सिर खून सवार हो गया हो। वह उन चारों शराबियों पर टूट पड़ा और पूरे ज़ोर के साथ लकड़ी चलाने लगा। एक-एक बूँद की जगह वह एक-एक घड़ा खून बहा देना चाहता था। खून उसे कभी इतना प्यारा न था। खून में इतनी उत्तेजना है, इसकी उसे ख़बर न थी।

वह पूरे जोर से लकड़ी चला रहा था। मिसेज़ सकसेना कब आकर उसके सामने खड़ी हो गईं उसे कुछ पता न चला। जब वह ज़मीन पर गिर पड़ी तब उसे जैसे होश आ गया। उसने लकड़ी फेंक दी और वहीं निश्चल, निस्पंद खड़ा हो गया, मानो उसका रक्त-प्रवाह रुक गया है।

चारों स्वयंसेवकों ने दौड़कर मिसेज़ सकसेना को पंखा झलना शुरू किया। दूकानदार ठंडा पानी लेकर दौड़ा। एक दर्शक डाक्टर को बुलाने भागा; पर जयराम वहीं बेजान खड़ा था, जैसे स्वयं अपने तिरस्कार-भाव का पुतला बन गया हो। अगर इस वक्त कोई उसके दोनों हाथ काट डालता, कोई उसकी आँखें लाल लोहे से फोड़ देता, तब भी वह चूँ न करता।

फिर वहीं सड़क पर बैठकर उसने अपने लज्जित, तिरस्कृत, पराजित मस्तक को भूमि पर पटक दिया और बेहोश हो गया।

उसी वक्त उस काले मोटे शराबी ने बोतल ज़मीन पर पटक दी और उसके सिर पर ठंडा पानी डालने लगा।

एक शराबी ने लैसन्सदार से कहा—तुम्हारा रोज़गार अन्य लोगों की जान लेकर रहेगा। आज तो अभी दूसरा ही दिन है।

लैसन्सदार ने कहा—कल से मेरा इस्तीफ़ा है। अब स्वदेशी कपड़े का रोजगार करूँगा, जिसमें जस भी है और उपकार भी।

शराबी ने कहा—घाटा तो बहुत रहेगा।

दूकानदार ने क़िस्मत ठोंककर कहा—घाटा-नफ़ा तो ज़िन्दगानी के साथ है।

—प्रेमचंद

मुक्ता - मंजूषा

हिन्दी

वह कौन है ?

यों तो समय-समय पर कितने ही भारतीय तथा विदेशी विद्वानों तथा विचारशील व्यक्तियों ने महात्मा गांधी के संबंध में अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं और सबने महात्माजी को एक ईश्वरीय विभूति स्वीकार किया है; किन्तु हाल में अमेरिका के सुप्रसिद्ध पादरी जान रेनी होम्स ने भारत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए महात्माजी की महत्ता तथा उच्चाशयता पर प्रकाश डाला है । 'स्वदेश' पत्र से कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

"जार्ज वाशिंगटन की अपेक्षा श्रेष्ठ दरजे का यदि कोई नेता है, तो वह है, भारत की आजादी के लिये बेचैन रहनेवाला महात्मा गांधी। आज तक आजादी प्राप्त करने के युद्ध में जिन-जिन वीर आत्माओं ने अपनी आहुतियाँ दीं, उनमें जार्ज वाशिंगटन का नाम स्वर्णाक्षरों में सबसे प्रथम लिखा जाता रहा है; परन्तु जार्ज वाशिंगटन की अपेक्षा भी आज के भारतीय संग्राम के लिये प्रयत्नशील महात्मा गांधी का स्थान श्रेष्ठ ठहरता है। महात्मा गांधी के समान 'ईश्वरीय विभूति' को सहायता देकर भारत का हित करने की अपेक्षा ब्रिटिश पत्रों ने यह वाक्य प्रकाशित कर अपनी नीचता प्रकट की है, कि 'जिस रास्ते से महात्मा गांधी चलते हैं, उस रास्ते का कुत्ता भी उनकी परवा नहीं करता।' भारतीयों के मन पर धार्मिक संस्कृति कितनी गहराई से जमी हुई है, यह इतने दिनों तक राज्य करने के पश्चात् भी अँगरेज़ों को नहीं मालूम हुआ। गौतमबुद्ध और ईसा के तत्त्वों के अनुसार स्वतः चलकर और दूसरों को उसी के अनुरूप चलाने का क्रम रखने के कारण आज तक और किसी भी भारतीय नेता का ३२ करोड़ जनता पर इतना वजन नहीं पड़ा, जितना गांधीजी का पड़ा है।...... महात्मा गांधी का आन्दोलन एक बार आहिस्ता-आहिस्ता शुरू हुआ और ज्यों-हो वह अपनी स्वाभाविक रफ्तार से बढ़ा, कि उसे रोकने का साहस किसी को नहीं हो सका, और न कोई उसे रोक ही सकता है। सम्भव है, महात्मा गांधी जेल में ठूँस दिया जाय, और अन्त में वहीं—ब्रिटिश जेल में ही उसका प्राणान्त हो जाय; परन्तु इससे भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन मर जायगा, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। प्रत्युत गांधी की आहुति से प्रज्वलित होम-कुंड में इंगलैण्ड की ही आहुति पड़ेगी और वह क्षार हो जायगा।"

× × ×

सरकार का प्रचार-कार्य

वर्तमान युग प्रोपेगैंडा का है; इसमें सत्य-असत्य का कुछ विचार नहीं है। यह प्रोपेगंडा अथवा प्रचार-कार्य ही पाश्चात्य सभ्यता की देन हम भारतीयों को प्राप्त हुई है। उद्देश्य-सिद्धि के लिये नीच-से-नीच एवं निंद्य-से-निंद्य साधनों का उपयोग प्रचार-विभाग-द्वारा किया जाता है और स्याह को सफ़ेद और सफ़ेद को स्याह करके प्रत्यक्ष दिखा दिया जाता है। 'टाइम्स' (लन्दन का प्रसिद्ध दैनिक पत्र) के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक मि० हेनरी विक्हेम स्टीड ने अपने आत्मचरित में लिखा है, कि "गत महायुद्ध तोपों और बारूद के गोलों से उतना नहीं लड़ा गया, जितना समाचार-पत्रों और कागज़ के गोलों से।" उनकी सम्मति में मित्र राष्ट्रों और विशेषतः ग्रेट ब्रिटेन की विजय का मुख्य हेतु उनका प्रचार-विभाग है। इसीलिये भारत में अपने शासन को स्थिर रखने के लिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अनिवार्य समझते हैं, कि यहाँ अपने शासन के लाभों का अच्छी तरह प्रचार करके अनुकूल वातावरण सदा बनाया जाता रहे। अस्तु, आए दिन वर्तमान भारतीय स्वराज्य-संग्राम में अपने अन्य पाशविक शस्त्रों और शक्तियों के साथ-साथ, ब्रिटिश-शासक अपने इस भेजे हुए अस्त्र को भी उपयोग में लाना नहीं भूले। हाल में संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है, जिसका आशय यह है, कि भारत में जो नमक-कर आन्दोलन चल रहा है, वह ठीक नहीं तथा भारतीयों-द्वारा

नमक-कर के विरोध में जो दलीलें दी जाती हैं, वे सब ग़लत हैं। 'भारत' में इस सम्बन्ध में जो कुछ छपा है, उससे कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

"फ्रांस में १८०६ से नमक-कर लिया जाता है। जर्मनी में नमक पर तट-कर तथा चुंगी दोनों लगते हैं। इटली और आस्ट्रिया में नमक पर एकाधिकार है। एशिया में चीन में नमक-कर से सरकार को लगभग ६ करोड़ रुपयों की आय है। भारत में भी यह कर बहुत प्राचीन काल से लिया जाता है। कौटिल्य-अर्थशास्त्र, शालिवाहन और गुप्त-वंश के शिला-लेखों में भी इस कर का उल्लेख है। अकबर के ज़माने में नमक बनाने के ख़र्च का दूना कर लिया जाता था। 'आईने अकबरी' में भी इसका उल्लेख है। जिस समय यहाँ अँगरेज़ी राज्य स्थापित हुआ, उस समय भी पंजाब में सिक्खों के राज्य में और बंगाल में मीरकासिम के राज्य में नमक-कर लिया जाता था। अवध में भी १ रुपया मन अलग से नमक पर कर लगता था।"

अस्तु, इसी प्रकार प्रचार-कार्य करने की आवश्यकता भारत-सरकार और प्रांतीय-सरकारों को उस ज़माने में भी महसूस हुई थी, जब नागपुर-कांग्रेस के बाद असहयोग का बोल बाला था। और, अब फिर वही ज़माना सामने है; किंतु क्या नमक-कर-आन्दोलन के विरुद्ध सरकार का इस प्रकार प्रचार करना, केवल नमक और सूखी रोटी खाकर पेट भरनेवाले भारतीयों को शांत्वना दे सकेगा? इसमें तो सोलहों आने सन्देह है।

× × ×

मृत्यु और जीवन

'माधुरी' में प्रकाशित 'मृत्यु और पाप'—शीर्षक लेख में श्रीयुत पं० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' बी० ए० लिखते हैं—

"मृत्यु जीवन से अधिक सुंदर अधिक आकर्षक है। हमारी सारी चिंताएँ मृत्यु के अतलगर्भ में लय होती जाती हैं। जब तक कर्म की वासना का क्षय नहीं होता, तब तक हमें जन्म धारण करते रहना पड़ता है। मृत्यु अपनी शीतल गोद में हमारे सारे पाप, सारी त्रुटियों को छिपा लेती है और जीवन में एक नवीन स्फूर्ति, नवीन उत्साह एवं उमंग प्रदान करती है। मरते समय कुछ देर के लिये तो हमारे पाप, हमारी सारी त्रुटियाँ बहुत भयंकर रूप में हमारे सामने आती हैं; किंतु ज्यों-ज्यों मृत्यु हमें अमृत की घूँटें पिलाकर अपने पुण्यलोक में ले चलने लगती हैं, त्यों-त्यों हमारे सारे पाप एक धूमिल प्रकाश के क्षीण आवरण की भाँति धुँधले रूप में रह जाते हैं और जाते-जाते तो हम सभी कुछ भूलकर अपने आदि-निर्माता के तेजोमय रूप में लीन हो जाते हैं। मृत्यु एक द्वार है, जिससे होकर हमारा जीवन-स्रोत चिरंतन प्रवाह में प्रवाहित होता रहता है। जीवन की भाँति मृत्यु एक स्वाभाविक घटना है, जो जीवन के विकास के हेतु अनिवार्य है, या हमारे विकास का पथ है। वह उतनी भयंकर चीज़ नहीं, जितनी कि हम समझते हैं—समझा करते हैं। हमारा जीवन तो अविराम गति से चला जा रहा है—अनादि के एक छोर से लेकर अनंत के दूसरे छोर तक चला जायगा—मृत्यु-रूपी कई द्वार लाँघकर, सदा के लिए अपना रास्ता तयकर, अपने निर्माता में लीन हो जायगा—मृत्यु से घबड़ाने की आवश्यकता नहीं, उसे जीवन का पूर्ण विकसित रूप समझना चाहिए। हमें प्रतिक्षण, प्रतिपल मृत्यु को गले लगाने के हेतु प्रस्तुत रहना चाहिए; क्योंकि मृत्यु ही हमें अमर जीवन प्रदान करती है। मृत्यु जीवन ही का रूप है। जीवन के साथ मृत्यु की सृष्टि हमारे आंतरिक विकास के ही अर्थ हुई है।"

—मातादीन शुक्ल।

बँगला

गान्धीजीकी गिरफ्तारी : गवर्नमेन्टकी कैफियत

ज्येष्ठ मास के 'प्रवासी' में गान्धीजी की गिरफ्तारी पर गवर्नमेन्ट की कैफियत" शीर्षक एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। सरकार ने महात्मा गान्धी को गिरफ्तार करने का जो कारण बताया है, उसी विषय पर इस लेख में निष्पक्ष भाव से विवेचना की गई है। महात्मा गान्धी की शान्तिप्रियता और उनके आन्दोलन से उत्पन्न अहिंसा का भाव बतलाकर वर्तमान उपद्रवों के कारण दिखाये गये हैं। लेख का सारांश इस प्रकार है—

"सरकार ने महात्मा गान्धी को गिरफ्तार कर लिया और गिरफ्तारी का कारण यह बताया, कि गान्धीजी के आन्दोलन से जनता में अशान्ति और उपद्रव हो रहे हैं। अब पहले हमें यह देखना है, कि जब महात्मा गान्धी राजनीतिक क्षेत्र में नहीं आये थे, तब क्यों देश में राजनीतिक

हंगामे नहीं होते थे ? देश में ऐसे विचार का भी एक दल है, जो बाहुबल और अस्त्रबल पर ही विश्वास करता है; बल्कि इस समय तो हम यह देख रहे हैं, कि बाहुबल और अस्त्रबल के विश्वासी दल के लोग भी अहिंसात्मक आन्दोलन का परिणाम देखने के लिए चुप-चाप बैठे हैं। महात्मा-गान्धी ने बड़े लाट को जो पत्र लिखा था, उसमें लिखा है—"ब्रिटिश शासन की सुश्रृंखल उपद्रव-शक्ति के और भारतीय हिंसावादियों की अनियंत्रित उपद्रव-शक्ति के विरुद्ध अहिंसा की शक्ति का समान भाव से प्रयोग करना हमारा अभिप्राय है।" दैनिक समाचार-पत्रों से जितनी खबरें मिलती हैं, कहीं से भी कांग्रेस के आदमियों-द्वारा उपद्रव करने की खबर नहीं आई। उपद्रव होते हैं, पुलिस-द्वारा, पुलिस के अत्याचार से उत्तेजित हुई जनता-द्वारा, गुण्डों-द्वारा और अस्त्रबल के विश्वासी दल के लोगों-द्वारा। हमारी समझ में नहीं आता, कि गवर्नमेन्ट किस आधार पर महात्मा गान्धी को अशान्ति का कारण बता रही है। अगर दैनिक-पत्रों की खबरें झूठी हैं, तो सरकार उनका खण्डन क्यों नहीं करती ? वर्तमान आन्दोलन और महात्मा गान्धी इन उपद्रवों के जिम्मेदार नहीं हैं। सरकार का कर्तव्य है, कि पुलिस के अत्याचार की जो खबरें समाचार-पत्रों में निकलती हैं, उनकी जाँच करे। सरकार महात्मा-गान्धी और उनके अनुयायियों पर मिथ्या दोष लगाती है और पुलिस जो नमक-कानून तोड़नेवाले शान्त लोगों और दर्शकों पर लाठियाँ चलाती है, उसकी ओर ध्यान नहीं देती। यह कहाँ का न्याय है ? अगर गवर्नमेन्ट शान्ति चाहती, तो हमारी समझ में वह महात्मा गान्धी को अपना सहायक समझती।"

लेखक महोदय ने और भी ऐसे ही बहुत-सी बातें अपने विस्तृत लेख में बताई हैं। हम यहाँ उन सबके लिखने की आवश्यकता नहीं समझते। कारण, पाठक उन बातों से परिचित हैं और पुलिस के नृशंस कृत्य प्रतिदिन अखबारों में पढ़ते और कभी-कभी अपनी आँखों देखने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। अभी उस दिन लखनऊ की पुलिस का पैशाचिक कर्म जिन्होंने देखा है, उन्हें अधिकारियों की उद्दण्डता का पता लग गया। एक बार, दो बार, चार बार प्रहार सह लेने पर, यदि उसने बदला लेने की चेष्टा न की, तो प्रहार करनेवाले का साहस छूट जाता है, यह मनुष्य की स्वाभाविक बात है; पर यहाँ की पुलिस ने आधे घंटे तक निरीह जनता पर लगातार लाठियाँ बरसाकर अपने अमानुषिक कर्तव्यका परिचय दे दिया। कांग्रेस के वालंटियरों के लिए तो कहनाही क्या है; क्योंकि वे तो कहीं भी अपने सिद्धान्त से विचलित नहीं हुए। जनता भी मार सहती रही और उत्तेजित नहीं हुई। स्त्रियाँ पिटीं। बच्चे घायल हुए। स्त्रियों को मोटर लारी में बैठा कर रात के समय ऐसे निर्जन स्थानों में छोड़ दिया गया, जहाँ उनको रास्ता बतानेवाला भी कोई नहीं था।

× × ×

दो हज़ार वर्ष पूर्व जाति-भेद

श्रीयुत पूरणचन्द सामसुखा ने ज्येष्ठ मास की 'विचित्रा' में "दो हज़ार वर्ष पूर्व जाति-भेद" शीर्षक लेख में एक प्राचीन जैन-ग्रन्थ के आधार पर जाति-भेद के समय का अन्दाज़ा लगाया है और इसकी आलोचना के लिए देश के विद्वानों से निवेदन किया है। उन्होंने लिखा है—

"आज से दो हज़ार वर्ष पहले ब्राह्मण आदि कई जातियाँ थीं। परस्पर के संयोग से और कई जातियाँ बन चुकी थीं। हम यहाँ इन वर्णों की उत्पत्ति में जैन-शास्त्रकारों के मत का उल्लेख करते हैं। जैन प्रथम अंग 'आचारांग' सूत्र की नियुक्ति में इन वर्णों का ज़िक्र आया है। यह नियुक्ति पंचम-श्रुतिकेवली सुविख्यात जैनाचार्य भद्रबाहु स्वामी की बनाई हुई है। भद्रबाहु भगवान् महावीर के निर्वाण के १७० वर्ष बाद देवलोक को गये हैं। महावीर को ई० सन् से ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण-पद प्राप्त हुआ है; अतएव भद्रबाहु ने ई० सन् से ३५७ वर्ष पहले प्राण त्याग किया। इस हिसाब से इनकी नियुक्ति का समय प्रायः २३०० वर्ष पूर्व निश्चित होता है। हम पाठकों की जानकारी के लिये इसी नियुक्ति के आधार पर वर्णोत्पत्ति का विवरण पेश करते हैं।

पहले केवल मनुष्य जाति थी, उसमें कोई विभाग नहीं था। जब भगवान् ऋषभदेव प्रथम राजा हुए, तब क्षत्रिय-वर्ण की उत्पत्ति हुई। अतएव प्रथम वर्ण क्षत्रिय वर्ण है। क्षत्रियों के अतिरिक्त दूसरे लोग शूद्र कहे जाने लगे। जो लोग शिल्प और वाणिज्य करने लगे, वे वैश्य नाम से प्रसिद्ध हुए। उसके बाद जब भगवान् ऋषभदेव राज्य त्याग कर संन्यासी हो गये और धर्म का प्रचार करने लगे, तब उनके धर्म के अनुयायी होकर जो लोग गृहस्थी में रहते थे (वे श्रावक कहलाते थे) उनको ऋषभदेव के पुत्र

भरत रत्न द्वारा चिह्नित कर देते थे। चिह्नित व्यक्ति ब्राह्मण कहलाये और वही चिह्न उपवीत के रूप में बदल गया। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चार वर्णों की उत्पत्ति हुई।

सप्त वर्ण की उत्पत्ति इस भाँति है—चार मूल वर्णों में से एक के पुरुष और दूसरे की स्त्री के संयोग से संकर-जाति की उत्पत्ति हुई। जैसे—ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय स्त्री के संयोग से संकर क्षत्रिय, क्षत्रिय पुरुष और वैश्य स्त्री के संयोग से संकर वैश्य तथा वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री के संयोग से संकर शूद्र। इस प्रकार ४ मूल वर्ण और ३ संकर वर्ण मिलाकर सप्त वर्ण बन गये। उसके बाद नव जाति की उत्पत्ति हुई। उसे वर्णान्तर कहते हैं।—

१—ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से अम्बष्ठ
२—क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा स्त्री से उग्र
३—ब्राह्मण पुरुष और शूद्रा स्त्री से निषाद
४—शूद्र पुरुष और वैश्या स्त्री से अयोगर
५—वैश्य पुरुष और क्षत्रिया स्त्री से मागध
६—क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री से सूत
७—शूद्र पुरुष और क्षत्रिया स्त्री से क्षत्ता
८—वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से विदेह
९—शूद्र पुरुष और ब्राह्मणी स्त्री से चाण्डाल

इस प्रकार नव वर्णान्तर उत्पन्न हुए।

वर्णान्तर में भी परस्पर के संयोग से अन्य वर्णों की उत्पत्ति हुई। जैसे—

१—उग्र पुरुष और क्षत्ता स्त्री से श्वपाक
२—विदेह पुरुष और क्षत्ता स्त्री से वैण्णव
३—निषाद पुरुष और अम्बष्ठ स्त्री से बुक्कस
४—सूत पुरुष और निषादी स्त्री से कुक्करक

—चण्डिकाप्रसाद अवस्थी।

मराठी

वेदों की रक्षा

"वागीश्वरी" की इसी संख्या में श्रीयुत म० दा० साठे ने सुप्रसिद्ध जर्मन प्रोफेसर ल्युडर्स के एक निबन्ध को 'संस्कृताध्ययनाचे पाश्चात्यांचे प्रयत्न' शीर्षक लेख में संकलित किया है। इस उपयोगी लेख का कुछ अंश इस प्रकार है—

"पाश्चात्य पण्डितों के मत के अनुसार भारतवर्ष में लेखन-कला की उत्पत्ति ईसा के कई शताब्दियों-पूर्व हुई थी; क्योंकि जब अशोक-कालीन स्तूपों पर बहुत से लेख खुदे हुए मिलते हैं, तब वह इसके पूर्व अवश्य रही होगी यह सिद्ध होता है; किन्तु आजकल के नये अनुसन्धानों से इस लेखन-कला का काल इसके और भी पीछे ले जाना चाहिए। सुमेरियन सभ्यता का परिचय देनेवाले इष्टिका-लेखों से (ईंटों पर लिखे हुए लेखों से) और इस सभ्यता के पहले के सिक्कों से (जो पंजाब में तथा सिंध के 'मोहन-जोदारो' में मिले हैं) यह स्पष्टतया सिद्ध होता है, कि लेखन-कला का उद्गम ईसा के कई शताब्दियों-पूर्व अवश्य हुआ होगा; किन्तु वेदकाल इसके भी पहले का है और उस समय लेखन-कला का प्रसार नहीं था। उस समय वेद-विद्या मुखोद्गत थी और वह इसी रीति से एक पीढ़ी से दूसरी को और दूसरी से तीसरी को सिखाई जाती थी। यही कारण है, कि उस समय 'इति श्रुतिः' (ऐसा सुना) कहने की परिपाटी पड़ी थी। 'ऐसा पढ़ा' ऐसे शब्द तत्कालीन साहित्य में नहीं पाये जाते। विद्वान् मनुष्य को 'बहुश्रुत' ही कहा जाता था। 'बहुद्रष्टा' या 'पण्डित' शब्दों का प्रसार नहीं था। वैदिक ब्राह्मणों ने इन वेदों की खूब अच्छी रक्षा की है—इतनी कि यह प्राचीन साहित्य उनके उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों के साथ सहस्रों वर्षों के बाद भी ज्यों-का-त्यों ही हमारे हाथ में आया है। उन लोगों ने इन वेदों में—मूल संहिता में—कुछ भी फर्क न होने के लिये पद, क्रम, जटा, माला, धन, आदि कई प्रकारों से उसका एक-एक अक्षर तक निर्द्धारित कर रखा है।"

× × ×

भिलावे के उपयोग

'चित्रमयजगत्' में डॉ० वि० म० भट्ट ने भिलावे के सम्बन्ध में एक उपयोगी लेख लिखा है। इस लेख में उन्होंने डॉ० हेमचन्द्र सेन (कलकत्ता), डॉ० मुदीन शरीफ (मद्रास), डॉ० देसाई (बांद्रा) आदि प्रसिद्ध डॉक्टरों के ग्रंथों और लेखों से भिलावे के गुणधर्मों (Properties) पर कुछ नया प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

"भिलावे का सबसे महत्त्व का उपयोग वात-रोग पर है। आयुर्वेद-वर्णित वात-रोग के—पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार—दो प्रकार हैं। एक है आमवात (Acute

Rhewmatism), पुराना संधिवात (गठिया) (Chronic Rhewmatism, Arthritis, Synovitis gont,) वातरक्त आदि शरीर के जोड़ों के रोगों का, और दूसरा है मज्जातंतु के रोगों का (Nervous diseases)। इनमें पहले किस्म के रोगों पर तो भिलावा बहुत ही गुणकारी (Specific) औषध है, ऐसा डॉ० सेन, डॉ० मुदीन शरीफ और डॉ० देसाई ने अपने अनुभवों से लिखा है। सैलिसिलेटस् नामक पाश्चात्य औषध की अपेक्षा भल्लातक-क्षीर से बहुत जल्दी फायदा होता है, ऐसा उन्होंने स्पष्ट रूप से बतलाया है। डॉ० सेन का अनुभव है, कि इस औषध से चौबीस घंटे के अन्दर ही वात-रोग के सब दर्द नष्ट हो जाते हैं। डॉ० मुदीन शरीफ लिखते हैं—जिन मरीज़ों को आमवात के कारण चलना तक मुश्किल हो गया था, ऐसे मरीज़ भी भिलावे के कल्प से पाँचवें या छठें दिन ही स्वयं चलकर मेरे पास आये थे। उनका कथन है, कि पुराने गठिया पर भिलावा उतना फ़ायदेमन्द नहीं होता।

आगे चलकर भिलावे का मज्जातंतु के रोगों पर (Nervous diseases) कैसा आश्चर्यजनक प्रभाव होता है, इसका वर्णन किया है। मज्जातंतुदाह (Neuritis), गृध्रसी (Sciatica), अर्दित (Facial paralysis), अर्द्धांगवात (Hemiplegia), उरुस्तंभ (paraplegia), संकीर्ण मस्तिष्क रोग (Disseminated sclerosis) आदि विकट रोगों पर भल्लातक-क्षीर जादू के समान फायदा करता है। डॉ० सेन ने भी स्वानुभव से ऐसा लिखा है।

× × ×

हिन्दू-समाज की विशेषता

'चित्रमयजगत्' की इसी संख्या में प्रो० ग्रेंबवणेकर ने 'एडमंड बर्क' पर बहुत ही पठनीय लेख लिखा है। इस लेख में उन्होंने, वॉरन् हेस्टिंग्ज़ ने हिन्दुस्तान के विशेषकर बङ्गाल के लोगों पर कैसे जुल्म और अत्याचार किये थे, उन अत्याचारों से प्रजा कैसी पीड़ित हुई थी, वॉरन् हेस्टिंग्ज़ के इंग्लैण्ड लौटने के बाद उस पर कैसा अपराध लगाया गया, (Impeachment), एडमंड बर्क ने अपनी प्रभावशाली वक्तृता से वॉरन् हेस्टिंग्ज़ के अत्याचारों का कैसा भण्डाफोड़ किया, आदि बातों का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। पार्लियामेण्ट में भाषण करते समय बर्क महाशय ने हिन्दुस्तान की जनता के सम्बन्ध में जो विशेष बातें कही थीं, उनका कुछ अंश इस प्रकार है—

"उनकी (हिन्दुओं की) सामाजिक व्यवस्था का और धर्मशास्त्र का उदय हमारे कल के कीट-सदृश उद्गम के (prior to our insect origin of yesterdays) सैकड़ों वर्ष पूर्व हुआ है। अंतर्बल और चिरस्थायिता ये दो गुण इस समाज में विशेषतया दिखाई देते हैं। संसार में आज तक कई साम्राज्य और कई समाज नष्ट हो चुके हैं; किन्तु हिन्दू-समाज आज भी पुराना; किन्तु नवजीवनमय है। अनेक आघात होते हुए भी यह डाँवाडोल नहीं होता। देश की चहारदीवारी के अन्दर ही रहने के कारण उसकी शुद्धता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। मुसलमानों, पोर्तुगीज़ों अथवा अँगरेज़ों के जुल्म और अत्याचार उस पर कुछ भी प्रभाव न डाल सके।"

× × ×

महात्मा गांधी का यश

"किर्लोस्कर" में 'महात्मा गांधीचें यश' शीर्षक सम्पादकीय लेख में गांधीजी के निःशस्त्र सत्याग्रह के आन्दोलन की महत्ता का वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

"क्या, दुनिया के इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण है, कि जिसमें निःशस्त्र और सशस्त्र के युद्ध में निःशस्त्र-लोगों ने मैदान मारकर शस्त्रवालों को परास्त किया हो? प्रत्युत कतिपय राष्ट्र बलवान शासकों की बदौलत नष्ट हो गये हैं, ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं। हिन्दुस्तान की भी यही हालत होगी। बहुतेरे विचारशील लोगों ने ऐसी आशङ्काएँ प्रकट की थीं और उनकी ये आशङ्काएँ कुछ झूठ नहीं थीं।

किन्तु साधारण लोगों को जो काम कठिन; बल्कि असम्भव-सा प्रतीत होता है, वही काम असाधारण लोग अपने विचारों और प्रयत्नों के बल पर सम्भव कर दिखाते हैं। आज तक लोगों का यही खयाल था, कि बड़ी-बड़ी तोपें, बन्दूकें, तलवार, बम, टार्पेडो और ज़हरी वायु आदि ही युद्ध के साधन होते हैं, और ये साधन जिन लोगों के पास अधिकता से मौजूद होते हैं, उन्हें ही विजय मिलती है; किन्तु महात्मा गांधी ने खूब सोच-विचारकर 'सत्याग्रह' और 'असहयोग' ये दो नये शस्त्र ऐसे निर्माण किये हैं,

कि इनके सामने आज तक के अन्य सारे शस्त्र बेकाम हो गये हैं।

गांधीजी ने ये दो शस्त्र जब से हिन्दुस्तान के हाथ में दिये हैं, अखिल राष्ट्र को यह आशा प्राप्त होगई है, कि वे औपनिवेशिक स्वराज्य ही क्या; बल्कि पूर्ण स्वराज्य भी हासिल कर सकेंगे। ब्रिटिश सरकार आज तक इसी भ्रम में मस्त थी, कि वह अपने शस्त्रास्त्रों के बल पर हिन्दुस्तान को सदैव पैरों तले कुचला करेगी; किन्तु गांधीजी ने इस भ्रम के पिटारे को नष्ट कर के उसका भण्डाफोड़ कर दिया है।

किन्तु इतना करके ही वे नहीं ठहरे। उन्होंने अपने अपूर्व स्वार्थत्याग से, सच्ची देशभक्ति से और निर्भय वृत्ति से देश के हृदय पर कब्जा कर लिया है और इसी वृत्ति का बीज अगणित हृदयों में बोया है। जब इस प्रकार की वृत्ति लोगों के हृदयों में उत्पन्न हो गई है, तो सर्वस्व देकर भी देश स्वराज्य प्राप्त करेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

—आनन्दराव जोशी।

× × ×

मराठी-औपन्यासिक श्री० वामन-मल्हार जोशी

अभी हाल ही में ३, ४ तथा ५ वीं मई को गोवा में मराठी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति महाराष्ट्र के प्रख्यात उपन्यासकार, पत्रकार एवं विद्वान् लेखक श्री० वामन-मल्हार जोशी महोदय थे। मराठी 'ज्ञान-प्रकाश' के आधार पर उनका अल्प परिचय यहाँ पर दिया जाता है—

"श्री० वामन-मल्हार जोशी का जन्म १८८२ के जनवरी महीने में, महाराष्ट्र देश के कोलाबा ज़िले के एक गाँव में हुआ था। सन् १९०० में आपने मेट्रिक की परीक्षा पास की और पूना के डेक्कन कॉलेज में प्रविष्ट हुए। अपने कॉलेज के जीवन से ही आपने साहित्य की सेवा प्रारंभ कर दी थी। कॉलेज की त्रैमासिक-पत्रिका में आप विविध विषयों पर लेख लिखा करते थे। बी० ए० क्लास में आपका ख़ास विषय तत्त्वज्ञान (फिलासफी) था और इसी विषय में १९०६ में आपने एम० ए० की पदवी प्राप्त की।

सन् १९०७ में महाराष्ट्र में राजनैतिक अन्दोलनों के प्रारंभ होने पर, श्री० वामनराव ने श्री० विष्णु-गोविन्द बीजापुरकर महोदय-द्वारा संस्थापित 'समर्थ-विद्यालय' नामक राष्ट्रीय संस्था में कार्य किया। वहाँ पर रहते हुए ही आप श्री० बीजापुरकर महोदय के मासिक-पत्र 'विश्ववृत्त' का संपादन भी किया करते थे। उन्हीं दिनों उक्त पत्र में, श्रीपाद-दामोदर सातवलेकर महोदय का "वेदमंत्रों का सामर्थ्य" नामक लेख छपा। यह लेख तथा अन्य सम्पादकीय टिप्पणियाँ राजद्रोह को उत्तेजन देनेवाली समझी गईं, और श्री० वामन-मल्हार जोशी पर मुकदमा चलाया गया। फलतः आपको तीन वर्ष की सख्त सज़ा हुई।

कारागृह से मुक्त होकर श्री० जोशी आर्य-भूषण छापाखाने की ओर से प्रकाशित होनेवाले अँगरेज़ी-मराठी कोश का संपादन करने लगे। अभी इस कोश की थोड़ी ही छपाई हुई थी, कि आर्य-भूषण प्रेस में आग लगने से उक्त कोश जल कर नष्ट हो गया।

आर्य-भूषण प्रेस से आकर श्री० जोशी महोदय लोकमान्य तिलक के केसरी-कार्यालय में काम करने लगे। यहाँ पर आपको साप्ताहिक 'मराठा' का उपसंपादक बनाया गया। यहाँ पर आपने १९१५ तक कार्य किया। इसके अनन्तर बम्बई से निकलनेवाले 'मेसेज' नामक एक अँगरेज़ी भाषा के दैनिक-पत्र का संपादन भी किया।

आपने 'रागिणी' 'आश्रमहरिणी' 'नलिनी' आदि उपन्यासों का प्रणयन किया है। जिनमें 'रागिणी' आपकी उत्कृष्ट रचना मानी जाती है। 'रागिणी' और 'आश्रमहरिणी' का तो हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। विविध ज्ञान-विस्तार, मनोरंजन, नवयुग, उद्यान आदि मराठी भाषा के अच्छे-अच्छे मासिक-पत्रों में आपके बहुत से लेख प्रकाशित हुए हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त आपने 'नीतिशास्त्र प्रवेश' 'साक्रटीसाचे संवाद', 'विचार विलास' 'नवपुष्प-करण्डक' आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। 'नवपुष्प-करण्डक' आपकी लिखी हुई कहानियों का संग्रह है।

श्री० वामन-मल्हार जोशी महोदय के सामाजिक विचार बहुत उन्नत हैं। शीघ्र सामाजिक सुधार के आप कट्टर पक्षपाती हैं। वर्तमान समय में श्रीयुक्त जोशी आचार्य धोंडो केशव कर्वे-द्वारा संस्थापित महिला-विश्व-विद्यालय पूना के एक प्रमुख अधिकारी हैं।

—शंकरदेव।

गुजराती

प्रारब्धवाद

'कुमार' में एक सज्जन लिखते हैं—

"हमारी इस अवनति का क्या कारण है? और कारण जो कुछ हों; पर प्रारब्धवाद उनमें से मुख्य है। आधी से अधिक जिम्मेदारी इसी की है। ईश्वर ने मनुष्य को पुरुषार्थ दिया है; पर वह किस काम का, जब तक कि हम उससे कार्य न लें। अकाल मृत्यु होने पर, व्यापार में घाटा होने पर, नौकरी छूटने पर, बीमार होने पर, घर में आग लगने पर प्रायः सभी यही कहते हैं, कि जो भाग्य में लिखा था, हुआ; पर ऐसा कहना भयंकर पाप है। आत्मा और परमेश्वर का द्रोह करना है। अपनी नामर्दी की सूचना देना है।

संसार में जितने महान् पुरुष हुए हैं, सबके जीवन-चरित्र के पन्ने उलट कर देखिए, आपको पता चलेगा, कि सभी प्रारब्ध को थप्पड़ मार कर ही महान् बने हैं। सत्ताधिकारी, लक्ष्मी के लाड़ले, सरस्वती के सुपूत, आत्म-संयमी, ईश्वर को अपने ईशारे पर नचानेवाले, धनी, विद्वान्, ज्ञानी और भक्त सबों ने प्रारब्ध से लोहा लिया है। प्रारब्ध के विरुद्ध खूब लड़े हैं, तभी वे सफल हुए हैं, चिरस्मरणीय हुए हैं, आदर्श माने जाते हैं।

अगर आप अपने को मनुष्य कहते हों, अगर आप पुरुष हों, मर्द हों, तो बाँह चढ़ाकर, विश्वासपूर्वक विधाता से भिड़ पड़िए, खूब जूझिए, आमरणांत लड़िए। बस, विजय आपकी है।

अकाल मृत्यु पानेवाला अपनी भूलों के कारण ही मौत को बुलाता है। खान-पान और रहन-सहन संयमपूर्वक हो, तो मजाल है, कि मृत्यु इधर हाथ बढ़ा सके? व्यापार की खोट और नौकरी की पूर्ति तो साहसी मनुष्य दम-के-दम में कर सकता है। अकस्मात् और आपत्ति तो मर्दों के लिये बाएँ हाथ का खेल है; पर यह सब आपके पुरुषार्थ और आपकी मर्दानगी पर अवलंबित हैं।

श्रद्धा और पुरुषार्थ के आगे प्रारब्ध पानी भरता है।"

× × ×

जर्मनी में शिक्षा का उद्देश्य

कुमार में एक सज्जन ने लिखा है—

"जर्मन-युवकों को अब निश्चय हो गया है, कि सच्चा धन अनुभव और प्रेम है। आत्मज्ञान के आगे वे संसार के राज्य को भी तुच्छ समझते हैं। उनका कहना है, कि जो पुस्तक-ज्ञान नए युग में काम न आए, वह निरर्थक है। शिक्षा का आदर्श ज्ञान की वृद्धि करना है, न कि पुस्तकों का रटना। वे पढ़ने पर इतना अधिक ध्यान नहीं देते, जितना समझने पर। वहाँ के स्कूलों में भी इस विचार का एक असर हुआ है। अब वहाँ विद्वान् बनाने की इतनी कोशिश नहीं की जाती, जितनी मर्द बनाने की।

जीवन का सच्चा रंग देखने को जर्मन-युवक पहले अनुभव प्राप्त करने के लिये निकल पड़ता है। गाँव-गाँव में जाता है। किसान और मजदूरों के साथ रहता है। अपने को उन्हीं के ऐसा बना लेता है। नागरिक जीवन की ओर ध्यान भी नहीं देता। सुबह, दोपहर और शाम की प्राकृतिक छटाओं को खूब देखता है और उन्हें हृदयंगम करता है। विश्व के बदलते हुए रूपों को, जीवन-नृत्य के रहस्य को समझने की कोशिश करता है। ऐश, आराम और व्यसन से वह दूर भागता है—इन्हें तो वह ज़हर के समान समझता है। शराब और सिगरेट के पास फटकता तक नहीं। भूख-प्यास की तकलीफ़ सहने को तैयार रहता है। जाड़ा-गरमी की उसे परवा नहीं रहती। इस प्रकार जीवन के इस पहलू का भी अनुभव करके पूर्णता को प्राप्त करता है। जिससे उनको, उनके देश और देशवासियों की स्थिति का पूरा ज्ञान होता है और वे उनकी त्रुटियों और आवश्यकताओं को दूर करने का सतत प्रयत्न करते हैं।

देशसेवा का यह कैसा उत्तम मार्ग है? विद्यार्थियों के लिये मनोरंजन वायुसेवन और वायु-परिवर्त्तन का यह कैसा अच्छा साधन है? देश की सेवा और ज्ञान-वृद्धि, दोनों एक ही साथ! क्या भारतीय युवक इस ओर ध्यान नहीं दे सकते? अधिक नहीं, तो अपनी छुट्टियों का ही समय इस ओर लगाएँ, तो देश का सच्चा ज्ञान, देश की सेवा, पर्यटन के साथ-साथ ग्राम-संघटन और ग्राम-सुधार का मसला कैसी आसानी से हल हो जाय।"

× × ×

हिन्दुस्तान और संगीत

'बम्बई समाचार' में एक सज्जन लिखते हैं—

"हिन्दुस्तान में संगीत का आरम्भ भक्ति से हुआ। यहाँ के आदि गवैये ब्राह्मण थे। जो भक्ति करने और कराने के समय अपने इष्टदेवों की स्तुति के भजन गाया करते थे।

मुसलमान जब यहाँ आए, तब वे अपने साथ अपनी गायन-कला लेते आए। उनकी संगीत की कला को पहले मुसउज़ह ने पूर्णता को पहुँचाया था। फिर जब ईराक़ में अब्बासी दरबार स्थापित हुआ, तब अरबी और फारसी संगीत मिलकर एक नई और अतिशयपूर्ण गिना नाम की कला निकली।

दिल्ली में इस कला की उन्नति हुई। वहाँ से वह लखनऊ के दरबार में पहुँची। नवाब शुजाउद्दौला की गुण-ग्राहकता और उदारता ने समस्त हिन्दुस्तान के गवैयों को अवध की भूमि पर एकत्र किया।

लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअली शाह के समय में गायन-कला में एक बड़ी क्रान्ति हुई। वाजिदअली शाह ने गायन-कला की शिक्षा वासितखाँ नाम के एक विचक्षण और विशेषज्ञ से पाई थी। उनके समय में लोगों ने राग-रागिनियों की झंझटों को छोड़कर सादी, मनहर, सरल और सुबोध बातों पर इस कला को चलाया। सर्वसाधारण में गज़ल और ठुमरी फैली। ध्रुपद, हवाई आदि जो बहुत कठिन विषय है, उन पर लक्ष नहीं दिया गया। खम्माच, झिंझोंटी, भैरवी, सिंदोरा, तिलक, कामोद, पीलू आदि छोटी-छोटी मजेदार रागिनियाँ तमाशबीनों के लिये छाँट ली गईं। यही रागिनियाँ वाजिदअली शाह को भी पसन्द थीं।

'लय' गायन-कला का एक खास अंग है। वाजिदअली शाह इसमें खूब दक्ष थे।

'नीरत' जिसे भाव-भंगी भाव-प्रदर्शन कहते हैं, इसका भी ज्ञान गवैये के लिये आवश्यक है।

गायन में दो बातें ख़ास हैं। सुर और लय। इन दोनों का बिगड़ना गाने का चौपट होना है; अतः इन दोनों की रक्षा के लिये दो यंत्रों की ज़रूरत पड़ी। सुर ठीक रखने के लिये सारंगी और लय के लिये तबला काम में आया। प्राचीनकाल में हिन्दुस्तान में 'सुर' ठीक रखने के लिये 'वीणा' का प्रयोग होता था। मुसलमानों के आने पर जब यहाँ की और मुसलमानों की कला का सम्मिश्रण हुआ तब 'तंबूरा बना, जो केवल सुरों को ठीक रखने के काम में आता है और 'वीणा' का छोटा रूप ही है; पर यह अकेला नहीं बजाया जा सकता। थोड़े दिनों बाद अमीर खुसरो ने सितार चलाया। वीणा और तँबूरे से अधिक लोगों ने इसे पसंद किया; पर वीणा, तंबूरा और सितार ये तीनों गले के सब ख्यालों में काम नहीं आ सकते थे। इस अभाव की पूर्ति के लिये मुहम्मदशाह रँगीला के दरबार के एक प्रसिद्ध गवैये मियां सारंग ने सारंगी निकाली, जो उन्हीं के नाम से चल निकली। सारंगी ने वीणा, सितार और तंबूरा तीनों को पीछे हटा दिया। इन पुराने बाजों में कानून नाम का भी एक बाजा था। उसके बजाने-वाले अब नज़र नहीं आते।"

—छुन्नूलाल द्विवेदी।

उर्दू

मौत की सज़ा

कानपुर के रिसाला 'ज़माना' में मि० मनोहरलाल ने मृत्यु-दण्ड पर एक विचारपूर्ण लेख लिखा है। आप लिखते हैं—

"मनुष्य भ्रम और भूल का पुतला है। सजा देनेवाला भी तो आख़िर मनुष्य ही है! इसलिये वह भी निर्दोष नहीं हो सकता। एक ग़लती से एक पवित्र जीवन का अन्त हो सकता है। सारे संसार के मनुष्य मिलकर भी इस भूल का प्रायश्चित्त नहीं कर सकते। अक्सर ऐसा हुआ है, कि अभियुक्त को किसी अपराध में मौत की सजा दे दी गई, बाद को मालूम हुआ, कि अभियुक्त निरपराध था और हत्या दूसरे आदमी ने की थी। ऐसी दशा में यह बेगुनाह खून किसकी गर्दन पर रहा?

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि प्राणदण्ड मानवी सभ्यता के लिये एक कलंक है। पच्छिम के बाज देशों में इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है और आशा की जाती है, कि कम-से-कम स्त्रियों को इस दण्ड से मुक्त कर दिया जायगा।"

× × ×

औरंगजेब और उसके भाई

लखनऊ से 'अलनाज़िर' नाम की एक सुन्दर पत्रिका निकलती है। मुहम्मद तक़ी अहमद ने मार्च के अलनाज़िर में एक ऐतिहासिक लेख लिखा है। लेख का नाम है—"औरंगजेब भाइयों के मुक़ाबले में।" शायद मुसलमान बादशाही में इतिहासकारों ने किसी के साथ इतना अन्याय नहीं किया, जितना औरंगजेब से। दगाबाज, कपटी, धर्मांध, लोभी आदि पदवियाँ उसे दी गई हैं; पर वास्तव

में शाहजहाँ के चारों राजकुमारों में वही राजसिंहासन पर बैठने योग्य था। लेखक उसके चरित्र की व्याख्या करते हुए लिखता है—

"औरंगजेब में बचपन ही से खुदादाद हिम्मत और जवाँमरदी भरी हुई थी। मुकाबले से घबड़ा जाना और अपने दुश्मन से सहम जाना, उनकी घुट्टी में नहीं पड़ा था; मगर इससे भी ज्यादा काबिल तारीफ़ औरंगजेब की मौकाशिनासी थी। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती गई, मौकाशिनासी भी ज्यादा होती गई। दक्खिन की सूबेदारी की पाँच साल की मुद्दत में औरंगजेब ने मातहत अफ़सरों का ऐसा समूह जमाकर लिया, जिनमें से हरेक अपने विषय का पण्डित था। वही दक्खिन का सूबा, जिसका हर गाँव उजड़ा हुआ, हर खेत ऊसर, हर काश्तकार तबाह था, औरंगजेब के प्रबन्ध से इतना सुधर गया, कि भीमसेन ने लिखा हैं—मुझको औरंगाबाद के आस-पास एक अंगुल ज़मीन भी ऐसी न मिली, जिसमें खेती न होती हो।"

× × ×

राष्ट्रीयता की मंज़िलें—

अप्रेल के 'ज़माना' में मि० हरिकृष्ण ने भारत में राष्ट्रीयता के विकास का अच्छा सिंहावलोकन किया है। हिन्दू-संगठन और मुसलिम संगठन का ज़िक्र करने के बाद आप लिखते हैं—

"अब जल्द ही तीसरे युग का आरम्भ होनेवाला है, जिसके प्रवर्तक महात्मा गांधी हैं। सामकालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक संघर्ष की दशा विकास की एक स्वाभाविक क्रिया है। राष्ट्रीयता का जो बीज महात्माजी हिन्दुस्तानियों के मस्तिष्क और हृदय पर बिखेर रहे हैं, भीतर-ही-भीतर जड़ पकड़ रहा है। क्रांति की एक आँधी चल रही है। इससे कोई बच नहीं सकता। हम आँखें बन्द किए मध्यवर्ती दशाओं से होते हुए, लक्ष्य की ओर भागे चले जा रहे हैं।"

—सुशील।

अँगरेज़ी

भारत, अमेरिका और जापान—

महात्मा गांधी ने वाइसराय के नाम जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने वाइसराय और ब्रिटिश प्रधानमंत्री के वेतनों की तुलना की थी और दोनों का भयानक अन्तर दिखलाया था। अप्रैल के 'माडर्न रिव्यू' में भारतवर्ष में दिये जानेवाले वेतनों से अमेरिका और जापान के प्रमुख अधिकारियों को दिये जानेवालों वेतनों की तुलना की गई है। पाठक देखें, यहाँ कैसा अंधेर खाता है। 'माले मुफ्त दिले बेरहम' वाली कहावत ठीक चरितार्थ होती है।

भारत के बड़े लाट को सालाना २½ लाख मिलते हैं। यह तो वार्षिक वेतन हुआ। भत्ता वगैरह अलग, प्रो० फिंडले शिराज के मतानुसार भारतवासियों की अधिक-से-अधिक आमदनी ११६) रु० वार्षिक है। यह आँकड़ा गलत है, और जानकार भारतवासी इसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। फिर भी हम इसे सही मान कर तुलना करते हैं। इससे स्पष्ट है, कि बड़े लाट की आय (सिर्फ वेतन के द्वारा) एक भारतवासी से २१५५ गुना अधिक है। गाँवों के चौकीदारों को पाँच या छः रुपया मासिक मिलता है; पर इससे तुलना करना व्यर्थ है। पहरा देनेवाले; अर्थात्—कानस्टेबल की वार्षिक आय २५०) रुपए से अधिक नहीं होगी, पर बड़े लाट की आय कानस्टेबल से हजार गुना अधिक है।

अमेरिका के प्रेसिडेंट (सर्वोच्च शासक) का वार्षिक वेतन है २०७७५० रु०। एक अमेरिकन की औसत आय हैं १७१६) रु० (संसार के किसी देश के देशवासी से अधिक वार्षिक) बड़े लाट के वेतन से और इनके वेतन से तुलना कीजिये। कहाँ परम स्वतन्त्र देश अमेरिका का प्रेसिडेंट और कहाँ ब्रिटिश गवर्नमेंट का एक नौकर! अमेरिका के प्रेसिडेंट की आय एक अमेरिकन की औसत आय से सिर्फ १२१ गुना अधिक है।

अमेरिकन पत्र 'लेबर रिव्यू' में वहाँ के पुलिस-विभाग के अधिकारियों के वेतन प्रकाशित हुए हैं। वहाँ सबसे छोटा पुलिस अधिकारी है 'पेट्रोलमैन'। इसके वेतन से प्रेसिडेंट के वेतन की तुलना कीजिये, तो मालूम होगा, कि प्रेसिडेंट केवल तीस गुना ही अधिक पाते हैं। लेकिन एक भारत की ओर देखिये!

जापान के प्रधान मन्त्री को वार्षिक १६२००) रुपए मिलते हैं, एक जापानी की औसत आय ३५१) रुपए हैं। यानी प्रधान मन्त्री सिर्फ ४६ गुना अधिक पाते हैं।

यह भूलना न चाहिये, कि भारतवासी जापानियों और अमेरिकनों से बहुत अधिक ग़रीब हैं। जापान और अमेरिका दोनों अव्वल दर्जे के स्वतन्त्र राष्ट्र हैं—भारत एक

पराधीन देश है !! अमेरिका का प्रेसिडेंट संसार में सबसे धनी देश का अगुआ है और जापान का प्रधान मन्त्री एशिया में सर्वश्रेष्ठ, सुसंपन्न और समुन्नत देश का सर्वोच्च अधिकारी है। भारत ऐसी ही बड़ी-बड़ी तनख्वाहें और करोड़ों रुपये पेंशनों के रूप में भारत से बाहर बाँटने के लिये मजबूर है। भगवान ही उसकी रक्षा करें !!!

—नारायण-राजाराम सोमण।

× × ×

भोजन और प्रेम

यदि दाम्पत्य कलह आपके यहाँ होते हों, तो आप उन्हें भोजन का दोष ही समझें—यह नई घोषणा डा० ई० टलीयङ्ग ने की है, जोकि एक सुन्दर स्त्री डाक्टर हैं, जिन्होंने कितने ही पुरुष-स्त्रियों की भोजन-विधि सुधार कर उन्हें सुख के रास्ते अग्रसर किया है। "टिटबिट्स" के संवाददाता से आपने कहा, कि हमारे शरीर के निर्माण-कर्त्ता १६ पदार्थ हैं। जिस मनुष्य में जिस पदार्थ का आधिक्य होता है, उसका रहन-सहन, विचार, शरीर-गठन उसी प्रकार हुआ करता है। उदाहरणार्थ—जिसमें चूने की अधिकता रहती है, वह पुरुष लम्बे क़द का होगा, रङ्ग साफ़ और आँखें नीली—आकाशवर्ण की—होंगी, चञ्चल नहीं होगा। वह अपना कार्य करने में तन-मन लगा देगा, नियम से सोयेगा, नियम से जागेगा।

डा० यङ्ग के मतानुसार यदि ऐसा पुरुष किसी स्त्री से विवाह कर ले, जिसमें सोडियम का आधिक्य हो, तो प्रतिदिन उसके घर में झगड़े सुन लीजिये ; क्योंकि सोडियम-प्रधान स्त्री के लक्षण ये हैं—अति चञ्चल, देर से सोनेवाली, देर से उठनेवाली, खेल-कूद और बहुत बकबक पसन्द। चूना-प्रधान व्यक्ति को कार्बन की अधिकता रखती हुई स्त्री का जोड़ा ढूँढ़ना चाहिये। यदि पुरुष चूना-प्रधान प्रकृति का है और स्त्री सोडियम प्रकृति वाली तो उसे चाहिए कि अपनी स्त्री को कार्बन की अधिकता रखनेवाले पदार्थ खिलाए। इससे उसकी प्रकृति बदल जायगी और सप्रेम दोनों रह सकेंगे।

× × ×

सन् २०३० में

लार्ड बर्कनहेड, जो पहले भारत-मन्त्री थे, विलायत के माननीय लेखकों में से हैं। इन्होंने अभी एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है "२०३० अर्थात् संसार की एक शताब्दी पश्चात् की अवस्था।" एक स्थान पर वे लिखते हैं—

"इन (अर्थात् मध्यस्थ कुलों की) स्त्रियों से अधिक आलसी जीव और कोई नहीं। इनमें से अधिकतर ऐसा विचार करती हैं, कि दो या तीन बच्चे यदि वे इस संसार में ले आईं, तो जैसे वे किसी विशेष गुण से सम्पन्न हो गईं। मातृत्व का कार्य पूरा करने पर घर को किसी बावर्चिन को सौंप, बच्चों को आया के सिर पटक, वे आदर्श शून्य सुख का जीवन व्यतीत करती हैं। Ectogenesis के आविष्कार से उनका यह सुख छिन जायगा ; क्योंकि फिर उनका मातृत्व-द्वारा पाया मान और सुख भंग हो जायगा और इन्हें भी औरों के समान कुछ-न-कुछ कार्य ढूँढ़ ही निकालना पड़ेगा, जिससे कि उनका जीवन पशुवत् सूना न दीख पड़े।"

अब Ectogenesis क्या है वह सुनिये। Ectogenesis लार्ड बर्कनहेड की अपनी अन्वेषणा है। उनका विचार है, कि जिस प्रकार से विज्ञान में वृद्धि हो रही है, इस चाल को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं रह जाती, कि एक दिन कोई वैज्ञानिक यह कह दे कि माता का और गर्भ में बालक का केवल रासायनिक सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध मालूम हो जाने पर पेट के बाहर जैसे लेबोरेटरी में अंडे गर्मी देकर बिजली-द्वारा सेये जाते हैं, वैसे ही बालक भी पैदा होंगे। ऐसे बालकों का नाम बर्कनहेड साहब ने रखा है test tube babies और इस विधि को ही Ectogenesis कहते हैं। बर्कनहेड साहब का अनुमान है, कि बालक उत्पन्न होने की विधि नवीन हो जाने के कारण विवाह-शैली में एकदम उथल-पुथल हो जायगी और स्त्रियाँ गर्भधारण करने की वेदना, और उस समय कार्य न कर सकने के पशुवत् जीवन से छुट्टी पा जाएँगी। उनका जीवन मनुष्यों के समान स्वतंत्र हो जायगा और वे बड़ी उन्नतिशाली होंगी ; परन्तु फिर भी लार्ड बर्कनहेड की धारणा है, कि वे रहेंगी पुरुषों से नीची ही।

× × ×

पूर्व और पश्चिम के धर्म-विचार

कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के विख्यात अध्यापक श्रीयुत राधाकृष्णन को मेन्चेस्टर युनिवर्सिटी ने लेक्चर देने के लिए बुलवाया था। उन्होंने जो व्याख्यान वहाँ दिये उनके विषय में लोगों का कथन है, कि ऐसे लेक्चर इधर २० या २५ वर्ष में वहाँ नहीं सुने गए थे। फिर उन्होंने

मार्च को लन्दन में "पूर्व और पश्चिम के धर्म विचार" पर व्याख्यान दिया, जो कि अप्रेल मास के 'इण्डियन रिव्यू' में छपा है। राधाकृष्णनजी ने व्याख्यान आरम्भ करते हुए इस बात पर ज़ोर दिया, कि सच पूछिये तो धर्म में न तो कोई पूर्व है न पश्चिम। पृथक्-पृथक् देशों ने धर्म विचार के विकसित होने में अपनी-अपनी यथाशक्ति सहायता की है। बस। यद्यपि संसार के सब मुख्यधर्म पूर्व से ही निकले हैं; फिरभी इनमें देश और काल के नियम से अन्तर पड़ गया है। कुछ तो पूर्व में ही जन्मे और इधर ही विकास पाया; जैसे—बौद्धमत, हिन्दू-धर्म और इस्लाम। और कुछ अन्य मतों का जन्म तो पूर्व में हुआ; परन्तु विकास और रूप हो गया पाश्चात्य; जैसे—ईसाई धर्म। आगे आप कहते हैं—

"पश्चिमी लोगों की दृष्टि-विधि वैज्ञानिक अधिक है। (अर्थात् वे सत्य की परख के लिए अपनी इन्द्रियों की सहायता पर ही निर्भर रहते हैं, जो बात देख नहीं सकते उस पर विश्वास नहीं करते हैं) उनका आकर्षण वस्तु के बाह्य रूप से अधिक होता है। पूर्वीय प्रकृति विचारशील अधिक है। वस्तुओं के आन्तरिक रूप उनके वास्तविक रंग से उसका संबन्ध अधिक रहता है। ज्ञान-संचय के लिए केवल इन्द्रियों पर ही नहीं; बल्कि अपनी अलौकिक-शक्ति पर भी वे निर्भर करते हैं।"

अध्यापक राधाकृष्णनजी का मत है, कि सच्चा-धार्मिक दृष्टि कोण तब तक नहीं होता, जब तक कि बाह्यरूप के जाल को अलग करके हम वस्तुओं की आन्तरिक वास्तविकता का अनुभव नहीं कर लेते। आपने अपने भाषण में यही दिखाया है कि सत्य अपार है, अकथ्य है। किसी एक धर्म के अनुयायी यह दृढ़रूप से नहीं कह सकते, कि सत्य के ज्ञान का सर्वाधिकार उन्हीं के पास सुरक्षित है।

—हरिहरनाथ शुक्ल।

(पृष्ठ ६८ का शेषांश)

राधी कौन है ? पेशावर में तहक़ीक़ातीकमेटी के सामने जो बयान हो रहे हैं, उनसे विदित होता है, कि जब तक जनता के तीन आदमी सशस्त्र कारों से कुचल नहीं गए, किसी ने पत्थर नहीं फेंके। एक कर्मचारी ने तो यहाँ तक कहा, कि फौज को बुलाने की कोई जरूरत न थी। फिर भी फ़ौज बुलाई गई और कितने ही आदमी मार डाले गए। क्या यही Law and order की रक्षा है ? हम यह मानते हैं, कि कहीं-कहीं जनता ने पत्थर फेंके होंगे; पर उसी वक्त, जब पुलीस या फ़ौज ने कोई ज्यादती की होगी। खेद तो इस बात का है, कि सेक्रेटरी तक पुलीस की इन डण्डेबाजियों की तारीफ़ें कर रहे हैं और हिज़ एकसेलेंसी भी यही फरमाते हैं, कि कहां उससे ज्यादा सख्ती नहीं की गई—जितनी जरूरी थी। हमारे नेता गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रहे हैं, कि पुलीस घोर अत्याचार कर रही है। इस कठोर दमन से उदासीन होकर लोग असेम्बली और कौन्सिलों से धड़ाधड़ इस्तीफ़े दे रहे हैं; पर सरकार यही कहे जाती है, कि जरूरत से ज्यादा सख्ती कहीं नहीं की गई। सेक्रेटरी साहब ने तो इन इस्तीफ़ों का ज़िक्र तक नहीं किया। अब तो स्त्रियों पर भी सख्ती होने लगी है। देखा चाहिए, यह दमन क्या-क्या गुल खिलाता है। हम तो इतना ही जानते हैं, कि जाग्रति दमन से दबने वाली नहीं। दमन से वह और भी ज़ोर पकड़ेगी।

सूचना

'हंस' का प्रत्येक अंक हिन्दू महीने की शुक्ला पंचमी को प्रकाशित हो जाता है। अगर किसी मास का अंक किन्हीं सज्जन को न मिले, तो वे अपने यहाँ के पोस्ट-ऑफिस से जवाब लेकर हमारे पास प्रत्येक मास की पूर्णिमा तक अवश्य भेज दें; ताकि हम दुबारा उन्हें अंक भेज सकें। बिना ऐसा किये हम उत्तर-दाता न होंगे।

—व्यवस्थापक

हंस-वाणी

दमन

दमन का बाज़ार गर्म है। निबल का एकमात्र आधार रोना है, सबल का एकमात्र आधार आँखें तरेरना। दोनों क्रियाएँ आँखों से ही होती हैं; लेकिन उनमें कितना बड़ा अन्तर है! स्वेच्छाचारी सरकारों की बुनियाद पशु-बल पर होती है। वह हरेक अवसर पर अपना पशु-बल दिखाने को तैयार रहती हैं। प्रजा की हरेक शिकायत की दवा उनके पास संगीन और मेशीनगन हैं। पशु-बल पर उनका अखंड विश्वास है। उनकी समझ में यह हरेक बीमारी की अचूक दवा है। वह कभी इसे स्वीकार नहीं करतीं, कि वह दवा कभी-कभी चूक भी जाती है। अगर पुराना इतिहास इसके विरुद्ध कोई प्रमाण देता है, अगर रूस, इटली, फ्रांस और स्वयं इंगलैंड आदि देशों में इसका व्यर्थ होना सिद्ध हो गया है, तो हमारी सरकार इससे यह नतीजा निकालती है, कि उन देशों में उतना दमन नहीं किया गया, जितना जरूरी था। अगर पक्का, सोलहों आना दमन होता, तो मजाल थी, कि शासकों को सफलता न होती। उन देशों के शासक कच्चे थे। दमन करना न जानते थे। हमारी सरकार दमननीति के व्यवहार में सबसे बाजी लिए जारही है और यह कौन कह सकता है, कि वह गलती पर है। पुरानी कहावत है, कि मार के आगे भूत भागता है। आख़िर आंदोलन करनेवाले, आदमी ही तो हैं! मार्शल लॉ से. जेलखानों में बंद करके, सरकार उन्हें चुप कर सकती है; मगर जैसा जर्मनी के प्रिंस बिस्मार्क जैसे पशुबलवादी को भी स्वीकार करना पड़ा था, कि "संगीन से तुम चाहे जो काम ले लो; पर उस पर बैठ नहीं सकते।" हमारी सरकार दमन के व्यवहार से, चाहे जाति को चुप कर दे; पर उसे शांत नहीं रख सकती। उसके लिए दोनों रास्ते खुले हुए हैं। एक तो प्रजा की शांति—उससे उत्पन्न होनेवाली विभूतियों की ओर ले जाती है, दूसरी प्रजा की अशांति—उससे उत्पन्न होनेवाली विपत्तियों की ओर। एक तरफ कीर्त्ति है, गौरव है, पारस्परिक सहानुभूति है; दूसरी ओर अपकीर्त्ति है, अन्याय है, नोच-खसोट है। हम यह कभी स्वीकार नहीं कर सकते, कि अँगरेज़ों को नेकनामी से प्रेम नहीं। व्यक्ति की भाँति ही कोई जाति इतनी पतित नहीं हो सकती, कि उसे बदनामी की लज्जा न हो। क्या आनेवाली अँगरेज़ जाति इतिहास के पन्नों में अपने पूर्वजों की क्रूर कथाएँ पढ़कर गौरवान्वित होगी? क्या अँगरेज़ जाति चाहती है, कि उसके और भारत के बीच इतना वैमनस्य हो जाय, जो सदियों में भी न मिटे? अँगरेजों का भविष्य उनके वाणिज्य और व्यवसाय पर है। क्या भारतीय जनता को असंतुष्ट रख कर वह अपने व्यापार को जीवित रख सकता है, मि० वेजवुडबेन ने अभी अपने व्याख्यान में कहा है, कि बड़ी-से-बड़ी फौजी ताक़त भी भारतीय किसानों को अँगरेज़ी चीजें लेने पर मजबूर नहीं कर सकती। यह सब जानबूझ कर सरकार क्यों इतनी निर्दयता से दमन पर कमर बाँधे हुए है, यह हमारी समझ में नहीं आता। हम ने मि० वेजवुडबेन के व्याख्यान को बड़े ध्यान से पढ़ा। उससे हमें घोर निराशा हुई। वह अभी तक भारतीय आंदोलन का तत्त्व ही नहीं समझे, या शायद समझते हुए भी न समझने की चेष्टा कर रहे हैं। अगर उनका ख्याल है, कि यह आंदोलन कांग्रेस के थोड़े-से आदमियों का खड़ा किया हुआ है और उन्हें जेल में बन्द करके या डंडों से पीटकर इसकी जड़

खोदी जा सकती है, तो यह उनकी भूल है। यह एक राष्ट्रीय आंदोलन है, यह भारतीय आत्मा के स्वाधीनता-प्रेम की विकल जाग्रति है। महात्मा गांधी क्यों भारत के हृदय पर राज्य कर रहे हैं? इसीलिये कि वह इस विकल जाग्रति के जीते-जागते अवतार हैं। वह भारत के सत्य, धर्म, नीति और जीवन के सर्वोत्तम आदर्श हैं। उन्हें जेल में बंद करके सरकार ने अगर कोई बात सिद्ध की, तो वह यह है कि जिस शासन में ऐसा देव-तुल्य पुरुष भी स्वाधीन नहीं रह सकता, वह जितनी जल्द मिट जाय, उतना ही भारत के लिये और समस्त संसार के लिए कल्याणकारी होगा। मि० बेन फरमाते हैं, कि किसानों पर इस आंदोलन का असर नहीं है और न मुसलमानों पर है। हम मि० बेन को इतना सादा लौह न समझते थे। स्वराज्य-आंदोलन खास कर किसानों ही का आन्दोलन है। क्या किसान इतने बड़े मूर्ख हैं, कि वह अपना हित भी नहीं समझते? संभव है, कि उनके पास अपने भावों और विचारों के प्रकट करने का वैसा अवसर, साधन और साहस न हो, जिसका मि० बेन-जैसे आदमी पर असर पड़ता; पर इसका यह आशय नहीं, कि वह इस आंदोलन में शरीक ही नहीं हैं? अगर इस आंदोलन में उनका कोई फ़ायदा न होता, शिक्षित समाज ने उन्हें बेवक़ूफ़ बनाकर केवल अपना मतलब गाँठना चाहा होता, तो सम्भव था, किसान शरीक न होते; लेकिन जब किसानों की आर्थिक कठिनाइयों का सुधार इस आन्दोलन के मुख्य तत्त्वों में है, तो किसान क्यों न शरीक होंगे? किसानों से ज्यादा कर और कौन देता है? उनके खेत में उपज हो या न हो; पर उन्हें लगान अवश्य देना पड़ेगा और लगान भी वह जो बराबर बढ़ता चला जाता है। क्या किसान बोलते नहीं, तो क्या अपनी दशा को महसूस भी नहीं करते? महात्माजी ने तो खुद किसानों को 'बेजबान' कहा है। अभी तो इस आन्दोलन को चले हुए तीन महीने भी पूरे नहीं हुए। ईश्वर ने चाहा, तो सरकार को यह भी मालूम हो जायगा, कि किसान इस आन्दोलन में कहाँ तक शरीक हैं! रहे मुसलमान। पिछले वैमनस्यों के कारण अभी कुछ मुसलमान-जनता ऐसी अवश्य है, जो इस आन्दोलन को शुबहे की निगाह से देखती है; पर अधिकांश लोग हमारे साथ हैं, जैसा कि जमैयतुल-उल्मा के फ़ैसले से जाहिर है। पेशावर मुसलमानों का शहर है और वहाँ की जनता पर जो कुछ हुआ है, उसने हमारे बहुत से मुसलिम भाइयों की आँखें खोल दी हैं। अभी बम्बई के भिंडी बाजार में मुसलिम-जनता पर जो कुछ किया गया है, उसका असर भी जरूर होगा। फिर क्या यह अँगरेजी सरकार के लिये गौरव की बात है, कि वह आन्दोलन के तत्व पर विचार न करके ऐसे विचारों से सन्तोष प्राप्त करे, कि इस आन्दोलन में फलाँ शरीक हैं, फलाँ नहीं शरीक हैं। यह एक अप्रिय सत्य है; पर उसे विवश होकर कहना ही पड़ता है, कि मुसलिम नेताओं में इस वक्त कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जिन पर मुसलिम जनता का विश्वास नहीं! कुछ मुसलिम नेता इस आन्दोलन से अपना मतलब गाँठने की फ़िक्र में पड़े हुए हैं और मुसलिम-जनता के हितों को अपने स्वार्थ पर बलिदान कर रहे हैं। क्या लगान कम हो जाने से केवल हिन्दू किसानों का हित होगा? क्या स्वदेशी के प्रचार से केवल हिन्दुओं का हित होगा? मेम्बरियों और ओहदों के लिये झगड़ना मुसलिम जनता के हितों को थोड़े से शिक्षित समाज के स्वार्थ की भेंट करना है। हमें पूरी आशा है, और उसके लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं, कि बहुत जल्द मुसलिम-जनता अपने नेताओं से फिरकर इस आन्दोलन में शरीक हो जायगी। मुसलिम जनता को भी अब यह बात मालूम हो गई है, कि सरकार को न हिन्दुओं से प्रेम है, न मुसलमानों से। उसके मार्ग में जो बाधक होगा, चाहे वह हिन्दू हो, या मुसलमान, उसके साथ किसी तरह की रिआयत न की जायगी। सरकार को नीच हिन्दू-जातियों से भी कुछ आशा है। कहीं-कहीं उसकी तरफ़ से इस आन्दोलन के विरोध की आवाजें भी आ रही हैं। हमें इस बात से लज्जा और

खेद है, कि ऊँची जातों ने नीची जातों के साथ पूर्वकाल में ऐसा अच्छा सलूक नहीं किया, जैसा उन्हें करना चाहिए था; लेकिन जागा हुआ हिन्दू-समाज अब अपने पिछले दुर्व्यवहारों का प्रायश्चित्त कर रहा है और कांग्रेस उन पुराने लचर और अमानुषीय बंधनों को तोड़ने में अपना पूरा ज़ोर लगा रही है। कांग्रेसी हिन्दू की नज़र में सभी हिन्दू बराबर हैं। वह किसी के साथ मिलने, साथ भोजन करने, देवमंदिरों में एक साथ पूजा करने में आना-कानी नहीं करता। वह हिन्दू-धर्म के ठीकेदारों से लड़ने पर भी तैयार है। एक अछूत भाई से बराबरी के नाते से मिलकर कांग्रेसमैन को जितना आनंद होता है, उसे बयान करने की ज़रूरत नहीं। उसका बस चले, तो वह आज ही ऊँच-नीच के बंधनों को तोड़ दे। हमें विश्वास है, कि बहुत थोड़े दिनों में ऊँच-नीच का भेद केवल इतिहास में रह जायगा; मगर हम सरकार से पूछते हैं, आप जो अछूतों के बड़े हितैषी बनते हैं, आपने उनके उद्धार के लिये क्या किया है? आपने क्यों बेगार नहीं बंद की? क्या आपको यह नहीं मालूम कि बेगार जिनसे ली जाती है, वह यही नीच भाई हैं? जरायमपेशा जातियों की सृष्टि किसने की है? आप ने या कांग्रेस ने? नीच भाइयों को शिक्षा के लिये प्रबंध करने में आपने कितनी उदारता से काम लिया है? इन बातों के होते हुए भी आप किस मुँह से अछूतों के हितैषी बनने का दावा कर सकते हैं? हमारे आदि हिन्दु भाई अब अपना दोस्त-दुश्मन पहचानने लगे हैं और हमें पूरा विश्वास है कि वह इस अवसर पर अपनी समझ से काम लेंगे। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि कांग्रेस के द्वारा ही उनका उद्धार हो सकता है और कोई शक्ति उनका उपकार नहीं कर सकती।

जिस निर्दयता से दमन किया जा रहा है, उससे तो यह साफ़ मालूम होता है, कि सरकार भारत की जाग्रति से घबड़ाई हुई है। Law and order का ढकोसला बनाकर सरकार खुद Law and order को भंग कर रही है। क़ानून केवल प्रजा ही के लिए नहीं है। सरकार पर भी उसके बनाए हुए क़ानून उतने ही लागू होते हैं, जितने प्रजा पर; मगर हम यहाँ देखते हैं, कि इस जाग्रति को दबाने के लिए सरकार किसी क़ानून की परवा नहीं कर रही है। जिस अपराध के लिये जो दंड नियत कर दिया गया है, उसका वह दंड न देकर सरकार जब जनता पर डंडों का प्रहार कराती है, तो इसे न्याय-संगत नहीं कहा जा सकता। आम तौर पर यही होता है, कि कांग्रेस का एक जुलूस निकलता है, अगर जुलूस को अपनी राह चले जाने दिया जाय, तो कोई चूँ भी न करे। कांग्रेस या उससे हमदर्दी रखनेवाली जनता लूटने के लिये जुलूस नहीं निकालती, न शांति-भंग करने के इरादे से चलती है; मगर सरकार इसे अपमान समझती है और जुलूस को रोकने के लिये नए-नए दफ़े लगाती है, पुलीस से निहत्थों को पिटवाती है और जिस चीज़ की रक्षा के लिये वह यह सब कुछ करने का दावा करती है, वह इस काररवाई से भंग हो जाता है। पेशावर, पटना, कलकत्ता, लखनऊ सभी जगह वही एक क़िस्सा है। हम लखनऊ को लेते हैं। जिस हज़रतगंज से कांग्रेस के जुलूस को रोकने के लिये सैकड़ों सिर तोड़ दिए गए, उसी हज़रत गंज से उसके पहले दो बार कांग्रेस का जुलूस शान्ति-पूर्वक निकल गया था और एक चींटी की भी जान न गई थी। इससे स्पष्ट है, कि सरकार भारतीय जाग्रति को दमन के ज़ोर से दबाना चाहती है। Law and order केवल बहाना है। शोलापुर की परिस्थिति पर सरकार ने जो विज्ञप्ति प्रकाशित की है, या पेशावर की तहक़ीक़ाती कमेटी के सामने सरकारी कर्मचारियों ने जो बयान किए हैं, उनसे भी यही प्रकट होता है, कि कर्मचारियों ने बेजा जल्दबाज़ी से काम लिया। पहले कहा गया था, कि शोलापुर में तीन पुलीसमैनों को मारकर जला दिया गया था। अब खुद सरकारी रिपोर्ट कहती है, कि यह बात ग़लत थी। तो फिर मार्शल लॉ जारी करने और हत्याकांड का अप-

(शेषांश पृष्ठ ९५ के दूसरे कालम में देखिये)

वर्ष ३ वार्षिक मूल्य ३॥) Yearly Rs. 3/8. संख्या—१२

सितम्बर १९३३ एक अंक का ।=) Single Copy As. -/6/- भाद्रपद १९९०



औंध-नरेश श्रीमन्त बाला साहब पन्त प्रतिनिधि



आप एक आदर्श नरेश, कुशल चित्रकार, संगीतज्ञ और प्रतिभाशाली लेखक हैं। कला-प्रेमी होने के कारण आपने अपने राज्य में चित्रकला की शिक्षा अनिवार्य कर दी है तथा गरीब विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क छात्रा-वास कायम कर दिये हैं। आप अपने राज्य की आय का अष्टमांश शिक्षा-सम्बन्धी कार्य में खर्च करते और राज्य में बने हुए वस्त्र का ही व्यवहार करते हैं। आपके 'सूर्य-नमस्कार' का हिन्दी में भी अनुवाद हो गया है। नेत्र-बल, आहारशास्त्र, संवर्धन, अजंता आदि आपके मराठी भाषा के ग्रन्थ हैं। व्यायाम-कुशलता के कारण भी आप बड़े प्रसिद्ध हैं।

सम्पादक—प्रेमचन्द

लेख-सूची



संगीत - रता

चित्रकार—श्री० संसारचन्द्र शर्मा

एकाकी

साथ-साथ चलने को, नभ में,
जो बूँदें हैं आकुल होतीं :
अलग-अलग सीपी में पलकर,
अलग-अलग बनती हैं मोती।
एकाकी नद, मद-विह्वल हो,
जब अपनी सुध-बुध खोता है :
कब, लय होते समय सिन्धु में,
सरिता से संगम होता है?
हो जाती है अलग मयूरी,
जब मयूर से मद झरता है :
खोल पंख, चंचल चरणों पर,
एकाकी नर्तन करता है।
एकाकी वन-कुसुम विजन में,
'अपने' में तन्मय रहता है :
एकाकी नर्तन का निर्झर,
नीरव निर्जन में बहता है।

हिम-गिरि के सर्वोच्च शिखर से,
कौन सुहृद् मिलने जाता है?
विद्युत की चंचल धारा का,
कब घन आलिंगन पाता है?
हृदय न चिन्तित हो, एकाकी
जीवन ही अमरों का धन है!
पथ अनन्त, दो दिन के सहचर—
यह भी क्या कोई जीवन है?

• •

दूर-दूर रह मिलने वाले,
क्या वह सुख दे जाते हैं :
जिसको एकाकी 'अपने' ही में,
लय होकर पाते हैं?
चारों ओर रात भर भरता,
नक्षत्रों का मेला है :
अन्तहीन नीले अम्बर में,
फिर भी चन्द्र अकेला है!

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

चित्र

रोता भाग हमारा रुककर टेढ़ी, कड़ी लकीरों में
चित्र हमारे वैभव का है नग्न, उदास फकीरों में
जेलों में खुल गये हमारे मन्दिर, मस्जिद, गिर्जा अब
सुन लो प्रभु की नम्र वन्दना लोहे की जंजीरों में

• • •

लटक रहा है सुख कितनों का आज खेत के गन्नों में
भूखों के भगवान खड़े हैं दो-दो मुट्ठी अन्नों में
कर जोड़े अपने घर वाले हमसे भिक्षा माँग रहे
किन्तु, देखते उनकी किस्मत हम पोथी के पन्नों में

• • •

जग में सुख है मृत्यु हमारी, है आराम मज़ारों में
जीवन का परिचय पाता है कोई एक हज़ारों में
अपने आँसू की गंगा में कितने अब तक डूब चले
बाकी का जीवन अटका है इन चिथड़ों के तारों में

• • •

जिसका जीवन ही खप जाता अपना दुखड़ा रोने में
छोड़ एक आँसू वह क्या दे और आपको दोने में
छोड़ क्षीरसागर को अब तो रहते हैं प्रभु और कहीं
लेटे छप्पर-हीन कुटी के भीतर, खर पर, कोने में

• • •

जिस बर्तन में छेद हो चुका देर न उसके चूने में
इसीलिए थी दौड़-धूप रे इतनी उस दिन पूने में
बिछुड़े परिजन मिले, बढ़ाते हाथ प्रेम का मिलने को
पर, जाता सम्मान हमारा उन हरिजन को छूने में

• • •

क्या समझो, है पीड़ा कितनी इन पाँवों के छालों में
मिलकर देखो जननी के हित भस्म रमाने वालों में
बच्चे करुणा-पूर्ण दृष्टि से अपनी माँ को देख रहे
जननी की आँखें अटकी हैं कब से अपने लालों में

• • •

मानचित्र भारत का अंकित कृषकों की कृश काया में
सब रहस्य है छिपा हमारी इस निद्रा की माया में
जाकर देखो, कैसे कतता सूत प्रेम का विमल विमल
पूने में, यरवदा जेल में, तरु रसाल की छाया में

गोपालसिंह नेपाली

(लेखक के कविता-संग्रह से ; रचना-काल अप्रैल, १९३३)

जीवन

वैभव विलास में, जन-धन में,
सोने के चम-चम कन-कन में।
अभिलाषाओं के आँगन में,
आशाओं के नन्दन-वन में।
मैं सदा खोजता ही आया,
गिरि-गह्वर में, वन-उपवन में।
पर जान न पाया रे रहस्य,
जीवन ! तेरा इस जीवन में।

यह मिट्टी का निर्मित पुतला,
इसको तुम कहते हो नर तन।
जीवन क्या है, कोरी माया,
सपनों का रे वह चिर नर्त्तन।
सब जानबूझ अनजान बना,
कैसा चंचल, चंचल यह मन।
फिर भी क्यों जग पागल बन बन,
कहता रहता जीवन, जीवन।

यदि रोते रहना ही जीवन,
तो मेरा जीवन अहोभाग।
औरों के होंगे कुछ सुहाग,
मेरे तो ये आँसू सुहाग।
सुख किसको कहती है दुनिया,
सुख पाया मैंने रोने में।
जीवन का सच्चा मोल निहित,
अपने जीवन को खोने में।

सर्वदानन्द वर्मा

शिक्षा और मनोविज्ञान

लेखक—श्रीयुत प्रवीणचन्द जैन, शास्त्री

आज से कुछ वर्षों पहले मनुष्यों की यह धारणा थी कि मनोविज्ञान एक स्वतन्त्र विज्ञान है और इसका सम्बन्ध मनुष्यों के सामाजिक कार्यों से नहीं के बराबर है। आज हमें हर्ष के साथ कहना है कि इस उपयोगी विज्ञान की उपयोगिता प्रायः सभी देशों ने स्वीकार की है।

बात वास्तव में यह है कि मनुष्य के सारे काम मन की अधीनता में होते हैं। यह दूसरी बात है कि मन संयत हो अथवा असंयत। यही सारी कल्पनाओं और सारे विधानों का मूल स्रोत है। एक व्यक्ति का प्रभाव दूसरे पर कैसे पड़ता है, भिन्न-भिन्न विचारों और कार्यक्षेत्रों के होते हुए भी, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ किस प्रकार सहयोग प्राप्त कर लेता है, किस मनुष्य में कौन-सी वृत्ति प्रबल है और उसका विकास हो जाने से क्या-क्या परिणाम होते हैं, आदि सब ऐसे विषय हैं, जो मनोविज्ञान के अंग हैं।

शिक्षा का काम है—मन को संयत बनाकर किसी कार्य को करने योग्य शक्ति और साधन प्राप्त कराना, स्वत्व का भान कराना और भिन्न-भिन्न मानवीय वृत्तियों में अनुकूल संचालन करना। यह सब तभी हो सकता है, जब हमें मन के स्वरूप और उसकी वृत्तियों से परिचय हो। मन में—भिन्न-भिन्न समय में—जो विकार उत्पन्न होते हैं, उनके दमन करने वाले और उत्तेजक साधनों से जब तक एक शिक्षक परिचित नहीं होता—चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो—तब तक वह विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। इस तरह हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान एक ऐसा विषय है, जो प्रत्येक कार्य के लिये—विशेषकर शिक्षा के लिये—परमोपयोगी और परमावश्यक है।

इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि मनोविज्ञान का अध्ययन-मात्र ही शिक्षा के लिये उपयोगी है। कई अध्यापक ऐसे भी देखे गये हैं, जिनका इस विषय का ज्ञान पूर्ण होते हुए भी उसके प्रयोग में वे पूरी तरह असफल रहे हैं। इसके विपरीत कई अध्यापक इस विषय के साधारण क्रम-विहीन सिद्धान्तों से परिचित होकर भी उनका प्रयोग इतनी खूबी के साथ करते हैं कि जिससे उनके शिक्षण की अयोग्यता रत्ती-भर भी विदित नहीं होती। ऐसे दृष्टान्त हमें एक दूसरे तत्त्व की ओर ले जाते हैं। वह यह है—शिक्षक जन्म-सिद्ध और प्रयत्न-सिद्ध होते हैं। जो जन्म-सिद्ध होते हैं, उनके लिये तो इशारा-भर काफ़ी होता है। वे मानवीय चेष्टाओं और व्यापारों का स्वभाव से सूक्ष्म निरीक्षण करते रहते हैं और उनमें परस्पर सामञ्जस्य का पता लगाते रहते हैं। उन्हें ज्यों ही कोई उत्तेजक मिलता है, वे सावधान होकर अपनी प्रतिभा का उपयोग कर अपनी चेष्टाओं को ठीक प्रतिफलित करते हैं। प्रयत्न-सिद्ध शिक्षक स्वतः मानवीय व्यापारों का साक्षात्कार नहीं करते। वे एक माध्यम की आवश्यकता रखते हैं, जो या तो अध्यापक होता है, या उस विषय के ग्रन्थ। उदाहरण के लिये, उन्हें एक झूठे आदमी के दिल में क्या-क्या भाव उठा करते हैं—इसका ज्ञान किसी उपन्यास, गल्प अथवा इस विषय के किसी विवेचनात्मक निबन्ध के द्वारा होगा, ऐसे व्यक्तियों को प्रत्यक्ष देखकर नहीं। अब यदि ऐसे अध्यापक भली-भाँति अभ्यस्त नहीं होते, तो उनके सामने अपवाद नाम की कोई वस्तु नहीं रह जाती और प्रत्येक स्थान पर अपनी ही कल्पना का प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं, जिसका परिणाम अरुचिकर होता है।

दोनों प्रकार के शिक्षकों के जीवन में हम इस तरह प्रयोगात्मक दृष्टि-कोण का विशेष स्थान पाते हैं और इसलिये हम यह कह सकते हैं कि मनोविज्ञान का अध्ययन प्रयोगात्मक होना चाहिए।

कितने ही काम तो एक ही व्यक्ति कर सकता है और कितने ही काम एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से कराने पड़ते हैं। अध्ययन स्वतः किया जा सकता है; पर अध्यापन दूसरों को ही कराया जाता है। दूसरी अवस्था में अध्यापक को विद्यार्थी की चेष्टा और रुचि से पूरी तरह परि-

चित होना पड़ता है। चेष्टाएँ भी समय के अनुसार बदलती रहती हैं, इनको एकही समय देखकर रुचि का अनुमान लगाना कठिन है। यदि कोई अध्यापक केवल क्लास में ही किसी विद्यार्थी की रुचि, उसकी वहाँ की चेष्टाओं से जानना चाहे, तो यह असंभव है। इस समय के लगाये हुए अनुमानों में से नब्बे प्रतिशत अनुमान झूठे निकलेंगे। इसके लिये उसे स्कूल के कमरे से बाहर—जहाँ उसका जीवन किन्हीं नियमों से बद्ध नहीं है—देखना और जाँचना पड़ेगा। हो सकता है कि कोई विद्यार्थी क्लास में सदाचारी प्रतीत हो; पर बाहर वैसा न हो। विद्यार्थी की अवस्था जाँच कर ही विश्राम लेने से अध्यापक का कार्य पूरा नहीं हो पाता; उसे अपने सोचे हुए किसी एक मार्ग पर उस विद्यार्थी को ले जाना पड़ता है। पहले विद्यार्थी को जाँचना, फिर उसको उसके मार्ग से हटाना और इसके बाद अपने उद्देश्य के अनुसार उसका जीवन ढालना, यह इतना कठिन कार्य है, जिसको प्रत्येक साधारण आदमी पूरा नहीं कर सकता। इसके लिये पूरे प्रयोजक विज्ञान-शास्त्री की आवश्यकता है।

जब शिक्षक के लिये मनोविज्ञान का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है, तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह इस परिचय के लिये किन-किन उपायों से काम ले? इस अध्ययन के लिये हम यह कह देना चाहते हैं कि इसका एक विशेष ही प्रकार हो। इस विषय की विवेचनात्मक पुस्तकों को पढ़ने के बाद, अपने में पठित विषय का अनुसन्धान कर लेने से स्वतः मानवीय-वृत्तियों का परिचय होगा और इस अनुभव के आधार पर अन्य व्यक्तियों अथवा विद्यार्थियों—जिनसे उसका सम्बन्ध है—की भावनाओं और विचारों का अनुमान हो सकेगा। इस अनुमान से वह एक कार्य-क्रम सोच सकेगा, जिसके द्वारा वह विद्यार्थी को अपने सोचे हुए मार्ग पर सुगमता के साथ ले जा सकेगा।

इसको और भी संक्षेप में यों कह सकते हैं—अध्ययन के बाद अपने ऊपर प्रयोग किया जाय। इस प्रयोग से प्राप्त अनुभव से विद्यार्थियों की मनोवृत्तियों का अनुमान लगा कर उनको एक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करा दिया जाय।

आज-कल प्रायः पाठन-शैली पर जोर दिया जाता है। ट्रेनिंग-प्राप्त अध्यापकों की नियुक्ति खास तौर से की जाती है। यह सब अच्छा है; पर यह भी तो एक सत्य है कि किसी एक ही शैली से पाठन नहीं हो सकता। मनोविज्ञान के आधार पर कहा जा सकता है कि मन की प्रवृत्ति चंचल है, न मालूम किस समय किस दिशा में हो। फिर मन भी एक विद्यार्थी का नहीं है, वहाँ तो अनेक मन हैं और उन सब की चेष्टाओं को एक सूत्र में बाँध देने का काम अध्यापक को करना है; इसलिये पाठन-शैली समय-समय पर बनानी और बदलनी पड़ेगी। प्रथम उसे वातावरण उपस्थित करना होगा। अनुकूल सामञ्जस्य के बिना पाठन अति दुष्कर है। मनोविज्ञान ही अध्यापकों को सिखा सकेगा कि अमुक परिस्थित में अध्यापक का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए।

मनोविज्ञान-शास्त्री अध्यापक न केवल शिक्षा को उत्तेजक और उपयोगी बनायगा, वरन् वह वैज्ञानिकों के सम्मुख ऐसे उदाहरण और समस्याएँ उत्पन्न करेगा, जिनका विचार मनोविज्ञान की उन्नति का कारण बनेगा। ऐसे अध्यापकों को निम्न सुविधाएँ प्राप्त होती हैं—

१—वह पहले ही से यह समझ लेता है, कि उसे दूसरों से अपनी इच्छानुसार काम लेना है; इसलिये वह अपने में और विद्यार्थी में सामञ्जस्य उत्पन्न करेगा। वह इसीलिये बालक की स्वाभाविक शक्तियों और उनके विकास के क्रम से परिचित रहेगा। उसे मस्तिष्क की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और जटिल-से-जटिल गति का परिचय होने के कारण, वह 'आचरण' बनाने के सम्भव उपायों को काम में लेगा।

२—वह यह जान लेगा, कि किस तरह एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है। समाज का व्यक्ति पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है और स्कूल के सब विद्यार्थियों का सहयोग-पूर्ण जीवन किस तरह राष्ट्र की उन्नति कर सकता है।

३—वह प्राचीन और नवीन पाठन-शैली पर तुलनात्मक विचार करके अपने लिये उपयोगी मार्ग निकाल लेगा। कला का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है, इसे पहचानेगा। वह यह पता लेगा, कि ज्ञान-वृद्धि के लिये कौन-सा ढंग उपयुक्त है तथा मस्तिष्क के किन-किन तन्तुओं को कितना उत्तेजन और कितनी विश्रान्ति देने से विद्यार्थियों के ज्ञान का विकास हो सकता है।

इन लाभों को देखकर हम बलात् इस निर्णय पर पहुँचते हैं, कि शिक्षा मनोविज्ञान के आश्रित है और इसका अध्ययन प्रत्येक शिक्षक के लिये अपेक्ष्य है।

दो चिड़िया

लेखक—श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार

साँझ से घटा घिर रही थी। अँधेरा पहले से हो चला। अभी उमस थी, बूँदें नहीं गिर रही थीं। बादल सुन्न, घने, काले-काले धरती पर छाये हुए थे। मानों वह कुछ सोचते खड़े थे।

इसी समय अपने घोंसले से बाहर निकल कर एक चिड़िया डाल पर आ बैठी।

बादल उमड़ रहे थे। चिड़िया उनकी ओर देखती हुई वहीं बैठी रह गई। उसका जी भारी था; पर वह चिचिया नहीं सकती थी। जैसे बादल भरे खड़े थे, जाने उन्हें बरस पड़ने को किसी की प्रतीक्षा थी, वैसे ही उस चिड़िया का जी भीतर से भर कर पक-सा गया था और जाने उसे चिचिया उठने के लिये किस की प्रतीक्षा थी।

कि कुछ बूँदें, टप, अ टपकीं। चिड़िया ने काले बादलों की ओर चोंच खोल दी। नहीं; वह पानी की बूँद नहीं चाहती, वह खुली चोंच की राह से भीतर की एक रुद्ध चीख़ को बाहर कर देना चाहती थी। वह चिचियाई, फिर मुँह बन्द कर वैसी ही बैठी रह गई।

कि पानी बरसने लगा। चिड़िया भीगने लगी। बूँदें आतीं, टप चिड़िया के ऊपर टपकतीं; पर चिड़िया वहीं डाल पर बैठी रही। वह बिलकुल भीग गई, काँपने लगी; पर वह फिर नहीं रोयी। चुपचाप वहीं बैठी रही। चैन से सोने के लिये अपने घोंसले में नहीं चली गई।

सब बिसार कर जैसे यह वहाँ बैठी है। उसे याद नहीं, उसका कोई घोंसला भी है। उसे पता नहीं, यदि उसका यहाँ कोई भी, कुछ भी है। क्या उसको यह पता है, कि वह अभी मरी नहीं है, जीती है?

मेह गिरता रहा, और वह भीगती रही।

° ° °

अब सवेरा पास है। मेंह रुक गया है। तारे खिले थे, वे भी छिप गये हैं। कुछ उनमें अभी झिप-झिप जीते हैं। चिड़िया रात-भर डाल पर बैठी रही है। वह वहीं है। वह घोंसले में नहीं गई। आराम उसने त्यागा नहीं है; पर आराम की जैसे उसे सुध नहीं है। वह विपत नहीं चाहती; पर जैसे जानती नहीं, विपत किसे कहते हैं। गुम सुम डाल पर बैठी है, जैसे और सब कहीं से उसका नाता टूट गया है।

एक दूसरी चिड़िया चहचहाती हुई उसके पास आ बैठी। वह अपने परों को अभी फरफराती थी, अभी फुलाती थी। उसके भीतर का उल्लास उसमें समा नहीं रहा था। वह आकर एक जगह पञ्जे टेक कर बैठ नहीं गई, कुछ देर यहाँ से वहाँ फुदकती रही। फिर दूसरी चिड़िया के पास आकर छोटी सी अपनी लाल चोंच खोलकर बोली—माँ!

माँ ने कहा—बेटा, तुम अच्छी हो? रात मेंह बहुत पड़ा था।

'रात मेंह पड़ा था, अम्मा? मुझे तो पता नहीं। मैं तो खूब आराम से सोई...। अम्मा यह क्या है, तुम भीग रही हो!'

'कुछ नहीं, बेटा!...तो तुम आराम से रहीं! अच्छा है।'

किन्तु बेटी को लगा, जैसे उसे अपने उल्लास पर लाज आनी चाहिए। उसने कहा—अम्मा!

अम्मा ने कहा—बेटा, मैं चाहती हूँ, तुम सुखी रहो... मेरे पीछे तुम सुखी रहना।

बेटी ने चिचिया कर कहा—अम्मा, मैं शाम के पास चली गई थी। पहली बार ही गई थी। अब तक मैं तुम्हारे पास ही रही। मैं अब तुम्हें छोड़ कर नहीं जाऊँगी...पर, वह मुझे प्यार करता है!...अम्मा, मैं अब नहीं जाऊँगी।

'हाँ, बेटा! वह तुझे प्यार करता है!—और मैं चाहती हूँ, तू सुखी रहे।'

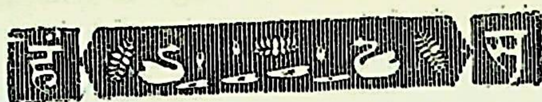
बेटी ने कहा—अम्मा, मैं तुम्हें छोड़कर अब कभी न जाऊँगी। तुम घोंसले में चलो। कैसी भीग रही हो!

माँ ने कहा—बेटा, तुम उसे भी इस घोंसले में ले आना। तुम दोनों यहाँ रहना। मैं तो बहुत रह चुकी हूँ।

बेटी कातर कण्ठ से चिचियाई—अम्मा! अम्मा!

अम्मा चुप रही। वह कुछ नहीं बोल सकी। चीख़ भी नहीं सकी।

बेटी नहीं जान सकी, वह अपने उल्लास में अब किस तरह मग्न रहे। और ज़ोर से चीखी—अम्मा! अम्मा!



अम्मा ने कहा—बेटी, मैं जाऊँ—पीछे तुम प्रसन्न रहना।

'अम्मा, कहाँ जाओगी तुम ?'

कुछ तारे झप-झप कर रहे थे। थोड़ी देर में सूरज आजाने वाला था। माँ ने कहा—बेटा, वह तारा देखती हो ? वह छिपता जा रहा है। मुझे वहीं जाना होगा।

बेटी ने कहा—अम्मा !

'बेटा, तुझे अपने बाप की याद है ? तू छोटी थी—और वह उसी तारे में है। और तारा छिप जायगा, तो मैं किसे देखती वहाँ पहुँचूँगी ?

बेटी ने कहा—मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगी, माँ ! मैं भी साथ चलूँगी।

'तू चलेगी, बेटा ? वह बहुत दूर है। और तू क्यों चलेगी ?'

बेटी ने कहा—मैं चलूँ-गी—चलूँगी। मैं तुम्हारा साथ नहीं छोड़ूँगी।

० ०

नदी, वन, खेत, पहाड़—इन सब पर से उड़ती हुईं माँ-बेटी, उस तारे की एक सीध में चली जा रही थीं। बेटी ने कहा—अम्मा, ज़रा ठहरो, मैं थक गई हूँ।

'बेटी, यहाँ कहाँ ठहरोगी ? चली चलो।'

कुछ दूर और आगे चलीं। बेटी ने कहा—अम्मा, मैं बड़ी थक गई हूँ। मुझसे और नहीं उड़ा जाता।

सामने नीचे एक पहाड़ की चोटी पर सूखा पेड़ खड़ा था। माँ ने कहा—अच्छा बेटा, तुम इस पेड़ की डाल पर ठहर जाओ। मैं जाती हूँ।

बेटी ने कहा—नहीं नहीं, अम्मा ! मैं भी साथ चलूँगी। तुम जरा रुको।

दोनों सूखे पेड़ की डाल पर बैठ गईं। थोड़ी देर बाद माँ ने कहा—बेटा, चलें ?

बेटी को अपने प्रेम की, अपनी दुनिया की याद भूल नहीं रही थी। उसने कहा—अम्मा, मुझसे चला जायगा ?

माँ ने कहा—हाँ, बेटा, तुम सुखी रहो। मुझे अकेली जाने दो।

बेटी ने कहा—अम्मा !

माँ ने सुना, और आशीर्वाद देकर पंख समेट कर वह उड़ चली।

० ०

बेटी देखती रही। माँ ओझल नहीं हो गई, तब तक वहीं बैठी रही। फिर उड़ती हुई आकर, अपने प्रेमी की गोद में गिर पड़ी। बोली—मैं क्या करूँ ?

उधर वह ऊँची ऊँची उड़ती जा रही थी। तारा मन्द पड़ता जाता था। उसी ओर चोंच उठाये वह चली जा रही थी। तारा मन्द होता गया, वह अवश होती गई।

कि उषा जगी। तारा छिपा। और वह मुर्दा होकर धरती पर आ पड़ी।

आँसू के कण

तुम विशाल नेत्रों में आते,
तब अनुपम शोभा होती,
सीपी-वातायन से जैसे
झाँक रहे हों दो मोती;

गोल-गोल उज्ज्वल-उज्ज्वल तुम
ढुल-ढुल आते बारम्बार,
एक तार से गुंथ जाता है
तब सुन्दर हीरों का हार !

आँखों में आ रुक जाते हो
चमचम करते हो क्षण-क्षण,
तब तुम सज जाते हो जैसे
अमल कमल दल पर हिमकण!

नयनों के नीले प्रदेश में
हे उज्ज्वल आँसू के कण,
जगमग-जगमग होते हो तुम
मानो अम्बर में उडुगण।

—सोहनलाल द्विवेदी

लड़कपन में, नासमझी से, ख़राब लड़कों की संगति में फँस कर, बुरे कामों द्वारा, अपना पुंसत्व या मर्दानगी खोकर,

सच्चे संसारी सुख को तरसने वालो !

निराश और मायूस मत हो

क्योंकि

स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय सात भाग के लेखक

बाबू हरिदास वैद्य

धातु-सम्बन्धी रोग—धातुक्षीणता, प्रमेह, जिरियान, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, सोज़ाक, उपदंश-सिफ़लिस, खूनख़राबी एवं अस्सी प्रकार के वायु रोगों के इलाज में विशेषज्ञ और पूर्ण अनुभवी हैं।

उनके लिखे ग्रन्थरत्न

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय साफ़ तौर से गवाही दे रहे हैं कि चिकित्सा-कर्म में उन्हें जितना अनुभव है, उतना बहुत वैद्यों को न होगा। आप उनके लिखे चिकित्साचन्द्रोदय के अकेले चौथे भाग को ही एक बार पढ़ जावें। आप को भी कहना पड़ेगा कि बेशक ऐसा वैद्य और नहीं है।

१६ आने सत्य है

कि ऐसे सौ-दो-सौ नहीं, हज़ारों रोगी उनकी सुचिकित्सा से आजसंसार का सुख भोग रहे हैं, जो किसी समय संसार के सच्चे सुख के लिये नौ-नौ आँसू रोते हुये आत्महत्या या ख़ुदकुशी को तैयार थे। इस जन्म में पुत्ररत्न का मुखचन्द्र देखने की ज़रा भी उम्मीद न करते थे, उनके घरों में नित्य देवासुर संग्राम-सा मचा रहता था, परन्तु आज उनके घरों में सुख की बाँसुरी बजती है।

सचाई का सुबूत क्या ?

सचाई के सुबूत में रोगियों के प्रशंसापत्र पेश किये जा सकते हैं; पर ऐसे रोगों के रोगी अपने दिये प्रशंसापत्र अखबारों में छपने से अपनी लज्जा भंग होना समझते हैं; लेकिन चन्द ऐसे स्वभाव के भी होते हैं जो संसार की भलाई के लिये अपने बुरे कामों को पब्लिक के सामने रखने में कोई ऐब नहीं समझते। बहुतेरों ने हमें अपने प्रशंसापत्र छाप देने की आज्ञा दे दी है। जो हमें ऐसी आज्ञा नहीं देते, हम उनके प्रशंसापत्र भूल कर भी नहीं छापते। गन्दे रोगों के रोगियों के सिवा और तरह के रोगियों के पत्र हम छाप सकते हैं; नीचे हम तरह-तरह के रोगियों के प्रशंसापत्रों का सार, अविश्वासी और वहमियों के शक और वहम दूर करने को छापते हैं। जिन्हें इस तरह भी विश्वास न आवे उनकी दवा धन्वन्तरि और लुकमान केपास भी नहीं है।

लीजिये देखिये—

बाबू कन्हैयालाल साहब पँवार, मालगुज़ार, मौज़ा पिंडरई, पोस्ट खवासा, ज़िला सिवनी-छपरा लिखते हैं—मैंने अज्ञानावस्था में, मैथुन द्वारा अपना सत्यानाश आप कर लिया था। शरीर की वृद्धि और विकास के समय मैंने उसकी वृद्धि और विकास में बाधा डाली। मेरा सब कुछ चला गया था, कुछ भी बाक़ी न था। मुझे एक-एक रात में तीन-तीन बार स्वप्नदोष होते थे, पेशाब के साथ सफ़ेद धातु गिरती थी, सच्चे संसारी

सुख के लिये रोता और तरसता था। ज़िन्दगी से आरी और निराश था। भाग्य से 'चिकित्साचन्द्रोदय' ग्रंथ मेरी नजर तले आया। मैंने बाबू हरिदासजी से लिखा-पढ़ी की। आपने मुझे आठ महीने में और का और बना दिया। धातुक्षीणता, प्रमेह, स्वप्नदोष, शरीर का पीलापन......का टेढ़ापन, ढीलापन वगैरः सारे रोग चले गये, अब मैं पूर्ण स्वस्थ और निरोग हूँ। बाबू हरिदासजी दीर्घजीवी हों। यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

बाबू कामताप्रसाद साहब, वकील, आनरेरीमैजिस्ट्रेट और सुपरिण्टेन्डेण्ट जेल-बस्ती लिखते हैं—पहले मैं बिल्कुल काम न कर सकता था। आपकी दवाओं के सेवन से सब काम कर लेता हूँ। १०।१५ बरस से मैं आप से दवा मँगाता हूँ। आपकी सभी दवाएँ अक्सीर का काम करती हैं। परमात्मा आपको चिरंजीवी रक्खे। भारत का महान उपकार आपने चिकित्साचन्द्रोदय और स्वास्थ्यरक्षा इत्यादि अमूल्य पुस्तकों की रचना करके किया है। उसकी तारीफ़ करना मेरे ऐसे तुच्छ मनुष्य की लेखनी की शक्ति के बाहर है। वास्तव में, इन ग्रन्थों ने आपके नाम और कीर्ति को अचल-अमर कर दिया है।

बाबू शिवनारायण वाच मेकर, राजवाड़ी, इन्दौर लिखते हैं—आपके यहाँ से दो शीशी सर्व सोज़ाकनाशक चूर्ण मँगाई थीं, उनके खाने से मुझे आराम हो गया।

बाबू बद्रीप्रसादजी करे, जिला छोटा पारा, रायपुर से लिखते हैं—आप से प्रमेह की जो दवाएँ मँगाई थीं, उनसे बहुत फ़ायदा हुआ। वसन्तकुसुमाकर-रस निःसन्देह रामबाण है।

बाबू द्वारकाप्रसादजी मारवाड़ी, पो० बरहज बाज़ार ज़ि० गोरखपुर लिखते हैं—अर्क आबेहयात जो आपके यहाँ से आया था, उसमें से डेढ़ बोतल सेवन किया। उसकी तारीफ़ में कहाँ तक लिखूँ। वह दस्त साफ़ लाने, भूख बढ़ाने और असली रोग नाश करने में अव्वल दर्जे की दवा है। इतनी भूख बढ़ी कि भोजन दो बार की जगह तीन बार बनवाना पड़ता था।

महात्मा लालचैतन्यजी ब्रह्मचारी, पो० दो मेल (काश्मीर) से लिखते हैं—मेरा स्वास्थ्य आपकी दवा सेवन करने से पूर्णतया अच्छा है।

बा० भूपनारायणसिंह साहब, पो० पदमा जिला हज़ारीबाग लिखते हैं—आपके औषधालय से मैंने कई किस्म की दवाएँ मँगा कर सेवन कीं, जिनसे बहुत लाभ हुआ है। द्राक्षासव तो कई मर्तबे मँगाया, उसके बिना एक साइत भी अच्छा नहीं लगता।

बाबू कामताप्रसादजी वकील, बस्ती से लिखते हैं—मैंने अपने दोस्त को आपसे रति-विलास चूर्ण मँगाया था, जिससे उनको पूरा फायदा हो रहा है, वे आपको धन्यवाद दे रहे हैं।

बाबू शिवप्रसाद साहब, पो० पगारा, जिला छिन्दवाड़ा से लिखते हैं—अपने मामू साहब को मैंने आपका धातुपुष्टिक अरक दिया था, उन्हें इस दवा ने अच्छा फायदा किया।

बाबू श्यामलाल साहब c/o बाबू भूरेलाल गुलाबचन्द मिस्तरी, बालागंज, होशंगाबाद से लिखते हैं—मुझे आपकी दवाओं से अच्छा लाभ हुआ, सब तरह की व्याधियाँ नष्ट हो गईं।

बाबू सैनाथराम साहब 'सैटिलमैण्ट ऑफिसर सरगुजा स्टेट से लिखते हैं—मैं बहुत अर्से से आपकी कम्पनी से दवाएँ मँगाता और इस्तेमाल करता हूँ। उनसे खूब फ़ायदा होता है। इसी कारण मैंने और जगह से दवा मँगाना बन्द कर दिया है।

बाबू ताराचन्दजी छाबड़ा, पो० पलाशबाड़ी (आसाम) से लिखते हैं—आपका प्रमेहान्तक चूर्ण मैंने सेवन किया, उससे मुझे बहुत लाभ हुआ। पेशाब बहुत साफ़ आता है।

हरिदास एण्ड कम्पनी, लालदरवाजा—गंगा-भवन, मथुरा (यू० पी०)

स्नेह

लेखक—श्रीयुत स्नातक रणजितराव, आयुर्वेदालंकार

शरीर में भोजन का व्यय मुख्यतः दो कार्यों में होता है। वे कार्य हैं—ताप और गति। गति या श्रम करते हुए भी साथ साथ ताप अवश्य ही उत्पन्न होता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए भोजन-द्रव्यों के उपरिलिखित दोनों उपयोगों को सुगमता से एक ही श्रेणी में लाया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि भोजन का (शरीर की क्षति-पूर्ति के उपरान्त) एक मात्र प्रयोजन ताप की उत्पत्ति करना है। ताप शरीर की प्रधान आवश्यकता है। गति इसी का दूसरा स्वरूप है। भोजन ताप की उत्पत्ति का एक साधन है। दूसरा साधन है ओपजन।

आहार-द्रव्यों के कर्बोदित, प्रोटीन और स्नेह उक्त उद्देश्य की सिद्धि करते हैं। कर्बोदित और प्रोटीन का परिचय पिछले लेखों में कराया जा चुका है। प्रस्तुत लेख का सम्बन्ध स्नेह द्रव्यों से है। 'स्नेह' का शब्दार्थ है—चिकना भोज्य-द्रव्य। घी, मक्खन, तिल, मूँगफली, जैतून आदि वनस्पतियों के तेल, चरबी और मछली का तेल—स्नेहों के उदाहरण हैं। खाँड़, गुड़, शहद और कतिपय फलों के अतिरिक्त सभी भोज्य-द्रव्यों में थोड़ी या बहुत मात्रा में स्नेह पाये ही जाते हैं।

कर्बोदित आदि शरीर के अवयवों में जाकर ताप या गरमी उत्पन्न करते हैं। इस सम्बन्ध में इससे भी बढ़कर ज्ञातव्य बात यह है कि तीनों द्रव्यों से ताप की समान मात्रा उत्पन्न नहीं होती। एक सामान्य-सा दृष्टान्त लीजिए—रूई, मदार की लकड़ी या पत्थर का कोयला तीनों ही जलने वाली वस्तु हैं; परन्तु तीनों को बराबर लेकर जलाने पर उनसे एक-सा ताप प्रकट नहीं होता। पत्थर का कोयला शेष दो से कहीं अधिक ताप उत्पन्न करता है। यही बात स्नेह आदि के विषय में है। तीनों से भिन्न-भिन्न मात्रा में ताप उत्पन्न होता है।

यंत्रों की सहायता से वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि प्रोटीन, कर्बोदित और स्नेह अपने विशुद्ध रूप में—अर्थात्-जब इन्हें रासायनिक विधियों से अपने मूल उपादानों से पृथक् कर लिया जाय, उस अवस्था में—कितना ताप उत्पन्न करते हैं। गेहूँ, चावल, दूध आदि पचासों भोज्य-द्रव्यों की ताप उत्पन्न करने की शक्ति की भी इसी प्रकार गणना की गयी है। इन्हीं यन्त्र से यह भी जान लिया गया है कि मनुष्य को कैसी-कैसी परिस्थितियों में ताप की कितनी राशि की और उसके अनुसार कैसे और कितने भोजन की आवश्यकता है।

इस प्रकार की गणनाओं में ताप की राशि को मापना पड़ता है। वस्तुओं की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई जानने के लिए इंच, फुट आदि तथा भार के लिए तोला, छटाँक आदि माप-तोल मनुष्यों ने नियत किये हैं। ताप, यांत्रिक कार्य, प्रकाश, विद्युत् आदि शक्तियों की गणना के लिए भी इसी प्रकार माप निश्चित किये गये हैं। ताप को मापने के लिए जो इकाई नियत की गयी है, उसे 'कैलोरी' नाम दिया गया है। जिस प्रकार एक निश्चित दूरी को इञ्च फुट आदि तथा एक निश्चित भार को तोला, 'छटाँक, आदि नामों से पुकारा जाता है, वैसे ही ताप की एक निश्चित मात्रा को 'कैलोरी' कहा जाता है। एक-किलोग्राम (१'१ सेर) भार की वस्तु के तापांश (टैम्परेचर) को १' अंश ऊँचा चढ़ाने में जितने ताप का व्यय होता है, ताप की उतनी राशि को 'कैलोरी' कहते हैं।

कोई वस्तु जलने पर कितनी कैलोरी ताप उत्पन्न करती है, इसे जानने के लिए जो यन्त्र प्रयुक्त होता है, उसे 'कैलोरीमीटर' कहते हैं। इस यन्त्र से परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि एक ग्राम (७'७ रत्ती) शुद्ध कर्बोदित ४'१ कैलोरी ताप उत्पन्न करता है। उतनी ही प्रोटीन भी ४'१ कैलोरी तथा उतना ही स्नेह ९'४ कैलोरी ताप उत्पन्न करता है। इस प्रकार स्नेहों की ताप उत्पन्न करने की शक्ति शेष दो द्रव्यों से दुगुने से कुछ अधिक है।

'आयु, लिंग, निवासस्थान की परिस्थितियाँ (देश-काल) और श्रम की मात्रा—इन चार बातों पर मनुष्यों की ईंधन—कर्बोदित आदि—की आवश्यक मात्रा अव-



लम्बित है। शीत वातवरण में तथा श्रम की दशा में अधिक ईंधन योग्य होता है। बालकों तथा पुरुषों के लिए, बालिकाओं तथा स्त्रियों की अपेक्षा अधिक ईंधन चाहिए। वृद्धावस्था में इसकी मात्रा उत्तरोत्तर घटती जाती है। बच्चों और तरुणों को अपने शरीर के मुकाबले में युवकों और प्रौढ़ पुरुषों से अधिक ईंधन अपेक्षित होता है। ऐसी-ऐसी सभी परिस्थितियों में कितना-कितना ताप आवश्यक होता है, इसकी गणना कैलोरीमीटर द्वारा की गयी है। उदाहरणार्थ—चौबीस घण्टे बिस्तर पर पड़े रहने वाले, औसत कद के आदमी को अपने शरीर का ताप स्थिर रखने के लिए तथा हृदय, फेफड़े आदि के अनैच्छिक कार्य को चालू रखने के लिए १७०० कैलोरी ताप की आवश्यकता होती है, किसान-जैसे श्रमजीवी को ३५०० कैलोरियों की आवश्यकता है।

कर्बोदित, स्नेह और प्रोटीन—इन तीनों से तापोत्पत्ति का प्रयोजन सिद्ध होता है; परन्तु इस उद्देश्य के लिये उनकी एक ही मात्रा आवश्यक नहीं होती—इस बात को कुछ स्पष्ट किये देता हूँ। हमें कितने और कैसे भोजन की जरूरत है, इसकी बहुत कुछ सूचना जिह्वा द्वारा मिल जाती है। हमें कभी-कभी किसी विशेष रस वाले भोजन की उत्कट इच्छा होती है। वह न मिले, तो अच्छे-से-अच्छे भोजन में भी रुचि नहीं होती; न उसके पर्याप्त मात्रा में खाये जाने पर भी तृप्ति का अनुभव होता है। इसी प्रकार कोई भोजन तो स्वभावतः बहुत-सा खाया जा सकता है, और कोई कम। यदि पेट पर बलात्कार का विचार न हो, या जिह्वा पर वश न हो, तो एक बार तृप्ति होने पर अधिक खाने की प्रवृत्ति ही नहीं होती। जो भोजन पहले बहुत स्वादु लगता था, अब उसके प्रति रुचि उत्तरोत्तर घटती जाती है। इन घटनाओं का कारण क्या है? यही कि हमारे शरीर को उस अवसर पर उस रस वाले या उतने परिमाण के भोजन की आवश्यकता थी। उसके उतनी मात्रा में मिल जाने पर तृप्ति अनुभव होने लगी और न मिला, तो उदासीनता और वैमनस्य।

हम सामान्यतः घी, तेल आदि का भोजन अधिक नहीं खा सकते। मिठाई खाने पर थोड़े ही समय में मन भर जाता है। दाल खाने पर भी यही होता है; परन्तु यदि हमारे भोजन में किसी प्रकार की चिकनाहट न हो, न कोई दाल या खाँड़ हो, तो देखिए कितना खाया जाता है। किसी किसान के भोजन को देखिए और उसकी राशि से अपने भोजन की राशि की तुलना कीजिए। क्या कारण है, कि वह इतना भोजन खा और पचा सकता है; किन्तु हम और आप नहीं। कुछ कारण तो सुगमता से विचार में आ सकते हैं, कि वह हम आप से कहीं अधिक श्रम करता है, खुली वायु और सूर्य का स्वास्थ्य-वर्धक उपयोग करता है। उसका भोजन का समय भी नियत ही है। इन कारणों के अतिरिक्त उसके और हमारे भोजन की रचना का भेद भी दोनों के भोजनों की राशि के भेद का कारण है। उसके भोजन में घी नहीं, खाँड़ नहीं, दाल नहीं। उसका आटा छाना नहीं गया है, और वह आटा भी प्रायः किसी ऐसे अन्न का होता है, जिसे हम निम्न कोटि का समझते हैं। दूध या उसके बने पदार्थ उसके भोजन का भाग नहीं। प्राम्य-शाक पर्याप्त मात्रा में हैं। ये भेद हैं, जो उसके और हमारे भोजन में दिखाई पड़ते हैं। इन भेदों के कारण भोजन की राशि में भिन्नता का सम्भव कैसे है, अब यह देखना चाहिए।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, स्नेहों की ताप उत्पन्न करने की शक्ति कर्बोदितों से दुगुनी से भी अधिक है। इसका अर्थ यह है, कि ताप की कुछ कैलोरियाँ उत्पन्न करने के लिये जितना कर्बोदित आवश्यक होता है, उतनी ही कैलोरियाँ उत्पन्न करने के लिये स्नेह-द्रव्य की आधे से कम ही मात्रा से काम चल जाता है। स्नेह-द्रव्य की आधी ही मात्रा उतना ही ताप उत्पन्न करेगी, जितना कि उससे दूना कर्बोदित। हमारे भोजन में स्नेह-द्रव्य अधिक होते हैं; इसीलिये हमें उतनी मात्रा में रोटी, चावल आदि के रूप में कर्बोदित नहीं लेने पड़ते, जितनी मात्रा में एक श्रमजीवी को।

स्नेह-द्रव्यों के अतिरिक्त हमारे भोजन में खाँड़ का भी मिठाई आदि के रूप में बड़ा भाग होता है। पिछले लेख में दी गई कर्बोदित-युक्त द्रव्यों की सूची देखने से ज्ञात हो सकता है, कि खाँड़ और गुड़ में अन्य द्रव्यों की तुलना में सब से अधिक कर्बोदित का अंश होता है। गेहूँ इत्यादि में कर्बोदित के अतिरिक्त अन्य भी कई तत्त्व होते हैं। फिर श्रमजीवी के आटे में तो चोकर का भी अंश होता है;

जिसका शरीर में ताप की उत्पत्ति की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं। परिणामतः कर्बोदित की इष्ट मात्रा प्राप्त करने के लिये श्रमजीवी को चावल, बाजरा आदि की कहीं अधिक मात्रा पर निर्भर रहना पड़ता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण चर्चा का अभिप्राय संक्षेप में यह है, कि कर्बोदित और अवशिष्ट प्रोटीन के समान, स्नेह-द्रव्य भी शरीर में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इनमें विशेषता यह है, कि शेष दो द्रव्यों की तुलना में इनकी बहुत ही कम मात्रा पर्याप्त होती है। और इसलिए भोजन में इनकी कम या अधिक मात्रा के अनुसार भोजन की राशि में कमी या अधिकता आना सम्भव है।

ईंधन के रूप में स्नेहों का यह महत्त्व और मूल्य प्रकृति से छिपा नहीं है। शरीर में स्नेहों के इस गुण का पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता है। शरीर ईंधन के रूप में पहले-पहल कर्बोदितों और अवशिष्ट प्रोटीन का प्रयोग करता है। स्नेहों को वह विशेष स्थानों में संगृहीत करता रहता है। यह संग्रह रोगों के समय, या किसी प्रकार की विपत्ति में, जब भोजन सुलभ न हो, तब काम आता है। इस संग्रह का मुख्य स्थान त्वचा (चमड़ी) के नीचे का भाग है। शरीर में अण्डकोश और आँखों की पलकों को छोड़ सम्पूर्ण त्वचा के नीचे की झिल्ली में स्नेह छोटे-छोटे खण्डों के रूप में जमा होता रहता है। इन खण्डों का रंग पीला होता है। लोक-भाषा में इन्हें 'चरबी' कहते हैं। कइयों में यह बहुत और तह के रूप में होती है। त्वचा के नीचे की चरबी शरीर की गरमी को बाहर निकलने से रोकती है। साथ ही बाहर की शीत-गरमी का प्रभाव शरीर पर नहीं होने देती। इसके अतिरिक्त चरबी का त्वचा के नीचे जमा होने का यह भी लाभ होता है कि शरीर के ऊँचे-नीचे स्थानों के भर जाने से वह सुडौल, सुघटित और सुन्दर दिखाई देता है। भरा हुआ शरीर और भरे हुए कपोल कितने आकर्षक प्रतीत होते हैं!

जिस प्रकार त्वचा के नीचे, उसी प्रकार शरीर के अन्दर के वृक्क (गुरदे), यकृत् आदि अंगों पर भी चरबी का आवरण होता है। इससे उन अंगों को शरीर की हलचल के समय इधर-उधर हिलने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। चरबी के आवरण के कारण ही इन अंगों को बाहरी आघातों का सहन करना भी सुगम होता है।

पेट में त्वचा के नीचे और आँतों और आमाशय के ऊपर लटकती हुई दो प्रकार की झिल्लियाँ होती हैं। इनके ऊपर चरबी का विशेषतः संग्रह होता है। यह संग्रह बहुत बढ़ जाय, तो इसके भार के कारण पेट आगे लटक आता है।

स्नेहों का चौथा संग्रह-स्थान यकृत् है। स्नेह शरीर के घटों (सेलों) का आवश्यक अंश है। मज्जा में भी त्वचा के नीचे के भाग के समान स्नेह द्रव्यों की बड़ी राशि होती है। स्त्रियों में दूध निकलते समय स्तन्य ग्रन्थियों में भी स्नेह-द्रव्यों का संचय हो जाता है।

शरीर में स्नेहों के समान कर्बोदितों का कोई संग्रह स्थान नहीं है। सम्पूर्ण शरीर में केवल १% भाग कर्बोदित होता है। शरीर स्नेहों और प्रोटीनों की बड़ी तत्परता से रक्षा करता है। प्रयोजन के समय, ईंधन के रूप में पहले-पहल कर्बोदितों की ही आहुति होती है। इसके बाद ही आवश्यक हो, तो अन्य द्रव्यों की बारी आती है। शरीर की पुष्टि और स्वास्थ्य के लिए प्रोटीनों का बचाये रखना आवश्यक है। स्नेहों के संग्रह के लाभ ऊपर कहे गये हैं। उनके अतिरिक्त भी स्नेहों के विशेष गुण हैं, जिनका आगे उल्लेख किया गया है। इन गुणों को देखते हुए स्नेहों का भी व्यय न होने देना युक्तिसंगत ही है। कर्बोदितों का, ईंधन के रूप में प्रयुक्त होने के सिवाय और कोई प्रयोजन नहीं है। फिर, संग्रह के सम्बन्ध में स्नेहों की एक विशेषता और भी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, स्नेहों की अमुक राशि से जितनी कैलोरी ताप उत्पन्न हो सकता है, उतना ही ताप उत्पन्न करने के लिये दुगुने से अधिक कर्बोदित अपेक्षित होंगे। उनके संग्रह के लिये स्थान भी बहुत चाहिए। यही कारण है, कि प्रकृति की ओर से शरीर में उनके संग्रह का विशेष प्रबन्ध नहीं है। कर्बोदितों का जो थोड़ा-बहुत संग्रह होता है, वह मुख्यतः यकृत् में होता है। गणना करके कहा गया है, कि १०० कैलोरी ताप उत्पन्न करने के लिये ११ ग्राम चरबी पर्याप्त होती है। इस शरीर में १० घन सैण्टीमिटर जितने स्थान में समा सकता है, उतना ही ताप उत्पन्न करने के लिये १३० ग्राम भार के यकृत् की आवश्यकता होगी और उसके लिये चरबी से १० गुने से कम स्थान से काम नहीं चल सकता।

इस प्रकार हमने देखा कि शरीर कर्बोदितों को बलि

देकर स्नेहों को बचाये रखने की चेष्टा करता है। कर्बोदितों के समाप्त होने पर स्नेहों की आहुति होती है। वे भी समाप्त हो जावें, तो अन्त में प्रोटीनों का बारी आती है। यह क्रम बताता है, कि शरीर का सबसे अधिक पक्षपात प्रोटीनों पर है। इस पक्षपात का उद्देश्य यह है, कि ज्वलन के कार्य में प्रोटीनों का व्यय न हो। ताप उत्पन्न करने का कार्य तो कर्बोदित, स्नेह और प्रोटीन तीनों कर सकते हैं; किन्तु शरीर की पुष्टि, वृद्धि, विकास और स्वास्थ्य का कार्य प्रोटीन ही कर सकता है; स्नेह और कर्बोदित नहीं। भोजन में कर्बोदित या स्नेह, शरीर की आवश्यकता से कम मात्रा में हों, तभी यह अवस्था सम्भव है, कि प्रोटीनों का भी ज्वलन के कार्य में व्यय हो। प्रतिदिन के कार्य में शरीर को पहले-पहल ईंधन की ही आवश्यकता होगी। प्रोटीनों का शारीरिक पुष्टि के लिये बचाया जाना इष्ट होने पर भी, उनका ईंधन के रूप में प्रयोग में आ जाना अनिवार्य होगा, यदि भोजन में कर्बोदित और स्नेह योग्य राशि में न हों। यह अवस्था यदि बहुत समय तक बनी रहे, तो शरीर प्रोटीन से वञ्चित रह जायगा। फलतः प्रोटीन के अभाव में जो हानियाँ सम्भव हैं, उनका 'प्रोटीन'-शीर्षक लेख में उल्लेख कर दिया गया है।

शरीर प्रोटीनों की रक्षा कितनी तत्परता से करता है, यह दिखलाने के लिये एक परीक्षण का उल्लेख किया जाता है। वॉएट (Voi') नामक विद्वान् ने परीक्षा के तौर पर केवल चौबीस घण्टे उपवास किया। इस अवधि में मूत्र और निःश्वास में जितने मल-द्रव्य निकले, उनकी गणना की। पाठक जानते हैं, ये मल शरीर में प्रोटीन और ईंधन के उपयोग में आ चुकने पर फोक के रूप में निकलते हैं। पाठक यह भी जानते होंगे कि प्रतिदिन की जोड़-तोड़ के कारण शरीर के जो घट (सेल) टूटते हैं, उनकी प्रोटीन की नत्रजन अलग कर दी जाती है, और शेष भाग ईंधन के रूप में काम आ जाता है। जो नत्रजन अलग होती है, वह मूत्र-द्वारा बाहर आ जाती है। 'प्रोटीन'-शीर्षक लेख में जिस परीक्षण का उल्लेख किया गया था, उससे सम्बद्ध नक्शे को देखकर पाठक जान सकते हैं कि मनुष्य में से इस प्रकार प्रति दिन सामान्यतः १७.५ ग्राम नत्रजन बाहर होती है। अब प्रस्तुत परीक्षण पर आइये और देखिए कि शरीर प्रोटीन के इस मलरूप पोषक तत्त्व (नत्रजन) की भी कितनी तत्परतापूर्वक रक्षा करता है। वॉएट (Voit) ने केवल २४ घण्टे उपवास किया था। इस उपवास के कारण शरीर को प्रति दिन के अनुसार प्रोटीन की राशि नहीं मिल सकी। यह कमी शरीर ने अनुभव की और तत्काल अवसरोचित उपाय आरम्भ कर दिया। वह उपाय यही था कि शरीर पहले जितनी मात्रा में नत्रजन को बाहर कर देता था, उस पर प्रतिबन्ध रखकर उसकी रक्षा करने लगा। इन २४ घण्टों के मूत्र की गणना करके वॉएट ने देखा कि यह मात्रा घट कर केवल ७.८ ग्राम—अर्थात् पहले से आधे से भी कम—रह गयी। यदि और अधिक दिन तक उपवास किया जाय, तो यह मात्रा निरन्तर घटती जाती है। अन्त में जब शरीर की चरबी पूर्णतया समाप्त हो जाती है, और प्रोटीन का ज्वलन प्रारम्भ होता है, तो स्वभावतः इस मात्रा में पुनः वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है।

प्रोटीनों की रक्षा और सदुपयोग में शरीर इतना सचेष्ट रहता है, इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें अपने भोजन में प्रोटीन आदि द्रव्यों के उचित अनुपात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमारे भोजन में कर्बोदितों और स्नेहों का इतना परिणाम अवश्य होना चाहिए, जितने से प्रतिदिन के ताप तथा गति-सम्बन्धी कार्यों का निर्वाह सुगमता से हो सके। ऐसा न हो कि वे आवश्यकता से कम हों और उनके समाप्त हो जाने पर उनके अभाव में शरीर को प्रोटीनों का भोग देना पड़े। कर्बोदितों की यथोचित राशि पर ध्यान देने के साथ-साथ हमें इस बात को भी न भूलना चाहिए कि हमारे शरीर को जिस भोज्य-द्रव्य से कर्बोदित प्राप्त हो रहा है, वह अधिक-से-अधिक सुपच हो। ऐसा न होने की दशा में सम्भव है कि इस भोज्य-द्रव्य के दुष्पच होने के कारण वह शरीर में न पहुँचे और मल के रूप में बाहर निकल जाय। इसका भी परिणाम पहले के समान ही होगा। शरीर को यथोचित मात्रा में कर्बोदित न प्राप्त हो सकेगा। कारण, जिस द्रव्य से हमें कर्बोदित की इष्ट मात्रा प्राप्त होती थी, वह तो दुष्पच होने के कारण शरीर के अवयवों में पहुँच ही नहीं पाया।

कर्बोदितों और स्नेहों के सम्बन्ध में सबसे अधिक ध्यान उन लोगों को देना चाहिए, जिन्हें विशेषतः ईंधन

की आवश्यकता होती है। बच्चों और श्रम तथा व्यायाम करने वालों के भोजन में कर्बोदितों की मात्रा अधिक होनी चाहिए। यही बात तपस्वियों के सम्बन्ध में है। तपस्वियों और ब्रह्मचारियों को बहुत सर्दी और श्रम सहन करना पड़ता है; अतः शरीर को उष्ण रखने के लिये उन्हें इंधन भी अवश्य ही बहुत अधिक मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। ऐसा न होगा, तो उनकी वृद्धि और विकास अपूर्ण होने के कारण उनका ढाँचा छोटा और मांसपेशियाँ पतली और निर्बल रह जायँगी। भोजन में दूध, दाल आदि के रूप में पर्याप्त प्रोटीन होने पर भी शरीर को उनका उपयोग इन्धन के रूप में ही करना पड़ता है। इस प्रकार प्रोटीनों का उचित उपयोग न होने के कारण शरीर उनसे होने वाले लाभों से वञ्चित होकर उपर्युक्त हानियाँ उठाता है। वशिष्ठ-धर्मसूत्र में कहा गया है कि ब्रह्मचारी को लद्दू बैल के समान खाना चाहिए। इस बात की वैज्ञानिक व्याख्या इसी प्रकार की जा सकती है। व्यायाम-द्वारा शरीर का विकास करने की इच्छा रखने वालों को भी इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उपवास और व्रत आदि से उक्त पुरुषों को बचना चाहिए।

लम्बे उपवासों के पीछे शरीर को भरने के लिए प्रोटीन की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि कर्बोदितों और स्नेहों की। शरीर की सर्वदा तात्कालिक आवश्यकता तो इंधन ही की होती है, और इस कार्य के लिए उसे यदि प्रोटीनों की बलि दे देना पड़े, तो बिना आगा पीछा किये वह ऐसा करने को विवश होता है। यदि लम्बे उपवासों के पीछे इंधन की यथेष्ट राशि प्राप्त न हो, तो प्रोटीनों का भी इसी कार्य में व्यय हो जाता है। और इसी कारण हम चाहे कितना भी दूध और माँस-जैसा प्रोटीन-बाहुल्य अन्न खावें, शरीर भर ही न पाएगा; प्रत्युत अधिक कृश होता जायगा। अधिक प्रोटीन वाले भोजन उलटे हानि ही करते हैं। कारण, जैसा कि कहा जा चुका है, प्रोटीनों की क्रिया से शरीर में ताप की उत्पत्ति का कार्य बढ़ जाता है और इंधन भी अधिक मात्रा में आवश्यक हो जाता है। भोजन में दी गयी प्रोटीनों का इस प्रकार और अधिक विनाश होता है, जिससे शरीर को विशेष हानि ही उठानी पड़ती है।

कर्बोदितों और स्नेहों के उक्त गुण को देखते हुए उन्हें प्रोटीन-रक्षक (Protein-spares) नाम दिया गया है। इन द्रव्यों के इस गुण को देखते हुए हमें भोजन में क्या परिवर्तन करने चाहिएँ, इस सम्बन्ध में अभी कुछ न कहकर स्नेहों के विषय में ही दो-एक बातें लिखकर यह लेख समाप्त किया जाता है।

शरीर में जो वसा या चरबी है, उसके तीन स्रोत हैं। पहला स्रोत वे स्नेह हैं, जो भिन्न-भिन्न खाद्यों में पाये जाते हैं। जैसा कि कहा जा चुका है, खाँड़, गुड़, शहद और कतिपय फलों को छोड़ कर सभी खाद्य द्रव्यों में, थोड़ी या बहुत मात्रा में, स्नेह होता है। सुविधा के लिये स्नेहयुक्त खाद्यों को दो विभागों में बाँटा जा सकता है। दूध, मक्खन, घी, मलाई, पनीर, मछली, मछलियों के तेल, चरबी, अण्डा—इन पदार्थों में जो स्नेह का अंश होता है, उसे 'प्राणिज स्नेह' कहते हैं। वनस्पतियों के स्नेहों को 'वानस्पतिक स्नेह' या 'तैल' कहा जाता है। वानस्पतिक खाद्यों में प्रधानतया मेवों और कई बीजों में स्नेह होता है। जैतून, बादाम, खोपा, मूंगफली, तिल, राई, एरण्ड, सरसों और कपास के तेल वानस्पतिक स्नेहों के सुपरिचित उदाहरण हैं। चावल गेहूँ आदि धान्यों में थोड़ा-बहुत स्नेह होता है। मटर और सेम से अन्य दालों में स्नेहों की अच्छी मात्रा होती है। फलों और शाक-भाजियों में स्नेह का बहुत थोड़ा अंश होता है।

शरीर में वसा या चरबी के अन्य स्रोत कर्बोदित हैं। यद्यपि वैज्ञानिकों के लिए यह एक जटिल समस्या है कि शरीर में किस प्रकार कर्बोदित स्नेह के रूप में परिवर्तित होते हैं, तथापि यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि ऐसा होता अवश्य है। वैज्ञानिक लोग प्रयोगशालाओं में अभी तक कर्बोदितों को स्नेहों में परिणत नहीं कर सके हैं; पर शरीर में ऐसा करने की शक्ति है, यह निर्विवाद है। कइयों के शरीर में यह शक्ति विशेषतः प्रबल होती है। ऐसे लोगों के भोजन में घी, दूध, तेल आदि के रूप में उतना स्नेह न होने पर भी वे अनायास ही फूलते जाते हैं। जिनमें यह शक्ति नहीं होती, वे प्रयास करने पर भी कृश ही रहते हैं।

स्नेहों के कुछ प्रयोजनों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। शेष प्रयोजन निम्न हैं। तीखे, चरपरे, और गरमा-गरम खाद्यों के कारण आमाशय और आँतों की झिल्ली को



हानि पहुँचने की सम्भावना होती.है। भोजन में कर्बोदितों की अत्यन्त अधिकता हो, तो भी उनके सड़ने से अम्लीय द्रव्य उत्पन्न होते हैं। ये भी उक्त द्रव्यों के समान ही हानि पहुँचाते हैं। इससे आँतों की झिल्ली में सूजन और दुर्बलता होने के कारण कच्चे दस्त आने लगते हैं। यदि भोजन में स्नेहों की पर्याप्त मात्रा हो, तो वे चिकने होने के कारण आँतों की झिल्ली पर हलका-सा लेप कर देते हैं। इस लेप के कारण उक्त विकारी द्रव्यों का आँतों पर दुष्ट प्रभाव नहीं होता।

स्नेहों में 'विटामीन ए' नामक द्रव्य होता है। शरीर के विकास और वृद्धि के लिए तथा कीटाणुओं से होने वाले रोगों के प्रति शरीर को सशक्त बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक द्रव्य है। स्नेहों में स्वयं भी उक्त दोनों गुण होते हैं। 'विटामीन ए' प्राणिज स्नेहों में ही होता है; अतः इस दृष्टि से उन्हीं का सेवन उपयोगी है। ईंधन के विचार से प्राणिज और वानस्पतिक दोनों प्रकार के स्नेहों में कोई भेद नहीं है। स्नेह, खट नामक तत्त्व को आँतों-द्वारा शरीर में भेजवाने और उसके उत्तम प्रकार से उपयोग में सहायता पहुँचाते हैं। खट दाँतों और हड्डियों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्त्व है। (देखिए 'खनिज-द्रव्य'-शीर्षक लेख) स्नेहों में खट के पाचन का गुण 'विटामीन डी' नामक द्रव्य के कारण तथा कुछ-कुछ अपने विशेष प्रभाव के कारण होता है।

भोजन में स्नेहों की न्यूनता के कारण टाँग और पैरों में पानी भर जाने और उनके सूज जाने की प्रवृत्ति होती है। भारतवर्ष में जिस प्रदेश के लोगों के आहार में प्राणिज स्नेह का अभाव या न्यूनता देखी जाती है, वहाँ, यह रोग भी विशेषतः पाया जाता है। इसे रोकने के लिए प्राणिज स्नेहों का सेवन आवश्यक है।

परिचय

(भैरवी)

पूछते हो हाल क्या तुमसे कहूँ?
आज विस्मृति-सिंधु में फिरसे बहूँ?
उन दिनों की याद आजाती है जब;
जी यही कहता है बस रोता रहूँ।
चुप रहो, छेड़ो न टूटे साज़ को;
अब न पहचानोगे तुम आवाज़ को।

मैं ख़जाना हूँ, मगर लूटा हुआ;
हूँ किसी का मैं हृदय टूटा हुआ।
भाग्य से ही भाग्य होता प्राप्त है;
भाग्य भी मुझको मिला फूटा हुआ।
फूल हूँ वह जो कभी मुरझा गया;
गान हूँ वह जो नहीं गाया गया।

सुखद स्वप्नों का करुण अवसान हूँ;
दुख-मुअज़्ज़न * का मधुर आह्वान हूँ।
जो न निकला है, न निकलेगा कभी;
दीन उर का वह भरा अरमान हूँ।
मैं किसी भूले हुए की याद हूँ;
अनसुनी पर पुरअसर फ़रियाद हूँ।

आह! वह गलियाँ इलाहाबाद की;
और वह रँग-रेलियाँ सैयाद की।
मुदित हो सुनना-सुनाना रात-दिन;
प्रेम शीरीं का, वफ़ा फ़रहाद की।
अब न अपना दिन, न अपनी रात है;
आँख में आई हुई बरसात है।

हो रहा कुल जगत मुझपर क्रुद्ध है;
कंठ भी अब हो रहा अवरुद्ध है।
हाय! रोना भी मुझे आता नहीं;
बेकसी मेरी न सीमाबद्ध है।
अब न मुख पर हास या उल्लास है;
मैं रुका हूँ, चल रहा निःश्वास है।

दुख-उदधि की कुछ न मेरे थाह है;
रुक रही आ आ लबों † पर आह है।
मुक्ति पाऊँ अब यहाँ से शीघ्र ही;
बस यही बाकी बची निज चाह है।
कौन पतझड़ और कौन वसन्त है?
है दिखाता 'अथ' मुझे तो 'अन्त' है।

पद्मकान्त मालवीय

* अजान देनेवाला मौलवी

† ओंठ

अंगोरा के पथ पर

लेखक—श्रीयुत 'अज्ञेय'

हज़ारों मीलों के घेरे से एकत्र हुए लाखों प्राणियों के सूखे हुए कण्ठ से एक ही भैरव, तृषित पुकार उठ रही है—शान्ति ! शान्ति ! और युद्ध अपनी प्रकाण्ड गति से चला जा रहा है। शान्ति नहीं मिलती।

और यहाँ स्मर्ना नगर के लाखों प्राणी तड़प-तड़प कर चिल्ला रहे हैं—आग ! आग !—पर नगर जलता जा रहा है और कोई बुझाने वाला नहीं मिलता...

स्मर्ना के बन्दरगाह के पास एक छोटे-से मकान में बैठा एक युवक मेज़ पर झुका हुआ लिखता जा रहा है। जलते हुए नगर का धुआँ वहाँ तक पहुँचने लगा है। भयंकर गर्मी है ; पर वह युवक अत्यन्त एकाग्र भाव से लिखे जा रहा है, लिखे जा रहा है।

हम ग्रीक हैं, विजेता हैं, युरोपियन सभ्यता के प्रवर्त्तक हैं ; पर हम मानवता के दीक्षा-गुरु होकर भी पशु हैं, पशु ...हम, जो संसार में सुख और शान्ति की स्थापना के लिये उत्तरदायी हैं, हम अब भी अपने आदर्श के लिये सिकन्दर की घृणित प्रतिमा स्थापित किये हुए हैं, अब भी साम्राज्य के स्वप्न पर असंख्य मानव जीवनों की आहुति दे रहे हैं ! ..

आज, जब तुर्कों ने हमारा मर्मस्थान पहचान कर हम पर प्रहार किया है, हमारी सेना के थ्रेस-प्रान्त में चले जाने का पता पाकर स्मर्ना पर आक्रमण कर दिया है, उसमें आग लगा दी है, तब हम कहते हैं—नीचता है, कायरता है ! हम पर धोखे से वार किया गया है, यह अन्याय है ! हमारी असहाय प्रजा के घरों में आग लगाई जा रही है, यह घोर नृशंसता है ; पर जब हम विजयी थे, तब हमने क्या किया था ? इसी युद्ध में तो हमारे सम्राट् कान्स्टैन्टाइन चले थे अंगोरा के पथ पर, सम्राटत्व ग्रहण करने ! अप्रैल से अगस्त तक, चार मास में, न जाने हमारी सेना ने क्या क्या अत्याचार किये.. थ्रेस से लेकर सकरिया नदी तक—हम बराबर तुर्की के घर जलाते गये और यूनानियों को सेना में भर्ती करते गये।

मैं भी तो इन्हीं सम्राटत्व के भूखे, विजयोन्मत्त सैनिकों में भरती हुआ था। मैंने भी तो अंगोरा की ओर बढ़ती हुई सेना को देखकर अपना घरबार छोड़ा था, और अंगोरा को साथ लेकर चल पड़ा था—मेरे भी तो पैर दर्द के मारे पृथ्वी पर नहीं पड़ते थे !

पर, सकरिया नदी की हार ! तुर्कों ने सम्राटत्व का स्वप्न तोड़ दिया, कान्स्टैन्टाइन भाग गया, हमारी सेना छिन्न-भिन्न हो गई—और मेरी आँखें खुलीं ! मैंने भी देखा. हम क्या कर रहे हैं !

युवक क्षण-भर के लिये रुका और सिर उठाकर उसी एकाग्र दृष्टि से छत की ओर देखता, कुछ देर तक न जाने क्या क्या सोचता रहा। फिर उसके मुख पर का एकाग्र भाव और भी कठोर होकर दृढ़ निश्चय के भाव में परिणत हो गया। कुछ देर तक वह इसी प्रकार बैठा रहा, फिर उसने ज़ोर से सिर झटका, और फिर लिखने लगा—

'कार्ल ने मुझे दिया, हम क्या कर रहे हैं . फिर मेरा सारा गर्व और स्पर्द्धा न जाने कहाँ उड़ गये..और ग्लानि, ग्लानि, ग्लानि से भर गया...

आज वह ग्लानि मिट गई है। आज तुर्कों ने हमसे बदला ले लिया है। कान्स्टैन्टाइन पराजित होकर लौटा, तब पैरिस में सन्धि की बात-चीत हो रही थी ; पर हमारा देश इतने पर भी नहीं माना था। पुरानी सरकार ने पद-त्याग किया, नई सरकार ने फिर जनरल हेजाने स्टीज़ को आक्रमण करने की आज्ञा दी और वह थ्रेस में सैन्य-संग्रह करने लगा। स्मर्ना भी खाली कर दिया गया—और उसी का यह फल है .।

मैं अभी अपनी डायरी लिख रहा हूँ। शायद शाम तक यह, यह घर और मैं भी, इसी भयंकर ज्वाला में भस्मीभूत हो जाऊँगा...पर फिर भी मैं जिस तथ्य पर पहुँचा हूँ, उसे यहाँ लिख रहा हूँ...अगर मैं इस आग से बचकर निकल गया, तो यही प्रतिज्ञा मेरे जीवन की पथ-प्रदर्शक रहेगी...



और अगर नहीं...तो मेरी वेदना की लपट भी इसी आग में मिलकर मेरे निश्चय की साक्षी देगी !

मैं, एन्टनी स्थेरास, वयस् १७ वर्ष, आज १४ सितम्बर १९२० को अपने देश और विश्वास को साक्षी करके, प्रतिज्ञा करता हूँ, कि भविष्य में कभी किसी साम्राज्यवादी लक्ष्य के लिये हथियार नहीं उठाऊँगा। मेरे जीवन का ध्येय साम्राज्यवाद से अनवरत युद्ध करके, उसे छिन्न-भिन्न कर, साम्य पर आश्रित लोकतन्त्र की स्थापना करना ही होगा, चाहे—'

एकाएक कमरे में दो और व्यक्तियों ने प्रवेश किया—एक पुरुष और एक लड़की। उन्हें देखकर युवक ने सकपका कर अपनी डायरी बन्द कर दी और बोला—आरोरा, तुम आ गईं !

जो लड़की थी, वह दौड़कर युवक से चिपट गई। बोली—टोनी, टोनी, मुझे आशा नहीं थी, कि फिर भी मिलेंगे !

युवक ने उसे ज़ोर से दबा लिया, और पुरुष की ओर देखता हुआ बोला—कार्ल अब हमें क्या करना होगा ?

तीनों बैठ गये। कार्ल ने पूछा—एन्टनी, क्या लिख रहे थे ?

उँह, कुछ नहीं। डायरी लिख रहा था।

आरोरा हँसने लगी—डायरी ! चारों तरफ तो आग लगी हुई है, तुमे डायरी लिखना सूझता है !

'और क्या करूँ ?'

कार्ल गम्भीर होकर बोला—सुनो, टोनी, आज बहुत खबरें हैं।

एन्टनी ने औत्सुक्य से पूछा—क्या ?

'पुरानी सरकार पद त्याग करने से पहले आज्ञा दे गई थी कि स्मर्ना से ग्रीक सेना हट जाय। और हमारे सब साथी वियोस टापू में चले गए थे। उनमें से कुछ और आगे बढ़ कर मिटीलिनी टापू पर जा पहुँचे हैं। वहाँ पर मेरे दोनों साथी भी अब अपने संघ का प्रचार करने लगे हैं। अपनी सेना के कर्नल प्लास्टे रास ने भी सेना का अलग संघटन धीरे-धीरे आरम्भ कर दिया है। पर वहाँ से आगे एथेन्स कैसे जाना होगा, यह किसी को नहीं सूझता... ।

'फिर ?'

'वहाँ टापू के बन्दरगाह पर मेरे कुछ मित्र हैं। अगर उनसे बात-चीत हो सके, तो वे किसी-न-किसी तरह ऐथन्स से ही या इधर उधर से जहाज बुलवा देंगे—चाहे बाद में धोखा खाने पर उन्हें कोर्ट मार्शल ही कर दिया जाय; पर उन तक कोई पहुँचे तब न. और कोई तो जानता भी नहीं...'

'चिट्ठी भेज कर भी काम नहीं चल सकता ?'

'शायद हीं चले। इतने बड़े काम के लिए पत्र का विश्वास कोई नहीं करेगा; पर चिट्ठी भी तो नहीं भेजी जा सकती।'

तीनों चुपचाप बैठे सोचने लगे। थोड़ी देर बाद कार्ल बोला—सुना है, एक अमेरिकन जहाज़ यहाँ से जाने वाला है......

फिर थोड़ी देर चुप।

कार्ल बोला—कुछ तो सोचना ही होगा। मैं फिर बाहर जाता हूँ।

आरोरा ने कहा—अभी ! और यह आग ?

कार्ल जल्दी से बोला—वह अभी बहुत दूर है—मैं लौट आऊँगा। और उठकर चल दिया। एन्टनी कहता ही रहा—सुनो तो !

आरोरा बोली—टोनी, डायरी दिखाओ, मैं पढ़ूँगी क्या लिखा है।

'नहीं, वह कुछ नहीं है।'

'मैं जानती हूँ तुम कवि हो गए हो।'

'अच्छा, आज की मत पढ़ो, पुरानी पढ़ लो।'

'नहीं, मैं सब पढ़ूँगी।'

'नहीं, तुम्हें मेरी कसम।'

'देखूँ तो।'—कहकर आरोरा ने डायरी उठा ली, और खोलकर पढ़ने लगी। एन्टनी भी पास बैठ गया और देखने लगा।

'१८ जुलाई। हमारा राष्ट्र दिग्विजयी है। हम मैसीडोनिया और थ्रेस के स्वामी हैं। हमने एनातोलिया को भी जीत लिया है, अब अंगोरा को भी जीतें तो ..हमारा पुराना ग्रीक-साम्राज्य फिर से स्थापित होगा। हम सिकन्दर के वंशज फिर पूछेंगे—बताओ और कहाँ तक पृथ्वी है, जिसे हम जीत लायें.....'

एन्टनी ने रोक कर कहा—आरोरा, यह बकवास है, इसे मत पढ़ो !

आरोरा ने फिर दो-चार पन्ने उलट दिये।

'२८ जुलाई। हम अंगोरा से कुल साठ मील दूर हैं—कुल साठ मील। पर कार्ल न जाने क्यों अधिकाधिक उदास होता जाता है—वह कहता है कि हम अपनी ही हानि कर रहे हैं। कहता है कि सिकन्दर पागल था, अपने राष्ट्र को दूर-दूर तक फैलाता गया ; पर उसकी रक्षा नहीं कर सका। व्यर्थ ही इतने प्राण नष्ट किये, एक अपनी व्यक्तिगत तृप्ति के लिये। वह कहता है कि सबको स्वतन्त्र होने का अधिकार है। एक देश पर दूसरे देश का अधिकार स्थापित करना नीचता है, और अन्याय की सीमा है......।

अभी दो मास हुए, तब मैं कार्ल को जानता भी नहीं था। कार्ल ग्रीस से सेना के साथ-साथ आया था, मैं एनातोलिया में भर्ती हुआ हूँ। वह चार साल से सेवा में है। मैं आज से दो ही मास पहले अपने पिता के खेत पर काम करता था ; पर फिर भी कार्ल सेना से और युद्ध से घृणा करता है, और मैं उसका विरोध नहीं कर सकता—उसकी बात मानता जाता हूँ। उसमें इतनी सचाई मालूम होती है... .।'

आरोरा ने फिर कुछ पन्ने उलट दिये—

'३० अगस्त। पराजय ! पराजय ! पराजय ! हमारा खोया हुआ साम्राज्य-स्वप्न। आज आठ दिन से मुँह भी नहीं धो सका हूँ—निरन्तर मार्च, मार्च, मार्च .. । दिन में दो पड़ाव, रात में एक पड़ाव, कभी आराम नहीं मिलता और बेचारी आरोरा रोती नहीं ; पर मेरी ओर ऐसे देखती है—!' आरोरा ने रुककर एन्टनी की ओर देखा, वह एकाग्र होकर बैठा था। आरोरा फिर पढ़ने लगी—'पता नहीं, कितने दिन ऐसे-ही और चलना है—भूखे, प्यासे, खून और कीच से सने, कुछ आहत, कुछ अन्धे, और स्त्रियाँ ...और पराजित, पिटे हुए, हारे हुए भगोड़े.........

कार्ल कहा करता था—हमारी हार हो, तो मुझे दुःख नहीं होगा। तब हम लोग उसे गालियाँ देते थे, कि देश का शत्रु है...पर जब से हार हुई है, तब से वह कुछ बोलता ही नहीं, चुपचाप इधर-से-उधर भागा फिरता है—लोगों को पानी देता, कभी किसी को सहारा देता, कभी किसी को ढाढ़स बँधाता हम एक पड़ाव चलते हैं, तो उतनी देर में उसे आते-जाते चार पाँच पड़ाव की मार्च करनी पड़ जाती है...उसने वर्दी उतारकर फेंक दी है ; फिर भी पानी की बोतलों के मारे बोझ कुछ कम नहीं है...

आज डायरी लिखने की फुरसत मिली है ; पर क्या लिखूँ ? जब जीवन में कुछ नहीं था, तब लिखने को कितनी बातें थीं ! और आज जीने वाले को लिखने से क्या ?'

आरोरा का मुख भी किसी पूर्व-स्मृति के कारण गम्भीर हो गया था। उसने फिर अन्यमनस्क भाव से एक पन्ना पलटा और पढ़ने लगी—

'२ सितम्बर। अभी तक हमारी सेना भी भाग रही थी। अब बढ़ते हुए तुर्कों के आगे एनातोलिया की सारी ग्रीक प्रजा . आज हमारी संख्या पन्द्रह हज़ार से भी अधिक है—एनातोलिया का प्रान्त ही समुद्र की तरह उमड़ कर स्मर्ना की ओर बहा जा रहा है—पुरुष, स्त्री, लड़के, लड़कियाँ, दुधमुँहे बच्चे...और साथ ही में गर्भवती स्त्रियाँ, घोड़े, खच्चर, गधे—सब सामान से लदे हुए—कहीं पुरुष ही छकड़े में रोगियों, बच्चों और रोटी पानी को लादे खींचे चले जा रहे थे।

यह है हमारे साम्राज्य-स्वप्न का प्रतिघात !

हम खेतों को, बागों को, अपनी प्यारी अंगूर की बेलों के कुञ्जों को—सभी को रौंदते हुए चले जा रहे हैं ; पर दिग्विजय के पथ पर ही हम भाग रहे हैं। सम्राटत्व नहीं, उसका उच्छिष्ट भी नहीं, हम उसी के भयंकर प्रतिघात से बच कर भाग रहे हैं।

शैतान के चार सहायक हैं—कलह, अकाल, हिंसा और मृत्यु। और ये चारों अपना उग्रतम रूप धारण किये, हमारे इस अभागे समूह में नृत्य कर रहे हैं। कोई भूख से या श्रम से क्लान्त होकर गिर पड़ता है, तो उसे भी उठाने वाला नहीं मिलता। लोग उसे रौंदते हुए चले जाते हैं ..। भद्र लोगों के आदर्शों के लिए यह स्थान नहीं है—यह मानव की प्राचीनतम असभ्य और असंस्कृत वासनाओं का संघर्ष है। जो बातें युद्ध और क्रान्ति में नहीं होतीं, वे यहाँ हैं—यह जीवन का आत्म रक्षा की घोर-घोर चेष्टा का नंगा नाच है। युद्ध बीभत्सता और क्लेश से पूर्ण होता है, क्रान्ति विराट् और भैरव होती है, पर हमारा मानव

जीवन इससे भी अधिक विराट् और भैरव है, इससे भी अधिक वीभत्स और क्लेश-पूर्ण और उग्र .... '

आरोरा ने आँसू भरी आँखों से फिर एन्टनी की ओर देखा। वह अब भी उसी प्रकार एकाग्र होकर बैठा था। आरोरा ने धीरे से कहा—सुन रहे हो, या कुछ और सोच रहे हो ?

एन्टनी ने एक बार 'हूँ' कर दिया और बिना उत्तर दिये उसी प्रकार चिन्तित बैठा रहा। आरोरा क्षण भर तक देखती रही। फिर बोली—एन्टनी, कहो क्या सोच रहे हो ?

एन्टनी एकाएक उठ कर खड़ा हो गया। बोला—आरोरा, चलो, ऊपर चलें।

आरोरा ने विस्मित होकर कहा—छत पर ? वहाँ तो धुआँ बहुत होगा !

'चलो' कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये एन्टनी जाने लगा। आरोरा भी उसके पीछे-पीछे चल दी।

• • •

बाहर बन्दरगाह पर ।

गर्मी से उन्मत्त हुए फौजी छोकड़े इधर-उधर भाग रहे थे। एनोतोलिया से और जलते हुए नगर से भाग कर एकत्र हुए असंख्य प्राणियों को रौंदते चले जा रहे थे ...माताएँ रोती थीं—'मेरा बच्चा'—तो भीड़ की भय-भीत और भयानक चीत्कार—'आग ! आग !' उस भयंकर ज्वाला की धू-धू ! में वह स्वर लीन हो जाता था।

नगर के अन्दर जलते हुए शरीरों की दुर्गन्ध से वायु-मण्डल भर रहा था ..।

एक ओर बहुत से व्यक्तियों ने न जाने कहाँ से एक तुर्क लड़के को पकड़ लिया था। कोई कह रहा था—इसने ग्रीस-लड़कियों से छेड़-छाड़ की। लोग उसे पीट रहे थे। देखते-देखते वह गिर गया, कुचला गया, उसकी हड्डी-पसली तोड़ डाली गई। दो-चार लोगों ने उसके टूटे हुए और खून में सने अवयव उठाकर, हिला-हिला कर, भीड़ को दिखाने आरम्भ किये।

और भीड़ के छोर पर, एक भव्य इमारत में बहुत से लोग जुआ खेल रहे थे। छज्जे पर खड़ी तीन-चार वेश्याओं ने कपड़े उतार कर फेंक दिये थे और रुमालों से पसीना पोंछती जा रही थीं और हँसती जा रही थीं, उस भीड़ की ओर देखकर।

भीड़ कभी उधर देखकर लालसा की पुकार करती थी, कभी दाँत पीसती थी।

उस भवन के फाटक बन्द थे; ताकि भीड़ प्रवेश न कर पाये......

और जुआ, चोरी, षड्यन्त्र, लालसा, भूख, डर, हिंसा, आग और धुएँ के इस निर्लज्ज ताण्डव के साथ नाचती हुई स्मर्ना बढ़ी जा रही थी।—किधर ?

कभी-कभी नगर की ओर से भीड़ का एक अंश उस असह्य ताप के कारण बन्दरगाह की ओर हटने लगता था, तब उसके दबाव के कारण घाट के सिरे पर एकत्र हुए लोग पानी में गिर जाते थे। और डूब जाते थे—कोई बचाने वाला नहीं था। जहाज कुछ तो विदेशी राष्ट्रों के थे, कुछ अपनी रक्षा के लिए घाट पर से हट गये थे।

और हृदय-हीन समुद्र के बीच में फँसी तीन लाख प्रजा के बीच से होकर, जिन्हें क्रूर आग जला रही थी, कार्ल पिसता हुआ चला जा रहा था—पागल की तरह, उन्मत्त, निश्चय से उग्र, घाट के सिरे पर खड़ा होकर वह अपनी टोपी उतार कर हिलाने लगा। जब एक हाथ थक गया, तब दूसरे से और फिर लौटकर पहले हाथ से। थोड़ी देर बाद कुछ दूर पर खड़े एक व्यापारी जहाज से एक डोंगी उतरी और धीरे-धीरे पास आने लगी।

इसी समय भीड़ में से उठी एक विचित्र हुंकार—न जाने विजय की, या क्रोध की, या क्या......

कार्ल घूम कर फिर भीड़ में घुसने लगा।

थोड़ी ही देर में उसने इस शोर का कारण जान लिया।

तुर्की सेनाधिपति ने फर्मान निकाला था कि १७ वर्ष से ४५ वर्ष तक आयु के पुरुषों को छोड़कर सभी व्यक्ति स्मर्ना से बाहर जा सकेंगे—और जो पुरुष रह जायँगे, वे युद्ध के बन्दी समझे जायँगे .. ..

कार्ल क्षण भर खड़ा कुछ सोचता रहा, फिर धीरे-धीरे लौटने लगा।

• • •

एन्टनी और आरोरा छत पर खड़े थे। यहाँ गर्मी और धुआँ और भी अधिक था और दुर्गन्ध भी अत्यन्त उग्र थी; पर एन्टनी बिना इनकी परवा किये छज्जे पर झुका

हुआ अग्नि का वह ताण्डव देख रहा था। उसके मुख पर का भाव अभी तक उसी प्रकार चिन्तित और एकाग्र था। आरोरा कभी उसके मुँह की ओर देखती, कभी आग की ओर।

दोनों बहुत देर तक ऐसे ही खड़े रहे। आशा की लाल-लाल लपटों में रक्त निराशा के न जाने कितने स्वप्न देखते खड़े रहे!

फिर एकाएक एन्टनी बोला—आरोरा, कार्ल से विवाह करोगी?

आरोरा चौंक कर, क्रुद्ध, दुखित, व्यथित स्वर में बोली—क्या?

एन्टनी ने फिर कहा, मानो साधारण सा प्रश्न पूछ रहा हो—कार्ल से शादी करोगी?

आरोरा कुछ देर बोली नहीं। फिर एन्टनी के पास आकर अत्यन्त दीन स्वर में बोली—टोनी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है!

एन्टनी ने एक विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। फिर कोमल स्वर में बोला—नहीं आरोरा, कुछ और मत समझो, अगर ग्रीस के लिये यह करना पड़े, तो करोगी?

'तुमको क्या हो गया है टोनी?'

एन्टनी फिर चुप हो गया। थोड़ी देर बाद आग की ओर देखता हुआ बोला—आरोरा, मुझे इस आग के पट पर भविष्य की एक स्वप्न-दीवार दिखाई दी—सुनोगी?

आरोरा कुछ नहीं बोली। एन्टनी अपने-आप कहने लगा—मैंने देखा है, हमारा-तुम्हारा विवाह नहीं होगा। हम सब मर जायँगे और एक साथ नहीं मरना होगा—तुम कहीं, और कार्ल कहीं, और मैं कहीं, और..'

'फिर—?'

'फिर मेरे भीतर कोई कहता है, आरोरा तुम्हारी नहीं है, क्रान्ति की है। उसे जाने दो..'

एन्टनी फिर चुप हो गया..'

आरोरा बोली—तुम तो पागल हो। गर्मी से सिर फिर गया है। फिर उसके कन्धे पर हाथ रख कर बोली—अब नीचे नहीं चलोगे?

'अभी—अभी ठहरो, मुझे कुछ और देखना है, उससे आगे...'

आरोरा बिलकुल चुप और निश्चल हो गई। दोनों फिर लाल लपटों में भविष्य के चित्र देखने लगे, एन्टनी लाल क्रान्ति के चित्र, और आरोरा.....

नीचे थके हुए स्वर में कार्ल की आवाज़ आई—टोनी, कहाँ गए?

एन्टनी चौंका, और दोनों नीचे चले।

कार्ल ने दोनों को देखकर पूछा—छत पर क्या हो रहा था?

एन्टनी ने जल्दी से कहा—कुछ नहीं, हम आग देख रहे थे। कैसी भयंकर है! क्यों आरोरा?

आरोरा एक अस्वाभाविक, काँपती हुई-सी हँसी हँस कर बोली—हाँ!

कार्ल वह हँसी सुनकर एक बार तीव्र दृष्टि से आरोरा को ओर देख कर बोला—तुम थक गई हो, लेट जाओ।

आरोरा ने मानो सुना नहीं। एन्टनी ने पूछा—कोई समाचार है?

'हाँ, तुम्हारे काम का है।'

'क्या?'

'तुर्की सरकार का फरमान है कि १७ वर्ष से कम आयु के पुरुष स्मर्ना से बाहर जा सकते हैं।'

'फिर?'

'तुम्हारी आयु १७ साल की है और आरोरा भी जा सकती है......।'

'पर—?'

आरोरा ने कहा—और तुम कार्ल?

'मैं क्या? दुनिया बहुत बड़ी है...टोनी, तुम क्यों चुप हो गए?'

'टोनी फिर चुप रहा। आरोरा फिर वही अस्वाभाविक हँसी हँसकर बोली—उसका दिमाग खराब हो गया है। उसे बुलाओ मत?

कार्ल ने सहानुभूति के स्वर में कहा—और तुम आरोरा, तुम भी तो बहुत चञ्चल हो रही हो।

एकाएक टोनी लपका। और बोला—समझ गया। मेरा स्वप्न ठीक है ठीक!

कार्ल ने कुछ विस्मय से मुस्करा कर पूछा—क्या है टोनी ?

आरोरा ने भी चौंक कर भीत-स्वर में कहा—क्या ?

एन्टनी पर एक विचित्र अलौकिक उन्माद छाया हुआ था। वह उसी अनागतदर्शी भाव से बोला—सुनो कार्ल, मै जो कहता हूँ, ध्यान से सुनो। मेरे पास सेना का पास-पोर्ट है, अपने और आरोरा के नाम का। उसमें मेरी आयु १७ साल लिखी है।

'हाँ तो फिर ?'

'तुम समझे नहीं ? तुम वह लेकर मिटिलीनी चले जाओ। और ..'

'पागल ! तुम्हारा और आरोरा का हक छीन कर भागूँगा ?'

आरोरा बैठी हुई थी, खड़ी हो गई; पर कुछ बोल नहीं सकी।

एन्टनी ने फिर कहा—कार्ल ऐसे भावुक मत होओ ! मैं तुम्हें अपनी जान लेकर भागने को थोड़े ही कहता हूँ। क्रान्ति का भी तो उत्तरदायित्व है .. ..'

'नहीं, मैं नहीं मानूँगा। तुम और अरोरा ही चले जाओ ..

'कार्ल सुनो ! मैं बहुत छोटा हूँ; पर मैंने भी तुम्हारे साथ युद्ध देखा है, हार देखी है, हजारों लोग मरते देखे हैं। केवल तलवार से नहीं, भूख-प्यास से, और प्लेग से, और भयंकर आग से भी ...मैं समझता हूँ कि मरना क्या है, और जीना क्या......पर यह बताओ, अगर कान्स्टैन्टाइन के स्वप्न के लिए लाखों प्राणियों की आहुति उनकी इच्छा के विरुद्ध दी जा सकती है, तो लाखों प्राणियों के सुख के लिए एक आदमी इच्छा-पूर्वक नहीं मर सकता ? तुम्हारे ऊपर क्रान्ति निर्भर हो और तुम एक जीवन का मोह करो ? छिः !'

कार्ल विस्मित होकर ऐन्टनी का यह नया रूप देख रहा था। उसने कहा—आरोरा भी तो है .....

आरोरा ने तन कर कहा—आरोरा भी मरना जानती है, डरती नहीं !

ऐन्टनी बोला—नहीं, आरोरा की बात नहीं है—वह तुम्हारे साथ जा सकती है।

आरोरा ने मुँह फेर लिया था। यह बात सुनकर तीखे स्वर में बोली—ठीक है, आरोरा भी जा सकती है।

इस बात के पीछे कितना तीक्ष्ण व्यंग, कितनी मार्मिक वेदना थी, ऐन्टनी नहीं समझा। प्रसन्न होकर बोला—आरोरा, तुम्हे मञ्जूर है न ? कार्ल, तुम्हें भी मानना पड़ेगा...

'नहीं मानूँगा। तुम दोनों चले जाओ, मैं तुम्हें एक पत्र दे देता हूँ वह ले जाना। मिटिलिनी में—'

'तुम्हीं ने न कहा था कि पत्र से काम नहीं हो सकेगा ?'

कार्ल चुप रह गया। ऐन्टनी फिर बोला—कार्ल यह हँसी नहीं है। तुम्हें यह बात शोभा नहीं देती। मेरा क्या है, अभी कल मैं साम्राज्यवाद के लिए लड़ रहा था; पर तुम—तुम्हारा ग्रीस के लिये बहुत मूल्य है। बोलो, जाते हो कि नहीं ? मैं कहे देता हूँ, तुम नहीं जाओगे, तो मैं यहीं आग में जलकर मर जाऊँगा—यहाँ से टलूँगा नहीं !

कार्ल कुछ कह नहीं सका, मुँह फेर कर खिड़की से बाहर देखने लगा। आरोरा ने उसी तीक्ष्ण स्वर में कहा—ठीक है।

एन्टनी ने, कहा—कार्ल, तुम सब ठीक-ठाक करके तैयार हो जाओ—कल ही उस अमेरिकन जहाज में चले जाओ।

कार्ल का विरोध प्रायः छिन्न हो चुका था। बोला—अगर पास-पोर्ट का धोखा पकड़ा गया तो ? उसके फोटो से भी तो—

'कैसे पकड़ा जायगा ? मुझे यहाँ कौन जानता है ! और ग्रीक, ग्रीक को धोखा नहीं देगा, ऐसा भी मेरा विश्वास है...फोटो को धुएँ से ज़रा काला कर लेना—बस।'

थोड़ी देर बाद ऐन्टनी ने फिर कहा—कार्ल, तुम तैयार हो जाओ। मैं ऊपर जाता हूँ।

कार्ल ने एक बार आरोरा की ओर देखा और बोला—मैं ज़रा नीचे जा रहा हूँ, अभी आ जाऊँगा, और जल्दी से उतर गया।

कार्ल घर से बाहर निकल कर कहीं गया नहीं, घर के सामने ही, घर के सामने की एक चौकी पर लेट गया और आकाश की ओर देखने लगा।

संध्या हो गई थी; पर जैसे दिन-भर धुएँ के कारण

सूर्य नहीं दीख पाया था, उसी प्रकार रात का पता नहीं लगा—केवल जो ज्वाला दिल में कुछ पीली-सी दीख पड़ती थी, वह अब रक्त के उबाल की तरह लाल लाल दीखने लगी और धुएँ का मैलापन कुछ और लाल हो गया।

क्रान्ति और युद्ध के, जीवन और मरण के, तेज और मालिन्य के, लाल और काले के, इस सम्मिश्रण को देखकर कार्ल भी न जाने क्या सोचने लगा।

• • •

एन्टनी कुछ देर तक अनिश्चित-सा कमरे के मध्य में खड़ा रहा, फिर आरोरा के पास गया। आरोरा भूमि पर बैठ गई थी। एन्टनी ने कहा—आरोरा, अब तो तुम चली जाओगी!

'हाँ, चली जाऊँगी।'

स्वर में कुछ ऐसी कठोरता थी, कि एन्टनी एकाएक घुटनों के बल बैठ गया और आरोरा का हाथ अपने हाथों में लेकर बोला—आरोरा क्या है?

'कुछ नहीं!'

एन्टनी (कोमल स्वर में)—मुझसे नाराज हो गई?

'नाराज काहे को होऊँगी? मुझे तो प्रसन्न होना चाहिए न, कि तुम अपना स्वार्थ भूलकर मेरी रक्षा कर रहे हो!'

एन्टनी जो बात इतनी देर तक नहीं समझा था, वह एकाएक समझ गया। कुछ देर वह भौंचक होकर आरोरा की ओर देखता रहा। फिर बोला—आरोरा, तुम अन्याय मत करना, अभी हमारे पास झगड़ने का समय नहीं है। अभी थोड़ी देर तक मुझे अपना टोनी मत समझो—समझ लो कि मैं केवल ग्रीस-सैनिक हूँ। और अपने को मेरी आरोरा नहीं, ग्रीस की एक वालंटियर समझो...फिर बताओ, तुम क्या ग्रीस को छोड़ दोगी?

आरोरा कुछ नहीं बोली।

एन्टनी ने फिर कहा—आरोरा हम फिर मिलेंगे। तुम कार्ल के साथ चली जाओ, क्रान्ति हो जाने दो। मैं फिर छूटकर आ जाऊँगा, आयु कम होने के कारण, या फिर सन्धि हो जाने के बाद...।

आरोरा ने अविश्वास के स्वर में कहा—हूँ।

'सन्धि अवश्य होगी। ये तीन लाख भूखे-प्यासे आदमी बहुत दिन युद्ध नहीं चलने देंगे। फिर, तुम और मैं सुख से रहेंगे—तुम कहोगी तो फिर एनातौलिया लौट आवेंगे...तुम कुछ ही दिन के लिए तो जाओगी—ताकि कार्ल मिटिलीनी पहुँच सके...'

एण्टनी चुप होकर आरोरा के मुख की ओर देखने लगा; पर आरोरा ने कोई उत्तर नहीं दिया। एण्टनी ने पूछा—मानती हो न?

अब की बार कम्पित स्वर में आरोरा ने कहा—मुझे सोचने दो, जाओ।

एण्टनी, तरुण फिलासफर; किन्तु स्त्री प्रकृति से अनभिज्ञ, चुप-चाप अपनी डायरी उठाकर छत पर चला गया।

उसके जाते ही आरोरा खिलखिला कर हँसी, फिर वह हँसी पागल के उन्मत्त अट्टहास-सी हो गई।......

बाहर कार्ल ने सुना और मन-ही-मन बोला—दीखता ही था......हिस्टीरिया...।—फिर वह उठ कर भीतर चला आया।

छत पर बैठा एण्टनी बहुत दूर विचरण कर रहा था। उसने कहा—हँसी नहीं सुनी?

• • •

रात बहुत जा चुकी थी; पर कार्ल और एण्टनी दोनों जाग रहे थे। आरोरा थक कर शान्त हो गई थी और फिर सो गई थी; यद्यपि उसकी नींद शान्त नहीं थी—वह बार-बार चौंकती थी, और हाथ-पैर पटकती थी, मानो छटपटा रही हो। जब ऐसा होता, तब दोनों एक बार विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखते और फिर बातें करने लग जाते।

वे दोनों भविष्य के लिये मन्सूबे बाँध रहे थे। मिटीलनी पहुँच कर कार्ल क्या करेगा, कहाँ जायेगा, एन्टनी कहाँ उसे मिलेगा, पत्र व्यवहार कैसे हो सकेगा, इत्यादि। कार्ल ने दो-एक कपड़े और कुछ काग़ज इत्यादि एक कम्बल में लपेटकर यात्रा की तैयारी कर ली थी।

एका-एक आरोरा एक हल्की-सी चीख़ मार कर उठ बैठी और आँखें फाड़-फाड़कर सब ओर देखने लगी। एन्टनी ने पास जाकर प्यार से कहा—क्या है अरोरा?

आरोरा पहले तो उससे चिपट गई; किन्तु तत्काल ही उसने अलग धकेल दिया। एण्टनी विस्मय के कारण कुछ न बोल सका।



थोड़ी देर बाद आरोरा ने अस्वाभाविक स्वर में कहा—तुमसे एक बात कहनी है।

इस बात का अभिप्राय समझ कर कार्ल स्वयं उठ कर दूसरे कमरे में चला गया।

आरोरा ने पूछा—टोनी तुम अवश्य ही मुझे भेज दोगे?

एण्टनी ने उसकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—क्यों क्या है, आरोरा?

'बताओ, जरूर भेजोगे?'

'मेरे ख्याल में तुम चली जाओ, तो सभी के लिये अच्छा है।' (रुक-रुक कर)।

'हूँ! तुमने अपना पास-पोर्ट पढ़ा है?'

'हाँ, क्यों?'

आरोरा कुछ देर तक नहीं बोली, उसके चेहरे से ज्ञात होता था, कि वह कुछ कहने के लिये साहस का संचय कर रही है...फिर उसने जल्दी-जल्दी कह डाला—मैं कल कार्ल से विवाह करूँगी?'

'क्या?'

आरोरा ने फिर प्रत्येक शब्द पर ज़ोर देकर दोहराया—मैं कल कार्ल से विवाह करूँगी!

एण्टनी को इतना विस्मय हुआ कि वह कुछ बोल न सका। उसने चुपचाप कार्ल के कम्बल पर पड़ा पास-पोर्ट उठाया और उसे अन्य मनस्क होकर देखता रहा...।

उस पर लिखा था—एण्टनी स्टेरास और उसकी प्रेमिका आरोरा, इत्यादि। एण्टनी इस वाक्य को चार-पाँच बार पढ़ गया; पर उसे मानों उसका अभिप्राय ही समझ में न आया, उससे आरोरा की बात का सम्बन्ध निकालना तो दूर।

आरोरा बोली—मैं एण्टनी स्टेरास की प्रेमिका हूँ। मेरी और उसकी सगाई हो चुकी है।

एण्टनी ने उसी विस्मय में कहा—पर .?

आरोरा ने हाथ उठाकर उसे रोक दिया। बोली—एण्टनी की प्रेमिका कार्ल के प्रति प्रणयिनी का व्यवहार नहीं करेगी।

समस्या अब एण्टनी की समझ में आई। वह घबराया हुआ-सा कभी पास-पोर्ट और कभी आरोरा की ओर देखने लगा।

आरोरा फिर बोली—इसलिये कल मैं कार्ल के साथ विवाह कर लूँगी।

एण्टनी बहुत देर तक सिर झुकाये न जाने क्या सोचता रहा। क्रान्ति और जीवन के जिस संघर्ष को वह अब तक पूर्णतया नहीं समझ पाया था, वह एकाएक आँखों के सामने आ गया। उसके सामने उसके गत जीवन के बहुत-से चित्र नाच गये—अलग-अलग नहीं, एकही दीप्त छाया-पट पर।

किन्तु साथ ही उसी दृश्य को घेरे हुए, उसके चारों ओर आग की लपटें...और उनमें से धुएँ की तरह निकलते हुए, व्यथा और भूख से विकृत, लाखों मानव-मुख...

न जाने क्यों उसके मन में एक शब्द-समूह, निरर्थक शब्द समूह नाचने लगा—तीन लाख। तीन लाख, आरोरा..

उसने सिर उठाया और तन कर खड़ा हो गया। उसकी आँखों में व्यथा नहीं थी, आनन्द नहीं था, विजय नहीं थी, उत्सर्ग नहीं था; था, एक उन्मत्त अभिमान-दर्द।......

बोला—ठीक है। यही होगा। फिर एका-एक घूम कर लम्बे-लम्बे क़दम रखता हुआ, छत पर चल दिया।

आरोरा भूमि पर बैठ गई—बैठ गई ऐसे, जैसे गिलास के लुढ़कने से उसमें का दूध बिखर गया हो और फूट-फूटकर रोने लगी। हिस्टीरिया ने जिस व्यथा को दबा दिया था, वह और भी अधिक वेगवती होकर बह निकली।

कार्ल अन्दर आया और किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर चुपचाप आरोरा के पास खड़ा रहा।

और आरोरा रोती रही।.....

और एण्टनी छत पर बैठ कर, उस ज्वाला के प्रकाश में डायरी लिये बैठा लिखे जा रहा था। पागल की तरह, मानो उसका जीवन इस लिखने पर निर्भर करता हो।...

• • •

वह भयंकर ज्वाला, जो कि अनेक अकाल मृत्युओं का कारण हुई थी, अनेक अकाल प्रसवों का भी कारण हुई...कार्ल आरोरा को लेकर जिस पथ पर धीरे-धीरे चला जा रहा था, उस पर उसने पाँच-छः प्रसविनियाँ पड़ी देखीं।...

पता नहीं, किस भावना से प्रेरित होकर आरोरा ने कहा—यह अच्छा शकुन है।...

कार्ल ने एक बार चुपचाप उसकी ओर देखा और चलता गया। वह मन-ही-मन आरोरा की मनःस्थिति समझने का प्रयत्न कर रहा था; पर समझ नहीं पाया था।

उनका विवाह हो चुका था। उसी भीड़ में फँसे हुए एक पादरी ने उनका विवाह-संस्कार कर दिया था।

एण्टनी उनके विवाह पर भी नहीं गया था, अब उनके साथ बन्दरगाह भी नहीं आया। वे उसके पास-पोर्ट पर जा रहे थे, इसलिए उसका साथ आना ठीक नहीं था। क्यों? शायद कोई पहचान का आदमी मिल जाया—यही कहकर वह स्वयं रह गया था। आरोरा ने उसे साथ बुलाने का बिलकुल आग्रह नहीं किया, और कार्ल ने भी यही सोचकर कि इस प्रकार वियोग का दुःख कम हो जायगा, कोई बाधा न की। अरोरा ने चलते समय एण्टनी से विदा भी नहीं ली, यद्यपि कार्ल उन्हें अवसर देने के लिए दूर हट गया था। एण्टनी ने कहा—आरोरा, ऐसे ही चली जाओगी? तब आरोरा ने बिना उसकी ओर देखे ही उत्साह-हीन स्वर में कहा था—ऐसे ही नहीं, क्रान्ति की रक्षा करने जाऊँगी। और तीव्र गति से बाहर निकल गई थीं।

बन्दरगाह पर, स्त्रियों, बच्चों लड़कों और वृद्धों की कतारें खड़ी थीं। आठ दस तुर्की सैनिक उनका या उनके पासपोर्ट का निरीक्षण कर रहे थे। जिसकी आयु के विषय में उन्हें सन्देह होता, उसे वे अलग कर लेते थे और बाक़ी उनकी अनुमति लेकर सामने गुठी हुई अमेरिकन डोंगियों में बैठकर जहाज़ों की ओर चले जा रहे थे...

कार्ल और आरोरा भी उसी कतार में जाकर खड़े हो गये और बिना उत्साह और औत्सुक्य के जहाज़ों के मस्तूलों की ओर देखने लगे..

• • •

एण्टनी फिर छत पर खड़ा था। आग बहुत पास आ गई थी, एण्टनी के माथे पर, उसके ताप से जो स्वेद-बिन्दु उत्पन्न होते, साथ-ही-साथ उसी ताप के कारण सूखते भी जा रहे थे...

उसके एक हाथ में लिफाफा था, और दूसरे में एक छोटा-सा पत्र ..

तुमने मेरा अपमान किया है, मैं इसीलिये तुम्हें छोड़ कर चली जा रही हूँ। क्रोध में जा रही हूँ, ऐसे ही वियोग सहन हो सकेगा। बाद—बहुत बाद! रोलेंगे, जब क्रान्ति हो चुकेगी।

लिफाफे में अपने बालों की एक लट काटकर रख जाती हूँ। मैं क्रान्ति की हूँ, तो इसे तो रख ही लेना?'

पत्र एण्टनी के हाथ से गिर पड़ा। उसने लिफाफे में से वह सुनहली लट निकाली और विमनस्क भाव से बार-बार उसे अपनी उँगली पर लपेटने और खोलने लगा..

फिर एका-एक रुककर उसने पत्र उठाया और उसमें लट लपेटकर लिफाफे में डाली और लिफाफा अन्दर जेब में रख लिया..

फिर वह उतरकर घर में आया और डायरी लेकर लिखने बैठ गया..

'जीवन तीव्र और अनवरुद्ध गति से बढ़ता जा रहा है और मैं मूर्ख की तरह उसके साथ कदम मिलाकर चलने की निष्फल चेष्टाकर रहा हूँ. पैदल आदमी सरपट दौड़ते घोड़े से कदम मिलाये!

पर क्या? जीवन के साथ नहीं चल सकता, तो जिधर जीवन की गति है, उस दिशा में तो जा सकता हूँ। मैंने अरोरा को स्वेच्छा से जाने दिया है, स्वयं भेजा है...

मैंने अपनी सामर्थ्य के परे हाथ बढ़ाया था ..पर बिना अपनी सामर्थ्य के बाहर हाथ बढ़ाये क्रान्ति नहीं हो सकती।

मेरा जीवन सम्पूर्ण हो गया है। आरोरा, मैं तुमसे विदा लेता हूँ; पर अब तुम मेरी कौन हो, जिससे विदा लूँ?

नहीं, अभी मेरा एक काम बाकी है—अभी क्रान्ति सम्पूर्ण नहीं हुई...मैं बलिदान कर चुका हूँ; पर अभी प्रसाद नहीं मिला...'

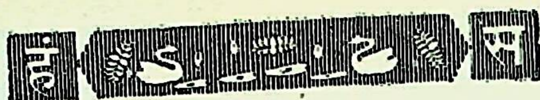
• • •

आग स्मर्ना नगर का विनाश करके बुझ चुकी थी।

क्रान्ति की ज्वाला मिटिलीनी टापू से बढ़ती हुई ग्रीस भर में फैल चुकी थी। कान्स्टेन्टाइन देश छोड़कर भाग गया था। हवाईजहाज आकर नई सरकार के फरमान बाँट गये थे।

किन्तु आग से बचे हुए लोग अभी स्मर्ना में पड़े विधि के विधान की प्रतीक्षा कर रहे थे......

और क्रान्ति की ज्वाला से बचे हुए क्रान्ति-शत्रु अभी तक षड्यन्त्र रच रहे थे।...



और विजयी तुर्क विजय से सन्तुष्ट न होकर बन्दरगाह पर एकत्र होकर पानी में काँटे डाल रहे थे। डूबे हुए ग्रीक शवों को खींच-खींच कर निकालने के लिये—उनके शरीरों पर के आभूषण, धन, कपड़े तक उतार लेने के लिए। ..

नभ में उषा नाच रही थी। एण्टनी बन्दरगाह पर, पोर्ट-भवन के बाहर खड़ा एक फेहरिस्त देख रहा था, जो कि उसी वक्त लगाई गई थी। यह क्रान्ति-पक्ष की आहुतियों की सूची थी।

एण्टनी के पैरों में साँकलें पड़ी हुई थीं, वह तुर्की राजबन्दी था, और भागकर यहाँ आया था। एण्टनी का शरीर थकान से चूर हो रहा था, मुख दुःख और क्लेश से पीला पड़ गया था—वह स्मर्ना से अंगोरा पर और कैदियों के साथ कुली के काम में लगाया गया था। एन्टनी का अपना कोई नहीं था, जिसकी वह चिन्ता करता ; पर इतने दिनों से कार्ल का कोई समाचार नहीं आया था . और आरोरा का पता नहीं था।...

एन्टनी की दृष्टि एक नाम पर अटक गई ; पर न जाने क्यों उसे कोई धक्का नहीं लगा, विस्मय ही नहीं हुआ।...

'एन्टनी स्टेरास मिटिलीनी के विद्रोह के समय हवाईजहाज़ के गिर जाने से, २ अक्टूबर !'

एन्टनी ने शून्य भाव से कहा—कार्ल...' और फिर निरुद्देश्य-सा आगे पढ़ने लगा।

'नाम हीन मृत्युएँ !'

कियोस द्वीप में, सैनिक बारक में एक पुरुष, आयु लगभग २३, मृत्यु का कारण अज्ञात...मेसिडोनिया में .. सलोनिका बन्दरगाह पर...

एन्टनी चौंककर रुक गया—फिर एक साँस में जोर से पढ़ गया।

'एक युवती, आयु लगभग १७ वर्ष, कपड़ों में एक पुराना पास-पोर्ट, जिसमें एन्टनी का नाम लिखा हुआ है। युवती के शरीर पर आठ गोलियों के घाव हैं !

एन्टनी धीरे-धीरे वहाँ से हटकर घाट के सिरे पर आ गया... यहाँ उसकी ओर ध्यान देनेवाला कोई नहीं था... केवल पाँच-सात तुर्क पानी से मुर्दे निकाल रहे थे .....

एन्टनी ने जेब में से अपनी डायरी निकाली। क्षणभर उसकी ओर देखता रहा। फिर उसने वह पृष्ठ निकाला, जहाँ उसने अपनी प्रतिज्ञा लिखी थी, और एक बार प्रतिज्ञा पढ़ गया—'मैं एन्टनी स्टेरास प्रतिज्ञा करता हूँ......'

फिर एकाएक बोला—एन्टनी तो मर चुका !

और डायरी समुद्र में फेंक दी।

फिर उसने जेब में से एक लिफाफा निकाल कर उसमें से बालों की लट निकाली। नवोदित सूर्य्य की किरणों में उसका सुनहलापन और भी अधिक शोभित हो गया। एन्टनी कुछ देर उन्हें सूँघता रहा, फिर उसने उसका एक बाल निकाला, और उसे सूर्य्य के सामने रख कर, क्षणभर देखता रहा, और छोड़ कर समुद्र की ओर उड़ा दिया...

इसी प्रकार एक के बाद एक...एक के बाद एक बाल...

जब सब समाप्त हो गये, तब धीरे से बोला—मेरी आरोरा गई, अब क्रान्ति की आरोरा है......

आकाश में हवाईजहाज मँडरा रहा था, उससे पर्चे गिराये जा रहे थे। दो-चार लोग चिल्ला रहे थे—सुनो, सुनो, ग्रीस के सब राजबन्दी छूट गये .....

एन्टनी ने एक लम्बी साँस ली, और धीरे धीरे नगर पार कर, एक बड़े फाटक पर पहुँचा। यहाँ उसने घूम कर स्मर्ना नगर के भग्नावशेष को देखा, फिर अभिमान से सिर ऊँचा उठा कर, साँकल झनझनाता हुआ आगे चल पड़ा—उसी पथ पर, जिस पर से वह एक बार पहले दिग्विजय का भक्त, और सम्राटत्व का आकांक्षी होकर गुज़रा था, और जिस पर अब उसके लिए, एक-मात्र आशा, तुर्कों के हाथ प्राण दण्ड की आशा थी—तुर्की राज्य की राजधानी अंगोरा के पथ पर.....

चिकित्सा चन्द्रोदय, स्वास्थ्यरक्षा और शतक त्रय

पर

विद्वानों की सम्मतियाँ

सहेली

श्रीमान् पं० महेन्द्रनाथजी पाण्डेय, आयुर्वेदविशारद "सहेली" में लिखते हैं—यह पुस्तक (चिकित्सा चन्द्रोदय दूसरा भाग) वैद्यों के काम की तो है ही, वैद्यक से प्रेम रखने वाले साधारण गृहस्थ भी इससे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। वैद्यक सीखने वालों के लिये ज्वर पर इससे उमदा पुस्तक और मिल ही नहीं सकती।......यह पुस्तक जितनी सुन्दर लिखी गई है जनता भी वैसे ही उसका आदर कर रही है।...... इस पुस्तक को पढ़ कर साधारण पढ़ा-लिखा मनुष्य भी ज्वर-चिकित्सा में निपुण हो सकता है। गृह-चिकित्सा के लिए वैद्य डाक्टरों को व्यर्थ धन देने से बचने के लिए, प्रत्येक गृहस्थ को यह पुस्तक अपने पास रखनी चाहिये तथा अधकचरे वैद्यों को चिकित्सा चन्द्रोदय मँगा कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

जागरण

उपन्यास-सम्राट्, माधुरी के भू० पू० सम्पादक एवं 'हंस' और 'जागरण' के सम्पादक, श्रीमान् प्रेमचन्दजी महोदय 'जागरण' में लिखते हैं—पुस्तक (चिकित्सा चन्द्रोदय) बहुत ही उपयोगी और प्रामाणिक है। गृहस्थों के लिए ही नहीं, वैद्यों के लिए भी लाभदायक है। इसे हम आयुर्वेद की इन्साइक्लोपीडिया कहें तो अनुचित नहीं।

हंस

श्री हरिदासजी वैद्य हिंदी साहित्य-संसार में बहुत वर्षों से प्रसिद्ध हैं। आपने विविध विषयों पर पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित की हैं। आप का अभी तक का सब काम सुवर्ण की तरह आभा वाला और मूल्यवान है। 'स्वास्थ्यरक्षा' या 'तन्दुरुस्ती का बीमा' लिख कर आप विख्यात हो गये हैं।

आपने अपने जीवन भर के अनुभव को एकत्र कर के इधर 'चिकित्सा चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थ लिखा है। जो लगभग ४-५ हज़ार पृष्ठों और सात भागों में समाप्त हुआ है। आपके इस ग्रन्थ के विषय में अनेक विद्वानों की राय है कि इतना बड़ा, खोज पूर्ण, डाक्टरी हकीमी आदि ग्रन्थों का पाठ करके तुलनात्मक दृष्टि से लिखा हुआ ग्रन्थ, देश में दूसरा नहीं है।

मुझे ठीक याद है, कि एक बार (राजा मोतीचन्दजी साहब के भाई) बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने, अपने से मिलने को आये हुए एक वैद्य की योग्यता का माप करते हुए कहा था—'चिकित्सा चन्द्रोदय' आपको अवश्य पढ़नी चाहिए।

प्रत्येक वैद्य को तो इसका संग्रह करना ही चाहिए। धनीमानी सज्जनों से भी हमारा आग्रह है, कि इसकी एक-एक प्रति मँगाकर उन्हें अवश्य अपने घर में रखना चाहिए।

राजपूत

श्रीमान् कुँवर सोहनसिंहजी सैंगर 'चन्द्र' सम्पादक 'राजपूत' लिखते हैं—वैराग्य शतक:......वैसे तो महाराजा भर्तृहरि के तीनों शतक हिन्दी में कई बार विभिन्न लेखकों द्वारा अनूदित हो चुके हैं। किन्तु यदि हम कहें कि सफलता हरिदासजी के अनुवाद को ही मिली है, तो इसमें अत्युक्ति न होगी।......हमारी समझ में तो इससे अधिक सुलभ, सुन्दर और सरल अनुवाद भर्तृहरि के शतकों का हिन्दी में कोई दूसरा नहीं है।......जो लोग इधर-उधर के उपन्यास और किस्से-कहानी पढ़ कर अपने दुर्लभ जीवन के अमूल्य समय को यों ही बरबाद करते हैं, संसार के दुर्व्यसनों में पड़ कर अपना सर्वनाश करते हैं, उनसे हम अनुरोध करेंगे कि वे कम-से-कम एक बार तीनों नहीं तो केवल वैराग्य शतक का अवलोकन कर संसार और अपने जीवन के रहस्य को समझें। हमारा तो यह भी दृढ़ विश्वास है, कि वैराग्य शतक को पढ़े और हृदयङ्गम किये बाद मनुष्य को किसी आध्यात्मिक सांसारिक गुरु की आवश्यकता न रह जायगी।

समीक्षा* की आलोचना

लेखक—श्रीयुत प्रो॰ सद्गुरुशरण अवस्थी, एम॰ ए॰

अभी हाल में मुझे एक पुस्तक समालोचना के लिए मिली थी। इस पुस्तक में 'प्रसाद' जी के दो नाटकों की समीक्षा है। उनका नाम चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त है। ये आलोचनाएँ धारा-प्रवाह-रूप से 'सुधा' में निकल चुकी हैं। मैंने भी एक-आध खण्ड पढ़ा है; परन्तु यह समझ कर कि इन्हें पुस्तकाकार निकलना ही है, मैंने सम्पूर्ण आलोचनाएँ नहीं पढ़ीं।

एक बार मैंने एक आलोचना 'प्रसाद' जी के एक नाटक के सम्बन्ध में 'सुधा' में छपवाई थी। कदाचित् वह 'एक घूँट' नामक नाटक पर थी। यह आलोचना झाँसी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर निकली थी। वहीं, झाँसी में दो महीने पहले, मुझे 'सुधा' के फरवरी-अङ्क के कुछ पृष्ठ मिले। ये सम्मेलन में बाँटे गये थे। प्रस्तुत पुस्तक की 'चन्द्रगुप्त' नामक समीक्षा का आदि भाग उसी समय निकला था। मुझे भी एक मित्र ने वे पृष्ठ दिये थे और वहीं कृष्णानन्दजी से भी परिचय हुआ था। मैंने यह अनुमान किया था कि कदाचित् मैंने अपनी आलोचना में 'प्रसाद' जी की कुछ प्रशंसा की है, इसीलिये मुझे दूसरा पक्ष दिखाने की दृष्टि से यह समीक्षा दी गई है। मैंने बड़े मनोयोग से उसे पढ़ा था और आज एक बार फिर प्रस्तुत पुस्तक में इन समीक्षाओं को पढ़ा है।

चाहे दलबन्दी के कारण, चाहे अज्ञान के कारण, चाहे किसी लोभ के कारण, चाहे किसी भी अन्य कारण से हो, हिन्दी में समालोचना करने का ढङ्ग अभी बिलकुल बेतुका है। कुछ समालोचक तो आलोचना का केवल यही अर्थ समझते हैं कि पुस्तक की बुराइयाँ खोद-खोदकर निकाली जायँ। उन्हें पुस्तक में अच्छाइयाँ दिखाई ही नहीं देतीं। यह बड़े दुःख की बात है। आलोचक महोदय का पहला कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि पुस्तक का अध्ययन सहानुभूति के साथ करें। ऐसा न करने से हम कलाकार की आत्मा तक नहीं पहुँच सकते और उसकी कृति को ठीक-ठीक पहचान भी नहीं सकते। श्रीकृष्णानन्दजी ने 'प्रसाद'जी की कृतियों को सहानुभूति से आरम्भ नहीं किया। इस बात का मुझे खेद है। यदि लेखक में उन्हें सहानुभूति नहीं है, तो उसकी कृतियों को तो सहानुभूति के साथ ही पढ़ना चाहिए।

कृष्णानन्दजी की समीक्षा में, समीक्षा के कोई भी गुण नहीं हैं। उन्होंने एक नये पोथे को तो रच डाला; परन्तु उसमें सार बहुत कम है। उनके करीब-करीब सब आक्षेपों का उत्तर है, और उत्तर दिया जा सकता है; परन्तु यदि उनका उसी विस्तार के साथ उत्तर दिया जाय, तो एक दूसरी किताब की सृष्टि हो जायगी, जिसका मूल्य परिश्रम के सदृश कदापि न होगा, जैसा कि गुप्तजी की पुस्तक के विषय में कहा जा सकता है। कुछ बातें कृष्णानन्दजी ने उचित भी लिखी हैं; परन्तु विरोध की भावना में वे इतने वेग से बहते हैं कि तथ्यकथन में भी बेहद अतिरञ्जना आ गई है। समीक्षा की शैली बिलकुल बेढंगी है।

किसी ऐसी आलोचना में आशा की जाती है कि आलोचक कुछ निश्चित नाटकीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन करेगा और उनकी कसौटी पर नाटक को कसकर उसे अयोग्य ठहरावेगा। यह आशा की जाती है कि किसी अभिनय की समीक्षा में, अभिनय के तथ्यों के निरूपण करने के पश्चात् ही हम उसे अभिनय ठहरा सकते हैं, ऐसी कोई बात हम गुप्तजी की समीक्षा में नहीं देखते। 'प्रसाद'जी की भाषा के सम्बन्ध में कहीं कोई विवेचन नहीं है। यदि कोई बात 'प्रसाद'जी के नाटकों में खटकने वाली है, तो वह उनकी भाषा है और उस पर कुछ नहीं कहा गया है। हाँ, स्कन्दगुप्त की समीक्षा में एक-दो स्थलों पर व्याकरण की एक-दो भूलें दिखलाई गई हैं। समीक्षा का यह स्थल बड़ा ओछा और भद्दा है। कथानकों की क्रम-बद्धता अथवा उनका अक्रम स्वरूप, वे नाटक के उपयुक्त हैं अथवा नहीं; इन बातों की चर्चा कहीं है ही नहीं। दृश्य कैसे

---

* "प्रसाद' जी के दो नाटक' (समीक्षा) लेखक—श्री कृष्णानन्द गुप्त। प्रकाशक—गङ्गा-पुस्तकमाला, लखनऊ, मूल्य १), पृष्ठ १५६।

हैं, इसकी भी कोई सहेतुक व्याख्या नहीं की गई। प्रत्येक पात्र को अलग अलग लेकर उसके चित्रण की महत्ता अथवा हेयता नहीं दिखाई गई। जो क्रम समीक्षा में दर्शक की परिस्थिति से दिखलाया गया है, वह बेरंग और उखड़ा हुआ है। प्रत्येक पात्र के चित्रण को समूचा करने के लिए न जाने कितने दृश्यों के टुकड़े लेकर जोड़ना पड़ता है। 'समीक्षा' में कृष्णानन्दजी ने कहीं भी पूर्वीय अथवा पश्चिमीय नाटक के तत्त्वों का निरूपण नहीं किया है; अतएव उनके प्रकाश में चन्द्रगुप्त अथवा स्कन्दगुप्त की समीक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी में नाटकों की ज़रूरत है। 'प्रसाद'जी के पहले और बाद के नाटकों ने उस ज़रूरत को कैसा पूर्ण किया, यह कुछ नहीं है। दृश्य के बाद दृश्य वेग से अनुक्रमण करते हैं अथवा धीमी चाल से, इसका भी विवेचना अपेक्षित है। कलाकार का सन्देश क्या है, उसको उसमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसकी कहीं चरचा ही नहीं है। यत्र तत्र कथोपकथन की समीक्षा अवश्य की गई है; परन्तु पृथक् रूप से दोनों नाटकों के संवाद के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया है। अभिनय में दर्शक के रूप में बैठकर कृष्णानन्दजी ने प्रस्तुत समीक्षा की है। यह ढंग भी बुरा न होता; परन्तु चवन्नी वालों का मनोभाव लेकर नाटक की आलोचना न करनी चाहिए। यह नाटक एकदम अच्छा है, या एकदम बुरा है, यह मूर्ख ही कह सकते हैं। अच्छा होता, यदि दर्शक न बनकर पाठक बनकर गुप्तजी, 'प्रसादजी' के नाटकों की आलोचना करते। सापेक्ष समीक्षा की तो कहीं चरचा ही नहीं है। विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' की एक-आध स्थान पर चरचा है; परन्तु वह भी पूर्ण नहीं है। समता अथवा विषमता के निरूपण में अधिक विचार होने की आवश्यकता थी।

कृष्णानन्दजी की समीक्षा सिमट कर केवल एक सिद्धान्त में सीमित हो गई है। वह यह कि इतिहास के पात्रों के अनुरूप 'चन्द्रगुप्त' के पात्र नहीं हैं। इस सम्बन्ध में केवल एक बात निवेदन है। यह तो आपने स्वयं मान लिया कि इतिहास के पात्रों को, कवि को हेर-फेर करने का अधिकार है; क्योंकि ऐसा न करने से गोस्वामी तुलसीदास मूर्खता के संघ में भरती कर दिये जाते। फिर भी आपने अपने ही को भ्रम में डालकर जगह-जगह इतिहास—हाँ, जिनको आप इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थ समझते हैं—के उद्धरण देकर नाटक के पात्रों की हँसी उड़ाई है। आप का तर्क यदि गोस्वामीजी के सम्बन्ध में हो, तो कुछ इस प्रकार कहिए—'गोस्वामीजी को पुराने कथानकों को हेर-फेर करने का अधिकार था। वे रामायण के पात्रों को स्वतन्त्र सत्ता दे सकते थे, फिर भी देखिए, गोस्वामीजी ने परशुराम को विवाह के बाद न बुलाकर पहले बुलाया है, यह उनकी बड़ी भारी मूर्खता है। देखो, रामचन्द्रजी की शूरता का गोस्वामीजी ने कैसा पतन कराया है। वाल्मीकि के रामचन्द्रजी जहाँ लेटते हैं, पृथ्वी गुरुता के कारण धँस जाती है; गोस्वामीजी के रामचन्द्र सौम्य स्वरूप की सुकुमारता लिए स्त्रियों को लुभाते घूमते हैं, और स्त्री और भाई के लिए "बाला इव" विलाप करते हैं।' उसी साँस में कुछ इस प्रकार भी गुप्त जी कह सकते हैं—'गोस्वामीजी ने लक्ष्मण को कैसा वीर-ही वीर बना दिया है; इस उद्दण्ड बालक को सहृदयता छू भी नहीं गई है, इसमें भावों की सुकुमारता है ही नहीं।' ऐसे तर्क के समक्ष लिखा पढ़ी करना व्यर्थ है। एक तो जिन इतिहासों का समय-समय पर हवाला देकर कृष्णानन्दजी 'प्रसाद' जी के चित्रों को अनैतिहासिक बतलाते हैं, वे ही केवल इतिहास विश्व में उस विषय पर नहीं हैं। उसी सम्बन्ध के कई प्रामाणिक इतिहास मौजूद हैं। चरित्रों के निरूपण में विरोध भी है। अच्छा होता, यदि सुहृद्भाव से गुप्तजी 'प्रसाद' जी से स्वयं उनके आधार जान लेते और इतनी लम्बी-चौड़ी समीक्षा लिखने का कष्ट न उठाते। जानना यह है कि ऐतिहासिक आवरण के भीतर 'प्रसाद' जी ने जिन स्वरूपों को अङ्कित किया है, उनमें निश्छलता और निष्कपटता कहाँ तक है। अपने चरित्रों की केवलता में 'प्रसाद' का कुछ निजीपन है, जिसके कारण उनके पात्रों का स्थाई अधिकार हृदय पर जम सकता है, यह भी विचारणीय था। हमें उनके पात्रों को उसी कसौटी पर कसना है। कवि के आदर्श के अनुकूल इतिहास बर्ता जाता है, इतिहास की प्रणाली का कवि अनुगामी नहीं। कृष्णानन्दजी के अनुगामी यदि बहुत से समीक्षक हो गये, तो उनकी यह आज्ञा होगी कि पहले ऐतिहासिक नाटककार अपने इतिहास के कथानक को लिखकर उस पर विश्व के इतिहासकारों की सम्मति मँगा ले, और जहाँ तक सब एक

मत हों, वहीं तक का स्वरूप ग्रहण करके नाटक की रचना उसी के भीतर बढ़ाई जाय। यह व्यवस्था नितान्त असम्भव और मूर्खता से भरी हुई है।

एक स्थान पर समीक्षा में लिखा है—

'लेखक को मानवीय भावों के सूक्ष्म विश्लेपण का उतना ही ज्ञान है, जितना दसवें दर्जे के विद्यार्थी को जटिल रासायनिक सम्मिश्रणों के विश्लेषण का।'

भला, आज इस बात को कौन मानेगा? 'स्कन्दगुप्त' की समीक्षा में ये वाक्य कहे गये हैं। एकेडमी ने 'स्कन्दगुप्त' को सर्वश्रेष्ठ नाटक समझ कर उसे पुरस्कृत किया है। बड़े-बड़े विज्ञ निर्णायकों का यह फैसला था।

गुप्तजी हृदय पर हाथ रखकर स्वयं अपनी उक्ति का निर्णय करें और आत्म-निरीक्षण-द्वारा पक्षपात के विरोध को दूर करें। क्या उक्त दोनों ग्रन्थों में कोई भी ऐसी बात नहीं मिली, जिसकी सुन्दरता गुप्तजी पर असर करती। यदि मिली, तो सद्-समीक्षा के नाते उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया?

आलोचना का मुख्य ध्येय आलोच्य ग्रन्थ की खूबियों को दिखाना और कलाकार के हृदय से पाठकों को परिचित कराना है; भूलों की ओर ध्यान दिलाना गौण काम है। एक-आध वाक्य, एक-आध विचार, एक-आध दृश्य, एक-आध उक्ति, एक-आध पात्र, एक-आध संवाद और एक-आध कविता, दोनों नाटकों में ज़रूर ऐसी मिली होगी, जिसकी श्रेष्ठता पर खड्ग-हस्त गुप्तजी का भी मस्तक झुका होगा; परन्तु उसका उल्लेख न करके समीक्षा की निस्सारता का गुप्तजी ने स्वयं प्रमाण दे दिया है। यदि किसी विशेष कारण से ऐसी समीक्षा लिखने के लिए गुप्तजी बाध्य थे, तो हमें इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहना है कि यह बुद्धि-व्यभिचार ठीक नहीं; परन्तु यदि वास्तव में गुप्तजी ऐसा ही अनुभव भी करते हैं, तो उन्हें अपनी समीक्षा-वृत्ति का संस्कार किये बिना कलम नहीं उठाना चाहिए। गुप्तजी भाषा लिख सकते हैं, उन्होंने कुछ बातें उचित ही कही हैं; परन्तु अनर्गल उक्तियों के ढेर से उन्हें अलग रखना बड़ा दुस्तर कार्य है।

एक बार

कब से व्याकुल अंधकार में बैठा, मार्ग रहा हूँ देख;
एकबार ही आ दिखला दे, जीवन में प्रकाश की रेख!

इतना-सा प्रकाश, बस जिसमें, 'अपनापन' पहचान सकूँ;
इतना-सा प्रकाश-बस जिसमें, अपना 'पथ' ही जान सकूँ!

समझ सकूँ—हैं कहाँ मार्ग में काँटे और कहाँ कलियाँ?
कितना चला और चलना है कितना, यह पहचान सकूँ!

इतना-सा उपकार, अरे बस, इतनी-सी करुणा कर देख;
एक बार ही आ दिखला दे, जीवन में प्रकाश की रेख!

कब से व्याकुल अन्धकार में, भटक रहा हूँ मैं पथ भूल;
एक बार तो हाथ पकड़ कर, पहुँचा दे 'जीवन के कूल'!

एक बार—बस एक बार ही, मैं निज तट चुम्बन कर लूँ;
एक बार—बस अपनी सीमा, जीभर आलिंगन कर लूँ।

ठहरा सकूँ पैर, क्षणभर को, इतनी-सी करुणा कर दे;
एक बार आगे बढ़ने का, मैं साँसें संचय कर लूँ!

फिर तो आ तुझको पा लूँगा, ले लूँगा चरणों की धूल;
एक बार—बस हाथ पकड़ कर, पहुँचादे जीवन के कूल।

— कालीप्रसाद 'विरही' —

द्वन्द्व

लेखक—श्रीयुत जनार्दन राय

ताँगे में दिन-भर रगड़-पट्टी करके धोलू के घोड़े थक गये थे । उनके हाड़-पंजर शरीर में धौंकनी की तरह साँस फूल रही थी और धोलू नीचा मुँह किये कद्दू की मालिश कर रहा था । चारों ओर पाप की कालिमा की तरह अँधेरा छाया हुआ था । जब धोलू पसीने से तर हो चुका, तो हाथ में चिमनी लिए हुए खड़ी हुई गृहिणी ने कहा—लद्दू की भी तो करना है ! क्या अकेले कद्दू पर ही शरीर थका डालोगे ?

धोलू ने भर्राई हुए आवाज में उत्तर दिया—कद्दू न होता, तो आज चार आने भी न मिलते, यह हराम का पिल्ला अध रास्ते में खड़ा हो गया और एक रुपए की सवारी चट से नीचे उतर गई—क्या करती ?

गृहिणी ने चिमनी तेज करते हुए कहा—कोई लेने-वाला हो, तो बेच क्यों नहीं देते ?

'फिर क्या करूँगा ? हाथ-पर-हाथ रखकर तो बैठा नहीं जायगा । फली हुई गृहस्थी है । न कमाऊँगा, तो तुम लोगों को दो जून कहाँ से खिलाऊँगा ? मान लो, इसे बेच दूँ, तो फिर दूसरा टट्टू भी तो चाहिए ?'

'थोड़ा-बहुत तो इससे आ जायगा और बाकी का करजे पर और निकलवा लेना । अबकी अगर भगवान ने किरपा की तो सब मंगल होगा ।'—गृहिणीने शान्ति से उपाय बतलाया ।

लद्दू को हाथों से ठेलते हुए धोलू ने गरज कर कहा—करजे का नाम न लेना ! फिर उस बेईमान बनिए के जूते चाटूँ क्या ? अगर पचास का करजा न लिया होता, तो आज ये दिन न आते । न जाने तुम्हारी क्या मत हो गई थी कि ताँगा खरीदने के लिए आसमान सिर पर उठा लिया । बाप-दादों का दिया हुआ खेत था, मजे में जो पैदा होता था, खाते थे और आराम करते थे ; पर आज खेत गिरवी रखकर ताँगा मोल लिया और अब नानी याद आती है ।

गृहिणी की आँखों में विवशता झलकने लगी । आँसुओं के रूप में हृदय की निर्बलता बह उठी । आज एक बरस हो गया, उसकी जिद पर धोलू ने अपना लहलहाता खेत गिरवी रख कर ताँगा खरीदा था ; परन्तु अब भाग्य की अकृपा के कारण ताँगा भार हो गया । धोलू उसे उठते-बैठते, कोसने लगा—तुम्हारे ही कारण मेरी फुलवाड़ी उजाड़ हो गई !—ये वाक्य उसके दिल में हजार-हजार बरछियों से लगते थे । आखिर दिल था, मसोस-मसोस कर रह जाती । पत्थर तो थी नहीं, कि कीलें चुभने पर भी आह न करती ! माना, उसके हृदय पर आवरण पड़ा था । जीवन में उसने गरीबी से मैत्री की थी । अत्यन्त कातर होकर उसने कहा—तो अब क्या होगा ?

'क्या होगा ?'—धोलू ने जवाब दिया –'कल कोत-वाली के नीचे जाकर ताँगा नीलाम करूँगा । आखिर जोड़ी का ताँगा है—५०), ६०) तो मिलेंगे ही । जाकर उसके सिर में मारूँगा और कहूँगा मेरा खेत मुझे दे दो ।

गृहिणी ने सान्त्वना की आह भरी और घोड़ों को थान में बाँधने ले गई ।

गृहिणी के जाने के बाद धोलू ने सतर्क होकर इधर-उधर देखा और धोती को खोलकर एक बहुत खूबसूरत मनीबेग निकाला । हाथ काँप रहे थे और उस न्यास अँधेरे में उसको हजारों आँखें ताकती हुई दिखाई देती थीं । उसने उसको खोलने का प्रयत्न किया ; परन्तु असफल रहा, क्योंकि उसके पेचदार खटकों ने उसको एक बार ही चौंधिया दिया ।

थोड़ी देर वह सोचता रहा । कदाचित् हृदय में युद्ध ठना था । दूबेजी के उपदेश एकबार ही उठ खड़े हुए थे—चोरी गोहत्या के बराबर है । एक बार उन्होंने सभा में भी कहा था—चोरी करने वालों को नरक में बड़ी-बड़ी यात-नाएँ भोगनी पड़ती हैं । दूसरी ओर रहमतखाँ की सफलता उसको अपनी ओर खींच रही थी । रहमत एक आँख से घोड़े की पूँछ देखता और दूसरी आँख से मुसाफिरों की जेबें । अपनी उस्तादी से जो कुछ हाथ में आता उड़ा लेता । वे दोनों जिगरी दोस्त थे ; परन्तु एक हिन्दू-संस्कृति में पला हुआ था, और दूसरा बर्बरताओं की रक्षा में सींचा

गया था। दोनों दिलो-जान थे ; परन्तु एक पाप से डरता था, दूसरा पाप को चिउँटी समझे हुए था। अक्सर ताँगे वालों के समूह में बैठे-बैठे धोलू और रहमत के बीच इसी विषय पर बहस होती थी। यहाँ तक कि सब ताँगे वाले रहमत की ओर हो जाते और कहते—धोलू! रहमत दादा ने दुनिया देखते-देखते बाल पका दिये हैं, तुम जीत नहीं सकते। दुनिया में न्याय और धरम कहने की बातें हैं।

धोलू अपने आत्म-विश्वाश को आगे रखता और कहता—जिस दिन न्याय और धरम की शरण छोड़ेंगे, उसी दिन हमारी-तुम्हारी खैर नहीं। भगवान न्याय और धरम के आसन पर बैठता है। कम-से-कम मुझे तो ईश्वर खोटे काम करने से बचाए।

लोग चुटकियाँ लेते, पीठ ठोंकते और हा-हा, ही ही करके धोलू को चुप कर देते। आखिर कुसंगति और रात दिन की गरीबी ने धोलू को डिगा दिया। आज शाम को जब एक मारवाड़ी को वह बाहर हवा खिलाने ले गया, तो चुपके से उसका मनीबेग उड़ा लिया। उस समय भय और ग्लानि से उसका गला भर आया ; परन्तु धीरे-धीरे तर्क ने उदित होकर थोड़ी देर के लिए उसके आत्म ज्ञान को दबा दिया—ये लोग जो मोटरों पर चढ़े फिरते हैं, क्या सब धरम के पुतले हैं ? जो भैंसे की तरह खाकर थेटर जाते हैं, चकलों में बगलें बजाते हैं, क्या ईश्वर के नाम से डरते हैं ? क्या ईश्वर यह सब नहीं देखता ? यहाँ तो पसीना बहाते-बहाते मरे जाते हैं ! धरम-धरम करते-करते पिसे जाते हैं। दाने-दाने को मोहताज हैं। रात-दिन मजूरी करते हैं और खाने को दोनों जून सूखो रोटियाँ मिलती हैं ! देखो, रहमत कैसी मौज करता है ! दिन भर में तीन-चार तो ताँगे से पैदा करता है और ऊपर से तीन-चार और झटक लेता है। कई घोड़े दो-दो महीने में मर गये, फिर भी चैन से कटती है ! और यहाँ तो खेत से हाथ धोये और ताँगा भी एक-दम टुटहा मिला। ऊपर से बनिये के तकाज़े। फिर मान भी लो, यह सब अनीति का काम है, तो क्या मेरे न करने से ही धरम की रच्छा हो सकती है ? दूबेजी कहते तो ठीक हैं ; पर वे खुद भी तो वैसा नहीं करते। कहते हैं—चोरी मत करो। खुद माँगने जाते हैं, तब एक-न-एक चीज उठा ही लाते हैं। नहीं, रहमत दादा ठीक कहता है, हम गरीब हैं, इसलिए हमें चोरी, खून और डाका डालने का अधिकार है। न्याय, दया, धरम तो मोटी-मोटी तोंद वालों के लिए हैं, जो खून में पैसे का दरखत उगाते हैं !

• • •

दूसरे दिन तक वह अपनी गृहिणी से मनीबेग छिपाये रहा ; परन्तु वह नया खिलाड़ी था। अखाड़े में आकर पैंतरा बदला ; परन्तु डर बना रहा। दुपहर में जब रोटी खाने आया, तो किवाड़ बन्द कर लिये और मनीबेग रेवती के हाथ में देकर बोला—देख, यह क्या है ?

रेवती ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—यह तो अँगरेजी बटुआ है, कहाँ से लाये ?

धोलू चुप रहा। उसकी आँखों में विद्रोह था। शील की रेखाएँ मक्कारी में बदलने लगी थीं। प्रामाणिकता की जोत बुझ गई थी और मस्ती की जगह भय और चिन्ता ने ऊधम मचाना प्रारंभ कर दिया था।

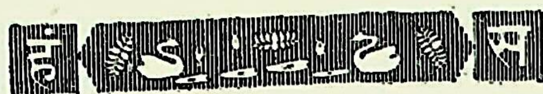
रेवती ने बटुआ खोल डाला, और उलट दिया। झन-झन करते हुए चाँदी के कितने हो गोल-गोल टुकड़े झन्ना उठे। साथ ही में कागज़ों की अच्छी-सी तह सरक आई। धोलू सतृष्ण आँखों से उन्हें गिनने लगा।

रेवती दिग्मूढ़ थी। पाप का धन देखने में उसकी आँखें अभ्यस्त न थीं। पसीने की कमाई उसके नयनों की शान्ति थी, हृदय की खुराक थी। और इसीलिए उसे यह समझते हुए देर न लगी कि उसके स्वामी ने चोरी की है।

धोलू ने उल्लास से कहा—दस-दस के दस नोट हैं और ३०) नकद हैं। मैदान मार लिया है। अब, आज जाकर पूरनमल से कहूँगा—बचा, मेरा खेत मेरे हवाले कर दे।

रेवती ने तीव्रता से कहा—ये रुपए जहाँ से लाये हो, वहीं रख दो ! और खबरदार, आगे किसी के जेब काटने पर उतारू मत होना, नहीं तो मैं जहर खा लूँगी। हाय ! क्या यही दिन देखने के लिए मैं बची थी, कि पाप के धन से जिन्दगी के खेत में सुख के बीज बोऊँ। यह न होगा।

धोलू थोड़ी देर तो हक्का-बक्का बैठा रहा, फिर सारे साहस को बटोर कर बोला—पाप-पाप दुनिया में कहने की बात है, रेवती ! दुःख के दिन कभी नहीं बीतते। और दुनिया में जब पाप की ही बाजी लगी है, तो फिर मैं अकेला



ही धर्म के नाम पर अपना गला क्यों कटाऊँ। यदि पाप-पुण्य होता, तो घास-फूस की झोपड़ी में दिन न काटने पड़ते, सूखी रोटियाँ खाकर आँतें न दुखानी पड़तीं। जो लोग फरेब करते हैं, दगाबाज़ी करते हैं, वे ही मौज़ लूट रहे हैं। देख पूरनमल को, गला काटता है और लाखों बटोरता है।

रेवती की आत्मा खौल उठी, उसकी आँखों में पुण्य की प्रभा दमक उठी, वह गरज कर बोली—तो मेरा और तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है। पाप के सोतों से भरा हुआ पानी पीकर मैं अपने तीनों भव नहीं बिगाड़ सकती।

धोलू ने हँसकर कहा—तो क्या दूसरा घर करेगी? ज़रा यह तो सोच कि आख़िर मैंने यह पाप किसके लिए किया?

रेवती छाती पकड़ कर नीचे बैठ गई। धोलू का व्यंग काम कर गया था। हाय! उसने क्या नहीं किया, अपने स्वामी का घर-बार उजड़वाया और उपर से उसको पापी भी बनाया। अगर उस दिन वह खेत में घास काटते-काटते जिद्द न करती, तो आज यह दिन न देखना पड़ता। धोलू ने मूँछों पर ताव दिया और कहा—बस, अब पौबारह हैं, खूब लूटूँगा और मजे उड़ाऊँगा। रेवती, अगर तू धर्म के पी सती होना चाहती है, तो भले ही कष्ट उठा; मगर मैं तो रहमत मियाँ के गिरोह में रहूँगा। इतना कहकर वह बाहर आया और घोड़ों को चाबुक जमाकर चलता बना। रेवती ठंडी आहें भरती हुई वहीं पड़ी रही। अन्त में जब बहुत दुःख हुआ, तो फूट-फूट कर रोने लगी।

एक दिन धोलू बैठा-बैठा अफीम घोल रहा था, कि रहमत मियाँ आये। अलाव जल रहा था, बैठ गये और बोले—धोलू, एक काम करोगे? धोलू ने देखा, रहमत मियाँ की बातें पेचीली हैं। बोला—कहो न दादा, ऐसा कौन काम है, जो इतना आगा-पीछा कर रहे हो?

रहमत ने कहा—जरा रेवती को तो घर भेजना। हुसेन बुखार में बेसुध पड़ा हुआ है। देखभाल करे।

'यह कौन बड़ी बात है, दादा!'—धोलू ने जवाब दिया—'पर वह शायद ही मंजूर करे।'

रहमत ने हँसकर कहा—ऐसी कौन सती है रे, जो मेरे घर आते भी ठमकती है! क्या, भूल गई वे दिन, जब इधर-उधर ठोकरें खाती फिरती थी। मुझसे पूरनमल ने कहा था कि रेवती ने उससे अपना खेत वापिस माँगा था। पूरनमल ने कहा—खेत तुम्हारे इस...... पर न्यौछावर है—इस पर वह हँसकर चली आई थी।

धोलू के हाथ से अफीम की डली छूट गयी—क्या कहते हो दादा, मेरी रेवती ऐसी नहीं है। तुम्हारी अक्ल सठिया गई है क्या!

रहमत झेंपनेवाला जीव न था। जेब काटते, दूसरों की बहू-बेटियों पर कुदृष्टि डालते, उसने जीवन बिताया था। बोला—धोलू! एक बार रेवती को मेरे यहाँ भेज दो, तो तुम्हारे खेत छुड़वा दूँ।

पाप का भार तो लद गया था; परन्तु इस भयंकर आँधी ने उसको लुढ़का दिया। धोलू गरज उठा—दादा! आज तक तुम्हारा अपमान नहीं किया, जिस दिन से तुम्हारे गिरोह में मिला हूँ, तुम्हारा हरेक हुक्म सिर-आँखों पर चढ़ाया; पर यह नहीं हो सकता! बस, अब तुम मेरे घर से चले जाओ, इसी में भला है!

रहमत की आँखों में जनून जाग उठा। मित्रता की लाली नष्ट हो गई। उस्तादी के बन्धन ढीले हो गये। बोला—बचा, याद रखना, बरसों सड़ा दूँगा! तुम्हारी चोरी मेरे हाथ में है—सूअर कहीं का!

वह भी अब पापी था। पाप के कामों ने उसमें आग पैदाकर दी थी। दबना भूल गया था। ठोकर खाकर संभलना भूल गया था। बलवान के सामने झुकना भूल गया था और यह भूल गया था कि रहमत उसको जेल की हवा खिला सकता है। तन कर बोला—जा, चला जा पाजी, तेरा जी आवे सो कर लेना, मैं तेरी ज़रा भी परवा नहीं करता!

रहमत घायल सिंह की तरह दहाड़ कर चला गया।

• • •

दूसरे दिन से धोलू का ताँगा खाली ही घर आने लगा। जहाँ सवारी बैठती, रहमत आकर बहकाता—सरकार, दुष्ट घोड़े हैं, बीच ही में रख देंगे। सवारी उतर जाती। धोलू का खून उबल उठता; परन्तु कहता—रहमत, तुमसे खुदा निपटेगा।

एक दिन पूरनमल ने आकर कहा—धोलू, मेरा हिसाब कर दो। तुम्हारे खेत की रखवाली करते-करते मैं हैरान हो

गया हूँ। पचास रुपये क्या दिये, जान आफत में आ गई !

दिन-भर सवारी न मिलने से धोलू झुँझलाया हुआ था, बोला—कितना हुआ है तुम्हारा हिसाब ? तुमने मेरे खेत की जो रच्छा की, वह मैं जानता हूँ !

पूरनमल ने हिसाब लगाकर कहा—दस आने सैकड़ा के हिसाब से पाँच साल के ८०) रुपये लाओ ; नहीं तो मैं खेत गिरवी रखता हूँ।

धोलू ने कहा—मेरे पास तो अभी फूटी कौड़ी भी नहीं है।

पूरनमल ने त्यौरी बदल कर कहा—नहीं है, तो मैं क्या करूँ ? घर-बार नीलाम करवा के वसूल करूँगा !

धोलू डरा कि कहीं फजीहत न हो। उठ कर अन्दर गया और दस-दस के आठ नोट निकाल कर पूरनमल को दे दिये। पूरनमल ने आश्चर्य से देखा, कि इस भिखमंगे के पास नये-से नोट कहाँ से आये ? कहीं हाथ तो नहीं साफ़ किया ?

घर पर आकर उसने स्नान किया। पगड़ी बदली और थाने में जाकर नोट थानदार के सामने रख दिये। बोला—हजूर ! नोटों के पीछे कुछ लिखा हुआ है। ये नोट मुझे धोलू ताँगेवाले से मिले हैं !

थानेदार ने नज़र गड़ाकर पढ़ा—'साहूचन्द जौहरी'। उसने अहलमद को बुला कर पूछा—साहूचन्दजी की उस रिपोर्ट की क्या काररवाई हुई ?

अहलमद ने कहा—मनीबेग का पता नहीं लगा। नम्बर आये हैं। अभी तक जाँच चालू है।

थानेदार उठ खड़े हुए। साथ में चार कान्स्टेबुल लिये और धोलू के घर पर जा धमके।

धोलू आनन्द में मग्न था। वह अपने लहलहाते खेत का स्वप्न देख रहा था। सोच रहा था—खेती से जो कुछ आमदनी होगी, उससे जो मिलेगा खाएँगे और ईश्वर का भजन करेंगे। उसके हृदय की चिन्ता नष्ट हो गई थी और पिछली उसकी धार्मिक प्रवृत्तियाँ बिजली की भाँति सजीव हो उठी थीं। वह सोच रहा था—उस दिन अगर चोरी न करता, तो आज खेत कैसे छूटते ? चोरी करने से शान्ति मिलती हो, दुःख कटते हों, धरम जाग उठता हो, तो भला उसके करने में क्या नुकसान है ? रेवती भय- विह्वल होकर कह रही थी कि भगवान् पाप का बदला दिये बिना नहीं रहता। उसका न्याय दूध का दूध और पानी का पानी है !

इतने में थानेदार ने आकर कहा—धोलू ! तुम जैसा ईमानदार आदमी चोरी करे, यह शर्म की बात है ! इस इज्जत गँवाने के बजाय मर जाते, तो अच्छा था।

धोलू खड़ा हो गया और बोला—हजूर ! महीने के सौ मिलते हैं, इसलिये ये नसीहत दे रहे हैं। यहाँ तो दिनभर पसीना बहाते हैं, तब कहीं जाकर आठ-दस आने के पैसे कमाते हैं। और ऊपर से आपस की ईर्ष्या और द्वेष तबाह कर देते हैं। दो पैसा पास में हो, तो मैं भी ईमान की दुहाई दिये बिना न रहूँ ; परन्तु यहाँ बनियों के सितम से, पेट की आग से, छुट्टी ही कहाँ मिलती है, जो आपकी तरह ईमान की बाँग देता फिरूँ।

धोलू की पावनता जैसे उमड़ रही थी। गरीबी की शान्ति और सन्तोष को उसने धन के गिरोह में जाकर पह-चान लिया था। पापी था ; परन्तु पाप की बुराई से अन-भिज्ञ न था। चोर था ; परन्तु जानता था—यह चोरी, उन्हीं के कारण वह कर रहा है, जो उसे भरपेट रोटी तक खाने को नहीं देते !

थानेदार ने हथकड़ी कसी और बोला—मुझे नसीहत देने के पहले खुद की सोच ले हरामजादे !

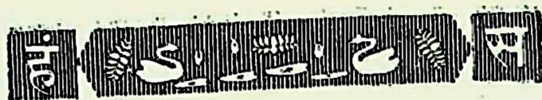
रेवती ने झपटकर थानेदार को जोर से थप्पड़ रसीद किया और गरज उठी—मियाँ, जबान को काबू में रक्खा करो ! हम गरीब हैं, इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारी ठोकरों को सहते जायँ। तुम लोग हमारी हड्डी और मांस की खाद से अपना खेत लहलहाते हो !—रेवती शिक्षिता नहीं थी, गँवार औरत थी ; परन्तु बोलना जानती थी।

थानेदार ने रेवती को लात जमाई और बोला—पकड़ो सूअर की बच्ची को !

रेवती ने इस बार चूँ तक न की। हथकड़ी-बेड़ी पहने पति-पत्नी कठघरे में जा बैठे।

धोलू ने कहा—रेवती, घर किसके भरोसे रहेगा ! बाल-बच्चे किसके यहाँ रहेंगे ? तू जाकर थानेदार से माफी माँग आ।

रेवती ने गर्व से कहा—चाहे घर में आग लग जाय, बाल-बच्चे मर जायँ ; पर मैं हरगिज पापियों के सामने नहीं



झुकूँगी। क्यों झुकूँ? मैं ईश्वर को पहचानती हूँ। उसकी कृपा की घनी छाँह मुझे पाप से बचाए हुए है। क्षमा तुम माँगो!

धोलू चुप हो गया। दूसरे दिन उसको तीन महीने की सजा सुना दी गई। और रेवती को एक महीने तक पत्थर ढोने का काम दिया गया!

• • •

जेल से छूटकर धोलू ने रेवती को गले लगाया और कहा—रेवती, जेलखाने में रहकर मैंने पाप धो डाले हैं। आ अब खेत पर चलें; पर पहले मुझे यह बता, लद्दू और कद्दू का क्या हाल है? खेत पर जाते-जाते रेवती ने कहा—मेरे पास एक कंठी थी। उसे बेंचकर मैंने ३०) पूरनमल को दे दिये। और रहमत भाई की किरपा से एक जगह नौकरी मिल गई। महीने के आठ रुपये मिलते थे। और ऊपर से रोटी। बाकी रुपये रहमत दादा ने दिये थे।

धोलू ने आश्चर्य से कहा—रहमत दादा तेरे पास आये थे!

'हाँ'—रेवती ने कहा—'तुम्हारे जेल जाने पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। कहते थे कि उन्हीं ने पूरनमल को भड़का कर भेजा था और थाने में रपट भी उन्होंने की थी। आकर बोले—तुम मेरी बहन हो। और मैं तुम्हारा भाई। खेत के कागज-पत्तर भी उन्हीं ने छुड़वाये थे।'

'अच्छा!'—धोलू ने कहा और चुप हो गया। रहमत के लिए उसके हृदय में स्नेह बह रहा था। दोस्त आखिर में दोस्त ही होता है। बोला—तब रेवती, मेरा चोरी करना फिजूल नहीं गया!

'हाँ, धोलू!'—पीछे से रहमत मियाँ बोले—'अब मैंने भी ताँगा बेच दिया है। और तुम्हारे खेत से घास काटकर बाहर बेच आता हूँ। बूढ़ा ठहरा भाई! अब दिल में आया कि बहन के आसरे ही पड़ा रहूँ; अब मजूरी की आदत पड़ रही है। ..'

तीनों जने खेत पर गये। कद्दू और लद्दू मस्त होकर घूम रहे थे। रहमत ने खुरपा लिया और घास काटने लगा। इधर धोलू ने रहमत की जूतियाँ सिर से लगा कर कहा—रेवती, अब अपनी खेती दिन दूनी फलेगी; क्योंकि फरिश्ते के हाथ लगे हैं।

इतने में हवा चली और लहलहाता हुआ खेत एक मस्ताना स्वर करके शांत हो गया। केवल रहमत के खुरपे की आवाज आ रही थी। धोलू के हृदय में अब भी एक द्वंद्व था।

—गीत—

संकीर्ण हृदय-पट खोल रे
मिलने कोई बाहर आया

तू हरि का कहलाता जन है
हरि-सेवा में तेरा मन है
फिर कैसी यह पोल रे

हरिजन ने दर खटकाया—
संकीर्ण हृदय-पट खोल रे

तू आँखों में उसकी छाया
जिसने निज सर्वस्व लुटाया
उसका, अपना मन तोल रे

क्या अन्तर तू ने पाया—
संकीर्ण हृदय-पट खोल रे

व्यर्थ न कर अभिमान मान तू
अपनों को सविवेक जान तू
फिर अपना स्वत्व टटोल रे

संकीर्ण हृदय-पट खोल रे

उदयशंकर भट्ट

(कबीर के 'घूँघट का पट खोल रे' के आधार पर)

गपोड़शंख

लेखक—श्रीयुत अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मुंशी टिक्कनलाल को झूठ बोलने का रोग था। अपने पति के इस ऐब से बेचारी सुखिया परीशान रहती थी। हर एक बात की हद होती है; पर मुंशी टिक्कनलाल के गप उड़ाने की कोई हद न थी। शहर-भर में वह गपोड़-शंख के नाम से मशहूर थे। आबाल-वृद्ध उनकी सत्य बात को भी असत्य समझते थे। और सच बात तो यह है कि उन्होंने शायद ही कभी अपनी उम्र में सच बोला हो। गपोड़शंख रुपये-पैसे वाले आदमी थे, इसलिए उनके खुशामदियों की भी कमी न थी। वह लोग झूठे बढ़ावे दे-दे कर उन्हें और भी जंगपर चढ़ाये रहते थे।

एक रोज यारों का मजमा लगा हुआ था, कि एक बोले—हुज़ूर, आज तो कोई नई बात सुनाइये।

फरमाइश की देर थी, गपोड़शंख बेकसी के स्वर में बोले—यार, क्या नई बात सुनाएँ? हम तो बदक़िस्मत हैं, जो हिन्दुस्तान जैसे नाक़द्रे शहर में पैदा हुए। अगर विलायत में हुए होते, तो इल्म-क़सम किसी बादशाह के नज़दीक कुर्सी मिली होती।

एक खुशामदी गपोड़शंख की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए बोला—बेशक, इसमें क्या शक है? वहाँ तो कहते हैं, आप जैसे ज़हीन इन्सान का जीते जी दिमाग़ खरीद कर अजायब घर में रख देते हैं।

गपोड़शंख इस मीठे मज़ाक को न समझ कर मारे आत्म-गौरव के शेख़ी में आकर बोले—यारो, कल की बात तो सुनो।

गपोड़शंख के इतना कहते ही एक बोला—वल्लाह! क्या ज़हन पाया है? 'कल्की अवतार' का क्या मुख़फ़्फ़ (संक्षिप्त रूप) 'कल्की' नाम रक्खा है!......

तीसरा बीच ही में बोल उठा—कल की कारस्तानियों के क्या कहने! अभी तक तो रेल, तार, बिजली, ट्राम वग़ैरह ही कल की देखी थीं, अब सुना है कल की औरतें भी बनने लगी हैं।

गपोड़शंख खिसियाकर बोले—अमाँ यारो, तुम भी कहाँ की बात कहाँ ले उड़े? मेरा मतलब कल की बात से, गुज़रे हुए दिन की बात से था।

गपोड़शंख का यह कहना था कि सब खिलखिला कर हँसते हुए बोले—वाह हज़ूर! वाह! इसे कहते हैं हाज़िर-जवाबी। क्या मज़मून को बदला है! हाँ साहब, फिर क्या हुआ कल रोज?

गपोड़शंख—हम अपने मुश्की घोड़े पर चढ़कर कल शिकार को गये, तो आँधी ने यह ज़ोर पकड़ा कि हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। हमने जो गलती से घोड़े को हंटर लगा दिया, तो बस गरम हो गया। लगा हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरने। हम लाख-लाख उसके रोकने की कोशिश करते थे; मगर वह किसकी सुनता था?

एक—तो हज़ूर, आपने भी तो गजब कर दिया। मुश्की को हण्टर की बरदाश्त कहाँ! वह तो क़ुश्तए क़ालीन खाकर और शर्बते शबनम पीकर इतना बड़ा हुआ है। उसने जो लाड़-प्यार की जिन्दगी बसर की है, वह किसी नवाब को मयस्सर नहीं। बड़े हुज़ूर के छूचक में हुज़ूर की दादी साहबा उसे अपने मैके से लाई थीं। कुत्ते जैसे कद से माशा अल्लाह, वह इसी घर में इतना बड़ा हुआ है।

दूसरा—मुश्की घोड़े के क्या कहने! दूर-दूर में अपना सानी नहीं रखता, नाज़ुक मिज़ाज इतना कि खुदा की पनाह! उस रोज घास का गट्ठर लिए हुए हज़रत झेरे में गिर पड़े, तो दो रोज तक उठने का नाम ही नहीं लिया। वह तो कहिये ख़ैरियत हुई, जो मनाने पुचकारने से उठ आये, वरना गजब ही हो जाता।

तीसरा—अमाँ, मुश्की घोड़े की हर एक चीज़ ला-जवाब, उसकी सारी आदतों में बाँकापन! उसकी हिनहिनाहट कोयल की बोलती बन्द करे, रूप उसका सब्जपरी को भी शरमाये, उसकी पसली की उभरी हुई हड्डियाँ चम्पे की कलियों को दूर बिठाये, अन्दर को घुसी हुई छोटी और

गोल आँखें कबूतर को भी नीचा दिखाएँ और उसकी खिरामा-खिरामा चाल, लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह से भी शोखी भरी ! परमात्मा झूठ न बुलाये, हुजूर के मुश्की घोड़े की हिर्स काबुली गधा तो करले ?

चौथा (बीच ही में बात काट कर)—यार, हो तुम निरे चोंच ही । श्यामकल्यान गाते-गाते यह भैरवी की तान क्यों छेड़ दी ? मुश्की घोड़े से और काबुली गधे से क्या निस्बत ? सच कहते हैं इल्मे मजलिस में ऐरे-गैरों को नहीं बैठने देना चाहिए ।

गपोड़शंख—भाई, इस पर क्यों खफा होते हो । यह भी किसी हद तक ठीक ही कहता है । पहले काबुली गधे शाह ईरान की सवारी में रहते थे ।

गपोड़शंख का इतना कहना था कि चारों तरफ से खूब ! खूब ! की बौछारें होने लगीं । वल्लाह ! कैसा मीठा फिक़रा है ? गुलाम के क़ुसूर को वफ़ादरी में शामिल करना, इसे कहते हैं—गरीब-परवरी । किसी शायर ने क्या खूब फरमाया है—

जो बात की, खुदा की कसम ला जवाब की ।

हाँ तो हुजूर फिर क्या हुआ ?

गपोड़शंख को पलभर पहले की बात याद नहीं रहती । वह इस चक्कर में पड़े कि अब मैं क्या कहूँ, न मालूम क्या कह रहा था । इस बात को एक चंट ताड़ गये । उन्हें खुद नहीं मालूम कि कौन क्या बक रहा है, जल्दी में बोल उठे—जो फिर उस बैंगन का क्या हुआ ?

दूसरा बोल—यार तुम भी हो निरे खुश्के । बे गुन आदमी भी कोई आदमी है । फिर भला उसका यहाँ गुनियों की महफिल में जिक्र ही क्या ?

गपोड़शंख—क्यों जी, तुम्हें इन्होंने खुश्का किस लुगात की रू से कहा ?

वह बोला—हुजूर, मेरी पैदाइश खुश्का शहर की है, इसीलिये मुझे ये लोग इस प्यारे नाम से पुकारते हैं ।

गपोड़शंख—भई यह खुश्का कौन-सा शहर हुआ, यह नाम तो आज ही सुना ।

खुश्का किस बला का नाम है, यह वह स्वयं नहीं जानता, फिर गपोड़शंख को क्या ख़ाक बताता । फिर भी दाँत निपोर कर बोला—वाह हुजूर, वाह ! गुलाम के सामने नादान बनकर उसका हौसला बढ़ा रहे हैं । बन्दानवाज, यूँ चींटी पर पसेरी डालकर उसे अहसान से इतना न दबाएँ कि वह निकल ही न सके ।

दूसरा—वाह, मैं सदके जाऊँ हुजूर के इस भोलेपन पर—

इस सादगी पै कौन न मर जाय ऐ खुदा !
लड़ते हैं मगर हाथ में तलवार भी नहीं ! 'दाग़'

अच्छा साहब, आपको भोलापन मुबारक, लो हमीं बताये देते हैं । यह उसी खुरासान शहर का मुख्तसर (संक्षिप्त रूप) है, जहाँ मैं हुजूर के हमराह बारात में गया था । वल्लाह ! कैसा सुहावना पहाड़ी मुल्क था कि तबीयत हरी हो गई ।

यकायक गपोड़शंख को अपनी बात स्मरण हो आई । बोले—वाह यारो, कहाँ की बात कहाँ ले उड़े कि असली मजमून ही ख़ब्त कर दिया । अच्छा अब कोई साहब बीच में न बोलें । हाँ, तो मुश्की घोड़ा चाबुक लगते ही हवा से बातें करने लगा । नदी, नाले, कुआ, बावली, गरज़ जो रास्ते में पड़ा, फलाँगता हुआ चला गया । यहाँ तक तो हमें भी कुछ बुरा महसूस नहीं हुआ ; पर जब पीपल के पेड़ पर से छलाँग मारी, तो ईंजानिब के भी होश खता हो गये । वह तो हमीं थे, जो सवारी गाँठे रहे । खैर, जब मुश्की ने पीपल पर से छलाँग मारी, तो हम भी गरम हो गये । फिर हमें ताव कहाँ ? हमने अपनी बन्दूक सीधी कर ली । हम चाहते थे कि घोड़े को गोली मार दें कि सामने हिरन दिखाई दे गया, बस गोली दन से दाग़ दी । एक ही गोली में हिरन का बायाँ पाँव और कान जख़्मी कर दिये ।

इतना सुनना था कि यार लोग बेतहाशा चीख़ उठे—वल्लाह ! क्या सुलझा हुआ निशाना है । एक ही गोली में पाँव और कान ज़ख़्मी कर दिये । इसे कहते हैं शिकार का शौक़ । जीव-का-जीव न मरा और शौक़-का-शौक़ पूरा हो गया । परमात्मा जानता है, हुज़ूर के वो सधे हुए हाथ हैं कि चूमने को जी चाहता है !

एक—सधे हुए हाथों के क्या कहने ? चाहें तो बन्दूक की गोली से नोकेमिज़गाँ (पलक के बाल की नोंक) उड़ा दें और आँख को मालूम तक न हो ।

गपोड़शंख की स्त्री सुखिया किवाड़ की आड़ में से सब कुछ सुन रही थी। अब उससे अधिक बरदाश्त न हो सका, वह मारे गुस्से के लोटन कबूतर हो रही थी। कड़क कर बोली—वाहरे ख़ुशामदी टट्टुओ, क्या हाँ-में-हाँ मिलाई है।

सुखिया की आवाज़ सुनी तो गपोड़शंख की नानी मर गई। भीगी बिल्ली की तरह इधर-उधर देखने लगे। ख़ुशामदी लोग भी इधर-उधर खिसकने को हुए कि उनमें से एक चट बोला—समझ में नहीं आता, हुज़ूर ने ऐसी कौन-सी झूठ बात कही है, जो बहूजी के दुश्मनों को इतना सदमा पहुँचा है।

बहूजी डाँटकर बोलीं—झूठ नहीं तो क्या सच है? पीपल के पेड़ को घोड़ा छलाँग गया, एक ही गोली से हिरन का पाँवऔर कान ज़ख़्मी कर दिये। कहाँ पाँव, कहाँ कान! निगोड़ी झूठ बोलने में भी अक़्ल की ज़रूरत है।

वही ख़ुशामदी बोला—बस, इतनी ज़री-सी बात पर हुज़ूर को झूठा समझ लिया। उस रोज तो मैं भी हुज़ूर के हमराह साये की तरह साथ था। वाक़या तो हुज़ूर ने सच-सच ही बयान किया है। जैसा कि हुज़ूर ने फरमाया कि आँधी उस रोज़ बड़े ज़ोर से आई, बस उसी आँधी में एक पीपल का दरख़्त रास्ते में गिर पड़ा और घोड़ा उसे आसानी से फलाँग गया और जिस वक्त हुज़ूर ने गोली चलाई, उस वक्त हिरन अपने बाँये पाँव से कान खुजा रहा था; इसलिये गोली पाँव और कान को ज़ख्मी करती हुई निकल गई।

इतना सुनना था कि यारों ने आस्मान सिर पर उठा लिया—वल्लाह, क्या कहना है! आलिमों की बात समझने के लिये भी आलिम होने की ज़रूरत है।

बहूजी बेचारी झेंप कर अन्दर चली गईं।

गपोड़शंख की बाछें खिल गईं, मजे में आकर पूछा—अस्ताँ, यह तो बताओ कि कौन से जानवर के शिकार करने में सबसे ज्यादा जवाँमर्दी की जरूरत पड़ती है?

एक—हजूर! मैं तो खरगोश के शिकार को तरज़ीद देता हूँ। यह जानवर जितना छोटा, उतना ही खोटा, अव्वल तो चार छलाँग में शिकारी से कोसों दूर हो रहता है और काश शिकारी घोड़ा दौड़ाकर नजदीक आ भी जाय, तो यह काफ़िर घास और पत्तों के बीच इस खूबी से छुपता है कि लाख गोलियाँ छोड़ो, उसके सींग को भी परवाह नहीं। हमारे वालिद तो अजब शान के आदमी थे। लार्ड कर्जन और वे दोनों एक ही हाथी पर बैठे थे। वे भी बड़ी मुश्किल से तमाम उम्र में दो खरगोश मार पाये थे।

दूसरा—खरगोश का शिकार मुश्किल जरूर है, मगर जान जोखम नहीं। जान का ख़तरा बिल्ली के शिकार में... उफ! कहते हुए रोंगटे खड़े होते हैं। जालिम उछलकर इस बेरहमी से टेंटुआ पकड़ती है कि मलकुलमौत का नाच दिखाई देने लगता है।

तीसरा—क्यों साहब! चमगीदड़ का सामना करना भी क्या कोई आसान है? जरा चूके नहीं कि मुँह पर से आँखें गायब!

चौथा—तो क्यों साहब, जब इन जानवरों के शिकार में इस कदर जवाँमर्दी की जरूरत है, तो फिर लोग शेर के शिकार को क्यों तरज़ीह देते हैं?

पाँचवा—हो यार कोरे झुनन! इतना भी नहीं समझ पाये। आखिर ये बाल क्या धूप में सुखा कर सुफेद किये हैं? खरगोश, चमगीदड़, बिल्ली वगैरह के शिकार में जवाँमर्दी के साथ-साथ चुस्ती और चालाकी की भी जरूरत पड़ती है। और शेर के शिकार में इन चीजों से क्या तआल्लुक? हाथी, दरख्त, या मचान पर बैठे हुए गोली दाग दी, वह जंगली जानवर गोली की आवाज सुनते ही सामने आ खड़ा होता है। बस ऊपर बैठे-बैठे ठाँय-ठाँय गोलियाँ दागते जाइये अपने आप ठंडा होकर गिर पड़ेगा। सबसे आसान शिकार हैं। ऐरे-ग़ैरे नत्थू खैरे, धोबी, तेली, धुने जुलाहे सभी इसका शिकार आसानी से कर लेते हैं, इसीलिये इसकी इतनी शोहरत है!

शिकार के सिलसिले में ही जवाँमर्दी की डींगें मारी जाने लगीं कि यकायक 'हाय मर गई, बचाना, दौड़ना' की चीख सुनी, तो भगदड़ मच गई। गपोड़शंख कूद कर जनाने में हो लिये, कोई चारपाई के नीचे तो कोई किवाड़ों की जोड़ी के पीछे। गरज, जिसे जहाँ मौक़ा मिला घुस गया। अब सब हैरान कि यह हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा कहाँ और कैसे हो गया? किसकी जान फालतू थी, जो बाहर जाकर पता लगाये। और सच बात तो यह है कि मारे बौखलाहट के यह बात दर्याप्त करने की सूझी ही किस मर-दूद को थी। आखिर जब बूढ़ी महरी रोती हुई और लँग-

ड़ाती हुई ऊपर आई, तब पता चला कि जीने पर केले के छिलके पर से उसका पाँव फिसल गया था, जिससे कि महरी के सर के घड़े के साथ-साथ उसके हड्डे-गुड्डे भी टूट गये थे, उसी ने यह शोर मचाया था।

हक़ीकत मालूम होते ही सब ही-ही हू-हू करते हुए फिर इकट्ठे हो गये। गपोड़शंख बोले—लोग भी कैसे गावदी हैं, तिल की तेलन और राई का पहाड़ बना लेते हैं। मैं तो समझा कि डाकू आगये, दौड़कर तलवार लाऊँ कि इतने में किस्सा ही बेबाक हो गया! इल्म-क़सम, दिल के अरमान दिल ही में रह गये, हसरतों का खून हो गया। मुद्दतों से तलवार चलाने को बाजू फड़क रहे थे, रह-रह कर मन्सूबे बाँध रहा था, यूँ तलवार चलाऊँगा और यूँ धोबीपाठ और उखेड़ में बैठकर दे मारूँगा; मगर अफ़सोस! वह नादिर-मौक़ा ही हाथ न आया।

एक—और हुज़ूर मेरा हौसला तो देखिये, शोरोगुल सुनते ही किवाड़ों के पीछे हो रहा कि कब बलवाई आवें और कब सबसे पहले तुला हुआ हाथ जमाऊँ।

दूसरा—मेरी न कहना, मैं चारपाई के नीचे बैठा ही इस नीयत से था कि इधर डाकू आये और उधर मैं चारपाई उनके ऊपर उलट कर गिरिफ्तार करूँ।

तीसरा—यारो, तुम तो कट मरने को तैयार थे। न तुम्हें कोई रोने वाला न धोने वाला, आज मरे कल दूसरा दिन। आगे नाथ न पाछे पगहा; पर यहाँ तो कुनबेदार आदमी ठहरे। बहन हमारे, भांजी हमारे। फिर क्यों कर लड़ने को तैयार हो जाते। चुपके से सन्दूकचे में बैठ गये, कि कोई लड़े या मरे, हम तो कुछ न बोलेंगे। हाँ, सन्दूक के सामान पर कोई हाथ लगाता, तो हम अलबत्ता जान पर खेल जाते। चमड़ी दे देते; पर दमड़ी न जाने देते। जान से ज्यादा रुपये की कद्र करना हमने तहसील के खजांची साहब की अर्दली में रहकर सीखा।...

गपोड़शंख बीच ही में बात काटकर बोले—अमाँ, यह तो बताओ झूठ को लोग गुनाह क्यों समझते हैं?

एक बोले—हजरत, सच बात तो यूँ है कि झूठ को गुनाह वही लोग समझते हैं, जिनके पास अक़्ल कभी झाँकने भी नहीं आती। वर्ना झूठ के बग़ैर दुनिया का काम ही नहीं चल सकता। औरों की बात रहने दीजिये, हर एक क़ौम और हर एक देश के रूहेरवाँ शायर लोग होते हैं, सब उनके बताये हुए रास्ते पर चलते हैं, वह भी इस झूठ से न बचने पाये।.....

दूसरा—यह एक ही दून की हाँकी, कि झूठ से न बचने पाये। बन्दे ख़ुदा, यह नहीं कहते कि सच उन्होंने ज़िन्दगी भर न बोला, ताउम्र झूठ की ही परिस्तिश करते रहे। माशूक़ के मुँह को चाँद, उसके रुख़सार के तिल को, आशिक़ की आहों से दुनिया भर के जले हुए पहाड़ों का धुआँ बताया। उसके हँसने को बिजलियाँ गिराना और रोने को मेंह बरसाना लिखा। उसके अबरू और नोके मिज़गाँ को, छुरी, तीर, तलवार, दश्ना और खंजर से भी ज्यादा ख़तरनाक समझा। उसकी कमर दूरबीन से भी देखने में न आ सके, इतनी पतली और आँखें काजल का भार भी न उठा सकें, इतनी नाज़ुक, और उसकी ज़ुल्फ़ेदुतां को साँपों का जोड़ा तसलीम किया। गरज़, गधे के सर पर सींग, आसमान में फूल और इन्सान के दुम तक लगाने में वे लोग न चूके!

° ° °

एक दिन गपोड़शंख की घरवाली किसी रिश्तेदारी में गई, तो उसे देखते ही औरतों ने चुपके से कहा—बहनो, खामोश रहो, गपोड़शंख की घरवाली आ रही है, ऐसा न हो कि कोई बात हमारी यह सुन जाय और फिर जाकर अपने मर्द से कह दे। कहीं ऐसा हो गया, तो सारे शहर में बात का बतंगड़ फैल जायगा—यह बात सुखिया के कानों में भी पड़ गई। वह मारे गैरत के उल्टे पाँव अपने घर लौट आई और आसनपाटी लेकर पड़ रही। गपोड़शंख हैरान थे कि यह यकायक आनन्द-काण्ड में कोप-काण्ड कैसे प्रारम्भ हो गया। अब उन्हें डर लगने लगा कि कहीं किचकन्धा काण्ड शुरू होकर लंकाकाण्ड तक नौबत न पहुँचे। अनेक मिन्नतों और खुशामदों के बाद सुखिया बोली—आख़िर तुम मुझे कब तक जलाओगे? सारे शहर में बदनामी हो रही है; पर तुम्हारे कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। मैं पूछती हूँ, तुम्हें इस झूठ बोलने में क्या मज़ा आता है? कभी छठे-चौमासे, होली-दिवाली सच भी बोल लिया करो। बूढ़े होने को आये; पर आदमी न बने। यह बाल क्या धूप में सुखा कर ही सुफ़ेद करोगे?

गपोड़शंख सहम कर बोले—मैं तो खुद ही इस झूठ की बीमारी से परीशान हूँ ; पर क्या करूँ, यार लोग पीछा छोड़ें तब न। उनकी शक्ल देखते ही झूठ की वहशत सवार हो जाती है। अच्छा लो, हम परदेश जाते हैं। न वहाँ ये लोग होंगे और न हम झूठ बोलेंगे। बस झूठ की आदत छोड़कर ही हम तुम्हें अब अपनी शक्ल दिखलायेंगे।

सुखिया ने खुशी खुशी सफ़र की तैयारी कर दी। यारों से विदा होकर गपोड़शंख शाम के वक्त देशाटन को निकल पड़े। सुखिया खुश थी कि अब पतिदेव सत्यवादी हरिश्चन्द्र बनकर आयेंगे। यह सारी बदनामी भलाई में तब्दील हो जायगी, लोग मुझे भी इज्जत की नजर से देखेंगे। उनके आने पर कुत्तों को दूध और भूखों को भरपेट भोजन खिलाऊँगी। इसी उधेड़बुन में रात निकल गई, खुशी के मारे उसे नींद ही न आई। सुबह उठकर सुखिया ने देखा, तो गपोड़शंख दालान में पाँव फैलाये हुए दोनों कूल्हों पर हाथ रखे हाँफ रहे हैं! उनको देखते ही सुखिया का माथा ठनका। अन्यमनस्क भाव से पूछा—क्यों, क्या सत्यवादी बन आये? गपोड़शंख रुँधे हुए स्वर में बोले—तुम्हें सत्यवादी बनाने की पड़ी है, यहाँ जान की नौबत आ पहुँची।

सुखिया घबड़ा कर बोली—क्यों, क्या हुआ?

गपोड़शंख थूक को सटकते हुए बोले—यह न पूछो, याद आते ही बदन के रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।

सुखिया उत्सुकता से बोली—आखिर क्या बात हुई?

गपोड़शंख ने अपनी दास्तान इस प्रकार शुरू की—

'यहाँ से चलकर मैं दो घण्टे में ही कदली-वन में पहुँच गया। वहाँ एक साफ-सुथरी चट्टान पर बैठकर भोजन करने की तैयारी में था कि इतने में पूरे बाईस हाथ लम्बा, न जौ भर छोटा न तिल भर बड़ा, शेर आ पहुँचा। यों शेर के शिकार सैकड़ों ही किये; पर न मालूम उस वक्त क्या हुआ। उसे देखते ही मुझे पसीना आ गया। शायद पसीना आने की वजह मेरी गरम मिजाजी हो। खैर, मैंने उसे निशाना बनाने के लिये जो बन्दूक सँभालना चाहा, तो खयाल आया कि इस निहत्थे से तो खाली हाथ ही लड़ना चाहिए। यह सोचते ही मैं चाहता था कि धोबीपाट का हाथ दिखाकर इसे ज़मीं सुँघा दूँ कि दया आगई और सोचा, क्यों नाहक जीव-हत्या करूँ! यह तो जानवर है, इसका क्या बिगड़ेगा, मुफ्त में इस जून से छूट जायगा; पर मुफ्त में पाप मुझे लगेगा। यह खयाल आते ही मैं तो जूतियाँ छोड़कर भाग निकला। मुझे भागता देखकर शेर भी शेर हो गया। अजी, वह तो आखिर शेर था। भागते हुए को देखकर तो कुत्ता भी शेर हो जाता है। अब कहीं छिपने की जगह नहीं। क्या करें, कुछ सूझ ही न पड़ता था। शुक्र समझिये कि मैं बचपन से ही ज़हीन हूँ। दिमाग पर ज़रा जोर दिया, तो झट औसान सूझ आया। चने का पेड़ खड़ा था। बस दो छलाँग में पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। अब शेर अजीब चक्कर में, खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचें—इस कहावत के माफिक झेंप उतारने की गरज से लगा पेड़ के चारों तरफ घूमने। कुछ देर तक तो मैं भी भूख और प्यास को रोके सब्र किये बैठा रहा; पर पेशाब की हाजत ने जोर पकड़ा तो परेशान हो गया। आखिर सोचते-सोचते खयाल आया कि क्यों न दरख्त पर से बैठे-बैठे ही पेशाब करदूँ। मेरा दरख्त पर से पेशाब करना था कि वह जालिम पेशाब की धार को पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा! तब तो मैं भी चौकड़ी भूल गया। घबड़ाकर पेशाब रोक ली। पेशाब का रोकना था कि वह धड़ाम से औंधे मुँह ज़मीन पर गिर कर ठण्डा हो गया। एक मुसीबत से निजात पाई, तो दूसरी को दावत दी। पेशाब की धार के जोर से पेड़ की जड़ें हिल गईं और मुझे लिये पानी के अन्दर चली गईं। खैरियत हुई, जो हम तैरना जानते थे, वर्ना उसी खेत में समाधि बन जाती।'

सुखिया आँखें नचाती हुई बोली—जब पानी में भींगकर आये, हो तो बदन के कपड़े कैसे सूखे रह गये?

गपोड़शंख—आखिर इतनी देर धूप में चलकर आया हूँ, कपड़ों के सूखने में कुछ देर लगती है!

सुखिया माथे पर हाथ मार कर बोली—बस, माफ करो। मैं बाज़ आई आपके सत्यवादी बनने से। मेरे गपोड़शंख भर्तार! जितने पहले थे उतने ही बने रहो—आगे न बढ़ो, यही गनीमत है।

बाबू मैथिलीशरणजी और पंचवटी

लेखक—श्रीयुत जयनारायण टंडन

पंचवटी की मूल कथा केवल इतनी ही है कि रावण की बहन शूर्पणखा, राम और लक्ष्मण के रूप पर मोहित होकर मायावी रूप धारण करके उनको अपने ऊपर आकर्षित करना चाहती है तथा जब छल से काम नहीं चलता, तो भय प्रकट करती है और अन्त में अपने दुष्कर्मों के फल-स्वरूप अपने नाक-कान कटाकर उस भयंकर उत्पात का-बीजारोपण करने जाती है, जिसका अन्तिम परिणाम राक्षस-कुल का नाश है। पर, कवि ने अपनी चतुरता से इस छोटी-सी घटना को एक अत्यन्त सुन्दर खण्ड-काव्य का रूप दिया है। वाल्मीकि और तुलसीदासजी ने तो शूर्पणखा को दिन में ही राम, लक्ष्मण और सीता तीनों के सम्मुख उप-स्थित किया है; पर मैथिलीशरणजी ने उसको सूर्योदय से पहले एकान्त में लक्ष्मण के सम्मुख ही भेजा है। इस तनिक ही परिवर्त्तन से एक बड़ी महत्त्व-पूर्ण विशेषता आ गई। पहली बात तो यह है कि कवि को रात्रि के अन्तिम प्रहर, उषाकाल तथा सूर्योदय के वर्णन का अपूर्व अवसर मिल जाता है। दूसरी बात यह है कि एकान्त में बैठे हुए लक्ष्मण के स्वगत भाषण से उनके चरित्र के विषय में, 'पूर्व कथा' के विषय में तथा उनके वनवास के जीवन के विषय में अनेक बातें ज्ञात होती हैं। तीसरी तथा सबसे महत्व की बात यह है कि शूर्पणखा को अपने योग्य वर खोजती हुई कुमारी के रूप में दिखलाया गया है; अतएव कुमारी की रक्षा के लिये यह उचित है कि वह एकान्त में ही अपने एक प्रिय व्यक्ति के सामने अपनी प्रार्थना प्रकट करे। वाल्मीकि और तुलसी-दासजी ने इस बात पर कुछ विचार नहीं किया है; पर मैथिली-शरणजी ने सूर्योदय से पहले उसको लक्ष्मण के सामने एकान्त में उपस्थित कर लक्ष्मणजी के चरित्र का महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है। यदि वह अपने बड़े भाई राम और भाभी सीता के सम्मुख शूर्पणखा की ओर दृष्टिपात नहीं करते, तो कोई बड़ी बात नहीं है। इसका कारण बड़ों की लाज भी हो सकता है; पर जब शूर्पणखा अपने अतुलित सौन्दर्य को लेकर एकान्त में लक्ष्मण के प्रति आत्म-समर्पण करती है और लक्ष्मण बच जाते हैं, तब इसका कारण एक-मात्र उनका उच्च चरित्र ही ठहरता है।

प्रारम्भ में ही जो प्राकृतिक वर्णन दिया गया है, वह अत्यन्त ही स्वाभाविक है। लक्ष्मण का स्वगत भाषण काव्यमय और दार्शनिक है। उसमें दिखलाया गया है कि राज-महल के आडम्बर पूर्ण वातावरण को त्याग कर विशाल प्रकृति की गोद में विचरण करने से कितना सुख प्राप्त होता है। आपत्तियों की उपयोगिता का वर्णन शेक्सपियर के 'As you like it' में Duck द्वारा वर्णित आप-त्तियों की मधुर उपयोगिता की याद दिलाता है। इतने ही में वह समझते हैं कि वनवास के तेरह वर्ष तो व्यतीत हो ही चुके, शीघ्र ही एक वर्ष भी कट जायगा। उनके यह सोचते ही सोचते उनके स्वप्न को छिन्न-भिन्न करने के लिये आफत की पुड़िया सामने आ उपस्थि होती है। कवि ने शूर्पणखा के रूप-वर्णन में भी अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय दिया है; जैसे—

कटि के नीचे चिकुर-जाल में, उलझ रहा था बायाँ हाथ;
खेल रहा हो ज्यों लहरों से, लोल कमल भौंरों के साथ।

दायाँ हाथ लिये था सुरभित, चित्र-विचित्र-सुमन-माला;
टाँगा धनुष कि कल्पलता पर, मनसिज ने झूला डाला।

शूर्पणखा लक्ष्मण से विवाह का प्रस्ताव करती है। लक्ष्मण उसको किसी प्रकार भी स्वीकार करने को तैयार नहीं होते। इस वाद-विवाद में मौलिकता का अभाव है। लक्ष्मण के उत्तर प्रज्ञात्मक हैं और शूर्पणखा की बातें भावा-त्मक; यह वास्तव में ही एक नवीन रंभा-शुक-सम्वाद है।

यह वार्त्तालाप इतना लम्बा चलता है कि रात्रि का अन्त होने पर भी इसका अन्त नहीं होता। और मानों इस स्त्री की निर्लज्जता से लज्जित होकर पूर्व दिशा के कपोल भी लाल हो जाते हैं। पूर्व में उषा प्रकट होने के साथ-ही-साथ सीताजी भी जाग जाती हैं और इस नवीन दृश्य को देख

कर उनके विस्मय और कुतूहल की सीमा नहीं रहती। इस स्थल पर कवि ने उपःकाल का वर्णन बड़ी चतुरता से किया है ; जैसे—

अहा! अम्बरस्था ऊषा भी, इतनी शुचि सस्फूर्ति न थी ;
अवनी की ऊषा सजीव थी, अम्बर की-सी मूर्ति न थी।

वह मुख देखपाण्डु-सा पड़कर, गया चन्द्र पश्चिम की ओर ;
लक्ष्मण के मुँह पर भी लज्जा, लेने लगी अपूर्व हिलोर।

अब इस वार्त्तालाप में सीताजी भी सम्मिलित हो जाती हैं। अभी तक जहाँ शान्ति और श्रृंगार-रस की ही गंगा-यमुना बह रही थीं, उसमें सीताजी अपने शुभ हास्य की सरस्वती भी बहाने लगती हैं। यह स्थल सम्पूर्ण ग्रन्थ में सबसे अधिक रोचक है।

अब सूर्य्योदय हो चुका है। रामचन्द्रजी भी जाग कर कुटी से बाहर आते हैं और जो दृश्य देखते हैं, उसको भली प्रकार समझने के लिये एकाध बार नेत्र मलने की आवश्यकता होती है। सूर्य्योदय का वर्णन भी अत्यन्त मनोमोहक है। वास्तव में उषा के साथ सीता का जागना तथा सूर्य्योदय के साथ राम का निद्रात्याग का वर्णन करके कवि ने अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

शान्त, श्रृंगार तथा हास्य की त्रिवेणी राम-रूपी सागर से आगे नहीं बढ़ सकती। वह इस अवस्था के मर्म को समझ कर शीघ्र ही उसका अन्त करने का उपाय कर देते हैं ; पर ऐसा होने से पहले सीता और लक्ष्मण को अनेक बार अत्यन्त परिष्कृत हास्य का अवसर मिलता है। शूर्पणखा अपनी सब चालों में परास्त होकर झुँझला उठती है और अपना वास्तविक रूप धारण करती है। उसके विकराल रूप का वर्णन थोड़े में बहुत अच्छा हुआ है ; जैसे—

गोल कपोल पलट कर सहसा, बने भिड़ों के छत्तों-से ;
हिलने लगे उष्ण साँसों से, ओंठ लपालप लत्तों-से।

जहाँ लाल साड़ी थी तन में, बना चर्म का चीर वहाँ ;
हुए अस्थियों के आभूषण, थे मणि-मुक्ता-हीर जहाँ।
कन्धों पर के बड़े बाल वे, बने अहो! आँतों के जाल ;
फूलों की वह वरमाला भी, हुई मुण्डमाला सुविशाल।

शूर्पणखा के नाक-कानों के अन्त के साथ ही कथा का भी अन्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कथा में हास्य, श्रृङ्गार तथा शान्त रस की प्रधानता है। वीर रस भी कहीं-कहीं कुछ दबे हुए रूप में आया है। इसके पश्चात् खरदूषण से युद्ध तथा सीता-हरण की कथा का, जिसमें कि वीर रस का पूर्ण रूप से प्रकाशन होता, कवि ने वर्णन नहीं किया है। और उसका कारण यह है कि कवि में वीर-रस के वर्णन की क्षमता कम है।

इस ग्रन्थ की भाषा भी गुप्तजी के अन्य ग्रन्थों की भाषा के समान परिष्कृत खड़ी बोली है तथा इसमें उनके सम्पूर्ण छोटे ग्रन्थों से, जयद्रथ-वध को छोड़कर, अधिक कवित्व पाया जाता है। भाषा अत्यन्त मधुर है तथा वर्णन के विषय और रस के अनुसार बदलती है। यह देखना हो कि भाषा में भाव के अनुसार कैसे परिवर्त्तन होता है, तो इस ग्रन्थ के ऐसे चार छन्दों को पास-पास रखकर देखना चाहिये कि जिसमें एक में लक्ष्मण के शान्त विचार हों, दूसरे में वीरता के, तीसरे में लक्ष्मण या सीता का हास्य हो और चौथे में शूर्पणखा का विकराल रूप-वर्णन किया गया हो। अलंकारों का प्रयोग भी यथा स्थान अत्यन्त स्वाभाविक रूप से तथा वर्णित विषय को अधिक स्पष्ट और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये किया गया है। मुख्य अलंकार रूपक और उत्प्रेक्षा है।

चरित्र-चित्रण में भी कवि ने पूर्ण सफलता पाई है। यद्यपि राम, सीता और लक्ष्मण के चरित्र आदर्श चरित्र हैं तथापि उनमें इतनी सजीवता और वास्तविकता भर दी गई है कि वह पूर्ण रूप से आदर्श होते हुए भी इसी भूमि के जीव मालूम होते हैं। यदि हम तुलसी और गुप्तजी के लक्ष्मण में तुलना करें, तो हमको यह विदित होगा कि तुलसी के लक्ष्मण Idealistic हैं ; अर्थात्—आदर्श भक्त के रूप में उनका वर्णन किया गया है और गुप्तजी के लक्ष्मण Realistic हैं ; अर्थात्—इसी संसार के प्राणी हैं। लक्ष्मण यद्यपि अत्यन्त कठोर व्रती और संयमशील व्यक्ति हैं ; पर उनके व्रत ने उनके हृदय की सरसता को सुखा नहीं डाला है। प्रकृति के सुन्दर दृश्य और वन का शान्त सरल जीवन उनको अत्यन्त प्रिय है। सीता को वह पूजनीय मानते हैं, तो भी उनके साथ निश्छल और निष्कपट हास्यमय व्यवहार को वह बुरा नहीं समझते। उनके सदाचार, सहन-शीलता, उत्साह, निर्भीकता, वीरता तथा आत्-

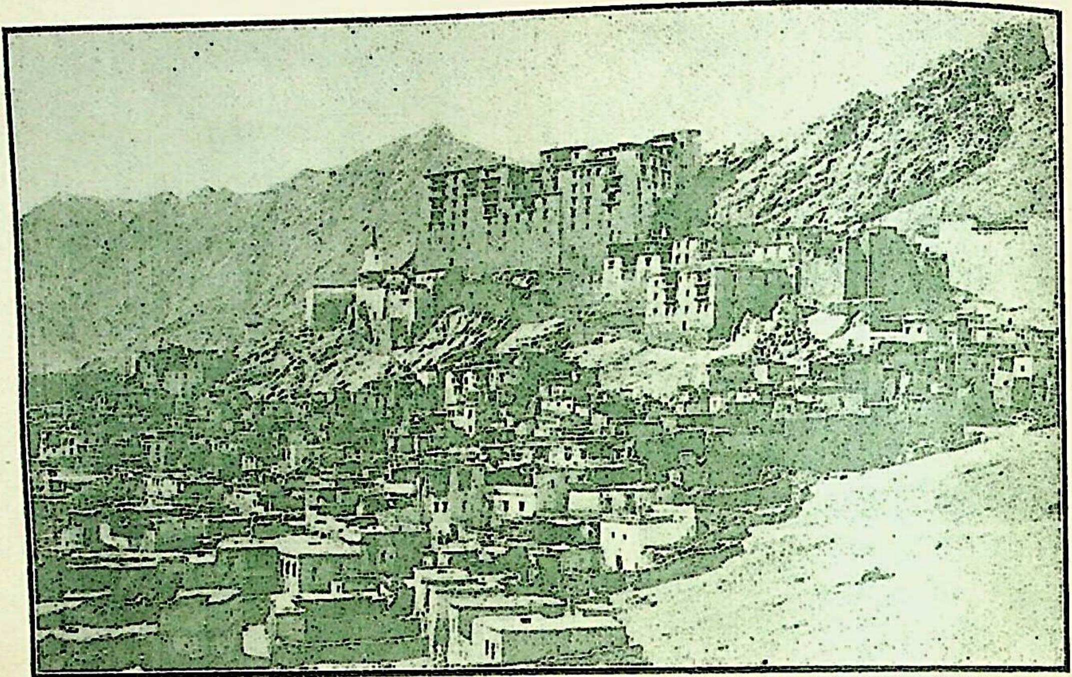
स्नेह के विषय में अधिक कहना व्यर्थ-सा है। इन गुणों ने तो मानों मनुष्य की मूर्त्ति धारण करके अवतार लिया है। शूर्पणखा के प्रति उनके व्यवहार और वार्त्तालाप से उनके उच्च नैतिक आदर्श का पता चलता है। उन्होंने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक व्यवहार का जो आदर्श दिखलाया है, वह अवश्य ही ग्रहण करने-योग्य है।

शूर्पणखा का चरित्र भी वास्तविकता से परे नहीं है। यह सच है कि वह राक्षसी है; पर जिस दशा में कवि उसको हमारे सामने उपस्थित करता है, यदि हम उसको परम्परा से राक्षसी न जानते हों, तो उसको एक अत्यन्त प्रेमी तथा उच्च कुल की स्त्री से भिन्न नहीं समझ सकते। उसमें वाह्य सौन्दर्य्य के साथ ईर्ष्या-योग्य बुद्धि भी है और लक्ष्मण के साथ उसका जो वार्त्तालाप होता है, उससे उसकी बुद्धि पर पर्य्याप्त प्रकाश पड़ता है; पर उसमें हास्यरस का कुछ अभाव-सा प्रकट होता है। सम्भव है कि यह उसकी परिस्थिति का कारण हो; क्योंकि एक स्वयंवरा के लिये लज्जाशील होना स्वाभाविक ही है। उसके चरित्र में यदि कोई बात खटकने वाली है, तो वह उसकी आचरणहीन विषय-वासना है। एक उच्च कुल की स्वयंवरा कन्या और शूर्पणखा में इस बात से स्पष्ट अन्तर हो जाता है कि सद्-वंश की कन्या जब यह जान लेगी कि जिस व्यक्ति को वह चाहती है, उसका ब्याह हो चुका है, तो वह अपना हठ छोड़ देगी तथा प्रेम में कदापि बल-प्रयोग और बदला लेने की बात न सोचेगी; पर शूर्पणखा के दुष्ट चरित्र का पता उपर्युक्त बातों से चल जाता है। वह यह जानते हुए भी कि राम और लक्ष्मण विवाहित हैं और उसको दूसरी स्त्री के स्थान पर रखना नहीं चाहते, तो भी वह अपने हठ पर जमी रहती है और अन्त में असफल होकर क्रूरता का प्रयोग करना चाहती है। यही उसकी दुष्टता है। यदि कवि उसके विकराल रूप का परम्परागत वर्णन न करता, तो अन्त तक वह मानवी ही बनी रहती; पर कवि को ऐसा करने के लिये बाध्य होना पड़ा है।

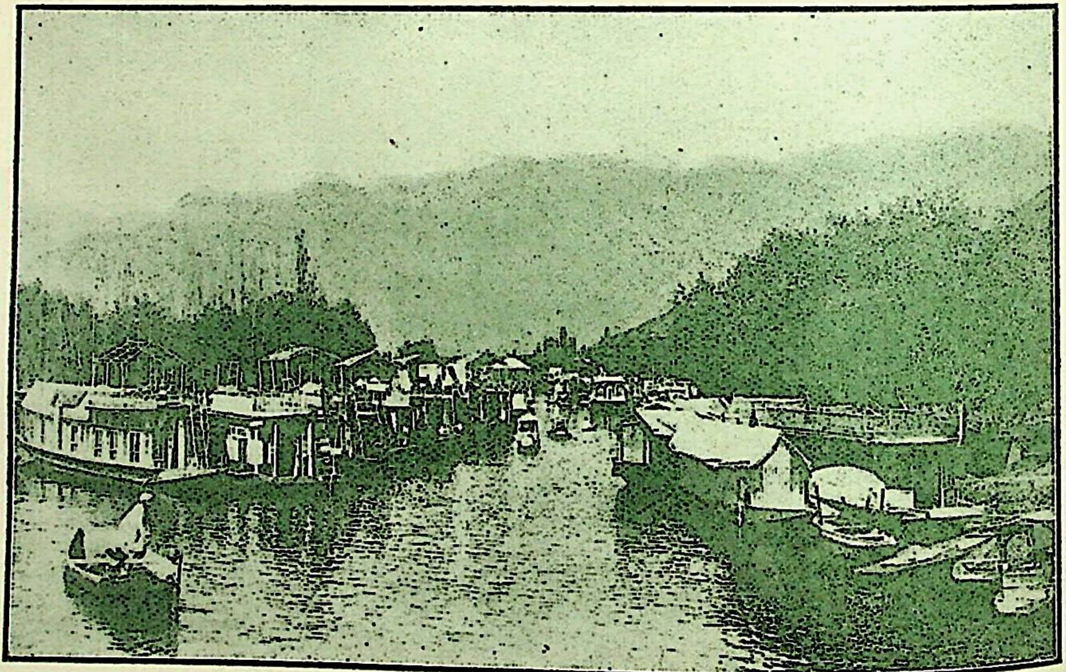
राम और सीता के चरित्रों के विषय में कुछ विशेष नहीं कहना है। सहस्रों वर्षों से कवियों ने उन चरित्रों का वर्णन करके उनको एक सुनिश्चित रूप दे दिया है। कोई भी कवि उनमें विशेष परिवर्त्तन करके सफल नहीं हो सकता। मधुसूदनदत्त-जैसे प्रतिभाशाली कवि ने भी उनमें परम्परा-विरुद्ध परिवर्त्तन करके सफलता नहीं पाई है। गुप्तजी ने उस चरित्र में ऐसा कोई परिवर्त्तन नहीं किया, जो उसकी आत्मा को विकृत करता हो। उन्होंने उस चरित्र को अधिक स्वाभाविक बना दिया है। राम और लक्ष्मण को उन्होंने ब्रह्म और जीव के समान पृथ्वी और आकाश के अन्तर पर नहीं रक्खा है। लक्ष्मण की भ्रातृ-भक्ति तथा राम के अनुज-प्रेम में अत्यन्त अधिक घनिष्टता और सहोदरता है। सीता और लक्ष्मण का सम्बन्ध भी अत्यन्त मनोहर है। कवि ने सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में आदर्श और वास्तविकता का अत्यन्त वाञ्छनीय संयोग दिखलाया है।

प्राकृतिक वर्णन में रात्रि के अन्तिम प्रहर, उषा तथा सूर्य्योदय का वर्णन बड़ा रोचक है। अनेक स्थलों पर तो ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने शब्दों में दृश्यों का चित्र ही उतार कर रख दिया है। उषा के साथ सीता का जागना और सूर्य्योदय के साथ राम का शय्या-त्याग करना बड़ा मनोहारी है। शब्दों में चित्र उतारने की शक्ति का परिचय कवि ने लक्ष्मण और शूर्पणखा के रूप के वर्णन में भी दिया है।

इतने गुण होते हुए भी इस ग्रन्थ में कुछ कमी है और कुछ खटकने वाली बातें हैं। एक तो इसमें वीर-रस के वर्णन की कमी है। दूसरी बात यह है कि लक्ष्मण और शूर्पणखा के वार्त्तालाप में बुद्धिमत्ता पर अधिक जोर दिया गया है तथा उसमें भावात्मकता की कमी है। इस वार्त्तालाप के बहुत से पद्य बहुत आसानी से न्याय-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिये अशुद्धियाँ ढूढ़ने को दिये जा सकते हैं। एक-आध स्थल पर सीता और लक्ष्मण का हास्य भी औचित्य की सीमा को लाँघ जाता है। यद्यपि वह उतना अस्वाभाविक और अनुचित नहीं है, तथापि जिस दृष्टि से हम सीता और लक्ष्मण को देखते आये हैं, उससे वह कुछ अनुचित अवश्य मालूम पड़ता है।



लेह (लद्दाख की राजधानी) काश्मीर।



नौका-गृह, काश्मीर।

मेरी लद्दाख-यात्रा

लेखक—श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन

श्रीनगर से लद्दाख जाने के दो रास्ते हैं, जिनमें सबसे अधिक वह चलता है, जो जोजीला पार करके जाता है, और जिससे कुल दूरी २४० मील है। यों तो मैदानी आदमियों के लिये श्रीनगर (५२१४ फीट) भी काफी सर्द है; किन्तु जोजीला के पार का मुल्क कुछ दूसरे ही प्रकार का है। इसके लिये यात्री को कपड़े आदि की विशेष तैयारी करनी पड़ती है। श्रीनगर ही से उसे गर्म कोट, पायजामा, मोज़े, पट्टी, कनटोप, दस्ताने, लोइयाँ, बिस्तरे आदि का प्रबन्ध कर लेना पड़ता है। श्रीनगर से नाव या ताँगे पर गांदर्बल (५२२० फीट) १३/४ मील जाया जा सकता है। गिल्गित जानेवाले को भी यहाँ तक सम्मिलित सफर करना पड़ता है। गांदर्बल से कांगन (१०१/२ मील) पहला पड़ाव है। लद्दाख चूँकि सीमान्त जिला है, और उसकी सीमा पूर्व की तरफ तिब्बत से और उत्तर की तरफ चीनी तुर्किस्तान से मिली हुई है, इसीलिये श्रीनगर में बृटिश ज्वाइन्ट कमिश्नर से पास (Pass) लेना पड़ता है। कांगन में पास देखकर आगे जाने की इजाज़त होती है। गांदर्बल ही से यद्यपि पहाड़ के साथ साथ रास्ता आरम्भ होता है; किन्तु गांदर्बल तक चढ़ाई-उतराई नाम-मात्र ही है। जगह-जगह रास्ते में छोटे-छोटे गाँव मिलते हैं, जिनके आस-पास अखरोट, बादाम, तूत आदि के बहुत से वृक्ष होते हैं। काश्मीर के लोगों का मुख्य भोजन चावल है। मई के अन्तिम सप्ताह ही में किसान अपने-अपने खेतों को ठीक कर लेते हैं। जगह-जगह धान के पौधे रोपने के लिये भी तैयार से मालूम पड़ते हैं।

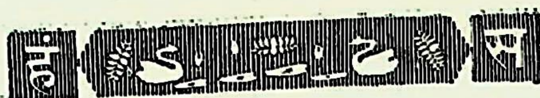
गांदर्बल से लद्दाख का रास्ता सिन्धु नदी के किनारे-किनारे चलता है। सिन्धु के बायेंवाली पहाड़ियाँ गांदर्बल से बालतल तक, चीड़ (कारू Pine), कचलू आदि के सुन्दर वृक्षों से आच्छादित है; किन्तु दाहिने किनारेवाली पहाड़ियों में जंगल नहीं है। इसमें जगह-जगह गाँव तथा धान के खेत, अखरोट, बादाम, खूबानी आदि के वृक्ष हैं। पानी सभी जगह अधिकता से मिलता है। मई के अन्तिम सप्ताह में लोग खेतों को जोतकर, ढेले फोड़कर धान रोपने के योग्य बना लेते हैं। इन कामों में पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ ही देखने में आती हैं। आबादी सभी काश्मीरी मुसल्मानों की है। सिर्फ कांगन, हरिगंजबन, गुंड कुल्न, सौममर्ग में दो-एक हिन्दू दूकानदार हैं, जो कि काश्मीरी पंडित या पंजाबी हैं। कांगन से आगे धीरे-धीरे ऊँचाई बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि वहाँ से १३ मील पर गुंड में वह ६८२० फीट, तथा वहाँ से १५ मील सोनमर्ग में ८७५० फीट और ८१/२ मील तथा बालतल में ९४५० फीट हो जाती है; किन्तु यह ऊँचाई इतने धीरे-धीरे बढ़ी है, कि यात्री को इससे कोई कष्ट नहीं मालूम होता। सड़क भी बहुत अच्छी, जगह-जगह पुलों से संयुक्त है।

हिमालय के काश्मीर-विभाग में भिन्न-भिन्न वृक्षों की स्थिति-मर्यादा निम्न प्रकार है—

कारू (चीड़-Pine)	२०००—७००० फी०
देवदार	५०००—८००० ,,
कचलू (Sprus) बदलू (SilverFur)	७०००—१०००० ,,
भोजपत्र	८०००—११५०० ,,

धान, गुंड से नीचे-नीचे होता है। आगे मका, गेहूँ, त्रुम्ब आदि की खेती होती है। आगे भूमि भी कई मास तक बर्फ से ढँकी रहती है। गर्मियों में यहाँ वर्षा भी प्रायः बराबर हुआ करती है। सोनमर्ग में तो हमारे पहुँचने के साथ बर्फ पड़नी शुरू हो गई और घंटे भर में जगह-जगह इंचों बर्फ गिर गई। गिरती हुई बर्फ भी एक सुन्दर दृश्य है। ज्ञात होता है, बड़ी बड़ी बूँदें गिर रही हैं; गौर से देखने पर अंगुल-अंगुल चौड़े धुनी रूई के फाहे-से गिरते मालूम होते हैं। आदमियों ने कहा—यह गर्मी का मौसिम है, इसीलिये पहले झोंक में गिरने वाली बर्फ जमीन पर पड़ते ही विलीन हो गई, नहीं तो आप अच्छी खासी रूई के पहल भूमि पर जमे हुए पाते।

बालतल में डाक-बंगला और सराय है। सोनमर्ग से बालतल जाने में अब भी कहीं-कहीं बर्फ पर से चलना पड़ा। कहीं-कहीं सिन्धु नदी पर बर्फ का पुल भी बँधा



दिखाई पड़ा। बालतल में तो दूकान और बस्ती नहीं है; किन्तु उससे नीचे एक गाँव है। यह गाँव वालियों (भरेहों) का है। काश्मीरियों का इतनो सर्दी में खेती-बारी करना बहुत कठिन है। वर्षा होते समय लोग सोनमर्ग से बालतल को जाना पसन्द नहीं करते; क्योंकि पास की पहाड़ियों पर अनेक छोटे-बड़े पत्थर इस तरह बिखरे हुए हैं कि वर्षा से उनके नीचे की भुर्भुरी मिट्टी गल जाती है, और मालूम होता है, क्रोधित दानव-सेना उधर से गुजरने वाले यात्री पर पत्थरों का प्रहार कर रही है। बालतल के करीब एक काश्मीरी घोड़ा लेकर लौटता हुआ मिला। घोड़े की एक टाँग के खुर से ऊपर ऐसा जबर्दस्त पत्थर लगा था कि उसकी हड्डी टूट गई थी। बेचारा घोड़ा तो दुखी था ही; किन्तु आदमो के चेहरे से ज्ञात होता था कि उस पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है। उसके जीवन से बढ़कर जीविका का सहारा टूट गया!

बालतल से जोजीला पार करने के दो रास्ते हैं; एक जाड़े का, दूसरा गर्मी का। गर्मी वाला रास्ता अभी-अभी खुला है। अब भी सड़क मील-डेढ़-मील ही तक हिम-रहित है। आगे बर्फ ही पर चलना पड़ता है। बालतल से नीचे ही चीड़जातीय वृक्षों का जंगल छूट जाता है। और जंगली सफेदा और वीरी (Willow) के साथ-साथ भोजपत्र आरंभ हो जाता है। आगे फिर सिर्फ हिमगौर चर्म वाले भोजपत्र देखे जाते हैं। ११ हजार फीट से ऊपर के स्थानों पर भी, जहाँ से बर्फ अभी महीनों नहीं गलेगी, यह पत्र-रहित वृक्ष बड़े सन्तुष्ट से दिखाई पड़ते हैं। जहाँ बर्फ नहीं है, वहाँ इनमें छोटे-छोटे से जामुन के-से पत्ते निकल आये है। चार मील की चढ़ाई के बाद पहाड़ की ऊपरी अँगनाई पर पहुँचते हैं। यहाँ आस-पास सफेद संगमर्मर की दीवार के घिरावे में मीलों तक चली गई चाँदी के फर्शवाली यह अधित्यका है। बीच से चलने वाले आदमियों और घोड़ों के पैर से रास्ते का चिन्ह बनाया है। धूप में इस बर्फ की ओर नजर डालने में आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। सभी लोग यहाँ हरे चश्में लगाते हैं। जिनके पास चश्मा नहीं होता, उन्हें घण्टे-आध-घण्टे के सफर के बाद आँखों में पीड़ा आरम्भ होती है, आँखें सूज जाती हैं। मीलों आगे बढ़ने पर जोजीला का वह जल विभाजक आता है, जिसके एक ओर का पानी काश्मीरी सिन्धु और दूसरी ओर का गुम्बेर में जाता है। घंटों के बर्फ के सफर के बाद आदमी मिचोई पहुँचता है।

मिचोई के आस-पास भी बर्फ उसी प्रकार है, जिस प्रकार जोजीला पर। यह भी समुद्रतल से ग्यारह हजार फीट से कम ऊँचा न होगा। मिचोई कोई गाँव नहीं है। इस जगह एक छोटा सा डाक बँगला और सराय (धर्मशाला) जो कि पुराने तारघर के मकान में है, इनके अतिरिक्त एक और मकान है, जो जाड़ों में तारघर के तौर पर इस्तेमाल होता है। इस तारघर का कोई और तो काम नहीं मालूम होता, सिवाय इसके कि जाड़े की डाक के जोजीला पर होने की सूचना मिलती रहे। श्रीनगर से लद्दाख तक थोड़ी-थोड़ी दूर पर डाक-बँगले हैं, जिनमें ठहरने वाले को बालतल तक आठ आना, और आगे एक रुपया रोज देना पड़ता है; लेकिन सराय (यह भी अच्छी है) में ठहरने वाले को कुछ नहीं देना पड़ता। ऐसे पड़ाववाली जगहों पर ठीकेदार के जिम्मे लकड़ी और चारे का प्रबन्ध किया गया है। पड़ाव से थोड़ा हटकर नीचे से गुम्बेर नदी जाती है। जोजीला का जल एक तरफ जहाँ गाँदर्बल वाली सिन्धु निकलती है, वहाँ दूसरी तरफ यह गुम्बेर निकली है। भाषा और भौगोलिक दृष्टि से काश्मीर जोजीला ही पर खतम होता है। उसकी दूसरी तरफ बालतिस्तान का प्रदेश आरम्भ होता है।

मिचोई से आगे मटायन में (११००० फीट) ६ मील तक मई के समाप्त होने पर भी बर्फ पड़ी रहती है। सर्दी बहुत अधिक है। दिन में चलने वाली जल प्रणालियाँ सबेरे बर्फ हो जाती हैं। छोटे छोटे गड़हों में जमी हुई बर्फ की चादरें जरा-सी ठोकर से कच्चे काँच की तरह टूट जाती हैं। इनके छोटे-छोटे टुकड़ों को खिड़कियों में जड़ने को तबियत करती है; किन्तु जरूरत इतनी ही है कि यह गर्मी में भी ऐसी ही बनी रहें।

छोटी धारों के साथ कल दिन में वहाँ बालू थी। इस समय वह बालू भी ऐसा पक्का सीमेंट बनी है, कि उस पर बर्छी भी मुश्किल से असर कर सकती है। जगह-जगह पर्वत-शिखर से गिरी हुई 'माणियाँ' देखने में आती हैं। 'माणी' ज्ञात होता है, संस्कृत हिमानी (Avalanche) से बिगड़कर काश्मीरी में बना है। जोजीला पर, मिचोई से थोड़ा ही ऊपर, अभी सात दिन भी नहीं हुए, इसी तरह की

एक माणी ने तीन आदमी और तीन घोड़ों की बलि ली। इनमें एक घोड़ा लँगड़ा होकर बच गया। अस्तु, यह माणियाँ बड़ी बला हैं। न जाने कब लाखों मन बर्फ पास के पर्वत-शिखर से नीचे आकर यात्री को अपने नीचे दबा ले। इससे बचाव का बीमा सिर्फ प्रातः काल है, ९—१० बजे तक का समय। उस वक्त बर्फ भी कड़ा रहता है; लेकिन स्वार्थी मनुष्य जल्दी के मारे कभी उसके बाद भी चल पड़ता है, जिसके लिये कभी-कभी किसी को बलि चढ़ानी पड़ती है। यद्यपि यह बात हजारों में एक के लिये होती है।

मटायन एक छोटा सा गाँव है। जोजीला के उस तरफ जिस तरह कारू, कुद्नू, कचलू आदि के सुन्दर वृक्षों की अधिकता पाई जाती है, उसी तरह इस पर वृक्षों का बिलकुल अभाव है। वनस्पति के नाम पर सिर्फ घास होती है।

अभी-अभी जिन जगहों से बर्फ पिघल गया है, धारा ने भीतर से हरियाली फेंकना शुरू कर दिया है। अभी कुछ दिनों तक और, पशु और मनुष्यों को कष्ट है। गाँवों में, जहाँ लकड़ी का कष्ट है, वहाँ जलाने के लिये भी गायों के गोबर, लीद, लेंडी के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है। स्त्री पुरुष न नहाने की मानों कसम खाये हुए हैं। क्या करें, सर्दी ही ऐसी है। कपड़े सभी ऊन के हैं। किसी-किसी के पास भेड़ या बकरी की खाल भी है। स्त्रियों की पोशाक लम्बा ऊनी चोगा, पैर में लम्बा ऊनी जूता (पप्पू) जिसके ऊपर पट्टी की तरह लिपटी कोई चीज, सिर पर ऊनी थेले की तरह का कनटोप, कमर में कमरबन्द। मकान में पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों के ढेर-सी दीवारें चुनी हैं। दूर से पत्थरों के ढेर और मकान में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। इन पत्थरों और हिमों के बीच में प्रकृति ने इनके लिये क्या रख छोड़ा है, जिसकी प्रतीक्षा में यह लोग धूनी रमाये बैठे हैं। उपज में एक तरह बर्फ पिघलने पर ५,६ महीने बकरी भेड़ों की चरागाह से दूध, मांस, चमड़ा है, दूसरी तरफ छोटे-छोटे खेतों में यदि निकृष्ट अन्न, चुम्ब, या ग्रिम कुछ थोड़ा हो गया, तो सत्तू का काम चल सका। सत्तू और चाय, यही यहाँ के लोगों का प्रधान खाद्य है।

मटायन के बाद नीचे-ऊपर होते हुए गुम्बेर के तट से द्रास को जाना होता है। पहाड़ियाँ पथरीली, वनस्पति से नितान्त शून्य हैं। इन पर जो छोटे बड़े असंख्य पत्थर पड़े हुए हैं, जरा-सी ही वृष्टि या हवा के लगने से नीचे लुढ़कने लगते हैं। और कभी-कभी किसी यात्री या घोड़े की सिर्फ हड्डी ही तोड़ कर छोड़ देते हैं, अथवा प्राण भी ले लेते हैं।

द्रास (१०१४४ फीट—१२½ मील) गुम्बेर और द्रास नामक दो नदियों के संगम से थोड़ा हटकर ऊपर है। पहाड़ियाँ यहाँ भी बिलकुल नंगी हैं। जिनमें से कुछ के ऊपरी भाग पर अब भी हिम है। गेहूँ के खेत अभी-अभी बोने शुरू हुए हैं। खेती के काम में अधिक भाग यहाँ स्त्रियों ही का होता है। बैलों की जगह आम तौर पर यहाँ जोमो से काम लेते हैं। यह नर याक् (चम्वरी) और गाय के संयोग से पैदा होता है। खचर की तरह इसकी भी सन्तान आगे को नहीं चलती। लेकिन बैल से यह अधिक मज़बूत तथा शील सहन करने वाला होता है। इसका रंग अधिकतर काला होता है। पीठ पर डील नहीं होता। पूँछों तथा पटों के बाल याक् की भाँति अधिक लम्बे होते हैं। गेहूँ के अतिरिक्त ग्रुम्ब भी यहाँ पैदा होता है, जो कि सत्तू के काम में आता है। काश्मीर और बालतिस्तान दोनों एक दूसरे से बिलकुल उलटे हैं। यदि एक को बाग और वनस्पति का स्वर्ग कहें, तो दूसरे को वनस्पति शून्य नंगे पर्वतों का ठंडा नरक कहा जा सकता है। आश्चर्य यह है कि यहाँ के लोग कैसे अपना गुजारा करते हैं। यह लोग घोड़ों के जरिए व्यापारियों के माल को, श्रीनगर, लद्दाख आदि पहुँचाते है। खाने के लिये मक्की यह काश्मीर से लाते हैं। यद्यपि प्रकृति का बर्ताव इस प्रदेश से निष्ठुर है, तो भी यदि यहाँ के लोग कुछ बुद्धि से काम लेते, तो वह बहुत कुछ नर्म किया जा सकता था। उदाहरणार्थ—यहाँ पर सफेदा वीरी (Willow) के वृक्ष लगाये जा सकते हैं। राज्य की तरफ से जहाँ-तहाँ कुछ वृक्षों को लगाकर दिखाया भी गया है। इससे एक तो उन्हें मकानों के लिये लकड़ियों का कष्ट न रहता, दूसरे खाना बनाने तथा जाड़े में आग तापने के लिये भी कष्ट न उठाना पड़ता।

द्रास से एक रास्ता जास्कार को जाता है और दूसरा लद्दाख को। व्यापारियों के माल के रखने और भेजने को

यहाँ मालगोदाम हैं। राज्य की तरफ से कुली का आधा आना मील और घोड़े का एक आना मील किराया निश्चित है। इस अभागी उपत्यका के निवासियों के लिये यह लदाई का काम अहोभाग्य समझिये। द्रास में डाकघर, तारघर, प्राइमरी उर्दू स्कूल और एक डाक बंगला है। यहाँ नदी के ऊपर कच्ची ईंटों का एक किला भी है, जिसकी कुछ दीवारें अब भी खड़ी हैं। किले के चारों ओर खाई है, जिसमें कभी पानी भरा रहता होगा। द्रास उपत्यका में यद्यपि आज एक भी हिन्दू नहीं है; किन्तु यह हिन्दू-संस्कृति के प्राचीन चिह्नों से सर्वथा वंचित नहीं है। द्रास से एक मील लद्दाख वाली सड़क की ऊँचाई पर, कुछ चौरस-सी भूमि मिलती है। चलते-चलते एक बड़े पत्थर को अन्य पत्थरों की भाँति एक खेत की मेड़ बने देखा। उस पर के बने हुए सुन्दर चक्र को देखकर एक बार मैं विचार में पड़ गया—यह तो किसी मन्दिर का स्तम्भ ज्ञात होता है; किन्तु मुझे बहुत देर तक विचार में लीन न रहना पड़ा, कि सड़क के दूसरी ओर के खेतों की मेंड पर दो बड़े बड़े पत्थर खड़े दिखाई पड़े। यह वस्तुतः किसी हिन्दू मन्दिर के द्वार के स्तम्भ थे। अब भी पौरुष-परिमाण द्वारपाल की मूर्ति इनमें बनी है। इस अभागे मन्दिर के भाग्य में क्रूर हाथों द्वारा क्या लिखा था, इसका मानो यह परिचय दे रहे हैं।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा, जोजीला के इस तरफ का प्रदेश बालतिस्तान है। यहाँ के रहनेवाले बाल्ती और उनकी भाषा भी बाल्ती कहलाती है। इनकी आकृति और भाषा, दोनों ही तिब्बत से मिलती हैं। बालतियों के अतिरिक्त द्रास के आस-पास के गावों में दर्द लोगों का निवास है। दर्द लोगों का असली देश गिलिगत, चिला आदि है, जिसे दर्दस्तान भी कहते हैं; किन्तु न जाने कब से यह लोग यहाँ आकर बस गये हैं। इनके चेहरों पर मंगोलियन रक्त की स्पष्ट छाप दीख पड़ती है, तो भी भाषा इनकी आर्य है। यहाँ उनके कुछ शब्द देता हूँ—

संस्कृत	दर्द	संस्कृत	दर्द
अश्व	अश्प	अजर	अयि
गौ	गाव	श्वन्	शुङ्
गोधूम	गुम्	कर्ण	कन
अक्षि	अशि	हस्त	हथ
पाद	पा	मनुष्य	मनुष
बालक	बाल	स्वसा	शस
अष्टौ	अष्ट		

यहाँ तथा दर्दस्तान के भी सभी दर्द सुन्नी-मुसलमान हैं।

द्रास से शिम्साखर्बू २१ मील है। रास्ता कठिन तो नहीं है; किन्तु ऊबड़-खाबड़ है। इधर की पहाड़ियों पर गिरनेवाले पत्थर अधिक हैं; लेकिन यात्री के सौभाग्य से इधर जोजीला के उस पार की तरह वर्षा नहीं होती। पन्द्रह मील की यात्रा समाप्त करने पर ठसगाम आता है। बस्ती दर्द (ब्रोकपा) लोगों की है। हर एक स्त्री-पुरुष की पीठ पर गर्म कपड़ों के अतिरिक्त एक बकरी का छाला भी दिखाई पड़ता है। इधर गेहूँ और जौ की खेती अच्छी होती है। यद्यपि खेत बहुत कम हैं, जिनको कि आबाद करने के लिये यहाँ के निवासी दूर-दूर से छोटी नहरें राज्य की सहायता के बिना लाते हैं। ठसगाम के मीलों आगे-पीछे लोहे की, पत्थरों की अपार राशि है। मैंने सड़क के पास से एक लाल पत्थर उठाया, जो पीछे ज्ञात हुआ, ताँबे का पत्थर है। प्रकृति देवी ने जहाँ इस प्रदेश को वनस्पति से वंचित किया है, वहाँ दूसरी तरफ इन खनिज पदार्थों को कूट-कूट कर भर दिया है। मालूम हुआ, यहाँ लोहा, ताँबा, सोना आदि कितनी ही धातुएँ हैं; लेकिन उनके निकालने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। लोग खेती और माललदाई ही से अपना निर्वाह करते हैं। ट्रीटी रोड मचोई से पामीर (चीनी तुर्किस्तान की सीमा) तक चला गया है। यद्यपि इसकी मरम्मत आदि का सारा खर्च राज्य को देना पड़ता है; किन्तु इसका अधिकार ब्रिटिश ज्वाइंट कमिश्नर का है। इसके किनारे के बंगलों पर भी अधिकार उसी का है। शिम्साखर्बू में एक अच्छा डाक-बंगला तथा सराय है। गाँव बंगले से कुछ ऊपर है। दूर तक हरे-भरे गेहूँ और जौ के खेत दिखाई पड़ते हैं। खूबानी, सेब आदि के वृक्ष भी जगह-जगह लोगों ने लगा रखे हैं। आबादी दर्द लोगों की है। कुल बस्ती २५ घरों की होगी, जिनमें दो घर सुन्नी और शेष नूरबख्शी शिया हैं।

(क्रमशः)

राजा राममोहनराय

लेखक—श्रीयुत गिरीन्द्रनारायणसिंह

आज से प्रायः डेढ़ सौ बरस पहले, जब अतीत गौरव की समाधि पर नवीन सभ्यता का उदय हो रहा था, प्राचीन राजवंशों के अस्तित्वों का अन्त हो रहा था—उनके अवशेषों पर जिन-तिनके प्रभुत्व की प्रतिष्ठा हो रही थी, जब समाज अत्याचारों का केंद्र और धर्म अन्ध-विश्वासों का विकराल रूप बन रहा था जब देश स्वेच्छाचार से स्मशान बन रहा था और विनिद्रित देश-वासी उसके साधन बन रहे थे, तब सन् १७७४ ई० में, बंगाल के हुगली जिलान्तर्गत राधानगर नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में राममोहनराय ने जन्म लिया। उनके पूर्वज ब्राह्मणवृत्ति करते थे; परन्तु समय की गति-विधि देखकर बाद में उन्होंने अपना सनातन व्यवहार छोड़ दिया और राजसभाओं में सभासद आदि के पद स्वीकार करना शुरू किया। राममोहन राय के पिता रमाकान्तराय ने भी मुर्शीदाबाद के नवाबों के अधीन कामकाज किया था और उनका अन्त देखा था। अपनी योग्यता के कारण उन्होंने यश और जमींदारी दोनों ही प्राप्त की। उनका स्वभाव भी बड़ा ही सरल और सुन्दर था; किन्तु उनसे भी अधिक सरलता, और सहृदयता विराजती थी, राममोहनराय की माता तारिणीदेवी के हृदय में। सुयोग्य माता-पिता की देख-रेख में राममोहनराय का लालन-पालन हुआ और उन्हीं के आदेश से सात-आठ वर्ष की अवस्था में ही वह अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिए बैठाए गए। पाठशाला में आरंभिक शिक्षा प्राप्त कर अरबी फारसी का विशेष अध्ययन करने के लिए आप बंगाल के तत्कालीन अरबी-फारसी के शिक्षाकेन्द्र पटना भेजे गए। तीन-चार वर्षों के अन्दर-अन्दर राममोहनराय ने इन साहित्यों में अपूर्व योग्यता प्राप्त कर लोगों को चकित कर दिया; किन्तु यह था अपने पिता-पक्ष की आकांक्षाओं की पूर्त्ति के लिये जो राज-भाषा होने के कारण कमाने-खाने के लिये अरबी-फारसी का अध्ययन आवश्यक समझते थे; किन्तु जिन्हें अपना 'सनातन' ही सबसे प्यारा था और जो अपनी ब्राह्मणवृत्ति में ही लग रहे थे, उन मातृ-पक्ष वालों के अनुरोध से अब उन्हें संस्कृत की ओर झुकना पड़ा। अपने बारहवें वर्ष में वह काशी गए और जाते ही वेद-वेदांग में, दर्शन-मीमाँसा में उलझ गए। सिर्फ चार वर्ष बीतने पाए और अपना अध्ययन समाप्त कर सोलह वर्ष की अवस्था में—वेदान्त और उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त कर, अनेक देवी-देवताओं एवं मूर्ति-पूजा के विरोधी बनकर राममोहनराय निकले!

काशी से घर आए। एक पुस्तिका लिखकर मूर्त्ति पूजा के विरुद्ध युद्ध का श्रीगणेश किया; किन्तु उनके पिता को यह कब बर्दाश्त होता? लाचार राममोहनराय को घर-बार छोड़ना पड़ा। एक अलमस्त की तरह अनिश्चित दिशा के लिये प्रस्थान कर, गाँव गाँव शहर-शहर घूमते हुए भारत की सरहद खैबर का दर्रा पार कर गए। जहाँ कहीं गए 'एक ब्रह्म' का सन्देश सुनाया, अँग्रेजों के विरुद्ध प्रचार किया। बौद्ध-धर्म के अध्ययन के लिये घूमते-घूमते तिब्बत पहुँच गए। ईश्वर-सम्बन्धी अपने विचारों के कारण अपनी जान से हाथ धो बैठने की नौबत आ गई; किन्तु कतिपय तिब्बती महिलाओं ने दया करके उनकी जान बचाई। कहते हैं, उसी दिन से राममोहनराय के हृदय में स्त्री-समाज के लिये जो कोमल-भाव उगे, उसे अन्त तक उन्होंने यत्न से अपने हृदय में धारण किया।

चार वर्ष बाद, पुत्र का अधिक वियोग न सह सकने के कारण रमाकान्तराय ने राममोहनराय को पुनः वापस बुला लिया। घर आए और अपनी अतृप्त विद्या-पिपासा को अँग्रेजी का अध्ययन कर शान्त करने लगे। इस तरह कुछ दिन भी अमन से न बीते थे कि मूर्ति-पूजा और सती-दाह के विरुद्ध आवाज उठाकर, ब्राह्मणों से वाद-विवाद कर, आपने जनता में एक बार फिर अशान्ति उत्पन्न कर दी। रमाकान्तराय पर दबाव डाले गये और एक बार फिर २५ वर्ष के राममोहनराय घर से निर्वासित हुए।

अँग्रेजी के अध्ययन ने अपना प्रभाव दिखलाया। राममोहनराय ने नौकरी की ओर उसे ललचाई आँखों देखा। सन्



१८०० से १८१३ ई० तक रामगढ़, भागलपुर और रंगपुर में, उपर्युक्त जिलों के जज-कलक्टरों के मातहत दीवान का पद सुशोभित किया ; किन्तु उनकी आत्मा गुलामी से भागती फिरती थी। वह स्वतन्त्र होकर अपने मत के प्रचार के लिये मौका ढूँढ़ने लगे।

सन् १८१४ ई०में वह रंगपुर से कलकत्ते चले आए और अपने ही शब्दों में सांसारिक झंझटों से निवृत्त होकर धर्म-चर्चा एवम् सत्य-अन्वेषण में प्रवृत्त हुए। अब उन्हें अपने जीवन की चिरचिंतित चिन्ताओं की ओर पूर्ण रूप से ध्यान देने का अवकाश मिला, जिसके लिये अबतक वह तैयारी कर रहे थे। अपने कामों में दस-पाँच सच्चे और सुधार-प्रिय मित्रों का सहयोग भी उन्हें प्राप्त हुआ। बस और क्या चाहिए ? राममोहनराय अपनी लौह-लेखनी और जोरदार भाषणों से 'गुमराहों' को सुधारने लगे—घोर निद्रा में सोनेवालों को जगाने लगे।

राममोहनराय न ब्राह्मणत्व के विरोधी थे और न हिन्दू-धर्म द्रोही। उनके क्रांतिकारी सुधारों के पीछे थी हिन्दुओं के सुधारने की सत्कामना तथा वेदों और उपनिषदों को भूले हुए, अज्ञानांधकार में पड़े हुए, बहु देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा में लगे हुए, तंत्र-मंत्र के पंक में फँसे हुए अपने स्वधर्मियों को प्राचीन धर्म पर लाने की शुभ-कामना ! इतना ही नहीं, जिस प्रकार सिक्ख-संप्रदाय का श्रीगणेश कर गुरु नानक ने और आर्य्यसमाज का झंडा उठा कर ऋषि दयानन्द ने पंजाब को एक बारगी मुसलमान हो जाने से बचाया, उसी प्रकार बंगाल के शिक्षित हिन्दुओं को ईसाई हो जाने से राममोहनराय ने रोका। उस समय के शिक्षित बंगाली, अँग्रेज़ी के बवंडर में पड़ कर, धड़ाधड़ ईसाई हो रहे थे, और वह समय दूर न था, जब क़रीब-क़रीब सारा शिक्षित बंगाल ईसाई-मत ग्रहण कर लेता। ऐसे ही समय में राममोहनराय ने अपनी युक्तियों से उन्हें ब्रह्म-समाज की श्रृंखला में बाँध कर,बहकने से बचाया। क्या वह हिन्दू-धर्म-द्रोही था, जिसने उपनिषदों के सटीक अनुवाद कर, उन्हें अपने व्यय से प्रकाशित कर, दूर-दूर बँटवा उनका प्रचार कर अपने सुधारों का समारोह किया था ? अलबत्ता शूद्रों और स्त्रियों में हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के पठन-पाठन-निषेध की घातक घोषणा की राममोहनराय ने अव-हेलना की थी। ऋषि-मुनियों के सद्धर्म का, ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष, सब को पढ़ने और मनन करने का अधिकार है, इसका सन्देश सुनाया था। वेद और उपनिषदों को किसी एक वर्ण की बपौती मानने के लिये वह तैयार न थे। बस, ईसाई और मुसलमान कह कर उनकी चुटकियाँ ली जाने लगीं, उन्हें नास्तिक करार दिया गया। प्रलयंकर वात्युद्ध चल पड़ा। राममोहनराय और उनके विपक्षियों ने भी, अपने मतों के प्रतिपादन में जिन युक्तियों से काम लिया, उनसे सहमत होना असंभव है। उनके प्रतिपक्षी लकीर के फकीर थे—बाप-दादा जो करते आए उससे एक तिल भी बढ़ने घटने के लिये तैयार न थे। राममोहनराय क्रान्तिकारी सुधारक थे। वह हिन्दू-समाज की शताब्दियों की संकीर्णताओं को क्षणों में ही उखाड़ फेंकना चाहते थे। फिर भी उनका संकल्प पवित्र था।

राममोहनराय का हृदय विशाल था। वह विश्व-भर के शुभ-चिन्तक थे। हिन्दू-धर्म के साथ ही ईसाई-मत की भ्रांतियों को विशुद्ध करने की ओर भी उनका ध्यान गया। खीष्ट-धर्म में प्रचलित अवतार-पूजा के विरुद्ध वह उठ खड़े हुए। ईसाइयों ने प्रतिवाद किया, उन पर व्यक्तिगत आक्षेप किया ; लेकिन व्यर्थ। 'ब्राह्मणिकल मैगज़ीन' में राममोहन-राय ने उनका मुँहतोड़ उत्तर-प्रत्युत्तर देकर उनकी ज़बान बन्द कर दी। कहते हैं, ऐसी सत्समालोचना, ऐसी तर्क-पूर्ण सुन्दर रचना, तब से अब तक किसी भी भारतीय या (संभवतः) विदेशी ने इस सम्बन्ध में नहीं की। इंगलैंड और अमेरीका में इस विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण की कई आवृत्तियाँ छपीं और हाथों-हाथ उड़ गईं। यह है राममोहनराय की प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण, उनकी विद्वत्ता का अद्वितीय-अमर-स्मृति-चिह्न !

वह परले सिरे के धार्मिक थे। उनकी दया और ईश्वर-भक्ति प्रसिद्ध थी। वह 'एक ब्रह्म' के मानने वाले थे, और अपने ब्रह्म की पूजा-अर्चा का उन्हें बहुत खयाल था। इसी सच्ची पूजा के लिये उन्होंने 'आत्मीय-सभा' स्थापित की, और, उस पूजा का अर्थ समझने-समझाने के लिये 'वेद-मन्दिर' को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त वाद-विवाद के लिये अन्य संस्थाएँ कायम कीं। फिर भी, जब तक सन् १८२८ ई० में 'ब्रह्म-समाज' का संस्थापन नहीं हो गया,

तब तक राममोहनराय को चैन न पड़ा। ब्रह्म-समाज-द्वारा प्रचारित धर्म को वह विश्व-धर्म कहते थे और ब्रह्म-मन्दिर का द्वार सभी धर्म और जाति के लोगों के लिये खोल रक्खा था। वहाँ एक ईश्वर की, निराकार ब्रह्म की, पूजा-अर्चा की व्यवस्था थी। उस ब्रह्म का कोई खास नाम न था, न उन के रहने की कोई जगह का ही पता बतलाया जाता था। उपासना के समय या उसके आगे-पीछे किसी भी धर्म के विरुद्ध कुछ कहने का आदेश नहीं था, और सच्चरित्रता, दयालुता, दानशीलता और उदारता तथा पवित्रता की ओर निर्देश किया जा सकता था। कहते हैं, उस समाज में हिन्दूधर्म में प्रचलित वैराग्य—कठिन तपस्या 'अकर्मण्यता' आदि के लिये स्थान न था और यह समाज उस नीति का घोर विरोधी था, जो मनुष्य-मात्र को संसार से विरक्त बनाकर 'मूर्ख' बना देता है; लेकिन उसमें प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में निहित संसार में रहकर और सांसारिक बन कर भी अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मुक्ति प्राप्त करने का सन्देश था; विश्व-बन्धुत्व, ईश्वर-भक्ति और धर्म-सहिष्णुता का सुन्दर समुद्देश था। लेकिन, लिखते हुए दुःख होता है, राममोहनराय का वह सुन्दर धर्म इने-गिने दिनों तक ही अपने प्रवर्तक के निर्दिष्ट मार्ग पर रह सका। शीघ्रातिशीघ्र उसमें परिवर्त्तन होने लगे और कुछ दिनों के बाद उसके स्वरूप में घोर परिवर्तन हो गया। आज यदि राममोहनराय सहसा कहीं से इस संसार में पुनः आ जायँ और अपने प्रचारित धर्म की दशा देख पाएँ, तो वह इसे पहचान भी सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है।

अस्तु, धर्म-चर्चा या इस विषय के सुधारों में लगे रह कर ही सन्तुष्ट हो जाने वाले व्यक्तियों में राममोहनराय न थे। धर्म-चर्चा के साथ ही समाज-सुधार की ओर भी उनका ध्यान था। सन् १८१८ ई० में उन्होंने सती-दाह के विरुद्ध पहले-पहल लिखा। उनकी वाणी में सरस्वती थी, उनकी लेखनी में जादू था; किन्तु सात्विक सती देवियों का उस समय भी अभाव न था। उनके त्याग और मर-मिटने की उत्कट अभिलाषा की बात भी राममोहनराय से छिपी न थी। उन्होंने साफ समझ लिया कि इस सम्बन्ध में पुरुष जो ज्यादती करते हैं, वह अपनी मान-मर्यादा अथवा अन्ध-परंपरा के वशीभूत हो स्त्रियों को ज़बर्दस्ती चितारोहण करने पर मजबूर करते हैं, सिर्फ उसी घृणित प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने से सती-दाह बन्द न होगा; अतएव उन्होंने सती-दाह को ही शास्त्र-विरुद्ध, अमानुषिक एवम् असभ्य कह कर बन्द कर देने के लिये आन्दोलन करना शुरू किया। उनका कहना था—दूसरे लोक में अथवा पुनर्जन्म में उसी पति के पाने की अभिलाषा से अपने-आप को मिटा देना ठीक नहीं; कारण, इसमें स्वार्थपरता की गंध है। वह लोगों को यह बतलाना चाहते थे कि प्राचीन ऋषियों की तरह आत्म-विस्मृति में अपना वर्तमान अस्तित्व मिटाकर ईश्वर में लीन हो जाने से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है। चारों ओर सती-दाह का बाजार गर्म था। अधिकतर स्त्रियों को अपनी इच्छा के विरुद्ध धधकती हुई चिता की ज्वाला में जल मरना पड़ता था। राममोहनराय ने अपने निकट सम्बन्ध की एक स्त्री को चितारोहण करते स्वयं देखा था। वह बेचैन हो उठे। फिर भी जिस समय और जिस हद तक वह इस प्रथा के मूलोच्छेद में प्रवृत्त हुए थे, वह उपयुक्त न था। फलतः आरम्भ में उनके प्रयत्नों का कोई विशेष फल न हुआ; मगर वह कब बाज आने वाले थे? अपने अथक परिश्रम और अपार उद्यम से तब तक निश्चिन्त न हुए, जब तक, ४ दिसम्बर सन् १८२९ ई० में यह प्रथा लार्ड बेंटिंक-द्वारा कानून से निषिद्ध न हो गयी। फिर राममोहनराय ने बहुविवाह एवम् 'कुलीनत्व के कलंक' को बंगाल से उखाड़ फेंकने के लिये भगीरथ प्रयत्न किया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरुद्ध एवम् विधवा-विवाह के प्रचलन के लिये भी वह बहुत कुछ करते, यदि अपने अन्य सुधारों के लिये ही, विरोध और प्रतिकूलता के पंक में उन्हें आकंठ न फँस जाना पड़ता।

अँग्रेजी शिक्षा के वह बहुत बड़े हामी थे। पूर्व के पोषकों में और पश्चिम के पिट्ठुओं में जो प्रचंड वाद-विवाद उस समय चला था, उसमें आप ने पश्चिमी शिक्षा के ही समर्थन में अपनी शक्ति लगाई थी। लार्ड एम्हर्स्ट को जो शिक्षा-सम्बन्धी पत्र आप ने लिखा था, उसमें भी आपके अँग्रेजी-प्रेम का अच्छा प्रदर्शन है। फिर कलकत्ता के हिन्दू कॉलेज के संस्थापन में भी आपने बड़ा जोर लगाया था। प्रसिद्ध शिक्षा-प्रेमी मि० डेविड हेयर और डॉ० डफ को भारत में अँग्रेजी-शिक्षा का विस्तार करने में इतनी सफलता

न मिली होती, यदि उनको राममोहनराय का सहयोग न मिलता। सन् १८२२ ई० के लगभग उन्होंने एक स्वतंत्र स्कूल भी खोला : लेकिन आज सब कुछ देख-सुन कर हम उनके अंग्रेज़ी-अनुराग का अनुमोदन नहीं कर सकते, यद्यपि सर सय्यद और महामना मालवीयजी ने भी इस दिशा में वही काम किया है, जो राममोहनराय को प्रिय था; लेकिन, समय ने साबित कर दिया है कि अंग्रेजी शिक्षा से भारत का उद्धार होने वाला नहीं। राममोहनराय को हम इस 'अपराध' के लिये कदापि क्षमा न करते, यदि उन्होंने अपनी मातृभाषा बंगवाणी की पूजा के लिये भी महान् आयोजन न किया होता। लार्ड वेंटिंक को आपने जो मान-पत्र दिया था, वह बँगला में था। बँगला के प्रथम समाचार पत्रों में 'संवाद-कौमुदी' निकालने का श्रेय भी आप ही को है। बँगला में भूगोल, व्याकरण आदि कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं। बाइबिल और कुरान का बँगला-अनुवाद किया। बीसियों विषयों पर लिख कर अपनी मातृभाषा का भंडार भरा। अस्तु, अंग्रेजी और बँगला के अतिरिक्त संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी के भी आप प्रकांड पण्डित थे। कुछ दिनों तक 'मिरत उल-अखबार' नामक पत्र का सफलता-पूर्वक सम्पादन तथा संचालन किया। 'तुहफतुल मुवाहीदीन' प्रभृति अरबी-फारसी की कई अच्छी किताबें लिखीं, जो आज भी इन साहित्यों के जानने वालों के ज्ञान-वृद्धि के सुन्दर साधन हैं। संस्कृत में भी आपने बहुत लिखा। 'वेदांत का संक्षिप्त रूप', 'केन उपनिषद्' 'ईशोपनिषद्' आदि ग्रन्थों के लेखन, सम्पादन या अनुवाद में, जहाँ देखिए, आप के मेधावी मस्तिष्क को मुहर लगी हुई नज़र आएगी। फिर 'सती-दाह', 'ईसाई धर्म में अवतार-पूजा', 'स्त्री-जाति के स्वत्व', 'हिन्दू-धर्म में एकेश्वरवाद' एवम् अन्य सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा कानून-सम्बन्धी आप के अंग्रेजी-लेख भी विद्वतापूर्ण और मार्के के हैं।

राममोहनराय राजनीति के भी प्रचंड विद्वान् थे और अपने स्वदेश के लिये उनके हृदय में, आज के किसी भी भारतीय नेता से कम प्रेम न था। यद्यपि उस समय की परिस्थिति आज से बहुत भिन्न थी, फिर भी स्वतन्त्रता का वह मस्त पुजारी अपनी बाल्यावस्था में ही अपने देश के विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठाकर चुका था। यद्यपि बाद में उनके विचारों में परिवर्तन हो गया था, तथापि उनके हृदय में देश की स्वतन्त्रता के लिये अन्त तक जोश रहा। वह उसके लिये क्षण-क्षण लड़ते रहे। भारत में कानूनी व्यवस्था के लिये लड़े और भारतीयों के उन अधिकारों के लिये मचले, जिसे वह समझते थे—वे सुरक्षित रख सकेंगे। जूडीशियल और एक्जिक्यूटिव विभागों के पृथक्करण के लिये उस नृसिंह ने उसी वक्त आवाज उठाई थी और इतने अधिक सैनिक व्यय के लिये 'कम्पनी सरकार' पर उन्होंने तभी रोष प्रकट किया था। उन बातों को बीते सौ वर्ष होने को आए हैं, फिर भी ये दोनों समस्याएँ भारतीयों के सम्मुख आज भी उसी रूप में वर्तमान हैं, यह कितने खेद की बात है! अस्तु, राममोहनराय प्रेस की स्वतन्त्रता के लिये भी लड़े और जूरी-प्रथा के प्रचलन के लिये भी प्रयत्नशील हुए। उन्होंने राजकर्मचारियों को अपनी हरकतों के लिये उत्तरदायी होने पर जोर दिया और दीवानी तथा फौजदारी कानूनों के एकत्र संग्रह किए जाने के लिये घोर आन्दोलन किया। भारतीय राजनीति के अलावा वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने फ्रांस की दूसरी राजक्रान्ति एवं फ्रेंच तथा अमेरिकन 'डिक्लरेशन ऑफ राइट' को गौर से सोचा-विचारा था; किन्तु अपने सुधार-सम्बन्धी कामों में फँसे होने तथा अपने देशवासियों की राजनीति-विषयक उदासीनता एवं अकर्मण्यता के कारण उन्हें बढ़कर लड़ने के लिये उत्साह न होता था; लेकिन वह स्वतन्त्रता के उपासक थे, वैध शासन के पक्षपाती थे। जो कुछ उन्होंने इस दिशा में किया, वही बहुत था। कारण, भारत के सुदिन आने में तब बहुत देर थी।

इस तरह सन् १८१४ से सन् १८३० ई० तक राममोहनराय कलकत्ते में अनवरत परिश्रम कर, अपने मतों के प्रतिपादन में लगे रहे और इस अवधि में अपने अधिकांश प्रयत्नों का सफल-स्वरूप देख-देखकर प्रसन्न होते रहे; लेकिन उनकी एकही अभिलाषा अब तक पूरी न हो पाई थी और वह थी, इंगलैण्ड जाकर अँग्रेजों को भारतीय समस्याओं से परिचित कराना। अपने जीवन के आरम्भ से अब तक या तो वह प्रतिकूल परिस्थिति से लड़ते रहे अथवा

अपनी योजनाओं का सफल स्वरूप देखने के प्रयत्न में पागल रहे ; किन्तु जब वह ब्रह्म-समाज की नींव पक्की कर चुके, तब अपना कर्मक्षेत्र छोड़ कर विदेश भ्रमण करने की धुन सवार हुई। ईश्वर की कृपा से एक सुयोग भी मिल गया। अन्तिम मुग़ल-सम्राट् अभागा बहादुरशाह घोर विपत्तियों में पड़ा था। उन दिनों ईस्ट इंडिया कम्पनी उसके अधिकारों को आए दिन कुचलती जा रही थी। कम्पनी के कर्मचारी बहुत बुरा बर्ताव करने लग गए थे। बेचारे बहादुर शाह ने सोचा—महारानी विक्टोरिया उसकी इस विपत्ति में अवश्य सहायता करेंगी। एक 'मेमोरियल' भेज कर, उसने अपने कष्टों की कहानी कहने का निश्चय किया। राममोहनराय बुलाए गए—उन्हें राजा की उपाधि दी गई और उन्हें राज-दूत बनकर विलायत जाने को कहा गया। उनके लिये, इससे बढ़कर और कौन मौक़ा मिलता ?

सन् १८३१ ई० में राममोहनराय इंगलैंड पहुँचे। बहादुरशाह के लिये लड़े, उसकी पेंशन में वृद्धि करवाई। फिर ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर के पुनर्विचार होते समय उपस्थित होकर अपने स्वदेश के स्वत्वों की, भरसक रक्षा करने के प्रयत्न किये। सती-दाह-सम्बन्धी मामला उस समय प्रीवी काउंसिल में पेश था। राममोहनराय उसके फ़ैसले के समय वहाँ उपस्थित होकर यह सुनकर परम प्रसन्न हुए कि वृटिश साम्राज्य के उस उच्चतम न्यायालय ने भी सती-दाह को ग़ैर क़ानूनी करार दिया। हाउस ऑफ कामन्स की सिलेक्ट-कमिटि के सामने बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की प्रार्थना पर उन्होंने अपना लिखित वक्तव्य पेश किया। फिर भारत और भारतीयों से सम्बन्ध रखने वाली कितनी ही अन्य समस्याओं को वृटिश सरकार तथा वृटिश जनता के सामने रखा। भारत-सम्बन्धी कई ट्रेक्ट और पुस्तकें लिखीं और छपवाकर प्रचारित कीं। इस तरह वे इंगलैण्ड में भी अपनी अपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन करते रहे।

इंगलैण्ड से सन् १८३२ ई० में राममोहनराय फ्रांस गये। उनका बड़ा ही शानदार स्वागत हुआ ; लेकिन अफ़सोस ! उनके उपयोगी जीवन का कुछ दिनों के बाद ही एकाएक अन्त हो गया। विदेश में प्राप्त अपने सम्मानों की कथा कहने के लिये—अर्वाचीन भारत का विदेश जानेवाला प्रथम प्रतिनिधि, स्वदेश लौटने का सौभाग्य न प्राप्त कर सका। अपने जीवन के संध्याकाल में, कितने ही अन्य महापुरुषों की तरह, महान् आर्थिक कष्ट भोग कर, स्वदेश लौटने के लिये लालायित हो कर, सन् १८३३ ई० की २७ सितम्बर को भारत का वह चमकता हुआ सितारा इंगलैण्ड में ही निष्प्रभ हो गया ! ता० १८ ऑक्टूबर के दो बजे दिन में, पूर्ण शान्ति और सादगी के साथ, 'ब्रिस्टल' के पास स्थित 'स्टापलेटन-ग्रोव' नामक स्थान में, राजा राममोहनराय की पवित्र मिट्टी, मिट्टी में मिल गई ! उनके आदेशानुसार उन्हें किसी क़ब्रिस्तान में समाधिस्थ न किया गया सही ; लेकिन बाद में, कई कारणों से उन श्रद्धास्पद कणों को 'आर्नोज़ वेल' की सुन्दर सिमेटरी में स्थानान्तरित करना पड़ा। राजा राममोहनराय के परम मित्र श्रीयुत द्वारकानाथ टैगोर ने सन् १८४३ की २९ मई को उस समाधि पर संगमरमर के एक सुन्दर स्मृति-मन्दिर का निर्माण करा दिया, जिसकी सीढ़ियों पर आज भी, राजा राममोहनराय की मृत्यु-तिथि के दिन, प्रवासी भारतवासी प्रति वर्ष अपनी श्रद्धांजलि चढ़ा आते हैं।

(५१वें पृष्ठ का शेषांश)

मालूम पड़ रहा है कि अच्छा हुआ, यह जीवन स्थिर रहा। आज सुकार्य में तो लगा। अब मुझे कुछ चिन्ता नहीं है, कुछ दुःख नहीं है।'

वह चल दिया। शीला के मुख से निकल गया—मुकुट, तुम अब देवता के पद को प्राप्त कर चुके हो।

वह एकटक उसकी ओर देख रही थी। अचानक उसने देखा कि वह गिर पड़ा ! वह उठा नहीं। कुछ ग्रामवासी उधर आ रहे थे। उन्होंने उसे देखा और चिल्ला पड़े—पागल मर गया !

शीला के नेत्रों से आँसू बहने लगे। उसी समय मुरारी के मुख से शब्द निकला। वह उसके पास आई।

'मुझे वहाँ से किसने बचाया ?'—मुरारी ने पूछा।

'पागल ने।'—वह रो रही थी।

'ओ, तुम रो रही हो !'—मुरारी ने पूछा।

'नहीं, मैं यह सोच रही हूँ कि हम पागलों को न समझ कर उनके साथ कैसा अन्याय करते हैं !'

पागल

लेखक—श्रीयुत डॉक्टर धनीराम प्रेम

शीला और मुकुट समझते थे कि उनका उस दिन का मिलन अन्तिम था। शीला तो इसके पूर्व के मिलन को ही अन्तिम बना चुकी थी और मुकुट ने आँखों से आँसू बहाते हुए उसकी बात मान भी ली थी। वह शीला से फिर कभी न मिलने की प्रतिज्ञा कर चुका था; परन्तु वह उस प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रह सका। प्रतिज्ञा किये हुए केवल तीन दिन हुए थे, और फिर वह शीला के बाग में जा पहुँचा।

उन तीन दिनों में उसने बहुत कुछ सोचा था। सोचने के अतिरिक्त उसके लिए करने को और कुछ था ही क्या? शीला को वह प्राणों से भी अधिक चाहता था। शीला ने जहाँ अपने लिए स्थान बनाया था, वहाँ और किसी को वह झाँकने भी न देता था। शीला ने भी उसे प्यार किया था। यदि प्यार करने तक ही बात रहती, तो वे दोनों उसी मार्ग पर अनिश्चित काल तक चलते रहते, जो उन्होंने कुछ दिन पहले अपने लिए बना लिया था; परन्तु बात वहीं तक न रही। ज्यों-ज्यों दोनों अधिक समझदार होते गए, ज्यों-ज्यों नई-नई समस्याओं का सामना पड़ता गया, त्यों-त्यों उन्हें जीवन के वास्तविक रहस्य का अनुभव होने लगा। जीवन का खेल केवल प्यार करने तक ही सीमित न था, उसके परे और भी कई बातें थीं—विवाह था, गृहस्थ-जीवन था, सांसारिक सुख थे। शीला को इन सब का भास अधिक हुआ। वह उस पथ से हट गई, जिस पर कुछ समय पूर्व तक वे दोनों चलते रहे थे। उसने सोचा और समझा। उसे विदित हुआ कि मुकुट उसके प्यार के योग्य था; परन्तु उसके साथ विवाह के योग्य नहीं। गृहस्थ-जीवन के लिए उन दोनों में बड़ा वैषम्य था। इसीलिए उसने मुकुट की ओर से अपना ध्यान हटाकर एक दूसरे नवयुवक के साथ विवाह करने की स्वीकृति दे दी थी। इसीलिए उसने मुकुट को बुलाकर अपना सारा भेद खोल दिया था और उससे फिर न मिलने की प्रतिज्ञा करा ली थी।

उन तीन दिनों में मुकुट के मस्तिष्क में इन्हीं सब विचारों की उथल-पुथल मचती रही। शीला कुछ दिनों में दूसरे की हो जायगी। वह फिर क्या करेगा? क्या वह भी किसी दूसरी को अपनी बनाएगा? क्या वह भी उस पथ से विचलित हो जायगा? परन्तु जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में उसके विचार शीला के विचारों से भिन्न थे। उसने उसी पथ पर रहना निश्चय किया, शीला के बिना, अकेले ही। साथ छूट जाने के कारण उसका हृदय व्यथित था। वह कभी रोता, कभी कलपता और कभी किलकारी मार कर हँस देता; परन्तु फिर वह होश में आता और अपने हृदय को दृढ़ बनाता। अन्त में उसने किसी दूर देश में जाने का निश्चय कर लिया; ऐसे देश में, जहाँ से कभी शीला की झलक दिखाई न दे, जहाँ से वह फिर कभी शीला के पास लौटकर न आ सके; परन्तु इस निश्चय के साथ ही उसे शीला को एक बार, अन्तिम बार, देखने की इच्छा हुई। और इसी कारण उसने अपनी प्रतिज्ञा को भंग किया।

° ° °

'तुमने तो प्रतिज्ञा की थी कि मुझसे ....' शीला बोली।

'हाँ, की थी शीला, मुझे याद है।'

'फिर यहाँ कैसे?'

'एक बार तुम्हारे दर्शन करने।'

'यह मानसिक शिथिलता है मुकुट, यदि शुरू में ही ऐसा होगा, तो हम दोनों एक दूसरे को कैसे भूल सकेंगे?'

'ऐसा फिर न होने पायेगा शीला, यह अन्तिम मिलन है।'

'ऐसा तो तुमने पिछली बार भी कहा था?'

शीला ने उससे यह बात इस प्रकार कही, मानो उसे मुकुट की सूरत से भी घृणा हो गई हो। वह मुकुट के हृदय की बात क्या समझ सकती थी। यदि उसके हृदय में मुकुट के प्रति पिछले दिनों के-से ही भाव होते और वह घर वालों के दबाव से मुकुट से यह प्रतिज्ञा कराती, तो बात और होती। वह प्रतिज्ञा कराके भी यह चाहती, कि मुकुट उस प्रतिज्ञा को तोड़ दे। वह मुकुट से भूलने को कहती; परन्तु यह चाहती कि मुकुट उसे नहीं, उसकी बातों को ही भूल जाय। मुकुट यदि अपनी प्रतिज्ञा भंग

करके उसे देखने आता, तो वह मन में प्रसन्न होती, उसकी भर्त्सना करती; परन्तु आँखों से आँसू बहाती जाती, हृदय में एक दर्द का अनुभव करती जाती। मुकुट को उस समय उन सब बातों का अनुभव हो रहा था। वह दुखित होकर बोला—पिछली बार कहा था और अब कहा है। इसके बाद कभी तुम्हारे कानों को ये शब्द सुनने को न मिलेंगे।

'ठीक कहते हो?'

'ठीक।'

'हम दोनों के भले के लिए यही उचित है। यदि मैं तुम्हें देखूँगी, तो मुझसे भावी जीवन सहन न हो सकेगा। तुम मुझे देखोगे, तो तुम्हारे हृदय में रह-रहकर कसक उठा करेगी। यदि दोनों आँखों से ओझल होंगे, तो शायद समय पाकर व्यतीत काल की स्मृतियाँ मानस-पटल से मिट जायँ, या धुँधली हो जायँ। मुझे तुम्हारा विचार करके दुःख होता है; परन्तु कोई दूसरा उपाय नहीं है।

'मैं जानता हूँ शीला, मैं उसी उपाय को काम में लाने जा रहा हूँ।'

'अर्थात्?'

'मैं यहाँ से जा रहा हूँ!'

'कहाँ?'

'कह नहीं सकता!'

'बहुत दूर?'

'दूर-से-दूर, जहाँ तक मैं पहुँच सकूँ। जहाँ अपनी परछाईं भी तुम्हें दिखाने का अवसर न आने पावे।'

'कब तक वहाँ रहोगे?'

'अनिश्चित काल तक। मैं तुम्हारे हृदय को समझ गया हूँ शीला, और तुम्हें सुखी बनाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। तुम कहीं भी रहो, किसी की भी होकर रहो, मुकुट तुम्हारे जीवन में कभी न आएगा!'

'भूल सकोगे?'

'मेरी चिन्ता न करो। यदि स्मृति नष्ट न कर सकूँगा, तो उस भाग को ही नष्ट कर डालूँगा, जहाँ स्मृति का भंडार है।'

उसने थोड़ी देर शीला की ओर देखा और फिर अचानक उठकर एक ओर को चल दिया।

• • •

शीला ने कई बार मुकुट का पता लगाया; परन्तु उसके विषय में वह कुछ भी न जान सकी। वह वास्तव में किसी सुदूर देश की ओर चल गया था; किन्तु इससे शीला के प्रोग्राम में कुछ भी अन्तर न पड़ा। उसके हृदय में एक बार मुकुट के इस प्रकार चले जाने के कारण एक हलका सा दर्द उठा; परन्तु उसने उसे फ़ौरन दबा दिया।

उसका विवाह हुआ। उसका पति, मुरारी, एक बड़े ज़िले में डिप्टी कलक्टर था। विवाह होते ही शीला, मुरारी के साथ रहने के लिये चली गई। घर का धनिक, आदत से शौक़ीन, अच्छे पद पर आरूढ़ मुरारी, शीला के आराम और आमोद-प्रमोद के लिये वे सभी सामग्रियाँ जुटाता, जिनकी आशा वह मुकुट के साथ बँध जाने पर कभी कर ही न सकती थी। धीरे-धीरे वह मुकुट को बिलकुल ही भूल गई, मानो जगत् में उसका अस्तित्व कभी था ही नहीं, या वह उसके जीवन में कभी आया ही न था। परिस्थितियों के परिवर्तन से लोग अपने माता-पिता, अपने बन्धु बान्धव, अपने पुत्र-पुत्री तक को भूल जाते हैं। यदि शीला उस मुकुट को भूल गई, जिसे वह भूला चाहती थी, तो कोई आश्चर्य नहीं।

कई वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुए। मुरारी की बदली नैनीताल को हो गई थी। जाड़ों के दिन थे। शीत पड़ रहा था और साथ ही बर्फ़ भी गिर रहा था। मुरारी को बर्फ़ीली पर्वत-श्रेणियों पर कुछ दिन घूमने की सूझी। शीला को वहाँ ले जाने की उसकी इच्छा न थी; क्योंकि उसे डर था, कि शीला शायद उतनी सर्दी सहन न कर सके; परन्तु उसे यह कहने का साहस न हुआ। उसे दूसरी ओर शीला की नाराज़ी का भी डर था और यदि वह कहता भी, तो भी शीला उसके साथ हठ करके जाती; क्योंकि अभी तक प्रत्येक भ्रमण के समय दोनों साथ-साथ रहते थे; इसलिए दोनों, बिना किसी नौकर को लिये अपनी इस यात्रा के लिये निकल पड़े।

• • •

नैनीताल से लगभग २० मील ऊपर एक छोटी-सी मनोहर घाटी है। घाटी के चारों ओर हरियाली से लदे हुए पर्वत खड़े हैं। घाटी से कुछ ही दूर एक छोटी-सी घाटी और है। उसमें बड़े वेग से एक छोटी सी जलधारा बहती है। बड़ी घाटी में ही कुछ पहाड़ी लोगों के छोटे-छोटे मकान हैं। शीला और मुरारी इसी छोटे-से ग्राम में आकर ठहरे।

संध्या का समय था। दोनों अपनी कुटी से निकल कर सामने की छोटी पहाड़ी पर घूमने चले। कुछ क़दम चलने पर ही उन्हें कुछ कोलाहल मालूम पड़ा। देखा कि कुछ व्यक्ति एक केश और दाढ़ी बढ़ाये हुए आदमी को घेरे हुए थे। वह आदमी उनसे बचने का प्रयत्न कर रहा था।

'देखो तो, लोग उस बेचारे को कैसा तंग कर रहे हैं!'—शीला बोली।

'कोई आपस का झगड़ा होगा। होने दो, हमें क्या?'—मुरारी ने उपेक्षा से कहा।

'मेरा मन कहता है, यह व्यक्ति अत्याचार-पीड़ित है।'

'फिर तुम क्या चाहती हो?'

'जरा चलकर देख लें!'

'चलो, आज की सैर यहीं तक सही।'

वे दोनों उधर को चले ही थे, कि एक पहाड़ी ने आ कर शीला को रोका।

'आप उधर न जाइए!'—वह बोला।

'क्यों?'—मुरारी ने पूछा।

'वह पागल नवयुवती स्त्रियों पर आक्रमण कर देता है। इसीलिए सब उसे पकड़ कर यहाँ से भगाना चाहते हैं?'

'अच्छा, तुम यहीं रहो, मैं आगे जाकर देखता हूँ!'—मुरारी शीला से यह कहकर उधर चला गया। जो व्यक्ति पागल को घेरे हुए थे, उन्होंने मुरारी के लिये रास्ता दे दिया।

'क्या बात है?'—उसने पूछा।

'यह बड़ा भयङ्कर पागल है! इधर से हम इसे भगाना चाहते हैं।'

मुरारी ने अपना बेंत उसके बालों में लगाकर कहा—पागल!—एक-साथ पागल तमक उठा। वह पीछे फिरा। अचानक दोनों हाथों से मुरारी की गर्दन दबाई और उसे ज़मीन पर गिरा दिया। पहाड़ी लोग छुड़ाने लगे; परन्तु उनसे कुछ भी न हुआ। शीला ने यह सब देखा। वह पहाड़ी की बात भूल कर उधर दौड़ी। पास आकर उसने पागल की ओर देखा और पुकारा—पागल!

शीला के शब्द ने मानो पागल की किसी अतीत स्मृति को जगा दिया। उसने शीला के मुख की ओर देखा और धीरे-धीरे मुरारी का गला छोड़ दिया। जो पागल इतनी देर से इतने व्यक्तियों द्वारा भी परास्त न हो सका था, वह अब गाय बन गया। उसे और कुछ धुन न थी, वह केवल निर्निमेष नेत्रों से शीला की ओर देख रहा था। सब आश्चर्य-चकित खड़े थे। यह पहला ही अवसर था, कि पागल एक युवती के सामने इस शान्त भाव से खड़ा था। यदि कोई दूसरा समय होता, या वह कोई दूसरी स्त्री होती, तो पागल और भी भयङ्कर बन जाता।

अब तक मुरारी ने अपने वस्त्रों से धूल झाड़ ली थी और अपनी गर्दन भी कई बार सुहला ली थी। जब उसे इन बातों से छुट्टी हुई, तो उसने शीला को और फिर पागल को अपने सामने खड़ा हुआ देखा। शीला को देखकर पागल शान्त हो गया था। उसे देखकर, मुरारी का क्रोध उबल पड़ा। शायद उसे यह विचार आया कि शीला ने आकर उसकी रक्षा की है। इसीसे उसे आत्मग्लानि का अनुभव होने लगा। उसने आव देखा न ताव, पागल के गाल पर चार-पाँच तमाचे जड़ दिये। जो पागल कुछ मिनटों पूर्व ही उसकी छाती पर सवार था, इस समय कुछ न बोला, मूर्ति की भाँति शान्त खड़ा रहा।

'यह क्या करते हो जी?'—कहकर शीला ने मुरारी का हाथ पकड़ लिया। फिर वह पागल की ओर देख कर बोली—क्षमा करना पागल!

पागल के नेत्रों में दो आँसू आ गये।

'इसे पागल कहती हो? यह खूँखार जानवर है!'—मुरारी ने उत्तर दिया।

'शायद न हो। तुम एक पागल के हृदय को नहीं समझ सकते।'

• • •

पागल फिर उधर दिखाई न दिया। दो दिन व्यतीत हो गए, न उसका जिक्र मुरारी ने किया, न शीला ने। मुरारी की चुप्पी का कारण और था, शीला की चुप्पी का और।

तीसरे दिन मुरारी शीला के साथ उस ओर घूमने चले जिधर छोटी घाटी में नदी की धार पर्वतों के पैरों में किलोलें करती हुई बह रही थी। उस दिन बर्फ गिर रहा था। चारों ओर बादलों के छाये रहने के कारण घना अन्धकार-सा हो रहा था। शीला और मुरारी को उसी प्रकार के मौसम में आनन्द आ रहा था।

छोटी घाटी के प्रवेश-द्वार पर पहुँचते ही उन्हें सामने से पागल आता हुआ दिखाई दिया। वे दोनों खड़े हो



गये। उसे आते देखकर दोनों के मुखों पर भिन्न भाव थे। मुरारी के मुख पर क्रोध और भय के; शीला के मुख पर हर्ष और दया के।

पागल शान्तिपूर्वक वहाँ तक आया और धीरे से बोला—आज उधर न जाओ!

'तुम्हारी सलाह हमें नहीं चाहिए।'—मुरारी ने गरज कर कहा।

'उधर न जाओ!'—फिर पागल बोला।

'चुप रहो!'—मुरारी ने उत्तर दिया।

शीला मुरारी को पीछे हटाकर सामने आई और पूछने लगी—तुम क्यों ऐसा कह रहे हो पागल?

'उधर जाने में भय है। आज कई चट्टानें गिर पड़ी हैं। नदी में भी जोरों की बाढ़ आ गई है।'

'सुना मुरारी!'—शीला ने मुरारी से कहा।

'पागल की बात का क्या सुनना!'

'इन बातों में पागलपन नहीं है, ये सच मालूम होती हैं।'

'तुम्हें सच मालूम होती हैं, तो तुम लौट जाओ। मैं ऐसा डरपोक नहीं!'

'ऐसा अर्थ निकालने की क्या आवश्यकता थी? तुम समझते हो मैं डरती हूँ? चलो, जो कुछ भी होगा, भुगत लेंगे!'

° ° °

दोनों उधर चल दिए। पागल कुछ देर तक उनकी ओर टकटकी लगाए खड़ा रहा। शीला और मुरारी अभी पहाड़ी पर ही थे, नीचे उतरने भी न पाए थे, कि एक जोर का धड़ाका हुआ और एक साथ बर्फ का वह भाग, जिस पर मुरारी खड़ा था, अड़ड़ड़ करता हुआ नीचे बहने वाली नदी में जा गिरा। शीला वहीं खड़ी रह गई। उसके मुख से एक चीख निकली। इतने ही में उसने देखा कि एक व्यक्ति दौड़ता हुआ आया और बिना कुछ देखे, बिना कुछ सोचे, पानी में कूद पड़ा। इधर-उधर तैरा, गोते लगाए और थोड़ी देर में ही मुरारी को लेकर पानी में से निकला। शीला पुतली की भाँति खड़ी यह सब कुछ देख रही थी। वह अब वहाँ आगई। उसने देखा, वह पागल था।

पानी अत्यन्त ठंडा था। शीत जोरों का पड़ रहा था। पागल का शरीर नंगा था। वह अपना कम्बल उतार कर पार पर डाल गया था। उसका सारा शरीर ठिठुर रहा था। मुरारी बेहोश था। उसके सारे वस्त्र भींगे थे और शरीर बिलकुल ठंढा पड़ गया था। शीला कुछ देर वहाँ खड़ी रही, फिर बोली—मुकुट!

पागल ने एक बार सिर उठाया और शीला की ओर देखा। फिर वह मुरारी की सेवा में लग गया, मानो वहाँ शीला थी ही नहीं। उसने मुरारी के गीले वस्त्र उतारे और उसके शरीर को अपने कम्बल से ढक दिया। फिर उसने मुरारी को उठाया और अपने कन्धे पर रख लिया।

शीला ने फिर उसकी ओर देखकर कहा—मुकुट!

इस बार वह बोला—कुछ बोलो मत। इनकी रक्षा शीघ्र होनी चाहिए। खोने के लिए एक मिनट भी नहीं है।

इतना कहकर वह ग्राम की ओर चला। शीला चुपचाप उसके पीछे हो ली।

° ° °

जिस झोपड़ी में मुरारी और शीला ठहरे थे, उसी में मुरारी लाया गया। पागल ने आते ही उसके शरीर की मालिश की। धीरे-धीरे मुरारी के शरीर में गर्मी आई, उसका श्वास वेग से चलने लगा, उसके हृदय की गति ठीक हुई। इतना करके वह चुपचाप द्वार की ओर चलने लगा। उसका सारा शरीर काँप रहा था, पैर लड़खड़ा रहे थे। शीला अब तक चुप रही थी। उसे जाता देख वह उसके सामने आ गई, उसका हाथ पकड़ा और जोर से बोली—मेरी ओर देखो!

पागल ने अपने नेत्र उसके नेत्रों के सामने कर दिए।

'एक बार कह दो कि तुम मुकुट हो!'

'मैं, मुकुट? नहीं, मुकुट तो कभी का मर गया। मैं तो उसकी समाधि-मात्र हूँ।'—पागल बोला और वहाँ से चलने के लिये पैर बढ़ाया।

'कहाँ जा रहे हो?'—शीला ने पूछा।

'जहाँ अब तक था।'

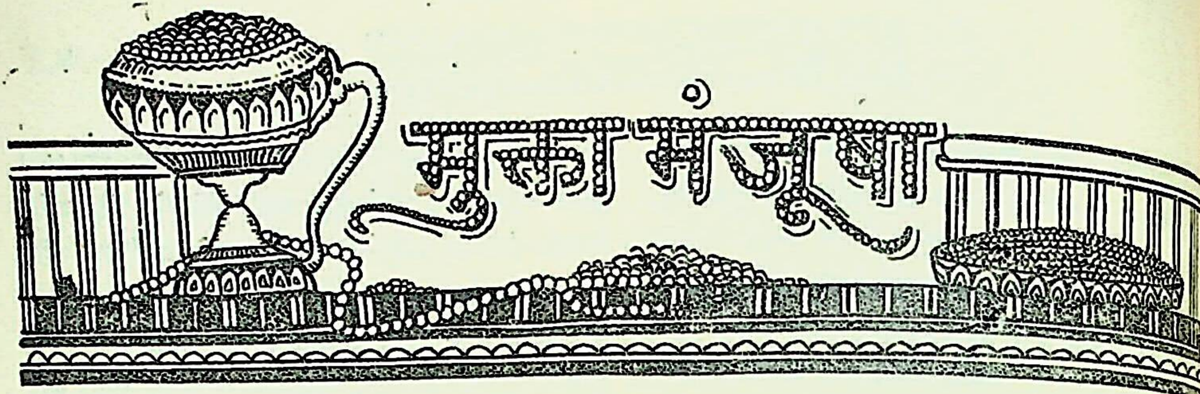
'ऐसा न करो। तुम्हारा सारा शरीर ठंडा पड़ गया है। मैं आग जलाती हूँ। तुम कुछ आराम कर लो।'

'यह जीवन इसके लिये नहीं है।'

'पागल न बनो!'

'एक पागल से कहती हो कि वह पागल न बने! अब तक पागल था। आज कुछ होश का काम किया है। अब

(शेषांश ४७वें पृष्ठ के नीचे)



हिन्दी

सम्पादक में कैसी धीरता-गम्भीरता चाहिए ?

लाहौर के हिन्दी-मासिक 'युगान्तर' में कुछ 'अनुभव की बातें' प्रकाशित हुई हैं। सभी बातें शिक्षाप्रद हैं। उनमें से एक बात यहाँ दी जाती है। हिन्दी के पत्र-सम्पादक इस पर विचार करें—

"बोली-ठोली से कभी-कभी हृदय पर वैसी ही चोट लगती है जैसी कि थप्पड़ मारने से मुँह पर। एक समय की बात है, एक राजनीतिक नेता क्रोध से भरा हुआ एक पत्र-सम्पादक के कमरे में आया और कौंसिल के चुनाव में उसका समर्थन न करने के लिए सम्पादक पर गालियों की बौछार करने लगा। उसने संपादक से कहा—तूने अपने दल के साथ विद्रोह किया है, दल का और नगर का नाश कर दिया है। नेता जिस समय कमरे में आया था उस समय सम्पादक लिख रहा था। उसने गालियों की कुछ भी परवा न करके लिखना वैसे ही जारी रक्खा। इस समय नेता महाशय और भी चिढ़ गये, और भी ज़ोर से चिल्लाने लगे। फिर ज़रा पीठ फेरी, और दुबारा आकर वही बौछार आरम्भ कर दी। यह तमाशा उन्होंने दो बार किया। पर सम्पादक टस-से-मस न हुआ—वह वैसे ही लिखता रहा। जब क्रोध और भाषा दोनों में नेता बिलकुल थक गया, तब अन्त को द्वार खोल कर जाने लगा। अब सम्पादक की लेखनी ज़रा ढीली पड़ी और फिर ठहर गई। तब बच्चों की तरह मुस्कुराते हुए वह बड़ी शान्ति से बोला—'मत जाइए! मत जाइए! लौटकर अपने दिल का गुबार अच्छी तरह से निकाल लीजिए।'"

• • •

आधुनिक युग के 'बाबू'

कराची के नवीन हिन्दी-मासिक 'प्रेम' में एक विद्या-सागर-साहित्याचार्य-वेदवेदान्ततीर्थ-उपाधिधारी शास्त्रीजी ने एक व्यंग्यविनोदपूर्ण लेख लिखा है। यद्यपि लेख में अशुद्धियाँ बहुत हैं, तथापि उसकी कुछ पंक्तियाँ, पाठकों के मनोरंजनार्थ, यहाँ परिष्कृत रूप में उद्धृत की जाती हैं—

"जन्मेजय बोले—हे महर्षि ! आपने कहा था कि कलि युग में एक विचित्र प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होंगे, वे कैसे होंगे और पृथ्वी पर जन्म लेकर क्या करेंगे ?' वैशम्पायन ने कहा—'हे राजन् ! बहुत खाने और सोने के इच्छुक, दुर्बुद्धि वाले बाबुओं की कथा मैं कहता हूँ, आप ध्यान से सुनें। मैं चश्माधारी, पेट के पुजारी बाबुओं की कथा आपसे सुनाता हूँ। जो भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने, बाल सँवारे, हाथ में हण्टर रखे, वही 'बाबू' है। जो घर में इंग्लिश बोलने का आदी हो, पत्नी को 'माइ डियर' 'माइ डार्लिङ्ग' के नाम से सम्बोधित करे, जो खड़ा होकर पेशाब करे और फिर हाथ कभी न धोवे, वही 'बाबू' है। जो सूर्योदय से पहले जागना पाप समझे और बिस्तरे पर पड़े-पड़े टी-बिस्कुट आदि लाने को कहे, वही 'बाबू' है। जो देश की भाषा में बातचीत न करें, जिनकी दसों इन्द्रियाँ अपने वश में न हों, वही 'बाबू' हैं। जिनकी विद्या बाल्यावस्था की पढ़ी हुई थोड़ी-सी पुस्तकों में बन्द रहेगी, जो वेश्याओं की चिल्लाहट को गान-विद्या की उच्च पदवी दें, जो रूप में कामदेव के छोटे भाई हों, जो महफिल उड़ाने के लिए शिवरात्रि मनायें, और माशूका के लिए होली खेलें, मदिरा-मांस आदि के लिए दसहरा मनायें, वही 'बाबू' हैं। जिनकी बुद्धि बाल्यावस्था में पुस्तकों में, युवावस्था में बोतलों में और बुढ़ापे के समय पत्नी के आँचल में रहे; जिनके गुरु अँगरेज और अँगरेजी पत्रिकाएँ धर्म-शास्त्र हों, वही 'बाबू' हैं। जो वेश्या के सामने नीम मुसलमान, पिता के सामने आर्यसमाजी, माता के सामने सनातनी और भीख माँगने वालों के सामने नास्तिक होंगे, वही

बाबू कहलायेंगे। जो वेश्याओं के घर में जूतों और गोरे साहब लोगों के यहाँ धक्के खाएँगे, वही 'बाबू' होंगे।"

० ० ०

'राजतरंगिणी' में अछूत और अनशन की चर्चा

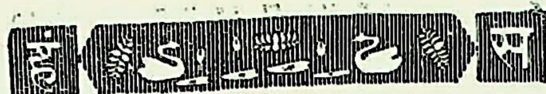
अगस्त की 'सरस्वती' में युवक-हृदय-सम्राट पंडित जवाहरलालजी नेहरू के बहनोई 'श्रीयुत आर० एस० (रणजीतसिंह) पंडित, बार-एट-लॉ' ने 'कल्हण की राजतरंगिणी' नामक एक लेख लिखा है। उसमें पण्डितजी ने बताया है कि 'राजतरंगिणी' में किन बातों का वर्णन है। आपके मतानुसार 'यह प्राचीन ग्रन्थ हिन्दू चाल-ढाल और सदाचार का दर्पण है। यद्यपि यह ग्रन्थ कश्मीर का इतिहास है; परन्तु वास्तव में यह सारे भारत की हिन्दू संस्कृति, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन एवं कला तथा शिल्प का इतिहास है।' इसके आगे आपने अछूतोद्धार और उपवास की चर्चा करते हुए लिखा है—

"इसमें अनेक ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो बहुत मनोरञ्जक हैं तथा जिनसे इस ग्रन्थ को आधुनिकता प्राप्त हो जाती है। कुप्रबन्ध की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए या राजनीतिक उद्देश की सिद्धि के लिए किसी एक व्यक्ति का या व्यक्तियों के समूह का उपवास करना सदा उपयोग में लाया जाता था। इस तरह की भूख-हड़ताल, जब कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह करने को बैठता था, 'प्रायोपवेश' कहलाती थी। इस ग्रन्थ में अछूतों के सम्बन्ध में भी उल्लेख है। कश्मीर का एक राजा एक अछूत स्त्री से विवाह करता है, अपनी इस रानी को उच्च स्थान प्रदान करता है, यहाँ तक कि उसको अपनी सब रानियों से उच्च पद पर अधिष्ठित करता है। रानी के रूप में यह अछूत नर्त्तकी कन्या धूमधाम के साथ दर्शनार्थ उन देवमन्दिरों को जाती थी जो भारत की पवित्र भूमि कश्मीर में विशेष रूप से पवित्र माने जाते थे। इसके बाद राजा ने उस अछूत स्त्री के भिन्न-भिन्न सम्बन्धियों को भिन्न-भिन्न विभागों के मन्त्रियों के पद प्रदान किये। यह भी नोट करने की बात है कि उन दिनों अछूत, संगीतज्ञों के रूप में, राजकीय अभ्यर्थना-भवन तक प्रवेश करते थे, और सैनिक जीवन तो सभी अछूतों के लिए खुला हुआ था। ये लोग केवल सैनिक ही नहीं होते थे। मालूम पड़ता है, भारत में शासन पर प्रभाव डालने के रूप में उपवास करने की बहुत प्राचीन प्रथा रही है। रामायण का यह एक प्रसिद्ध उदाहरण है कि एक ब्राह्मण, जिसका पुत्र मर गया था, राम के द्वार पर मृत्यु-पर्यन्त भूखा रहने को बैठ गया था। उसने यह दोषारोप किया था कि उसके जवान पुत्र की मृत्यु का कारण राजा के कुशासन को छोड़कर और कुछ नहीं हो सकता। इस घटना का राजतरंगिणी में भी उल्लेख हुआ है।"

हिन्दी में आत्मचरितों की कमी

सितम्बर के 'विशालभारत' के सम्पादकीय विचारों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनकी ओर समस्त हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए—

"मालवीयजी-जैसे महापुरुष का जीवन-चरित लिखने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी सेवा में निरन्तर रहकर उनके अनुभव पूछे जायँ। उन्होंने इतने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में काम किया है कि केवल पत्र-व्यवहार के भरोसे यह काम नहीं हो सकता। यदि पूज्य मालवीयजी आत्मचरित लिखने के लिए राज़ी हो जायँ, तो हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में ऐसे कितने ही योग्य व्यक्ति मिल सकते हैं, जो इस पवित्र कार्य के लिए अपना समय देने को उद्यत हो जायँगे। साहित्यिक दृष्टि से मालवीयजी का आत्मचरित एक अमूल्य ग्रन्थ होगा। श्री बालकृष्ण भट्ट, श्री प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि कितने ही साहित्यसेवियों के संस्मरण उनके चरित में आयेंगे, और उससे हिन्दी के नवयुवक साहित्य-सेवियों को बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिलेगा। क्या ही अच्छा होता, यदि पं० अम्बिकादत्त व्यास, स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट, पं० श्रीधर पाठक, पं० पद्मसिंह शर्मा के आत्म-चरित लिख जाते! अब भी यदि मालवीयजी, द्विवेदीजी तथा बाबू राजेन्द्रप्रसाद आत्म-चरित लिखें, या बोलकर लिखा सकें, तो हिन्दी-भाषा-भाषी जनता को बहुत उपादेय मसाला पढ़ने के लिए मिल सकता है। पं० सुन्दरलालजी तथा श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के भी संस्मरण लाभदायक हो सकते हैं। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों के प्रतिष्ठित आदमी अपनी मातृभाषा में ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न बहुत कम करते हैं। हम लोगों का कर्तव्य है कि हम बराबर इनसे इस बात के लिए अनुरोध करें। शायद इनमें से कोई महानुभाव कुछ चीज़ लिख दें।"



हिन्दी के समर्थ प्रकाशक यदि चाहें तो कुछ सुयोग्य लेखकों को नियुक्त करके यह काम करा सकते हैं। इसमें आर्थिक लाभ भी बहुत है। पहले जितना खर्च होगा, पीछे उससे कहीं अधिक आमदनी भी होगी। किन्तु हिन्दी के किसी प्रकाशक में इतनी दूरदर्शिता और साहस नहीं नज़र आता। यदि 'हंस' के आत्मकथांक की तरह कुछ प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं के आत्मचरितांक अथवा संस्मरणांक ही निकाले जाते, तो भी बहुत-कुछ सामग्री संकलित हो जाती। 'विशालभारत' जैसे गान्धी-अंक निकाल रहा है वैसे ही 'सरस्वती' मालवीय-अंक में बहुत सफल हो सकती है। राजनीतिक नेताओं और स्वर्गीय साहित्यसेवियों के आत्मचरित की बात तो दूर किनार रहे, जीवित साहित्य-सेवियों से भी कोई आत्मचरित नहीं लिखवाता। आचार्य द्विवेदीजी, बाबू श्यामसुन्दर दास, पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, बाबू यशोदानन्दन अखौरी, पंडित केदारनाथ पाठक, बाबू गोपालराम गहमरी आदि वयोवृद्ध महानुभावों से आत्मचरित लिखवाने की ओर अभी तक किसी का ध्यान ही नहीं गया है। पं० किशोरीलाल गोस्वामी, रत्नाकरजी, पं० माधवराव सप्रे, बाबू शिवनन्दनसहाय आदि के साथ जो चीज चली गई, वह अब सदा के लिए दुर्लभ हो गई। यही हाल सबका होगा, और अन्त में पश्चात्ताप के सिवा कुछ हाथ न लगेगा!

• • •

हमारी सारी अवनति की जड़ —विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा

ता० २ सितम्बर को इन्दौर के क्रिश्चियन कालेज में अलीगढ़-विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर सर रास मसऊद ने अपने प्रभावशाली भाषण में कहा है—

"मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत का भविष्य बहुत करके शिक्षकों पर निर्भर करता है, जो इस देश में हमारे कौंसिल-मेम्बरों की अपेक्षा अधिक लगन से और चुपचाप काम कर रहे हैं। यहाँ मौजूद हमारे शिक्षकों से पूछिये—(मैं भी एक बार शिक्षक था और अब भी हूँ) कि उनसे विद्यार्थियों का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पुराने ज़माने में था? सन् १९२० ईसवी की लिखी एक पुस्तक पढ़ते समय मुझे यह वाक्य मिला था—'जो शिक्षक जैसा कहता है उसके अनुसार चलता नहीं, वह पुस्तक के वेठन समान है।' यह वाक्य मुझे अब तक याद है। मैंने इसको सुरक्षित रखा है, क्योंकि बहुत ही कम ऐसे शिक्षक हैं जो सचमुच वैसा ही करते हैं जैसा कहते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि हमारी शिक्षाप्रणाली किस प्रकार राष्ट्रीय हो। मेरी राय में राष्ट्रीय शिक्षा वह है जो उस देश के लोगों के लिए हो, उस देश के लोगों द्वारा हो और उस देश के लोगों की हो। मैं चाहता हूँ कि शिक्षा इस देश की भाषा में दी जाय। हम लोगों ने अपना सारा विश्वास अपनी संस्कृति के ऊपर से इस कारण खो दिया है कि हम जो कुछ पढ़ते हैं, सब विदेशी भाषा में। हमारा भविष्य तभी उज्ज्वल होगा जब हमें अपनी भाषा में शिक्षा दी जायगी। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हिन्दुस्तान में शिक्षा उस भाषा में दी जाती है जिसको न तो शिक्षक अच्छी तरह जानता है और न विद्यार्थी ही समझ सकता है; फलतः हमें जो विषय सिखाया जाता है उसको हम भलीभाँति हृदयंगम नहीं कर पाते। विदेशी भाषा को मातृभाषा बना लेने से हमारे घरेलू जीवन में फूट आ गई है। जबतक घर में सांस्कृतिक एकता न होगी तबतक लड़के उन्नति नहीं कर सकेंगे। यह भी मेरी राय है कि हिन्दुस्तान में शिक्षा की ऐसी एक भी संस्था न होनी चाहिए जहाँ विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध न हो और जहाँ विभिन्न सम्प्रदायों के विद्यार्थी साथ-साथ न रह सकें। साम्प्रदायिक मित्रता बढ़ाने के लिए विद्यार्थियों को अपने देश के विभिन्न धर्मों का इतिहास जानने देना चाहिए। जब तक विभिन्न सम्प्रदायों के युवक एक साथ अध्ययन नहीं करेंगे तबतक हिन्दुस्तान उन्नति नहीं कर सकता।" ('आज')

• • •

किसी एक कला में कमाल हासिल करो

आगरे के राधास्वामी-सत्संग (दयालबाग) से "हिन्दीप्रेमप्रचारक" नामक साप्ताहिक पत्र निकलता है। उसकी इन पंक्तियों में कितनी सचाई है, हमारे नौजवान भाई ग़ौर करें—

"शेख़ सादी का क़ौल है—'कस्बे कमाल कुन

अज़ीज़ जहाँ शवी ।—ऐ मनुष्य ! तू किसी व्यवसाय, कला व उद्योग में कमाल हासिल कर ताकि तू संसार में सबका प्यारा हो जाय।' सच तो यह है कि संसार में नामवरी, इज़्ज़त व सम्पत्ति उन्हीं को प्राप्त होती है जिन्हें किसी-न-किसी विद्या व कला में कमाल हासिल है; लेकिन जो किसी विद्या व कला में निपुण नहीं हैं वे दर बदर ठोकरें खाते फिरते हैं। उनके लिए चारों ओर जीविका के द्वार बन्द रहते हैं। इसलिए वे अपनी सारी उम्र हैरानी व परेशानी में गुज़ार देते हैं। इसी तरह अँग्रेज़ी में कहावत है—'Jack of all trades master of none' अर्थात् 'जो मनुष्य बीस काम अधूरे जानता है, मगर किसी भी काम में दक्ष नहीं, वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है।' उसकी हालत उस धोबी के कुत्ते की-सी है जिसको न घर में भर-पेट रोटी नसीब होती है और न घाट पर। वह बेचारा सारी उम्र भूखों मरता है। ठीक इसी तरह आजकल के स्कूलों और कॉलेजों के नौजवान, जिनको न किसी भाषा में निपुणता प्राप्त है और जो न किसी कला ही में पारङ्गत हैं, जीविका की तलाश में इधर-उधर जूते चटखाते फिरते हैं। अगर वे छोटे-से-छोटे काम भी सीख लें और उसमें उन्हें कमाल हासिल हो जाय, तो उनके लिए ज़ीविका का सवाल आसानी से हल हो सकता है।"

° ° °

साबरमती का पत्थर अमेरिका को !

खण्डवा के प्रसिद्ध हिन्दी-साप्ताहिक 'स्वराज्य' की निम्नांकित पंक्तियों में एक उद्बोधन-मन्त्र है—

"महात्मा गांधी के संसर्ग से जहाँ भिन्न-भिन्न देशों के स्त्री-पुरुष अपने-आपको पवित्र मानते हैं तहाँ साबरमती का पत्थर भी, दुनिया की निगाह में, पवित्र माना जाने लगा ! रामचन्द्रजी के स्पर्श से अहल्या का पत्थर सजीव हो गया था, गांधी-स्पर्श से साबरमती का पत्थर भी 'प्रवासी' होना चाहता है। फ्लोरिडा (अमेरिका) के रालिन्स कॉलेज के प्रेसिडेण्ट महाशय ने साबरमती-आश्रम का एक पत्थर अपने कालेज की दीवार में लगाने के लिए मँगवाया है। इसमें गांधीजी का नाम खुदा हुआ रहेगा और 'इतिहास के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों' की श्रेणी में इस पत्थर को स्थान दिया जायगा। उक्त प्रेसिडेण्ट महाशय ने रशिया, चीन, अरब, पलेस्टाइन आदि स्थानों के प्रसिद्ध पुरुषों के संसर्ग से 'पुनीत' हुए पत्थरों को प्राप्त कर लिया है। यदि गांधी-पद-पुनीत पत्थर फ्लोरिडा न भेजा जायगा, तो रालिन्स कॉलेज की वह दीवार अधूरी रह जायगी !"

• • •

भारत में सैनिक शिक्षा की आवश्यकता

भावी भारत की सुखद कल्पना से हृदय में उज्ज्वल आशा और उत्साह का संचार करने के लिए कानपुर के प्रतापी साप्ताहिक 'प्रताप' से ये पंक्तियाँ ली गई हैं—

"गत १३ अगस्त को काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर-क्लब में 'भारतीय सैनिक समस्या' पर भाषण देते हुए ग्वालियर-राज्य के भूतपूर्व फौजी अफसर 'कैप्टेन मोडक' ने कहा कि जब तक बाहरी देशों के हमलों तथा आन्तरिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए भारतीय अपना सैनिक संगठन नहीं कर लेते, तब तक स्वराज्य-प्राप्ति का उनके लिए बहुत कम महत्त्व होगा। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि ब्रिटिश विद्यालयों के समान भारतीय विश्वविद्यालयों में भी भारतीय युवकों को पूर्ण सैनिक शिक्षा दी जाय। राष्ट्रीय सेना की तैयारी के लिए भारतीय युवकों में बहुत योग्यता है; परन्तु यह बड़े खेद की बात है कि ऐसे होनहार युवक सेना की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर बहुत कम पाते हैं। विश्वविद्यालयों में सैनिक अफसरी की शिक्षा मिलना अनिवार्य होना चाहिए। इस समय विश्वविद्यालयों में जो सैनिक शिक्षा मिलती है, वह बहुत ही अपर्याप्त है। पं० मदनमोहन मालवीयजी ने बैठक के सभापति की हैसियत से कहा कि मैं अपने विश्वविद्यालय में आगामी वर्ष से सैनिक इतिहास तथा सैनिक विज्ञान की शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य करूँगा।"

अब 'आज' में प्रकाशित यह समाचार पढ़कर सन्तोष कीजिए। इसी में से असली तत्त्व भी निकाल लीजिए—

"राज्यपरिषद् में रायबहादुर लाला मथुराप्रसाद मेहरोत्रा ने इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया कि भारत-भर में विश्वविद्यालयों में छात्रों को सैनिक शिक्षा देने का व्यापक प्रबन्ध किया जाय। आपने कहा कि ऐसी शिक्षा देने से छात्रों का चरित्र दृढ़ होगा। उनमें कर्त्तव्यनिष्ठा, साहस

आदि गुणों का विकास होगा ; और वे व्यर्थ के विचार या हानिकर आन्दोलन में न पड़ने पायँगे । भारत के प्रायः सभी विश्वविद्यालय अपने छात्रों को सैनिक शिक्षा देने को तैयार हैं और कितने ही तो इसके लिए खर्च भी देना चाहते हैं । ऐसी शिक्षा के प्रचार से सेना का भारतीकरण भी बड़ी किफायत से हो जायगा । श्रीविजयकुमार वसु ने प्रस्ताव का विरोध किया । कहा कि सरकार इस सम्बन्ध में पाँच लाख रुपया हर साल खर्च करती है । उसे चाहिए कि इसका पता लगावे कि खर्च के मुताबिक लाभ भी होता है या नहीं । सेनापति ने कहा कि विश्वविद्यालयों के सैनिक दल से कोई लाभ नहीं हो रहा है ! कलकत्ता और मद्रास विश्वविद्यालयों में तो यह शिक्षा एक प्रकार से विफल हुई है । बम्बई, युक्तप्रान्त, पंजाब और दिल्ली के विश्वविद्यालयों में कुछ लाभ हुआ है । भारत के बहुत से प्रान्तों में इस शिक्षा से लोगों की दिलचस्पी नहीं है । जहाँ सेना-विभाग में करोड़ों की किफायत हो रही है वहाँ इस सम्बन्ध में खर्च बढ़ाया नहीं जा सकता । प्रस्ताव लौटा लिया जाय । प्रस्ताव लौटा लिया गया ।''

० ० ०

दासता का परिणाम

दैनिक 'आज' की सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रायः बड़े मार्के की हुआ करती हैं । उनमें राष्ट्रीयता और स्वाभिमान का भाव झलकता है । नीचे की पंक्तियों में बड़े पते की बात कही गई है—

''कराची के 'डेली गजट' नामक ऐंग्लोइंडियन पत्र ने महात्मा गांधी के सम्बन्ध में अपने कुत्सित और कलुषित विचारों को प्रकट करके जिस नीचता और उच्छृंखलता का परिचय दिया है, उसकी तुलना नहीं की जा सकती ; किन्तु किसी एक उचक्के की अनर्गल बातों पर इतना तूल देना अनावश्यक था जितना बड़ी व्यवस्थापक सभा के सदस्यों ने दिया । बहुत-से समाचारपत्रों और अखबारनवीसों का यह क़ायदा हुआ करता है कि जब उन्हें कोई पूछता नहीं, तब वे अपना विज्ञापन करने के लिए और प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए ऐसे ही घृणित उपायों का अवलम्बन करते हैं । यदि आज 'डेली गज़ट' जगत्प्रसिद्ध और संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के सम्बन्ध में ऐसे नीचतापूर्ण उद्‌गार न प्रकट किये होता, तो क्या सारी दुनिया उसका नाम जान सकती ! अवश्य ही भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का क्रोधित होना स्वाभाविक था ; किन्तु इससे तो उसका काम ही बना और उसने अपना विज्ञापन करा लिया । रही सरकार के मुकदमा चलाने की बात । इस सम्बन्ध में व्यवस्थापक सभा के सदस्यों से हमारा मतभेद है । क्या भारतीय सदस्य यह समझते हैं कि देश के ऐसे सर्वश्रेष्ठ नेता को—जिसे हजारों नहीं, लाखों की संख्या में लोग देवता के समान पूजते हैं—अपशब्द कह कर भारतीय राष्ट्र के हृदय को जो ठेस पहुँचाई जायगी उसका शमन केवल मुकदमा चलाने से होगा ? वह तो तभी होगा जब भारत स्वतन्त्र हो । यह तो भारत की दासता का कटु अनुभव है कि हमारे ही देश के टुकड़ों से जीवन व्यतीत करनेवाले हमारे सामने ही गांधीजी-जैसे महात्मा पर भी कीचड़ उछालने का साहस करते हैं । ऐसी अवस्था में किसी सरकार से यह प्रार्थना करना कि वह गांधीजी को गाली देने वाले पर मुकदमा चलावे, अपने देश तथा गांधीजी दोनों के लिए ही अपमान की बात है ।''

० ० ०

भारतवर्ष में स्मशान-शान्ति !

दिल्ली के दैनिक 'अर्जुन' में पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने एक तथ्यपूर्ण लेख लिखा है । उसका संक्षिप्त अंश पाठकों के विचारार्थ यहाँ दिया जाता है—

''जिस प्रान्त में देखो वहाँ के लाट साहब 'अब सर्वत्र शान्ति है' की घोषणा करने में व्यस्त हैं । विलायत के व्हाइटहाल में जो आवाज गूँजती है उसी की प्रतिध्वनि भारत में उठती है, अथवा यहाँ की प्रतिध्वनि से भी कभी-कभी ह्वाइटहाल गूँज उठता है । सर सेम्युअल होर से लेकर, बड़े लाट से छोटे लाट तक, 'एक मुँह एक बात' हो रही है । पर क्या भारतवर्ष में शान्ति है ? जो लोग 'शान्ति, शान्ति' कह रहे हैं, उन्हीं के हृदय से पूछना चाहिए कि शान्ति है या अशान्ति ? वर्तमान शासकवर्ग की बहुत-सी सफलता इसी में है कि वे हृदय की बात कभी प्रकट नहीं करते । उनकी विफलता भी इसी में है कि हृदय-प्रदेश पर हाथ नहीं रखने देते । बम्बई के गवर्नर ने हाल ही में कहा है कि पहले की अपेक्षा बहुत शान्ति है !

पर प्रश्न यह है कि वह शान्ति है कैसी ? सच पूछो तो हम यह स्पष्ट कहने को तैयार हैं कि न तो शासकवर्ग के हृदय में शान्ति है, न भारतीय शास्य प्रजा के हृदय-मन्दिर ही में। इस समय भारतवर्ष में जो ऊपरी शान्ति दिखलाई पड़ रही है, वह है श्मशान-शान्ति ! किन्तु असंख्य भारतीय जनसमुदाय के हृदय में जो हुताशन प्रदीप्त हो रहा है, जिस प्रकार उसकी प्रचण्ड ज्वालाएँ प्रदीप्त हो रही हैं, उसे देखते हुए कहना पड़ेगा कि यह ऊपरी श्मशान-शान्ति के कारण ही ऐसा हो रहा है और किसी समय वह श्मशान-शान्ति शासकवर्ग को बहुत मँहगी पड़ेगी ; क्योंकि 'प्रजा-पीडनसंतापात समुद्भूतो हुताशनः, राज्ञः कुलं श्रियं प्राणान् नादग्ध्वा विनिवर्त्तते—(राजतरङ्गिणी) अर्थात् प्रजा-पीड़न से उत्पन्न हुई अग्नि राजा अथवा शासकवर्ग के कुल, श्री व प्राणों को लेकर ही बुझती है।' शासकवर्ग अस्त्र-शस्त्र एवं कूटनीति के बल पर भारतवर्ष को श्मशान बना कर वहाँ श्मशान की-सी शान्ति स्थापित करने में भले ही कामयाब बनें ; किन्तु भारतीय जनता का हृदयमन्दिर प्रतिदिन अधिक प्रतप्त होता जायगा। संसार की कोई शक्ति हृदय की भावनाओं को कुचल डालने में समर्थ नहीं होगी। इस श्मशान में जली हुई चिताओं के भस्मावशेष से कोई ऐसी ज्योति निकलेगी, जो प्रजा की हृदयाग्नि में मिलकर शासकवर्ग की आँखों को खोलने में समर्थ होगी।''

• • •

विदेश में व्यापार-केन्द्रों की खोज

अखिल-भारतवर्षीय अग्रवाल-महासभा ने, व्यापार-प्रधान अग्रवाल-जाति के हितार्थ, विदेशों में व्यापार के नये केन्द्र स्थापित करने के विचार से, पूर्वीय और पश्चिमीय देशों में एक-एक डेपुटेशन भेजने का निश्चय किया है। यह निश्चय निस्सन्देह प्रशंसनीय है। महासभा के मन्त्री के एक पत्र का आवश्यक अंश लाहौर के दैनिक 'हिन्दी-मिलाप' से यहाँ उद्धृत किया जाता है—

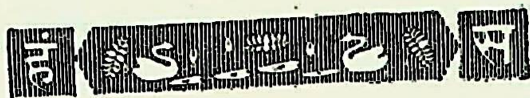
''कई वर्षों से संसार में जो व्यापारिक और आर्थिक क्रान्ति उत्पन्न हो गई है, उसमें अग्रवाल जाति को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि अपने लिए वह व्यापार के नवीन केन्द्र खोले। इसी विषय को ध्यान में रख कर इन दोनों व्यापारिक डेपुटेशनों की योजना की गई है। पाश्चात्य देशों में जाने वाला डेपुटेशन जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड, इटली, जैकोस्लोवाकिया, अमेरिका आदि देशों में और पूर्वीय डेपुटेशन—जावा, सुमात्रा, मलाया, चीन, जापान, संघाई आदि देशों में घूम घूम कर वहाँ के विशिष्ट व्यापारियों के साथ व्यापारिक केन्द्र स्थापित करने का प्रयत्न करेगा अथवा नवीन शिल्पकला और उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सभी व्यापारियों को तत्सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें सूचित करने का प्रयत्न करेगा। जिन-जिन व्यापारियों को जिस-जिस व्यापार से विशेष दिलचस्पी है, उन्हें अपनी पूरी बात डेपुटेशन को सूचित कर देना चाहिए। उन्हें यह समझा देना चाहिए कि वे विदेशों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। डेपुटेशन उन्हें तत्सम्बन्धी सब विवरण देने का पूर्ण प्रयत्न करेगा। यदि वे एक डेपुटेशन के साथ सम्बन्ध करेंगे तो ५०) और दोनों के साथ करेंगे तो १००) उन्हें देने होंगे। ये रुपये उन व्यापारियों से इसी अवस्था में लिये जायँगे जब एक एक डेपुटेशन को सौ-सौ व्यापारी सहायक मिल जायँगे। अर्थात् यदि डेपुटेशन के खर्च के लिए पाँच-पाँच हजार रुपये न मिले तो व्यापारियों से रुपये न लिये जायँगे। व्यापारियों को ये रुपये व्यापार की नवीन खोज के लिए खर्च-खाते-नाम लिख कर देने चाहिए। यदि सफलता हुई तो १००) का काम १००००) का होगा और यदि सफलता नहीं हुई तो सौ-पचास रुपये खोये हुए ही समझ लेना चाहिए। आप अपने यहाँ के व्यापारियों से इस विषय में परामर्श करें। यदि लोग राजी हों तो महासभा-कार्यालय (१६०, हरिसन रोड, कलकत्ता) में उसकी सूचना देने की कृपा करें।''

भारतीय व्यापार की उन्नति के लिए महासभा का यह प्रयत्न अत्यन्त श्रेयस्कर है। आशा है कि वाणिज्य-व्यसनी व्यापारियों के सहयोग से दोनों डेपुटेशनों को यथेच्छ सफलता प्राप्त होगी। ईश्वर हमारे देश के व्यापारियों की कूपमण्डूकता दूर करे।

• • •

'नौकरशाही' की महिमा

कहा जाता है कि 'नौकरशाही' शब्द की सृष्टि लोक-



मान्य तिलक ने की थो। अब उसकी व्याख्या साप्ताहिक 'अर्जुन' के शब्दों में सुनिये—

'भारत में शासन करने वाला जो संगठन है, उसका नाम 'नौकरशाही' है ; क्योंकि ऊपर से लेकर नीचे तक मशीन के सब पुर्जे नौकर हो हैं। नौकरशाही द्वारा शासन को पद्धति के गुण थोड़े और दोष अधिक हैं। साम्राज्य को चलाने के लिए, एक जाति पर दूसरी जाति के शासन को दृढ़ता से कायम रखने के लिए, नौकरशाही की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली साधन अब तक ईजाद नहीं किया गया। सम्राट् के नौकरों का एक ऐसा गिरोह बन जाता है जो दूसरी जाति पर हुकूमत करने के लिए ही शिक्षित और पालित-पोषित होता है। सब नौकर अपनी बिरादरी को प्रजा से बिलकुल अलग समझते हैं। उनका उद्देश्य केवल एक हो जाता है कि जिस शासन के वे अंग हैं, वह कायम रहे। वही उनका धर्म, वही ईमान, और वही रोज़ी है। नौकरशाही का दोष यह है कि उसकी दृष्टि बहुत संकुचित हो जाती है। नौकरशाही के पुर्जों को एक ही वातावरण में रहते-रहते यह बात भूल जाती है कि दूसरी भी कोई दुनिया है। वे उतने ही दायरे में घूमने लगते हैं। प्रजा को वे आत्मीय दृष्टि से देख ही नहीं सकते। शासितों का हरेक व्यक्ति उन्हें शतरंज के एक मुहरे के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता, जिससे शासन में से सहानुभूति और चेतना का अंश निकल जाता है। नौकरशाही की लौहमय मशीन चेतनाहीन उद्वेग के साथ सरपट भागती जाती है। मशीन के रास्ते में जो रुकावटें आती हैं, उन्हें कुचल देती है। छोटे-छोटे विघ्न चकनाचूर हो जाते हैं। पर खतरा तब होता है, जब कोई बड़ी चट्टान सामने आ जाय। उस समय खुली आँखों की आवश्यकता होती है, अन्धे आवेग की नहीं।''

• • •

धर्म-साँड़-सहायक-समिति

कलकत्ते के कुछ धनी मारवाड़ियों के उद्योग और उत्साह से उक्त नाम की एक समिति बनी है। उसकी उपयोगिता निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट होगी, जो कलकत्ते के दैनिक 'लोकमान्य' में प्रकाशित श्रीजमनाधर गोयनका की उस रिपोर्ट से संकलित की गई है, जिसमें यह बताया गया है कि अब तक ४१८२६) का दान मिल चुका है और अब केवल १८२७४) की आवश्यकता रह गई है ; क्योंकि—

"साँड़ों के लिए ६००००) रुपये की आवश्यकता है। इस रुपये से जमीन खरीद करके घर बनाये जायँगे और उस जमीन में एक निराला स्थान रहेगा जहाँ गौएँ आनन्द-पूर्वक साँड़ों से संसर्ग कर सकेंगी। लिखते हर्ष होता है कि निकट भविष्य में ऐसा समय आ जायगा कि बलिष्ठ साँड़ों द्वारा गौएँ उत्तम नस्ल के बच्चे पैदा करेंगी और अब की तरह बच्चे न मरेंगे। इससे गो-वंश की वृद्धि और गो-रक्षा दोनों प्रत्यक्ष रूप से होगी। इसके साथ-साथ दाताओं की वंश-वृद्धि होना और गोलोक-धाम में महल बनना भी अनिवार्य हो जायगा !''

अच्छी नस्ल के साँड़ों की ऐसी संस्था भारत के प्रत्येक नगर और केन्द्रस्थान में खुलनी चाहिए। आशा है कि कलकत्ते के उदाहरण का अनुकरण अनेक स्थानों में होगा।

• • •

३००) में ज़िन्दगी-भर दिव्य भोजन !

'चाँद' में प्रायः बड़े मज़ेदार लेख छपा करते हैं। सितम्बर के अंक में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक कानपुर-निवासी श्री शिवनारायणजी टण्डन ने उदयपुर-राज्यान्तर्गत श्रीनाथ-द्वारा-मन्दिर की कथा लिखी है। उसके एक अंश का उद्धरण पाठकों के चित्त-विनोदार्थ उपस्थित है—

"यहाँ इतना बढ़िया, इतना मूल्यवान और इतना स्वादिष्ट भोजन इतने कम दाम पर बिकता है कि मैं एक दिन का विचार करके गया था और चार दिन ठहर चुकने के बाद भी चलने को मन न करता था। चार आने में वहाँ जितना राजसी भोजन मिलता है, उतना चालीस आने में भी दूसरी जगह नसीब नहीं हो सकता। कई तरह के मुरब्बे, कई प्रकार के अचार, तरह-तरह की खीर और बसौंधी, बीसों प्रकार की भाजी, क़िस्म-क़िस्म की दाल और कढ़ी, भात और रोटी, और चाँदी-सोने के वर्क़ों से मढ़ी हुई पान की गिलौरियाँ प्रत्येक पत्तल की सामग्री थीं। रोटियाँ घी में डूबी हुई थीं। तरकारियाँ खुशबू से बसी हुई थीं। फलों की बहार थी। चार पैसे में छिले-छिलाये फलों के दोने यत्र-तत्र-सर्वत्र बिक रहे थे। बात यह है कि सामान प्रति-

दिन बहुत बनता है और खाने वाले कम रहते हैं। कोई १५ सौ रुपये रोज़ का भोग तो केवल श्रीनाथजी के मन्दिर में ही लगा करता है। वहाँ ऐसे-ऐसे और भी अनेक मन्दिर हैं, जिनके सम्मिलित भोग का मूल्य हज़ारों रुपया तक पहुँच जाता है। वहाँ एक यह भी नियम है कि जो भक्त एक बार ढाई-तीन सौ रुपये जमा कर देता है, वह ज़िन्दगी-भर आराम से मन्दिर का प्रसाद पाया करता है। दूध और दही की तो वहाँ नदियाँ बहती हैं। बालाई, मक्खन और रबड़ी की इफ़रात है। देश में एक ओर दरिद्रदेव अपने ताण्डव-नृत्य से बड़े-बड़े धैर्यवानों के हृदय को भी कम्पित कर रहे हैं और दूसरी ओर दूध-दही और घी जल के मोल बिक रहे हैं! बेकारी और भुखमरी के शाप से शापित होकर जिस देश में शतशः युवक फाँसी लगा-लगाकर और घुल-घुलकर मर रहे हैं, उस देश के मन्दिरों में हज़ारों-लाखों रुपये रोज़ भोग और प्रसाद के नाम पर उड़ा करते हैं! कोटि-कोटि निर्धन भारतीयों के बच्चे अपनी करुणापूर्ण आँखों में जल भर कर एक-एक टुकड़े के लिए फ़रियाद करते-करते अधमरे हो जाते हैं; पर गोसाइयों और महन्तों के यहाँ रात-दिन ऐशोइशरत के फ़ौवारे छूटा करते हैं!"

इसकी टीका-टिप्पणी भी इसी में है!

—शिवपूजनसहाय

गुजराती

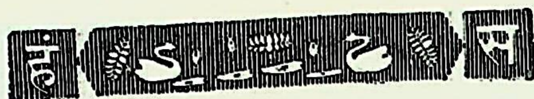
जीवन-कथा का आदर्श

स्व० सर विट्ठलदास-दामोदर ठाकरसी गुजरात के एक आदर्श धनी थे। उन्होंने स्वपुरुषार्थ से अच्छा धन कमाया और साथ ही उसका सदुपयोग भी किया था। यही वे महानुभाव हैं, जिन्होंने आचार्य कर्वे-द्वारा संस्थापित महिला-विश्व-विद्यालय पूना को दस लाख रुपये देने का अभिवचन दिया था। हाल ही में इन श्रीमन्त महानुभाव की एक सुन्दर जीवन-कथा छप कर प्रकाशित हुई है। गुर्जर भाषा के चरित्र-ग्रन्थों में इसने अच्छा यश प्राप्त किया है। इस जीवन-कथा की समालोचना लिखते हुए भाई श्रीचन्द्रशंकर-प्राणशंकर शुक्ल ने, 'जीवन-कथा का आदर्श क्या होना चाहिये'—इस विषय पर 'कौमुदी' में अच्छी विवेचना की है। वे लिखते हैं—

'जीवनी-लेखन का काम कई प्रकार से बड़ा कठिन है। जीवनी-लेखक केवल स्तुति लेखक नहीं है। वह मनुष्य का चरित्र लिखने बैठा है—देव का नहीं—यह बात उसे सदा ध्यान में रखनी चाहिये। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में देव-कथा नहीं लिखी; परन्तु 'नरचन्द्रमा' की जीवन-कथा का वर्णन किया है तथा महान् होते हुए भी रामचन्द्र का मनुष्य-रूप में वर्णन किया है। मानवीय दुर्बलताएँ, जो उनमें विद्यमान थीं, उनका उल्लेख उन्होंने निर्भय होकर किया है। उसने उनका बचाव नहीं किया। इस अर्थ में यह कहा जा सकता है कि जीवनी-लेखक को पक्षपाती न होना चाहिए। जीवनी-लेखक कोई संग्रहकर्ता नहीं है, वह तो कलाकार है। इसी प्रकार चरित्रग्रन्थ, संग्रह-ग्रन्थ नहीं है; कलाकृति है। जीवनी-लेखक को जितनी सामग्री प्राप्त हो, वह सब-की-सब नहीं देनी चाहिए। चरित्रनायक के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करने का उसे जो अवसर मिला है, उसका अनुचित लाभ भी उसे न उठाना चाहिए। जिस मनुष्य का जीवन समाज की संपत्ति बन चुका है, उसके आन्तरिक जीवन में प्रवेश करने का समाज को अधिकार है; परन्तु इस अधिकार की भी मर्यादा है। जिन घटनाओं और अनुभवों का महत्त्व सार्वभौम हो चुका हो, या जो संभव हों, उन्हीं का ऐसी कलाकृतियों में उल्लेख और समावेश होना चाहिए।'

इस चरित्रग्रन्थ की कतिपय सुन्दर और प्रेरणाप्रद बातों का भी उल्लेख करना कुछ अप्रासंगिक नहीं होगा—

'बहुत से विद्यार्थियों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि विट्ठलदास को छुटपन में अपने जेब-ख़र्च के लिए प्रति दिन तीन पैसे मिलते थे। इन तीन पैसों को ही क़िफ़ायत से ख़र्च करने की जो आदत उन्होंने अपने बचपन में डाली थी, वही आगे जाकर लाखों रुपयों की व्यवस्था करने में उनके काम आई। महात्मा गाँधीजी का कथन है कि 'जो पाई बचा सकता है, वही रुपये बचा सकता है।' एक प्रसिद्ध और सफल व्यापारी का कहना है कि 'मेरे यहाँ जब कोई नौकरी करने को आता है, तो सबसे पहले मैं उसकी भोजन करने की पद्धति का निरीक्षण करता हूँ। यदि वह भोजन-पात्र में अधिक जूठन छोड़ता है, तो मैं उसे नौकरी के लिए अयोग्य मान लेता हूँ; क्योंकि जो व्यक्ति



अपने आहार का हिसाब नहीं रख सकता, वह मेरे द्रव्य का हिसाब क्या रख सकेगा ?'

सर विट्ठलदास के मन में गरीबों के प्रति विशेष प्रेम था। इसका प्रमाण उनका वह पत्र स्पष्ट रूप से दे सकता है, जो उन्होंने अपने विवाह से पूर्व अपनी जीवन संगिनी श्रीमती प्रेमलीला बहन को लिखा था। वह ज्यों-का-त्यों यहाँ पर उपस्थित किया जाता है—

'मैं तुमसे कई प्रकार की आशाएँ रखता हूँ। उनके लिये तुम तैयार रहना। प्रत्येक बात में तुम मेरी सलाहकार बनने का प्रयत्न करना। मेरे सार्वजनिक जीवन में सलाहकार बनने के लिये तुमको अपना स्वाध्याय बढ़ाना पड़ेगा, अँगरेजी का ज्ञान भी प्राप्त करना होगा। वह ज्ञान सभा-समितियों में बैठ कर मौज करने के लिये प्राप्त नहीं करना है; बल्कि उसकी सहायता से ज्ञान-प्रद पुस्तकें पढ़ कर, दूसरों का भला किस प्रकार करना, और सभ्य देशों में स्त्रियाँ किस प्रकार अपने देश का भला करती हैं, यह सब जानकर उसको उन्हें कर दिखाना है। यदि तुम पढ़ी लिखी होगी, तो मेरा कार्य-भार कम कर सकोगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार न्यायमूर्त्ति महादेव गोविन्द रानाडे की धर्म-पत्नी ने अपने स्वामी का बोझ उठा लिया था। ईश्वर-कृपा से हमको कुछ धन प्राप्त है। इस धन का गरीबों के लाभ के लिए किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है, इसका विचार हमको करना पड़ेगा। तुम एक गरीब घर से पालित हुई हो; अतः इस विषय में तुम अच्छा विचार कर सकोगी, और ऐसे कार्यों में मुझे अच्छी सलाह दे सकोगी।

इतना और लिखना है कि भविष्य में अपने जन बन्धुओं के हम किस प्रकार उपयोगी बन सकते हैं, इसका विचार करती रहना। यह समझना कि तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध परमेश्वर ने दुनिया की भलाई के लिये किया है। संसार का सुख तो है ही और वह कहीं भागा नहीं जाता।'

• • •

बकरी का दूध पियो

इंगलैण्ड में संप्रति बकरी के दूध का उपयोग किस प्रकार बढ़ता जा रहा है, इस विषय में 'प्रस्थान' पत्र में निम्नलिखित नोट प्रकाशित हुआ है—

'इंगलिस्तान में बकरी के दूध की खपत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। उसकी खपत का परिमाण इस समय दो करोड़ गैलन तक पहुँच गया है।

गाय के दूध की अपेक्षा बकरी का दूध पचने में हलका होता है। उसमें मक्खन और चिकनाई अधिक होती है। क्षय के कृमि भी उसमें नहीं होते। उससे चमड़ी अधिक सुंदर बनती है। बकरी का दूध दिन में दो तीन बार मुख पर, गले पर और हाथ पर लगाने से चेहरा ताम्रवर्णी हो जाता है।

अल्प प्रमाण में पशु रखने वालों का अनुभव है कि गायों की अपेक्षा बकरी रखना अधिक सस्ता है। बछड़े, मेष, और पालतू शूकर के बच्चों के लिए बकरी एक अमरता, के रूप में उपयोगी सिद्ध हुई है।

इंग्लिस्तान के मुकाबिले में भारत अधिक गरीब देश है; अतः भारत में बकरी का दूध इस समय अधिक मात्रा में उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए; क्योंकि बकरी गरीब आदमी की गाय है। आयुर्वेद में भी क्षय रोग को अटकाने तथा हटाने के लिए बकरी के दूध की बहुत प्रशंसा की गई है। इस मत को इस समय अधिकाधिक पुष्टि मिलती जा रही है; क्योंकि बकरी के दूध में चिकनाई, विटामिन और केल्सियम क्षार अधिक मात्रा में रहता है। इस समय जब कि भारत में क्षय-रोग की वृद्धि हो रही है, गरीब लोग घर पर थोड़ी-थोड़ी बकरियाँ पालें, यह वाञ्छनीय है। इस प्रकार वे अपने परिवार के लिए आवश्यक दूध प्राप्त कर सकेंगे और रोग से भी मुक्त रहेंगे। यदि बकरी को अच्छी तरह स्नान कराके स्वच्छ रखा जाय, तो उसके दूध में से आने वाली विशेष प्रकार की गंध भी दूर की जा सकती है।'

—शंकरदेव विद्यालंकार

मराठी

इतिहास की प्राचीनता

'वागीश्वरी' में प्रो० शंकर-दामोदर पेंडसे, एम० ए०, एम० ओ० एल० का 'इतिहासा चा अभ्यास' शीर्षक एक

पठनीय एवं उद्‌बोधक लेख प्रकाशित हुआ है। इतिहास की प्राचीनता के विषय में वे लिखते हैं—

'जिस प्रकार धर्म-जिज्ञासा से धर्मशास्त्र की और ब्रह्म-जिज्ञासा से वेदान्तशास्त्र की उत्पत्ति हुई है, उसी प्रकार इतिहास-जिज्ञासा से इतिहास-शास्त्र का प्राचीन काल में ही निर्माण हुआ था। और आगे चलकर प्रत्येक विद्वान् मनुष्य को इस शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है, यह बात सर्वसम्मत हो गई। छान्दोग्योपनिषद् में नारद ने सनत्कुमार से अपनी भिन्न-भिन्न विद्याओं की प्राप्ति का कथन करते समय इतिहास का उल्लेख किया है। 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं। चतुर्थं इतिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं (७—१—२) इस वाक्य में नारद ने इतिहास को पंचम वेद कहा है। इससे प्राचीन काल में हमारे देश में इतिहास को कितना महत्त्व दिया जाता था, इसकी कल्पना हो सकती है। इतिहास के स्वरूप में, यानी उसके लिखने की पद्धति में परिवर्तन होने पर भी इतिहास का महत्त्व आज भी सर्वत्र पहले के समान ही माना जाता है। अथातो धर्म जिज्ञासा' इस सूत्र से आरम्भ कर पूर्व मीमांसकों ने जो धर्मस्वरूप बताया था, उसमें आगे चलकर बहुत परिवर्तन हो गया, अथवा 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' के नाम से जो वेदान्त बताया गया था, उसमें भी बाद को अनेक मत-भेद हो गये; किन्तु तिस पर भी धर्मशास्त्र या वेदान्तशास्त्र का महत्व कुछ कम नहीं हुआ। जो बात इन शास्त्रों की है, वह इतिहास की भी है।'

• • •

गुबरीला के नाश के उपाय

'चित्रमय-जगत्' में श्रीयुत ह० चिं० पाटील ने 'झुरल' (Cockroach) शीर्षक लेख में गुबरीला नामक कीड़े की जीवन-कथा देकर उनके नाश के कुछ सुलभ उपाय बताये हैं। इस जन्तु के बहुत प्राचीन होने के प्रमाण मिलते हैं। वैज्ञानिकों ने तो इस कीड़े की पाँच हजार से भी अधिक जातियाँ संसार के भिन्न-भिन्न भागों में होने का अनुमान किया है। घरेलू कीड़े अक्सर भूरे या काले रंग के होते हैं, और वे अँधेरी जगह में—विशेषकर सन्दूकों, आलमारियों जैसे फर्नीचरों में छिपे रहते हैं। यह कीड़े सर्वभक्षी (Omniuorous) होते हैं। यहाँ तक कि, वे समय पड़ने पर अपनी जाति के दूसरे कीड़ों पर भी हाथ साफ कर लेते हैं। पुस्तकों की ज़िल्दें खाकर उन्हें नुकसान पहुँचाने में यह कीड़ा तो मशहूर ही है।

इन कीड़ों का नाश करने के अनेक उपाय हैं; किन्तु निम्नलिखित उपाय गुणकारी तथा आसानी से किये जा सकते हैं—

'(१) मकान की सफाई की ओर विशेष ध्यान देना और उसे बार-बार पुतवाना चाहिए।

(२) कीड़ों के खास स्थानों में पायरेथ्रियम पाउडर छिड़कना चाहिए। इस औषधि से वे दुर्बल हो जाते हैं; किन्तु यह उपाय अस्थायी है।

(३) सल्फर-फ्लावर या गंधक को पीसकर छिड़कने से यह कीड़े उस स्थान में पुनः नहीं आने पाते।

(४) सोडियम-फ्लोराइड मैदे में मिलाकर दिन के समय कीड़ों के स्थान में छिड़कना चाहिए। इस उपाय से वे अन्धे होकर फौरन इधर-उधर भागने लगते हैं और कुछ समय में मर जाते हैं।

(५) इसी प्रकार कटोल-पाउडर का भी उपयोग किया जा सकता है।

(६) बोरॅक्स (सुहागा) के दुगने परिमाण में गुड़ मिलाकर उसे कागज़ या पत्ते पर चिपकाना चाहिए। कीड़े उस कागज़ या पत्ते को खाकर मर जाते हैं।

(७) प्लॅस्टर आफ पेरिस आटे में मिलाकर कीड़ों को खिलाने से वे शीघ्र ही मर जाते हैं।'

उपरिलिखित उपायों में से पहला उपाय कुछ खर्चीला होने पर भी, सबसे लाभदायक है; क्योंकि, यद्यपि अन्य उपायों से बड़े कीड़े नष्ट किये जा सकते हैं, तो भी उनसे उनके अंडों का नाश नहीं हो सकता।

• • •

क्या चन्द्रगुप्त ईरानी था?

'विहंगम' में 'कूजन' नामक सम्पादकीय स्तम्भ के इतिहास-विभाग में 'चन्द्रगुप्त ईराणी की भारतीय?' शीर्षक एक नोट प्रकाशित हुआ है। इस नोट में जूनागढ़ के डॉ०



शाह के अनुसन्धान का महत्त्वपूर्ण अंश संकलित किया गया है, जो इस प्रकार है—

'प्रसिद्ध युरोपीयन इतिहासवेत्ता सर जॉन माइलि तथा डॉ० स्पूनर ने ऐसा सिद्ध किया है कि अशोक और चन्द्रगुप्त ये दोनों ईरानी थे, आज तक इसी धारणा में लोग विश्वास करते आये हैं; किन्तु डॉ० शाह के मतानुसार यह धारणा ग़लत है। उनका कथन है, कि विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' से यह बात स्पष्टतया प्रकट होती है कि यदि यह माना जाय, कि उसने ईरानी-सम्राट् सैल्यूकस निकेटर की कन्या से विवाह किया था, तो केवल इस प्रमाण से वह ईरानी नहीं हो सकता। दूसरी बात यह, कि चन्द्रगुप्त के सिक्के पर जो सूर्य, वृक्ष तथा चैत्यों के चिन्ह थे, उन्हें इरानी साम्राज्य के चिन्ह मानने का कोई कारण नहीं। आर्य लोग तो सूर्यनारायण की उपासना प्राचीन काल से करते आये हैं। बौद्धों का बोधि-वृक्ष भी भारत में अत्यन्त पवित्र माना गया है। इसी प्रकार चैत्यों के चिन्हों को पर्वत-पङ्क्तियों के चिन्ह-स्वरूप मानना भी ग़लत होगा।'

आशा है भारत के इतिहासवेत्ता-गण डॉ० साहब की इन दलीलों पर अवश्य विचार करेंगे।

—आनन्दराव जोशी (नागपुर)

अँगरेज़ी

अमेरिका से प्रकट होनेवाली स्वास्थ्य-विज्ञान की विश्व विदित मासिक-पत्रिका 'फ़िज़िकल कल्चर' में श्री० मिलो हेस्टिङ्ग्स नामक विद्वान् का गौ-महिमा पर एक अति सुन्दर लेख छपा है। उन्होंने अपने लेख में यह सिद्ध किया है कि गाय ही मानवीय सभ्यता का मानदण्ड है। गौ-वंश के उद्धार पर ही मानव-जाति की उन्नति निर्भर है। वे लिखते हैं—

'गाय सभ्य मानव-समाज की पालक माता (Foster Mother) है। मानव-जाति की सभ्यता को मापने के अनेक मानदण्ड कहे जाते हैं। कुछ मानव-सभ्यता को पुस्तकों द्वारा मापते है। कई धर्म-मंदिरों द्वारा तथा कुछ पुरु बैंकों द्वारा मानव-संस्कृति की उन्नति का हिसाब लगाते हैं। पर गाय के द्वारा भी सभ्यता का माप निकाला जा सकता है। Ours is the cow-milking civilization—हमारी संस्कृति तो गो प्रधान संस्कृति है। जहाँ पर गोवंश उन्नत नहीं है, वहाँ श्वेत जातियाँ अपना गुज़ारा नहीं कर सकतीं।

हम चाहते हैं कि रूस में दो वस्तुओं का विशेष रूप से प्रचार हो जाय। एक तो यांत्रिक हल और दूसरे गायें। इन दो वस्तुओं को उत्कर्ष देने में यदि रूस ने सफलता प्राप्त कर ली, तो सच मानिए कि रूस एक स्थायी संस्कृति का उन्नायक माना जायगा।

दुग्ध-व्यवसाय (Dairy Industry) को उन्नत करके हम आनन्द, मेधा और समृद्धि को प्राप्त कर सकेंगे। मानवीय जीवन का तथा मानव सभ्यता का दूध के साथ एक विशेष प्रकार का संबन्ध है। आधुनिक समय में यूरोप में तीन ऐसे देश है, जहाँ पर दुग्ध के व्यवसाय की प्रधानता हैं। वे हैं—डेनमार्क, हॉलैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड! ये वे प्रदेश हैं, जहाँ सदियों से कोई युद्ध नहीं हुआ है। इनमें से एक आज राष्ट्र-संघ के कार्य का केन्द्र है और दूसरा World-Court का मुख्य स्थान! क्या गौ-वंश सभ्यता को बनाता है अथवा सभ्यता गौ-वंश को बनाती है। यह विचार का विषय हो सकता है; पर हमारे मत में दोनों वस्तुएँ साथ-साथ ही रह कर चलेंगी।'

युग बीत गए। एक समय यह आर्यदेश और आर्यजाति सबसे अधिक गो-सेवक थी। इसी गौ-सेवा की बदौलत उस समय इस जाति ने समस्त विश्व को जीवन, जागृति, पुरुषार्थ तथा बल का संदेश सुनाया था। उस स्वर्गीय युग में ही गो-दुग्ध का पान करके यहाँ के आर्यवीर सौ सौ वर्षों से भी अधिक आयुष्य का भोग करते हुए, शक्ति के पुंज बने रहते थे। शास्त्र में लिखा है 'घृतं वै आयुः! पर आज तो इस गरीब देश के बच्चे दूध के लिए भी तरस रहे हैं!

—शंकरदेव विद्यालंकार



नीरक्षीर

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग २)—लेखक श्री जयदयाल गोयन्दका ; प्रकाशक, घनश्यामदास, गीताप्रेस, गोरखपुर। मूल्य ॥।=)

इस पुस्तक की अलोचना करने में मेरे लिये यह कठिनाई पड़ती है कि मैंने इसका प्रथम भाग नहीं देखा है। यद्यपि इसमें रचयिता महोदय के 'कल्याण' में निकले हुए लेखों का ही संग्रह है ; पर यह संग्रह किसी विशेष क्रम और नियम के ही अनुसार किया गया होगा। जिसका परिचय प्रथम भाग के प्राक्कथन में सम्भवतः दिया गया होगा। पुस्तक देखने से किसी क्रम-विशेष का पता नहीं चलता। रचयिता ने अपने निबन्धों में बहुत से धार्मिक और दार्शनिक प्रश्नों-पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है और इस प्रयत्न में उनको अच्छी सफलता हुई है। विषय के गाम्भीर्य को देखते हुए उन्होंने ऐसी भाषा में, जिसे कठिन या दुरूह नहीं कह सकते, गीतोक्त सांख्ययोग, जीवन्मुक्ति, जीव का स्वरूप आदि विषयों की सरल, सुबोध और सफल व्याख्या की है। जो लोग इन विषयों में थोड़ी-बहुत अभिरुचि रखते हैं ; पर किसी कारण कठिन और बड़े ग्रन्थों को नहीं पढ़ना चाहते, या नहीं पढ़ सकते, उनके लिये इन लेखों से अच्छा विषय-प्रवेश हो सकता है। हाँ, यह बात स्मरण रखनी होगी कि महमौद्वैतमत का आदर करते हुए भी लेखक का दृष्टिकोण भक्तिमार्ग के अनुकूल है और वे इस मार्ग का अनुगामी अविच्छन्नपि द्वैत या विशिष्टाद्वैत मत या अधिक-से-अधिक शुद्धाद्वैत-मत-मूलक भावों से अधिक स्वारस्य रखता है और तदनुसारिणी भाषा का ही प्रयोग करता है ; परन्तु कहीं-कहीं लेखक के विचार सद्व्याख्या या सदालोचना की सीमा से आगे बढ़े प्रतीत होते हैं। एक निबन्ध में गीतोक्तयोग और पातञ्जलयोग की तुलना की गयी है। यहाँ यह दिखलाया गया है कि गीतोक्त ईश्वर-स्वरूप योगदर्शनोक्त ईश्वर-स्वरूप से ऊँचा है। यह ठीक है और यही कारण है कि महर्षि पतञ्जलि ईश्वरार्चन को 'ईश्वरप्रणिधानाद्वर' द्वारा तथा नियमों में स्थान देकर गौण माना है। योगदर्शन की विचार-धारा और तन्मूलक साधना में ईश्वरोपासना के लिये वह स्थान नहीं हो सकता, जो भक्ति-प्रधान ग्रन्थों में उसे मिल सकता है। इसके साथ ही यह दिखलाकर कि योगदर्शन-कार कहते हैं कि 'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः' परन्तु गीता में ध्यान से परमात्मा स्वरूप का साक्षात्कार बतलाया गया है। ऐसा अर्थ करना कि गीताकार के ध्यान का आदर्श योगदर्शन-कार के आदर्श से ऊँचा है या गीतोक्त क्रम से ध्यान करने वाला पातञ्जलयोग-मार्ग के अनुगामी से श्रेष्ठ साधक है, अनुचित है। 'आत्मा', 'योग' 'चित्त' की भाँति 'ध्यान' शब्द भी अनेकार्थबोधक है। गीता योगविद्या का 'शास्त्र' नहीं है ; अतः उसमें ध्यान का प्रयोग भी कुछ गोल या व्यापक रूप से हुआ है। योगदर्शन में वही शब्द एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बिना इस बात को ध्यान में रखे, ठीक-ठीक तुलनात्मक आलोचना नहीं हो सकती।

प्रकृति को सान्त कहना भ्रामक है। प्रकृति उसी सीमा तक सान्त है, जहाँ तक कि पुरुष सान्त है। यदि 'पुरुष' का वाक्यार्थ कपिल सांख्योक्त पुरुष है, तो भी न तो यह पुरुष सान्त है न प्रकृति। यदि पुरुष का अर्थ प्रत्यगात्मा, जीवात्मा है, तो वह अविद्योपहित चैतन्य है। अविद्या के नाश होने पर न तो इस पुरुष के लिये अविद्या ; अर्थात्—प्रकृति का अस्तित्व रह जाता है, न स्वयं इसका अस्तित्व प्रत्यक्त्वेन रह जाता है। यह अपने अंशी में विलीन हो जाता है। यदि किसी मत के अनुसार उसमें सूक्ष्म अहंकार अवशिष्ट रह जाता है और वह उसके द्वारा ईश्वरसामीप्य के आनन्द का अनुभव करता रहता है, तो उस अंश तक प्रकृति भी अवशिष्ट ही है। स्वयं परमेश्वर मायाशबल ब्रह्म है और पूर्ण मोक्ष ; अर्थात्—ब्रह्मसद्भाव की अवस्था में जब कि जीवेश्वर भेदबुद्धि का प्रणाश हो जाता है, ईश्वर का भी 'अन्त' हो जाता है।

पुस्तक में सीताजी के चरित्र से पातिव्रत-धर्म्म का निरूपण किया गया है। अच्छा होता यदि रामचन्द्रजी या किसी ऐसे ही आदरणीय पुरुष के जीवन के आधार पर पत्निव्रत-धर्म्म का भी वैसा ही निरूपण किया जाता।

मनुष्य के कर्तव्य-सम्बन्धी दो लेख हैं और एक लेख में धर्म्म की आवश्यकता दिखलायी गयी है। एक लेख में तेरह

आवश्यक बातें बतलायी गयी हैं। यह सभी लेख अच्छे हैं; पर मुझे इनपर एक आपत्ति है और यह आपत्ति इस प्रकार के प्रायः अन्य लेखों पर भी रहती है। इन सबका लक्ष्य ऐसे मनुष्यों की ओर रहता है, जो न्यूनाधिक ईश्वरोपासक हैं। जो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता, वह दया का पात्र भले ही हो; परन्तु उपेक्षा का पात्र नहीं है। वह भी मनुष्य है और व्यापक सनातन-धर्म्म उसके लिये भी है। अनीश्वरवादी भी धर्म्मात्मा हो सकता है, जो मनु के अनुसार सबसे बड़ा धर्म्म है—अयंतु परमो धर्म्मः, यद्योगेनात्म दर्शनम्—उसका पालन कर सकता है, ईश्वर का नाम बेचनेवाले या अर्द्ध-श्रद्धालुओं की अपेक्षा अधिक वीर, सत्यनिष्ठ, लोकोपकारी हो सकता है। यह भी तो शास्त्र का उपदेश है कि 'येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि जन्तुनः, सन्तोषं जनयेद्धीमान्, स्तदेवेश्वरपूजनम्'। ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो काल पाकर ईश्वर-भक्त हो सकते हैं; पर यदि उन्हें आरम्भ में ही ऐसा उपदेश दिया जाय, जिसमें ईश्वरोपासनामयी शिक्षा का प्राधान्य या प्राचुर्य हो, तो वह इस उपदेश से विमुख हो जाते हैं। ऐसी शिक्षा उन्हें आज-कल के शब्दों में पोपलीलात्मक प्रतीत होती है। धर्म का अनुशासन ऐसे अधिकारियों को ध्यान में रखकर होना चाहिए।

आजकल इनकी बहुतायत है और इन्हीं पर आगे चलकर समाज और धर्म्म की सेवा का भार पड़ता है।

क्या मैं लेखक महोदय से निवेदन करूँ कि 'हरामीपन' साधु शब्द नहीं है?

—सम्पूर्णानन्द

प्रकाश की किरणें—लेखक, श्री भोलानाथजी, मूल्य १॥) मिलने का पता—नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ।

स्वामीजी के उपदेश हमने सुने हैं। उनमें एक भक्त हृदय के पुलकित करने वाले उद्गार हैं, प्रेम में डूबे हुए और आध्यात्मिक आनन्द में सने हुए। यह छोटी-सी पुस्तक आप के कुछ लेखों का संग्रह है। इसमें भी आध्यात्मिक तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। आध्यात्म एक ऐसा विषय है, जिससे साधारण-से-साधारण आदमी भी कुछ-न-कुछ परिचित है। हम अकसर लोगों को कहते-सुनते हैं—जो कुछ करता है ईश्वर करता है, संसार माया है, घट-घट में राम व्याप्त हैं, मन चंगा तो कठौती में गंगा, जहाँ श्रद्धा होगी वहीं भगवान के दर्शन होंगे आदि; पर यह ज्ञान परम्परागत है, अनुभूत नहीं; इसीलिये हम मुख से ऐसे महान् सत्यों का व्यवहार करके भी उनके अनुरूप आचरण नहीं कर सकते। जिसने इन तत्त्वों को अपना लिया है, वही ज्ञानी है, वही महात्मा है। स्वामी भोलानाथजी उन्हीं अनुभवी पुरुषों में हैं, और इस विषय पर लिखने और बोलने का उन्हें अधिकार है। 'सफलता का रहस्य' इस विषय पर लिखते हुए आप कहते हैं—ईश्वर-प्राप्ति का सबसे सरल मार्ग उसकी संतान, मनुष्य-मात्र की सेवा और उन्हीं से प्रेम है। और हमारे खयाल में यह आध्यात्म का सार है। मुशकिल यही है कि जब हमसे कहा जाता है कि—

'दिनभर में जो सुख-दुख मिले उन सब में ईश्वर की इच्छा का संचार समझो और सदा के लिये उसे अपने हृदय मन्दिर में प्रतिष्ठित करो।'

तो तुरत मन में सन्देह होता है कि ईश्वर हम दुखियों के आँसू पोछने के लिये केवल एक मानवी कल्पना तो नहीं है। जब हमारे दुखों में भी ईश्वर की इच्छाही का संचार है, तो शंका होती है कि हम अपनी दशा के सुधारने का प्रयत्न ही क्यों करें? और वही शंका इस नतीजे पर पहुँचती है कि जिनका संसार के पदार्थों पर अधिकार है, उन्होंने विपन्नता को शान्त करने के लिये इस कल्पना की सृष्टि करके उसे सम्मोहित कर दिया है। पुस्तक का मूल्य १॥) बहुत ज्यादा है।

देश का दुर्दिन—लेखक, श्री शिवरामदासजी गुप्त; प्रकाशक, उपन्यास-बहार-कार्यालय, बनारस। मूल्य १)—

यह स्वर्गीय डी० एल० राय के 'मेवाड़ पतन' का हिन्दी रूपान्तर है। शिवरामदासजी ने इसे हिन्दी स्टेज के योग्य बनाने की चेष्टा की है। भाषा बोल-चाल की है; लेकिन कथानक में क्या परिवर्तन किया गया है, यह हम नहीं कह सकते। श्रीशिवरामदासजी को रंग-मंच का अच्छा ज्ञान है और नाटक के विधान में वह कुशल हैं।

हिन्दुस्तानी कोष—संग्रहकर्ता, श्री पं० रामनरेशजी त्रिपाठी; प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मंदिर प्रयाग। मूल्य ३)

त्रिपाठीजी ने यह कोष तैयार करके हिन्दी की एक बड़ी जरूरत पूरी कर दी। हिन्दी और उर्दू के बीच में एक

(शेषांश ६८वें पृष्ठ के नीचे)

राजा राममोहन राय

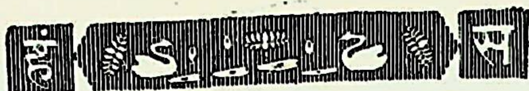
राजा राममोहन राय का स्वर्ग-वास हुए सौ साल पूरे हो गए, और देश में उनकी यादगार मनाने की तैयारियाँ हो रही हैं। हम भी उनकी स्मृति में अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं। राजा राममोहन राय भारत के ही नहीं, संसार के महान पुरुषों में हैं, और जब सच्चा सार्वदेशिक इतिहास लिखा जायगा, तो संसार के प्रवर्त्तकों में उनका नाम भी लिया जायगा। भारत में आज जो धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक जागृति है, उसका सूत्रपात राजा राममोहन राय ने ही किया। हमारे राष्ट्रीय जीवन के हरेक अंग पर उनके महान् व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। हम उन्हें नवीन भारत का जन्मदाता कह सकते हैं। डाक्टर टैगोर के शब्दों में—'वह इस सदी के महान पथनिर्माता थे, जिसने उन बाधाओं को हमारे रास्ते से हटा दिया, जो हमारी प्रगति को रोके हुए थीं और हमें संसार-व्यापी सहयोग और मानवता के इस नवयुग में सम्मिलित कर दिया।' ऐसे महान् व्यक्तियों की कीर्ति अपनी अमरता से हममें जीवन का संचार करती है और हमारी यही कामना है कि उनका आदर्श अनंतकाल तक हमारी आँखों के सामने बना रहे।

• • •

शिक्षा का नया आदर्श

अबतक संसार के सामने शिक्षा का जो आदर्श था, वह परम्परागत समाज-व्यवस्था की ही पूर्ति करता था। समाज पर अबतक व्यक्तिवाद की प्रमुखता रही है और हमारी शिक्षा प्रणाली भी व्यक्ति का ही समर्थन करती थी। बचपन ही से व्यक्ति का विकास होने लगता है और युनिवर्सिटियों में जाकर पूरा हो जाता है। उस साँचे में ढलकर युवक आत्म-सेवी, घोर स्वार्थी, मित्रता में भी स्वार्थ की ही रक्षा करने वाला, पक्का उपयोगितावादी और घमंडी होकर रह जाता है। हमारी शिक्षा हमारी सामाजिक चेतना को नहीं जगाती, उसका उद्देश्य अपने फ़ायदे के लिये समाज से काम निकालना है। समाज केवल इसलिये है कि उसे बढ़ने और संचय करने का अवसर दे। वही मनुष्य सफल समझा जाता है, जो समाज को खूब अच्छी तरह एक्सप्लाइट कर सके। व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि व्यक्ति को मजबूर होकर उसी लीक पर चलना पड़ता है, दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

लेकिन समाज-व्यवस्था में बड़े वेग से क्रान्ति हो रही है। कम्युनिज़्म का प्रचार हो या न हो; पर समाज का आदर्श बदल गया है। भारत जैसे रूढ़ियों के गुलाम देश दस-बीस साल और परलोक चिंतन में पड़े रहें; लेकिन संसार समष्टि की ओर जा रहा है और सच पूछो, तो समष्टिवाद की अनीश्वरता, जो हर आदमी के लिये समान अवसर की व्यवस्था करती है, जो किसी का जन्मसिद्ध या परम्परागत विशेष अधिकार नहीं मानती, ईश्वरता के कहीं निकट है। एकात्मवाद का प्रकट रूप इसके सिवा और क्या हो सकता है। मानवी सभ्यता का और धर्म का सबसे ऊँचा आदर्श 'संसार-व्यापी भाई-चारा' रहा है। आदि से हम उसी ओर जाने की चेष्टा कर रहे हैं और वही हमारा लक्ष्य है; लेकिन या तो इसलिये कि हमें इतने महान् तत्त्व की यथार्थता पर कभी विश्वास ही नहीं हुआ, या इसलिये कि इसे धर्म की आखिरी सीढ़ी मानकर हमने सोच लिया कि इसके आगे और कुछ हो ही नहीं सकता। हम आज भी इस आदर्श से उतने ही दूर हैं, जितने कई हज़ार साल पहले थे; लेकिन समाज के सामने उससे ऊँचे आदर्श की सृष्टि नहीं हुई, और आज भी भूमंडल की आत्मा उसी अनन्त भविष्य की ओर आँखें उठाए देख रही है और अब धीरे-धीरे विचारवानों का मतैक्य होता जाता है कि इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये हमें एक नई सृष्टि रचनी पड़ेगी; अर्थात्—बालक के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा को एक सिरे से बदलना पड़ेगा, जिससे समाज में संघर्ष की जगह सहयोग की प्रवृत्ति जागे, लोग एक दूसरे से सशंकित रहने के बदले विश्वास करें, और शक्ति का संचय इसलिये न करें कि उससे दूसरों पर आतंक जमायेंगे; बल्कि इसलिये कि दूसरों की सहायता करेंगे। संसार में इस समय जिस शिक्षा-प्रणाली का व्यवहार हो रहा है, वह मनुष्य में ईर्ष्या, भय, घृणा, स्वार्थ, अनु-



दारता और कायरता आदि दुर्गुणों ही को पुष्ट करती है। और यह क्रिया शैशव की अवस्था से ही शुरू हो जाती है। सम्पन्न माता-पिता अपने बालक का ज़रूरत से ज़्यादा लाड़-प्यार करके और बड़े होने पर उसको दूसरे लड़कों से अच्छी दशा में रखने की चेष्टा करके उसे इतना निकम्मा बना देते हैं और उसकी बुद्धि को इतना परिवर्तित कर देते हैं कि वह समाज का खून चूसने के सिवा और किसी काम का रह ही नहीं जाता। इस लिहाज़ से हमारे गुरुकुल आज-कल के ईटन या हैरो या राजकुमार-कालेजों से कहीं उत्तम थे, जहाँ सभी छात्र समान थे। इससे उनमें सार्वजनिकता का भाव पैदा होता था। अब पच्छिम के विचारकों को भी यह दिखाई देने लगा है कि जिस शिक्षा-प्रणाली को वे सदियों से गले लगाए हुए हैं, वह चरित्र को दुर्बल बना देती है, और मनुष्य की असामयिक भावनाओं को प्रबल करके समाज में अमंगल और पृथकता का बीज बोती है। यह साम्राज्य-वाद और व्यवसायवाद और राष्ट्रों में संघर्ष इसी कुशिक्षा के फल हैं, जिसने व्यक्ति को प्रधानता देकर उसे समाज का हिंसक जन्तु बना दिया है।

शिक्षा के आदर्शों में जो सबसे बड़ी क्रान्ति हो रही है वह यह है कि शिशु के पहले पाँच-छः साल मनुष्य को जैसा बना देते हैं, वैसा ही वह बन जाता है। इस शैशवावस्था में उसका चरित्र जैसा बन जाता है, वह बाद को फिर किसी तरह नहीं बदला जा सकता। साधारणतः अब तक हम बाल्यावस्था को ज्यादा महत्व नहीं देते थे; पर इसी अवस्था में हम अपने अज्ञान के कारण बालकों का भविष्य सदा के लिये बिगाड़ देते हैं। इसी उम्र में बच्चे हमारे अज्ञान के कारण झूठ बोलना, झूठे बहाने करना और चोरी करना सीखते हैं। इसी उम्र में आलस्य की, और आरोग्य के सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने की आदत पड़ती है। इसी उम्र में वे जिद्दी, स्वार्थी और कायर होते हैं। और इस लिहाज से माँ-बाप पर बालक के चरित्र के विषय में पहले से कहीं बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ती है। कितने ही विचारवानों का तो यह कहना है कि बच्चा पहले ही साल में बहुत-सी अच्छी या बुरी आदतें सीख लेता है। और चूँकि इस उम्र में कोई बच्चा शाला नहीं भेजा जा सकता, इसलिये माँ-बाप का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे माँ बाप बनने के पहले शिशु-पालन के सिद्धान्तों से अच्छी तरह परिचित हो जायँ। यह स्वीकार किया जाने लगा है कि अधिकांश बालकों में एक-सी प्रवृत्तियाँ होती हैं और उन प्रवृत्तियों का सदुपयोग या दुरुपयोग उन्हें अच्छा या बुरा बना देता है।

० ० ०

पुस्तकालय-आन्दोलन

हाल में कलकत्ते में पुस्तकालयों को संगठित करने और भारत में एक पुस्तकालय-संघ स्थापित करने के विचार से एक जलसा हुआ है। पुस्तकालय का राष्ट्र के जीवन में क्या स्थान है, यह लिखने की जरूरत नहीं। इतना ही कह देना काफ़ी है कि वह विद्यालयों से कहीं महत्त्वपूर्ण है, और उनसे कहीं कमखर्च और उसके साथ ही कहीं बालान-शीन। अगर कोई इस बात की खोज करे कि अब तक विद्यालयों ने ज्यादा महापुरुष पैदा किए या पुस्तकालयों ने, तो शायद बाजी पुस्तकालयों ही के हाथ रहेगी। आज भी संसार के महान् व्यक्तियों में अधिकांश वही हैं, जिन्होंने पुस्तकालयों के विद्यालयों में शिक्षा पाई! भारत में पुस्तकालयों पर अभी तक बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया। दानवीरों की प्रवृत्ति विद्यालयों ही की ओर रही है और इसका नतीजा यह है कि जनता में नए-नए विचारों के प्रचार के सबसे अच्छे साधन से हम वंचित रहे। सरकार ने, न स्थानीय संस्थाओं ने इस ओर अग्रसर होने की आवश्यकता समझी।

लेकिन जैसा मि० लीच विलसन ने पुस्तकालय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा—'पुस्तकों का एक स्थान पर संग्रह कर देना ही पुस्तकालय नहीं है। पुस्तकें स्वतः कुछ भी नहीं हैं। जब पुस्तकाध्यक्ष उन्हें चुनकर, उनका वर्गीकरण करके, उन्हे आकर्षक रूप से प्रदर्शित करता है, तभी पुस्तकालय का निर्माण होता है। यह बात हमारे पुस्तकालयों के अधिकारी अभी नहीं समझ सके हैं और इसीलिये समाज मे पुस्तकाध्यक्षों का जो स्थान होना चाहिए, वह उन्हे प्राप्त नहीं हुआ। अधिकांश पुस्तकाध्यक्ष तो अपना कर्तव्य यही समझते हैं कि पुस्तकों की रक्षा करते रहें और पुस्तकों को जहाँ तक हो सके कम इधर उधर करें।

नहीं वे खराब हो जायँगी। उन्नत देशों में पुस्तकाध्यक्ष का पद अच्छे विद्वानों को दिया जाता है और इस पद को प्राप्त कर लेना गौरव की बात है। भारत में इस पद के लिये कोई ऐरा गैरा उपयुक्त समझा जाता है। वह पुस्तक-प्रेमियों को किसी तरह की सलाह नहीं दे सकता, न अपने पद के महत्व को समझता है। ज्यादा-से ज्यादा वह अपना कर्तव्य यही समझता है कि आप जो पुस्तक माँगें, उसे निकलवा दे। और जब तक इस पद पर सुयोग्य व्यक्तियों को न रखा जायगा, थोड़े बहुत जो पुस्तकालय मौजूद हैं, उनसे भी जनता को विशेष लाभ न होगा।' सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष के शब्दों में —

'कितने शोक की बात है कि हमारे कितने बालक अध्यापकों के आपत्तिजनक दुर्व्यवहार के कारण पुस्तकों की अरुचि के साथ विद्यालय से निकलते हैं। और यदि विद्यालयों में हमें योग्य और प्रकाशवान अध्यापकों की जरूरत है, तो पुस्तकालयों में भी विचारशील और शिष्ट मनुष्यों की जरूरत है, जिन्होंने बहुत कुछ पढ़ा हो। जो पाठकों के सलाहकार बन सकें, किसी खास विषय पर अच्छी-से-अच्छी किताबों का चुनाव कर सकें, और पाठकों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को पुष्ट कर सकें।'

° ° °

पं० बनारसीदासजी के दो पत्र

सरस्वती के यशस्वी सम्पादक ठाकुर श्रीनाथसिंह ने, जिन व्यक्ति का नक़ली और फ़र्ज़ी इंटरव्यू छापकर उन्हें बदनाम करने की कोशिश की थी, उन्हीं पं० बनारसीदासजी के दो पत्र, यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं, जिनसे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि चतुर्वेदीजी उसी रूप-रंग के आदमी हैं, जैसा सरस्वती के इंटरव्यू-कला-सिद्धान्त-चूड़ामणि ठाकुर श्रीनाथसिंहजी ने दिखाने की चेष्टा की है, या कुछ और। ये पत्र चतुर्वेदीजी ने प्रयाग के पं० सुन्दरलालजी के पास, सरस्वती का वह यादगारी लेख पढ़ने के बाद लिखे थे। ये पत्र फ़र्ज़ी या नक़ली नहीं हैं, हम ठाकुर साहब को इसका विश्वास दिलाते हैं। पाठक देखेंगे कि इन पत्रों में कहीं कटुता का, या क्रोध का, या प्रतिहिंसा का एक शब्द भी नहीं है। चतुर्वेदीजी की सरल, सच्ची, द्वेष-रहित आत्मा उनके एक-एक शब्द में प्रस्फुटित हो रही है। नहीं कहा जा सकता, अगर चतुर्वेदीजी की जगह हमारे ठाकुर साहब होते, तो कैसे पत्र लिखते। हाँ, हम उसका कुछ अनुमान कर सकते हैं। ठकुराई की ठसक के साथ ब्रह्म तेज का संयोग ख़ुदा जाने क्या गज़ब ढाता। खैरियत यही हुई कि चतुर्वेदी, चतुर्वेदी हैं; और ठाकुर साहब, ठाकुर। हमें आशा है, बनारसीदासजी इन पत्रों के छापने के लिए हमें कोई बहुत कड़ा दंड न देंगे। श्रीनाथसिंहजी की तरह की बातें तो हम बर्दाश्त कर सकते हैं; लेकिन चौबे को इच्छापूर्ण भोजन कराना हमारे मान की बात नहीं; क्योंकि ठाकुर साहब को यह सुनकर प्रसन्न होना चाहिए कि हमारी आर्थिक दशा उतनी अच्छी नहीं है जितनी चतुर्वेदीजी की—

निजी

'प्रिय सुन्दरलालजी,

जितना ही मैं पिछली 'इंटरव्यू' सम्बन्धी दुर्घटना पर ख़याल करता हूँ, उतना ही दृढ़ मेरा विश्वास होता जाता है कि मुझमें अधिक बात करने का और असंयत ढङ्ग से सबके सामने दिल खोलकर बात करने का जो दोष है, उसके दूर करने के लिये मुझे कुछ दिनों तक सर्वथा एकान्त वास करना चाहिये। अपनी कहानी (या राम कहानी) 'सम्पादक की समाधि' में मैंने अपनी क्षुद्र आत्मा की इस Urge को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। क्या वह कहानी आपने पढ़ी थी? न पढ़ी हो, तो भेज दूँ? जैसा Arrogant आदमी श्रीनाथसिंह ने मुझे Paint किया है, वैसा मैं नहीं हूँ यह बात तो सत्य है; पर साथ ही यह भी सत्य है कि बेहद विज्ञापन (मैं उसे कीर्ति नहीं कहूँगा) के कारण लोग मुझसे यह आशा करते हैं कि मेरा चरित्र उच्च कोटि के आदमियों-जैसा हो। बस यहीं गलती हो जाती है। असली बात यह है कि मेरा विज्ञापन First Class के आदमियों-जैसा हो गया है, योग्यता Second Class के आदमियों से भी कम है, खुद आदमी Inter Class का हूँ और रहन-सहन रंग-ढंग और बात-चीत Third Class जैसे आदमियों की है। इस प्रकार हिन्दुस्तानी रेलों के चारों डिब्बों का सम्मिश्रण मुझमें पाया जाता है! श्रीनाथसिंहजी इसी से Confused हो गये। उनके 'इंटर व्यू' ने मेरे साथ एक बड़ा हित किया है। वह यह कि अब मुझसे कोई धोखा न खायगा। वैसे भी मैं जान-बूझकर किसी को धोखा नहीं देता था; पर अब

'सरस्वती' के लेख के बाद तो किसी को धोखा न खाना चाहिये। अब अगर धोखा देने की प्रवृत्ति मुझमें आ भी जावे, तब भी वह असम्भव हो गया है। यह कौन कम लाभ है ?

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय॥

श्रीनाथसिंहजी भाषा बड़ी जोरदार लिखते हैं। उसमें (भाषा में) जीवन है और प्रवाह तथा प्रभाव भी है। आप उनके गुणों का सदुपयोग कीजिये। उन्हें अपने संसर्ग में आने के अवसर दीजिये और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध उनकी शक्तियों को लगाइये। उनका यह ख़याल (जैसा कि उन्होंने मुझे अपने एक पत्र में लिखा था) कि वे First Class चीज़ कभी नहीं लिख सकेंगे, सर्वथा निराधार है। इतना उन्हें समझा दीजिये कि कभी Motive Attribute न करें और यथा सम्भव संयत भाषा में लिखें। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिये वे बहुत काम कर सकते हैं। मुझको जितना क्षुद्र और नीच और पतित वे समझते हैं, उस पर ध्यान देते हुए यह तो उनके लिये सम्भव प्रतीत नहीं होता कि वे मेरे साथ सहयोग करें; पर आपके प्रति उनके हृदय में श्रद्धा है, इसलिये आप उनसे काम ले सकते हैं। उन्हें Guide कीजिये। 'कबीर-मेला' 'मौलाना आज़ाद की किताब' 'विषवृक्ष के विकट-आन्दोलन' इत्यादि कार्यों में उनका सहयोग आप ले सकते हैं। उनके कार्यालय में जाकर दो-चार बार उनसे मिलिये।

विनीत—बनारसीदास चतुर्वेदी'

(२)

'प्रिय सुन्दरलालजी,

कल जो चिट्ठी मैंने भेजी थी, उसे मैं रजिस्ट्री-द्वारा नहीं भेज सका, इसलिये उसकी एक प्रति फिर भेज रहा हूँ। श्रीनाथसिंहजी के लेख से और जो कुछ हुआ है सो हुआ ही है; पर एक भयंकर दुष्परिणाम हुआ है। उसमें यह लिखा था कि हिन्दी के सब सम्पादकों से मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी है। नतीजा यह हुआ कि जिन महानुभाव का मुझ पर कर्ज़ चाहिये, उनके मुनीमजी तक़ाज़ा करते हैं कि अब रुपये दिलवाइये! एक महानुभाव मुझसे कर्ज़ा भी माँग रहे हैं और सबसे भयंकर बात यह हुई है कि जिनको मैंने यह कह कर कि मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है—मैं गृहस्थ-जीवन फिर प्रारम्भ नहीं कर सकता—टाल दिया था, वे अब सरस्वती का लेख पढ़कर फिर आग्रह करेंगी! अब आप ही बतलाइये क्या करूँ? शारीरिक स्थिति का ऐतराज़ तो सरासर असत्य होगा; क्योंकि वह तो पहले से दर असल अच्छी है। अब अगर सरस्वती से मानहानि के मामले में तीन हज़ार मिल जाते, तो एक हज़ार में कर्ज़ चुक जाता, एक हज़ार से गृहजीवन पुनः प्रारम्भ करता और एक हज़ार 'भविष्य' के लिये रख छोड़ता। आपने हमारा यह बना-बनाया महल ढा दिया है! ख़ैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। आशा है कि आप इस बात को मद्दे नज़र रक्खेंगे कि मेरी इस समय जितनी हानि हुई है, वह प्राचीन काल के शेख़-चिल्ली से कहीं ज़्याद: है। शेष कुशल है।

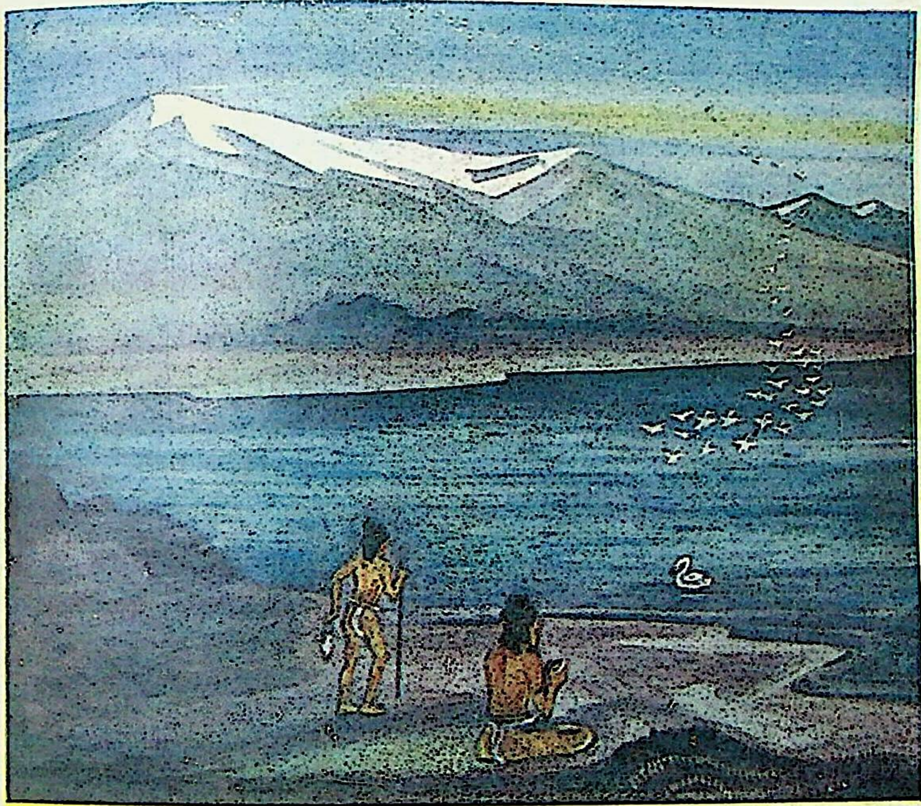
विनीत—बनारसीदास चतुर्वेदी'

(६१६ पृष्ठ का शेषांश)

तीसरी भाषा बनती जा रही है जिसे 'हिन्दुस्तानी' कहा जा रहा है। वह साधारण बोल-चाल की भाषा है, जिसमें हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि सभी भाषाओं के शब्द मिलते हैं। वह हिन्दी और उर्दू दोनों को एक प्लेटफार्म पर ला खड़ी करती है, उनमें केवल लिपि का भेद रह जाता है। इस तरह का कोई कोष अब तक मौजूद न था, जिसमें इन्कलाब, अंजुमन, मारफ़त, जिलवा, हयात, मुस्तग़ीस आदि शब्दों के अर्थ दिए गए हों। अंग्रेज़ी के शब्द हमारी बोल-चाल में रोज़ बरोज़ बढ़ते जाते हैं, और थोड़े दिनों में वे हिन्दी में मिल जायँगे। जीवित भाषा का धर्म है कि ऐसे शब्दों का स्वागत करे, न कि उनके लिये द्वार बन्द कर दे। त्रिपाठीजी ने इस जरूरत को समझा है। और इन शब्दों को कोष में स्थान देकर उन पर टकसाल की मुहर लगा दी है। वैज्ञानिक या दार्शनिक विषयों के पारिभाषिक शब्द तो उर्दू के अलग होंगे और हिन्दी के अलग; लेकिन साधारण किस्से-कहानियाँ, समाचार-पत्र और इसी तरह की हजारों बातें अगर हिन्दुस्तानी का प्रयोग करें, तो निस्सन्देह भाषा का भेद मिट जाय और शिक्षित मुसलमान या हिन्दू की बोलचाल में कोई दिक़त न हो; किन्तु उर्दू भी हिन्दी शब्दों का इसी शौक़ से स्वागत करने को तैयार है या नहीं, हम नहीं कह सकते।

काशी

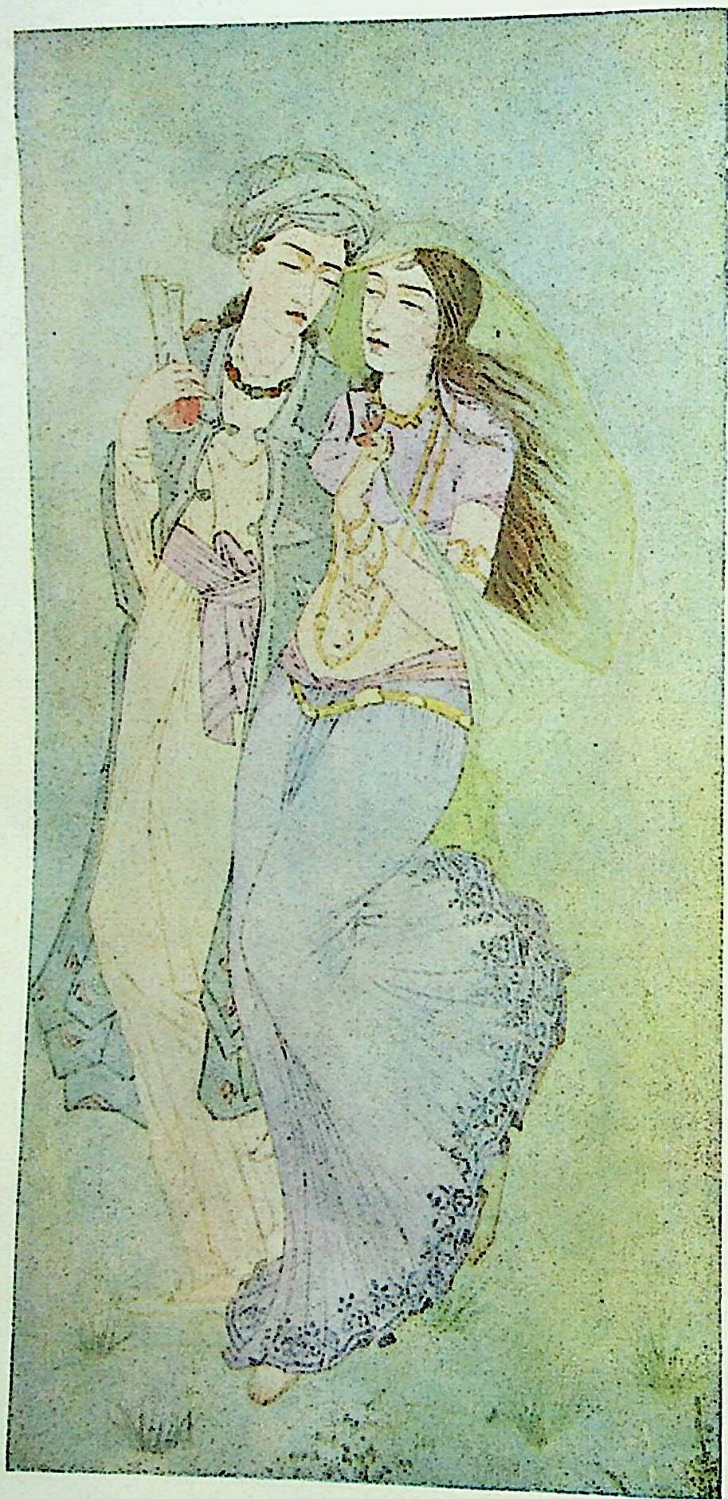
हंस





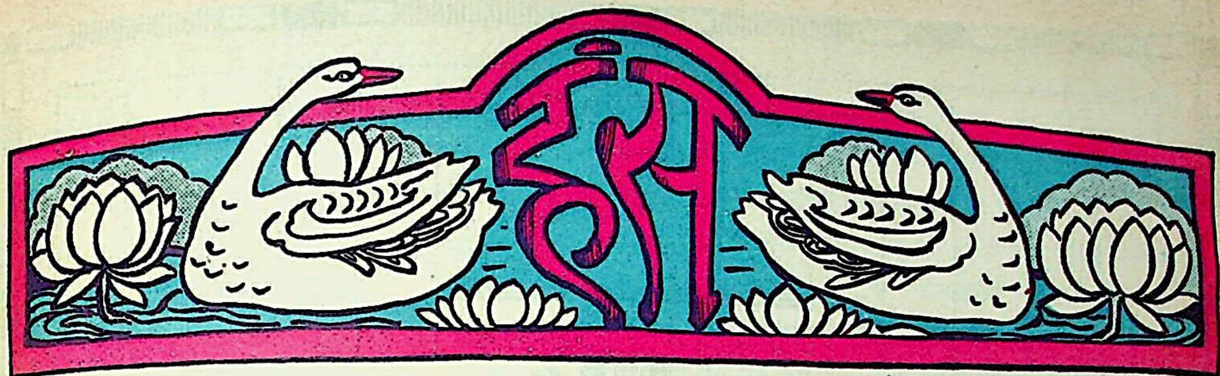
सम्पादक—प्रेमचन्द

लेख-सूची



यौवन और सौन्दर्य

चित्रकार, संसारचन्द्र शर्मा, काश्मीर ।



वर्ष—४ : संख्या—१, २

अक्टूबर,	नवम्बर	१९३३
आश्विन,	कार्त्तिक	१९९०

वार्षिक मूल्य	...	३॥)
एक अंक का	...	।=)

यस्यां सदैव भुवनत्रय संस्तुतायां
विश्वेश्वरो वसति शैल सुता समेतः।
काशी च सैव विबुधाधिप भक्ति भूमि-
'हंस-श्रियं' बहुविधां वितनोतु नित्यम्।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

झलक

[काशी के धरहरे पर से]

सामने पुरी काशी की रे संकीर्ण, सघन, सुन्दर अपार
नीचे प्रयाग से आ-आकर, कर जाती है गंगा दुलार
मैं खड़ा यहाँ पर उत्सुक हो इस वेला सबकुछ देख रहा
पर नहीं मानती, हठ करती, खींचती मुझे चंचल बयार

• • •

देखो, वह वन की हरियाली खा रही इधर अञ्चल पसार
रुक गई किंतु, यह रेत देख, रह गई राह में उसी पार
कब आती है, कब बिछती है, मेरे आँगन में हरियाली
इस आशा में धरहरा रहा रे अपलक नयनों से निहार

• • •

दीखता यहाँ से बौद्ध-स्तूप, है कहीं पास ही में 'विहार'
है वहीं हमारा सारनाथ, ऋषिपत्तन, वरुणा की कछार
बहती होगी फिर वहीं कहीं अब भी वैसी ही मन्द-मन्द
वसुधा की करुणामयी, सरल वरुणा की लघुलघु, विमलधार

• • •

सामने महल हैं बड़े-बड़े जिनके भीतर और ही लोक
हैं जहाँ बन्द जगके सुख-दुख, करुणा, उमंग, आनंद, शोक
इस ओर छतों से, खिड़की से हैं ताक रहे कितने लोचन
मैं एक अपरिचित होकर भी सुख पाता हूँ इनको विलोक

• • •

रे यहाँ कहाँ वे वन-विहंग, हिमगिरि के जलके विमल श्रोत
है अमरपुरी काशी की यह, उड़ जाते उड़ आते कपोत
धरहरा यही इनका निवास सुख से करते ये जहाँ केलि
हो रहा जहाँ मेरा मन भी कोमल भावों से ओत-प्रोत

• • •

वह राजघाट का पुल विशाल जिसपर होकर जा रही रेल
रे क्या न किया इस मानव ने करके श्रम, श्रम में कष्ट झेल
अपने इस लघु जीवन में भी हो जाता यह कितना प्रवीण
वसुधा के विस्तृत आँगन में विधि की गुड़ियों से खेल-खेल

• • •

इस शान्त अचंचल गंगा में हैं खेल रहीं रे कई नाव
ऐसे ही मेरे मन में भी क्रीड़ा करते हैं मधुर भाव
ऐसे ही इस भवसागर में खेला करता यह लघु जीवन
सागर की चंचल लहरों में बह जाते हैं सारे अभाव

• • •

मैं रहा आज क्षण-भर निहार जगके जीवन का रंग-रूप
इतने ऊँचे से दिखता है इसका कितना सुन्दर स्वरूप
सुख-दुख के सुन्दर मिश्रण से यह बना जगत कैसा अपूर्व
कण-कण इसका जैसा अनूप, क्षण-क्षण इसका वैसा अनूप

— श्रीगोपालसिंह नेपाली —

बुद्धितत्त्वस्य जननी शक्तिर्निर्विकृतेश्चितेः।
ययेदं काश्यते सर्वं सा काशी परिकीर्त्यते ॥
(काशीखण्ड)

काशी के तीन रूप—कारण, सूक्ष्म, और स्थूल

लेखक—श्री डॉ. भगवान्‌दासजी

देश का उत्तमांग

उत्तमांग, सिर, जैसे मनुष्य के शरीर में, सब ज्ञानों, सब रसों, सब क्रियाओं का मूल उद्भवस्थान है, वैसे ही एक-एक महाजाति, महासमाज, महाराष्ट्र, की सभ्यता शिष्टता का, उसके शास्त्रों, उसकी कलाओं, उसके आचारों, रहन-सहन के प्रकारों, का प्रधान केन्द्र स्थान एक विशिष्ट नगर हुआ करता है। और जैसे सततवाहिनी शरीरव्यापिनी त्रिपथगा, ऊर्ध्वगा, अधोगा, तिर्यग्गा, रसमयी रुधिरनदी के आश्रय से मस्तिष्क जीता है, वैसे ही प्रायः यह मुख्य पुरी भी एक विशिष्ट नदी के आश्रय से बसती है। ये नदी-नगर अपने-अपने देश, अपनी-अपनी जाति, में उत्तम पवित्रतम माने जाते हैं।

भारतवर्ष का मस्तक, उत्तमांग, काशी-गंगा का 'तीर्थ', मनुष्य-'स्मृति' से अतीत 'श्रुति'-काल से, बना हुआ है।

मिस्र (ईजिप्ट) देश की प्राचीन जाति, प्राचीन सभ्यता, का केन्द्र, मन्नफ़र (मम्फ़िस) नगर, लुप्त हो गया। नील नदी, जिसके किनारे वह बसा था, अब तक बह रही है। दूसरे नगर, दूसरी जातियाँ, दूसरी सभ्यता, दूसरी रीति-नीति, उसके सहारे जी रही हैं। यही दशा उफ़ात (युफ़्राटीज) नदी के किनारे बसी, बाबिली और काल्दी जाति की राजधानी, बाबील नगरी, की हुई। तथा दजला (टिग्रिस) के तीर पर खड़ी, असीरी जाति की राजधानी, नैनवा, की यही कथा है। बुद्धदेव के समय से, अर्थात् आज से ढाई हज़ार वर्ष से, पहले के नामी ऐतिहासिक नगर, जो अब भी जी रहे हैं, काशी को छोड़कर, प्रायः तीन ही रह गये हैं; जार्दन नदी से कुछ फ़ासिले पर बसा जरूसलम, जो प्राचीन यहूदी जाति का राजपुर और धर्मपुर भी था और अब ईसाइयों का मान्य है, तथा इलिस्सस नदी के तीर पर समुद्र के पास बसा आथेन्स, जो ग्रीसदेश और ग्रीक जाति की राजधानी है, तथा टैबर नदी के किनारों पर समुद्र के पास बसा रोम नगर, जो इटली देश और इटालियन जाति की राजधानी है; पर जरूसलम प्रायः ईसा पूर्व १५०० वर्ष हुए बसा, आथेन्स प्रायः ई० पू० १४००, रोम की नींव ई० पू० ७५४ में पड़ी। इस समय जो मानव लोक की मुख्य प्रख्यात राजधानियाँ हैं, यथा जापान में सुमिदा नदी के किनारे टोकियो, चीन में हुन-हो के पास पीपिङ् (जिसका पुराना नाम संघराज्य अर्थात् रिपब्लिक के स्थापन के पहले पीकिङ था), तिब्बत में की-चू नदी के पास ल्हासा, अरब देश में (नदियों के अभाव से) ज़मज़म कुंड तथा नहरों के सहारे बसा मक्का, रूस में मोस्क्वा नदी के किनारे मोस्काउ, आस्ट्रिया में डान्युब के किनारे वियेना, जर्मनी में स्प्री के किनारे बर्लिन, फ्रांस में सीन के तीर पर पैरिस, इंग्लैण्ड में टेम्स के तीर पर लन्दन, उत्तर अमेरिका में हडसन के तीर पर न्यू यार्क, दक्षिण अमेरिका में समुद्र के किनारे रायो ओरो की नहरों के सहारे रायो-डी-जानीरो, आदि, जिनमें दस-ग्यारह लाख से लेकर (यथा रायो-डी-जानीरो में) सत्तर-पचत्तर लाख तक (यथा लन्दन में) मनुष्य बसते हैं—ये सब बुद्ध से शताब्दियों पीछे, ईसा के जन्म के आस-पास के, कुछ तो बहुत थोड़े वर्षों के, बसे और बने हैं।

काशी की अति पुराणता

पर काशी के आरम्भ का पता नहीं चलता। बुद्धदेव के समय में बहुत बसा हुआ नगर था। बौद्ध जातक माला नाम के ग्रंथ में, काशी की और यहाँ के राजा की चर्चा है। स्वयं बुद्धदेव ने, इस उपदेश को समझाने के लिये, कि घृणा और द्रोह से घृणा और द्रोह दूर नहीं होते, नहीं मिटते, प्रत्युत प्रेम से ही इनका प्रतीकार होता है, अपने से बहुत पूर्व के काशिराज ब्रह्मदत्त और कोशलराज दीधिति के वैर आदि की आख्यायिका कही है। गीता में, जो, साधारण विश्वास से, आज से प्रायः पाँच हज़ार वर्ष पहले वेदव्यास के लिखे महाभारत ग्रन्थ

का अङ्ग है, 'काशिराजश्च वीर्यवान्', 'काश्यश्च परमेष्वासः' की चर्चा है। कृष्ण-बलदेव के विद्या-गुरु, 'काश्य' सांदीपनि, काशी से उज्जयिनी अवन्तिका में जा बसे थे और कृष्ण-बलदेव ने, कंस को मारने के पीछे, उनके पास जा कर विद्याऽध्ययन किया, और गुरुकुल में किस प्रकार से रहना और शारीर और बौद्ध परिश्रम करना चाहिए, इसका आदर्श दिखाया। पीछे, कृष्ण ने विशेष हेतु से तत्कालीन काशिराज से क्रुद्ध होकर काशी पर धावा भी किया। व्यास से पूर्व आदिकवि वाल्मीकि जी ने भी 'काशिराज' के निमन्त्रण का उल्लेख किया है।

तथा काशीपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनं।
सद्वृत्तं देवसंकाशं स्वयमेवानयस्व हि॥

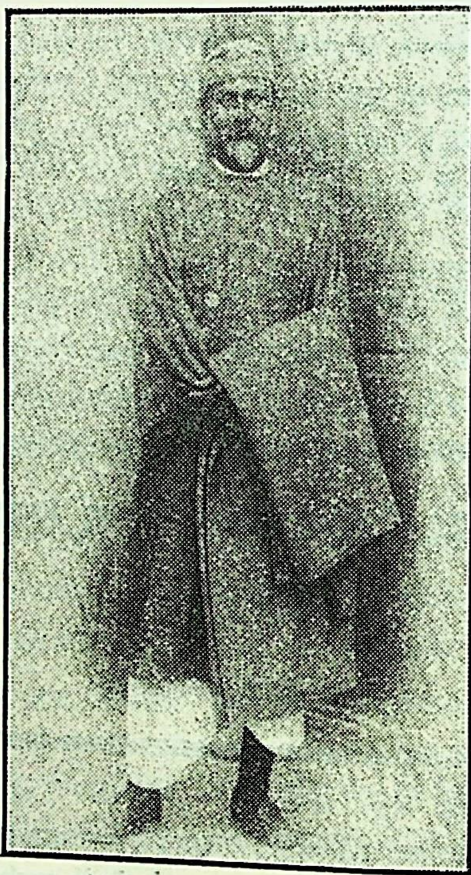
उस समय के काशिराज, दशरथ जी के प्रिय मित्र, स्निग्ध कोमल स्वभाव के, सदा मधुर बोलने वाले, सदाचार, देवतुल्य थे, जैसा काशी के राजा को आदर्शरूप होना चाहिये। इससे भी पहले वेद-कालीन बृहदारण्यक, कौशीतकी, आदि उपनिषदों में, 'अजातशत्रुं काश्यं', 'काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्रः', 'सोऽवसत् काशिविदेहेषु', ऐसे वाक्य मिलते हैं।

ऐसी अवस्था में यह अनुमान करना प्रायः अनुचित न होगा कि पृथ्वीतल पर वर्त्तमान जीती जागती बस्तियों में सबसे पुरानी पुरी काशी ही अकेली है, जिसके आदि का पता नहीं है।

काशी का विशेष धर्मधानित्व

एक वैशिष्ट्य काशी में और है। उक्त नगरी में प्रायः चार के सिवाय सभी राजधानी, क्षत्रपुरी, होने के कारण विख्यात और प्रभावशाली हैं। काशी नगरी सदा से ब्रह्म-धानी, धर्मधानी, ब्रह्मपुरी, धर्मपुरी, प्रधानतया रही। राजधानित्व इसका सदा गौण रहा। स्यात् इसके दीर्घायु होने में यह भी एक हेतु हो। क्षत्रियों में, कभी-कभी सत क्षत्रियों में भी, संमर्द हुआ करता है। रणरस, वीररस, युद्धाह्वान, रण-नृत्य, सत् क्षत्रियों के लिये भी स्वाभाविक-सा है। प्रायः ऐसे ही आह्वान के कारण कृष्ण ने तत्कालीन काशिराज से युद्ध और काशी की लूट-पाट की। गोहूँ के साथ घुन पिसा। बाणासुर का भी दमन कृष्ण ने ऐसी ही उसकी युद्धश्रद्धा, युद्ध की खुजली, शांत करने को किया। महादेव को इष्ट मानकर रोमकपुर के राजा बाण ने बड़ा तपस् किया। महादेव प्रसन्न हुए। 'वर माँगो।' तो 'एक सहस्र बाहु मुझको हो जायँ।' 'अच्छा।' हो गये। कुछ वर्ष बाद फिर महादेव के सामने उपस्थित हुए। 'क्या चाहिये?' तो 'हजारों बाँहों में बड़ी खुजली हो रही है' जैसे साँड़ की सींग में, हाथी के दाँत में, सिंह-व्याघ्र के नख में, खुजली मिटाने को कोई तुल्य बल का योद्धा चाहिये, सो पृथ्वी पर मिलता नहीं, आप ही दया करो, मुझसे युद्ध करो।' तो 'भाई! मैं तो बहुत वृद्ध, पुराण-पुरुष, हो गया, तुमसे लड़ने में मुझे शर्म मालुम होगी, कृष्ण का अवतार हुआ है, वे तुम्हारे लिये दया और दवा करेंगे।' सो हुआ। कृष्णजी के पौत्र अनिरुद्धजी, बाण जी की बेटी उषा को, बिना किसी से पूछे कहे, हर लाये, यादवों का और असुरों का घोर युद्ध हुआ, बाणासुर

श्री डॉ० भगवानदासजी



की नौ सौ अट्ठानवे बाँह जब कट चुकीं, तब उन्होंने प्रार्थना किया कि 'अब बस'। मेल हुआ, सम्बन्धी बने, शान्ति से रहने लगे। आज काल भी, आँख के सामने देख पड़ रहा है, पश्चिम के 'रोमक पुरों' के बाणासुरों की हजारों बाँह हो रही हैं, 'इन्फंट्री आर्म', 'कावल्री आर्म', 'आर्टिलरी आर्म', 'सापर्स ऐंड मैनर्स आर्म', 'टैंक आर्म', 'क्रूजर आर्म', 'सबमारीन आर्म', 'डिस्ट्रायर आर्म', 'टार्पीडो आर्म', आदि और सर्वोपर 'एयर आर्म'। इन सब 'आर्मों' में स्वभावतः खुजली होती रह है। पैर तो हो, और चलो तो मत। आँख तो हो, औ देखो तो मत। भला ऐसा भी कभी हो सकता है? 'आर्म' बहुत होंगे, तो चलेंगे भी अवश्य। जब असुर-संहार के लिये अवतार स्वयं उतरने में आसकत करते हैं, तब सुंदोपसुंद न्याय का प्रयोग करते हैं। परस्पर परम प्रीतिमान् सगे भाई, सुंद और उपसुंद, भी उत्तम तिल आदि धन-धान्य उपजाने वाली तिलोत्तमा अप्सरा के वास्ते आपस में कट मरते हैं। 'आपः सरंति यस्यां इति अप्सरः', जिस भूमि पर 'आपः' की कमी हो, 'आबपाशी' पूरी न हो, वहाँ उत्तम तिल आदि कैसे हों? सो 'इकोनोमिक इम्पीरियलिस्टिक नैशनलिज़्म' नाम की परम सुन्दरी अप्सरा के वास्ते सुन्दोपसुन्द न्याय का अवतार अभी हुआ था, पर कार्य पूरा न हो सका, इससे फिर होने वाला है। उन-उन महाप्राण बाण आदिकों के पुरोहित, शुक्राचार्य आदि, यत्न तो बड़ा कर रहे हैं कि उनके यजमान लोग स्वयं हो इन महाभारायमाण बाहुओं में से अधिकांश को उतार दें, क्योंकि इनके अतिबोझ से प्रत्येक के श्रमजीवी पैर स्वयं ही दबे गिरे पड़ते हैं; पर ऐश्वर्यमद और वीर्यमद और धनमद ने कानों और आँखों पर जैसे मोटे पर्दे आवरण-शक्ति के डाल रक्खे हैं, याजकों के सदुपदेश को कौन सुनता है। अस्तु। यह हुई सत् और असत् क्षत्रियों की कथा। असत् ब्राह्मणों में भी ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि की विक्षेप शक्ति से परस्पर कलह और संघर्ष होता है; पर सत् ब्राह्मणों में ब्रह्मवृत्ति, विद्यावृत्ति वालों में नहीं होता। इनके लिये करूणा, भूत, दया, भूतप्रिय-हितेहा, वात्सल्य, विद्यासंग्रह, विद्यादान, वितंडावर्जन, वाग्युद्धजलपादिवर्जन, स्वाभाविक है। जिस पुर में ऐसे ब्रह्मिष्ठ, धर्मिष्ठ, सर्वाहत, लोकमान्य, श्रद्धेय, महात्मा जीव बसें, वह धर्मपुर, ब्रह्मपुर, होने योग्य है।

रोमनगर, ईसाधर्म का मुख्य स्थान प्रायः १५०० वर्ष से है। जरूसलम अपने आरम्भ से यहूदी-धर्म का मुख्य स्थान रहा और ईसा धर्म के प्रसार के पीछे, उसका भी। ल्हा-सा नगर प्रायः १३५० वर्ष से, जब उसको स्रोङ्-त्सान्-गाम्पो राजा ने बसाया, बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय का मुख्य तीर्थ हो रहा है। एवं मक्का भी, मुहम्मद के अवतार के समय से, प्रायः १३५० वर्ष से, इस्लामधर्म का प्रधान तीर्थ है। यद्यपि इन नगरों में भी राजा कभी-कभी होते रहे हैं, तौ भी इनका क्षत्रियांग बहुत गौण रहा है, ब्राह्मणांग ही प्रधान रहा और है।

काशी की महिमा तो सदा से धर्मधानित्व, तीर्थत्व, में ही रही है।

धर्म एव हतो हंति धर्मो रक्षति रक्षितः। (मनु)

पर कौन धर्म? आज-काल तो अनगिनत धर्माभास, धर्म-प्रतिरूपक, धर्म की नक़ल, मिथ्या धर्म, अपने को धर्म पुकारते हुए चारो ओर फिर रहे हैं?

तो सनातनधर्म, आर्य धर्म, वैदिक धर्म, मानवधर्म बौद्ध धर्म ही सत्य धर्म।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। (गीता)

एक परमात्मा ही 'सना सदा भवः' सनातन, नित्य, सर्वगत, सर्वव्यापी, स्थाणु, निष्क्रिय, अव्यय, अचल। अन्य सब 'इतर', आत्मा से इतर, वस्तु अधुना-तन, इदानीं-तन, नश्वर, परिमित, सक्रिय, अस्थिर, चंचल। उस एक सनातन परमात्मा ब्रह्म को बतानेवाला जो शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, 'इति गुह्यतमं शास्त्रं' (गीता) उस पर प्रतिष्ठित, उसके अनुकूल, उससे उत्पन्न जो धर्म, वही सनातन, सर्वोपकारक, सत्य धर्म है। ब्रह्म और धर्म का परस्पर अभेद्य सम्बन्ध है।

जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म-धर्म-द्विषः सुताः। (मनु)

एवं, आर्यों का धर्म आर्य धर्म। आर्य कौन? 'ऋ, गतौ।'

निवारणार्थं आर्त्तानां ऋत्तुं योग्यो भवेत् तु यः।
अर्च्यते सततं चार्यैः स आर्य इति कथ्यते॥

दूसरों के क्लेशों के निवारण का स्वभाव और सामर्थ्य जिसमें हो, जो इस योग्य हो कि दुःखित जन उसके पास अपने दुःख के निवारण के लिये जायँ, जिसके पास आर्त्त जन सहायता के लिये सदा जाते हैं, वही आर्य।

वेद अर्थात् सज्ज्ञान जिसका मूल हो, जो सच्चे ज्ञान की नीवी पर प्रतिष्ठित हो; वह वैदिक धर्म। सर्व मानव हितकारी, मानवधर्म। सद्बुद्धि, सात्विक बुद्धि से संगत सम्मत, बौद्ध धर्म।

ऐसे ब्रह्मज्ञान और मानवधर्म की, तथा तदुपयोगी अवान्तर शास्त्रों की, प्रकाशक प्रवर्त्तक होने से ही काशी का धर्मधानित्व और काशीत्व है। अन्यथा काशी, काशी नहीं। और इसी हेतु से यह नगरी भारतवर्ष का हृदय, स्मृत्यतीत काल से हो रही है।

काशी—भारतवर्ष का हृदय

स्थूल रूप में भी, जैसे शरीर के एक-एक अवयव का विशेष सम्बन्ध, मस्तिष्क के एक-एक चक्र, पीठ, ग्रंथि, कंद से, विशेष रूप से, और सबका सबसे सामान्य रूप से, समग्र शरीर में व्याप्त ज्ञानवाहिनी और क्रियावाहिनी नाड़ियों द्वारा है, वैसे ही भारतवर्ष के एक-एक प्रान्त का विशेष सम्बन्ध काशी के एक-एक महल्ले से है। काश्मीर-पञ्जाब का लाहौरीटोला से, बंगाल का बंगालीटोला से, मद्रास का केदारघाट-हनुमानघाट से, बम्बई प्रान्त और महाराष्ट्र प्रदेश का दुर्गाघाट से, गुजरात का चौखम्भा और सूतटोला से, नयपाल का नयपाली खपरा से, इत्यादि। मुख्य-मुख्य वर्त्तमान हिन्दू राज्यों के भी घाट और मकान गंगा के किनारे बने हैं, जिनमें उन-उन राज्यों के अधिकारियों का आना-जाना होता रहा है और कुछ ही काल पूर्व राजाओं का भी आना-जाना होता था; पर अब विशेष हेतुओं से, जिनका वर्णन दुःखकारक होगा, कम हो गया है। विशेष धर्मों की दृष्टि से भी, सब मुख्य देवताओं के मन्दिर यहाँ हैं। शिव-शक्ति की तो पुरी ही है। विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, दुर्गा और उनके पुत्र गणपति का बहुवंदित मूर्त्तियाँ यहाँ हैं। तथा लोलार्क, अर्क-सूर्य, का स्थान है। और विष्णु, जगन्नाथ, नरसिंह, राम, कृष्ण के भी मन्दिर हैं। शांकरमत के मठ-मन्दिर हैं। रामानुजमत के भी। वल्लभमत के भी। खेद है कि जैसी सद्धर्मप्रचारिणी अवस्था में होना चाहिये, वैसी अवस्था में नहीं हैं। सिक्खधर्म की भी 'संघत' यहाँ है। जैनधर्म के तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ स्वामी का जन्म यहाँ ही, प्रायः बुद्धदेव और महावीर जिन स्वामी से २५० वर्ष पहले हुआ, और उनकी मूर्त्ति का मन्दिर यहीं है। मुसलमान धर्म के तीन मुहल्ले, औरंगाबाद, मदनपुरा, और अलईपुरा, विशेषरूप से बसे हैं। ज्ञानवापी के समीप की मसजिद, तथा बिंदुमाधव के स्थान पर उंचे धरहरों वाली मसजिद, प्रसिद्ध हैं। ईसाई धर्म का स्थान श्री गिरीश्वर (सिग्रा) मुहल्ले के पास तथा सिक्रौल में है। और बौद्ध धर्म के मूल स्थान, सारङ्गवन, सारङ्गनाथ, सारनाथ, ऋषिपत्तन, इसिपत्तन, का, जहाँ बुद्धदेव ने जगदुद्धार के लिये अपने महाकरुणामय उपदेशों का आरम्भ किया, अब हाल में, अनागारिक धर्मपाल देवमित्र भिक्षु ने महाप्रयास और अदम्य उत्साह और चिरकालिक उद्यम से किया। उत्तम नया मन्दिर बनवाया, पवित्र, सुन्दर, शान्तिमय, हृदयग्राहिणी बुद्धदेव की मूर्त्ति का, संवत् १९८८ में स्थापन किया, जिसके उत्सव में जापान, तिब्बत, चीन, बर्मा आदि देशों से बुद्धदेव के अनुयायी आये, और इस देश और इस नगरी के गौरव का नवीन परिचय देकर अपने-अपने स्थान को लौट गये। बुद्धदेव ने जब यहाँ अपना दयामय कार्य आरम्भ किया, उनके साठ शिष्य हुए, और उन सबको उन्होंने चारो आठों दसों दिशाओं में घूम-घूम कर बौद्ध धर्म का, और सब आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक क्लेशों से मोक्ष पाने के उपाय का, उपदेश करने की आज्ञा दी। अब ढाई सहस्र वर्ष के पीछे, बुद्धदेव विविध देशवासी साठ करोड़ अनुयायियों को लेकर, पुनः काशी में पधारे हैं। इससे बढ़कर शिवपुरी, शान्तिपुरी, सर्वकल्याणपुरी काशी की महिमा का क्या प्रमाण हो सकता है।

स्यात् एक और हो सकता है! उक्त विविध धर्मों के अनुयायियों में बहुधा वैमनस्य देख पड़ता है। तो मानव संसार में एक ऐसी संस्था का भी विशेष प्रयोजन है, जो इन सब धर्मों का समन्वय करती रहे, विरोधपरिहार करती रहे, सबके अनुयायियों को यह बताती दिखाती रहे कि सब धर्मों के मुख्य तत्त्व एक ही हैं, केवल शब्दों का, अपने वस्त्रों का, भेद है।

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता ।
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिंगिनस्तु गवां यथा ॥
(ब्रह्मविन्दूपनिषत्)

गायों के रंग अनेक हैं ; पर सबके दूध का रंग एक ही है। उपदेश करनेवाले, और उनके शब्द, उनकी भाषा, उनकी प्रतिपादन शैली, में भेद बहुत है ; पर उपदिष्ट धर्म और ज्ञान का निष्कर्ष एक ही है ।

इसको दिखानेवाली संस्था, 'थिओसाफ़िकलसोसाइटी', अर्थात् ब्रह्मविद्या सभा, जिसका जन्म सं० १९७५ ई० में युनाइटेड् स्टेट्स् आफ़ अमेरिका में हुआ, उसकी मुख्य शाखा भी आज चालीस वर्ष से इसी नगरी में कार्य कर रही है। और इसकी प्रायः आठ सौ उपशाखा समग्र भारतवर्ष के छोटे-बड़े नगरों में फैली हैं ।

इन कारणों से इसको भारतवर्ष का हृदय वा उत्तमांग मानना अनुचित नहीं है ।

काशी के तीन अर्थ

चिरकाल से प्रथा है, 'काश्यां मरणान् मुक्तिः' । यह भी प्रथा है कि काशी में पाप करने से अनंतकाल के लिये ब्रह्म पिशाच होता है, अनंत नरक भोगता है । यह भी कि पशु, पक्षी, मछली, कछुए आदि जो काशी और काशी की गंगा में मरते रहते हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती । अन्ततः यह भी मुख्य सिद्धान्त शास्त्र का है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः', बिना ज्ञान के, आत्मज्ञान के, बिना आत्मा को, अपने को, अपने सच्चे असली स्व-रूप को, अपनी अमरता को, जाने पहिचाने (प्रत्यभिज्ञान किये), भयों और शोकों के बन्धन से छुटकारा नहीं । अथ च, जहीं पर, और जभी, यह ज्ञान हो जाय, वहीं पर और तभी, मुक्ति सिद्ध है ।

भावना यदि भवेत् फलदात्री
मामकं नगरमेव हि काशी ।
व्यापकोऽपि यदि वा परमात्मा
तारकं किमिह नोपदिशेन्नः ॥

इन सब परस्पर विरुद्ध ऐसी प्रथाओं का समन्वय कैसे हो ? तो काशी के तीन अर्थों पर विचार करने से हो सकता है । आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ।

आध्यात्मिक

१—आत्मा का, परमात्मा का, जीवात्मा-परमात्मा की एकता का, 'अहमेव सर्वः' का, काशन, प्रकाशन करनेवाली, आत्मज्ञानवती, बुद्धि का नाम 'काशी', जिससे आत्मा का भी, और आत्मेतर, अनात्मा, 'इदं' का, 'दृश्य' का भी, प्रकाशन होता है । क्योंकि 'ध्यानिकं सर्वमेवैतत्' (मनु), परमात्मा के ध्यान से ही 'इस' सब' दृश्य' का सृष्टि-स्थिति-संहार होता रहता है । उस ध्यान में, उस बुद्धि में, 'यह' सब है, 'तज्जलान्, तस्मिन् जायते, लीयते, अनिति ।'

यथेदं काश्यते सर्वं सा काशीत्यभिधीयते ।

आत्मा का और आत्मबुद्धि का विच्छेद नहीं हो सकता, इस लिये शिव से, परमात्मा से, सदा अ-वि-मुक्त, अ-त्यक्त यह क्षेत्रज्ञ का क्षेत्र है । इस 'काशी' में पहुँच कर जब प्राणी 'मरता' है, अपने 'जीवात्मभाव' को, 'अस्मिता-अहंकार-भाव' को, 'मैं अन्य जीवों से पृथक् हूँ, भिन्न हूँ' इस भेद-भाव को, 'ख़ुदी' को, छोड़ता है, तब उसको 'तारक मंत्र' का उपदेश होता है । सब भयों से तारनेवाले ज्ञान का उसके भीतर उदय होता है । परमात्मा से और सबसे अपनी एकता को, और, इस हेतु से, अपनी स्वाभाविक अमरता को पहिचानता है, अमर हो जाता है, सब बंधनोंसे मुक्त हो जाता है । इस आत्म-ज्ञान का उदय होने पर जीव, स्थूल शरीर में प्राणशेष रहते भी जीवन्मुक्त हो जाता है, और शरीर के पतन-मरण पर, यदि सूक्ष्मशरीर कारण शरीर में 'अस्मिता'-भावका कुछ शेष न रह जाय, तो विदेह-मुक्त भी हो सकता है ।

आधिभौतिक

२—शरीर में, इन्द्रियों में, चक्रों, पीठों कन्दों में, नाड़ियों में, 'देवन,' क्रीडन करने वाली शक्तियाँ, विभूतियाँ, 'देव' कहलाती हैं । तत्तदभिमानी देव भी होते हैं । लाखों नाड़ियों में, 'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः' एकसौ एक नाड़ी मुख्य हैं। उनमें भी सोलह । उनमें भी तीन, इड़ा, पिंगला, सुषम्ना ।

उनमें भी सुषुम्ना, जिसका नाम ब्रह्मनाड़ी, ब्रह्मनाल, भी है। इड़ा की वरणा से, और पिंगला की असी से, सूचना होती है। इसी से काशी का नाम वाराणसी भी है।

सर्वान् इंद्रियकृतान् दोषान् वारयति इति वरणा,
सर्वाणि इन्द्रियकृतानि पापानि अस्यति इति असिः,
भुवोः घ्राणस्य सन्धिः द्यौर्लोकस्य परस्यच संधिर्भवति,
एवमेवैनं सन्धिं संध्यां ब्रह्मविद् उपासते।
इत्यादि। (सुरेश्वरकृत काशी-मुक्ति-विवेकः)

पुरुष-प्रकृति, पार्वती-परमेश्वर, शिव-शक्ति का सम्बन्ध अभेद्य है। इसलिये बौद्ध प्रत्ययों का और शारीर अवयवों का भी सम्बन्ध है। इनके विशेषों की अवस्था व्यवस्था का योगारूढ़ योगक्रियाशील योगियों को ही ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है, और इस ज्ञान के द्वारा योगसिद्धियाँ की उपलब्ध होती होंगी। हम लोग तो केवल पोथियों के भरोसे इतनाही मान ले सकते हैं कि काशी नगरी के भीतर मुख्य-मुख्य अवांतरतीर्थों के नामों से इन 'आधिदैविक', यौगिक, नाड़ी-सम्बन्धी आभ्यन्तर सूक्ष्म अनुभवों की, और उनके स्थानों और करणों की सूचना की गई है।

अन्य नगर तो दुनियावी राजनीतिक और रोजगारी सुविधाओं की और भोगविलासों की दृष्टि से बनाये-बसाये घटाये-बढ़ाये जाते हैं। काशी, ऐसा जान पड़ता है, आधिदैविक ज्ञान की और योग के अनुभवों की दृष्टि से, श्रद्धालु जिज्ञासु 'यात्रियों' के मन में इनको जगाने और इनकी याद कराने के लिये, सब नहीं तो कुछ अंशों में, बुद्धिपूर्वक बनाई गई, अथवा बनाई नहीं तो उपयुक्त नामकरण से संस्कृत परिष्कृत की गई।

कई यात्रा के प्रकार, काशीखंड आदि पुराणों में काशी के भीतर के लिये लिखे हैं। उनके मन्दिरों और तीर्थों के नामों से ही सूचित होता है कि शरीर के भीतर के स्थानों, चक्रों, नाड़ियों, का संकेत है। 'ब्रह्मनाल' नाम की गली प्रसिद्ध है। उससे जाकर 'मणिकर्णिका' मिलती है। चक्र-पुष्करिणी, ज्ञानवापी, तारकेश, मत्स्योदरी, संगमेश्वर, मन्दाकिनी, शुक्रेश्वर, त्रिपुरान्तकेश्वर, मनःप्रकामेश, इत्यादि में स्नान, इनके दर्शन, 'अन्तर्गृह' में करने चाहियें।

काश्यां तु ब्रह्मनालेऽस्मिन् मृतो मर्त्यः तारम् आप्नुयात्।
(मुक्तिकोपनिषत्)

तारं, तारकम्, प्रणवान्तर्निहितं रहस्यज्ञानम्।

यदि यात्रा-परिक्रमा और बढ़ानी हो तो 'पंचक्रोशी की यात्रा करें।

'मध्यमेश्वर' मारभ्य, आ च देहलिविन्नपम्।
'पंच'-क्रोशात्मकं सूत्रं भ्रामयेत् 'सर्वदिक्षु' इति॥

जैसे-जैसे भारत-जनता के धर्माधिकारियों ज्ञानदाताओं की और भारत-जनता की बुद्धि इस ओर से हटती जाती है, और सूक्ष्म आध्यात्मिक ज्ञान और तदुत्थ धर्म कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे उनके सूचक ज्ञापक अवान्तर तीर्थ भी लुप्त होते जाते हैं। यथा 'मिश्रपुष्कर' तीर्थ से 'मिसिर-पोखरा' होकर अब म्युनिसिपल्टी के कूड़े से बिलकुल पट गया है। एवं 'हयग्रीव कुंड' का 'हिंगुआ तलाव'।

तीर्थता का अर्थ

जिनके निवास से तीर्थों में तीर्थता होती है, वे ही जब न रहें, तो तीर्थों का लुप्त होना न्यायप्राप्त ही है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः॥
तारणात् तीर्थमित्याहुः, तारकं ज्ञानमुच्यते।
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहविद्यते॥
जिज्ञासुभ्योऽधिकारिभ्यः सत्यज्ञानोपदेशकाः।
दयामयाश्च निस्स्वार्थाः सर्वलोकहितैषिणः।
स्वनिवासेन तीर्थास्तु तीर्थीकुर्वंति साधवः॥
(भागवत, गीता, आदि)

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः। (योगसूत्र)
तरति यत्र, तीर्यते यत्र, तत् तीर्थं।

जहाँ मनुष्य पार उतर सके, तर सके, वह तीर्थ। भवसागर के पार तारने वाला, तारक, आत्मज्ञान, जिज्ञासुओं, अधिकारियों, सदाचारियों को इस सत्यज्ञान का

उपदेश देने वाले, और जन्म-मरण के प्रवाह के पार उतारने वाले, जहाँ बसें वहीं 'तीर्थ'। पानी से तीर्थ नहीं होते, न मिट्टी पत्थर से देवता बनते हैं। ये तो चिरकाल में, ध्यान, भक्ति, आदि के उपकरण बनकर, चित्त को स्यात् शुद्ध करें, या न करें; पर ज्ञानी साधु-सज्जन के दर्शन से ही चित्त शुद्ध पुनीत पावित पवित्र हो जाता है। सब 'यात्री' अन्तिम उत्तम आत्मज्ञान के अधिकारी और जिज्ञासु न भी हों, तो भी निस्स्वार्थ, दयामय, सर्वलोक-हितचिन्तक सज्जन की हवा में, भाव में, प्र-भाव में आने से ही, संसारी जीव के चित्त पर भी असर पड़ता है, उसमें नये प्रकार की शांति, नये प्रकार के आल्हाद प्र-ल्हाद का, उदय होता है। जो अहिंसा भाव में नितरां प्रतिष्ठित परिणिष्ठित योगी महापुरुष हैं उनके पास आने से घोर वैरियों के मन में भी वैर शान्त हो जाता है।

इसके विपरीत, जो दशा आज काल 'तीर्थों' की हो रही है, और उसके कारण भी, इन्हीं पुराण ग्रन्थों में नारदजी के मुख से वर्णित हैं।

कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना।
पदार्थाः संस्थिताः भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा॥
विप्रैर्भागवती वार्त्ता गेहे गेहे जने जने।
कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः॥
अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः।
तेऽपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः॥
मनसश्चाऽजयाल्लोभाद् दम्भात् पाखंडसंश्रयात्।
शास्त्राऽनभ्यसनाच् चैव ध्यानयोगफलं गतम्॥
पुष्करं च प्रयागं च काशीं गोदावरीं तथा।
हरिक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं श्रीरंगं सेतुबंधनम्॥
एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः।
नाऽपश्यं कुत्रचिच्छर्म मनःसंतोषकारकम्॥
कलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाध्यतेऽधुना।
सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दानं न विद्यते॥
उदरम्भरिणो जीवाः वराकाः कूटभाषिणः।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः॥
पाषंडनिरताः सन्तो, विरक्ताः सपरिग्रहाः।
न योगी नैव सिद्धो वा न ज्ञानी सत्क्रियो नरः॥
कलिदावानलेनाऽद्य साधनं भस्मतां गतम्॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः।
कामिन्यः केशशूलिन्यः सम्भवंति कलौ युगे।
अट्टमन्नमिति प्रोक्तं, शूलो विक्रय उच्यते।
शिवस्तु भगवान्वेदः, केशः स्त्रीदेह एव हि॥

(पद्मपुराण, उत्तरखंड, भागवत माहात्म्य)

ज्येष्ठः कुलं पालयति विनाशयति वा पुनः।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः॥
राजाऽनुजीविनो लोकाः, यथा राजा तथा प्रजा।
राज्ञो गुणैर्वर्धते सा, राजदोषाद् विनश्यति॥
क्षत्रिये ब्राह्मणे चाऽपि प्रजाकल्याणमाहितम्।
ब्राह्मणाऽत्राऽग्रजन्मत्वाद् अधिकं धर्मभारभाक्॥
ब्राह्मणं तु स्वधर्मस्थं दृष्ट्वा बिभ्यति चापरे।
नाऽन्यथा क्षत्रियाऽद्यास्ते विप्रस्तस्मात्तपश्चरेत्॥
षडंगवित् साङ्गधनुर्वेदविचार्थधर्मवित्।
नीतिशस्त्राऽस्त्रव्यूहादिकुशलस्तु पुरोहितः॥
यत्कोपभीत्या राजाऽपि धर्मनीतिरतो भवेत्।
सैवाऽचार्यः पुरोधा यः शापाऽनुग्रहयोः क्षमः॥

(शुक्रनीति)

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।
राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि, राजा हि युगमुच्यते॥
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता, विचरंस्तु कृतं युगम्॥
क्षत्रस्याऽतिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणानतिवर्त्ततः।
ब्रह्मैव संनियंतृ स्यात् क्षत्रं, हि ब्रह्मसम्भवम्॥

(मनु)

नारद कहते हैं—'सब पदार्थों का सार निकल गया, कुकर्म के कारण, नीयत बिगड़ जाने के कारण, फल उलटा हो रहा है, सब वस्तु बीज-रहित भूसी के ऐसी हो गई हैं। भागवती वार्त्ता, भगवान् परमेश्वर के चरितों का कीर्तन, भक्ति से नहीं किया जाता, लोभ से किया जाता है—दान

लाओ, मान लाओ, चढ़ावा चढ़ाओ—इसलिये कथा में सार नहीं रहा। उग्र पाप-कर्म करने वाले, रौरव नरक के योग्य, स्वयं नितरां नास्तिक होकर दूसरों को आस्तिकता का उपदेश देने वाले, मनुष्य तीर्थों में भर रहे हैं, तीर्थों के अधिकारी बन रहे हैं, इससे तीर्थों का सार चला गया, प्रत्युत पाप भर गया। काम, क्रोध, महालोभ, तृष्णा आदि से व्याकुल चित्त वाले लोग तपस्या का ढोंग दिखाने को तपस्या करने बैठते हैं, इससे तपस्या में सार नहीं बचा। मन की चंचलता को नहीं दबाते, उस पर जय नहीं पाते, लोभ, दम्भ, पाखण्ड से भरे आदमी, जो शास्त्र का दर्शन भी नहीं करते, ध्यान लगाने का नाटक करते हैं, इससे ध्यान और योग कहाँ मिल सकता है। मैं (नारद) पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिक्षेत्र (द्वारिका, मथुरा, वृन्दावन) कुरुक्षेत्र, श्रीरंग, सेतुबंध, प्रभृति सब तीर्थों में फिर आया। कहीं भी मन को शांति संतोष देनेवाली सामग्री नहीं देखी। सब जगह कलि का, कलह का, द्वेष-बुद्धि का, राज्य है। कहीं भी सच्चा ज्ञान नहीं, सच्चा तपस् नहीं, सच्चा शौच नहीं, सच्ची दया नहीं, सच्चे सुपात्र को दान नहीं। इस घोर समय में सभी जीव उदरम्भरि, पेट पालने वाले, मूर्ख, कूटकपट बोलने करने वाले, मन्दमति, मन्दभाग्य, सब प्रकार के दैवकृत महामारी, दुर्भिक्ष, आदि और मनुष्यकृत कुशासन, परस्पर-पीड़न, आदि उपद्रवों से उपद्रुत हो रहे हैं। साधु-सन्त बनने कहलाने वाले, पाषण्ड, छल, छद्म, कपट से भरे हैं। विरक्त बनने कहलाने वाले, गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाले, बड़े-बड़े परिग्रह, बड़ी-बड़ी जायदादें, और बड़े-बड़े स्त्री-पुत्र आदि के परिवार, रख रहे हैं। न सच्चा योगी, न सच्चा सिद्ध, न सच्चा ज्ञानी, सत्क्रियावान्, कहीं देख पड़ता है। कलि के दावानल ने सब धर्म और ज्ञान के साधनों को भस्म कर दिया है। जनपद में, देहात में, यह हालत है कि किसानों को अट्ट, आटा, अन्न, सब विवश होकर बेच देना पड़ता है, अन्न ही शूल हो रहा है। द्विजाति लोगों को वेद-विद्या-ज्ञान अपात्रों कुपात्रों के हाथ बेचना पड़ रहा है, या लोभ से या जीविका के संकट से। स्त्रियों को अपना शरीर, जो मातृत्व-देवता का परम पवित्र मन्दिर है, पेट पालने के लिये, पैसे के वास्ते, अथवा कामान्धता और चमक-भड़क के लोभ से, पापिष्ठ कामियों और रोगियों के हाथ, बेचना पड़ रहा है। प्राणपोषक अन्न की, चित्तशोधक, मोक्षदायक ज्ञान की, पुण्यतम मातृत्व की, यह दुर्दशा इस घोर कलिकाल में हो रही है। क्या कारण है?

'जो ज्येष्ठ है, बड़ा है, वही अपने सद् आचरण से कुल को बढ़ाता है, दुष्ट आचरण से कुल का नाश करता है। जैसा बड़ा करता है उसकी नकल छोटे करते हैं। राजा की नकल प्रजा करती है। यदि राजा दुष्ट है तो प्रजा दुष्ट हो जाती है, अच्छा है तो अच्छी। राजा के गुणों से प्रजा सुखी होती है, उसके दोषों से नष्ट होती है। प्रजा के कल्याण की, सब तरह की भलाई की, जिम्मेदारी, क्षत्रिय और ब्राह्मण, राजा और पुरोहित, पर रक्खी गई है। इन दोनों में से भी, ब्राह्मण की ज़िम्मेदारी अधिक है; क्योंकि वह सब से ज्येष्ठ है, अग्रजन्मा कहलाता है। ब्राह्मण यदि अपने सच्चे धर्म में नितरांस्थित, निष्ठित हो, तो क्षत्रियादि अन्य वर्ण डरकर अपने-अपने सच्चे धर्म में लगे रहते हैं, अन्यथा सभी निर्मर्याद उच्छृंखल हो जाते हैं। इसलिये परम आवश्यक है कि ब्राह्मण सच्ची सात्त्विक तपस्या करे, स्वार्थ को, भोगविलास आराम को, छोड़े।

पुरः अग्रे प्रजाभिः स्व-हिताय प्रति-नि-हितः धर्मकार्येषु, सार्वजनिककार्येषु, इति पुरो-हितः।

'प्रजा ने अपने हित के वास्ते जिसको सच्चा तपस्वी, विद्वान्, श्रद्धेय, विश्वासपात्र, मान कर सार्वजनिक, धार्मिक कार्यों में आगे रक्खा हो, प्रतिनिधि बनाया हो, वह पुरोहित है। पुरोहित ऐसा होना चाहिये जिसके कोप के भय से राजा धर्मनीति में लगा रहे, उसके बाहर स्वच्छंद होकर पैर रखने की हिम्मत न करे। जो नीति के छः अङ्गों से, अथव वेद के छः अङ्गों से, धनुर्वेद अर्थात् युद्धशास्त्र से, अर्थशास्त्र से, धर्मशास्त्र से, दंडनीति से, शस्त्रों और अस्त्रों के प्रयोग से, व्यूह-रचना से परिचित हो, महा अनुभवी तथा निस्स्वार्थ हो, वही सच्चा पुरोहित हो सकता है, उसी से राजा और राज-पुरुष, राजभृत्य, अधिकारीवर्ग, डरेगा, क्योंकि वह उनको पाप पर शाप देने, दंड देने, और पुण्य पर अनुग्रह देने, में समर्थ होगा।

'राजा के विविध वृत्तों, आचारों, के ही नाम युग हैं। जब राजा अपने धर्म-कर्म से बिलकुल ग़ाफ़िल है, मानो सो

रहा है, और पापिष्ठ भोगविलास, अहंकार, अभिमान, लोभ और क्रूरता, के ही सपने देखता है, तब देश में कलियुग का राज्य होता है। जब राजा जागता रहता है, पुण्य-पाप होते देखता है; पर पुण्य का वर्धन, पाप का दमन, करता नहीं, तब द्वापर होता है। जब अपने शिष्ट-अनुग्रह दुष्ट-निग्रह कर्म में उद्यत होता है, तब त्रेता। और जब घूम-घूमकर चारो ओर धर्म-स्थापन करता रहता है तब कृतयुग, सत्ययुग, का राज्य होता है।

'यह ब्राह्मण का, पुरोहित का, कर्त्तव्य है कि क्षत्रिय को, राजा को, सत्कर्म में लगावे, दुष्कर्म से रोके। समाज-व्यवस्थापन के आदिकाल में सामाजिक-सामूहिक-बुद्धिस्थानीय, ज्ञान-स्थानीय ब्राह्मण ने ही क्षत्रिय को उत्पन्न किया, नियुक्त किया, कहा कि तुम प्रजा की रक्षा का कार्य करो, 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः' नाम पाओ। तो यदि क्षत्रिय उत्पथ चले, ब्राह्मण का कहना न माने, उसकी अवज्ञा अवहेलना करे, तो ब्राह्मण ही का कर्त्तव्य है कि ऐसे क्षत्रिय का संनियमन, नियंत्रण, अवरोधन, दंडन करे। ऐसे शक्तिशाली, हृदयालु, सच्चे तपस्वी, सच्चे विद्वान्, सच्चे साधु, जिस स्थान में बसें, वही सचा तीर्थ होता है।'

आधिभौतिक काशी—इतिहास

किसी समय में काशी में ऐसे विद्वान् अनुभवी ज्ञानियों-योगियों का रहना होता था। आध्यात्मिक अर्थ में शिव से तो अ-विमुक्त है हीं। आधिभौतिक रूप में भी स्थूल देह-धारी सच्चे साधुओं से—साध्नोति परेषाम् शुभान् कामान् इति साधुः—अविमुक्त रहती थी।

वैदिक काल में 'काश्य' अजातशत्रु क्षत्रिय ने यहाँ ब्राह्मण गार्ग्य बालाकि को ब्रह्मोपदेश किया, ऐसा उपनिषदों में लिखा है। महाभारत में कथा है कि यहाँ तुलाधार वणिक् ने जाजलि ऋषि को ज्ञान दिया। स्यात् ऐसी कथाओं से यह सूचित करना अभीष्ट था कि जिज्ञासु तभी ज्ञान पाने का अधिकारी होगा, जब जात्यभिमान, अभिजात्य मद, छोड़ेगा। अजातशत्रु और तुलाधार ने, उपदेश देते हुए, अपने विनय का, गर्व के अभाव का, अहंकार पर जय का, परिचय दिया है। 'काशिविदेहेषु' शब्द उपनिषदों में आये हैं; जैसे—'काशिकोशलान्' इतिहास-पुराणों में। जान पड़ता है कि इस सब काशिविदेह भूप्रांत में-उस काल में आत्मज्ञान, ब्रह्मविद्या की चर्चा अधिक थी। विदेह के जनक नामक राजाओं की आत्मविद्या प्रसिद्ध है। स्यात् 'जनक' यह सामान्यात्मक नाम उनको इसलिये दिया गया कि वे, जैसे सच्चे आत्मज्ञ क्षत्रिय को करना चाहिये, 'प्रजाः पुत्रान् इव औरसान्', जैसे जनक अर्थात्—पिता अपने औरस पुत्रों को पालता है, वैसे प्रजा को पालते थे, और अध्यात्म-शास्त्र, राजविद्या, राजगुह्य, का व्यवहार में सत् प्रयोग करते थे। महाभारत में व्यासजी ने जैसे तुलाधार वणिक से जाजलि ऋषि को शिक्षा दिलाई, वैसे मिथिला में, कौशिक ब्राह्मण को, राजा जनक से नहीं; प्रत्युत धर्मव्याध शूद्र से उपदेश दिलाया। इसमें भी हेतु यही जान पड़ता है, जैसा समग्र कथा से आविष्कृत होता है, कि कौशिक को अहंकार तपोदर्प बहुत बढ़ा हुआ था।

यहाँ स्यात् किसी को शंका हो कि जब तुलाधार और धर्मव्याध को ब्रह्मज्ञान था, और यह सिद्धान्त है, कि 'ब्रह्मज्ञानाद् ब्राह्मणः स्यात्', और सुरेश्वराचार्य ने भी बृहदारण्यक वार्तिक में स्वीकार किया है, कि

'एतां काष्ठाम् अवष्टभ्य सर्वो ब्राह्मण उच्यते',

फिर ये वैश्य, शूद्र, क्यों? 'कर्मणा वर्णः' के अनुसार तो ये भी ब्राह्मण ही होने चाहियें न? इसका समाधान यह है कि सामाजिक मर्यादा और व्यवस्था के लिये वर्ण-विभाग किया गया, और 'कर्मणा वर्णः' के अनुसार किया गया, 'ज्ञानेन वर्णः', के अनुसार नहीं।

कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी कर्कटी पिशिताशना
'ज्ञानमेकं तु सर्वेषां कर्म तेषां पृथक् पृथक्'

कर्म का अर्थ यहाँ 'जीविका कर्म' है।

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः।
तथा
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
(गीता)

ज्ञान तो उत्तम इन दोनों को था; और इस अंश में सत्व की मात्रा पूरी थी, पर किसी प्राचीन संस्कार से रजस्,

तमस् की भी मात्रा उनकी प्रकृति में कुछ अधिक बच गई थी, इसलिये उन्होंने अपना जीविका कर्म नहीं बदला। ऐसे ही जनक भी ब्राह्मणों को, व्यास के पुत्र शुक तक को, ज्ञानोपदेश करते रहे; पर क्षत्रिय वृत्ति के कारण क्षत्रिय ही कहलाते रहें।

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
अध्यापनं याजनं च विशुद्धाश्च प्रतिग्रहः॥
(मनु)

ब्राह्मण के छः कर्म में तीन कर्म जीविका के लिए हैं, बाकी तीन धर्म के लिए हैं जो क्षत्रिय, वैश्य के लिये भी धर्म हैं। इसके अनुसार अपनी जीविका भी करते होते तो ब्राह्मण-वर्ण के, अर्थात् पेशे के, कहलाते। अस्तु, पुराण-काल ही में काशिराज दिवोदास ने सुश्रुतादि ऋषियों को आयुर्वेद का उपदेश किया, अर्थात् प्राचीन आयुर्वेद का नया संस्करण किया।

पुराण, इतिहास, महाभारत, ब्रह्मसूत्र आदि के रचयिता स्वयं व्यासजी, अंत समय में, उत्तराखंड में, सरस्वती नदी के पास का, अपना आश्रम छोड़ कर, सहस्रों विद्यार्थियों सहित काशी में बसने को आये। अन्नपूर्णा ने परीक्षा की। तीन दिन भिक्षा नहीं मिली। भूख सहने में व्यास जी कच्चे ठहरे। अति क्रुद्ध हो गए। काशी को शाप दिया।

मा भूत् त्रै पुरुषी विद्या मा भूत् त्रै पुरुषी धनम्।
मा भूत् त्रै पुरुषी मोक्षः इत्येवमशपत्पुरीम्॥
(काशी-खंड)

मैं तीन दिन यहाँ भूखा रखा गया तो यहाँ तीन पीढ़ी को निरन्तर विद्या नहीं होगी, धन नहीं होगा, मोक्ष नहीं मिलेगा। अन्नपूर्णा भी क्रुद्ध हुई। यहाँ से निकल जाने की आज्ञा हुई। व्यास जी चेते, अपराध क्षमापन किया, गंगा पार बसने की और पर्वों पर 'काशी' में 'विश्वनाथ-दर्शन के लिए आने की अनुमति मिली। व्यासजी का दिया शाप सर्वथा मिथ्या भी नहीं होगा, सर्वथा सत्य भी नहीं होगा; क्यों कि ज्ञान और अज्ञान के मिश्रण की अवस्था में दिया गया था, यह

समझौता हुआ। इत्यादि कहानी, आध्यात्मिक तत्त्वों की सूचना करने वाली प्रसिद्ध है। व्यासजी का मन्दिर जिसमें उनकी और शुक की मूर्त्ति है, गंगा पार रामनगर में है।

जैन-सम्प्रदाय के तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ने काशी में महावीर-जिन और बुद्धदेव से प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले जन्म लिया।

बुद्धदेव ने यहाँ ही अपने करुणामय कार्य का, आज से प्रायः ढाई हज़ार वर्ष पहले आरंभ किया। सम्राट् चन्द्रगुप्त और आचार्य चाणक्य-कौटिल्य के समय के आस-पास महाभाष्यकार पतंजलि का शास्त्रार्थ यहाँ नागकुआ पर हुआ ऐसी किंवदन्ती है। सम्राट् समुद्रगुप्त ने आज से सोलह सौ वर्ष पहले यहाँ अश्वमेध किया, और उनके अश्व की पाषाण-मयी मूर्ति संकटमोचन हनुमान् के मंदिर के पास आज तक वर्तमान है, इसका निश्चय श्रीजगन्नाथदास रत्नाकर की स्फूर्तिमती प्रतिभा ने किया है। काशी के 'दशाश्वमेध' घाट के नाम का कारण पुरातत्त्व के महापंडित श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ने यह निश्चय किया है कि गुप्त-साम्राज्य-काल के आस-पास एक और विस्मृत-प्राय महावंश वाकाटक और भारशिव राजाओं का हो गया है, जिसने यहाँ दश अश्वमेध किये। इनके बाद प्रायः अश्वमेध की प्रथा लुप्त ही हो गई।

ब्रह्मसूत्र पर शारीरक भाष्य बनाने वाले, शंकराचार्य को आज से बारह-तेरह सौ वर्ष पहले, ज्ञान का अपरोक्ष अनुभव कराने वाला उपदेश, काशी ही में, चांडाल-वेषधारी महात्मा के द्वारा कराया गया। कथा प्रसिद्ध है। काशी के पश्चिम ओर से, जहाँ अब शंकराचार्य के मठ, मन्दिर, और मूर्ति स्थापित हैं, शंकराचार्य काशी में आने लगे। उनके ब्रह्मज्ञानित्व के अवलेप का निरास करने के लिए, एक चांडाल-वेषधारी प्राणी, मद्य से मत्त, 'बोतल' हाथ में, (अर्थात् उस समय, जिस प्रकार की हाँडी या मटकी में शराब ले चलने पीने का दस्तूर रहा हो), कुत्ते साथ, बीच राह, धूल में लोट रहा था। शंकरजीने 'गच्छ' 'गच्छ' हट-हट, ऐसा पुकारा। चांडाल-मूर्ति ने धूल में से ही लड़खड़ाती जिह्वा से पूछा—

अन्नमयादन्नमयं ह्यथवा चैतन्यमेव चैतन्यात्।
द्विजवर! दूरीकर्त्तु वाञ्छसि किं, ब्रूहि गच्छ, गच्छेति॥

'हे भाई! द्विजत्वमानी! यह जो हट-बच कर रहे हो, सो अन्नमय शरीर से अन्नमय शरीर को, या चैतन्य से चैतन्य को अलग करना चाहते हो।'

शंकराचार्य ने अपने मन के उत्सेक-मय भाव को पहचाना, शर्माए, चांडाल-मूर्त्ति को नमस्कार किया, 'आप तो साक्षात् शिव ही जान पड़ते हैं, मुझे शिक्षा देने को आये हैं' क्षमापन किया, झुककर किनारे से चले गये। सन्यासी को बीच रास्ते पर ही चलने की शान क्यों हो? काशी की हवा मे आत्मज्ञान की चर्चा बस रही है। सभी काशी-वासी मनुष्यों पर उसका प्रभाव पड़ता है, श्वास-प्रश्वास के साथ उनके शरीर के भीतर उसका संचार होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गाया है—

'काशी के कंकर शिवशंकर समान हैं।' इससे गुण भी होते हैं, तथा महादोष भी उत्पन्न होते हैं।

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रंजयति।
न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ इत्यादि

अधिकारी, अस्मिता-काम-क्रोध-लोभादि से दूषित चित्त को सच्चा पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, ज्ञानाभास चाहे हो जाय, जो ज्ञानाभाव के मुकाबिले बहुत अधिक दुःखदायक होता है। 'हमको आत्मज्ञान है, हम जो चाहें सो करें, दोष नहीं होगा।' खंडनखाद्यकार, नैषधकाव्य-कार भी ऐसी महा धोखा देने वाली बात लिख गए।

आत्मवित् सहतया दिवानिशं
भोगभागपि न पापमाप सः
आहृतादि विषयैकतानता
ज्ञानधौत मनसेन लिम्पति

उनके जीवन-चरित और ग्रन्थों से विदित होता है कि उनको जल्प और विजिगीषा और अपनी चतुराई दिखाने का शौक अधिक था, वाद और तत्वबुभुत्सा का कम। गनीमत इतनी ही है कि यह श्लोकार्ध उन्होंने पति-पत्नी, नल-दमयन्ती, के विषय में लिखा। इतने से कथंचित्—

धर्माऽविरुद्धः कामोऽस्मि भूतानां भरतर्षभ—

का पालन किया; किन्तु इतने का भी पालन न करके बहुत लोग बड़े धोखे में पड़ जाते हैं।

ऊपर कहा कि 'काश्यां मरणात् मुक्तिः' ऐसी प्रथा है। पुराणों में यह भी कहा है कि 'काश्यां पापाचरणाद् ब्रह्मपिशाचत्वं, अतिदीर्घ कालायबंधः, घोरो नरकः।' अज्ञानी का पाप क्षंतव्य है। ज्ञानी का, जानबूझ कर किया हुआ पाप, घोर दंड से दंडनीय है। उसके अनंतकालिक अमरत्वज्ञान से मिश्रित होकर उतने ही दीर्घ काल तक उसको घोर पश्चात्ताप और बहुविध दुःखों से तपाता जलाता है। अपने को अमर जानने वाला जीव यदि पाप करेगा तो उसका पाप और उस पाप का फल भी अमरप्राय हो जायगा।

कार्षापणं भवेद्दंड्यो यन्त्राऽन्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दंड्यः सहस्रमिति धारणा॥
अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णंवापि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः तद्दोषगुणविद्धि सः॥ (मनु)

'यदि साधारण मनुष्य को किसी अपराध में एक कार्षापण जुर्माने का दंड दिया जाय, तो राजा को, राजपुरुष को, राजभृत्य अधिकारी को, सहस्र कार्षापण जुर्माने का दंड उसी अपराध के लिए होना चाहिये। शूद्र को यदि आठ मात्रा दंड देने से उसके अपराध के निर्णजन का आपादन-संपादन होता हो, तो वैश्य को उसी अपराध के लिए सोलह, क्षत्रिय को बत्तीस, ब्राह्मण को चौसठ या पूरी सौ या चौसठ की दूनी एक सौ अठ्ठाइस मात्रा दंड देने से होगा; क्योंकि वह सुकर्म दुष्कर्म के गुण-दोष को जानता है, अनजान बच्चा नहीं है।' यह पुरानी मर्यादा थी। आजकल के स्थूल लोक भूलोक की मर्यादा इसके विरुद्ध यह है कि राजा जो चाहे करे, वह अपराधी हो ही नहीं सकता, पैसा वाला भी बहुत-कुछ मनमानी कर सकता है और दंड नहीं पाता, बुद्धिमान् चतुर होशियार विद्या से कमाई करता आदमी भी ऐसे ही दुष्कर्मों के फलों से बच सकता है, गरीब सर्वथा पीसने के योग्य समझा जाता है।

(शेष आगामी अंक में)

सारनाथ

लेखक—श्रीयुत पन्नालाल, आई० सी० एस०

काशी नगरी से कुछ दूर पर मृगदाव जंगल में बैठे हुए पाँच साधुओं ने बुद्धदेव को आते देखा और आपस में कहा—देखो यह वही आ रहा है, जो अपनी वासनाओं को न जीत सका, आओ हम यहाँ से चलें।

बुद्धदेव ने कहा—तुम नहीं जा सकते। मैंने अमर पद प्राप्त कर लिया है। मैं अब तुमको और संसार को शिक्षा दूँगा, और सबसे पहले शिष्य तुम्हीं होगे।

बुद्धदेव ने ईसा से ५६८ वर्ष पहले शाक्य-वंश में जन्म लिया और भरी जवानी में इस संसारी जाल का त्याग कर दिया। वर्षों के तप और साधना के बाद गया में दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। इसके थोड़े ही दिन पश्चात् वे पवित्र काशी नगरी में चले आए; क्योंकि वे जानते थे कि पृथ्वी पर काशी से बढ़ कर और कोई दूसरा स्थान, एक बड़े धर्म के प्रचार के योग्य नहीं है।

वे पाँचों साधु मंत्र-मुग्ध-से हो गए। बड़े आह्लाद और आनन्द से बुद्धदेव का पहला उपदेश सुना।—

(१) संसार के पदार्थ में मन लगाने ही से दुःख होता है।

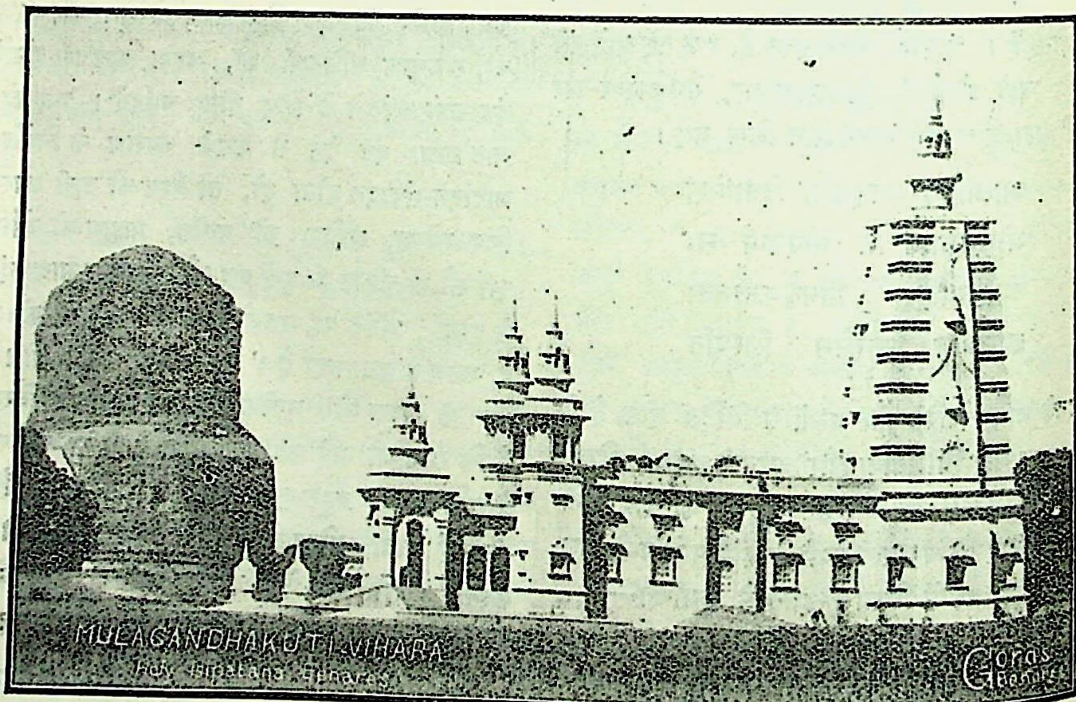
(२) यह तृष्णा ही आवागमन का कारण है।

(३) इस तृष्णा के त्याग से ही दुःख का निवारण होता है।

(४) सदैव बीच के मार्ग पर चलो—एक तरफ काम-वासनाओं और सुख की इच्छा को छोड़ो, दूसरी तरफ शरीर को दुःख देने वाले घोर तप इत्यादि को भी तिलांजलि दो।

उस समय पृथ्वी पर शान्ति फैल गई और देव-लोक में बड़ा आनन्द हुआ। दसों सहस्र लोक हिल गए। सारे ब्रह्मांड में एक दिव्य प्रकाश फैल गया। उस दिन से सारनाथ बौद्धों के चार मुख्य स्थानों में से एक हो गया। अन्य तीन इस प्रकार हैं—कपिलवस्तु, जहाँ जन्म हुआ था; गया, जहाँ सिद्धि प्राप्त हुई थी; और कुशीनारा, जहाँ उनका इस लोक से प्रयाण हुआ था।

बड़ी-बड़ी कोमल आखों वाले मृग-शिशु भी आकर्षित हो कर बुद्धदेव के पास आए; क्योंकि उनके हृदय में



धमेक स्तूप और नवनिर्मित मूलगंध कुटी विहार

बिना जाने ही महाराज के प्राचीन संवन्ध का प्रेम था—कई वर्ष पहले बुद्धदेव हरिन-योनि में थे और सारनाथ में एक बड़े झुंड के सरदार थे। एक समय वे उनके लिए अपनी जान देने को तैयार हुए थे।

लिखा है कि उस समय हरिनों के दो बड़े-बड़े झुंड थे। एक के सरदार थे बुद्धदेव और दूसरे के एक और हरिन, जिन्होंने कई जन्म बाद बुद्धदेव के चचेरे भाई देवदत्त के नाम से जन्म लिया। उस समय काशी-नरेश सारनाथ के जंगल में भ्रमण करते और मृगों का वध किया करते थे। बोधिसत्व (गौतम बुद्ध) ने इससे दुखित होकर काशी-नरेश के समीप जाकर कहा कि अगर महाराज इस प्रकार शिकार छोड़ दें, तो वे नित्य एक मृग उनके खाने के लिए भेज दिया करेंगे। इस प्रकार प्रतिदिन दोनों झुंड में के प्रत्येक से एक हरिन जाया करता।

देवदत्त के झुंड में एक दिन एक हरिनी की बारी आई, वह गर्भिणी थी। उसने यूथाधिपति (सरदार) से कहा कि मैं महाराज के पास जाने को तैयार हूँ; पर यह न्याय के विरुद्ध होगा। मेरे गर्भ-स्थित बच्चे की भी जान जायगी। उस हरिन-सरदार ने हरिनी की एक बात भी न सुनी। फिर वह दूसरे झुंड के सरदार बोधिसत्व के पास अपना दुखड़ा लेकर गई। उन सरदार का दिल करुणा से पिघल गया और उन्होंने कहा कि मैं महाराज से की गई प्रतिज्ञा का भंग नहीं कर सकता; लेकिन इतना कर सकता हूँ कि तेरे स्थान पर मैं खुद चला जाऊँ। जिस समय मृगों के सरदार महाराज बोधिसत्व बनारस आये, उस समय सारे शहर में इसकी चर्चा होने लगी और सब लोग आश्चर्य-चकित हो महाराज के महल पर पहुँचे। वे यह देखना चाहते थे कि आगे अब क्या होता है। काशी-नरेश ने मृग-सरदार से पूछा कि आप कैसे पधारे? उन्होंने कहा कि आज मेरी ही बारी पड़ी। महाराज ने विश्वास न किया और पूछा—भाई, सच बताओ? इस पर सरदार ने हरिनी के दुःख और उसकी जगह स्वयं आने का वर्णन किया। काशी-नरेश करुणा से विह्वल होकर बोले कि मैं मनुष्य होते हुए भी पशु हूँ और तुम पशु-योनि में भी देवता हो। राजा ने उसी समय से सारनाथ के जंगलों में शिकार न खेलने का प्रण कर लिया। उसी समय से सारनाथ 'मृगदाव' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी मृगवंश के तो ये छोटे-छोटे बच्चे थे, जो पूर्व प्रेम के कारण बुद्धदेव के पास आकर खड़े होते और बड़ी-बड़ी आँखें खोले उनके व्याख्यान सुनते। (देखिए चित्र)



महात्मा बुद्ध और हरिन

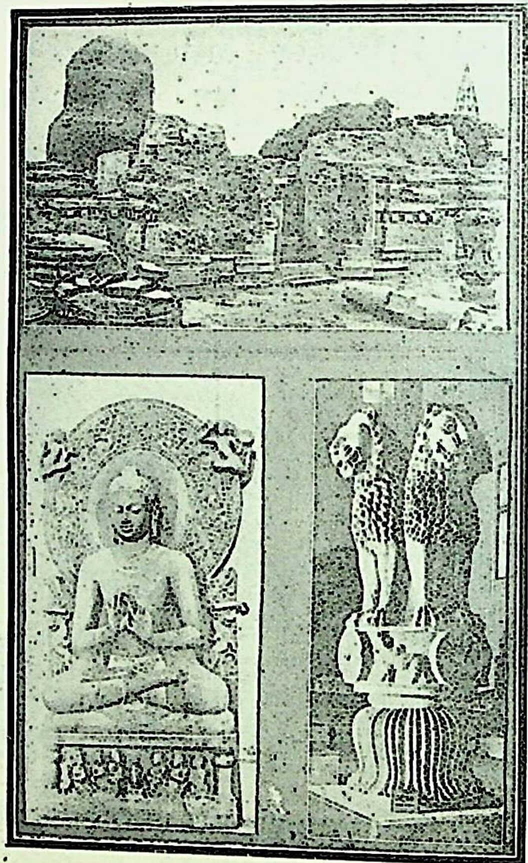
इसके पश्चात उस स्थान पर फिर बहुत से लोग आए। खेती करने वाले किसान, गृहस्थी के भार से दबे हुए नागरिक, धनी सौदागर और बड़े-बड़े प्रतापी राजा, इत्यादि। उन्होंने बुद्धजी की शिक्षा को भी ग्रहण किया। क्रमशः यहाँ एक बड़ी बस्ती आबाद हो गई। साधुओं के रहने के लिये मठ और अनेक मन्दिर, जिनको बौद्ध लोग विहार, स्तूप और चैत्य कहते हैं, बनाए गए। उनकी महत्ता का अनुमान सारनाथ के आधुनिक खण्डहरों को देख कर होता है।

दो शताब्दी के बाद हिन्दुस्तान में एक बहुत ज़बरदस्त राजा, महाराज अशोक नाम से हुए। उन्होंने इस धर्म को राजधर्म बनाया। सारनाथ में एक बहुत बड़ा स्तूप 'धर्मराजिक' के नाम से बनवाया। उस स्थान के पास, जहाँ बुद्धजी

ने अपना पहला व्याख्यान दिया था, एक विचित्र स्तम्भ बनवाया, जो जगत्-विख्यात है। यह चुनार के पत्थर का बना हुआ है; लेकिन देखने व स्पर्श करने से संगमरमर के समान है। यह ५० फीट ऊँचा था, इसकी चोटी पर चार सिंह की मूर्ति बनी थीं, जिनके नीचे बौद्धधर्म के अनेक चिन्ह अंकित थे; जैसे—चक्र जिसका अर्थ धर्म से लिया जाता था और शेर (क्योंकि बुद्धदेव शाक्य-सिंह कहलाते थे), घोड़ा, हाथी, बैल इत्यादि। इस स्तम्भ पर महाराज अशोक के प्रसिद्ध आदेश खुदे थे, जिसमें महाराज को देवा-नाम प्रियः व प्रियदासी राजा कह कर लिखा है। उसमें साधु-भिक्षुकों को नीति के विरुद्ध चलना वर्जित किया गया है।

कुछ समय बाद स्वयं, काल-वश अथवा शत्रुओं के प्रहार से यह स्तम्भ खंड-खंड हो गया। उसके टुकड़े उसी स्थान पर अब भी देखे जाते हैं। स्तम्भ का ऊपरी भाग, जिसमें मूर्ति बनी थी, सारनाथ-म्यूज़ियम में सुरक्षित रूप से रखा है।

उन प्राचीन विहार व चैत्यों में से अब एक भी खड़ा बाकी न रहा। मुसलमान बादशाहों के आक्रमणों ने इन सबको मिटा दिया; केवल उनकी नीव-मात्र रह गई है। केवल एक बड़ा स्तूप जिसे 'धमेक' के नाम से सम्बोधित करते हैं, प्राचीन काल के वैभव के स्मारक-स्वरूप खड़ा है, यह कोसों तक दिखलाई पड़ने वाला स्तूप भी महाराज अशोक ही का बनवाया हुआ है। अनुमान किया जाता है कि इसमें बुद्धदेव का कोई अस्थि-भाग रखा गया होगा। गुप्त-वंश के शासन-काल में इसका जीर्णोद्धार हुआ था।



दाहिनी ओर, स्तम्भ के ऊपर की चतुर्मुख सिंह मूर्ति

महाराज अशोक के बाद अनेक बड़े-बड़े राजाओं ने इस धर्म को अपनाया और सारनाथ के विहारों की उन्नति की। एक के टूटने पर उस स्थान पर दूसरा बनवाया गया। चौथी और ५ वीं क्रिश्चियन शताब्दी को, इतिहास लिखने वाले भारतवर्ष का स्वर्ण-काल कहते हैं। गुप्त-वंश का शासन काठियावाड़ से ढाका तक था और बनारस यद्यपि राजधानी न था; तथापि एक प्रसिद्ध नगर था। क्योंकि, पीछे के गुप्त-शासकों के सिक्के प्रायः सारनाथ के खण्डहरों में ही मिले हैं। गुप्त राजा हिन्दूधर्म के मानने वाले व शिव के उपासक थे; परन्तु उन्हें बौद्ध-धर्म से कोई बैर न था; बल्कि अपने धर्म के समान ही बौद्ध-धर्म को भी आदर की दृष्टि से देखते थे।

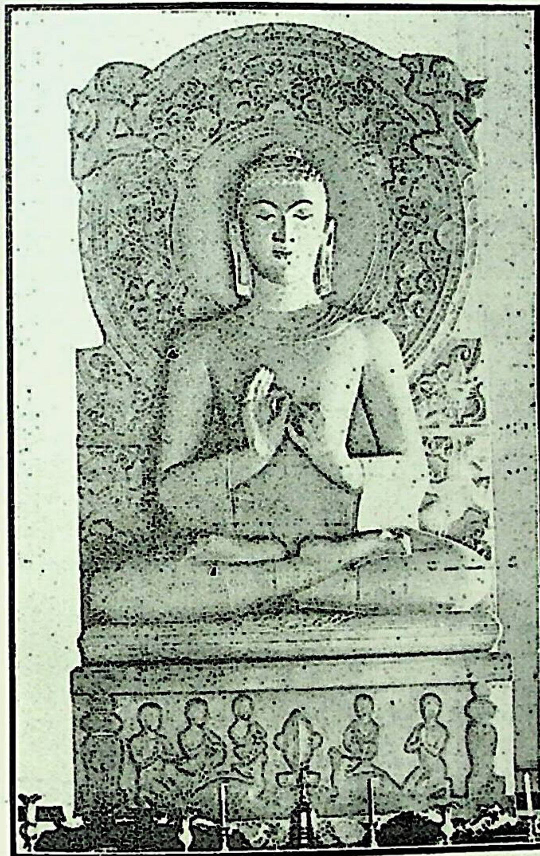
बुद्धदेव के समय में मूर्ति तथा उसकी पूजा इत्यादि का प्रचार न था। बुद्धदेव की उस समय की कोई मूर्ति सारनाथ में नहीं मिलती। सबसे प्रचीन मूर्ति दूसरी क्रिश्चियन शताब्दी की है, जो मथुरा में गढ़ी (बनाई) गई थी, वहां से न जाने किस प्रकार लाई गई है। यह एक विराट् मूर्ति है। इसके ऊपर एक अद्भुत पत्थर का अङ्कित छत्र लगा हुआ था। यह भी म्यूज़ियम में एक देखने योग्य वस्तु है।

इसके पीछे सारनाथ में भी मूर्तियाँ बनने लगीं, जिसके कारण म्यूज़ियम में बुद्ध की सैकड़ों प्रतिमाएँ मौजूद हैं। इनमें दो मूर्तियों पर कुछ लेख अङ्कित हैं, जिनसे मैंने गुप्त-राजओं की तारीखों का निश्चित रूप से बयान किया है। इन लेखों में महाराज बुद्धगुप्त व कुमारगुप्त के शासन-काल का हाल लिखा है। एक लेख इस प्रकार का है—

वर्ष शते गुप्तानां सचतुः पंचाश दुत्तरे भूमि
रक्षति कुमार गुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयां याम्
भक्त्या वर्जित मनसा यतिना पूजार्थमभयमित्रेण
प्रतिमा प्रतिमस्य गुणैर परेयमृकारिता शास्तुः
अनुः

अर्थात्—गुप्त संवत् के १५४ वर्ष में, जब पृथ्वी की महाराज कुमारगुप्त रक्षा करते थे, ज्येष्ठ मास की दूज को भक्ति से पूर्ण मन वाले यति अभय-मित्र ने पूजा के अर्थ यह प्रतिमा उस प्रभु की, जिसकी कोई बराबरी नहीं, बनवाई।

सातवीं शताब्दी में कन्नौज के राजा हर्षवर्धन द्वारा बौद्धधर्म की बहुत उन्नति हुई। इस सम्राट् की कथा 'बाण' के हर्ष-चरित में लिखी है। इसने उत्तरी हिन्दु-स्तानमें ६०६ से ६४७ तक राज्य किया। इन्होंने भी शिव के उपासक होते हुए बौद्ध धर्म का कई बार बड़े समारोह से आदर किया था। इससे मालूम होता है कि हमारे प्राचीन राजे-महाराजे कितने उदार थे। महाराज हर्षवर्धन ने भी बौद्धधर्म की लगभग उतनीही उन्नति की, जितनी महाराज अशोक ने की थी।



मूलगंध कुटी विहार में स्थित बुद्धदेव की नई प्रतिमा

इसके पश्चात् का कोई लेख या प्रमाण ११ वीं शताब्दी तक का सारनाथ के भवनों के सम्बन्ध में नहीं मिलता। १११४ से ११५५ तक कन्नौज में महाराज गोविन्दचन्द्रदेव राज्य करते थे। उनकी एक रानी कुमारदेवी के नाम से बौद्धधर्म को मानने वाली हुई। इन्होंने स्तम्भ के उत्तर तरफ एक बहुत बड़ा विहार धर्मचक्र जिनविहार नाम से बनवाया। इसके विशाल खंडहर सम्राट् अशोक के स्तम्भ के उत्तर तरफ अब तक दिखाई देते हैं। इससे १०० वर्ष पहले मह-मूद ग़जनी बनारस को लूट चुका था और इसके पचास वर्ष बाद मुहम्मद गोरी कन्नौजके राजा जयचन्द को परास्तकर काशी आया और सारनाथ के प्रसिद्ध भवनों को नष्ट कर दिया था।

फिर आठ सौ वर्ष तक इस अति पवित्र भूमि में न तो मन्दिरों में बजने वाले घण्टों के शब्द सुनाई पड़े, न पीले वस्त्र वाले भिक्षुकों की प्रार्थना के गीत ही।

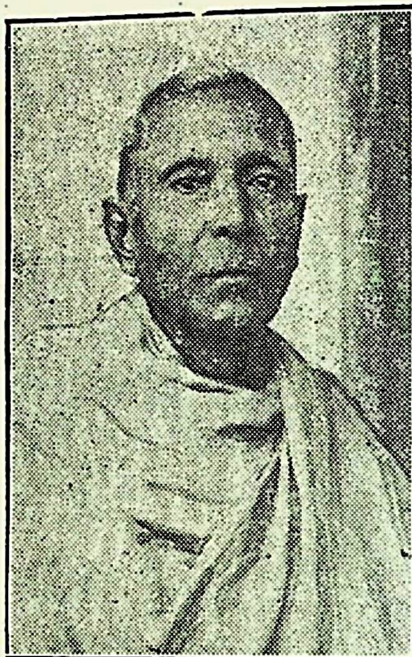
१९ वीं शताब्दी में संयोग-वश सिंहलद्वीप से एक पुरुष आए और इन्होंने इस मृतप्राय शरीर में जान डाली। बौद्ध धर्म अपनी जन्म भूमि भारत से बिल्कुल निकल चुका था। इस सिंहाली व्यक्ति ने फिर भारत में इस धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया। इसने १८९१ में महाबोधी संस्था की स्थापना की। हिन्दुस्तान, यूरोप और अमेरिका इत्यादि देशों में प्रोपैगैंडा किया। इस कार्य में उसे बड़ी सफलता मिली। पहले इन्होंने कलकत्ते में एक बहुमूल्य विहार बनवाया, फिर सारनाथ की तरफ कृपादृष्टि की। एक छोटी-सी पाठशाला बनवाई। इनका उद्देश्य उसे विश्वविद्यालय बनवाने का था। सारनाथ में एक विशाल विहार 'मूलगंध कुटी' के नाम से बनवाया। यह विहार महाराज अशोक के धर्मेक स्तूप के ठीक सामने है। (लेख के आरंभ में चित्र देखिये)

इस सिंहाली व्यक्ति का नाम पीछे से भिक्षु धर्मपाल पड़ा और वह १९३३ ई० में पूर्ण अवस्था प्राप्त कर अपने उद्देश्यों में बहुत कुछ सफलता देखकर विदेह को प्राप्त हुआ।

कई बार इन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि 'मैं जन्म-जन्मान्तर पवित्र काशी ही में जन्म लूँ और अपने प्रभु बुद्धदेव के फिर प्रकट होने की आशा में बौद्ध धर्म का फिर भारत में प्रचार करूँ।' बौद्धों का दृढ़ विश्वास है कि बुद्धदेव अबकी बार काशी ही में अवतार लेंगे।

इस कार्य में अनेक देशों से भी सहायता मिली। विहार के लिये जापान वालों ने एक आश्चर्य-जनक घण्टा भेजा है, जिसकी आवाज़ बहुतही आकर्षक होती है। जापान के चित्रकार आज-कल विहार की भीतरी दीवालों पर प्रभु के जीवन की लीलाओं के दृश्य बना रहे हैं।

जब पूज्य धर्मपाल का देहान्त हुआ, तो उनके मित्र व सम्बन्धियों की इच्छा हुई कि उनके शरीर में दवा भरकर जन्मभूमि सिंहलद्वीप को भेज दिया जाय; पर मैंने कहा कि महात्मा की प्रकट की हुई इच्छानुसार यहाँ ही इनकी उत्तर-क्रिया करनी चाहिए। महात्मा की इच्छा का कौन विरोध कर सकता था। डाक्टरों ने भी दवा भरने में असमर्थता दिखाई। सिंहलद्वीप को भी जो तार भेजे गये थे, वे न मालूम क्यों नहीं पहुँचे। अस्तु, पूज्य धर्मपालजी की अन्तिमक्रिया सारनाथ हीमें हुई।



स्व० अनागारिक धर्मपालजी

अब ८०० वर्ष बाद सारनाथ जाने वाले, वहां के पुराने शरीर में एक नई जान देखते हैं। सम्राट् अशोक के 'ध-मेक स्तूप पर पीले वस्त्र धारी भिक्षु दीपक जलाकर सायंकाल के समय ध्यान में बैठते हैं। अथवा नये विहार के बाहर पंक्ति में बैठकर अपनी प्रार्थनाओं का कीर्तन करते हैं। एक अद्भुत शान्ति का इस स्थानमें सदैव अनुभवहोताहै।

काम से थक कर कभी-कभी मैं भी हृदय में शान्ति-प्राप्ति की इच्छा से शाम को वहाँ जाया करता हूँ।

काशी : हिन्दू-संस्कृति का केन्द्र

लेखक—श्रीयुत राधेश्याम शर्मा, एम० ए०

काशी अनादि काल से हिन्दू-संस्कृति और विद्या का केन्द्र रही है। ऐतिहासिक-काल आरम्भ होने के पूर्व ही यह, देश के विविध भागों से विद्वानों और विद्यार्थियों को आकर्षित करने लगी थी। यहाँ के आचार्यों-द्वारा प्रतिपादित धर्म, दर्शन आदि के सिद्धान्तों का संस्कृत-साहित्य में अपना विशेष स्थान था। इसके प्रमाण उपनिषद् और ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् से मालूम होता है कि काशी के राजा अजातशत्रु को ब्रह्मविद्या में बड़ी रुचि थी। उसी ग्रन्थ में गर्गवंश के द्रिपसावलिक ऋषि से अजातशत्रु की जो बातें हुई हैं, उनसे काशी के दार्शनिक विचारों का भली-भाँति पता चलता है। रामायण, महाभारत, पुराण और स्मृतियों में भी कितने ही स्थानों में काशी कोविद्या का केन्द्र कहकर उल्लेख किया गया है।

प्राचीन काल

प्राचीन काल में काशी केवल हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति का ही केन्द्र रही हो, सो बात नहीं। ईसा से कई शताब्दी पूर्व वह बौद्धधर्म का अनन्य केन्द्र बन चुकी थी। भगवान् गौतम बुद्ध ने वर्तमान काशी के निकट सारनाथ नाम के स्थान में पहले-पहल अपना धर्मचक्र चलाकर संसार को अहिंसा का उपदेश दिया था। तब से यह भारतीय बौद्धों का तो प्रधान तीर्थ बन ही गया; परन्तु चीन, जापान, बरमा आदि दूरवर्ती देशों से भी इसमें यात्री आने लगे। अन्तिम मौर्य सम्राटों के काल में—जब बौद्धमत राज-धर्म बन चुका था—काशी के उत्तर विशाल स्तूपों और विस्तृत राजमार्गों से सुसज्जित एक सुन्दर नगर बस गया। आज भी उसके भग्नावशेष नगर के प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं, जब उसके मार्ग कौपेय वस्त्रधारी सन्यासियों से भरे रहते होंगे और मठों में सहस्रों भोगी विरक्त भाव से आत्मचिन्तन में रत रहते होंगे। छठवीं-सातवीं शताब्दी में यद्यपि काशी की राजनैतिक महत्ता अवश्य कम हो गयी थी; पर विद्या और संस्कृति का केन्द्र वह तब भी थी। बौद्ध-ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय काशी में बड़े-बड़े हाल थे, जिनमें विद्वान् धार्मिक और दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थ किया करते थे।

गुप्त-युग में जब बौद्धधर्म का ह्रास प्रारम्भ हो चुका था, चीनी यात्री फ़ाहियान भारत में आया। उसने वाराणसी के निकट ही उत्तर की तरफ़ एक सुन्दर नगर का वर्णन किया है। हर्ष के काल में दूसरे चीनी यात्री हुयेन-त्सांग ने काशी के सम्बन्ध में लिखा है—'काशी-राज्य की परिधि ७०० मील है। राजधानी (वाराणसी) की लम्बाई ३ मील से अधिक है, नगर बहुत घना बसा है। निवासी हिन्दू हैं और महेश्वर (शिव) को पूजते हैं, जिनकी मूर्ति १०० फीट से अधिक ऊँची है। नगर में १०० मन्दिर हैं, जिनमें १०,००० भक्तों के रहने को स्थान हैं। बौद्धों के केवल ३० मठ हैं, जिनमें कुल ३,००० मनुष्य रहते हैं।'

आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भगवान् शंकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने बौद्ध और हिन्दू-धर्म के तात्कालिक अंधविश्वासों और पाखण्डों के विरुद्ध एक ज़ेहाद खड़ा कर दिया। धर्म के अन्य केन्द्रों में विजय पाकर उन्होंने काशी की विद्वन्मण्डली को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। किम्वदन्ती है कि काशी के प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पंडित मंडन मिश्र तो उनसे पराजित हो गये; पर उनकी पत्नी ने शंकराचार्य को वाद-विवाद में परास्त कर दिया। परन्तु, यह किम्वदन्ती एक क्षण के लिये न भी मानी जाय, तो भी इतना तो निश्चित ही है कि काशी में ही उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध दर्शन-सिद्धान्त 'वेदान्त' का प्रतिपादन उपनिषदों के आधार पर किया, जिसमें मानव-मस्तिष्क अपनी चरम-सीमा को पहुँच गया है।

मध्य युग

मध्ययुग में देश पर बाहरवालों के कितने ही हमले हुए। उत्तरी भारत का कोई भी प्रसिद्ध नगर उनके विनष्टकारी प्रभाव से नहीं बचा। काशी पर भी सुलतान नियाल्तगीन, कुतबुद्दीन इबुक के, तथा मुगल-काल में भी कितने ही हमले हुए; परन्तु काशी की महिमा का मुख्य आधार व्यापारिक अथवा राजनैतिक महत्ता कभी नहीं रहा, उसका अटूट सम्बंध तो धर्म और संस्कृति से था। यदि कोई विजयी शासक नगर में लूटपाट मचवा देता, मन्दिर

या मूर्तियों को विध्वस्त करवा देता, अथवा लोगों का दमन करने लगता, तो यह अवश्य था कि काशी कुछ दिनों के लिये श्रीविहीन हो जाती ; परन्तु उस पर कोई वास्तविक प्रभाव न पड़ता था। हरसाल फिर ग्रहण पड़ते, अमावस्या और एकादशी आतीं और उनके साथ-ही-साथ आता—स्त्री-पुरुषों का विशाल जन-समूह, जो काशी की गलियों, घाटों और मन्दिरों में समा जाता। फिर सदा की भाँति प्रातः और संध्या आती, काशी नगरी में घंटे और शंख के गंभीर निनाद के साथ भक्तों की कण्ठ-ध्वनि मिलकर फिर वही अपूर्व समा बाँध देती, मानो कुछ हुआ ही न हो। काशी के सम्बन्ध में मैं यहाँ रेवरेंड शेरिंग्स का निम्न-लिखित उद्धरण देने का लोभ संवरण नहीं कर सकता—'While many cities and nations have fallen into decay and perished, her sun has never gone down ; on the contrary, for long ages past it has shown almost with meredian splendour. Her illustrious name has descended from generation to generation and has been a household word venerated and beloved by the whole Hindu family... As a queen she has received the willing homage of her subjects scattered all over India, as a lover she had secured their affection and regard.

हाँ, तो मुसलमानी काल में भी काशी—जिसे शिवजी के त्रिशूल पर स्थित कहा जाता है—आर्य-संस्कृति और विद्या का केन्द्र रही। पंडितराज जगन्नाथ ने काशी के ही एक घाट पर अपनी 'गंगालहरी' की रचना की। व्याकरणाचार्य कय्यट आदि अनेक विद्वान् समय-समय पर देश के कोने-कोने से आकर इसके ज्ञान-गह्वर को सदा भरते रहे। यदि किसी मुगल सम्राट् या नगर के शासक को विद्या में रुचि हुई, तो यहाँ के पण्डितों को राज से आर्थिक सहायता भी अकसर मिल जाया करती थी। अकबर के विषय में तो यह प्रसिद्ध ही है, कि वह काशी से पंडितों को बुलवाकर शास्त्रार्थ सुना करता था। शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दारा-शिकोह को हिन्दू-धर्म और दर्शन से बड़ा प्रेम था। सुना जाता है कि अपने अभागे जीवन के कुछ दिन उसने बनारस में बिताये थे। उस काल में उसने यहाँ के १५० पंडितों की सहायता से उपनिषदों का फारसी में उल्था कराया था।

भक्ति की लहर

काशी का देश के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, इसे बताने के लिये केवल यही काफ़ी है कि देश में जितने भी समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक, कवि, सन्त, महात्मा आदि हुए हैं—चाहे वे दक्षिण के हों या बंगाल के, पंजाब के या गुजरात के—उनमें से अधिकांश ने या तो काशी में ही विद्यालाभ किया है, या अपना सन्देश पहले-पहल यहीं के लोगों को सुनाया है, या अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ बिताया है। गौतमबुद्ध और शंकराचार्य की तरह चौदहवीं शताब्दी में रामानन्द ने भी दक्षिण से आकर काशी को ही पहले-पहल पतितपावनी भक्ति का सन्देश सुनाया। उनके शिष्य कबीर और रैदास भी यहीं हुए। कबीर तो काशी की गली-गली और घाट-घाट पर अपने दार्शनिक ज्ञान से ओत प्रोत पद सरल भाषा में लोगों में गाते फिरे। उन्होंने प्राचीनता के इस अनन्य गढ़ में विभिन्न जाति-सम्प्रदाय आदि भेदों की खुलेआम निन्दा की। सिक्ख-धर्म के प्रवर्तक गुरुनानक भी काशी में अपना सन्देश सुनाने आये।

बंगाल के संत महाप्रभु चैतन्य भी काशी की गलियों में भगवद्-प्रेम की पावन धारा प्लावित कर गये। वैष्णव-सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्य ने यहीं शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दी-साहित्याकाश के चन्द्र, कवियों में शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंश काशी में गंगा-किनारे पर बिताया था। तुलसीघाट पर एक सामान्य-से मकान में एक कोठरी अब तक वर्तमान है जिसमें संगमरमर की चौकी पर विराजकर भक्ति और साहित्य से ओत-प्रोत ऐसे विमल 'मानस' की उद्भावना उन्होंने की, जिसमें गोते लगाकर लोग आज तक नहीं अघाते।

आधुनिक युग

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वारेन् हेस्टिंग्स ने काशी की संस्कृत विद्या को कुछ प्रोत्साहन दिया। सन् १७९२ में यहाँ गवर्नमेंट संस्कृत-कॉलेज की स्थापना हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में पश्चिमी शिक्षा की

नींव डाली गयी। काशी में भी उक्त शताब्दी के प्रथम चरण में ही जयनारायण स्कूल की स्थापना हुई, जो शायद देश के सबसे पहले स्कूलों में से एक है। हिन्दू-धर्म के लिये वे दिन परीक्षा के थे। भोले-भाले भारतीयों की आँखें पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध में झिलमिला उठीं और पढ़े-लिखे लोग ईसाई बनने लगे। उस कठिन काल में आर्य संस्कृति और सभ्यता के केन्द्र काशी ने नवीन प्रभावों के विरुद्ध एक मज़बूत क़िले का काम किया। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द आदि महानुभाव धर्म-रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। राजा राममोहन राय ने बाल्यकाल में काशी में ही शिक्षा पाई थी। स्वामी दयानन्द ने शंकराचार्य की तरह दकियानूसी विचार वाले पंडितों से यहाँ शास्त्रार्थ किया। इन दोनों महानुभावों ने 'ब्राह्म-समाज' और 'आर्य-समाज' स्थापित करके धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये जो कुछ भी किया वह सभी को विदित है।

आजकल भी देश के धार्मिक, साहित्यक और राजनैतिक क्षेत्रों में काशी का विशेष स्थान है। भगवान्, विश्वनाथ और पतितपावनी गंगा के आश्रय में रहने के कारण सदा की भाँति अब भी इसकी महिमा अक्षुण्ण है। धार्मिक संस्थाओं में सनातनधर्म-महासभा, और अन्यान्य धार्मिक संस्थाएँ काशी में ही हैं। प्रथम संस्था हिन्दू-धर्म की सक्रिय और निष्क्रिय दोनों प्रवृत्तियों की प्रतिनिधि है और साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिक हिन्दी के प्रातःकालीन चमकते सितारे (Morning star) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की जन्मभूमि भी यही नगरी है। स्वर्गीय राधाकृष्णदास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, लाला भगवानदीन तथा बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का भी काशी से कुछ कम सम्पर्क नहीं है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी भाषा-भाषियों की जैसी सेवा कर रही है, वह किसी से छिपा नहीं है। इसी प्रकार यहाँ के दैनिक 'आज' और ज्ञानमण्डल यन्त्रालय का हिन्दी-जगत् में महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य सेवियों में पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, मुन्शी प्रेमचन्द, और श्रीप्रसादजी, प्रभृति का नाम लिया जा सकता है। राजनैतिक दृष्टि से भी काशी का स्थान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। कांग्रेस और हिन्दू-महासभा दोनों ही के वार्षिक अधिवेशन यहाँ हो चुके हैं। नेताओं में भारत-भूषण पं० मदनमोहन मालवीय, डाक्टर भगवानदास, श्री श्रीप्रकाश, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, श्रीसम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव तथा पं० गोविन्द मालवीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। गत सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने वाले नगरों में काशी का स्थान काफी ऊँचा है।

विद्या का केन्द्र

लिखा जा चुका है कि प्राचीन काल से ही काशी की विद्या को बड़ी आदर-दृष्टि से देखा जाता है। यही कारण है कि धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन पथ पर अग्रसर होने वाले महापुरुषों ने बहुधा लोगों में अपने विचारों का प्रचार करने के पहले यहाँ की विद्या और ज्ञान की अर्चन करना अपना कर्तव्य समझा। अब भी, प्राचीन-शिक्षा के प्रेमी अपने बालकों को काशी भेजते हैं। परिणामतः इस तड़क-भड़क के युग में भी—जब नवीन शिक्षा प्रणाली इतनी आगे बढ़ गई है—हम देश के विभिन्न भागों से आये हुए सैकड़ों विद्यार्थियों को काशी में शान्त, संयत और निर्लिप्त भाव से विद्याध्ययन करते पाते हैं। भगिनी निवेदिता ने काशी की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का जिक्र करते हुए अपनी 'Foot falls of Indian History' में लिखा है—'Benares is not only an Indian Canterbury; it is also an Oxford, under the shadows of its temples and monasteries cluster, the schools and dwellings of the Pandits and learned Sanskritists and from all parts of India the poor students flock there to study the classics and the ancient rituals of Hinduism.'

लगभग १०० साल हुए एक अँगरेज लेखक ने काशी की संस्कृत-पाठशालाओं का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन लिखा था। शहर के मुहल्ले-मुहल्ले, गली गली में सैकड़ों पंडित विद्यार्थियों को वेद, पुराण, शास्त्र, व्याकरण, वेदांत, मीमांसा, न्याय, ज्योतिष इत्यादि पढ़ाया करते थे। अब इस प्रकार के गुरु और शिष्यों दोनों की संख्या दिनों-दिन घटती जाती है; परन्तु अब भी कितने ही विद्वान् सज्जन अपने ही घर पर या किसी धर्मशाला, मन्दिर, अथवा क्षेत्र के भवन में कुछ विद्यार्थी इकट्ठे करके बैठ जाते हैं।

भारत के बृटिश-कालीन राजनीतिक जीवन में काशी का स्थान

लेखक—श्रीयुत सम्पूर्णानन्द, बी० एस-सी०

प्राचीन भारत के इतिहास में काशी का स्थान बड़ा ऊँचा था। यह कभी दीर्घकाल के लिए किसी प्रबल साम्राज्य का केन्द्र तो न बन सका; परन्तु बौद्धकाल के अन्त तक; वरन् मुस्लिमकाल में भी, इस प्रदेश का राजनीतिक महत्व बहुत बड़ा था। सांस्कृतिक दृष्टि से तो इसके सम्बन्ध में उन शब्दों का प्रयोग निःसङ्कोच रूप से किया जा सकता है, जिनका प्रयोग रोम के सम्बन्ध में करके लोग कुछ भूल करते हैं। काशी का इतिहास समस्त भारत का इतिहास है। भारत के पुराने इतिहास को वैदिक, दार्शनिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन, नव्य हिन्दू, चाहे जितने भागों में बाँट डालिए, इन सभी युगों में काशी का प्राधान्य रहा है और यह प्राधान्य, दैव-कृपा से अब भी बना है।

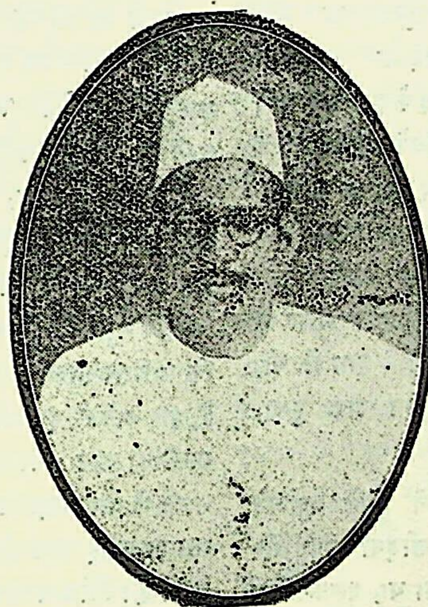
परन्तु अँग्रेजी शासन-काल के इतिहाश के विद्यार्थियों के ध्यान में कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, दिल्ली और लाहौर की अपेक्षा काशी का नाम स्यात् कम आता है। इसके कई कारण हैं। इस छोटे-से लेख में मुझे संक्षेप में यह दिखलाना है कि इस समय भी काशी ने इतिहास-निर्माण में उचित भाग लिया है।

जिस परिस्थिति में अँग्रेजों ने भारत में अपना आधिपत्य जमाया, वह कोई विलक्षण वस्तु न थी, न उससे भारतीयों की कोई नैसर्गिक दुर्बलता टपकी पड़ती है। किसी भी महाद्वीपकाय देश में ऐसा होना—आपस में युद्ध और कलह का देख पड़ना—सम्भव और स्वाभाविक ही नहीं एक प्रकार से आवश्यक है। धरती-तल के गुरुम्मन्य यूरोप में भी तो आये-दिन ऐसा हुआ करता है। कोई भी राजनीतिक प्रबन्ध हो, वह नियम, विधान, सन्धि, समझौता, सनद आदि के आधारपर खड़ा किया जाता है, चाहे वह किसी देशविशेष के भीतरी शासन से सम्बन्ध रखता हो, चाहे अन्तर्राष्ट्रीय हो। परन्तु, नियमादि जड़ हैं और मनुष्य की प्रकृति चैतन्य है। वह कुछ काल में नियमों के आगे बढ़ जाती है। जो नियम, जो समझौता, एक समय जनता की इच्छा के सर्वथा अनुकूल था, जिसका जनता ने स्वयं स्वागत किया था, वही भाररूप हो जाता है और यदि वह सीधे से न हट गया, तो बलात् हटा दिया जाता है। यदि ऐसा न हो, तो प्रगतिशील मानव-प्रवृत्तियों को फैलने का अवसर न मिले। इसीलिये राजनीतिक उथल-पुथल होते हैं। पुराने साम्राज्य टूटते हैं, नये बनते हैं। जो कल शत्रु थे, वह आज मित्र हो जाते हैं। कल के मित्र एक दूसरे पर विजय-यात्रा करते हैं। नयी शासन-पद्धतियाँ प्रयोग-क्षेत्र में आती हैं। भारत में ऐसा ही समय उपस्थिति होने वाला था, जब अँग्रेजों ने यहाँ पदार्पण किया और जब यहाँ राजनीतिक अशान्ति फैली। सिख, मराठे, राजपूत, पठान, मुगल आपस में लड़ने लगे। देश में नयी राजनीतिक व्यवस्था का समय आया, तो उससे लाभ उठाकर इन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित किया और ऐसी परिपाटी चलायी, जिसकी न किसी को इच्छा थी, न कल्पना।

स्यात् यह विदेशी शासन भारत के लिये उपयोगी ही हुआ। जो कुछ हो यह बात ध्यान देने की है, कि देश की अन्तरात्मा ने इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया। अनुकूल परिस्थिति होने पर भी, निज़ाम जैसे शक्तिशाली शासकों की निरन्तर कायर और स्वार्थमयी नीति से परिपुष्ट होने पर भी, राजपूत-जैसी वीर जाति की अकर्मण्यता से सहारा पाने पर भी, बृटिश बैजयन्ती को लोहे के चने चबाने पड़े, तब जाकर वह दिल्ली के किले पर असयलरूप से फहरा सकी। राज्य स्थापित होने पर भी दीर्घकाल तक शान्ति कभी न हुई। कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी प्रकार का, कम या अधिक व्यापक, विप्लव या विद्रोह होता ही रहा और यह परम्परा अब तक चली जा रही है। देश की आत्मा इस बन्धन से छुटकारा चाहती है। यह प्रयत्न चाहे सफल हो या न हो, उस आत्मा की उच्चता के द्योतक हैं। यह हमारे लिये—बनारस वालों के लिये—गौरव की बात है कि इस प्रकार के कामों में बनारस बराबर सम्मिलित रहा है और उसका स्थान बराबर ऊँचा रहा है। पराधीनता बुरी

वस्तु है ; परन्तु पराधीनता को चुपचाप सह लेना और भी बुरी वस्तु है ।

बृटिश कालीन इतिहास में बनारस का नाम पहले-पहल संवत् १८३८ में आता है । अवध के नवाब वज़ीर दिल्ली के आधिपत्य से निकल चुके थे और स्वतंत्र नरेश थे ; पर अब भी अपने को दिल्ली के सामन्त कहते जाते थे। बनारस का प्रदेश अवध की अमलदारी में पड़ता था ; पर बलवन्तसिंह और उनके पुत्र चेतसिंह ने उसे एक स्वतन्त्र राज्य बना लिया था। बलिया का कुछ अंश जीत कर उसका विस्तार भी बढ़ा लिया था। स्वतंत्र थे ; पर नाम को। अब भी उसी प्रकार लखनऊ के अधीन थे, जिस प्रकार लखनऊ दिल्ली के अधीन था। अंग्रेज पर्य्यटकों ने लिखा है कि पड़ोस की नवाबी और बंगाल की अंग्रेज़ी अमलदारी की अपेक्षा बनारस राज्य की प्रजा अधिक सुखी और सम्पन्न थी और उसमें, जैसा कि आगे की घटनाओं ने दिखलाया, बहुत वीरता और स्वदेशाभिमान था। जब मीरकासिम की ओर से दिल्ली के बादशाह और नवाब शुजाउद्दौला अंग्रेजों से लड़ने के लिए निकले, तो बनारस के महाराजा चेतसिंह भी उनके साथ गये। बक्सर के युद्ध के पीछे जो सन्धि हुई, उसमें सभी पक्षों ने चेतसिंह को स्वाधीन नरेश मान लिया। बक्सर के अभागे युद्ध में उत्तरी भारत की दोनों अवशिष्ट मुस्लिम-शक्तियों ने—बंगाल तो पहले ही ठंडा हो चुका था—अंग्रेजों का लोहा मान लिया और वह भी इस प्रकार कि फिर कभी सिर न उठाया। उत्तर भारत वीर-प्रसू भूमि है। यहीं की सन्तान ने आगे चलकर भारत में और विदेश में अपना लहू बहाकर अंग्रेजों की राज्य-परिधि और कीर्ति को बढ़ाया ; पर स्वयं यह इतना बड़ा देश अपने शासकों की दुर्बलता और नालायकी के कारण एक ही लड़ाई के बाद विदेशियों के हाथ में चला गया। अकेले एक चना क्या भाड़ फोड़ता ? जो काम शाह आलम, शुजाउद्दौला और मीरकासिम नहीं कर सकें, उसमें चेतसिंह असमर्थ रहे। यह उनके लिये लज्जा की बात न थी। यह उनके और काशी के लिये गौरव की बात थी कि काशी-नरेश इस युद्धस्थल पर उपस्थित थे।



श्री० सम्पूर्णानन्दजी

अँग्रेजों को रुपयों की आवश्यकता थी ; इसलिए उन्होंने सन्धि की शर्तों की अवहेलना करके चेतसिंह से रुपया माँगना आरम्भ किया। तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन् हेस्टिंग्ज ऐसे व्यक्ति न थे, जो न्याय-अन्याय जैसे तुच्छ विचारों को अपने मार्ग का प्रतिबन्धक बनने देते। पहले तो चेतसिंह ने कुछ दे-दिलाकर बला टालनी चाही। उन्होंने बख्शी सदानन्द को भेजकर कुछ समझौता भी करना चाहा। बात यह थी कि अभी उनकी जड़ पूर्णतया सुदृढ़ नहीं हुई थी ; अतः वह अँग्रेजों से झगड़ा मोल नहीं लेना चाहते थे। पर, वारन् हेस्टिंग्ज को रुपये की आवश्यकता थी और वह चेतसिंह की शक्ति की कोई परवाह नहीं करते थे। स्वयं बनारस आये और शिवालयघाट वाली इमारत में चेतसिंह के साथ बहुत ही अपमानपूर्ण व्यवहार करके धोखे से उन्हें वहीं कैद कर लिया। यह बात जनता के लिये असह्य हो गई। प्रजा स्वयं अपने नरेश और राज की रक्षा के लिये शस्त्र लेकर खड़ी हो गयी। बनारस की गलियों में अँग्रेजों की कई कम्पनियाँ कट गईं। वारेन् हेस्टिंग्ज़ को रातों रात बनारस से भागना पड़ा। उसी समय एक कहावत निकल पड़ी, जो बंगाल के अँग्रेजों में भी बहुत प्रसिद्ध थी, मैंने इसे 'ईकोज़ आव ओल्ड कैलकटा' में पहले-पहल देखा था।—

घोड़े पर हौदा और हाथी पर जीन
जल्दी से भाग गया वारन हेस्टीन

वारेन् हेस्टिंग्ज का भाग जाना भारत के लिये दुर्भाग्य-मयी घटना थी और उसने बनारसवालों के अबतक के सारे किये-कराये पर पानी फेर दिया। हेस्टिंग्ज़ माधो सामियाँ के बाग में, जिसमें आजकल राधास्वामी-सत्सङ्ग है, घिरा पड़ा था। उसको पकड़ लेना सहज-सी बात थी। चेतसिंह के भाई सुजानसिंह तथा और कई दरबारियों की तथा प्रजा की यही इच्छा थी; पर स्वयं चेतसिंह कुछ ठीक स्थिर न कर सके। उधर उनके विरुद्ध षड्यंत्र भी चल रहा था। वह अपने पिता की राजपूत पत्नी से उत्पन्न हुए थे, इससे उनके पिता के बिरादरी वाले भूमिहार उनसे खिंचे रहते थे। यह लोग चाहते थे कि बलवन्तसिंह के नाती को गद्दी मिले। इस षड्यंत्र की मुखिया, चेतसिंह की सौतेली भूमिहार माँ रानी गुलाबकुँवर थीं और इनका साथ बाबू औसानसिंह तथा मौलवी अलीउद्दीन दे रहे थे। यह दोनों दरबारी थे और दोनों की श्रीवृद्धि चेतसिंह के द्वारा हुई थी; पर इस समय अपने स्वार्थ-साधन के लिये दोनों उनके साथ विश्वासघात कर रहे थे। यदि इस आपस की गड़-बड़ी के कारण वारेन् हेस्टिंग्ज को भागने का अवसर न दे दिया गया होता, तो आज न केवल बनारस; किन्तु समस्त भारत के इतिहास का रूप ही दूसरा होता। भारत के भविष्यत् की कुंजी उस समय बनारस वालों के हाथ में थी, यह नहीं कह सकते कि उसका उपयोग ठीक हुआ, या नहीं।

यहाँ से भागकर वारेन् हेस्टिंग्ज़ ने अपने बल को सँभाला, फलतः चेतसिंह को बनारस छोड़ना पड़ा और राज्य, जो अब नाममात्र को राज्य रह गया था, बलवन्तसिंह के नाती महीपनारायणसिंह को मिला। इन्हीं के वंशज अब भी गद्दी पर हैं। चेतसिंह की रानी पन्ना मिर्जापुर के पहाड़ी प्रदेशों में बड़ी वीरता से लड़ती रहीं; पर अन्त में उन्हें भी आत्म-समर्पण करना पड़ा। इस प्रकार उनको हाथ में करके वारेन् हेस्टिंग्ज़ ने उनके साथ अपनी स्वाभाविक उच्छृंखलता और असभ्यता का व्यवहार किया। ब्रिटिशकाल में बनारस के लिये यह पहला स्वातंत्र्य युद्ध था। इसमें बनारस वाले पृथक और स्वतंत्र रूप से लड़े, यही इसकी विशेषता थी। जिस प्रकार सिराजुद्दौला और मीरकासिम के नेतृत्व में बंगाल ने तथा हैदरअली और टीपू सुलतान के झंडे के नीचे मैसूर ने, जिस प्रकार अपनी-अपनी बारी गवालियर, इन्दौर भरतपुर, पूना और लाहौर ने विदेशी आधिपत्य की बढ़ती लहरों को रोकने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार चेतसिंह के समय में बनारसवालों ने भी देश की स्वाधीनता के यज्ञ में आहुति डाली। भारत को अपनी भावी भुगतनी थी, उसको पलटने की क्षमता उनमें नहीं थी। यह दुःख की बात भलेही हो; पर ऐसे युद्ध में लड़कर हार जाना भी गौरवास्पद है।

इसके लगभग ७५—७६ वर्ष पीछे संवत् १९१४ में भारत में फिर स्वाधीनता की लहर उठी। छोटे-मोटे प्रत्यक्ष कारण तो अनेक थे; पर वास्तविक बात यह थी कि देश एकबार परतंत्रता को दूर फेंकना चाहता था। कारतूसों का केवल बहाना था और मंगल पाण्डेय निमित्तमात्र थे, सच बात यह थी कि पराधीनता खल रही थी। शक्तियाँ विच्छिन्न थीं, प्रान्त-प्रान्त में पर्याप्त सौहार्द न था, आन्दो-लन के नेताओं को परामर्श करके लक्ष्य और नीति स्थिर करने का अवसर नहीं मिला था, हिन्दू-मुस्लिम का मिथ्या सन्देह बना हुआ था, राजे-महाराजे दुर्बलात्मा थे; सर्वोपरि यही बदा था; इसलिये परिणाम कुछ न निकला। इस आन्दोलन के महत्त्व को घटाने के लिये अँग्रेज़ इसे 'सीपॉय म्युटिनी' सिपाहियों का विद्रोह कहते हैं; पर जैसा कि प्रोफेसर सीली ने 'दी एक्शपैंशन आव इंग्लैंड' में लिखा है, हार जाने से इन लोगों को विद्रोही आदि कहकर चाहे जो गाली दी जाय; पर यदि विजयी हो गये होते, तो यही लोग भारत के वीर उद्धृत कहलाते। इनके हाथों यदि कहीं बर्ब-रता का कोई काम हो गया, तो उसका बराबर उद्धरण दिया जाता है। अँग्रेज पल्टनों की पैशाचिक क्रूरता का कोई नाम भी नहीं लेता। यहाँ तक अन्धेर हुआ है कि इस हलचल को दमन करने में जो खर्च पड़ा, वह भी ऋणरूप से भारत के सिर लादा गया। अन्तर्राष्ट्रीय विचारक तो कहते ही हैं, निष्पक्ष अँग्रेजों तक ने कहा है कि यह खर्च इंग्लेण्ड पर पड़ना चाहिए था। किसी देश को जीतकर गुलाम बनाने में जो रुपया व्यय हुआ हो, वह उसी देश के निवासियों से लिया जाय, ऐसा सभ्य जगत् में कहीं नहीं होता; पर भारत आज तक वह ऋण चुकाता आ रहा है।

इस स्वातंत्र्य-संग्राम में बनारस ने भी भाग लिया। थोड़े-से काल के लिये काशी नगर भी विद्रोह का एक केंद्र

बन गया। यहाँ जो हिन्दुस्तानी पल्टन थी, वह भी अंग्रेज-सरकार के विरुद्ध हो गयी और जनता भी उत्तेजित थी। उस समय बनारस की ज़मीनदारी—या आदर-सूचक शब्दों में बनारस-राज्य—के स्वामी राजा ईश्वरीनारायणसिंह थे। वह ऐसी नीति चले, जो कई लोगों की सम्मति में दो रुखी थी। विद्रोही सिपाहियों तथा जनता को यही आश्वासन मिलता रहा, कि यह भी राष्ट्रीय पक्ष की ओर हो जायँगे। इनके मिलने से रुपये की अच्छी सहायता मिलती और इनके समर्थन का प्रभाव भी अच्छा पड़ता। उधर अँग्रेजों को भी इनसे बहुत कुछ आशा थी। वस्तुतः इन्होंने किसी की भी पर्याप्त सहायता न की, बातों में टालते रहे। सिपाही तो थोड़े दिनों तक प्रतीक्षा करके चले गये, जनता भी धीरे-धीरे शान्त हो गयी और फिर जब अँग्रेजों की जीत निश्चित प्रतीत होने लगी, तब तो ईश्वरीनारायणसिंह खुलकर अँग्रेजों के पक्षपाती ही हो गये। उनकी इस दुरंगी चाल का परिणाम बनारस के लिये यह हुआ कि यहाँ दोनों में से किसी पक्ष की ओर से विशेष मारकाट नहीं हुई। राजा ईश्वरीनारायणसिंह और उनके कुटुम्ब को तो कई लाभ हुए। अँग्रेज़ों ने उनकी अकर्मण्यता को ही बहुमूल्य समझा।

स्वाधीनता की सोई हुई आग सं० १९४३-४४ के लगभग फिर जगी। यह कांग्रेस के जन्म का काल था। उस समय की कांग्रेस आजकल की कांग्रेस न थी। थोड़े-से अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की संस्था थी। किसी-किसी व्यक्ति विशेष की बात तो और है; पर उस समय के प्रमुख नेता भी स्वराज्य का स्वप्न नहीं देखते थे। सबका ध्येय था सुराज्य, शासन में थोड़ा-सा सुधार, शिक्षित भारतीयों के अधिकार में कुछ वृद्धि, सरकारी कर में कुछ कमी। यह लक्ष्य आज बहुत संकुचित प्रतीत होते हैं; पर उस समय के लिये यह भी बहुत था। जो कांग्रेस उस समय थोड़े-से शिक्षितों की, विदेशी-वेषभूषा-जीवन-परिपाटी के प्रेमियों की संस्था थी, वह आज देश के पीड़ितों और निर्धनों की प्राण हो रही है। जो बड़े दिनों की छुट्टियों में वाद-विवाद के लिये एक फ़ैशनेबुल क्लब थी, वह आज प्राण और सम्पति की आहुति चाहती है, जिसके प्रस्ताव बड़े आदर के साथ सरकार की सेवा में भेजे जाते थे। उसके सामान्य-से-सामान्य सैनिक सरकार की आज्ञाओं की अवहेलना करता है; पर यह सब एक दिन में नहीं हुआ। कालचक्र ने भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को ऐसे साँचों में ढाला कि धीरे-धीरे वह स्थिति उत्पन्न हो गयी जिसे हम आज देख रहे हैं; परन्तु बीज उसी समय, आज से छियालीस वर्ष पूर्व, बोया गया। यदि तब की कांग्रेस न होती, तो अबकी भी कांग्रेस न होती।

कांग्रेस के जन्म से ही बनारस के शिक्षित समुदाय के कतिपय नेताओं की अभिरुचि उस ओर गयी। श्रीरामकाली चौधरी, श्रीछन्नूलाल, श्री वृन्दावनविहारी आदि उस समय के पुराने कार्यकर्ता थे। १९६२ में बनारस में ही कांग्रेस हुई। मुंशी माधोलाल स्वागताध्यक्ष थे। स्वर्गीय श्रीगोपालकृष्ण गोखले सभापति थे। अधिवेशन बड़े मार्के का था; क्योंकि लार्ड कर्ज़न कृत बंग-विच्छेद के बाद यह कांग्रेस की पहली बैठक थी। सम्मेलन बहुत ही सफल रहा और स्वदेशी प्रदर्शनी को भी लोगों ने बहुत पसन्द किया।

बंगाल बनारस का पड़ोसी है; अतः काशी पर उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। बंगाल में जब से हिंसात्मक आन्दोलन का जन्म हुआ, तब से ही काशी पर इसकी छाया पड़ी। कोई इस प्रकार के कामों को भला समझे या बुरा; पर यह तो मानना ही होगा कि हमारी राष्ट्रीय हलचल में इनका भी स्थान है। काशी में भी समय-समय पर इस संबंध में कई गिरफ्तारियाँ होती रही हैं और मुक़दमे चलते रहे हैं। एक बनारस षड्यंत्र केस भी चल चुका है।

राष्ट्र की स्वाधीनता की लड़ाई में राष्ट्र भाषा का भी बड़ा स्थान है। काशी के लिये यह गौरव की बात है कि जिस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने भारत में हिन्दी-प्रचार का इतना लब्ध प्रतिष्ठ काम किया है, उसका जन्म काशी में ही हुआ और जिन लोगों के उद्योग से देश की राष्ट्रीय संस्थाओं में हिन्दी उचित स्थान पा सकी है, उनमें काशी के श्री शिवप्रसाद गुप्त का स्थान बहुत ऊँचा है।

राष्ट्रीय भाव के निर्माण और पोषण में राष्ट्रीय शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। कांग्रेस के समय ही स्व० सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया था। उस समय तो

नहीं ; पर लगभग १२ वर्ष बाद पं० मदनमोहन मालवीय और स्वर्गीया श्रीमती एनीबेसेण्ट के प्रयत्न के फल-स्वरूप हिन्दू विश्व-विद्यालय का जन्म हुआ। विश्वविद्यालय बहुत बड़ी संस्था है ; पर सरकार से सम्बन्ध होने के कारण लोगों की आशाएँ इससे पूरी न हो सकीं। तीन वर्ष बाद १९७७ में महात्माजी के हाथों श्री काशी विद्यापीठ का उद्घाटन हुआ। यह सर्वथा राष्ट्रीय विश्वविद्यालय है। इसके जन्मदाता श्री शिवप्रसाद गुप्त का यह संकल्प है कि स्वराज्य होने पर भी इसका सम्बन्ध तत्कालीन सरकार से न होगा। अपनी थोड़ी-सी वयस में और अपनी थोड़ी-सी शक्ति के अनुसार इसने देश की सेवा करने का जो कुछ प्रयत्न किया है, उसका साक्षी ज़माना है। आज लगभग पौने दो वर्ष से इसकी इमारत पर सरकार का कब्जा है ; इसलिये यद्यपि अधिकांश अध्यापक और छात्र इस समय जेल के बाहर हैं ; पर सारा काम-काज बन्द है।

१९७६ में अमृतसर में जलियान वाला बाग का कुप्रसिद्ध हत्याकाण्ड हुआ। कांग्रेस ने इसके सम्बन्ध में विचार करने के लिए एक उपसमिती नियुक्त की। उपसमिति ने प्रत्यक्ष दर्शियों का साथ लिया और घटनास्थल की जाँच की। उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट तैयार करके उस पर काशी में ही (२० फरवरी को) हस्ताक्षर करके उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने पेश किया। इस कमेटी की बैठक भी काशी में ही (३० मई को) हुई। इसमें और बातों के साथ-साथ यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस का विशेषाधिवेशन किया जाय। यह अधिवेशन कलकत्ते में स्व० लाला लाजपतराय के अधिनेतृत्व में हुआ। इसी में असहयोग का वह सूत्रपात हुआ, जिसने तीन महीने बाद नागपुर में कांग्रेस का कायापलट कर दिया।

असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ से ही काशी ने इस युद्ध में जोरों से भाग लिया है। वर्ष के आरम्भ में ही कई संस्कृत-छात्रों ने सरकारी परीक्षाओं से असहयोग किया और दूसरों को सम्मिलित होने से रोकने के अपराध में जेल गये। प्रिंस आव वेल्स के स्वागत बहिष्कार और स्वयंसेवकों के गैर सरकारी घोषित होने पर कई सौ व्यक्ति जेल गये। लोगों का अनुमान है कि कलकत्ते के बाद गिरफ्तारियों की दूसरी संख्या यहीं थी।

'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग तो बहुत होता है ; पर स्वराज्य का स्वरूप क्या होगा, किसके क्या अधिकार होंगे, शासन कैसे चलेगा, इस पर किसी ने विचार नहीं किया था। काशी के श्री भगवानदासजी इस बात की आवश्यकता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहे थे। कांग्रेस ने भी १९[illegible] में गया में देशबन्धुदास और श्री भगवानदास को यह काम सौंपा। यह दोनों सज्जन काशी में ही इस काम में लगे और यहीं इन्होंने अपनी स्वराज-योजना तैयार की। यह योजना उन मुख्य आधारों में से थी, जिनके सहारे आगे चलकर विख्यात नेहरू-योजना बनी।

स्वराज्य दल के स्थापित होने पर काशी ने उसके दो सदस्यों को व्यवस्थापक सभा में भेजा और प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की आज्ञानुसार स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड पर भी कांग्रेस वालों का प्राधान्य हुआ। १९८३ में स्वराज्यदल के सदस्य कौंसिलों से उठ आये। नये चुनाव की तैयारां हुई। यह विचार उठा कि इस बार एक दल विशेष नहीं, प्रत्युत कांग्रेस की राय से उम्मीदवार खड़े किये जायँ। इस आन्दोलन के नेता स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू थे ; क्योंकि देशबन्धुदास की मृत्यु हो चुकी थी। नयी नीति की घोषणा पहले-पहल देश के सामने काशी में की गयी। स्वर्गीय पण्डितजी ने उस साल बनारस के जिला-सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार किया और इसी मञ्च से अपनी योजना और कार्यशैली तथा नीति को प्रकट किया।

१९८३ में सरकार ने भारतीय शासन-विधान की जाँच पड़ताल करने के लिये गोरे साइमन कमीशन की नियुक्ति की। सारा देश उसकी इस चाल से क्रुद्ध हो गया। १९८४ के अन्त में (जनवरी १९२८) सभी दल के प्रतिनिधियों की एक सभा—आल पार्टीज़ कान्फ़रेंस—तत्कालीन कांग्रेस राष्ट्रपति डाक्टर अंसारी के सभापतित्व में काशी में हुई। इसमें कांग्रेसवालों के अतिरिक्त सर तेजबहादुर सप्रू, श्री चिन्तामणि, श्री सच्चिदानन्दसिंह, श्री विपिनचन्द्र पाल आदि भी सम्मिलित थे। यह निश्चय हुआ कि कमीशन का बहिष्कार किया जाय। यह समारोह इस दृष्टि से अपूर्व था कि असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ होने के बाद पहली ही बार इस प्रकार के विभिन्न दलों के नेता एकत्र हुए थे। कमीशन का बायकॉट देश ने खूब ही किया। काशी

में कमीशन चुपके से शिवरात्रि के दिन लाया गया; पर स्टेशन पर स्वयंसेवक मौजूद थे। वहाँ से राजघाट आकर महाराजा बनारस की बड़ी नाव पर सवार होकर घाटों की सैर करने चला, तो उनके और घाटों के बीच में कांग्रेस वाले एक मोटर-बोट पर साथ-साथ चले। उतर कर विश्वनाथजी के मन्दिर पर पहुँचे, तो वहाँ भी स्वागत के लिये कांग्रेस वाले खड़े थे। काशी ने सर्वदल-सम्मेलन की आज्ञा का पूर्णतया पालन कर दिया।

तीन वर्ष हुए सं० १९८७ में सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ हुआ। यह अभी चार दिन की बात है और हमारे इतिहास का यह अध्याय अभी समाप्त भी नहीं हुआ है। इस बीच में काशी से लगभग ढाई हज़ार पुरुष और कई सौ स्त्रियाँ जेल जा चुकी हैं, तीन व्यक्ति गोली के शिकार हो चुके हैं, हज़ारों रुपये की सम्पत्ति जुर्माने में जा चुकी है, दो इमारतें अब भी सरकारी क़ब्ज़े में हैं। अमीर-ग़रीब, शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों के लोग आन्दोलन में सम्मिलित रहे हैं। पता नहीं देश कहाँ जा रहा है, इन प्रयत्नों का क्या फल होगा। स्वराज्य होगा, देश स्वतंत्र होगा, ऐसा विश्वास तो है; पर यह बात किस दिन होगी, नहीं कह सकते। तब तक यह सन्तोष की बात है कि बनारस स्वतंत्रता की खोज में बराबर तत्पर रहा है और वह न केवल सम्मिलित-मात्र रहा है; परन्तु अग्रसर रहा है। आशा है, वह अब भी अपने इस कर्तव्य का पालन करता रहेगा। इसी में काशी की शोभा है; क्योंकि काशी आर्य-संस्कृति का, जो स्वतंत्रता की नींव पर स्थिर है, भण्डार और अभिभावक है। आर्य जाति की अन्तरात्मा गुलामी से संन्तुष्ट होकर नहीं बैठ सकती। परिस्थिति से लड़कर उसको वश में करना उसका नैसर्गिक धर्म है।

नोट—ऊपर प्रायः सर्वत्र विक्रम संवत् का ही प्रयोग किया गया है। ५७ घटाने से ईसवी सन् मिल सकता है। एकाध स्थलों में कोष्टक में अँग्रेज़ी तारीख़ भी दे दी गयी है।

(३५वें पृष्ठ का शेषांश)

उनकी 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' और 'मैगज़ीन' ने अपने समय में बहुत ही सेवाएँ कीं। जितने लम्बे काल तक 'भारत जीवन' साहित्य क्षेत्र में रहा, उतने काल तक संभवतः बहुत कम पत्र रह पाये होंगे। दैनिक पत्रों के जिस रूप को लेकर 'आज' संपादकीय क्षेत्र में आया, उसका अनुकरण प्रायः बहुत स्थानों में किया गया। इसकी संपादकीय टिप्पणियों का राजनीतिक क्षेत्र में सदा महत्त्व रहा है। संपादन की जो योग्यता श्री० पराड़करजी में है, वह हिन्दी क्या, अन्य प्रान्तीय भाषाओं के भी कम संपादकों में मिलेगी। प्रेमचन्दजी भी संपादन का एक आदर्श स्वरूप लेकर आगे बढ़े हैं और उनके 'जागरण' एवं 'हंस' द्वारा साहित्य की अच्छी सेवा हो रही है।

प्राचीन पुस्तकों के संपादन तथा टीका करने में भी काशी-वासी पीछे न रहे। केशव, तुलसी, बिहारी आदि की पांडित्यपूर्ण टीकाएँ स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी ने की हैं। बिहारी का जो प्रामाणिक संस्करण रत्नाकरजी ने निकलवाया, संभवतः उससे अधिक परिश्रम किसी भी प्राचीन पुस्तक के संपादन में न किया गया होगा। 'जायसी' का संपादन कर एक प्रकार से पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस कवि में पुनः जीवन डाल दिया। विस्मृत जायसी को पुनः साहित्य में महत्व का स्थान प्राप्त हो गया।

इस प्रकार प्रारम्भ से लेकर आज तक के हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काशी नगरी ने साहित्य को अनेक विपन्न परिस्थितियों में उत्साह देकर मार्ग दिखलाया है तथा सब क्षेत्रों में बहुत ही महान् सेवाएँ की हैं।

काशी और हिन्दी-साहित्य

लेखक—श्रीयुत कृष्णशंकर शुक्ल, एम० ए०

हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ भारत के इतिहास के उस धुँधले काल से होता है, जब हिन्दुओं के प्रताप का प्रकाश क्रमशः क्षीण होने लगा था। उस समय हिन्दुओं ने संभवतः अन्तिम बार कुछ वीरता दिखाई और उसके फल-स्वरूप हमारी भाषा में वीर-गाथाओं का प्रारम्भ हुआ। वीर-गाथाओं तथा वीर-काव्यों के रूप में जितने ग्रंथ मिलते हैं, उनकी प्रामाणिकता विवाद-ग्रस्त है। उधर मुसलमानों का आक्रमण तथा मुसलिम राज्य की स्थापना होने लगी, इधर वीर-गाथाओं की परंपरा का नाश। क्रमशः हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के संसर्ग में आने लगे। वर्षों तक कवियों की वाणी मूक रही। कोई ऐसा कवि, जिसकी कृति संचित करने योग्य समझी गई हो, रंग मंच पर न आया। हिन्दू-मुसलमान यद्यपि लौकिक व्यवहार से बाध्य होकर एक दूसरे के संसर्ग में आ रहे थे; परन्तु एक को विजेता होने का अभिमान था, एक को विजित होने पर भी अपनी गौरवपूर्ण अतीत मर्यादा तथा प्रतिष्ठा का ध्यान। आने वाले नव प्राप्त धर्म के उन्माद से भरे थे। पुराने निवासी यह मानने को कभी प्रस्तुत न थे कि अपने धर्म को छोड़ दूसरा धर्म भी हो सकता है। यह सब होते हुए भी धर्म के बाह्याडंबर को महत्त्व देने की अभिरुचि दोनों ओर प्रधान थी। ये अपने चौके, मूर्त्तिपूजा इत्यादि को सात्विक आचार से ऊँचा समझे बैठे थे; उन्होंने समझा था—क़ुर्बानी, ताज़ियादारी, नमाज़ ही वास्तविक धर्म है। मनुष्यता के सामान्य शिष्ट आदर्शों की ओर किसी का ध्यान न था। ऐसे समय लोगों को धर्म के बाह्य-स्वरूप की असारता दिखलाने तथा धर्मों की भिन्नता होते हुए भी सबके अन्तर्गत एक ही मनुष्यता के प्रतिपादन की आवश्यकता हुई। यह आवश्यकता 'काशी' के 'कबीर' की ओजस्वी वाणी ने पूर्ण की। उसने दोनों सम्प्रदायों के अन्ध विश्वास को हटाने का प्रयत्न किया। वास्तविक धर्म आत्मा से सम्बन्ध रखता है, देह से नहीं, इस बात की घोषणा की। कभी-कभी वह अपनी बात कुछ कड़ुए ढंग से तो अवश्य कहता था; पर फिर भी, कुछ क्षुब्ध होते हुए भी, लोग उसकी वाणी सिर नीचा किये हुए सुनते रहे; क्योंकि उसमें सत्यता थी, चरित्र-बल था तथा निष्पक्षता थी। इन्हीं कबीर से संत कवियों की वह परंपरा चली, जिसका प्रयत्न सदा इस बात की ओर रहा कि हिन्दू तथा मुसलमान धर्म के प्रतीकों को छोड़ कर धर्म की आत्मा तक पहुँचे। अस्तु, कबीर एक ओर तो लौकिक सुधार में लगा हुआ था, दूसरी ओर अपनी आत्मा के साक्षात्कार करने में। न जाने कितनी परोक्ष बातों की उसने अनुभूति की, परमात्मा को कैसे-कैसे मधुर तथा आकर्षक रूपों में देखा। इन्हीं अनुभूतियों को उसने अपने काव्य में व्यक्त किया; पर बातें केवल अनुभव करने की थीं, शब्दों-द्वारा व्यक्त करने की नहीं। वह रहस्य को व्यक्त करना चाहता था; पर रहस्य व्यक्त होते ही रहस्य नहीं रह सकता। उसकी वाणी में कुछ अस्पष्टता आई। वह हिन्दी की रहस्यवादी काव्य-धारा का प्रथम उपदेष्टा था।

कहते हैं—और बात ठीक भी है—कि खड़ी बोली का जन्म कहीं मेरठ के आसपास हुआ; परंतु मेरठ के आसपास की भूमि ने खड़ी बोली में कोई योग्य कवि हमें अभी तक नहीं दिया। खड़ी बोली में सर्वप्रथम काव्य-रचना का श्रेय यदि किसी नगर के कवि को प्राप्त है, तो वह काशी के कवि कबीरदास को। कबीर की वाणी से लोग उद्विग्न हुए, क्षुब्ध हुए; पर यह विचार न कर पाये कि जीवन में हमारा कर्त्तव्य क्या है! इधर वह समन्वय का उपदेश दे रहा था, उधर चमकती हुई तलवारें हिन्दुओं के सिर पर मँड़रा रही थीं, जिनके आघातों की कठोरता और भी घोरतम इसलिये हो रही थी कि वे असिवाहक समझे बैठे थे कि हम ईश्वर की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। अपने घर में, अपने देश में, अपने पिता-पितामहों की छतों के नीचे ही हिन्दू परदेशी हो रहे थे, लुट रहे थे, अपमानित हो रहे थे। रावण के अत्याचार का फल दूर दक्षिण में कहीं किसी को भोगना पड़ा होगा; पर उत्तर भारत में तो शान्ति ही रही होगी! वहाँ पंचवटी के आस-पास कहीं राम ने ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखा होगा, यहाँ सर्वत्र ऋषि-सन्तानों का रक्त

बहाया जा रहा था। धर्म मनुष्य की विपत्ति-काल में सहायता करता है, इस पुरातन सिद्धान्त पर विश्वास जमता हुआ प्रतीत नहीं होता था। लोग निराश हो होकर भगवान् की ओर दौड़ते तो अवश्य थे; पर उधर से कोई सांत्वना का संकेत मिलता नहीं दीखता था। आवश्यकता इस बात की थी कि नैराश्य के गर्त्त में धँसती हुई जनता को भगवान् के भक्त-वत्सल रूप का दर्शन कराया जाय। राम कृष्ण के रूपों की धुँधली छाया पंडितों के द्वारा जनता तक कभी-कभी पहुँच जाती थी; पर लोग भगवान् से साक्षात् सम्बन्ध स्थापित करने को व्याकुल हो रहे थे। इन विपत्ति से घिरे मनुष्यों को गोपीवल्लभ से कुछ बहुत आशा न थी। इस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये, लोगों में जीवित रहने भर के लिये श्वास प्रश्वास की क्रिया संचालित करने के लिये, तुलसीदास अवतरित हुए।

यह बात दूसरी है कि 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ अयोध्या में हुआ; पर उनके इस ग्रन्थ का तथा अन्य उत्कृष्ट-से उत्कृष्ट ग्रन्थ-रत्नों का प्रणयन इसी काशी में हुआ। उन्होंने विनय-पत्रिका के रूप में मूक जनता की वाणी भगवान् तक पहुँचाई, तथा शक्ति-शील-सौन्दर्य-समन्वित भगवान् का साक्षात्कार करा, डूबतों को सहारा दिया। इस आश्रय को ग्रहण कर गिरती हुई हिन्दू-जनता फिर अकड़ कर खड़ी हो गई। जीवन में फिर सरसता आने लगी। जिन-जिन महापुरुषों ने उस समय हिन्दुओं की रक्षा करने का प्रयत्न किया, उन्हें जनता ने राम-रूप में देखा। पहले यदि चारों ओर जनता को रावण ही रावण दिखाई पड़ते थे, तो अब दसो दिशाओं में राम भी दिखाई पड़ने लगे। इस रामायण की जीवन-दायिनी धारा पूर्व से प्रवाहित होकर पश्चिम तक गई। विशाल नगरों के बाहर झोपड़ी में रहने वाले कृषकों तक ने इसे अपनाया। एक बार उत्तरापथ रामामृत से तृप्त हो गया।

इसके बाद ब्रज-भूमि में कृष्ण के बालरूप को तथा गोपीवल्लभ को लेकर एक-से-एक श्रेष्ठ कवियों ने सुन्दर काव्यों की रचनाएँ कीं। इन रचनाओं में योग देने वाले साधारण कवियों को यदि हम छोड़ दें, तो कहना होगा कि शताब्दियों तक काशी ने कोई प्रथम श्रेणी का कवि हिन्दी-जगत् को नहीं दिया।

मध्यकाल में रीति की परंपरा चली और कवियों ने रस, अलंकार इत्यादि पर ग्रन्थ रचे। इन ग्रन्थों में कवियों का लक्ष्य शास्त्रीय पद्धति से अलंकारादि का सूक्ष्म विवेचन करना न था। अलंकारों की परिभाषा योंहीं चलते ढंग से दे दी जाती थी। वास्तव में तो कविगण अपनी कविता के चमत्कार-प्रदर्शन का प्रयत्न करते थे। ऐसे बहुत से कलाविदों का पोषण राजाओं के द्वारा होता था। काशिराज भी अनेक कवियों को आश्रय देते आए। विक्रम की १९ वीं के मध्यकाल में काशिराज श्री० उदितनारायणसिंह के यहाँ श्रेष्ठ कवियों का एक अच्छा समाज एकत्र हुआ था। गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, हनुमान इत्यादि कवियों का नाम इस समाज में उल्लेख्य है। गोकुलनाथ, गोपीनाथ, क्रमशः रघुनाथ वन्दीजन के पुत्र एवं पौत्र थे और मणिदेव गोपीनाथ के शिष्य। इन्हीं मणिदेव के पुत्र हनुमान कवीश्वर थे। श्री० उदितनारायणसिंह के आश्रय में गोकुलनाथ, गोपीनाथ एवं मणिदेव ने मिलकर एक बहुत बड़े साहित्यिक अनुष्ठान का संपादन किया। २००० पृष्ठों में सम्पूर्ण महाभारत का अनुवाद इन्होंने किया। इस ग्रन्थ के प्रणयन में—जिससे बड़ा ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य में और नहीं है—५०-६० वर्ष लगे और काशी-नरेश को लाखों रुपये इस पर व्यय करने पड़े। इतना बड़ा ग्रन्थ होने पर भी उसमें कहीं शिथिलता नहीं आने पाई है। परिमार्जित तथा गंभीर भाषा में—जो ब्रज है—सम्पूर्ण ग्रन्थ रचा गया है। पर, एक बात अवश्य है। इस ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न शैलियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं। इसका कारण यही है कि प्रथम तो तीन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने इसकी रचना में योग दिया, दूसरे पचास-साठ वर्ष के लम्बे समय में किसी एक व्यक्ति की शैली में भी परिवर्त्तन होना स्वाभाविक है।

काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रतापनारायणसिंह के आश्रय में भी कवियों की एक टोली रहती थी। इनमें सरदार, नारायण आदि मुख्य हैं। नारायण कवि सरदार के शिष्य थे। इन दोनों गुरु शिष्यों ने मिलकर केशव, सूर तथा बिहारी पर बहुत विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। टीकाओं की भाषा यद्यपि व्यवस्थित नहीं है और स्थान-स्थान पर अलंकारादि के निर्णय में तथा काव्य का तात्पर्य समझने में इन लोगों से भूलें अवश्य हुई; पर उस समय को देख उनका

यह प्रयत्न बहुत प्रशंसनीय है। इन टीकाओं के अतिरिक्त भी सरदार कवि ने तुलसी-भूषण, हनुमत् भूषण, श्रृंगार-संग्रह, राम-रत्नाकर, साहित्य-सुधाकर आदि अनेक ग्रंथों की रचना की।

'वाक्-विलास' नामक पुस्तक, जिसे कुछ लोग भ्रमवश सरदार कवि की रचना समझते हैं, वास्तव में सेवक कवि की है। ये असनी के प्रसिद्ध ठाकुर कवि के पौत्र थे और काशी के रईस देवकीनन्दन के प्रपौत्र हरिशंकर के आश्रित थे। ये बहुत ही उच्च कोटि के कवि थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'वाक्-विलास' भारत-जीवन प्रेस से प्रकाशित हुई थी। ये आशुकवि भी थे। अत्यंत वृद्ध हो जाने पर भी सुन्दर काव्य रचना की सामर्थ्य रखते थे। महाराज बनारस की इन पर बड़ी कृपा थी और एक बार वे स्वयं इनसे मिलने को हरिशंकर के यहाँ पधारे थे। काशी नरेश को इन पर इतना प्रेम था कि इनके बीमार होने पर इन्हें देखने के लिये अपना कोई निजी व्यक्ति प्रतिदिन भेजा करते थे। राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द इनके मित्रों में से थे। एक बार इन्होंने बड़ी गंभीरता से राजा साहब से कहा कि हम पार्लियामेन्ट में एक प्रार्थना-पत्र भेजने वाले हैं। राजा साहब इसका वास्तविक तात्पर्य न समझे और उन्होंने इनसे पूछा कि कहिये कविवर! उस प्रार्थना-पत्र में आप क्या लिखवाने वाले हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि हम इस बात की शिकायत करेंगे कि हमारे आफ़ताब-हिन्द को उन लोगों ने सितारे-हिन्द क्यों कह दिया?

सरदार कवि के ही आसपास मनियारसिंह नाम के एक कवि हुए, जिन्होंने महिम्न भाषा, सौन्दर्य लहरी, हनुमत छब्बीसी इत्यादि की रचना बहुत ही परिमार्जित भाषा में की। इनकी कविता प्रायः देव-पक्ष में है।

इसके बाद दीनदयाल गिरि का नाम आता है। इनका जन्म काशी में गायघाट पर १८५९ में हुआ था। ये पिता के द्वारा 'गिरि' उपाधिधारी महन्तों को समर्पित कर दिये गये थे, जहाँ के शिष्य होने से ये बाबा दीनदयाल गिरि नाम से प्रख्यात हुए। इनके विषय में पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है—'इनकी-सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की नहीं हुईं। यद्यपि इन अन्योक्तियों के भाव अधिकांश संस्कृत से लिये हुए हैं; पर भाषा-शैली की सरसता और पद-विन्यास की मनोहरता के विचार से वे स्वतंत्र काव्य के रूप में हैं। बाबाजी का भाषा पर बहुत ही अच्छा अधिकार था। इनकी-सी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित भाषा बहुत थोड़े कवियों की है।' दीनदयाल गिरि बाबू गोपालचन्द्र के मित्रों में से थे, जो भारतेन्दु के पिता थे। इन बाबू गोपालचन्द्रजी ने गिरिधारन, गिरधरदास इत्यादि नामों से कविता की। भारतेन्दुजी ने लिखा है—

जिन श्री गिरधरदास नैं रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्री हरिचन्द को को न नवावै सीस?

बाबाजी के प्रसिद्ध ग्रंथ अनुराग बाग, दृष्टांत-तरंगिणी और अन्योक्ति-कल्पद्रुम हैं और बाबू गोपालचन्द्र के, जरासंध-वध (अपूर्ण), भारती भूषण, रस रत्नाकर आदि। गोपालचन्द्रजी ने वाल्मीकि रामायण का अनुवाद भी पद्य में किया है।

पिछले खेवे के इन कवियों का काल समाप्त होने से पहले ही देश में अँग्रेजी राज्य प्रतिष्ठित हो चुका था। अँगरेजों ने भ्रमवश अथवा राजनैतिक चातुर्य से प्रेरित हो कर उर्दू को सरकारी भाषा मान लिया था। मुख्य स्थान यद्यपि अँगरेजी का ही था; पर नीचे के दफ्तरों इत्यादि का सब काम उर्दू में होने लगा था। हिन्दी का पठन-पाठन कुछ पुराने ढंग के लोग घरों में बैठे-बैठे किया करते थे। शिक्षा-विभाग में भी अँगरेजी को प्रधानता दी गई। इसका उद्देश्य तो यही था कि अँगरेजी बोलने वाले कुछ लोग प्रस्तुत किये जावें, जो विदेशियों और देशियों के बीच भाव विनिमय में सहायता दें; पर मनुष्यों की सोची हुई बातें सदा वैसे ही ठीक नहीं उतरतीं। अँगरेजी शिक्षा यद्यपि भारतीयों की उपकार-दृष्टि से नहीं चलाई गई थी; परन्तु वास्तव में उससे लाभ ही हुआ। अँगरेजी के विस्तृत साहित्य के सम्पर्क में आने से शिक्षित समाज को दृष्टि-व्यापकता प्राप्त हुई; पर इन नवीन भावनाओं की अभिव्यक्ति साहित्य में होने के लिये अभी कुछ और समय की अपेक्षा थी। नये-नये भाव कवियों के भाव-क्षेत्र तक पहुँचने में कुछ समय अवश्य लेते हैं। इसी समय के आस-पास शिक्षा-विभाग में श्री शिवप्रसाद सितारे हिन्द की नियुक्ति हुई। ये बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न, दुनिया के ढंग को

जानने वाले, व्यवहार-सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने देखा कि जब हिन्दी-भाषा का चतुर्दिक बहिष्कार हो रहा है, तो ऐसी अवस्था में 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धंत्यजति पंडितः' वाली नीति से काम लेना उचित होगा। ऐसा समझ मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए—जिसमें हिन्दी के ढाँचे में उर्दू के शब्दों को पर्याप्त स्थान था—उन्होंने एक सर्व-ग्राह्य भाषा-शैली की प्रतिष्ठा की। उन्होंने स्वयं ग्रंथ लिखे और दूसरों को भी प्रेरित कर ग्रन्थ लिखवाये। उनका अप्रचलित उर्दू-पदावली की ओर कभी-कभी अधिक झुक जाना कुछ लोगों को नहीं रुचा; परन्तु यह तो सबको मानना पड़ेगा कि हमारे प्रान्त में उखड़ी हुई हिन्दी के पैर जमाने का सम्पूर्ण श्रेय इन्हीं महाशय को प्राप्त है। आगे चलकर हिंदी के प्रचार की दृष्टि से अथवा दफ्तरों में स्थान दिलाने की दृष्टि से जो आयोजन किये गये, उनकी नीव इन्हीं के द्वारा डाली गई।

काव्य-क्षेत्र में अभी खड़ी बोली की पुकार नहीं उठी थी! पर इतना तो प्रतीत होता ही था कि जिस तंग कठघरे के भीतर आबद्ध होकर व्रजभाषा बैठी हुई थी, उस स्थान से वह लोगों की रागात्मक प्रवृत्ति के अनुरंजन में अधिक फलवती नहीं हो सकती थी। भारतेन्दुजी ने व्रजभाषा का भी परिष्कार किया। प्राचीन अप्रयुक्त शब्दों का बहिष्कार कर सर्व प्रचलित मधुर तथा बोधगम्य शब्दों का प्रयोग कर, जहाँ उन्होंने व्रजभाषा से एक ओर कूड़ा-करकट दूर किया, वहाँ दूसरी ओर उसे संस्कार के द्वारा परिमार्जित कर फिर यौवन प्रदान भी किया। यह तो भाषा के स्वरूप की बात हुई, भाव-क्षेत्र में भी भारतेन्दुजी ने बहुत सुधार का काम किया। शृङ्गार इत्यादि रस की वाच्यार्थ प्रधान, नग्न स्वरूप वाली जो कविता लोगों के सामने आती रही, वह उनकी परिष्कृत रुचि का उतना अनुरंजन न कर सकी। नवीन शिक्षा के प्रभाव स्वरूप लोग एक ओर उर्दू की गंभीर वेदनात्मक कविता से परिचित हो रहे थे, दूसरी ओर अँगरेजी की लाक्षणिक प्रणाली से। इस नवीन लाक्षणिक प्रणाली को भारतेन्दुजी ग्रहण न कर सके। यह कार्य भी काशी के दो कवियों के द्वारा आगे चलकर संपादित होने को था। व्रजभाषा क्षेत्र में रत्नाकर-जी के द्वारा तथा खड़ी बोली के क्षेत्र में 'प्रसाद जी' के द्वारा। पर, वियोगजन्य विकलता की गंभीर व्यंजना—जिससे उर्दू-साहित्य ओतप्रोत है—भारतेन्दुजी ने अपने काव्य में ली।



स्व० भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी

गद्य-क्षेत्र में भी भारतेन्दुजी को भाषा का वह खिचड़ी रूप पसन्द न आया। उन्होंने संस्कृत की पदावली की ओर झुकता हुआ एक रूप अपने लिये चुना। आज-कल गद्य में जिस भावावेश वाली शैली का दर्शन हम वियोगी हरि इत्यादि की पुस्तकों में देखते हैं, उसके भी प्रथम प्रवर्तक भारतेन्दुजी ही थे। इस प्रकार ये दोनों व्यक्ति—राजा शिवप्रसाद एवं भारतेन्दु—आधुनिक युग के निर्माता कहलाने योग्य हैं। राजा साहब का प्रयत्न भी कम श्लाघ्य

नहीं है ; क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी-भाषा को स्वीकृति दिलवाने के लिये उन्हींने प्रयत्न किया।

भारतेन्दुजी के सहयोगियों में भी कई व्यक्ति उल्लेख करने योग्य हैं, जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय ढंग से साहित्य-सेवा की। ऐसे लोगों में अम्बिकादत्त व्यास, रामकृष्ण वर्मा आदि सज्जन हैं। हरिश्चन्द्रजी के ही समय से काशी में साहित्यिक पत्रों की स्थापना हुई, जिसका क्रम विकास को प्राप्त होता हुआ इस समय प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुका है। इसका उल्लेख फिर आगे चल कर किया जायगा।

ब्रजभाषा में कविगण नवीन तथा प्राचीन प्रणालियों के अनुसार कविताएँ करते रहे ; पर धीरे-धीरे यह अनुभव हो रहा था कि ब्रजभाषा अपने स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए न तो नवीन लाक्षणिकता तथा मूर्त्तिमत्ता की आकांक्षा की पूर्ति में सहायक हो सकेगी, न नवीन-से-नवीन भावों के ग्रहण करने में। उधर खड़ी बोली मैदान में उतर चुकी थी और अपनी खड़खड़ाहट से लोगों के कान खड़े कर रही थी। ब्रजभाषा धीरे धीरे पीछे पड़ती जाती थी। ऐसे समय में रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा की अवर्णनीय सेवा की। भारतेन्दुजी की गंभीर व्यंग्यात्मक शैली को उन्होंने और भी आगे बढ़ाया और 'उद्धव शतक' ने वियोगजन्य विकलता की विवृति की जो प्रतिष्ठा, की वह आश्चर्य में डाल देने वाली है। एक ओर मुहाविरों तथा लोकोक्तियों को योग दे, दूसरी ओर नवीन मूर्त्तिमान प्रणाली का अनुसरण कर, उन्होंने ब्रजभाषा को हमारे पास ला कर खड़ा कर दिया। यह बात दूसरी है कि खड़ी बोली



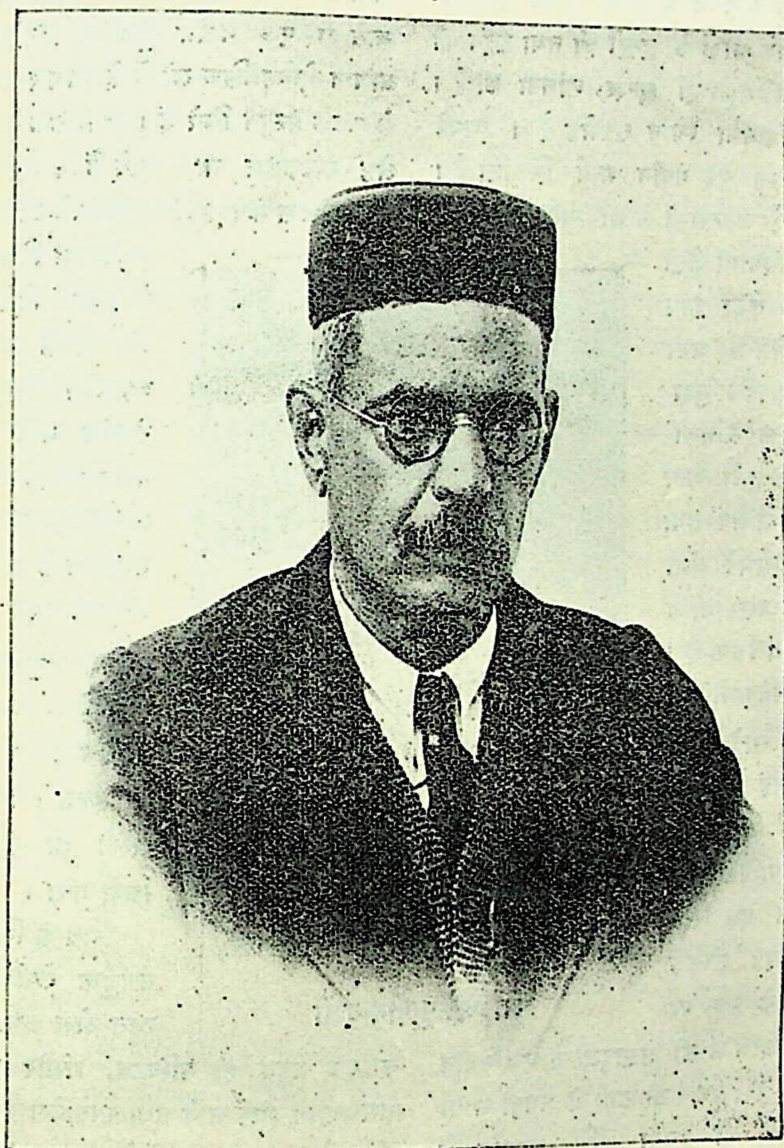
बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद'जी

के प्रवाह में हम बहुत दूर तक पहले ही बह चुके थे और हमने फिर पीछे लौटना उचित न समझा ; परन्तु रत्नाकरजी के प्रयत्न की प्रशंसा करने में इन सब कारणों से हमें पीछे न रहना चाहिये। केवल यही बात नहीं है कि रत्नाकरजी ने अपने को पद्माकर या घनानन्द से भिन्न दिया ; वास्तव में उन्होंने दिखा दिया कि ब्रजभाषा में कितनी शक्ति है, तथा अयोग्य हाथों में पड़ कर भाषा जिस कलंक को पा रही थी, उसका परिमार्जन किया। रत्नाकरजी जिस समय क्षेत्र में थे, उसी समय हरिऔधजी, प्रसादजी तथा रामचन्द्रजी शुक्ल ने ब्रजवाणी की उपासना की। कुछ काल तक उनके अनुष्ठान में योग दिया। बाद में हरिऔधजी तथा प्रसादजी भाषा के दो भिन्न-भिन्न रूप लेकर खड़ी बोली लिये हुए मैदान में उतरे।

अब तक खड़ी बोली काव्य-सिंहासन पर अपने पूर्ण प्रताप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। यह वह समय था, जब बँगला में नवीन प्रकार की कविता का प्रारंभ हो चुका था। बँगाल-प्रान्तीय इस कविता पर अँगरेजी का बहुत प्रभाव था। इन नवीनताओं को हिन्दी वालों ने भी अपनाना चाहा। कुछ लोग पड़ोस की भाषाओं से पदावली चुराने में लगे, कुछ ऐसे भावों की व्यंजना करने में, संभवतः जिनको वे स्वयं भी नहीं समझते थे। हिन्दी के लिये यह भी विपत्ति का समय था। भिन्न-भिन्न भाषाओं से प्रभावित हो कर नवीन लेखक हिन्दी के स्वरूप को विकृत करने में लगे हुए थे। इन नवीन भावनाओं का बहुत ही संयत मार्मिक रूप लेकर 'प्रसादजी' हमारे सामने आये। आधु-

निक रहस्यवाद के नाम से पुकारी जाने वाली कविता के प्रवर्त्तक यही हैं। यह कहने का यह भाव नहीं है कि आगे आने वाले कवियों ने उनका अनुकरण किया। अनेक सज्जन अपनी-अपनी विशेषताओं को लेकर ही सामने आये हैं; पर इस मार्ग की ओर सर्वप्रथम अग्रसर होने वाले प्रसादजी ही हैं। कुछ सज्जन उन्हें रहस्यवादी कवि इसीलिये नहीं मानते कि उनकी कविता का अर्थ लोगों की समझ में आ जाता है और कुछ लोगों के अनुसार अर्थ की अस्पष्टता भी इस नवीन 'वाद' की विशेषता है। कुछ लोग पद्य में और कभी-कभी गद्य में भी भयानक चीजें ले-लेकर उतरने लगते हैं। यदि नम्रता-पूर्वक उनसे पूछा जाता है कि भगवन्! आपकी इन चीजों का अर्थ क्या है? तो वे पूछनेवालों पर मुसकुरा देते हैं और बाद में गंभीर मुद्रा धारण कर लेते हैं।

हरिऔधजी ने भी खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में बहुत ही आदर्श कार्य किया है। इनकी प्रवृत्ति तत्समता की ओर अधिक रहती है; अतः साधारण पाठकोंके लिये इनकी भाषा कुछ क्लिष्ट हो जाती है 'प्रिय-प्रवास' नाम का एक बहुत ही सुन्दर काव्य इन्होंने लिखा है। फिर उसके बाद तो वे मुहावरों को पकड़-पकड़ कर पद्यों में ठूँसने लगे। खड़ी बोली के अग्रगण्य कवियों में इनका प्रमुख स्थान है।



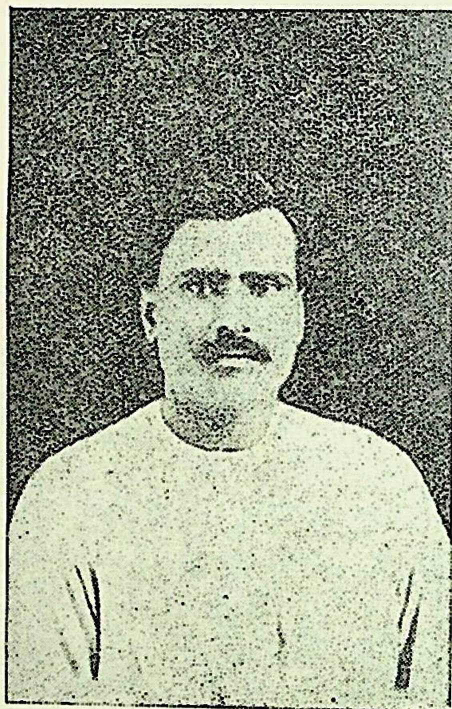
रा० ब० बाबू श्यामसुन्दरदासजी

इस नवीन क्षेत्र में और भी बहुतेरे नवयुवक कवि उतर चुके हैं, जो अपनी योग्यता तथा प्रतिभा के अनुसार भविष्य में साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बनावेंगे। कुछ विषयों की चर्चा ऊपर न हो सकी थी, उनका उल्लेख यहाँ कर देना उचित होगा।

उपन्यास-क्षेत्र में मौलिकता को लेकर आने वाले देवकीनन्दन खत्री थे। इनके ऐयारी उपन्यास भी हिन्दी-प्रचार में बहुत सहायक हुए। इसके बाद पंडित किशोरीलाल गोस्वामी का नाम आता है। संख्या

की दृष्टि से गोस्वामीजी का स्थान संभवतः सर्वप्रथम होगा। हरिऔधजी ने भी 'ठेठ हिन्दी का ठाट' तथा 'अधखिला फूल' में अपनी औपन्यासिक प्रतिभा का ठाट दिखाया। उपन्यास-क्षेत्र में प्रेमचन्दजी के उतरते ही नवीनता आई। ये हिन्दी के उच्च कोटि के प्रथम उपन्यास-लेखक हुए। मानसिक भावों के द्वन्द्वों की तथा हृदय की भावनाओं की इन्होंने बहुत ही सुन्दर व्यंजना की है। चरित्र चित्रण में भी इनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। आपने आख्यायिका-क्षेत्र में भी एक नवीन मार्ग निकाला है। आपकी आख्यायिकाएँ उपन्यासों से भी अधिक मार्मिक होती हैं। उपन्यासोपयोगी जैसी व्यावहारिक भाषा को लेकर आप आये हैं, वैसे हिन्दी-क्षेत्र में अभी कोई लेखक आ न सका। मुहावरों, मार्मिक उपयुक्त उक्तियों इत्यादि की योजना के द्वारा आप भाषा के एक बहुत सजीव तथा मधुर रूप को लेकर सामने आते हैं। 'कंकाल' लिखकर प्रसादजी ने भी इस क्षेत्र में पदार्पण किया है। कंकाल के विषय में विद्वानों में मतभेद है; पर इसमें सन्देह नहीं कि अपने ढंग की वह अनोखी मौलिक रचना है। बहुत ही स्निग्ध तथा मादक भाषा पर आपका अपूर्व अधिकार है। इस स्निग्धता की योजना आप संस्कृत की कोमल पदावली के बल पर करते हैं। आख्यायिका-क्षेत्र में भी प्रसादजी ने एक नवीन शैली की प्रस्तावना की है; पर कभी-कभी ये अपनी भाषा के सौन्दर्य के द्वारा पाठक को इतना अधिक अनुरक्त कर देते हैं कि वह इनकी आख्यायिका के पात्रों की ओर भलीभाँति नहीं देख पाता। नवयुवकों में विनोदशंकरजी व्यास का एक विशेष स्थान है। आपकी प्रतिभा के विकास की और भी आशा है।

नाटक के क्षेत्र में भी काशी-वासियों ने सदा से योग दिया है। हरिश्चन्द्रजी ने छोटे-बड़े अनेक नाटक लिखे, जिनमें बहुत से खेले भी गये। राधाकृष्णदास के राणाप्रताप नाटक की कुछ दिनों तक बहुत धूम रही। इसके बाद एकाध नाटक निकलते ही रहे, जिनका उच्च साहित्यिक दृष्टि से कुछ बहुत महत्त्व का स्थान नहीं था। प्रसादजी के नाटक-क्षेत्र में आते ही एक नवीन युग का प्रारंभ होता है। आपने प्राचीन ऐतिहासिक खोजों के आधार पर अनेक उच्च कोटि के नाटक प्रस्तुत किये हैं। अभी तक आप हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं; परन्तु हिन्दीवालों की अवस्था उस कपड़ा सिलवाने वाले की तरह है, जिसने अपने लड़के का बिना सिर दिखाये दर्जी से उसके लिये टोपियाँ सिलवाईं और छोटी होने पर उसे फूहड़ बताया। हिन्दी में अपना कोई रंगमंच नहीं है; पर जब कोई नाटककार अपने नाटक लेकर सामने आता है, तो हिन्दी वाले बड़ी गंभीरता से कह देते हैं कि नाटक अभिनय करने योग्य नहीं है। इसी प्रथा के अनुसार प्रसादजी पर भी यह दोष लगाया जाता है कि उनके नाटक रंगमंच पर खेले नहीं जा सकते; पर उनके नाटकों को खेलने का कभी प्रयत्न भी नहीं किया गया।



श्री अन्नपूर्णानन्दजी

गद्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भी उपर्युक्त लेखकों में से बहुतों ने बहुत ठोस काम किया है। निबन्धों का एक बहुत ही परिष्कृत, गंभीर स्वरूप लेकर पंडित रामचन्द्रजी शुक्ल आये तथा भावावेश की प्रतीकात्मक शैली की श्री राय कृष्णदासजी ने 'साधना' में अद्भुत साधना दिखाई है। गद्य-क्षेत्र में रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने भी बहुत काम किया है। भाषा-विज्ञान आदि नवीन विषयों पर ग्रन्थ लिखने की परिपाटी का पथ-प्रदर्शन आप ही ने किया है। श्री सम्पूर्णानन्दजी ने राजनीति पर सुन्दर पुस्तकें प्रस्तुत की हैं। और इन्हीं के भाई अन्नपूर्णानन्दजी

ने साहित्य के एक बहुत ही आवश्यक अंग की पूर्ति अपनी हास्य-रस की पुस्तकों के द्वारा की।

किसी भी साहित्य के लिये सूक्ष्म दृष्टि-संपन्न समालोचकों की आवश्यकता होती है। हिन्दी में समालोचना का आरम्भ द्विवेदीजी के साहित्य-क्षेत्र में उतरते ही होगया था। उन्होंने स्वयं समालोचनाएँ लिखीं तथा उनके प्रभाव में रहनेवाले कई लेखकों ने भी छोटे-छोटे समालोचनात्मक निबन्ध 'सरस्वती' में प्रकाशित कराये। ये सब समालोचनायें कवि की कृतियों के अंतःस्थल में प्रवेश कर उनकी कला-विषयक विशेषताओं के उद्घाटन में समर्थ न हो पाईं। बहुत दिनों से एक गंभीर समालोचक की आवश्यकता थी। यह पूर्ति भी काशी-क्षेत्र में ही पंडित रामचन्द्र शुक्ल-द्वारा पूरी हुई। आप समालोचना का एक बहुत ही उच्च आदर्श लेकर सम्मुख आये। जायसी, सूर, तुलसी इत्यादि पर आपकी समालोचनात्मक कृतियाँ प्रसिद्ध ही हैं। इधर कुछ दिनों से साहित्य-क्षेत्र में 'छायावाद' के नाम से बहुत ही मनमानी हो रही थी। एक अस्पष्ट 'वाद' का आश्रय ग्रहण कर न-जाने कितने अपरिपक्व-बुद्धि लेखक अपने को महाकवि सिद्ध करने पर तुले हुए थे। इस विषय पर भी शुक्लजी ने "काव्य में रहस्यवाद" नाम की एक गवेषणापूर्ण पुस्तक लिख कर साहित्य में फैलती हुई उच्छृंखलता को नियंत्रित किया। जो कवि वास्तव में कुछ गंभीरता रखते थे, वे तो मैदान में अवश्य रहे; पर कवियों का स्वाँग भरनेवाले बहुत से लोग मैदान से इधर-उधर हट गये। कम-से-कम प्रतिदिन अनिमंत्रित नये-नये कविय का ताँता तो कुछ काल के लिये अवश्य टूटा। इस पुस्तकों के द्वारा साहित्य-क्षेत्र से एक बहुत बड़ी धोखा-धड़ी दूर की गई। हिन्दी-क्षेत्र में इतना प्रभाव डालने वाली कोई भी गद्य-पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। शैली, कथा-मार्मिकता की दृष्टि से भी इस पुस्तक का स्थान संभवतः सर्वश्रेष्ठ ही ठहरेगा।

अनुवाद-क्षेत्र में भी काशी ने प्रारम्भ ही से योग दिया है। 'मुद्राराक्षस' इत्यादि ग्रन्थों का अनुवाद कर जो सिलसिला भारतेन्दुजी ने चलाया था, वह बराबर चलता रहा। प्रायः सभी लेखकों ने बँगला, मराठी, गुजराती तथा अँगरेजी भाषा के नाटक-उपन्यास आदि के अनुवाद प्रस्तुत किये। अनुवाद करने की बहुत ही अनोखी शक्ति लेकर बाबू रामचन्द्र वर्मा ने अपना साहित्यक जीवन प्रारम्भ किया। जितनी भिन्न-भिन्न भाषाओं से आपने अनुवाद किये, उतनी से करने में कोई भी अनुवादक अब तक सफल न हुआ। आपके अनुवाद भी उच्च कोटि के होते हैं। अन्य समुन्नत भाषाओं के ग्रन्थ-रत्नों से हिन्दी-भाषियों को परिचित कर आपने साहित्य का बहुत ही उपकार किया। कई पुस्तकों के गद्य तथा पद्य में अनुवाद पं॰ रामचन्द्रजी शुक्ल ने भी किये हैं। आप अनुवाद के एक बहुत ही उच्च आदर्श को सम्मुख रखते हैं। जितने सच्चे अनुवाद आपके हुए हैं, उतने बहुत कम अनुवादकों के हुए होंगे। पं॰ केशवप्रसादजी मिश्र का मेघदूत का अनुवाद बहुत खरा उतरा है। उक्त पुस्तक के किसी अनुवाद को अभी तक इतनी सफलता नहीं मिली। हरिऔधजी एवं प्रेमचन्दजी ने भी अनेक पुस्तकों के अनुवाद कर इस क्षेत्र में योग दिया है।

काशी की नागरी प्रचारिणी-सभा का स्थान भी हिन्दी-साहित्य में बहुत गौरव-पूर्ण है। हिन्दी में शब्द-कोष, वैज्ञानिक कोष, भाषा तथा साहित्य के इतिहास तथा व्याकरण की पुस्तकों की रचना इसी सभा के द्वारा तथा इसी की प्रेरणा से हुई। अनेक प्राचीन पुस्तकों की खोज से हिन्दी-साहित्य के लुप्त प्राय प्राचीन अंश पर बहुत प्रभाव पड़ा है। अनेक कवियों के जीवन पर भी सभा की खोजों से बहुत ही प्रकाश पड़ा है। सभा के द्वारा जो सामग्री प्रस्तुत की गई उसके फल-स्वरूप पं॰ रामचन्द्र शुक्ल तथा बाबू श्यामसुन्दरदास के इतिहास प्रस्तुत किये गये। शुक्लजी के इतिहास प्रस्तुत करने के बाद इस क्षेत्र में एक बाढ़-सी आई और शुक्लजी की पुस्तक की प्रतिध्वनि काशी, प्रयाग तथा और अनेक स्थानों में भी सुनाई दी।

देश-पर्यटन पर भी काशी के लेखकों ने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं, जिनमें बाबू शिवप्रसाद गुप्त की 'पृथ्वी-प्रदक्षिणा' तथा पं॰ रामनारायण मिश्र और बाबू गौरीशङ्करप्रसाद की 'योरप में ६ मास' नामक पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। इन्हीं पं॰ रामनारायण मिश्र ने रानाडे की एक गवेषणापूर्ण जीवनी—बहुत दिन हुए—लिखी है।

जिस प्रकार और-और क्षेत्रों में भारतेन्दुजी ने पथ-प्रदर्शक का काम किया, उसी प्रकार संपादन-क्षेत्र में भी।

(शेषांश २७वें पृष्ठ के नीचे)

काशी के स्कूल

लेखक—श्रीयुत चन्द्रमौलि सुकुल, एम. ए., एल-टी.

मुक्ति-जन्ममहि जानि, ज्ञानखानि अघहानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥

भगवान् शंकर परा तथा अपरा विद्याओं के स्वामी हैं—'ईशानः सर्व-विद्या नामीश्वरः' (वैदिक मंत्र का भाग) और वे इस वाराणसीपुरी में श्रीविश्वनाथ रूप से सदा विराजमान रहते हैं; अतः इस पुण्य नगरी का ज्ञान खानि होना सर्वथा उचित ही है। अपरिमित समय से काशी का पाण्डित्य विश्व-विदित रहा है। जिस व्यक्ति की शिक्षा काशी में हुई, वह 'काशी का पढ़ा हुआ' कह कर सर्वत्र ही प्रतिष्ठास्पद हो गया। जिस किसी को किसी शास्त्र में प्रकाण्ड पण्डित बनने की इच्छा हुई, उसकी मनोऽभिलाषा काशी ही में आकर पूर्ण हुई।

यद्यपि उपर्युक्त वर्णन संस्कृत की शिक्षा ही के लिये अधिकतर लागू है; तथापि यहाँ के लोगों ने अन्य प्रकार की शिक्षाओं के लिये उपेक्षा नहीं की। पहले-पहल जब हिन्दुस्तानियों को अँगरेज़ी-पढ़ाने के विषय पर विचार होने लगा, तो यहाँ के लोगों ने पाँव पीछे नहीं हटाया। उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था। मीमांसा इस बात की थी कि हिन्दुस्तानियों को अँगरेज़ी-शिक्षा देने से हानि होगी या लाभ होगा। विख्यात मैकाले साहब प्रतिकूल थे; उनका विचार था, कि अँगरेजी-शिक्षा पाकर भारतीय जनता स्वच्छन्द तथा उच्छृंखल हो जायगी और शासन में अड़ंगे डालेगी। कुछ शासकों का मत था, कि अँगरेज़ी पढ़ जाने पर हिन्दुस्तानी लोग थोड़े ही वेतन पर क्लर्की (मुहर्रिरी) का काम कर सकेंगे, और व्यय में बहुत बचत होगी, संस्कृत के विद्वान् धर्म के नाम पर अँगरेज़ी-शिक्षा के विरोधी थे; उनकी सम्मति थी कि 'न वदेत् यामिनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि' अर्थात्—मरता हुआ प्राणी यदि यवन-भाषा के शब्दोच्चारण-मात्र से जी सकता हो, तो भी उसे उन शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिये। उधर बंगाल के प्रसिद्ध नेता बाबू राममोहनराय प्राणपण से इस उद्योग में थे कि भारतवर्ष में अँगरेजी-शिक्षा की नींव डाली जाय। उन्हें अपने कार्य में सफलता भी मिली। लोगों की रुचि इधर आकृष्ट हुई और अँगरेजी शिक्षा का प्रचार इस देश में हो गया।

उस समय, और उससे कुछ पहले, ईसाई पादरी अपना धर्म प्रचलित करने के लिए भारतवर्ष में आ चुके थे। अपनी इस नीति के अनुसार कि जनता के साथ भलाई करके उसके मन पर अपना अधिकार करना चाहिये, उन पादरियों ने विशेष-विशेष महत्त्व के स्थानों पर छोटे-छोटे स्कूल और औषधालय खोले थे। काशी में भी एक ऐसी संस्था खुल चुकी थी।

बंगाल-प्रान्त के एक नरेश, जिनका नाम महाराजा जयनारायण घोषाल था, रुग्ण रहा करते थे; उनका परिचय काशी के पादरी साहब से हो गया, जिनकी दवा और दुआ से महाराजा को बहुत लाभ हुआ; अतः उन्होंने कुछ रुपया पादरी साहब को इसलिए दिया कि वे उनके नाम से काशी में एक स्कूल अँगरेजी-शिक्षा के लिए खोलें। फलतः काशी का जयनारायण-स्कूल सन १८१८ ई० में स्थापित किया गया। यह काशी का सबसे पुराना स्कूल है।

इस स्कूल की स्थापना से कोई बीस वर्ष पूर्व ही ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की ओर से बनारस-संस्कृत-कॉलेज नाम की सरकारी संस्था स्थापित हो चुकी थी, और समय पाकर उसी संस्था के लगाव में अँगरेजी पढ़ाने के लिए क्वींस कॉलेज स्थापित हुआ। जब से काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय खुला, तब से सरकार ने क्वींस-कालेज के बी० ए०, एम्० ए० आदि दर्जे तोड़ दिये और उसमें इण्टरमीडियट परीक्षा तक की शिक्षा का प्रबन्ध रक्खा।

शहर के उत्तरी भाग में लंडन मिशन वाले ईसाइयों ने लंडन-मिशन हाईस्कूल खोला, अब वह स्कूल कटिंग महादेव के नाम से 'कटिंग मेमोरियल हाई स्कूल' कहलाता है।

शहर में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के नाम से हरिश्चन्द्र हाई स्कूल खोला गया।

शहर ही में आर्यसमाज के उद्योग से दयानन्द ऐंग्लो-वर्नाक्युलर हाई स्कूल खोला गया।

बंगाली टोला हाई स्कूल नामक स्कूल बंगालियों ने

उद्योग से पहले ही चल रहा था; परन्तु उसमें संयुक्त प्रान्तीय छात्रों की अच्छी संख्या होने के कारण पढ़ाई बंगाली भाषा द्वारा न हो सकती थी। चूँकि काशी में बंगालियों की बस्ती बहुत है, उनके अनेकों लड़के ऐसे भी थे, जो हिन्दी नहीं समझ सकते थे, उन्हें हिन्दी-द्वारा शिक्षा देने में बड़ी कठिनता पड़ती थी। इस कठिनता के दूर करने के लिए बा० चिन्तामणि मुकरजी ने जो स्वयम् ही अध्यापक थे, बड़े उद्योग से एंग्लो बंगाली हाई स्कूल खोला, जिसमें आदि से अन्त तक बंगाली भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाती है।

सनातन-धर्म को लक्ष्य करके पं० मदनमोहन शास्त्री ने सनातन-धर्म विद्यालय खोला, जिसमें पहले कक्षा ८ तक की शिक्षा होती रही; अब वह हाई स्कूल हो गया है।

भिनगा नरेश, श्रीमान् महाराजा उदयप्रतापसिंह ने अपने धन से बरना नदी के पार, कचहरी से आगे, शिवपुर के रास्ते में एक बहुत बड़ी संस्था खोली। उसका स्कूल हिवेट क्षत्रिय हाई स्कूल कहलाता है और कॉलेज का भाग उदयप्रताप-कॉलेज कहलाता है। दोनों भागों में क्षत्रियों के अतिरिक्त और किसी जाति के विद्यार्थी का प्रवेश नहीं होता।

स्वर्गीया श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कमच्छा में सेंट्रल हिन्दू स्कूल और सेंट्रल-हिन्दू कॉलेज नामक संस्थाएँ खोली थीं। उनमें से कॉलेज तो काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्रधान केन्द्र, नगवा में चला गया और स्कूल अपनी पुरानी जगह पर स्थित है।

सेंट्रल हिन्दू स्कूल का अंगरूप एक बालिका-विद्यालय भी सेंट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल के नाम से स्थापित हुआ था। वह भी कमच्छा में है और दर्जा १० तक की शिक्षा देता है।

उन्हीं देवी ऐनी बेसेंट तथा उनके साथियों के उद्योग से कमच्छा ही में थियोसाफ़िकल सोसाइटी के विस्तृत हाते में थियोसाफ़िकल नेशनल हाई स्कूल (लड़कों के लिए) थियोसाफ़िकल गर्ल्स् स्कूल (लड़कियों के लिए), और थियोसाफ़िकल विमेन्स कॉलेज (स्त्रियों के लिए, इंटरमीडियट कक्षा तक) विद्यमान हैं।

अभी कुछ ही वर्षों से म्यूनिसिपल हाई स्कूल नामक एक स्कूल बनारस की म्युनिसिपैलिटी की ओर से कचहरी के पास खुला है।

उपर्युक्त सभी संस्थाएँ हाई स्कूल या इंटरमीडियट कॉलेज हैं। हाई स्कूलों में दशम कक्षा तक की शिक्षा होती है। इनके अतिरिक्त सेंट्रल काशी इंस्टीट्यूट, गुर्जर पाठशाला, अग्रवाल समाज स्कूल आदि कई संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें कक्षा ८ (अँग्रेज़ी मिडिल) तक की शिक्षा दी जाती है।

'काशीअंक' में काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय विषयक कोई स्वतन्त्र लेख अवश्य ही होगा; अतः हम उसके विषय में नहीं लिख रहे हैं।

उपर्युक्त हाई स्कूलों और इंटरमीडियट कॉलेजों में से अधिकांश में हाई स्कूल ऐंड इंटरमीडियनट बोर्ड द्वारा स्थापित हाई स्कूल परीक्षा और इंटरमीडियट परीक्षा होती है; परन्तु सेंट्रल हिन्दू स्कूल, सेंट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, थियोसाफ़िकल नेशनल हाई स्कूल, थियोसाफ़िकल गर्ल्स स्कूल में काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित ऐडमिशन परीक्षा होती है; एवम् थियोसाफ़िकल विमेन्स कॉलेज में उक्त विश्वविद्यालय की इंटरमीडियट परीक्षा होती है। ये सभी संस्थाएँ सरकार-द्वारा स्वीकृत हैं; अर्थात्—इनमें पढ़कर और इनकी परीक्षाएँ पास करके, जो प्रमाणमात्र मिलता है, उसका प्रमाण गवर्नमेंट मानती है।

उपर्युक्त संस्थाओं में से क्वींस कॉलेज तो पूर्ण रूपेण सरकारी संस्था है। अन्य सब सरकार द्वारा स्वीकृत हैं और प्रायः सभी सरकार से आर्थिक सहायता पाती हैं।

शहर में वर्नाक्यूलर फाइनल स्कूल कई हैं, जिनमें हिन्दी तथा उर्दू की मिडिल परीक्षा तक की पढ़ाई होती है। इनमें से राजा सर मोतीचन्द के महल 'अजमतगढ़ पैलेस' के निकट जो फाइनल स्कूल है, वह राजा साहब की कृपा के कारण विशेष उन्नति पर है। प्राइमरी स्कूल भी बहुत से हैं। इन सब का निरीक्षण काशी की म्युनिसिपैलिटी अपने सुपरिंटेंडेंट आफ़ एजूकेशन-द्वारा करती है।

सिगरा में ईसाइयों ने लड़कियों के लिए एक नार्मल स्कूल खोला है। जिसमें उन्हें अध्यापकत्व की शिक्षा दी जाती है।

चौकाघाट पर स्वर्गीय रायबहादुर बटुकप्रसाद खत्री के नामसे बटुकप्रसाद इंडस्ट्रियल स्कूल है, जिसमें कपड़ा बुनने आदि की शिक्षा दी जाती है।

उपर्युक्त ये सब संस्थाएँ भी सरकार द्वारा स्वीकृत हैं। इनके अतिरिक्त अनेक संस्थाएँ ऐसी हैं, जो सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं हैं; जैसे—काशी विद्यापीठ, आर्य महिला विद्यालय (इसके विषय में लेखक को पूर्ण ज्ञान नहीं) गोखले इण्डस्ट्रियल इंस्टीट्यूट, ऐडमिशन कोचिंग इन्स्टीट्यूट, हाई स्कूल कोचिंग इन्स्टीट्यूट, टाइपराइटिंग और तार आदि सिखाने के स्कूल तथा अन्य बहुत-सी छोटी-मोटी संस्थाएँ। इन में काशी विद्यापीठ बड़े महत्त्व की वस्तु है। इसकी स्थापना उदार बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने सन् १९२२ के लगभग ऐसे समय की थी, जब महात्मा गांधी के आदेशानुसार सरकार से सम्बन्ध रखने वाले स्कूलों का बहिष्कार हो रहा था। इसमें लाखों रुपये लगे। शहर से बाहर बनारस छावनी स्टेशन के रास्ते पर दो बड़े-बड़े विस्तृत बागीचों में इमारतें दुरुस्त की गईं, या बनाई गईं, सुयोग्य अध्यापक नियत किये गये; पढ़ने लिखने के साथ-साथ जुलाहे, दर्जी, बढ़ई, लुहार आदि की कलाएँ सिखाने का पूरा प्रबन्ध किया गया। कुछ दिन तो छात्रों की बाढ़-सी आ गई; परन्तु क्रमशः उनकी संख्या का इतना ह्रास हुआ कि अध्यापकों और छात्रों की संख्या में बहुत अन्तर न रहा। फलतः उसके विभाग एक-एक करके तोड़ने पड़े और राजनीतिक कारणों से पूरी संस्था का कार्य स्थगित कर देना पड़ा।

जैसे अन्य बड़े-बड़े नगरों के स्कूलों में कुछ विशेषतायें होती हैं, वैसे ही काशी के स्कूलों में भी कुछ विशेषतायें हैं—

१—यहाँ भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों के लोग तीर्थवास या उद्योग-धन्धे के लिए रहा करते हैं; अतः स्कूलों में भी बंगाली मदरासी, महाराष्ट्र, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, पहाड़ी, काश्मीरी तथा अन्य प्रान्तों के छात्र अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

२—निर्धन छात्रों की संख्या तो सभी भारतीय स्कूलों में अधिक है; परन्तु यहाँ अन्य स्थानों की अपेक्षा और भी अधिक प्रतीत होती है। यह प्रतीति इसलिए और भी बढ़ जाती है कि यहाँ के छात्र वस्त्र कम पहनते हैं। धनहीन बालकों की तो बात ही नहीं, धनी बालक भी धोती, कुर्ता, चट्टी या चप्पल पहन कर स्कूल आते हैं। सिर खुला रखना अब यहाँ का फैशन हो गया है; जिनको भगवान् ने पैसा दिया है वे साठ इंच चौड़ी धोती इस विशेष प्रकार से पहनते हैं कि दोनों टाँगों में पैजामे की तरह उतर पड़ती है। जूते से रहित भी सैकड़ों लड़के होंगे। दिगम्बर बाबा विश्वनाथ की पुरी में यह सब उचित ही है।

३—प्रायः प्रत्येक स्कूल में एक-एक विद्यार्थी सहायक-सभा है, जिसके द्वारा निर्धन छात्रों को भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि की सहायता यथासाध्य देने की चेष्टा की जाती है।

४—यहाँ के छात्रों में हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या उर्दू वालों से बहुत अधिक है।

अन्य भी बहुत-सी छोटी-मोटी बातें बताई जा सकती हैं; परन्तु अनावश्यक समझकर और लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से उन्हें यहाँ लिखना उचित नहीं। शुभम्।

(४६वें पृष्ठ का शेषांश)

डाला। आप पं० नित्यानन्दजी पर्वतीय महोदय को कुछ मासिक द्रव्य देते और महामहोपाध्याय पं० नित्यानन्दजी घर आए विद्यार्थियों को पढ़ाते रहे।

मणिकर्णिका श्मशान के दक्षिण ललिताघाट पर सिद्धगिरि का अपूर्व स्थान है, जहाँ राजराजेश्वरी देवी का मंदिर है। सिद्धगिरि सिद्ध थे; जब घाट-किनारे यह बनवा रहे थे, लकड़ी का एक जोता छोटा पड़ गया। मजदूरों ने सिद्धगिरि से कहा। उन्होंने क्रोध में ४ डण्डे जोते को मारकर कहा—'दुष्ट! जंगल में तो बढ़ा करता था, यहाँ नानी मरती है!' जोता एक हाथ लम्बा बढ़ गया, जो आज भी देखने की चीज़ है।

औघड़नाथ सिद्ध पुरुष थे। एक रोज चेलों ने देखा, एक योगिनी सिंह पर चली आ रही है। आप तकिये पर बैठे गाँजा पी रहे थे।। बोले—'चल बेटा, चल!' तकिया चल पड़ा। 'औघड़नाथ का तकिया' उसी रोज़ से प्रसिद्ध हो गया। अभी पत्थर का वह तकिया भक्तों द्वारा पूजित है।

काशी की कुछ अद्भुत बातें

लेखक—श्रीयुत अध्यापक श्रीसाँवलजी नागर

काशी-प्राचीनतम नगरी है। इसका उल्लेख वेदों, ब्राह्मण-ग्रंथों तथा उपनिषदों में पाया जाता है। हिन्दुओं की दृष्टि से, भारतीय संस्कृति के विचार से, जो अद्भुत गौरव इस पुरी को प्राप्त है, उसकी विस्तृत चर्चा करना इस लेख का कलेवर बढ़ाना होगा; अतएव इस लेख में केवल उन अद्भुत बातों का संकलन मात्र किया जायगा जिन्हें पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से महत्त्व प्राप्त होगा, अथवा जिन अद्भुत बातों की ओर सर्व साधारण की दृष्टि नहीं हैं; परन्तु जो महत्त्व पूर्ण हैं।

इसकी सबसे पहली अद्भुतता इसके भिन्न भिन्न नामों में अन्तर्हित है। जिस समय भूमि और जल आदि कुछ नहीं रहा, उस समय परमात्मा ने अपनी क्रीड़ा करने के निमित्त इस भूमि का निर्माण किया—

न यदा भूमि वलयं न यदाऽपां समुद्भवः।
तदा विहर्तुमीशेन क्षेत्रमे तद्विनिर्मितम्॥

(काशीखंड)

इसका सबसे प्राचीन नाम काशी ही है। शास्त्रों के अनुसार भगवान् वाणी-द्वारा नहीं जाने जाते; परन्तु इस स्थान में उनकी प्रथम ज्योति प्रकाशमान् हुई, इसी से इसका नाम काशी हुआ—

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः।
अतो नामा परं चास्तु काशीति प्रथितं विभो॥

चन्द्रवंशी राजाओं में पुरुरवा से पाँचवीं पीढ़ी में 'काश' नामक एक राजा हो गए हैं। यह भूमि पहले-पहल उन्हीं के अधिकार में थी; अतएव यह स्थान 'काशी', तथा उनके वंशज 'काशिराज' कहलाए, जिनका रामायण और महाभारत में भी उल्लेख पाया जाता है। 'काश' की छठी पीढ़ी में राजा दिवोदास हुए, जिन्होंने वाराणसी बसाई। वरणा और असी इन दो शब्दों के योग से 'वाराणसी' शब्द बना है। जब अत्रि ऋषि ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि आप किसे 'वरणा' और किसे 'असी' कहते हैं, तो इसके उत्तर में महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा था—'सर्वानिन्द्रिय कृतान् दोषान् वारयतीति 'वरणा' भवति, सर्वान् पापान् नाशयति तेन 'असी'; अर्थात्—जो इंद्रिय-कृत दोषों को रोक दे, उसको 'वरणा' तथा जो पापों को मुक्त कर दे, उसे 'असी' कहते हैं।

राजा बन्नार की अद्भुत बात

लोगों की दृढ़ धारणा है कि वाराणसी का अपभ्रंश बनारस हो गया है; परन्तु केवल यही बात नहीं है। एक विशेष ऐतिहासिक कारण और भी है। ११ वीं शताब्दी के पूर्व यहाँ यवनारि राज्य करता था। यह बड़ा पराक्रमी चन्द्रवंशी राजा था—

अत्रान्तरे शशा सौत्रों यवनारिर्नराधिपः।
वाराणसीमधिष्ठाय राजधानीं प्ररद्विषः॥
चन्द्रवंश समुद्भूतः प्रचण्ड भुज विक्रमः।
चतुरङ्ग बलाधीशः श्रुत्वा काशीनरेश्वरः॥

(चेतसिंह-विलास)

यवनों के अत्याचारों से चिढ़कर यह उनकी बलि चढ़ाया करता था। यवनारि का अपभ्रंश 'यवनार' हुआ; परन्तु साधारण जनता इस शब्द का उच्चारण 'बन्नार' करती थी। वास्तव में वह राजा बन्नार ही कहे जाते थे। 'तवारीख़ बनारस' में भी लिखा है—

'राजा बन्नार शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी की फौज का सामना करके मैदान-जंग में मारे गये।'

सालार मसऊद गाज़ी जो उन दिनों मुहम्मद गोरी का फौजी अफसर था, राजा बन्नार से लड़ा था। इसी राजा बन्नार ने गिरिजापुर बसाया, जिसका नाम मिर्जा कुँजड़े के कारण 'मिरजापुर पड़ गया।

इसी बन्नार के नाम पर इस नगर का नाम बनारस पड़ गया। इस के पूर्वजों का प्राचीन किला उस स्थान पर था, जहाँ इस समय राजघाट स्टेशन है। फ़ाहियान ने अपने यात्रा-विवरण में इस स्थान की शोभा का विषद वर्णन किया है। अति प्राचीन काल में वहाँ से सारनाथ तक बड़ा सुन्दर नगर बसा हुआ था। स्टेशन के उत्तर गंगा-वरुणा नदी के किनारे के इस स्थान को अब भी 'किला' कहते हैं।

इस स्थान के उजड़ने तथा राजा बन्नार के सर्वनाश के सम्बन्ध में एक अद्भुत कथा सुनी जाती है। वर्तमान श्रीमान् महाराज काशी-नरेश के तत्कालीन पूर्वज श्रीकृष्ण-मिश्र अपरिग्रह वृत्ति के ब्राह्मण थे। इन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रंथ बनाए, जिनमें प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक प्रसिद्ध है। राजा बन्नार ने सम्पूर्ण धन ब्राह्मणों को दे देने की अभिलाषा से काशी में एक महायज्ञ किया। श्रीकृष्ण-मिश्र भी उस यज्ञ में पधारे थे। राजा बन्नार ने पान के धोखे में मिश्रजी को 'दातृपुर' का दान-पत्र दे दिया। इस पर मिश्रजी क्रुद्ध हो गये और शाप दिया कि तेरा नाश होगा और तेरे देश पर किसी समय मेरा ही वंश राज करेगा—

अपरिग्रहतो धर्मोद्यत्त्वया च्यावितो स्म्यहम्।
काश्याधिपत्याद् चिरा च्युत्तस्त्वं भविष्यति॥
अराजकीयं विषयो भूयो भिरथ वत्सरैः।
त्वद्दत्तेत्र पुरे काश्यां मद्वंश्यं लप्स्यते नृपम्॥
यवनेशः समभ्येत्य युयुधे यवनारिणा॥

(चेतसिंह-विलास)

विद्वान् तपस्वी की वाणी सत्य सिद्ध हुई। राजा बन्नार लड़ाई में मारा गया। उसकी दो कन्याएँ तोहफ़े के रूप में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी के सम्मुख उपस्थित की गईं। शहाबुद्दीन बड़ा प्रसन्न हुआ और लड़कियों को अपनी बेगम बनाना चाहा; परन्तु अपने पिता का बदला लेने के विचार से लड़कियों ने शहाबुद्दीन से यह कहा कि हम अब आपके योग्य नहीं हैं। हमारा सतीत्व सालार मसऊद गाज़ी नष्ट कर चुका है। शहाबुद्दीन यह सुनकर लाल हो गया और सालार मसऊद गाज़ी को बहराइच पहुँचते ही मरवा डाला। इन्हीं को लोग गाज़ीमियाँ कहने लगे। इसी घटना पर एक मिसरा चल पड़ा, जो गाजीमियाँ के ब्याह के मेले में सुना जाता है—

'गाजीमियाँ गाजीमियाँ बड़े लहरी।
अच्छे अच्छे घर क मँगावैं मेहरी॥'

किले के मैदान में जो मुसलमान मारे गए थे, वे किले के मैदान के पास ही गाड़े गये। जो 'गंज शहीद' के नाम से अद्यापि प्रसिद्ध है। राजा बन्नार ने यज्ञ के पश्चात ८३ मौज़े माफ़ी में दान दिए थे, जिनके एक अंश के भोक्ता पं० बलदेव पाण्डेय, बरना के पार कोठवाँ ग्राम में अभी वर्तमान हैं।

पीपा-विस्फोट

जब काशी पर अंग्रेज़ों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका, तब राजा बन्नार के किले की उजाड़ पड़ी भूमि पर अनेक अँग्रेज़-सौदागरों और अफसरों ने बँगले बनवाए। महाराज विजयनगरम् की एक विशाल कोठी वहाँ थी। पार्क, टेनिस-कोर्ट आदि से स्थान नवीन रूप से सजाने का प्रयत्न किया गया था; परन्तु एक घटना घटित हो गई। आज से ८३ वर्ष पूर्व, विक्रम संवत् १९०७ अधिक वैशाख कृष्ण ५ बुधवार को डेढ़ घड़ी रात बीते नाव पर लदे हुए बारूद भरे पीपे अचानक फट पड़े। तब तक वर्तमान 'डफरिनब्रिज' के बनाने का किसी को ध्यान तक नहीं था। उस पार से माल असबाब, सवारियाँ नावों पर इस पार आती थीं। ईस्ट इंडिया कम्पनी की हुकूमत थी। कंपनी-सरकार की बारूद थी। बड़ा ही कठोर धड़ाका हुआ। काशी के हजार मकानों हिल गये। चकिया में जो महाराजा का महल है, कहते हैं उसकी खिड़कियों की जालियाँ टूट गयीं। राजघाट के आसपास तो पूछना ही क्या है। इस घटना का विपद् वर्णन पं० लोकनाथ चतुर्वेदी ने ५२ पदों में किया है। उसका नाम 'पीपा-बावनी' है। यह ग्रंथ अब अप्राप्य है; परन्तु यहाँ दो-तीन पद उद्धृत किए जाते हैं, जिससे घटना का कुछ बोध पाठकों को प्राप्त हो सकेगा—

संवत उन्नीस सत सात में की बात यह,
अधिक वैशाख पाख अति अँधियारे में।
बुध पंचमी को जब बीति डेढ़ जाम रात,
महा उतपात भयो काशीपुर सारे में।
नावन में कंपनी को मेगज़ीन पोन भरी,
लागी है विचार राजघाट के किनारे में।
कहैं नाथ एक साथ दैव जोग जागि आगि,
पीपा उड़्यो तहाँ एकही भभकारे में॥१॥

• • •

देखो यह ईश्वर की ओर से अनादरी के,
पादरी के ऊपर विशेषतें बिसाई है।
सिमथ औ स्माल हुई साहब की कोठी,
हुती महाध्वनि वाहू को ज्यों खनि के खँसाई है।

स्मिथ की तो चीज़ खोज चूर-चूर,
हाथ स्माल की तो मेम दबि जान हीं गँवाई है।
कहँ नाथ चार्ल्स सौदागर उजागर की,
कोठी नई चालीस हज़ार की गिराई है ॥२॥

• • •

बँगला जंगलाल से जी कोट के करारे पर,
विजयनगर - नृप सुघर सजे हुते;
परिकर अनुचर आदि दरबारी जुत कुँवर,
सहित नृपवरहूँ छजे हुते।
बचे हैं वेदाग लागि नेकु कहीं चोट कहीं,
पुराकृत पुन्य इन पास जो गँजे हुते;
कहैं नाथ एक साथ कोठी चूर-मूर भई,
ये तो दूर दूर पेशतर ते भजे हुते ॥३॥

• • •

वाही ठाम साहब गुदामवारे गारडेन कोट के,
करारे पर धाम निज राचे हैं;
ताही में विराजैं पाठशाला पति वालटैन,
ऐन सब गुन के सुकृत हूँ के साँचे हैं।
वाही बँगला के वासी खासी भाँति से बचे हैं,
या के सतसंग को श्रीरंग जबै जाँचे हैं;
कहैं नाथ जैसे लंक के दहन में निशंक केते,
तो विभीषण के साथ ही तैं बाँचे हैं।

किले का भग्नावशेष अभी तक वर्त्तमान है। जहाँ पीपा फटा था, ठीक उसके ऊपर एक पत्थर का छोटा स्तम्भ गाड़ा हुआ है। वालटैन साहब का कूँआ अभी तक वर्त्तमान है, जहाँ आज-कल भी लोग सैर करने जाया करते हैं। वालटैन साहब की समाधि क्वीन्स कॉलेज के हाते के बाहरी भाग में सड़क पर से ही दिखाई देती है, जो सुन्दर बनी हुई है। इस घटना के सात वर्ष पश्चात् सरकार के मिलिटरी विभाग ने २१ दिसम्बर १८५७ को किले की कुल भूमि बाबा विहारीदास से अपने लिये ले ली। गत वर्ष पर्यंत मिलिटरी विभाग का उस पर कब्ज़ा था। हालही में थियोसाफ़िकल सोसाइटी के 'ऋषी-वैली ट्रस्ट' ने यह किले की भूमि पाठशाला, कन्या-पाठशाला, तथा विद्यार्थियों के लिए वास-स्थान बनवाने के लिये प्राप्त की है।

आनन्दगुहा

इस किले के ठीक उत्तर, वरना के उस पार 'आनन्द गुहा' नामक एक प्राचीन दर्शनीय स्थान है। कर्नल आलकर की 'ओल्ड डायरी ली०स' के चौथे भाग में इस गुहा का उल्लेख है। दो प्राचीन शिवमंदिर, जिनका उल्लेख काशी-खंड में है, इस गुहा के हाते में वर्त्तमान हैं। यह गुहा कम-से-कम २५० वर्ष प्राचीन अवश्य है। सन् १७५० में श्रीमान् परम हंस परिव्राजक स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती अपने दादा गुरु की आज्ञानुसार यहाँ निवास करने लगे। नीम, इमली, बड़, पीपल आदि की छाया में एक छोटी-सी कुटिया थी, जिसके पास गुरु-परंपरा की इस गुफा में ये योगाभ्यास किया करते थे। इनके शिष्य, तपोनिष्ठ वेदान्ती श्रीरामेश्वरदेव की कन्या श्री हरिकुँवर उपनाम माजी महाराज से महर्षि दयानन्द सरस्वती का अनेक बार साक्षात् हुआ। ये इन्हें गार्गी कहा करते थे। जब श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती उदयपुर के राणा के यहाँ थे, एक बार सामवेद-भाष्य की उनको आवश्यकता हुई। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या उन दिनों उदयपुर में थे। स्वामीजी ने उनसे एक पत्र माजी महाराज को लिखवाया। महाराणा साहब चकित हुए और जब स्वामीजी से उनके तप, विद्वत्ता निःस्वार्थ-प्रवृत्ति का समाचार सुना, तो वे माजी महाराज के दर्शन के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हुए। स्वामी दयानन्दजी तथा अपने शिष्य मोहनलाल के आग्रह पर वे उदयपुर महाराणा के यहाँ पधारीं, जहाँ लगभग २० दिनों तक उन्होंने वेदान्त पर उपदेश दिये। थियोसाफिकल सोसाइटी की प्रवर्तिका मेडम ब्लेवाटस्की, कर्नल आलकट, मिस मूलर, श्रीमती एनी बिसेन्ट आदि अनेक बार माजी महाराज के यहाँ पधार कर उनसे वेदान्त के तत्वों की चर्चा करते थे। कलकत्ता के रईस श्री कालीकृष्ण ठाकुर तथा बरहानपुर के प्रसिद्ध वकील श्री श्यामाचरण भट्ट ने इस प्राचीन स्थान को माजी के आज्ञानुसार पक्का बनवाया। इस समय इसके अधिकारी पं० हरिनारायण हैं, जो काशी के अद्भुत व्यक्ति हैं।

श्मशान की अद्भुत खोज

एक अद्भुत बात काशी के श्मशानों के सम्बन्ध में लिखना उचित है। लोगों का विश्वास है कि सब से प्राचीन स्थान वही है, जो हनुमानघाट से उत्तर तथा केदारघाट से दक्षिण, हरिश्चन्द्रघाट पर स्थित है; परन्तु यह लोगों का भ्रम है। यों तो काशीपुरी का एक नाम ही 'महाश्मशान' है; परन्तु प्राचीन समय श्मशान उस स्थान पर था, जिसे जमघाट कहते हैं। यहाँ काशीखंडोक्त जमधर्मेश्वर, हरिचन्द्रेश्वर के मंदिर हैं और यहीं सदा-सर्वदा से 'यमद्वितीया' का स्नान होता है। यह स्थान संकठाघाट से सटा हुआ है। चौक बाजार में स्व० भद्दोमलजी की कोठी के नीचे, श्मशान-विनायक का मंदिर है, जिसका उल्लेख काशीखंड में वर्त्तमान है। जमघाट से श्मशान विनायक तक प्राचीन काल में श्मशान था। शव-दाह का वैदिक-विधान यह है कि लोग अग्नि-संस्कार कर घर लौट आते थे। तीसरे दिवस अस्थि सिञ्चनार्थ पुनः श्मशान जाते थे। अभी तक यह प्रथा अनेक ब्राह्मणों में वर्त्तमान है। इस कारण श्मशान-भूमि लम्बी चौड़ी होनी आवश्यक थी। जमघाट से सीधी लाइन खींची जाय, तो श्मशान-विनायक लगभग ४ फर्लाङ्ग दूर सीधी लाइन में ही पड़ेंगे। प्राचीन बस्ती इस ओर कम रही। काशी के अति प्राचीन प्रिन्सेफ जेम्स मेस्टन रचित "Views and Illustrations of Benares" पुस्तक से भी इस बात की पुष्टि होती है। उससे स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में विश्वेश्वरगंज, चौखंभा, बुला-नाला, ब्रह्मनाल आदि स्थान भयंकर नाले के रूप में, झाड़-झंखाड़ों से भरे हुए निर्जन थे। ह्वेनसैंग आदि प्राचीन यात्रियों ने श्मशान के पास ही विश्वनाथ के मंदिर का उल्लेख भी किया है। ज्ञानवापी की सीढ़ी के सम्मुख विश्व-नाथ का प्राचीन मंदिर था, जहाँ इस समय मसजिद है। यह मंदिर श्मशान-विनायक के स्थान के ठीक बगल में ही है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्राचीनतम श्मशान-भूमि जमघाट के यमधर्मेश्वर-हरिश्चन्द्रेश्वर के मंदिर से लेकर चौक के श्मशान-विनायक तक रही। हरिश्चन्द्रेश्वर के प्राचीन मंदिर से यह भी स्पष्ट होता है कि यहीं राजा हरिश्चन्द्रजी की घटना घटित हुई होगी। ज्यों-ज्यों बस्ती बढ़ती गई, श्मशान छोटा होता गया। जब बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के महल इधर तैयार होने लगे, श्मशान दूर हटा दिया गया।

पन्ने की फरशी

मणिकर्णिकाघाट के निकट जो महाश्मशान है, उसकी स्थापना अवध के नवाब सफदरजंग के तोशाखाने के दारोगा लाला काश्मीरीमल की माँ की मृत्यु के अवसर पर हुई। जब लालाजी की माता वृद्धा हुई, तो ये काशी आये। काशी पर अवध के नवाबों का आधिपत्य था, इससे लालाजी ने सिद्धेश्वरी महाल में एक ऐसी विशाल हवेली बनवाई, जिसके जोड़ की हवेली काशी-नगरी में आज तक न बनी। लालाजी इसी में रहते थे। नवाबों के यहाँ रहने वाले लालाजी के धन का पता इसीसे लग सकता है कि एक बार उनके पुत्र हवेली के पूर्वीय भाग के तीसरे मंजिल पर विशाल दालान में बैठे हुक्का पी रहे थे। फर्शी पन्ने की थी। इतने में लालाजी बगल के कमरे से आते दिखाई पड़े। पिता के सम्मुख पुत्र का हुक्का पीना अशिष्टता है, इस विचार से पुत्र ने हुक्का छिपाना चाहा; परन्तु कोई दूसरा उपाय न देख, हुक्के को नीचे गली की ओर गिरा दिया। खत्री कौम के दो नौजवान उस गली से जा रहे थे। उन्होंने पन्ना परख कर उसे उठा लिया। इन दोनों युवकों का खानदान अभी तक धनी और आबाद है। माता का शव लेकर जब लालाजी केदारघाट वाले श्मशान पर पहुँचे, श्मशानाधिपति डोम से लेन-देन के विषय में कहा-सुनी हो गई। चट शव उठवाकर मणिकर्णिकाघाट लौटे। उसी समय पंडों, घाटियों और वहाँ के जमीदार से वर्त्तमान भूमि खरीदी। शव का दाह-कर्म किया, पीछे उसे बनवा भी दिया। भिन्न-भिन्न कौमों के शव-दाह के लिये उन्होंने ७ सीढ़ियाँ बनवाई थीं, जिनमें केवल एक अभी बची हुई है। इन्होंने शव-दाह करने वालों का निर्ख बाँध दिया, जिसमें किसी को डोम लोग कष्ट न दे सकें। खत्री-सारस्वतों से कोई टैक्स नहीं लिया जाता, केवल ५ पैसे सफाई के लिये जाते हैं। नागरों का टैक्स तीन पैसे निश्चित है।

शिवनाथसिंह की चौरी

ब्रह्मनाल के तरकारी बाजार के बीच से जो रास्ता नीलकंठ की ओर गया है, वहाँ एक अद्भुत चौरी उल्लेखनीय

है। दारूमल वाही की कोठी के नीचे, भुवनेश्वरी के मंदिर के कोने पर, महाराजा भावनगर के शिवाले के पीछे, रास्ते के बीच, एक चौरी पूजी जाती है। यह शिवनाथसिंह-बहादुरसिंह की चौरी है। चेतसिंह की घटना ने काशी-वासियों के हृदय में उत्तेजना उत्पन्न कर दी थी। अवध के नवाब अथवा कंपनी-सरकार की ओर से जो सूबेदार काशी के लिये नियुक्त होते, उनको मालगुजारी वसूल करने में बड़ा कष्ट होता था। चेतसिंह के बलवे को शान्त करने के लिये ही औसानसिंह बनारस के नायब नियुक्त हुए।

शिवनाथसिंह-बहादुरसिंह का एक ज़बर्दस्त अखाड़ा था। इनसे लोग काँपते थे। सरकार की ओर से इनको वश में करने का कई बार प्रयत्न किया गया; परन्तु इनकी आँखों में चेतसिंह के प्रति किया गया अन्याय खलता था। अन्त में कोतवाल मिर्जा पाँचू भेजा गया। कोतवाल ने बहुत समझाया; परन्तु सुलह नहीं हो सकी। शिवनाथ-सिंह-बादुरसिंह दोनों मित्र थे। इनको गिरफ्तार करने को पल्टन भेजी गई। ये तलवार बाजी के उस्ताद थे। लड़ पड़े। इसका वर्णन एक लावनी में खूबी के साथ किया गया है, जो उनकी चौरी पर आज से ५० वर्ष पूर्व तक प्रतिवर्ष ५ दिन होली में गाई जाती थी। कुछ कड़ियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

दो कंपनी पाँच सौ चढ़कर चपरासी आया।
गली-गली औ कूँचे-कूँचे नाका बँधवाया॥
मिर्जा पाँचू कसम खाय के कुरान उठाया।
पैगंबर को किया बीच औ उनको समझाया॥
चलो अदालत मिलो छोड़दो सूबे का झगड़ा।
सम्मुख होकर लड़े निकलकर मुख नाहीं मोड़ा॥
शिवनाथसिंह बहादुरसिंह का बना खूब जोड़ा।
शूरवीर जो सम्मुख आये सब से प्रबल पड़े॥
तनमें गोलियाँ लगीं तीस जब घायल होय पड़े॥
हँस बोला तब सूबेदार के काट ले गरदन दोनों के।
उठ बैठे शिवनाथ बहादुर मारा सिपाही के॥

इनका घर घेर लिया गया था। ये दोही व्यक्ति थे, निकल पड़े। अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित की और लड़ते-ही लड़ते प्राण त्यागे। यह चौरी उस स्थान का स्मारक है, जहाँ उन्होंने वीरता प्रदर्शित की और दोनों मित्र चन्दन की एक ही चिता पर भस्म किये गये।

भंगड़ भिक्षुक

इनके सच्चे मित्र गायघाट के प्रसिद्ध बली, भंगड़ भिक्षुक थे। ऐतरनी-बैतरनी के तालाब के ऊपर बाग़ है, जो श्रीरणछोड़जी मंदिर की भेंट चढ़ा हुआ है। इसमें कुँआ है, जो भंगड़ भिक्षुक का कुँआ कहा जाता है। इनका एक जबर्दस्त दल था। इनको वश में करने का सूबेदार का सब उद्योग व्यर्थ हो गया। अन्त में एक चेला फूट पड़ा। त्रिलो-चनघाट पर एक लम्बी मढ़ी है। इसी में मस्ताने भंगड़ भिक्षुकजी नशे में चूर सोते थे। कहते हैं, इसी मढ़ी में घेर कर रातोरात जला दिये गये।

इसी अखाड़े की शिष्य-परंपरा में तलवारिया दाता-राम नागर हो गये हैं। कालभैरव के मंदिर के पास, हाटकेश्वर के मन्दिर के बगल में, इनका घर था। मिरजापुर के महंत कैलासवासी श्रीजयराम गिरि के यहाँ भी यह आया-जाया करते थे। इनके रूई के गोदाम नारघाट पर थे। एक बार महंतजी और घाट के ठेकेदार में झगड़ा हो गया। दाताराम तलवार खींचकर खड़े होगये। इस घटना के बाद ही ओझला का प्रसिद्ध पुल बनवाया गया, जो विन्ध्याचल के रास्ते में है। कहते हैं, जब विश्वेश्वरगंज की सड़क बन गयी, तो दाताराम ने भुतई इमली, बुलानाला, तथा ठठेरीबाजारवाली गली के रास्ते दुलदुल घोड़े को ले जाने का विरोध किया। उनका कहना था कि जब सड़क बन गई, तब घोड़ा सड़क के रास्ते ले जाना चाहिए। इसपर तलवार चल गई, दाताराम ने अद्भुत कला प्रदर्शित की। अन्त में इन पर वारंट निकला। ये कटेसर में बड़ी कठिनाई से पकड़ गये। इनको कालेपानी की सज़ा हुई। इसपर एक कजली गाई जाती थी—

सबके तो नैया जाले अगरे नाहीं डगरे रामा,
नागर नैया जाला काले पनिया रे हरी।
बेरियाँ-की-बेरियाँ तोहैं बरजौं नागरगुंडऊ रामा,
रामा मत बाँध छुरी औ कटरिया रे हरी।

इनके दो घाट सेंधियाघाट पर वर्त्तमान हैं।

गौरैयाशाही की असली वात

'गौरैयाशाही', काशी की एक अद्भुत घटना है। बात सन् १८५२ की है। काशी में फाटकबन्दी के तोड़ने का हुक्म हुआ। उन्हीं दिनों 'वृषोत्सर्ग' किये गये, साँड़ पकड़कर कमसरियट पहुँचाने का भी हुक्म जारी हुआ। जनता ने इसका विरोध किया। इनके तत्कालीन अगुआ भाऊ जानी तथा वीरेश्वर जानी थे। इसका खास कारण था। वृषोत्सर्ग-द्वारा जो साँड़ गुजरात काठियावाड़ के आस्तिक हिन्दू अपने पितरों के नाम से छोड़ते, उनके भूसे के निमित्त कुछ वार्षिक भेजा करते थे। यह भाऊजी वीरेश्वर जानी के यहाँ आता था। इसीसे इन्होंने साड़ों के कमसरियट पहुँचाने का विरोध किया। तत्कालीन कलक्टर श्री ग्राविन्स ने जनता के प्रतिनिधियों को नाटीइमली पर एकत्र किया; परन्तु समझौता न हुआ। इतने ही में कुम्हार की दूकान से गौरैया उठा-उठाकर लोग कलक्टर कमिश्नर और पं० गोकुलचन्द कोतवाल पर फेंकने लगे। कई अफसरों को चोटें लगीं। इसे गौरैयाशाही कहते हैं। फल यह हुआ कि फाटकबन्दी तो तोड़ दी गई; परन्तु दगे साड़ों का पकड़ाजाना रोक दिया गया।

चूना-गारा ढोने वाला दीवान

काशी के भिन्न-भिन्न महालों के सम्बन्ध में कुछ अद्भुत घटनाएँ लिखना अनुपयुक्त न होगा। बात सन् १७३८ की है। दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह के २१७७५) नज़राना भेजकर श्री मनसारामजी के पुत्र राजा बलवन्तसिंह उपनाम बरीवण्डसिंह ने राजा की पदवी और कुछ जमीन्दारी अपने लिए मंजूर करवा ली। इसके पूर्व अवध के नवाब शुजाउद्दौला के नायब सफ़दरजंग से बनारस, जौनपुर व चुनार का परगना अपने नाम लिखा चुके थे। इन्होंने दो किले बनवाये। एक गंगाके उस पार रामनगर में, दूसरा गंगापुर में, जिसका पुराना असली नाम थुथुरिया ग्राम था। जब किला बन रहा था, नौपती सेठ राजा बलवन्तसिंहजी से मिलने गये। प्यास लगी। कारखाने पर निगरानी रखने वाले बैजनाथ ब्राह्मण से पानी माँगा। एक लड़का, जो मिट्टी-गारा ढोता था, हाथ धोकर पानी लाया। पूछने पर मालूम हुआ, वह बलवन्तसिंहजी की जाति का है। जब सेठजी से राजासाहब का सामना हुआ, उन्होंने मजाक में कहा—'जरा अपनी जाति की दशा देखिये'। बालक मजदूर का हाल दरियाफ्त किया गया और वह अपनी माता के साथ राजासाहब के यहाँ रहने लगा। पढ़-लिखकर प्रखर बुद्धि के कारण वह दीवान हो गया। उसका नाम था—औसानसिंह।

श्री औसानसिंह की सहायता से ही बलवन्तसिंह के औरस पुत्र चेतसिंह बनारस के राजा बन बैठे; परन्तु बिरादरी चेतसिंह के साथ भात न खाती थी। सब राजी हो चले थे; पर औसानसिंह जात्याभिमानी पुरुष थे। अनबन हो गई। औसानसिंह वारेन हेस्टिंग्ज़ साहब से मिले और लगे चेतसिंह के विरुद्ध उनके कान भरने। इधर चेतसिंह ने नाराज़ होकर औसानसिंह का घरबार, जो रामनगर में था—जिस स्थान पर आज-कल स्कूल है—लुटवा दिया और उनके कुटुम्बियों को कैद कर लिया; परन्तु गवर्नर जनरल औसानसिंह का हितैषी था। उसने कुटुम्बियों को छुड़वा दिया। साथही चेतसिंह को हुक्म भेजा कि इनको ५० हज़ार वार्षिक की जागीर दो। चेतसिंह लाचार हो गये। गाजीपुर में सैयदपुर भिटरी का कुल परगना श्री औसानसिंह को मिला। चेतसिंह के भागने के बाद जो गदर हुआ, उसे दबाने के लिए गवर्नर ने इनको नायब मुकर्रर किया। इन्होंने औसानगंज बसाया और वहीं रहने लगे।

बुढ़वामंगल का मेला चेतसिंह ने आरम्भ किया था। स्वर्गीय प्रतापनारायणजी मिश्र ने 'चरित्राष्टक' के नोट में इसकी उत्पत्ति मीरदस्तमअली-द्वारा लिखी है। कैलासवासी महाराजा ईश्वरीप्रतापनारायणसिंहजी ने इस मेले का श्रेय स्वर्गीय हरपचन्दजी को दिया था। मीरसाहब जब कैद हो गये, तो काशी की वेश्याओं ने शोकाकुल होकर एक होली बुढ़वामंगल में गाई थी। एक चरण पेशे नज़र है—

कहाँ गयो मेरो होली को खैलैया।
सिपाही रुस्तमअली बाँको सिपहिया—कहाँ गयो)

रामनगर का प्रसिद्ध तालाब तथा सुमेर मन्दिर (दुर्गाजी मन्दिर) चेतसिंह को कीर्ति हैं। इनके दरबार में अनेक कवियों का पोषण होता था। इनके पुत्र बलवन्तसिंह अच्छे

कवि थे। "चित्रचन्द्रिका" ग्रंथ उनकी कृति है। उनका उपनाम था 'काशीराज', सरस्वती की स्तुति में आपने लिखा है—

उज्ज्वल भूषण वसन जयति वीणा पुस्तक कर।
शुभ्र हंस आरूढ़ कंठ गत मुक्त माल वर॥
शेष सुरेष महेष चरण पंकज वंदत नित।
मनवांछित फल लहत कहत जन वाणीं धरि चित॥

कवि काशीराज अनुनय करै कुमति तिमिर तुमहीं हरौ।
यह चित्र-चन्द्रिका ग्रंथ कौ जगत जननि पूरन करौ॥

चेतसिंह के विद्रोह में जो अँग्रेज मारे गये वे, राजा माधोलालजी के लहुराबीरवाले बाग के दक्षिण, चेतगंज के थाने के बगल में गाड़े गये। उनका वही स्मारक वर्तमान है। विद्रोह के समय गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज़ उस बाग में छिपे रहे, जहाँ इस समय राधास्वामी सत्संग है। यहीं से राव बैजनाथदास शापुरी के पूर्वज बेनीराम पंडित तथा उनके भाई विश्वम्भर पंडित ने बन्द पालकी में गवर्नर को चुनार के किले में पहुँचाया। फलतः पण्डित बन्धु को २५००० साल की जागीर मिली। कंपनी सरकार ने राजा महीपनारायणसिंह बहादुर को ता० १४ सितम्बर १७८१ को बनारस राज्य का जो पट्टा दिया था, उसी के अनुसार यह रकम पण्डित बेनीराम को प्राप्त होती रही। लार्ड क्लाइव ने मोम का चित्र तथा गवर्नर वारेन हेस्टिंग्ज़ ने अपना तैलचित्र भेजकर पण्डितजी का सम्मान किया। बहुत समय तक अंग्रेज अफसर पण्डितजी के वंशजों के यहाँ इन चित्रों को देखने आया करते थे।

राजा चेतसिंह के बाद कम्पनी सरकार ने दीवानी और फौज़दारी तमाम अख़्तियार ले लिया। सरकार की ओर से पहले मेजिस्ट्रेट अली इब्राहीमखाँ नियुक्त हुए थे, जिनका वेतन (२५००) था। टकसाल का प्रबन्ध भी राजा से लेकर कम्पनी के रेज़िडेण्ट के सुपुर्द किया गया। राजा बलवन्तसिंह के भाई शिवलालसिंह के पुत्र कुमार जगतसिंह थे, जिन्होंने ज़गतगंज बसाया और जिनके वंशज रायबहादुर कुमार कवीन्द्रनारायणसिंहजी वर्तमान हैं।

मीर का पुश्ता

औसानसिंह के बाद जगरदेवसिंह नायब हुए; परन्तु ये क्रूर थे। इनके बाद थोड़े दिनों अजितसिंह नायब रहे। बाद श्रीसुखलाल नायब हुए। सुखलाल साहब का फाटक (चौक के पास) उनका स्मारक है। महाराज बलवन्तसिंहजी के पहले मीर रुस्तमअली काशी के सूबेदार थे। मीरघाट के ऊपर ये एक किला बनवा रहे थे। उनका स्मारक मीर का पुश्ता वर्त्तमान है; परन्तु किले का सामान राजा बलवन्तसिंहजी के समय में रामनगर के किले में लगा दिया गया। ढाई कंगूरे की मस्जिद के पास लालखाँ का चौहद्दा है, जहाँ प्रसिद्ध नायब लालखाँ रहते थे। गुण्डों बदमाशों के ये कठोर शत्रु थे। कहावत है—

खुदा करै गुण्डे पकड़े जाँय।
लालखाँ के खूँटे में जकड़े जाँय॥

लालखाँ इन दुष्टों को पकड़वा मँगाते और खूटों में पैर कस दिये जाते। जब सीधे हो जाते, तब कहीं छोड़े जाते थे। इनकी कब्र राजघाट के किले में है और भारत-सरकार की ओर से संरक्षित कर दी गयी है।

बातें अनेक हैं; परन्तु छोटे से लेख में सबका समावेश सम्भव नहीं है; इसलिये दो-चार अद्भुत बातें काशी के महात्माओं के विषय में लिखकर क्षमा याचना करूँगा।

तैलंग स्वामी

'जागरण' के पाठक महात्मा तैलंग स्वामी के तत्वोपदेश का पान करते रहे हैं। ये महात्मा १६ वीं शताब्दी में पंचगंगाघाट पर रहते तथा योगसाधन किया करते थे। हाथ-पैर बाँधकर ये जल में तैरा करते थे। बढ़ी गंगा में तैरकर सीधे सामने घाट पर पहुँच जाया करते थे। कहते हैं कि एक वेदपाठी का बेटा मर गया। उसकी माता बेटे की लाश के साथ रोती हुई घाट पर आई। तैलंग स्वामी जटार-मन्दिर के नीचे किरना नदी के कुण्ड के निकट ध्यानावस्थित बैठे थे। (किरना नदी का उद्गम बालाजी के मन्दिर के फाटक पर मंगलागौरी के सूर्यनारायण से कहा जाता है। एक अद्भुत बात यह है कि सूर्य-विम्ब का

नीचे का हिस्सा सदा तर बना रहता है। नीचे जटार के मन्दिर के नीचे मढ़ी में एक कुण्ड है। इसका जल आप उलीच दीजिए। थोड़ी ही देर में वह फिर स्वच्छ ठंडे जल से भर जावेगा। दोनों स्थान अवलोकनीय हैं।) लोगों को पता लगा। माता रोती हुई दौड़ी और कुण्ड के पास पहुँचते ही बेहोश होकर गिर पड़ी। स्वामीजी को दया आई। उठे, थोड़ी गंगा की मिट्टी उठाकर शव की आँखों में लगाई आप ध्यान करने लगे। थोड़ी देर में बुढ़िया का पुत्र उठ बैठा। स्वामीजी की ऐसी अनेक चमत्कारिक बातें प्रसिद्ध हैं। स्वामीजी की पाषाण-मूर्ति पंचगंगा घाट पर धरहरे के उत्तर वर्तमान है। यही स्थान उनकी नित्य लीला का स्मारक है।

किनाराम

किनाराम काशी के प्रख्यात सिद्ध थे। इनकी एक घटना, बेलवेडियर प्रेस प्रयाग - द्वारा प्रकाशित 'भीखा साहब की वाणी' में उल्लिखित है। अपने समय में भीखा साहब भी पहुँचे हुए महात्मा हो गये हैं। एक बार कीनाराम औघड़, जिनको सिद्धि-शक्ति प्राप्त थी, इनसे मिलने गये और पीने को मदिरा माँगी। भीखा साहब ने जवाब दिया कि हमारे यहाँ मदिरा का कहाँ गुज़र है। इस पर किनाराम ने ऐसा खेल दिखलाया कि भीखा साहब के यहाँ पर जहाँ-जहाँ पानी था, सब मदिरा हो गया। थोड़ी देर पीछे भीखा साहब ने अपने एक सेवक से पानी पीने को माँगा, उसने डर कर उत्तर दिया कि सब पानी मदिरा हो गया है। भीखा साहब ने कहा लाओ वह सब जल है, जब लाया गया, तब पानी हो गया। शिवाला महाल में इनकी समाधि और स्थान म्युनिसिपल स्कूल के पश्चिम वर्त्तमान है।

संतराम

काशी के अति प्राचीन अखाड़ों में संतराम का अखाड़ा प्रसिद्ध है। मणिकर्णिका-श्मशान के सम्मुख कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर यह स्थान अवलोकनीय है। संतरामजी पैर से लुञ्ज थे। एक बार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर ये धीरे-धीरे खिसकते हुए स्नान करने जा रहे थे। रास्ते में एक कोढ़ी मिला। वह सबसे प्रार्थना करता कि कोई सहारा देकर स्नान करवा दे। कोई सुनता न था। संतराम ने कहा—मेरा कंधा पकड़ लो और मेरे साथ खिसकते चलो मैं स्नान करा दूँगा। जब कोढ़ी स्नान कर चुका बड़ा प्रसन्न हुआ। कमर से एक मूर्ति बटुकनाथ की निकाल कर संतरामजी को दी। कान में मंत्रोपदेश दिया। उसी की उपासना से संतराम का लुञ्जपन दूर हो गया और वह उस समय काशी में सबसे बली माने जाते थे। अखाड़े में संतरामजी की प्रस्तर मूर्ति अभी वर्त्तमान है। वह बटुक की मूर्ति उनके मस्तक पर रखी हुई है। इसी अखाड़े के शागिर्द फतेहशंकर उपनाम दूधी महाराज थे, जिनको एक साथ ५ नारियल फोड़ते अनेक लोगों ने देखा होगा।

पं० नित्यानन्द आत्मगौरव

काशी नगरी ने हिन्दू-संस्कृति के प्राण संस्कृत साहित्य की रक्षा और प्रचार में सदा से जो उद्योग किया है, वह वन्दनीय है। गुरु के चरणों में बैठकर संस्कृत भाषा के पाठकों में कितना आत्म सम्मान और त्याग होता है. इसका एक ताज़ा उदाहरण सुनिये। संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वद्रत्न पं० नित्यानन्द पर्वतीय सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थियों को (अँग्रेजी विभाग) पढ़ाने के लिये नियुक्त हुए। वेतन ५०) नियत हुआ। ज़माना स्व० एनी बेसेण्ट का था, और कॉलेज के मंत्री थे—श्रीयुत बा० भगवानदासजी। पण्डितजी महाराज को नौ बजे भोजन कर के दौड़ने में कष्ट होने लगा। आप ने मंत्री महोदय से कहा कि ५०) के बजाय १५) ही वेतन मिले; परन्तु मुझे संस्कृत-विभाग में परिवर्त्तित कर दिया जाय। रणवीर पाठशाला में स्थान रिक्त न था। इससे श्रद्धेय भगवान्‌दासजी ने उत्तर दिया—'पाठशाला में स्थान रिक्त नहीं है।' पं० नित्यानन्दजी महाराज ने त्याग-पत्र भेज दिया। कुछ समय के बाद वाइस प्रिन्सिपल म० म० पं० आदित्यराम भट्टाचार्य को यह समाचार ज्ञात हुआ। वे पं० नित्यानन्दजी के यहाँ गये और कहा कि आप संस्कृत-विभाग में ही चलें, वहाँ कमेटी २५) की एक विशेष जगह आप के लिये निर्माण कर रही है।

परन्तु पण्डितजी ने स्वीकार न किया। आपने कहा—एक बार फेंककर उसको पुनः ग्रहण करना शोभा नहीं देता। स्वर्गीय बा० गोविन्ददास पर आप के त्याग ने बड़ा प्रभाव

(शेषांश ३८वें पृष्ठ के नीचे)

काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालय

लेखक—श्रीयुत त्रिलोचन पन्त एम० ए०

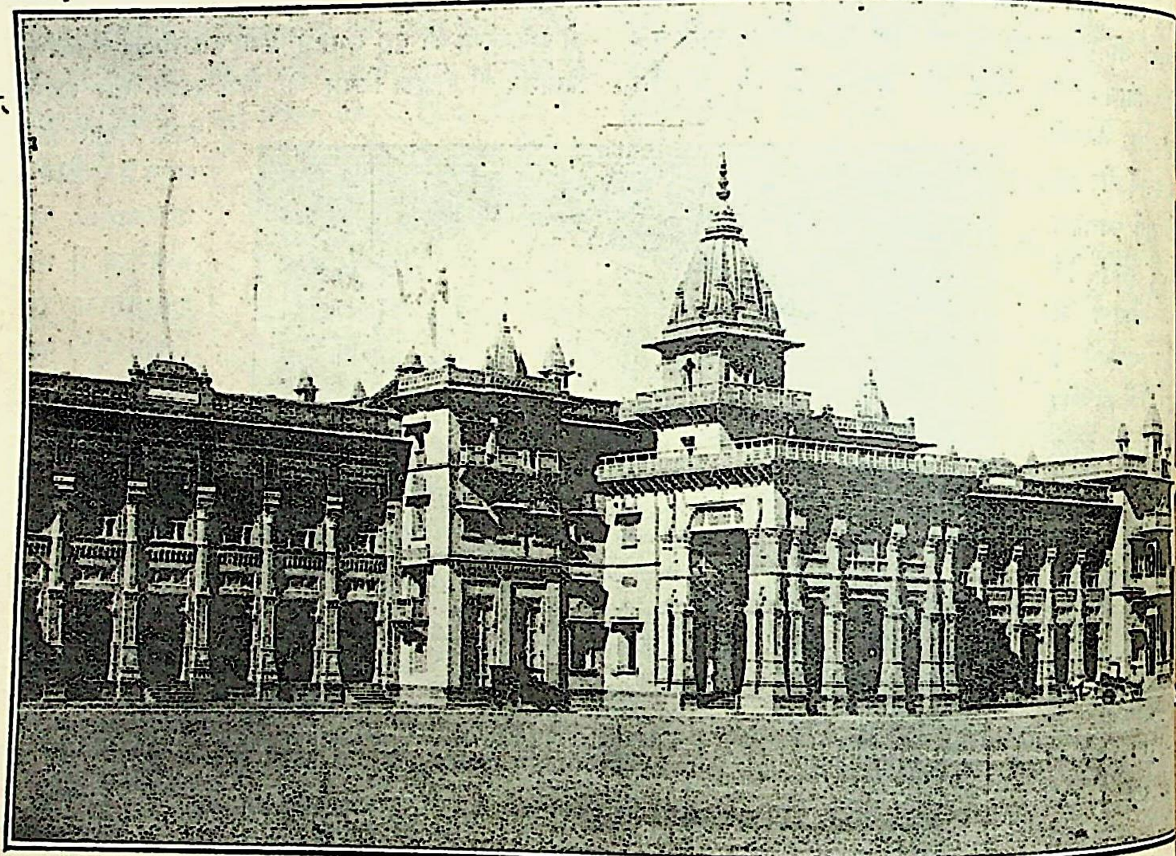
भारतवर्ष में वर्तमान शिक्षा के प्रचार का निश्चय सन् १८३५ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक के समय में हुआ था, और इसका श्रेय लार्ड मैकाले को है; परन्तु इस शिक्षा में हिन्दुओं की संस्कृति-सम्बन्धी शिक्षा के अध्ययन के लिये कोई स्थान नहीं रक्खा गया। उसका तो उद्देश्य ही यह था कि नवीन-शिक्षा द्वारा एक ऐसा समाज बनाया जावे, जो रूपरंग में तो भारतीय हो; पर जिसकी भावनाएँ और आकांक्षाएँ पश्चात्य हों; परन्तु देश के सौभाग्य से शिक्षा-प्रणाली के इन दोषों की ओर नेताओं का ध्यान बहुत शीघ्र गया और ऐसे विद्यालय की चर्चा होने लगी, जहाँ युवकों को हिन्दूधर्म और हिन्दू-संस्कृति से अनुराग उत्पन्न हो सके। पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय ने इस विचार को कार्य-रूप में लाने के लिये कमर कस ली। इसी उद्देश्य से पंडित मालवीयजी ने परलोकगत महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह काशी-नरेश के सभापतित्व में मिन्टहाउस की एक सभा में सन् १९०४ में यह प्रस्ताव रक्खा। सन् १९०५ के दिसम्बर मास में काशी में अखिल भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें आये हुए प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नेताओं और अन्य शिक्षा-प्रेमी सज्जनों के सामने ३१ दिसम्बर को टाउनहाल की एक सभा में पंडित मालवीयजी ने विश्व-विद्यालय की योजना विचार के लिये रक्खी और अगले माह, जनवरी में, प्रयाग में सनातन-धर्म महासभा के अधिवेशन में भी इस योजना पर विचार हुआ। यह निश्चय हुआ कि कम से कम एक करोड़ रुपया इस कार्य के लिये इकट्ठा किया जाय।

इस बीच में सेन्ट्रल - हिन्दू-कॉलेज के बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ की प्रेसीडेंट श्रीमती ऐनी बेसेंट ने भी काशी में 'भारत का विश्व-विद्यालय' स्थापित करने की एक स्कीम तैयार की और बहुत से व्यक्तियों के हस्ताक्षर - सहित विश्व - विद्यालय स्थापित करने का



पूज्यपाद पं० मदनमोहनजी मालवीय, जिनके सतत प्रयत्न से विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ।

आज्ञा-पत्र (Charter) प्राप्त करनेके लिये सन् १९०७ में सरकार की सेवा में एक मेमोरियल भेज दिया। श्रीमती ऐनी बेसेंट के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख हिन्दू भी तत्कालीन दरभंगा-नरेश श्रीरामेश्वरसिंहजी बहादुर की अध्यक्षता में भारत-धर्म-महामंडल की ओर से हिन्दू-साहित्य की शिक्षा के लिये 'शारदा-विश्व-विद्यालय' खोलने का विचार कर रहे थे। संबन्ध में उस समय के वाइसराय लार्ड हार्डिंज और शिक्षा-सदस्य बटलर से मिले और उन्होंने कुछ शर्तों के साथ सहायता का वचन दिया। अनेक व्यक्तियों के साथ विचार-परिवर्तन-स्वरूप कुछ संशोधित और परिवर्तित रूप में नया प्रस्ताव बना और यह निश्चय हुआ कि विश्व-विद्यालय के प्रबन्ध के लिये हिन्दू-विश्व-विद्यालय-सोसाइटी स्थापित की जाय। दिसम्बर १९११ में इस सोसाइटी की रजिस्ट्री



साइन्स कॉलेज

परन्तु एक ही स्थान में, एक ही समय में, तीन-तीन विश्व-विद्यालयों की स्थापना करने में अनेक अड़चनें थीं। इसलिये पंडित मालवीयजी श्रीमती बेसेंट और दरभंगा नरेश से मिले और उनके साथ हिन्दू-विश्व-विद्यालय की योजना पर कई बार विचार किया और अन्त में अपने उद्योग और परिश्रम-द्वारा सन् १९११ में उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। पंडित मालवीयजी और दरभंगा-नरेश इस हो गई। पहली जनवरी १९१२ को सोसाइटी का दफ्तर प्रयाग में खोल दिया गया। महाराज दरभंगा ने सोसाइटी के सभापति और पंडित सुंदरलालजी ने अवैतनिक मंत्री का स्थान ग्रहण किया।

विश्व-विद्यालय के लिए धन इकट्ठा करने का काम मई १९११ में आरम्भ कर दिया गया था, और कुछ ही समय में लगभग ३० लाख रुपयों का वचन मिल चुका

था; परन्तु अक्टूबर के महीने में महाराजा दरभंगा भी डेपूटेशन में शामिल हो गये और उनकी सहायता और सहानुभूति से अन्य कार्यकर्ताओं को बहुत प्रोत्साहन मिला। यह डेपूटेशन बंगाल, बिहार, संयुक्तप्रान्त, मध्यप्रान्त, पंजाब और राजपूताने की कुछ रियासतों में घूमा। जहाँ-जहाँ ये लोग गये, जनता ने इनका शानदार स्वागत किया, इनकी बात बड़े प्रेम से सुनी और हिन्दू-धर्म और हिन्दू-विश्व-विद्यालय की धूम मचा दी। हिन्दू जाति के अन्दर एक प्रबल ज्वार आ गया—अमीर-गरीब, ज़मीदार, राजा-महाराजा, स्त्री-पुरुष, विद्यार्थी, सबने हिन्दू-विश्व-विद्यालय के लिए दान दिया। स्थान-स्थान पर धन इकट्ठा करने के लिये स्थानीय समितियाँ बनाई गईं। १९१३ के नवम्बर के अन्त तक ८२ लाख रुपये से ऊपर के वचन मिल गये और लगभग ४२ लाख रुपया इकट्ठा हो गया।

इस बीच में सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के ट्रस्टियों ने उस कॉलेज को हिन्दू-यूनिवर्सिटी को सौंपना निश्चित कर लिया। उधर सरकार से भी लिखा-पढ़ी चलती रही और सन् १९१५ में बड़ी कौंसिल में हिन्दू यूनिवर्सिटी क़ानून पास हुआ। काशी हिन्दुओं का मुख्य धर्म-स्थान और संस्कृति का केन्द्र होने के कारण यहाँ विश्व-विद्यालय स्थापित करना बहुत पहले ही निश्चित हो चुका था। नगर से दो-तीन मील दूर दक्षिण की ओर पुण्य सलिला जाह्नवी के तट के समीप ४ फरवरी सन् १९१६ को वसन्त-पंचमी के दिन विशेष समारोह के साथ लार्ड हार्डिंज ने हिन्दू-विश्व-विद्यालय का शिलान्यास किया। हजारों गण्यमान्य देशवासी, राजा-महाराजा, ज़मींदार और कई प्रान्तों के गवर्नर यह दृश्य देखने के लिये उपस्थित थे। उन्होंने बड़ी आशा और उत्साह से विश्व विद्यालय का शिलान्यास देखा, उसको आशीर्वाद दिया और उसकी सफलता के लिये परमात्मा से प्रार्थना की। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के इतिहास में वह दिन चिर स्मरणीय रहेगा।

विश्व-विद्याल की इमारतें बनाने के लिये ज़मीन मोल ली गई और सन् १९१८ में सर गंगाराम की देख-रेख में इन इमारतों के बनाने का काम शुरू किया गया। तीन वर्ष के अन्दर कई एक इमारतें बन कर तैयार हो गईं और ग्रेट ब्रिटेन के राजकुमार प्रिंस आफ़ वेल्स ने, जो इस वर्ष भारत-वर्ष में आये हुए थे, सन् १९२१ में विश्व-विद्यालय का उद्घाटन किया। जब तक ये इमारतें तैयार न हुईं, पढ़ाई का कार्य सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज की इमारतों में होता रहा। अब उन इमारतों में सेण्ट्रल हिन्दू स्कूल, रणवीर-संस्कृत-पाठशाला और ट्रेनिंग कॉलेज की पढ़ाई होती है। आवश्यकतानुसार नई-नई इमारतें रोज़ ही बनती जा रही हैं।

हिन्दू विश्व-विद्यालय के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

१—हिन्दुओं के सर्वोत्तम विचार और व्यवहार की तथा उनकी प्राचीन और गौरवमयी सभ्यता के अच्छे-से-अच्छे और प्रसिद्ध गुणों की रक्षा और प्रचार करने के साधन, हिन्दू शास्त्रों और संस्कृत-साहित्य की पढ़ाई का प्रचार करना।

२—आधुनिक आर्ट्स और सायंस की सभी शाखाओं का ज्ञान और उनमें अन्वेषण करना।

३—ऐसी वैज्ञानिक, आर्थिक और व्यापारिक विद्याओं का, उनको काम में लाने की शिक्षा के साथ फैलाना, जिनसे देश में कला-कौशल और व्यापार का प्रचार हो और देश की सम्पत्ति बढ़े। तथा

४—विद्यार्थियों को धर्म और सदाचार की शिक्षा देकर उनको न केवल विद्वान्; किन्तु चरित्रवान् भी बनना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विश्व-विद्यालय में कई एक कॉलेज और उन कॉलेजों के अन्तर्गत शिक्षा के बहुत से विभाग हैं।

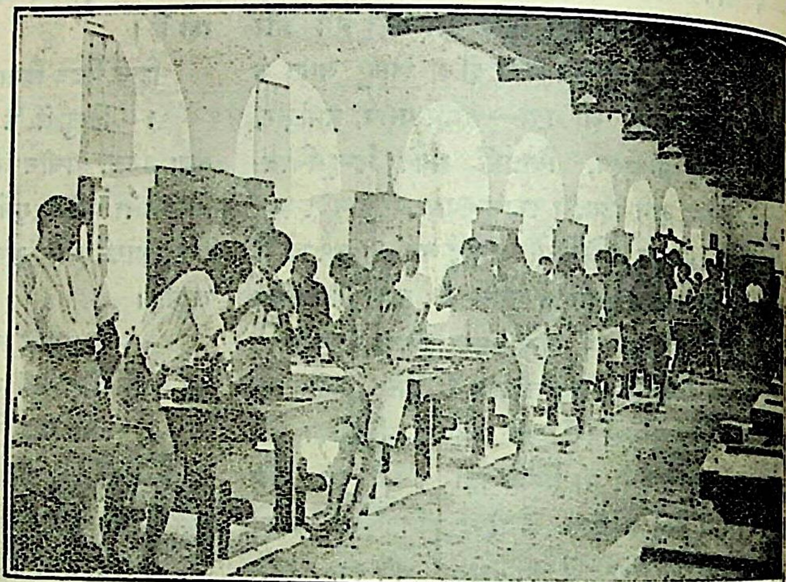
विश्व-विद्यालय के कॉलेज

सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज—इस कॉलेज से विश्व-विद्यालय का आरम्भ होने के नाते यह विश्व विद्यालय का पहला कॉलेज है। इसके दो विभाग हैं—आर्ट्स और सायंस। आर्ट्स विभाग में एम० ए० तक की और सायंस-विभाग में एम० एस्-सी० तक की पढ़ाई होती है। अँग्रेज़ी, हिन्दी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, उर्दू, अरबी, फारसी, बँगला, मराठी, फ्रेंच और जर्मन भाषा; इतिहास, राजनीति, लोकनीति, अर्थशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास तथा गणित-शास्त्र की शिक्षा आर्ट्स विभाग में और रसायन-शास्त्र, भौतिक शास्त्र-

जीव-जन्तु-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, कृषिशास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, औषधि रसायन और व्यापारी रसायन शास्त्र की, शिक्षा—जिसमें विद्यार्थियों को चीनी के बर्तन, खिलौने, शीशा, साबुन, तेल आदि रोज़गारी चीज़ें बनाने की कला सिखलाई जाती है—सायंस विभाग में होती है। व्यापारी रसायन-विभाग में बनने वाली वस्तुएँ बाज़ार में विक्रयार्थ भेजी जाती हैं। इनकी काफ़ी माँग है और कई स्थानों से प्रशंसा-पत्र मिल चुके हैं। वनस्पति और कृषि-शास्त्र-विभाग के साथ अपने अपने उद्यान हैं और जीव-जन्तु, वनस्पति, भूगर्भ-शास्त्र, व्यापारी-रसायन-विभाग में संग्रहालय भी हैं। इतने अधिक आर्ट्स और सायंस के विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध देश के अन्य किसी विश्व-विद्यालय में नहं है। एम. ए. और एम. एस्.-सी. की परीक्षा पास करने के बाद नवीन अन्वेषण करने का भी प्रबन्ध है। जो विद्यार्थी अपने अन्वेषण में सफल होते हैं, उन्हें डाक्टर की पदवी से विभूषित किया जाता है। यह कॉलेज विश्व-विद्यालय का सबसे बड़ा कॉलेज है। इसमें इस वर्ष २२०७ छात्र पढ़ते हैं और उनकी शिक्षा के लिये १०९ शिक्षक नियुक्त हैं।

प्राच्यविद्या कॉलेज—संस्कृत - भाषा में आर्य मस्तिष्क की उपज का जो अनुपम ज्ञान-भंडार उपलब्ध है, उसकी शिक्षा इस कॉलेज-द्वारा होती है। वेद, वेदांग, व्याकरण, साहित्य, न्याय, वेदांत, मीमांसा, सांख्य, योग, ज्योतिष, पुराण, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा यहाँ दी जाती है। इस कॉलेज के धर्म-विभाग में कर्मकांडसहित वेद पढ़ाने का विशेष प्रबन्ध है। शुरू में यह प्रयत्न किया गया था कि गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज विश्व-विद्यालय को मिल जावे और उसी के द्वारा इन विषयों की शिक्षा दी जावे; पर कई कारणों से ऐसा न हो सका; अतएव विश्व-विद्यालय के अन्तर्गत सन् १९१८ में यह कॉलेज खोल दिया गया। यह कॉलेज भारतीय प्राच्य विद्या की शिक्षा का अद्वितीय केन्द्र है।

आयुर्वेदिक कॉलेज—भारत की प्राचीन आयुर्वेद विद्या की शिक्षा का क्रम जारी रहे और साथ-ही-साथ वैद्यों



विश्व-विद्यालय में विद्यार्थी अभ्यास कर रहे हैं।

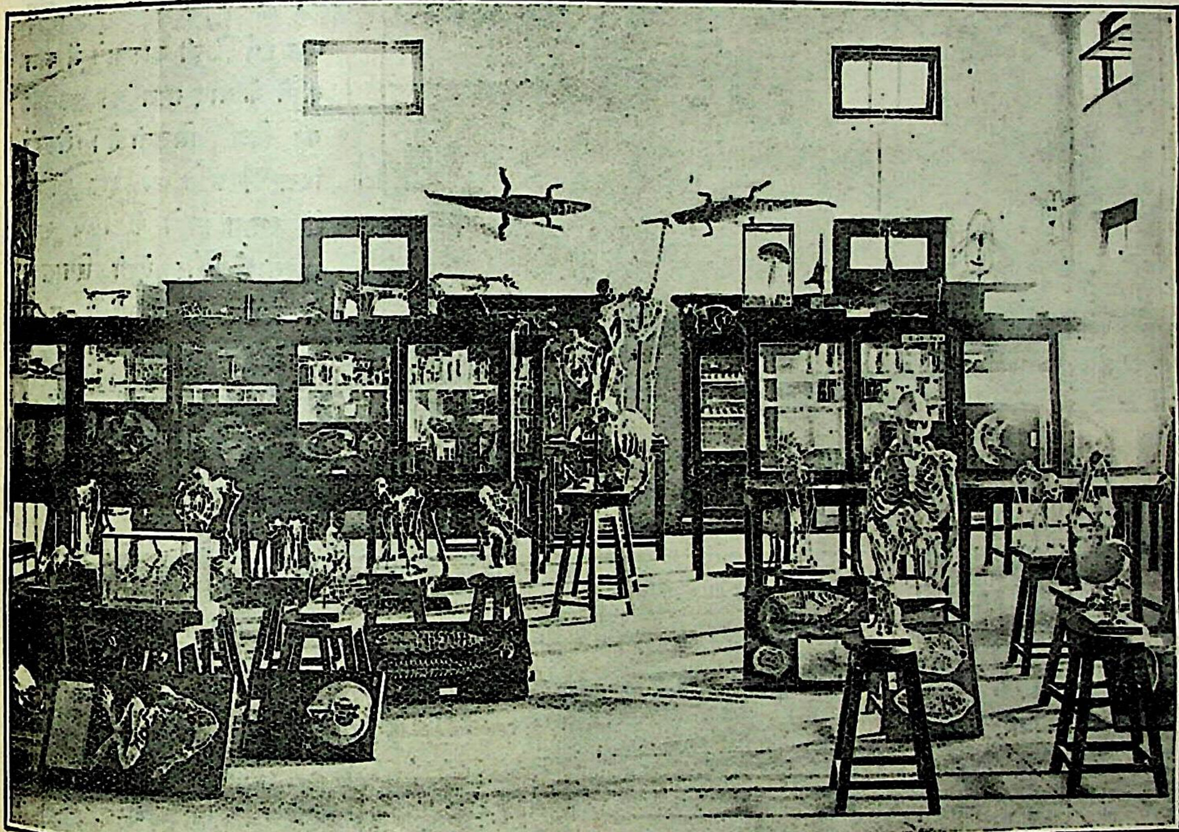
को वर्तमान शल्य-चिकित्सा का भी ज्ञान हो, ताकि वे अच्छे और सफल वैद्य हों, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन् १९२७ से यह कॉलेज आरंभ किया गया है। इसके पूर्व प्राच्यविद्या-कालेज के अन्तर्गत केवल आयुर्वेद की शिक्षा होती थी। इस कॉलेज में छात्र को छः वर्ष पढ़ना पड़ता है। चरक और सुश्रुत के साथ-साथ एलोपैथिक औषधि प्रणाली के अन्तर्गत शरीर-शास्त्र, शरीर-रचना, औषधि-विज्ञान और शल्य-क्रिया आदि का भी ज्ञान उन्हें प्राप्त करना पड़ता है। परीक्षा पास होने पर ही छात्र 'आयुर्वेदाचार्य' कहलाने के अधिकारी होते हैं। आज-कल इस कॉलेज में १४ शिक्षक हैं और लगभग २०० से ऊपर छात्र यहाँ शिक्षा पा रहे है। कॉलेज के साथ एक औषधालय भी है, जहाँ प्राचीन वैद्यक और अर्वाचीन ऐलोपैथिक-पद्धति से रोगियों की परिचर्या होती है। अस्पताल में १०० रोगियों को स्थान देने का प्रबन्ध है। इसके

रोगों के लिये अलग वार्ड बने हुए हैं। इसके साथ एक आयुर्वेदीय उद्यान भी है।

ट्रेनिंग कॉलेज—स्कूलों में अध्यापक का कार्य करने वालों को यहाँ शिक्षा दी जाती है। सारे भारतवर्ष से छाँटकर केवल ५४-५५ चुने हुए छात्र इस कॉलेज में भरती किये जाते हैं। इन विद्यार्थियों पर ही स्कूल में पढ़ने वाले छात्रों की शिक्षा निर्भर रहती है। महिलाएँ भी इस कॉलेज में शिक्षा पाती हैं। छः शिक्षक इन छात्रों को पढ़ाने के लिये नियुक्त हैं। यह कॉलेज कई सुविधाओं के कारण नगर में हिन्दू-स्कूल के साथ रक्खा गया है। छात्रावास भी वहीं है।

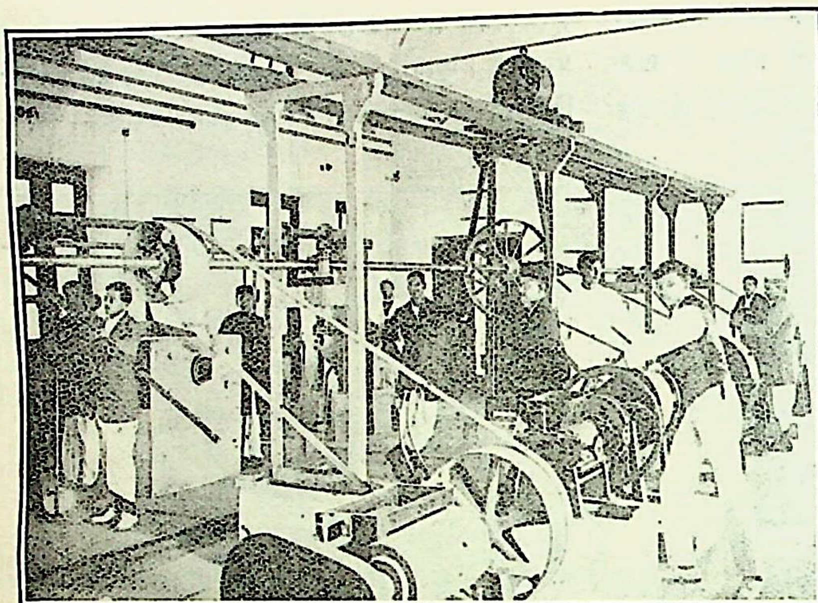
लॉ कॉलेज—इस कॉलेज-द्वारा कानून की शिक्षा दी जाती है। दो वर्ष का कोर्स है। लगभग २५० छात्र इसमें पढ़ते हैं। तीन अध्यापक उन्हें पढ़ाने के लिये नियुक्त हैं। समय-समय पर अवैतनिक अध्यापक भी आकर पढ़ाते हैं।

महिला कॉलेज—स्त्री अध्यापिकाओं-द्वारा स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने के लिये यह कॉलेज खोला गया है। अभी इसमें केवल बी० ए० तक के आर्ट्स विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध है। एम० ए० और विज्ञान के विषय उन्हें सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज में पढ़ाये जाते हैं। गृह-प्रबन्ध, स्वास्थ्य-विज्ञान, बाल-मनोविज्ञान और संगीत-शास्त्र की शिक्षा का महिला छात्राओं के लिये विशेष प्रबन्ध है। इस समय नौ अध्यापक इन छात्राओं को पढ़ाते हैं। इनमें छः स्त्री अध्यापक हैं और तीन पुरुष। बाल-मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान और संगीत की अध्यापिकाएँ न मिलने के कारण अभी यह विषय पुरुष-अध्यापक पढ़ाते हैं। इन छात्राओं की अपनी सभा और



जीव-जन्तुतत्वान्वेषक संग्रहालय

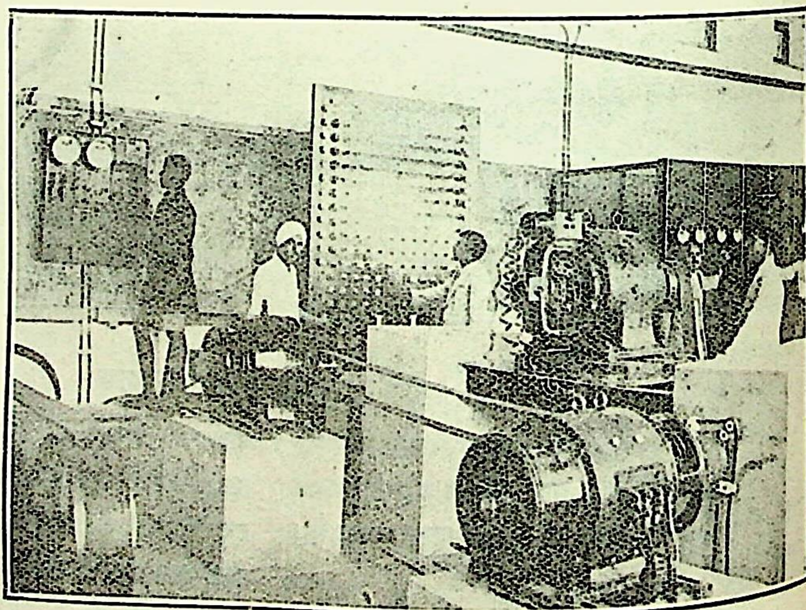
समितियाँ हैं, जहाँ वे इकट्ठी होकर विचारों का आदान-प्रदान करती हैं। ये छात्राएँ एक लेडी सुपरिंटेण्डेंट की, जो डाक्टर भी हैं, देख-रेख में रहती हैं। इनके रहने के लिये अलग



इञ्जीनियरिंग कालेज का यंत्रालय

छात्रावास है। छात्रावास और कॉलेज एक ही इमारत में है। छात्रावास में के हाते में छात्राओं के घूमने, खेलने-कूदने और व्यायाम करने के लिये पर्याप्त स्थान है। इस समय छात्रावास में लगभग ९० छात्राएँ हैं, जिनमें लगभग ५० तो महिला कॉलेज में पढ़ती हैं और शेष सेन्ट्रल-हिन्दू-कॉलेज में। इन महिला-छात्राओं की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती ही जाती है।

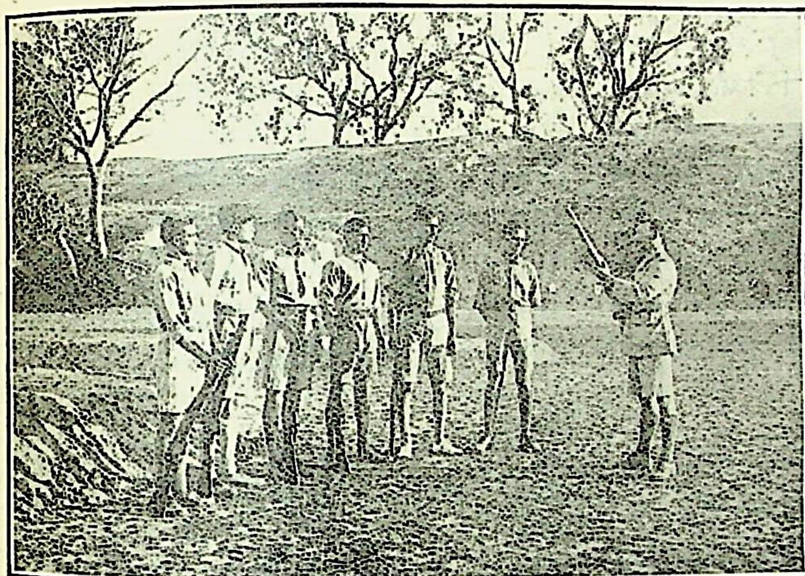
इंजीनियरिंग कॉलेज— समस्त भारतवर्ष में इंजीनियरिंग की शिक्षा का ऐसा कोई कॉलेज नहीं है। इसके द्वारा मैकेनिकल इंजीनियरिंग ; अर्थात्—मशीन और लोहे के पदार्थों के बनाने की विद्या, एलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग, अर्थात्—बिजली की रोशनी का प्रबन्ध और उसके साथ की विद्याएँ पढ़ाईजाती हैं। यहाँ इंजीनियरिंग की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा मिलती है। चार वर्ष कॉलेज में अध्ययन करने और एक वर्ष किसी कारखाने में काम करने के बाद छात्र को सफलता की डिग्री मिलती है। सैकड़ों विद्यार्थी प्रति वर्ष इस कॉलेज में स्थान पाने के लिये सारे भारतवर्ष और देशी रियासतों से प्रार्थना-पत्र भेजते हैं ; परन्तु उनमें से केवल १०० छात्र चुने जाते हैं। इस वर्ष कॉलेजमें ५[illegible] छात्र हैं और २५ अध्यापक।



बिजली घर

जब तक यह कॉलेज नहीं खुला था, यहाँ के विद्यार्थियों को इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिये योरोप, अमेरिका और जापान जाना पड़ता था। अब भारतवर्ष के अनेक नगरों में हिन्दू-विश्व-विद्यालय के इंजीनियर बड़ी सफलता और योग्यता से काम कर रहे हैं।

खान खोदने और धातुओं के गलाने की शिक्षा देने के लिये एक पृथक् विभाग विश्व-विद्यालय में खुला हुआ है। यह विद्या केवल धनबाद की सरकारी संस्था में ही पढ़ाई जाती है; परन्तु विद्यार्थी अधिक संस्था में काशी-विश्व-विद्यालय में ही आते हैं। इस समय ७३ विद्यार्थी इस विभाग में शिक्षा पा रहे हैं और ८ अध्यापक उनकी शिक्षा के लिये नियुक्त हैं।



विद्यार्थी फ़ौजी शिक्षा पा रहे हैं

संगीत-शिक्षा—जो विद्यार्थी संगीत सीखना चाहें, उनके लिये संगीत के अध्यापक नियुक्त हैं। नित्य सायं-काल संगीत की शिक्षा होती है।

फ़ौजी शिक्षा—इस समय १०४ विद्यार्थी फ़ौज़ी शिक्षा पाते हैं। गवर्नमेंट ने इनके लिये एक फ़ौज़ी वर्दी और एक-एक बन्दूक दी है और एक सार्जेन्ट को नियुक्त किया है, जो इनको नियम से फ़ौज की तालीम देता है। प्रत्येक वर्ष इस प्रान्त के विश्व-विद्यालय और कॉलेजों के फ़ौज़ी शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों का जमाव किसी नगर में होता है और उनमें खेल-कूद, कसरत आदि में प्रति-योगिता होती है। सन् १९२४-२५ में पहली प्रतियोगिता हुई थी। सन् १९२५-२६ से लेकर अबतक छः बार हिन्दू-विश्व-विद्यालय के विद्यार्थी प्रतियोगिता में प्रथम रहे हैं। केवल १९२८-२९ योग्यता का पुरस्कार दूसरी जगह के विद्यार्थियों को मिला था।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त विश्व विद्यालय के साथ एक हाई स्कूल भी है, जिसमें १२०० के लगभग लड़के पढ़ते हैं। इतने बड़े स्कूल सारे भारतवर्ष में केवल दो-तीन ही हैं। ६० अध्यापक स्कूल में पढ़ाते हैं। संस्कृत के छोटे विद्यार्थियों के लिये भी एक पाठशाला है, जिसमें १५० के लगभग बालक पढ़ते हैं और १० अध्यापक उन्हें पढ़ाते हैं। एक कन्या-पाठशाला भी है, जिसमें २०० से ऊपर बालिकाएँ पढ़ती हैं। इन्हें पढ़ाने के लिये २४ अध्यापिकाएँ नियुक्त हैं। इन स्कूलों के भवन और छात्रा-वास नगर में ही हैं।

इस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर ऊँची-से-ऊँची शिक्षा-द्वारा विश्व-विद्यालय अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न कर रहा है। विश्व-विद्यालय में सारे भारतवर्ष और कभी-कभी भारत से बाहर के छात्र भी पढ़ने को आते हैं। गरीब और योग्य छात्रों के लिये शुल्क माफ़ कर दिया जाता है और उनके लिये बहुत-सी छात्र वृत्तियों का भी प्रबन्ध है। स्कूल-विभाग को छोड़कर इस समय विश्व-विद्यालय में लगभग ३५०० छात्र हैं और २०० से ऊपर अध्यापक। यहाँ की शिक्षा में व्यावहारिक और व्यवसायी विज्ञान के विषय बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। व्यापारी-विज्ञान (Industrial Chemistry)-विभाग में शिक्षा पाकर कितने ही छात्र रोज़गार में लग गये हैं। इस विभाग में वे तेल, इत्र, साबुन,

लवेंडर, पाउडर, रंग, स्टेल-पेंसिल, चाक, खिलौने, चीनी के बर्तन, चूड़ी आदि अनेक नित्य व्यवहार में आने वाली वस्तुएँ बनाना सीख जाते हैं। इस विभाग ने घी में चर्बी की परीक्षा करने का एक उपाय निकाला है, उसको सीखने के लिये कितने ही म्यूनिसिपल बोर्ड के हेल्थ-अफ़सर यहाँ आ चुके हैं। देशी रियासतें और सरकार भी छात्र-वृत्तियाँ देकर यहाँ काम सीखने के लिये छात्रों को भेजती है। भू-गर्भ-शास्त्र-विद्या तथा खान खोदने और धातु गलाने की शिक्षा के विभाग भी उपयोगी शिक्षा दे रहे हैं। इनके द्वारा भविष्य में देश का बहुत लाभ होगा। इंजीनियरिंग कॉलेज ने अब तक लगभग ५०० इंजीनियर देश को देकर एक बहुत बड़ी देश-सेवा की है और आगे के लिये भी कर रहा है। कृषि के लिये जो नया विभाग खुला है, उसमें अभी कृषि के केवल एक अंग की ही शिक्षा होती है; परन्तु यह आशा की जाती है, कि धीरे-धीरे यह विभाग बढ़ कर पूरा कृषि-कॉलेज बन जावेगा। औषधि-रसायन-विभाग भी नया ही है। इसमें Extract, tincture, pill, pulva आदि बनाने की शिक्षा का प्रबन्ध है। देश में लाखों रुपयों की दवाइयाँ विलायत से आती हैं। इस शिक्षा-द्वारा अवश्य ही ये दवाइयाँ यहाँ बनने लगेंगी और देश का बहुत-सा धन देश में रह सकेगा। कुछ औषधि-विज्ञान-शालाएँ इन औषधियों को बनाकर बेच रही हैं; परन्तु ३५ करोड़ जन-संख्या के देश में ऐसी कितनी ही रसायन-शालाएँ खप सकती हैं। ऐसी अनेकों उपयोगी विद्याओं के प्रचार करने का विश्व-विद्यालय का ध्येय है।

हिन्दी पब्लिकेशन बोर्ड—विश्व-विद्यालय के अधिकारियों का यह भी विचार रहा है कि यथा संभव शीघ्र-से-शीघ्र शिक्षा देशी भाषा के द्वारा ही दी जावे। हाई स्कूल तक की पढ़ाई अँग्रेज़ी को छोड़ कर अन्य विषयों में हिन्दी में होती है। सन् १९३५ से इंटरमीडियेट की शिक्षा भी हिन्दी में होने लगेगी। हिन्दी में किताबें तैयार कराने और उन्हें छपवाने के लिये एक हिन्दी पब्लिकेशन बोर्ड है। इन्टरमीडियेट कक्षा की आर्ट्स और सायंस के कुछ विषयों की पुस्तकें छापी जा चुकी हैं।

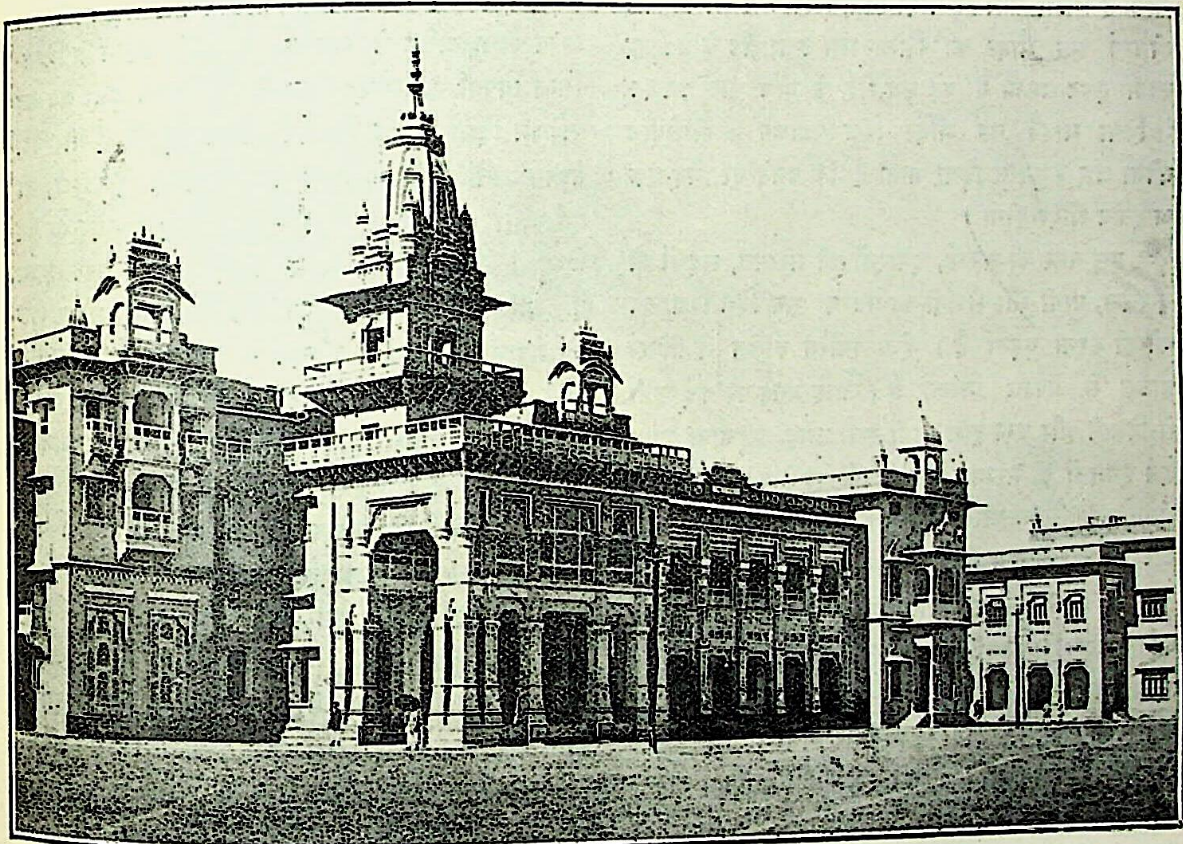
पुस्तकालय—अनेक भाषाओं में भिन्न-भिन्न विषयों की ताज़ी-से-ताज़ी पुस्तकें और मासिकपत्रादि अन्य साहित्य रखने के लिये विश्व-विद्यालय में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है। इस समय लगभग ७०,००० पुस्तकें इस पुस्तकालय में मौजूद हैं। इनमें नित्य काम में आने वाली आवश्यकीय पुस्तकें भिन्न-भिन्न कॉलेजों के विभागों में रहती हैं और बाक़ी पुस्तकें यहीं से लेकर अध्यापक और छात्र काम में लाते हैं। कुछ मूल्यवान प्राचीन चित्र भी पुस्तकालय के पास संगृहीत हैं।

विश्व-विद्यालय-नगर

विश्व-विद्यालय-नगर लगभग २ मील लम्बी और १½ मील चौड़ी १३०० एकड़ भूमि में बसा हुआ है। इस भूमि में २१ मील लम्बी कई सड़कें हैं। इनमें से १३ मील की सड़कें बिलकुल पक्की हैं। २०,००० पेड़ भी इस भूमि में लगाये गये हैं। इनमें से बहुत से पेड़ पल्लव और पुष्प धारण कर फल भी देने लगे हैं। इस भूमि के अन्दर दो बड़े-बड़े आयुर्वेद और वनस्पति-उद्यान हैं, एक कृषि-फ़ार्म है और कई बाग़ अमरूद और आम के हैं। भूमि का कुछ अंश खेल के मैदानों से घिरा हुआ है। कुछ में इमारतें बनी हुई हैं और बचा हुआ भाग खेती के लिये उठा दिया जाता है। नगर की ओर से विश्व विद्यालय में प्रवेश करने पर शुरू के कुछ भाग को छोड़कर शेष भाग में समता का आभास होता है। रहने के मकान यदि एक पंक्ति में हैं, तो दूसरी में छात्रावास बने हुए हैं। इन छात्रावासों के आगे सर्वत्र खेलों का मैदान है और इन मैदानों को पार करने के बाद एक ही पंक्ति में कॉलेजों की इमारतें बनी हुई हैं। इन इमारतों से परे भी ख़ाली मैदान छूटा हुआ है। यह विशे-पता लगभग सर्वत्र ही दिखाई पड़ती है। अब तक विश्व-विद्यालय में १०७ मकान शिक्षकों और कर्मचारियों के रहने के लिये बन चुके हैं और नये भी बन रहे हैं। ये मकान छोटे-बड़े सब तरह के बनाये गये हैं, जिससे अधिक और कम वेतन वालों, सभी को सुविधा हो सके। भिन्न भिन्न कॉलेजों के लिये सात छात्रावास इस भूमि में अब तक बन चुके हैं। इन इनमें एक की अभी एक मंज़िल ही तैयार हुई है। इन छात्रावासों में से एक में महिला-कॉलेज की छात्राएँ रहती हैं। इसी छात्रालय के ऊपर के एक भाग में महिला-कॉलेज

की पढ़ाई भी होती है। प्राच्य विद्या कॉलेज की पढ़ाई भी इस कॉलेज के छात्रावास के ऊपर होती है।

विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये कई बड़े-बड़े भवन बने हुए हैं। इनमें से आर्ट्स कॉलेज में आर्ट्स विषयों की पढ़ाई होती है। प्रो-वाइस चांसलर, रजिस्ट्रार और ख़ज़ाने तथा बुकडिपो भी इस इमारत के ऊपर के एक भाग में हैं। नीचे के खंड के एक कोने के बड़े कमरे में छात्रों के लिये अन्य भवनों के तैयार न होने के कारण रसायन-शास्त्र के अतिरिक्त भूगर्भ-शास्त्र, धातु और खान संबंधी विद्या, औषधि-रशायन और व्यापारी-रसायन की पढ़ाई भी इसी में होती है। व्यापारी-रसायन-विभाग के समीप एक गैस प्लाण्ट भी है, जहाँ गैस तैयार होती है। कृषि-शास्त्र की शिक्षा के लिये एक नई इमारत बनी है और इंजीनियरिंग कॉलेज के लिये कॉलेज, फैक्टरी और वर्कशॉप की इमारतें



आर्ट्स कॉलेज

एक वाचनालय है, और बीच का बड़ा हॉल कथाओं, उत्सवों, वाद-विवाद, नाटक, व्याख्यान और गण्यमान्य शिक्षाप्रेमी और नेताओं के स्वागत में काम आता है। दूसरा भवन भौतिक शास्त्र की प्रयोगशाला है। इसमें भौतिक शास्त्र, जीव-जन्तु-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र की शिक्षा का प्रबन्ध है। तीसरा भवन रसायन-शास्त्र की प्रयोगशाला है; पर हैं। एक नई इमारत इस कॉलेज की अभी बनकर तैयार हुए हैं। इन इमारतों के अतिरिक्त पुस्तकालय का विशाल भवन, शिवाजी-हॉल जो व्यायाम-शिक्षा के लिये बनाया गया है, सर सुन्दरलाल-औषधालय, शल्य-क्रिया-भवन, आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी की भी इमारतें हैं। फ़ौज़ी शिक्षा के लिये एक शस्त्रागार है। डाक और तार-घर की भी इमारत है। कहीं-

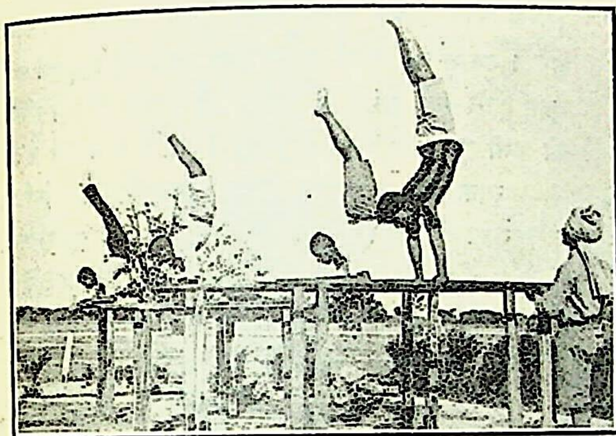
कहीं कुछ दूकानें बनी हुई हैं। आर्ट्स कॉलेज के खेल के मैदान के पार एक एम्फ़ी-थियेटर बना हुआ है, जहाँ बैठकर हज़ारों दर्शक वार्षिक प्रतियोगिता के तथा अन्य उत्सवों के अवसर पर खेल-दौड़-व्यायाम आदि देखते हैं। कभी-कभी फ़ौज़ी क़वायद भी इस मैदान में होती है। डेयरी के लिये भी एक इमारत विश्व-विद्यालय में है, जहाँ कुछ गौएँ रहती हैं। छापाखाना और व्यापारी रसायन के लिये इमारतें बन रही हैं। छोटे बच्चों के स्कूल के लिये भी एक इमारत बनने वाली है। और शीघ्र ही मंदिर-निर्माण का कार्य भी आरंभ होगा। इस मंदिर का शिलान्यास उत्तराखंड के प्रसिद्ध स्वामी कृष्णाश्रमजी ने बड़े समारोह के बीच सन् १९३१ में किया था। यह मंदिर विश्व-विद्यालय के बीचोंबीच बनेगा और अनुमान किया जाता है कि बनने पर यह एक अद्वितीय मंदिर होगा।

इस नगर की सफ़ाई, इमारतों की मरम्मत, सड़कों की देख-रेख, पानी और रोशनी का प्रबन्ध सब विश्व-विद्यालय को ही करना पड़ता है। इंजीनियरिंग कॉलेज के पावर-हाउस से प्रकाश मिलता है। जगह-जगह पर कई कूओं से बिजली और पम्प-द्वारा पानी सब जगह पहुँचाया जाता है। इमारतों की मरम्मत और सड़कों की देख-रेख के लिये इंजीनियर और ओवरसियर नियुक्त हैं। सफ़ाई का प्रबन्ध टाउन-कमेटी के हाथ में है।

इस विशाल विश्व-विद्यालय को देखने के लिये प्रति वर्ष न केवल भारतवर्ष के; वरन् योरप और अमेरिका के हज़ारों यात्री आते हैं। जर्मनी के प्रोफ़ेसर सोमा फ़ील्ड, फ्रांस के सिल्वन लेवी, मान्चेस्टर के प्रोफ़ेसर रामसेम्यो अमेरिका के डाक्टर ह्यूम आदि कितने ही विद्वान् यहाँ आ चुके हैं और उन्होंने विश्व-विद्यालय की सराहना की है। यहाँ के विशाल विद्या-भवन भारतीय वस्तु-कला के आधार पर बनाये गये हैं। इनके ऊँचे-ऊँचे शिखर और स्वर्ण-कलशों से यह प्रतीत होता है कि मानों कई एक मंदिर यहाँ पर बने हुए हैं। सच तो यह है कि ये विद्या भवन मंदिरों के ही समान हैं। हज़ारों कण्ठों से यहाँ नित्य सरस्वती की उपासना होती रहती है। विश्व-विद्यालय की भूमि में प्रवेश करते ही दर्शक नगर के कोलाहलमय स्थान, गन्दी गलियों और अस्वास्थ्यकर आबहवा से दूर एक स्वच्छ, पवित्र, शान्त और आनन्ददायक वातावरण में प्रवेश करता है। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, प्रत्येक वस्तु उसे अपनी ओर आकृष्ट करती है। खुली हवादार जगह में बनी हुई इमारतों, थोड़ी-थोड़ी दूर पर पड़ने वाले चौरस्तों, कहीं-कहीं एक और कहीं दो पंक्तियों में आम, जामुन, कटहल, गोलमोहर आदि वृक्षों वाली सड़कों, हरी भरी दूब-सहित विस्तृत खेल के मैदानों, विद्या मन्दिरों के चमकते हुए स्वर्ण-कलशों आदि अनेकों वस्तुओं को देखकर वह आश्चर्य करने लगता है। पूर्व की ओर प्राच्य विद्या-कालेज से चलकर, मार्ग में विज्ञान के भिन्न-भिन्न विषयों की प्रयोगशालाओं को देखता हुआ जब वह पश्चिम दिशा में इंजीनियरिंग कालेज पहुँचता है और वहाँ तन्मय छात्रों को अपने-अपने कार्य में संलग्न देखता है, तो पूर्व और पश्चिम के इस सुन्दर मेल को देखकर वह हिन्दुओं की इस अद्वितीय रचना की प्रशंसा करने लगता है; परन्तु विश्वकर्मा की कारीगरी से बाहर सुन्दर खुले हुए मैदानों में जो सृष्टि सौन्दर्य है, वह अनुपम है। प्रातः सायं बड़े-बड़े विद्या-भवनों पर पड़ती हुई सूर्य की स्वर्ण-किरणों को देखकर मन नहीं अघाता। चाँदनी रात में चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्सना निराली छटा फैलाती है। और अँधेरी रात्रि में विद्युत्-प्रकाश की जगमग ज्योति से विश्व-विद्यालय जगमगा उठता है। कदाचित् इस सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही यह पूछने पर कि आपको विश्व-विद्यालय कैसा मालूम होता है, एक जर्मन-यात्री ने, जो अपनी नाव को साथ लेकर विश्व के बहुत से भाग में जल मार्ग-द्वारा भ्रमण कर रहा है, हाल ही में कहा था कि मैंने इतना विशाल, इतना सुन्दर, मनोरम और चित्ताकर्षक स्थान अभी तक अपनी यात्रा में नहीं देखा है। यह तो स्वर्ग है। कितने ही व्यक्तियों ने ऐसे ही उद्गार प्रकट किये हैं। सब कुछ देख चुकने पर यही भाव मन में उठता है कि धन्य है वह व्यक्ति, जिसके मन में इसको बनाने की कल्पना उठी, और धन्य हैं वे बड़भागी, जिन्होंने इसकी सहायता की है, कर रहे हैं और करते रहेंगे। और इनसे भी अधिक धन्य हैं वे, जिन्हें यहीं रहकर मन और मस्तिष्क को उन्नत सदाचार में प्रवृत्त और जीवन में सफल बनाने वाली, सरस्वती की आराधना करने का अवसर मिलता है।

स्वास्थ्य और चरित्र-निर्माण

छात्रों के स्वास्थ और चरित्र-गठन का विश्वविद्यालय के अधिकारियों को पूरा ध्यान है। ये छात्र छात्रावास में रहते हैं और इनकी देखरेख के लिये वार्डन नियुक्त हैं। बीमार पड़ने पर छात्रों की दवा का प्रबन्ध डाक्टर करते हैं।

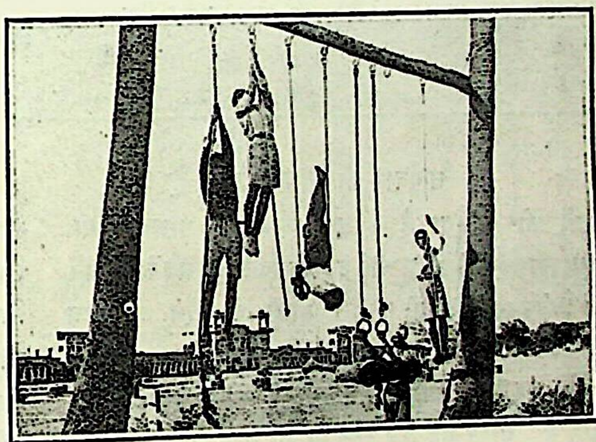


विद्यार्थी व्यायाम कर रहे हैं

प्रति वर्ष एक बार छात्रों के शरीर की डाक्टरी परीक्षा होतीहै। स्वास्थ्य-हित के लिये अनेक देशी और विदेशी कसरतें छात्रों को सिखाई जाती हैं। पैरेल-लबार, होरिज़ेंटल बार, रिंग जमनास्टिक, ब्रिज लैडर, जोड़ी, मालखंभ, लाठी, कुश्ती, कबड्डी आदि कसरतें छात्र करते हैं। तैरना सिखाने का भी प्रबन्ध है। एक बोटिंग क्लब भी है। क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, टेनिस, वालीबॉल आदि खेलों क प्रबन्ध है। बड़े-बड़े मैदान खेलों के लिये छोड़े गये हैं। भारत के अन्य किसी विश्व-विद्यालय में शायद ही खेल के इतने मैदान हों। अवश्य ही इन सबके द्वारा स्वास्थ्य को सहायता मिलती है; परन्तु चरित्र-निर्माण का सबसे बड़ा साधन है—धर्म-शिक्षा, और इसका विश्व-विद्यालय में पूरा प्रबन्ध है। क्लास में व्याख्यानों-द्वारा, एकादशी के दिन कथा-द्वारा और अन्य पर्वों और महोत्सवों पर भी यह धार्मिक शिक्षा छात्रों को मिलती रहती है। भिन्न-भिन्न मतावलम्बियों को अपने धार्मिक उत्सव करने की स्वतन्त्रता है। सनातन-धर्मी, आर्यसमाजी, जैन, सिख आदि सभी अपने धर्म-प्रवर्तकों की जयंतियाँ, वार्षिकोत्सव आदि मनाते हैं। इन उत्सवों में छात्र और अध्यापक सभी भाग लेते हैं। इस प्रकार शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति के साधन विश्व-विद्यालय में उपलब्ध हैं।

विश्व-विद्यालय का जीवन

हिन्दू-विश्व-विद्यालय की अधिक जन-संख्या छात्र और अध्यापकों की है। इनके अतिरिक्त कुछ कर्मचारी भी यहाँ रहते हैं; परन्तु इन सब में आपस में सद्भाव है। सब एक-दूसरे की सहायता के लिये तत्पर रहते हैं। छात्रों और अध्यापकों के बीच अन्य स्थानों की भाँति यहाँ कोई भेद-भाव नहीं दिखाई पड़ता। छात्रों को यह पूरा भरोसा रहता है कि वे चाहे जब सहायतार्थ गुरु के पास पहुँच सकते हैं। यहाँ इस प्रकार का प्रबन्ध किया गया है कि भिन्न-भिन्न जातियों, मतों और प्रान्तों के छात्र एक दूसरे के विचारों को समझें और उन सब में भारतवर्ष की एकता का भाव बढ़े। यही कारण है कि छात्रालयों



व्यायाम का अन्य प्रकार

में छात्रों को स्थान दे समय उनके प्रान्त, जाति और मत का कोई ख़याल नहीं किया जाता। इन छात्रों को छात्रालयों की साहित्य-समितियों, वाद-सभाओं, वाचनालयों, संगीत-समाज आदि में एक दूसरे के समीप होने और उनकी अच्छी बातें सीखने का अवसर मिलता है। विद्यालयों में भी इस प्रकार की समि-

तियाँ हैं। विश्व-विद्यालय की पार्लामेंट यहाँ की एक विशेषता है। पुराने नये सब विद्यार्थियों और शिक्षकों को यहाँ इकट्ठे होकर प्रति शनिवार को अँग्रेजी या हिन्दी में किसी पूर्व निश्चित विषय पर विचार-विनिमय का अवसर मिलता है। बाहर के विशिष्ट व्यक्तियों को भी इसके सदस्यों में सम्मिलित कर लिया जाता है। पार्लामेण्ट के अन्तर्गत प्रतिवर्ष अँग्रेज़ी में जो प्रतियोगिता होती है, उसमें भारत के दूर-दूर के प्रान्तों से छात्र आते हैं। हिन्दी और बँगला में भी ऐसी प्रतियोगिताएँ होती हैं। समय-समय पर देश और विदेश के विद्वानों के अनुभवों को सुनने की भी यहाँ के

तलवार की शिक्षा पा रहे हैं

छात्रों को सुविधा है। कृष्ण जन्माष्टमी, वसन्त पंचमी, (स्थापना-दिवस) होली और उपाधि वितरणोत्सव के अवसरों पर विशेष समारोह होता है। होली के दिन तो छात्र शिक्षकों के यहाँ जाते, आपस में गले मिलते, एक दूसरे पर रंग-गुलाल छिड़कते और आनन्द-विभोर होकर होली मनाया करते हैं; परन्तु यह सब होने पर भी छात्र और अध्यापक तथा कर्मचारी अपने-अपने कर्तव्य में कमी नहीं करते। पढ़ने-पढ़ाने और अन्य कामों के क्रम में कोई शिथिलता नहीं आती। यहाँ का जीवन सीधा-सादा और सांसारिक चिन्ताओं और झंझटों से मुक्त आनन्दमय जीवन है। सारा विश्व-विद्यालय एक बड़े परिवार के समान है और इस परिवार के मुखिया हैं—वाइस चांसलर पंडित मालवीयजी। विश्व-विद्यालय के छोटे-से कर्मचारी से लेकर बड़े-से-बड़े पदाधिकारी का उनके यहाँ प्रवेश है। वे सबकी सुनते हैं और सदा सहायता करने को तैयार रहते हैं।

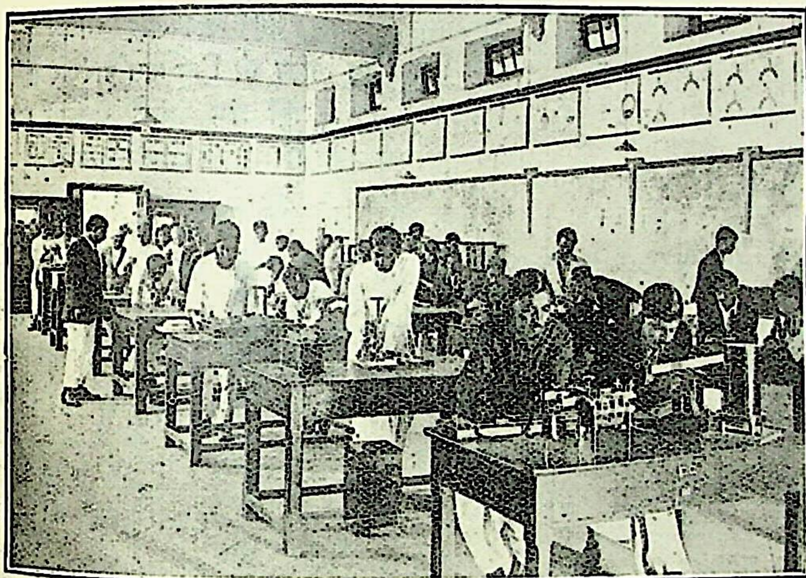
आर्थिक स्थिति

अब तक विश्व-विद्यालय के शुभचिन्तकों, समर्थकों और सहायकों द्वारा, जिनकी संख्या १०,००० से अधिक है और जिनमें गरीब, अमीर, राजे, महराजे सभी शामिल हैं, लगभग १ करोड़ ५१ लाख रुपया मिल चुका है। इतनी बड़ी रक़म इतने अल्प समय में भारत की किसी शिक्षा-संस्था को अभी तक नहीं मिली है। इस निधि में १ करोड़ २८॥ लाख से ऊपर रुपया देशी रियासतों और ब्रिटिश राज्य के निवासियों से और साढ़े २१ लाख सरकार ने दिया है। वचन दिये हुए रुपयों में ३० लाख रुपया वसूल नहीं हो सका है। वसूल किये हुए धन में से विश्व-विद्यालय के एक कानून के अनुसार ५, लाख रुपया विश्व-विद्यालय को अपने स्थायी कोष में रखना पड़ता है, जिसका ब्याज सालाना खर्च के काम में आता है। ३ लाख रुपये के ब्याज से छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं। ३३ लाख रुपये पढ़ाने और सिखाने का सामान इकट्ठा करने में लगे हैं और ६९ लाख रुपये अब तक भूमि का मूल्य देने और इमारतें बनाने में व्यय हो चुके हैं। इस समय देशी राज्यों की स्थायी सहायता, सर-कारी सहायता, विश्व-विद्यालय की जायदाद की आमदनी, शिक्षा और परीक्षा-शुल्क, स्थायी कोष के ब्याज आदि कुल मिलाकर लगभग १० लाख रुपये की वार्षिक आमदनी है, और कुल वार्षिक व्यय लगभग १२ लाख रुपया है। विश्व-विद्यालय के आमद और खर्च के हिसाब का संक्षेप हरसाल जाँच कराकर गजट आफ इण्डिया में छपवा दिया जाता है और उस हिसाब की एक प्रति उन प्रत्येक दाताओं को भेजी जाती है, जिन्हों ने ५००) या उससे अधिक रुपयों से विश्व-विद्यालय की सहायता की है। अभी विश्व-विद्यालय को कितने ही नये कार्यों के लिये धन की आवश्यकता है। व्यय की रकम को पूरा करने के लिये स्थायी कोष बढ़ाने की भी जरूरत है। पंडित मालवीयजी ने हाल में ५० लाख की [illegible] जरूरी कामों की पूर्ति के लिये देशवासियों से की

है। आशा है कि देशवासी अपने इस प्यारे विश्व-विद्यालय के लिये यह रकम शीघ्र ही भेज देंगे।

विश्व-विद्यालय का प्रबंध

विश्व-विद्यालय की स्थापना सन् १९१५ के एक कानून के अनुसार हुई है। उस कानून के अन्तर्गत सरकार-द्वारा स्वीकृत कानूनों और नियमों के अनुसार विश्व-विद्यालय का प्रबन्ध होता है। विश्व-विद्यालय का प्रबन्ध करने के लिये कई सभाएँ हैं; इनमें से फेकल्टी (Faculties) और



विद्यार्थी बिजली-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

बोर्ड आफ स्टडीज़ (Board of studies) द्वारा समर्थन होने पर सेनेट (Senate) पढ़ाई के विषय और क्रम नियत करती है। परीक्षकों की नियुक्ति और परीक्षाओं का प्रबन्ध सिण्डिकेट (Syndicate) के हाथ में है। विश्व-विद्यालय के संपूर्ण आय व्यय का प्रबन्ध, अध्यापकों और अन्य कार्यकर्ताओं की नियुक्ति तथा प्रायः अपने यहाँ का संपूर्ण प्रबन्ध यूनिवर्सिटी कौंसिल (University Council) करती है। इन सब के ऊपर यूनिवर्सिटी कोर्ट (university Court) है। कोर्ट की प्रति वर्ष एक बैठक होती है और उसमें सालभर के कार्यों का विवरण कोर्ट के सदस्यों को सुनाया जाता है। चांसलर, प्रोचांसलर, वाइस चांसलर और प्रोवाइस चांसलर का चुनाव कोर्ट-द्वारा ही होता है। देश के बड़े-से-बड़े विद्वान, देशभक्त नेता और श्रीमंत विश्व-विद्यालय की कोर्ट (प्रधान सभा) के सदस्य रह चुके हैं, या हैं।

श्रीमान् महाराज मैसूर विश्व-विद्यालय के प्रथम चांसलर (प्रधान) ६ वर्ष तक रहे और उनके बाद महाराज गायकवाड़ रहे। ग्वालियर के भूतपूर्व स्वर्गवासी महाराजा सिंधिया पहले प्रो-चांसलर (उपप्रधान) थे और दूसरे महाराजा बीकानेर थे, जो अब चांसलर हैं। इस समय महाराजा जोधपुर और महाराजा बनारस प्रो-चांसलर हैं। विश्व-विद्यालय के पहले वाइस चांसलर सर सुन्दरलाल और दूसरे सर शिवस्वामी ऐयर थे। सन् १९१९ से पंडित मालवीयजी वाइस चांसलर हैं। पंडित आदित्यरामजी भट्टाचार्य प्रथम, पं० मालवीयजी द्वितीय, डाक्टर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती तृतीय और प्रोफेसर आनन्दशंकर-बापूभाई ध्रुव वर्तमान प्रो-वाइस चांसलर हैं।

हिन्दू - विश्व-विद्यालय का आरंभ हुए १७ वर्ष हो गये और इस बीच में जो उन्नति हुई है, वह बहुत संतोषजनक है। जिन महाराजाओं ने और जिन वाइसराय और गवर्नरों ने और जिन विद्वानों, नेताओं और देशभक्तों ने विश्व-विद्यालय का काम देखा है, उन्होंने उसकी उन्नति की बहुत प्रशंसा की है। विश्व-विद्यालय आज संसार में हिन्दू जाति की सबसे बड़ी नियमबद्ध संस्था है, जो प्राचीन गुरुकुल और ब्रह्मचर्याश्रमों के प्रधान उद्देश्यों को ध्यान में रखकर धर्म के उपदेश के साथ नवयुवकों को सुचरित्रवान, विद्वान्, कार्यकुशल और देशभक्त बनाकर संसार की दृष्टि में हमारे देश और जाति का मान बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है।

काशी से निकलने वाले सामयिक पत्र और पत्रिकाएँ

लेखक—श्रीयुत पं० केदारनाथ पाठक

(१८४५ से १९३३ तक)

समाचार-पत्र अंगरेजों के सत्संग का अनूठा उपहार है। सामचार-पत्रों का जन्म यूरोप में हुआ। इसके पहले समाचारों का आना-जाना धावनों, चारणों, और भाटों के द्वारा हुआ करता था। इटली और इंगलैंड को ही इसके जन्म का गौरव प्राप्त है। १६ वीं शताब्दी में वहाँ पत्र-प्रकाशन का कार्य आरंभ हुआ। इस समय उन देशों के पत्र-पत्रिकाओं की तुलना पृथ्वी-मंडल में नहीं हो सकती। भारत में इसका आरंभ अंग्रेजों के पदार्पण के पश्चात् हुआ। सन् १७८० में 'हिक्कीज गजट' तथा १७९३ में 'इंडियन वर्ल्ड' अंगरेजो में प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् सन् १८१६ में 'बंगला गजट' प्रकाशित हुआ।

हिन्दी-गद्य को वर्तमान समुन्नत रूप देने का श्रेय श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी को प्राप्त है। उन्होंने साहित्य के सब अंगों की पुष्टि की ओर पूरा ध्यान दिया। उन्होंने स्वयं लेखनी उठाई। दूसरों को प्रोत्साहन दिया और इस अखाड़े में राजा और रंक, धनी और निर्धन सभी को आमंत्रित किया। साहित्य की धारा भगवती भागीरथी के समान लोगों का जीवन पवित्र करने लगी। उनके भगीरथ प्रयत्न से ही आज हिन्दी भाषा राष्ट्रीय सिंहासन पर बैठने-योग्य हुई। आपने ही समाचार-पत्रों, साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। हिन्दी-साहित्य के प्रथम पत्र का जन्म काशी ही में हुआ। स्त्रियोपयोगी प्रथम पत्रिका भी यहीं से आरम्भ हुई; अतएव काशी नगरी हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं की जन्म-दात्री हुई। इसका इतिहास पूर्णरूपेण आज तक नहीं लिखा जा सका। लोग काशी को त्रैलोक्य से न्यारी कहते हैं; अतः इसका यह इतिहास भी अनूठा होगा। यहाँ इसका दिग्दर्शन-मात्र कराया जायगा।

हिन्दी में सबसे पहले सन् १८४५ ई० के जनवरी में राजा शिवप्रसाद की सहायता से 'बनारस-अखबार' का जन्म हुआ। यह पत्र लिथो में बहुत ही दरिद्र कागज पर छपता था और इसके सम्पादक गोविन्द-रघुनाथ थत्ते, राजा साहब के आदेशानुसार इसका सम्पादन करते थे। इसका मोटो यह था—

'सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुन को चित-हित बारंबार॥
गिरिजापत नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुर को लखो विचार-विचार॥'

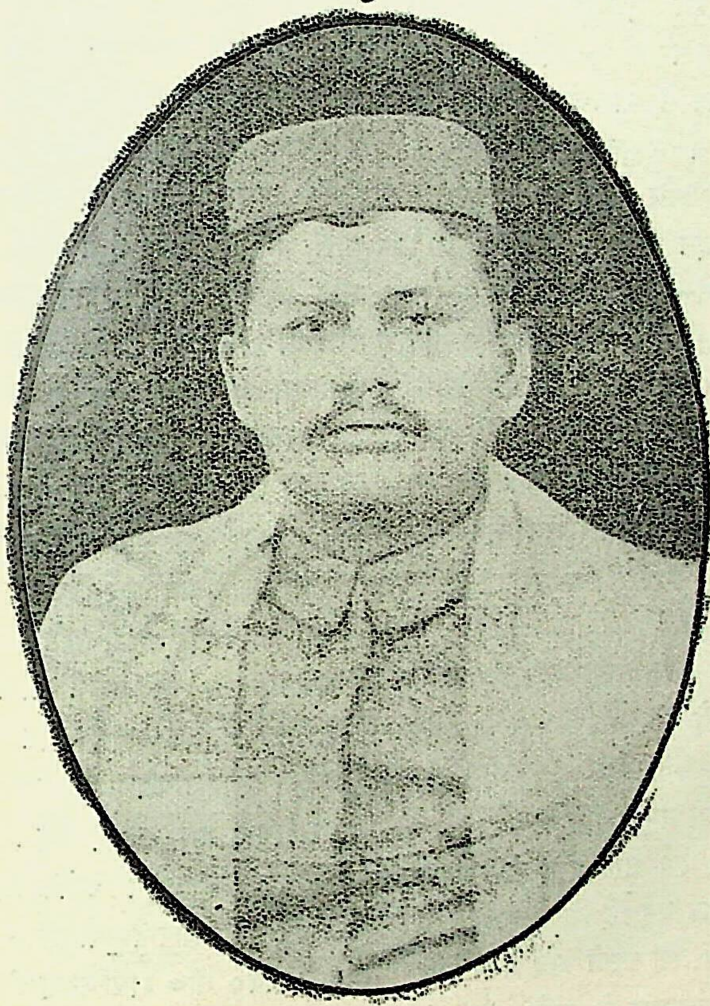
इसकी भाषा न उर्दू न हिन्दी, एक बेढंगे प्रकार की होती थी। पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उसका उद्धरण दिया जा रहा है—

'दूसरी वजह बाइस हफ्ते गुजश्ते की मुहा- तसिम आफताब हिंद यों बयान फर्माते हैं कि सर्कार से मुशाहरा अमलों का मुहकमात माजहत में एकजाई मुकर्रर है व तजवीज़ मुकर्रर मुशाहिरे का अमले मुनहसर पर राय हाकमान मातहत की है इसलिए इस बात में थोड़ी-सी कबाहत है क्योंकि बाज़ अहलकारान गैर मुतअहिद खातिरदारी और दोस्ती की राह से अपने अजीज़ दोस्त को खाब नज़र गरीबपर्वरी एक शख्स के दो या तीन अमले मुकर्रर कर देते हैं गरज़ इससे यह कि मुमदूह अलेह को उनकी परवरिश मंजूर रहती है इस वास्ते एक मुशाहीरा मुकर्रर ... इसमनवीसी उनकी कर लेते हैं।'

इसके विषय में काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् फारसी भाषा के अद्वितीय पंडित, श्री काशीराज महाराज के विद्या-गुरु, मुन्शी शीतलसिंह साहब ने एक रुबाई बनाई थी, जो यह है—

'बनारस में इक जो बनारस गजट है,
इबारत सब उसकी अजब ऊटपट है;
मुहर्रिर विचारा तो है बासलीका,
वले क्या करे वह कि तहरीर भट है।'

इस कमी को पूरा करने के अभिप्राय से सन् १८५० ई० में कुछ सुधरे हुए ढंग पर हिन्दी भाषा में काशी से तारामोहन मित्र आदि सज्जनों ने 'सुधाकर' नाम से हिन्दी भाषा का पहला पत्र प्रकाशित किया। इस 'सुधाकर' पत्र के विषय में एक अद्भुत घटना सुप्रसिद्ध है। जब उक्त पत्र का जन्म हुआ, तब ज्योतिषियों के बादशाह पं० 'सुधाकर' जी का भी जन्म हुआ। ज्योंही पंडितजी के चचा को डाकिये ने हाथ में 'सुधाकर' पत्र दिया, त्योंही घर के भीतर से मजदूरिन ने आकर कहा—आप को भतीजा हुआ, बधाई है! उन्होंने कहा—अच्छा, पुत्र का नाम सुधाकर हुआ। यही महानुभाव संस्कृत कॉलेज के प्रधान अध्यापक महा महोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी थे।



स्व० बाबू व्रजचन्द्रजी

प्रातः स्मरणीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र हिन्दी भाषा को पुनर्जन्म देने में अग्रसर हुए और 'विद्यासुंदर' आदि कई एक सुंदर-सुंदर ग्रंथों की रचना की। 'काव्य समाज', 'तदीय समाज', 'सार्वजनिक सभा' आदि स्थापित की। उस समय उनके हृदय में हिंदी में समाचार-पत्र का अभाव खटकने लगा और सन् १८६८ ई० में 'कविवचन-सुधा' नामक पत्र प्रकाशित किया। सरकार ने भी इस पत्र की सहायता की और इसकी १०० प्रतियाँ लेने लगी। पहले यह मासिकपत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ और प्राचीन-नवीन कविता के अनेक ग्रंथ छपते रहे; परंतु थोड़े ही दिन पीछे दीन प्रजा के दुःखों को

जानकर इनका हृदय ऐसा दुखा कि इस प्रांत में एक राजकीय पत्र का होना आवश्यक समझा। 'कवि-वचन-सुधा' को पाक्षिक करके इन्होंने राजा और प्रजा दोनों के उपकारी लेख, पूर्ण स्वाधीन भाव से, लिखने आरंभ किये। यद्यपि इस समय हाकिमों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और ये आनरेरी मैजिस्ट्रेट आदि पदों से सम्मानित थे; परंतु इन सब बातों की कुछ भी चिंता न करके—और उस समय इस प्रांत में स्वाधीन-हृदय सुशिक्षित व्यक्तियों की सहायता का अभाव होने पर भी—इन्होंने पूर्ण स्वाधीन तथा स्वतंत्र भाव से राजकीय विषयों पर कलम उठाई। 'कवि-वचन-सुधा' (मासिक) के उद्देश्य कैसे महत्, उदार और स्वाधीन भावपूर्ण थे, यह आप लोग उसके इस सिद्धांत-वाक्य (मोटो) से भलीभाँति जान सकेंगे—

'खलगनन सों सज्जन दुखी मति होहिं हरि-पद मति रहै।
उपधर्म्म छूटैं सत्व निज भारत गहै कर दुख बहैं॥
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होहिं जग आनँद लहै।
तजि ग्राम-कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥'

पाक्षिक 'कवि-वचन-सुधा' का सिद्धान्त पढ़कर किसका मन सुधा के पान करने का न होगा!

'नित-नित नव यह कवि-वचन-सुधा सकल रसखानि।
पीवहु रसिक अनन्द भरि परम लाभ जिय जानि॥
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहि तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग॥'

तनिक इसकी भाषा का भी नमूना देखिये—

'गत बुढ़वामंगल में एक बात ऐसी अपूर्व हुई थी सर्वदा स्मरण रहै वह यह है कि शुक्र के दिन वायु इस वेग से बहती थी कि उसने सब मेला इधर उधर कर दिया और रामनगर के नीचे नावों का पहुँचना असम्भव हो गया वरन श्री महाराज विजयनगर के कच्छे इसी पार रह गये परन्तु श्री महाराज काशीराज ने जब देखा कि कच्छे आगे नहीं हटे तब अपने हाथियों के बुलवा भेजा आज्ञा होते ही बड़े-बड़े मतंग नंग-धिड़ंग झूमते हुए एक संग गंगाजी में हल गये। कोई तो अपने दातों से दबाता था और कोई शिर से ठोकर देता था और कोई पुट्ठे का बल लगाता था और कोई अपने दाढ़ों से कच्छों की कोर पकड़कर खींचता था, निदान यह कौतुक और शोभा देखने ही के योग्य थी लिखो नहीं जा सकती।'

ज्यों-ज्यों सर्वसाधारण की सहानुभूति मिलती गई, त्यों-त्यों सुधा की उन्नति में उत्साह बढ़ता गया और यह साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा। थोड़े ही दिनों में इसका गुण सारे संसार में फैल गया और चारों ओर से आदर होने लगा। सन् १८७०ई० में फ्रांस देश के जगत् विख्यात् विद्वान् गार्सिन डी टासी ने अपने प्रसिद्ध पत्र Le Langue में इसके विषय में लिखा था, उसका भावार्थ यह है—

'बाबू हरिश्चन्द्र, जिन्हें हिन्दी-साहित्य के उत्थान की पक्की धुन है, कवि-वचन-सुधा में अपना हिन्दी-कार्य बराबर प्रकाशित करते रहते हैं।'

धीरे-धीरे पत्र सर्व-प्रिय हो गया; परन्तु भारतेन्दुजी की उन्नति देख उनसे जलने वाले भी संसार में थे। उन्होंने तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर 'सर विलियम म्योर' के कान भरे। 'मर्शिया' और 'लेवी प्राणलेवी' शीर्षक पत्र पर सरकार नाराज हो गई। चट सहायता बन्द कर दी गई; परन्तु इससे उसकी सर्व-प्रियता बढ़ गई। अनेक हिन्दी-लेखकों ने इस सुधा में अपनी लेखनी डुबो कर गौरव और सम्मान पाया। स्व० गो० राधाचरणजी, बा० गदाधरसिंह,*

* पाक्षिक 'कवि-वचन-सुधा' में उनका अनुवादित 'नितम्बिनी' नाटक निकला, जिसका पता आधुनिक साहित्य-संसार को एक दम नहीं था।—लेखक

लाला श्रीनिवासदास, बाबा सुमेरसिंहजी साहबजादे, बाबू नवीनचन्द्र राय, म० म०पं० दामोदरदास शास्त्री, पं० बिहारीलाल चौबे, बा० राधाकृष्णदास आदि 'कवि-वचन-सुधा' के प्रसाद हैं। मि० सेरिंग, मि० ग्रीफिथ, स्वा० दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा उनके तत्कालीन योरोपीय विद्वानों ने इसमें लेख लिखे हैं।

यह समय पर प्रकाशित नहीं होता था, इसलिए पं० चिन्तामणि-बालकृष्णजी धड़फले के आग्रह से बाबू साहब ने प्रकाशन-भार उन्हें सौंप दिया। अनेक वर्ष-पर्य्यन्त श्री भारतेन्दुजी इसके प्रधान लेखक थे। सन् १८८३ ई० में 'इलबर्ट बिल' का आन्दोलन उठा। पत्र ने राजा शिवप्रसादजी का पक्ष लिया। देशभक्तों ने हाथ खींच लिया, इस कारण रोचकता नष्ट हो गई। अपने जन्मदाता भारतेन्दुजी के देहावसान पर सब पत्रों ने शोक प्रकाशित किया; परन्तु इसने अपना अंग काला न किया। यद्यपि उसी वर्ष के अन्त में सदैव के लिए अपना मुँह काला कर चल बसा।



स्व० बाबू कृष्णचन्द्रजी

पूज्य भारतेन्दुजी ने काशी से स्त्रियों के लिए 'बाला-बोधिनी'(१८७४) तथा नवयुवकों के हेतु 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' अँग्रेजी-हिन्दी (१८७३) तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७४ ई०) मासिक प्रकाशित किये। इनमें 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' की दशा 'कवि वचन सुधा'-सी हुई।

यहाँ 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका तथा 'बाला-बोधिनी' का एक उद्धरण इस लिये प्रकाशित किया जा रहा है, कि तत्कालीन भाषा का पाठकों को समुचित रूप से बोध हो जाय।

हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका का सिद्धान्त यों था—

विद्वत्कुलामल स्वान्त्व कुमुदा मोददायिका।
आर्य्या ज्ञान तमो हन्त्री श्री हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका॥

'कविजन कुमुद गन हिय विकास चकोर रसिकन सुख भरै,

प्रेमिन सुधा सों सींचि भारत भूमि आलस तम हरै ;
उद्यम सु औषधि पोसि विरहिन दाहि खल चोरन दरै,
हरिश्चन्द्र की यह चन्द्रिका परकासि जग मंगल करै।

श्रीहरिश्चन्द्र-चन्द्रिका

'गाना, बजाना, बताना और नचाना इसके समुच्चय को संगीत कहते हैं प्राचीन काल में भरत, हनुमान, कलनाथ और सोमेश्वर यह चार मत संगीत के थे कोई-कोई शारदाशिव का स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्तसम्यक् प्रकार से जो गाया जाय, इसे संगीत कहते हैं। धातु और मातु संयुक्त सब गीत होते हैं।'

'बाला बोधिनी' के सिद्धान्त (मोटो) से ही उसका आदर्श सूचित हो जाता है—

जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
नारी जो सोई पुरुष, यामैं कछु न विभक्ति॥
सीता अनसूया सती, अरुन्धति अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण, लहौ सकल जग नारि॥
पतु, पति, सुत-कर तल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ैं-गुनैं सीखैं-सुनैं नासैं सब जग सोग॥
वीर प्रसविनि बुध वधू होइ हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की-साँचोहि स्वामिनि होय॥

ठीक समय पर प्रकाशित करने के अभिप्राय से सन् १८८० में चन्द्रिका का पं० मोहनलाल-विष्णुलाल पंड्या ने अपने हाथों में ले लिया और 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका और मोहन-चन्द्रिका' के नाम से प्रकाशित करना आरंभ किया। पहले साल काशी से ही प्रकाशित होती रही और दूसरे वर्ष श्रीनाथजी से पं० दामोदर शास्त्री के संपादकत्व में प्रकाशित होने लगा, जिसमें उन्होंने अपना 'विद्यार्थी' नामक (संस्कृत) पत्र भी सम्मिलित कर दिया, जिससे उसकी वह रोचकता जाती रही। जब उद्देश्य की सिद्धि पूरी न हुई, तब भारतेन्दुजी के अनुरोध से बा० राधाकृष्णदासजी ने १८८४ ई० में उसको 'नवोदिता हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' का नाम दे कर प्रकाशित करना आरंभ किला।

सन् १८७६ में श्री भारतेन्दुजी के उत्साह से ही बा० बालेश्वरप्रसादजी बी० ए० ने 'काशी-पत्रिका' को जन्म दिया। वास्तव में यह पत्रिका विद्यार्थियों के लिये थी। इसकी भाषा उर्दू और अक्षर हिंदी में थे। सत्य-हरिश्चन्द्र आदि नाटक पहले इसी में निकले थे। जब बा० बालेश्वरप्रसादजी डिप्युटी कलेक्टर हो गये, तब इसके संपादक तथा संचालक स्वर्गीय पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० हुए। इन्हीं दिनों स्वनामधन्य ई० जे० लाजरस साहब ने साप्ताहिक संस्कृत 'पंडितपत्र' को जन्म दिया। जिसके लेखक प्रायः स्थानीय क्वीन्स कॉलेज के संस्कृत-विभाग के विद्वान् रहा करते थे। इसके अधिकांश ग्राहक जर्मनी, फ्रांस तथा इंगलैंड के थे। प्रायः कई एक वर्ष इसने दर्शन दिये। इसमें उत्तमोत्तम चीज़ें प्रकाशित हुई हैं। अनुमानतः इसके बन्द होने का कारण यही कहा जा सकता है कि इसके कुल ८० ग्राहक थे।

वास्तव में भारतेन्दुजी ने काशी-वासियों के हृदय में समाचार-पत्रों के प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया था। सन् १८८४ ई० में काशी से बा० रामकृष्णजी वर्मा के संपादकत्व में सुप्रसिद्ध साप्ताहिक 'भारत-जीवन' प्रकाशित हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि काशी से सन १८८४ में श्री बिहारीसिंह के संपादकत्व में भी 'काशी-समाचार' दामोदर विष्णु सप्रे के संचालन में 'मित्र' पं० कृष्णरामजी पंजाबी (स्वामी दर्शनानन्द) के उद्योग से 'तिमिर-नाशक' नामक साप्ताहिक-पत्र प्रकाशित हुए ; परन्तु इनका आयुष्य मारकण्डेयजी जैसा न था। इससे साप्ताहिकों में सर्वश्रेष्ठ सेवा करते

का श्रेय भारत-जीवन को ही प्राप्त हुआ। ४० साल के लगभग तक इसकी लोकप्रियता स्थिर रही। इसके अतिरिक्त प्राचीन काव्य-ग्रन्थों तथा नाटक-उपन्यास आदि का प्रकाशन करने के कारण हिन्दी भाषा-भाषी भारत-जीवन प्रेस के सदा ऋणी रहेंगे।

स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास ने सन १८८२ में मासिक वैष्णव-पत्रिका निकाली, फिर वही पत्रिका सन् १८८४ में पीयूष-प्रवाह के नाम से प्रकाशित होने लगी। इसमें सुरुचि-पूर्ण लेखों-द्वारा अच्छी सेवा होती रही। बाद में आधुनिक नवयुवक सु-लेखक चिरंजीवी श्रीविनोदशंकर व्यास के पूज्य पिता स्वर्गीय कालीशंकर व्यास ने उक्त व्यासजी के स्मारक में पुनः जन्म दिया और स्वयं सम्पादन करने लगे। शोक है कि सात ही आठ महीने के उपरान्त इस होनहार युवक सम्पादक की मृत्यु हो गई। यह पत्रिका बड़े ही चहल-पहल से, हास्यरस से लबालब भरी रहती थी। इसके पाठकों का प्रवाह में अधिक मनोरंजन होता रहा। उन दिनों लोग धार्मिक भाव से अधिक मस्त देख पड़ते थे। जिससे सर्वसाधारण हिन्दू जनता ने 'पीयूष प्रवाह' का आदर किया; अतएव काशी से १८८८ में 'धर्म-सुधा-वर्षन' तथा 'धर्म प्रचारक' दो मासिक-पत्र और प्रकाशित हुए। पहले के सम्पादक थे—कुल एजेस्वी शास्त्री (?) और दूसरे के—स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी। सनातन धर्मावलम्बियों के इस प्रयास को देखकर भला श्रीभूतनाथ मुकर्जी ऐसे धार्मिक महानुभाव कैसे चुप रह सकते थे। उन्होंने सन् १८९२ मे 'आर्य-मित्र' के रूप में दर्शन देही दिये। थोड़े समय तक इस धार्मिक होड़ में खासा आनन्द आता रहा। १९ वीं शताब्दी के अन्त में सप्ताहिकों में काशी के ओजस्वी लेखक गो-सेवक जगतनारायण-द्वारा 'गो-सेवक' पत्र का जन्म हुआ। इसकी भाषा बड़ी जोरदार होती थी। सन् १८९४ में पश्चिमोत्तर प्रान्त में गोहत्या-सम्बन्धी अनेक नगरों में हिन्दू-मुसलमानों के बीच में भारी दंगे हुए। जिससे सरकार ने इस प्रान्त से उक्त गो-सेवकजी को बदर कर दिया और वे बम्बई में जाकर रहने लगे। वहाँ से भी 'धर्मामृत' नामक मासिक-पत्रिका को जन्म दिया और गुजराती में 'गोरक्षा' नामक पत्र निकाल के गोरक्षा पर आन्दोलन करते रहे। इसके बाद श्रीमोहिनीलाल गुप्त के सम्पादकत्व में मास्टर हनुमानप्रसाद ने 'व्यापार-हितैषी' (साप्ताहिक) विशेष उद्देश्य को लेकर प्रकाशित किया। उक्त गुप्तजी अनोखे व्यक्ति थे। ये काशी के कतिपय वर्तमान सुलेखकों, साहित्य-सेवियों के गुरु थे। अथवा प्रसिद्ध विद्वानों के पथ-प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। १९०८ में 'व्यापारी और कारीगर' साप्ताहिक तथा १९११में 'वाणिज्य-सुखदायक' मासिक बहुत ही उपयोगी निकले। व्यापारी और कारीगरी के सम्पादक थे—बाबू दुर्गाप्रसाद बी० ए० के बड़े भाई—बाबू ठाकुरप्रसादजी खत्री। ये बड़े कार्यकुशल और परिश्रमी व्यक्ति थे। 'विनोद-वाटिका' नाम को मासिक-पत्रिका के भी यही सम्पादक और प्रकाशक थे। इसमें अनेक उपयोगी लेखों के अतिरिक्त जार्ज विलियम रेनाल्ड्स के प्रसिद्ध उपन्यास 'मिस्ट्रिज आफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' को अनुवाद करके निकालते रहे। उक्त साप्ताहिक-पत्र की बहुत-सी कापियाँ गवर्नमेंट भी खरीदकर अच्छी सहायता पहुँचाती थी। साथ ही निज प्रकाशित कला-कौशल-सम्बन्धी पुस्तकें तथा रिपोर्ट से भी सहायता करती रही। ये अपने पत्रों के नाम के अनुकूल व्यापारी सामग्री एकत्र करने में बड़े प्रवीण थे। इनके जीवनकाल में कारीगरी का विशेष स्थान रहा। इनके अस्वस्थ रहने पर दोनों पत्र बन्द हो गये।

साप्ताहिकों में स्व० श्री केशवदेव शास्त्री के 'नव-

जीवन' ने विलायत-यात्रा पर भारी आन्दोलन उठाया, जिससे जनता में भारी हलचल मच गई—विषेशतः अग्रवाल जाति में। श्री भागवतप्रसाद-द्वारा सम्पादित 'भारत-भूषण' अणोजी का 'काशी-वैभव' (मराठी) तथा पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर-द्वारा सम्पादित 'भारतेंदु' अल्पायुष्य प्रकट हुए। भारतेंदु हरिश्चन्द्रजी के भ्रातृष्पुत्र स्वर्गीय श्री बाबू कृष्णचन्द्रजी तथा बाबू ब्रजचन्द्रजी ने १९०९ में भारतेन्दु-प्रेस खोलकर पूज्य पितृव्य की स्मृति-रक्षा का अनूठा प्रयास किया। भारतेन्दु-संगीत नाटक-मण्डली भी उन्हीं के सुप्रयास का एक मधुर फल है। 'भारतेंदु' होनहार पत्र था। इसके ओजस्वी संपादक का अग्रलेख "वन्देमातरम्" वास्तव में अभिनन्दनीय था। यद्यपि इसके १० अंक ही प्रकाशित हुए, फिर भी हिन्दी-जगत् को इस पत्र के द्वारा एक नवयुवक, होनहार, सुलेखक अनायास प्राप्त हो गया। पं० साँवलजी नागर का प्रथम लेख, इस लेखक के प्रोत्साहन से इसी 'भारतेन्दु' में प्रकाशित हुआ। इन दिनों नागरजी अपने पूज्य पिताजी के ऋग्वेद के अनुवाद को प्रतिलिपि करने में व्यस्त रहते थे। काशी-अग्रवाल-स्पोर्ट्स क्लब-द्वारा १९०६ में 'भारतेन्दु' मासिक-पत्र भी निकलने लगा था। इसके पाँच सम्पादकों में प्रोत्साही स्वर्गीय बाबू ब्रजचंद्रजी (डा० बाबू भगवानदासजी के दामाद) भी थे। १९०८ में नागेश्वर-प्रेस से स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी के सम्पादकत्व में उक्त पत्र का पुनर्जन्म हुआ। पहले-पहल के अंक बड़े ही हास्य-रस-पूर्ण निकले थे। श्री साँवलजी नागर पर आपके साहित्यानुराग का भारी प्रभाव पड़ा है, जिससे उनका हिन्दी-अनुराग दिनों-दिन बढ़ता गया। पत्रिकाओं में वे तभी से लेख लिखा करते हैं।

हिन्दी-भाषा के साप्ताहिकों को देखकर कृष्णजी आवाजी ने 'कालीदास' नामक मराठी साप्ताहिक काशी से प्रकाशित किया। इस पर राज-द्रोह का केस चला। जिससे यह बंद हो गया। इसी साल १९०९ में 'इण्डियन अपील' नाम का अँग्रेजी साप्ताहिक भी काशी से प्रकट हुआ। शशिशेखरेश्वर राय ताहिरपुर नरेश ने 'त्रिशूल' नामक बँगला-हिंदी साप्ताहिक को जन्म दिया, जो आगे चलकर मासिक रूप में निकलने लगा। हाल ही में श्री सत्येन्द्रचन्द्र के सम्पादकत्व में 'अग्रदूत' साप्ताहिक-रूप प्रकट हो रहा है जिसकी भाषा बँगला और हिन्दी है; पर इसका उद्देश्य नोटिसबाजी प्रतीत होता है। 'लुक आउट' (अँग्रेजी मासिक) आर० पी० सान्याल-द्वारा हालही में निकला है। हास्य-रस में सराबोर करने को सदिच्छा से श्री महादेवसिंह का 'मौजी' और श्री बालचन्द अग्रवाल का 'भूत' काशी से प्रकाशित हुए। 'भूत' को साकार रूप देने का श्रेय था 'उग्र' जी को। निखट्टूजी तथा गौड़जी सहायक बने रहे। 'हिन्दी-केसरी' 'सूर्य' 'ब्राह्मण-सम्मेलन' उर्फ 'पंडित-पत्र' 'हरिजन-मित्र' तथा 'सनातन-धर्म' विशेष ध्येय की पूर्ति का उद्योग करने के लिये प्रकाशित हो रहे हैं। साप्ताहिकों में सार्वजनिक, सर्वप्रिय, समादरणीय साप्ताहिक 'जागरण' ही प्रसिद्ध हो रहा है। हिन्दी के सुख्यात कहानी-लेखक विनोदशंकर व्यास के प्रयास का यह फल है। पाक्षिक रूप में वह पूरा साहित्यक रहा; परन्तु साप्ताहिक आवरण पहन कर वह सार्वजनिक हित की दृष्टि से जनता की सेवा कर रहा है। 'सनातन-धर्म' को पूज्य मालवीयजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है।

पाक्षिकों में श्री लक्ष्मण-बलवन्त पावगी के हित-चिन्तक-प्रेस से 'हितचिंतक' इनकम टैक्स के ढोल की [illegible] को निकला था। जिसने शिवपुरी

काशी में भारी सन-सनी फैला दी। चुन्नीलाल मालवीय का 'गोरक्षण', जैन विजय सूरीजी का 'जैन-शासन', जे० पी० चौधरीजी का 'सद्धर्म-प्रचारक', राजितसिंह का 'यादव', एक प्रकार से सामयिक पत्र थे। 'सूर्योदय' और 'सुप्रभातम्' संस्कृत पण्डितों के पत्र थे। मातृ-भाषा का आरोप करने वालों के लिये पत्र ही खासा जवाब थे। 'क्षत्रिय-मित्र' सन् १९०९ से प्रकट हो रहा है। साप्ताहिक, मासिक, और आजकल पाक्षिक-रूप से यह स्वर्गीय महाराज भिनगा की अक्षय कीर्ति है। महाराज साहब ने ३५ हजार रुपया सरकारी कोष में इसके लिये पृथक् जमा किया था। उसी के व्याज से यह पत्र प्रकाशित हो रहा है। क्षत्रिय-समाज का यह प्यारा सेवक है। वर्तमान संपादक सरस्वतीप्रसाद-सिंह उत्साही नवयुवक हैं। काशी के मासिकों में 'निगमागम-चन्द्रिका', कान्यकुब्ज', 'भूमिहार-ब्राह्मण' 'न्यायी ब्राह्मण', 'मिथिला-मोद', 'खत्री-हितकारी', 'कुशवाहा-क्षत्रियमित्र', 'हलवाई-वैश्य-हितैषी', 'हलवाई-वैश्य-संरक्षक', 'कबीर-चन्द्रोदय', 'कूर्मी-क्षत्रिय-दिवाकर', 'जात-पाँत-तोड़क' और 'बरनवाल-चन्द्रिका', सामयिक सेवा के उद्देश्य से मैदान में आये। निगमागम-चन्द्रिका श्रीभारतधर्म-महामंडल की पत्रिका है। अभी तक महामंडल के धार्मिक सरक्युलरों तथा महामण्डल के धार्मिक विचारों के प्रचार में ही वह तल्लीन है। महामण्डल की खासी आय है, इसी से उसे विशाल हिन्दू-समाज को विशेष परवाह नहीं है। उसका रूप अपरिवर्तित और ध्येय परिमित है। आशा है, सुयोग्य कार्यकर्त्ता श्री गोविन्द शास्त्रीजी की लेखनी से इस पुरानी पत्रिका का काया-कल्प होगा। मित्र-गोष्ठी और पण्डित-पत्रिका के सम्मुख संस्कृत-समाज का गौरव बढ़ाने का उद्देश्य था। 'थियोसोफिकल सेन्ट्रल हिन्दू कॉलिज मेगज़ीन', 'सेलेलियर-मेसेन्जर', अंग्रेजी पत्र हैं। इनमें 'सेन्ट्रल हिन्दू कॉलिज मेगजीन' अब विद्यालय का मुख्य त्रैमासिक हो गया। 'साहित्य-सुधानिधि' तथा 'उपन्यास-लहरी' का श्रेय स्व० देवकीनन्दन खत्री को प्राप्त है। 'सुधानिधि' में स्व० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का सहयोग सोने में सुगन्ध हुआ। प्रतिमास ५ फर्मे के पत्र में ग्रंथ तथा लेख प्रकाशित होते थे, जो तोड़ कर पुस्तक-रूप में संगृहीत हो जाते थे। महारानी पद्मिनी, महाराणा प्रतापसिंह आदि उसी में पहले प्रकाशित हुए थे। स्व० किशोरीलाल गोस्वामी तथा देवकीनन्दनजी ने उपन्यास-संसार में बड़ी चहल-पहल उत्पन्न करदी थी। फलतः गोस्वामीजी ने स्वयं संपादित कर 'उपन्यास' को जन्म दिया और सिद्धेश्वरजी-द्वारा 'बाल-प्रभाकर' का जन्म हुआ। इसके सिवाय 'उपन्यास-सागर', 'उपन्यास-बहार' 'गल्पमाला' तथा 'उपन्यास-कुसुम', प्रकाशित हुए।

सन् १९०९ में सुप्रसिद्ध इन्दु' का उदय हुआ। श्री जयशंकर के प्रसाद से ही इन्दु की शोभा बढ़ी। अनेक युवकों का इसने उत्साह-वर्धन किया। अपने नौ-दस वर्षों के कार्य-काल में इसने सुख्याति संपादित की। उत्साही सम्पादक श्री अम्बिकाप्रसादजी गुप्त बाद में कुछ जातीय उत्थान-कार्य में विशेष लीन हो गये। अब वे 'गल्पमाला'-द्वारा साहित्य-संसार की उपासना कर रहे हैं। पं० ज्वालारामजी नागर ने श्री वसंतराम की ओट में 'तरंगिणी' की धारा बहाकर सरस्वती से होड़ बदी थी। सरस्वती की गंभीरता का उन्हें पूरा पता न था। सालभर में ही दिल के फफोले फूट गये। तरंगिणी प्रवाहित हो गयी। सरस्वती की सुख्याति और भक्ति-भावना में तनिक भी कमी न हुई। श्री लक्ष्मण-नारायण गर्दे ने 'नवनीत'-द्वारा हिन्दी-जगत् को नवनीत अर्पण करना चाहा था; परन्तु हम भारतीयों के भाग्य में नवनीत कहाँ ? थोड़े समय

में पिघल कर अदृश्य हो गया। 'आर्य-महिला' महामंडल के कमंडल में वर्त्तमान है। अभी तक वह हिन्दु महिलाओं की सेवा कर रही है। 'राम' तथा 'अभय' विशेषतः विद्यार्थियों के आदर्श रहे। श्री प्रेमचन्द का प्रथम दर्शन 'मर्यादा'-द्वारा हुआ; परन्तु औपन्यासिक मर्यादा कहाँ तक स्थिर रखते। 'हंस'-द्वारा मोती चुगने लगे। प्रवासी होने पर भी श्री प्रवासीलाल वर्मा का सहयोग सोने में सुहागा हो गया। गुजराती, मराठी, उर्दू, बँगला आदि प्रसिद्ध भाषा के पत्र-पत्रिकाओं में भी इसकी कीर्ति प्रसरित हो रही है। इसके अनेक लेखों के अनुवाद बँगला, मराठी, गुजराती आदि में अनुवादित होते रहते हैं। त्रैमासिकों में 'नागरीप्रचारिणी-पत्रिका' तथा 'विद्यापीठ' अनुपम हैं। पत्रिका का वर्तमान रूप विद्वानों द्वारा समादरणीय है। आज तक ऐसी पत्रिका कई देशी भाषाओं में नहीं देखने में आई। योरोपीय विद्वानों का भी यही मत है।

दैनिक पत्रों में काशी के 'आज' द्वारा हिन्दी भारतवर्ष में एक नया आदर्श उपस्थित हुआ। श्री बाबूरावजी पराड़कर 'देशेर कथा' का अनुवाद कर ख्याति पा चुके थे; परन्तु इस दैनिक में उनकी परिमार्जित लेखनी ने अच्छा चमत्कार दिखाया। बाबू शिवप्रसादजी गुप्त हिन्दी-जगत् तथा काशी नगरी के गौरव हैं। बाल्य-काल से ही वे अनोखे देश-सेवक, साहित्य-सेवक, तथा नागरी के भक्त हैं। धन का जैसा सदुपयोग उन्होंने इस पत्र-द्वारा किया है, वह प्रशंसनीय है। काशी में कई सहस्र पाठक इस पत्र-द्वारा उत्पन्न हुए हैं। भगवान् भूतनाथ का यह महाप्रसाद मारकण्डेय का आयुष्य लाभ करे।

काशी ने पत्र-पत्रिकाओं-द्वारा, हिन्दी जगत् की जो सेवा की है, उसका यही संक्षिप्त विवरण है। भारत का प्रथम हिन्दी-पत्र यहीं से प्रकाशित हुआ था। ८८ वर्ष में यहाँ से १ दैनिक, १ द्विदैनिक, ... साप्ताहिक, ८ पाक्षिक, ७७ मासिक तथा ५ त्रैमासिक प्रकाशित हुए। इतने पत्र बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि को छोड़ कर शायद ही किसी नगर से प्रकाशित हुए हों। यह गौरव हमारी काशी को ही प्राप्त है। इस ठोस साहित्य-सेवा ने सिद्ध कर दिया कि काशी संसार का अनुपम विद्या-पीठ है। इसका स्थान सब से अनूठा और इसका कार्य जगत् के लिये वंदनीय रहा है। ईश्वर इसके द्वारा देश की उज्ज्वल सेवा कराये।

काशी तीर्थ-स्थान है और प्रायः नित्य ही कोई-न-कोई स्नान, कोई-न-कोई धर्मोत्सव होता रहता है। साल में २४ तो एकादशियाँ होती हैं। कितने ही लोग सभी एकादशियों को स्नान करते और व्रत रखते हैं। मौनी अमावस्या, सूर्य और चन्द्रग्रहण में काशी स्नान का बड़ा भारी माहात्म्य है। कई दिन पहले से यात्री आने लगते हैं और शहर के सारे धर्मशाले, मैदान, पार्क, सड़कें इत्यादि यात्रियों से भर जाती हैं। होली, दीवाली, दशहरा, आदि बड़े बड़े त्योहार अन्य नगरों की भाँति यहाँ भी होते हैं; मगर इनके उपरान्त यहाँ ऐसे सैकड़ों पर्व होते हैं, जो किसी देवता की पुण्य स्मृति या किसी पौराणिक कथा की यादगार में मनाए जाते हैं। अगर कोई पक्का सनातनधर्मी हो और सारे व्रतों का पालन करना चाहे, तो शायद उसे कभी अन्न से भेंट न हो। भिन्न-भिन्न व्रतों के फलाहार अलग, पूजाविधि अलग और माहात्म्य अलग हैं। हम यहाँ उन्हीं पर्वों और मेलों का वर्णन करेंगे, जिनमें कुछ विशेषता है। जो मेले और पर्व साधारणतः सभी जगह मनाये जाते हैं, उनकी चर्चा करके पाठकों का समय नष्ट न करेंगे। सुविधा के लिये हम मासबद्ध क्रम से चलेंगे।

काशी के कुछ प्रसिद्ध मेले

लेखक—श्रीयुत बलदेवप्रसाद मिश्र

फाल्गुन

(क) शिवरात्रि—फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को काशी में शिवजी की पूजा विशेष रूप से होती है। लोग रात-भर जागकर पार्थिव-पूजन करते कराते हैं और वेद-पाठ होता है। शिवजी पर अखंड जल-धारा अभिषेक-द्वारा छोड़ी जाती है। ब्राह्मणों को—जिन्हें रुद्री याद हो—धनी, पूजा करानेवालों से अच्छी प्राप्ति हो जाती है। लोग व्रत रखते हैं और बहुत लोग एक दिन की 'पंचक्रोशी' करते हैं। यह पूजा मोक्ष के लिये होती है। शैव पुराणों में इसका बड़ा माहात्म्य है। कथा है कि शिवजी पर पेशाब करने से एक कुत्ते ने मोक्ष पा लिया; अतः शुद्ध जल छोड़ने और वेद-पाठ करने वाले तो मोक्ष ले ही लेते होंगे!

(ख) होली—अन्य नगरों की भाँति यहाँ भी होलिका जलती है, कबीर उड़ती है, गालियाँ बकी जाती हैं, अबीर और गुलाल पोती जाती है। सन्ध्या समय लोग नहा-धोकर साफ सुथरे कपड़े पहन, हाथों में गुलाल-भरी हाँड़ियाँ लेकर निकलते हैं और चौसट्टी देवी के दर्शन करते हैं। रास्ते में मिलने वाले अपने मित्रों तथा उनके मित्रों के मुँह पर गुलाल पोतते हैं। इस बहाने अपने सब इष्ट-मित्रों से मिलन तथा कुछ नये व्यक्तियों से परिचय हो जाता है। उक्त देवी के दर्शन संपूर्ण काशी-निवासी करते हैं और दशाश्वमेधघाट पर शाम को लक्षाधिक आदमियों की भीड़ होती है।

(ग) बुढ़वा मंगल—होली के बाद दूसरे मंगलवार से यह मेला प्रारम्भ होता है, जो भारत में अपने ढंग का अकेला मेला है। इसके प्रवर्त्तक काशी-नरेश थे और प्रगति देने वाले भारतेन्दुजी के पितामह काले हरखचन्दजी। इस अवसर पर बजड़े पाटे जाते हैं और मंगला मुखियों का गान होता है। एक-एक बजड़े को सैकड़ों छोटी नाव घेर लेती हैं। बजड़े और नावों के इस समूह का सांकेतिक नाम 'झूमड़' है। नित्य १०-५ झूमड़ होते हैं। अस्सी, दशाश्वमेध, पंचगंगा आदि इनके मुख्य स्थान हैं। भले घर की स्त्रियाँ इन दिनों स्नान करने नहीं जातीं। कभी-कभी नावों को बजड़े के अत्यन्त समीप ले जाने के लिए सिर भी फूट जाते हैं। यदि बजड़े किनारे पर हुए, तो लोग सीढ़ियों पर भी खड़े होकर सुनते हैं। इन दिनों बहुत लोग गंगाजी में मलत्याग तथा लघु-शंका करने में पाप नहीं समझते। यह मेला प्रायः ७-८ दिनों तक रात को होता है। इधर कई वर्षों से, अनेक कारणों से, हिन्दुओं ने यह मेला बन्द कर दिया है और इसलिये मुसलमानों ने 'चन्दन-शहीद' में इसे शुरू कर दिया है। महाराज बनारस के यहाँ नित्य शाम को फाल्गुन के प्रारंभिक पन्द्रह दिन भाँड़ और वेश्याएँ 'होली' गाती हैं। महाराज तथा हज़ारों आदमी इस समय उपस्थित रहते हैं।

चैत्र

(क) वारुणी—चैत्र कृष्णा-त्रयोदशी को वारुणी-

पर्व होता है। लोग गंगा-स्नान करते हैं। पहले इस दिन लोग कादंब (शराब) पी कर आनन्द मनाया करते थे। अब उस दिन की यादगार में स्नान किया जाता है। कुछ लोगों की राय है कि अब पुनः कुछ उसीसे मिलती-जुलती बात पैदा करनी चाहिए और अधिक नहीं, तो लोग 'विजया' ही छाना करें।

(ख) रामनवमी—चैत्र शुक्ला नवमी को राम-जन्म मनाया जाता है। राम-मन्दिरों में विधि-पूर्वक सब जन्म-संस्कार होते हैं। राम-भक्त दर्शन और प्रदक्षिणा करते और लालचन्दन से राम-नाम लिख कर मछलियों को खिलाते हैं; पर रामनवमी का मोक्ष से सीधा सम्बन्ध होने के कारण सर्व-साधारण का योग इसमें प्राप्त नहीं होता।

इसी दिन शाम को स्थानीय 'सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल' का तैराकी का मेला होता है। स्कूल के सर्व-प्रथम पार पहुँचने वाले बालक को तथा अन्य कसरतों में निपुणता दिखाने वाले बालकों को उस पार रेती में किसी प्रतिष्ठित नागरिक या बाहरी सज्जन के सभापतित्व में पुरस्कार दिया जाता है। स्कूल की ओर से नावें रहती हैं, जो लोगों को उस पार पहुँचाती और ले आती हैं। हजारों आदमी पार जाते हैं। इस तैराकी मेले के प्रवर्त्तक उसी स्कूल के प्रधानाध्यापक पं० रामनारायण मिश्र बी० ए० हैं, उन्हीं को इसका सारा श्रेय प्राप्त है।

वैशाख

(क) मणिकर्णिकोत्सव—वैशाख शुक्ल के प्रारम्भ ही में मणिकर्णिका-कुण्ड में पूजन, वसंत-पूजा आदि होती है। वसन्त-पूजा का अर्थ है—रात को ब्राह्मणों-द्वारा वेद-पाठ, जिसमें उन्हें दक्षिणा मिलती है। सनातन-धर्म का महत्त्व आदि विषयों पर व्याख्यान होते हैं, फिर भी भीड़ काफी होती है। यह पूजन विशेषतः तीर्थोपजीवी लोगों के उद्योग से होता है। स्वर्गीय तीर्थ-पुरोहित छन्नू-लाल पाठक का नाम इस प्रसंग में उल्लेख के योग्य है। इससे लोगों का कुछ देर को दिल-बहलाव अवश्य हो जाता है।

(ख) गंगा सप्तमी—वैशाख शुक्ल सप्तमी को भी प्रातःकाल लोग गंगा-स्नान करते हैं। गंगाजी में दूध भी चढ़ाया जाता है।

(ग) नृसिंह चतुर्दशी—वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को नृसिंह चौतरा पर गोधूलि के समय नृसिंहावतार होता है और प्रह्लाद के पिता का पेट फाड़ा जाता है। प्रह्लादघाट पर इसका बृहद् आयोजन होता है और तीन दिन तक नृसिंहावतार की सम्पूर्ण लीलाएँ की जाती हैं।

ज्येष्ठ

(क) वट-सावित्री—ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या को स्त्रियाँ बड़ के पेड़ और सावित्री का पूजन और प्रदक्षिणा करती हैं। बड़ का पेड़ अमर माना जाता है और सावित्री ने यम के यहाँ से सत्यवान् को अमरत्व दिलाया था; अतः पति की मंगलाकांक्षा के लिये ही यह विधान होता है। स्त्रियाँ वट वृक्ष को नाड़े या सूत से लपेटती भी हैं। स्त्रियों की सुविधा तथा मुख्यतः अपने लाभ के लिये लोगों ने प्रायः प्रत्येक वट-वृक्ष के नीचे सावित्री की मूर्ति भी रख दी है। पण्डा बनकर बैठने वालों को खूब चढ़ावे मिलते हैं।

(ग) गंगा दशहरा—ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गंगा-जी का विशेष स्नान और उत्सव होता है। पंचगंगा और सेंधियाघाट पर विशेष आयोजन होता है। दोनों जगह गंगाजी की मूर्ति स्थापित है। पंचगंगा पर 'गंगोत्सव मण्डल' के तथा सेंधियाघाट पर पं विश्वनाथजी पुरोहित वैद्य के प्रबन्ध से यह उत्सव होता है। पं विश्वनाथजी महाराज ग्वालियर तथा काशी के समस्त महाराष्ट्रों के पुरोहित हैं।

आषाढ़

(क) रथयात्रा—सिगरा की चौमुहानी पर आषाढ़ शुक्ला द्वितीया से प्रारम्भ होकर यह मेला चतुर्थी को समाप्त होता है। द्वितीया के सवेरे से लोग जगन्नाथजी के दर्शन करने लगते हैं। रात को अस्सी से एक अनेक पहियों के रथ में बिठा कर जगन्नाथजी यहाँ लाये जाते और फिर वहीं पहुँचा दिये जाते हैं। समस्त काशी दर्शन करती है। तुलसी की माला और एक पैसा साधारणतया चढ़ाया जाता है। काशी की सारी सड़कें दर्शनार्थियों से भरी-भी

रहती हैं। बगल के मैदानों में झूले पड़ जाते हैं और स्त्रियाँ तक झूलती हैं। पुरुष लौटते वक्त पास ही के एक स्थान 'गैबी' पर जाते हैं। यह बड़ा प्राचीन स्थान है। यहाँ के कूएँ का जल बड़ा अच्छा है। यहाँ स्त्रियाँ बरस-दो-बरस पहले तक दिखलाई भी नहीं पड़ती थीं; पर अब कभी-कभी बंग-महिलाओं के दर्शन हो जाते हैं। इसका कारण यह था कि यहाँ गुंडे इकट्ठे हुआ करते थे। अब भी इकट्ठे होते हैं; पर अब भले आदमी भी जाने लगे हैं और मुख्य बात यह कि अब कोई गुण्डा भी सहसा किसी का अपमान नहीं कर सकता।

(ख) गुरुपूर्णिमा—आषाढ़ की पूर्णिमा को संस्कृत के छात्र अपने गुरुओं की पूजा करते हैं गुरुजी का चरणामृत पान कर, चन्दन लगा, माला पहना, आरती कर, मिठाईयाँ आम तथा दक्षिणा आगे रख, भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। गुरुजी भी शिष्यों को चन्दन लगा अन्तःकरण से आशीर्वाद देते और प्रसादस्वरूप कुछ मिठाई लौटा देते हैं। अब यह प्रथा कम होती जा रही है। अँगरेजी के छात्र तो 'गुरु-पूजा' का नाम भी जानते हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। और यदि वे करें भी तो कितनों की? कदाचित् बहु-गुरुत्व के प्रभाव से ही संस्कृत के छात्रों में भी यह प्रथा कम हो रही है। पहले एक ही आदमी अनेक शास्त्रों का अद्वितीय विद्वान् होता था; अतः छात्र उसी से सब कुछ पढ़ लेते थे, पर अब एक शास्त्र भी कठिनता से आता है और परीक्षाओं में अनेक विषय रहने के कारण छात्रों को अनेक गुरु बनाने पड़ते हैं। श्रद्धालु छात्र गुरु-पूजा किये बिना जल भी नहीं पीते और बहुत से छात्र केवल इसीलिये ग्रीष्मावकाश में ही घर से चले आते हैं। जो नहीं आ पाते, वे जब कभी आते हैं गुरु-पूजा करते हैं; पर, अब तो अधिकांश में यह बात रह गई है कि विद्यार्थियों को डर रहता है कि पूजा न करने से गुरुजी ठीक से न पढ़ावेंगे। इस दिन गुरुओं को अच्छी रक़म मिल जाती है।

श्रावण

(क) नागपंचमी—श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन काशी में नाग-पूजा होती है। इस दिन सब काम बन्द रहते हैं। घरों में चक्कियाँ तक नहीं चलतीं। दिन-भर सँपेरे साँप लेकर घूमते रहते हैं और लोग साँपो का दर्शन कर धेला-पैसा देते हैं। छोटे-छोटे लड़के सर्पों की तसवीरें लेकर 'छोटे गुरू का, बड़े गुरू का नाग लो भई नाग लो' चिल्लाते हुए बेचते हैं।

काशी के सब अखाड़े दो-एक दिन पहले ही से साफ किये जाते हैं। 'लड़ंतिये ही सफ़ाई करते और 'रामरज' से अखाड़े को छूते हैं। पंचमी को सवेरे हनुमानजी की पूजा होती है—सब अखाड़ों में हनुमानजी की मूर्ति रहती है—और 'गोड़े' हुए अखाड़े में फूल छिड़क दिये जाते हैं। तब 'उस्ताद' अखाड़े में उतरता है और सब शागिर्द एक-एक कर हाथ मिलाते हैं। इस दिन 'जोर' नहीं किया जाता; केवल शगुन कर लिया जाता है। तदनन्तर शागिर्द भी आपस में हाथ मिलाते हैं। हाँ, जिन लोगों की कुश्ती पहले से बदी रहती है, उनकी कुश्तियाँ प्रतिद्वंद्वियों की तरह चित्त करने की घात से होती है। प्रत्येक अखाड़े में सैकड़ों दर्शक रहते हैं और उन्हीं के सामने उनकी हार-जीत का फ़ैसला होता है। विसर्जन के समय सब दर्शकों को दलबेसन का लड्डू प्रसाद-स्वरूप मिलता है। प्रत्येक शागिर्द और बहुत से दर्शक भी दलबेसन के लड्डू अवश्य लाते हैं। इस दिन जो मिट्टी शरीर में लगती है, वह छुड़ाई नहीं जाती, दिन भर में अपने आप छूट जाती है।

बहुत स्थानों पर 'बौरे' होते हैं। 'बौरे' का अर्थ है किसी स्थान पर बहुत से लड़नेवालों का इकट्ठा हो जाना। जहाँ एक सर्वसम्मत व्यक्ति 'जोड़' छाँट देता है और उनकी कुश्ती होती है। यहाँ प्रायः अपरिचितों में कुश्ती होती है, जो अपना बल और कला-प्रदर्शन के लिये लड़ते हैं। विजेता को पुरस्कार कुछ नहीं मिलता, सिवा इसके कि लोग तारीफ़ करें, जो हज़ारों की तादात में रहते हैं।

ज़रा दिन ढले, लोग नागकूप के दर्शन करने जाते हैं। सैकड़ों खड़ी सीढ़ियाँ उतर कर लोग कूएँ के जल से आचमन-मार्जन करते हैं। सीढ़ियाँ चारों ओर से हैं और सहारे के लिये कुछ नहीं है। दुर्भाग्य से यदि कोई गिरे, तो बहुतों के ले कर गिरे और संम्भवतः कोई जीता न बचे; पर ऐसी घटना कभी देखने-सुनने में नहीं आई। यहाँ लोग दूध-लावा भी चढ़ाते हैं, जो सकोरों में एक-एक पैसे में बिका करता है।

कूएँ के नीचे मैदान में संस्कृत के छात्र आपस में शास्त्रार्थ करते हैं। साल-भर पहले से 'बदान' हो जाती है और इस दिन हजारों संस्कृत-वेत्ताओं और दर्शकों के समक्ष जम कर शास्त्रार्थ होता है। विजेता को साधारणतः एक रुपया और एक नारियल मिलता है। पहले केवल पंडित ही शास्त्रार्थ किया करते थे ; पर अब दलबन्दियों और मनोमालिन्य के डर से पंडित शास्त्रार्थ कम करते हैं। यह परिपाटी उत्साह बढ़ाने के लिये बड़ी अच्छी है।

(ख) श्रावनी, रक्षाबंधन—श्रावण की पूर्णिमा को काशी-वासी घाटों पर विशेष स्नान और ऋषि-पूजन करते हैं। इसमें संस्कृत के छात्र और पंडितों की संख्या अधिक रहती है। एक-एक पंडित के साथ सैकड़ों आदमी रहते हैं। पंडितजी किनारे पर से संकल्प और मंत्र पढ़ते हैं और लोग गोते-पर-गोते लगाए चले जाते हैं। प्रायः २-३ घंटे तक गोते लगते रहते हैं और तब सूखे कपड़े पहनकर किसी निश्चित स्थान पर बैठकर ऋषि-पूजन प्रारंभ होता है। पूजनकराने वाले पंडितजी को सैकड़ों जनेऊ, ऋतुफल और कुछ रुपये मिल जाते हैं। इसके बाद बहनें भाइयों के हाथ में 'राखी' बाँधती और भाइयों-द्वारा उपहार प्राप्त करती हैं। विदेश-स्थित बहनें वहीं से राखी भेजती हैं।

अनेक ब्राह्मण सौ-पचास राखियाँ लेकर निकल पड़ते हैं और दुकानदारों, राहगीरों तथा घरों में घुस वहाँ उपस्थित सज्जनों के गले मढ़ते और पैसा माँगते हैं। यद्यपि इस कार्य में उन्हें धेले-पैसे के साथ काफी अपमान भी मिलता है ; पर उसकी ओर देखना वे उचित नहीं समझते।

(ग) कजरी—नीची श्रेणी की स्त्रियाँ श्रावण के अन्तिम दिनों, रात को टोली बाँधकर गलियों में निकल पड़ती हैं। एक दूसरे का हाथ पकड़ मंडलाकार खड़ी हो जाती हैं और तब कमर तक झुक-झुक कर घूमती हुई कजली गाती हैं। यह कजली बड़ी रात गये तक होती है और अंतिम दो-एक दिनों तो रातभर।

काशी में स्थान-स्थान पर रसिक लोग गौनिहारिनों को—जिन्हें देख पद्माकर ने काशी में कहा था—'रंग है री रंग तेरी मेंहदी सुरंग पर'—बुला लेते हैं और वे कजली गाती हैं। साथ में मजीरा और ढोल बजता है। रात-रात भर हजारों आदमी जमे रहते हैं। यहाँ के कई पुरुष भी बड़ी सुन्दर कजली बनाते और गाते हैं। ओर इस साल तो स्थानीय दयानन्द हाई स्कूल में कजली-सम्मेलन होकर हो रहा, जिसमें सर्वश्रेष्ठ कजली-निर्माता को पुरस्कार भी दिया गया था।

(घ) झूला—श्रावण में यहाँ ठाकुरजी के झूले पड़ते हैं। यह प्रथा तो वैष्णव-मन्दिरों में ही है ; पर अब शैव मन्दिरों में भी इसका अनुकरण होने लगा है। चिता की भस्म पोतने वाले, भूतपिशाचों के सरदार शिव को अब झूले का मजा ले लेना पड़ता है। यों तो सभी वैष्णव-मन्दिरों में झूले पड़ते हैं ; पर 'गोपालमन्दिर' और महाराज बनारस का 'रामबाग' उल्लेख्य हैं। गोपालमन्दिर में बड़े ठाट की और मनोहर झाँकी होती है। महाराज बनारस के यहाँ १२ दिन शाम को ६ से ८ तक झूला पड़ता है और वेश्याओं का गान होता है। महाराज स्वयं उतनी देर उपस्थित रहते हैं। इस और उस पार के हजारों आदमी जमा होते हैं। स्टेट में बड़ी चहल-पहल रहती है। नाव वालों को काफी आमदनी हो जाती है।

काशी के अन्य मन्दिरों में भी बड़ी भीड़ रहती है। इन मन्दिरों में स्त्रियाँ ही कदाचित् अधिक जाती हैं। रात के दो-दो बजे तक दर्शन होते रहते हैं और स्त्री-पुरुषों का ताँता बँधा रहता है।

भाद्रपद

(क) कजली-तीज—भाद्रपद कृष्णा तृतीया को स्त्रियाँ घरों में रातभर कजरी गाती हैं। गुजरात के 'गरबे' से इसकी कुछ तुलना की जा सकती है।

(ख) जन्माष्टमी—भाद्रपद कृष्णाष्टमी को आधी-रात को कृष्ण-जन्म मनाया जाता है। दिन-भर लोग व्रत और श्रृंगार करते हैं। अशोक की पत्ती, केले के पेड़, छड़ियाँ आदि स्थान-स्थान पर बिकते हैं। सब मन्दिरों में भी बड़ी धूमधाम रहती है। आधीरात की निस्तब्धता एकाएक शंख, घड़ी, घंटों से कुछ देर के लिये दूर हो जाती है। श्री बनारसीदास पब्लिक टाइम कीपर की कृपा से दो एक वर्ष से ठाकुरजी के जन्म, ग्रहण आदि अवसरों पर बिजली घर से भोंपा बजने लगा है।

एक बात जो और स्मरण रखनी चाहिये, 'यह है कि

शैव और वैष्णवों के उत्सव में प्रायः एक दिन का अन्तर पड़ जाता है।

(ग) ढेला चौथ—भादों सुदी चौथ यहाँ 'ढेला चौथ' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन चन्द्र-दर्शन निषिद्ध है। दर्शन हो जाने से कोई झूठा कलंक लगता है, यह विश्वास सदा से चला आया है। कहते हैं कि पहले लोग शाम को अपनी छतों से लड्डू फेंकते थे। लड्डू फेंकते रहे हों या न फेंकते रहे हों, ढेले तो अवश्य फेंके जाते हैं। अभी दो-तीन वर्ष पहले ही इसका इतना आधिक्य था कि एकाध जान चली जाती थी; पर अब कुछ तो दण्ड के भय से और कुछ इसकी प्रवृत्ति कम होने से यह बात प्रति वर्ष घट रही है। इस दिन बहुत-से लोग घर से नहीं निकलते और घरों में बैठे रहते हैं, जिसमें न चन्द्रदर्शन हो, न ढेला लगे। जो निकलते हैं, वे प्रायः छाते लेकर।

पर चन्द्रदर्शन से नुकसान ही होता हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का भला भी होता होगा। 'पद्माकर' की एक नायिका ने इसे अपने बचाव का तरीका ठहराकर कहा है—'भादों सुदी चौथ कौ लखयौरी मृग अंक यातें, झूठोई कलंक मोहिं लागिबो चहत है।'

(घ) लोलार्क छठ—भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को दलित जाति की स्त्रियाँ लोलार्क-कुण्ड पर जाकर स्नान करती हैं। इनकी संख्या हज़ारों तक हो जाती है। काशी के कुछ रसिक, गौनिहारिनों को ले जाते हैं और कजरी गवाते हैं। सड़कों पर टोली बँध जाती हैं और एक-एक टोली में पाँच सात हज़ार आदमी बिना बुलाये इकट्ठे हो जाते हैं। हिन्दी के कवि-सम्मेलनों में कवियों की हज़ार सिफ़ारिश कीजिये, बुलाइये, तब शायद जायँ और कविताओं को समझते कितने हैं? पर यहाँ साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी 'ओ हो हो' 'मार डाला' वगैरह चिल्लाते हुए मुग्ध होने की ऐसी नवीन-नवीन परिपाटियाँ दिखाते हैं कि जी खुश हो जाता है। इनकी तो बात ही छोड़ दीजिये, जब कि गौनिहारिनों पर 'पद्माकर'जी भी मुग्ध हो गये थे!

(ज) महालक्ष्मी दर्शन—भाद्रपद शुक्ला अष्टमी से 'लक्ष्मी-कुण्ड' का मेला शुरू होता है, जो १६ दिनों में समाप्त होता है। काशी के सब स्त्री-पुरुष लक्ष्मीजी का दर्शन करते हैं। अन्तिम ५-६ दिनों बड़ी भीड़ होती है। कुछ लोग कुंड में भी स्नान कर डालते हैं। अन्तिम सोलहवीं रात को बनारस के 'रसिया' और वेश्याओं की भीड़ होती है। इस मेले में लक्ष्मीजी की मूर्तियाँ और मिट्टी के वर्त्तन ख़ास तौर पर बिकते हैं। भीड़ के नियंत्रण के लिये पुलिस और सेवासमिति रहती है; किन्तु यह तो सभी जानते हैं कि सेवाकार्य में पुलिस से सेवासमिति चार कदम आगे ही रहती है।

(झ) अनंत चतुर्दशी—भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को लोग अनन्त की पूजा करके हाथ में बाँधते हैं। व्रत करते हैं और मीठा खाते हैं—नमक नहीं।

इस प्रसंग में यह कह देना अनुचित न होगा कि यहाँ के व्यास—कथावाचक—आने वाले सब त्योहारों आदि का माहात्म्य सुना दिया करते हैं। यह प्राचीन परम्परा को कायम रखने में बड़ी मदद देता है।

आश्विन

(क) पितृपक्ष—इस महीने के पहले पन्द्रह दिन 'पितरपख' कहाते हैं। इन दिनों लोग मृतात्माओं के लिये श्राद्ध करते और ब्राह्मण-भोजन कराते हैं। इन दिनों बहुत-से ब्राह्मण तो चूल्हा भी नहीं सुलगाते। लोग ५—७ दिन पहले से निमन्त्रण दे देते हैं। इन दिनों दोपहर को किसी भी गली के मोड़ पर बैठ जाइये, तो देखियेगा कि ब्राह्मण देवता चन्दन पोते, मुँह में पान भरे, बगल में धोती-अँगोछा दाबे, कमर में दक्षिणा खोंसे, अधिक भोजन करने के कारण धोती को ज़रा ढीली करते हुए ज्यों त्यों चले आ रहे हैं।

भोजन की दृष्टि से सबसे अभागे हैं—कान्यकुब्ज, जो सामाजिक रूढ़ियों के कारण—चाहते हों तो भी—जा नहीं पाते, और सबसे भाग्यवान् हैं - सारस्वत, जिनकी पाँचों अँगुलियाँ घी में रहती हैं। सारस्वतों की यजमानी केवल खत्रियों के यहाँ है, जो इन्हें छोड़ और किसी को दमड़ी नहीं देते; अतः थोड़े होने के कारण इन ब्राह्मणों की चाँदी है। स्त्री-पुरुष सब भोजन करने जाते हैं। पत्तल पर बैठे, तो पूड़ियाँ खाईं और बाकी अँगोछे में बाँध दूसरे के यहाँ चले। इस प्रकार नित्य १०—२० घरों में इनका निमन्त्रण रहता है। इनके यहाँ मिठाइयाँ आदि खराब होने

के डर से सुखाई जाती हैं। ये जब स्वयं श्राद्ध करते हैं, तो अद्भुत गति होती है। निमन्त्रित ब्राह्मण को मिठाई-पूड़ियों के ढेर के पास पत्तल लगा कर बैठा देते हैं और स्वयं यजमानो करने चल देते हैं। ब्राह्मण-देवता स्वयं मनमानी चीजें उठाकर खाते हैं। ऐसे समय एकाध स्त्री घर में रहे-तो-रहे, नहीं तो घर खाली पड़ा रहता है। और इसीलिये ब्राह्मण देवता परिचय के बुलाये जाते हैं, जो कुछ गड़बड़ न करें।

(ख) विजयादशमी—आश्विन शुक्ला दशमी को काशी में दशाश्वमेध घाट पर लक्षाधिक आदमी इकट्ठे हो जाते हैं। बंगाली लोग काली-पूजा के बाद उनकी प्रतिमा गंगाजी में विसर्जित करते हैं। मूर्तियाँ गाजे-बाजे के साथ लाई जाती हैं, जो सैकड़ों की संख्या में रहती हैं और बजड़ों पर रक्खी जाती हैं। कुछ देर गायन आदि होता रहता है और रात होने पर उनका विसर्जन कर दिया जाता है। एक-एक प्रतिमा पर हज़ारों रुपये बैठ जाते हैं। इसी दृश्य को देखने के लिये इतनी भीड़ होती है। लोग नावों पर इधर-उधर घूमते भी हैं। इस दिन कोई नाव खाली नहीं रहती। इस मेले का सारा श्रेय बंगालियों को है। कलकत्ता आदि से हज़ारों बंगाली इस अवसर पर आते हैं और 'अन्नकूट' देख कर जाते हैं। इन दिनों काशी की सड़कों और गलियों में बंगाली-ही-बंगाली नज़र आते हैं। कपड़े और बर्तन इन दिनों खूब बिकते हैं। कहा तो यहाँ तक जाता है, कि कपड़े और बर्तनों की बिक्री जितनी इन दिनों होती है, उतनी साल भर में नहीं हो पाती।

(घ) रामलीला, नक्र-कटैया, भरत-मिलाप—

रामलीला—इस महीने के प्रारम्भ ही से रामलीलाएँ शुरू हो जाती है। इतने स्थानों पर होती हैं कि गणना नहीं हो सकती; पर इसके मुख्य स्थान रामनगर, लाटभैरव, नौरंगाबाद आदि हैं। रामनगर की लीला महाराज बनारस की ओर से होती है और इसमें हजारों रुपये खर्च किये जाते हैं; अतः इसकी तड़क भड़क और साज-सामान का क्या कहना है! सायंकाल २-३ घण्टों तक एक महीना लगातार लीला होती है। महाराज उतनी देर स्वयं उपस्थित रहते हैं। बीच में थोड़ी देर के लिये लीला बन्द होती है, जब कि महाराज संध्या करते हैं। यहाँ नित्य प्रायः दस हजार आदमी जुटते हैं। इस लीला के क्षीरसागर की झाँकी, धनुषयज्ञ, भरत-मनावन, लंकादहन और भरत-मिलाप प्रसिद्ध प्रसंग हैं। इन दिनों नित्य की अपेक्षा अधिक भीड़ होती है। दशमी के दिन महाराज की सवारी बड़े विचार और धूमधाम से निकलती है। इसे देखने के लिये भी हजारों आदमी जाते हैं। इन दिनों रामनगर में पान, मिठाई, हँड़िया, साबुन और तेल आदि वस्तुएँ खूब बिकती हैं। नाव वाले भी खूब पैदा करते हैं।

लाटभैरव और नौरंगाबाद की लीलाएँ भी खूब प्रसिद्ध हैं। यहाँ हजारों आदमी लीला देखने जाते हैं।

नक्र-कटैया—सूर्पणखा की नाक कट जाने का दृश्य 'नक्र कटैया' के नाम से प्रसिद्ध है। यह क्रमशः लक्सा, नौरंगाबाद, लाटभैरव, दशाश्वमेध, काशीपुरा, खोजवाँ, मणिकर्णिका और चेतगंज नामक स्थानों में होती है। चेतगंज की नक्र कटैया प्रायः २-३ बजे रात को होती है; पर हजारों आदमी पहुँच ही जाते हैं। एक के पीछे एक सैकड़ों विमान बैल-गाड़ियों पर निकलते हैं; पर बहुधा कुरुचिपूर्ण होते हैं।

भरत-मिलाप—भरत-मिलाप सब रामलीलाओं में होता है; पर सबसे प्रसिद्ध 'नाटी इमली' का है। यहाँ डेढ़-दो लाख आदमी इकट्ठे होते हैं। आस-पास के बगीचे, मकान, पेड़ सब ठसाठस भरे रहते हैं। सड़कें कोसों तक बन्द हो जाती हैं। पुलिस का प्रबल प्रबन्ध रहता है। मिलन प्रायः ५ बजे होता है और तब वहाँ से इनका विमान उठ कर 'बड़े गणेश' पर आकर रुक जाता है। महाराज बनारस भी इसमें सम्मिलित होते हैं। और आते-जाते समय नगर-वासी 'हर हर महादेव' के गगनभेदी नाद से उनका स्वागत करते हैं।

रामलीलाओं में रेवड़ी, चिउड़ा और बाजे खूब बिकते हैं। रामलीलाओं के अवसर पर हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा प्रेमपूर्ण व्यवहार रहता है। यह काशी की ख़ास विशेषता है।

(च) शरत्पूर्णिमा—इस महीने के अंतिम दिन को 'शरत् पूनो' कहते हैं। भगवान् कृष्ण के रासविलास को यादगार लोग अभी तक मनाते आते हैं। इस रात का चन्द्रमा बड़ा मनोहर, चाँदनी बड़ी शुद्ध, स्वच्छ और आनन्द-दायिनी होती है। ऐसी चाँदनी फिर साल-भर नहीं होती। कहते हैं कि इस दिन अमृत टपकता है और उसे उदरस्थ करने के लिये खीर का सहारा लिया जाता है।

थालों में परस कर खीर चाँदनी में रख दी जाती है। शालिग्राम का भोग लगता है और तब खाई जाती है। कहते हैं कि इस रात को एक सज्जन मुँह खोल कर सो गये कि शायद अमृत टपक पड़े; पर इसके बदले किसी पक्षी की—संभवतः उल्लू की—बीट या लघुशंका पड़ी।

कार्त्तिक

(क) करवा चौथ—कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को स्त्रियाँ व्रत रहती हैं। शाम को कुछ परंपरागत कहानियाँ कहती-सुनती हैं और मिट्टी के टोंटीदार करवों का—जिनमें चावल सिंघाड़े, पैसे आदि चीज़ें रहती हैं—दान करती हैं। फिर चन्द्र-दर्शन के बाद भोजन करती हैं।

(ख) धन्वन्तरि जयन्ती—कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी सर्वसाधारण में 'धन तेरस' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि यह दिन वैद्यकशास्त्र के प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि के जन्म का स्मारक है; पर लोग यह बात भूल गये हैं। वे इसका सम्बन्ध धन से जोड़ते हैं। फिर भी काशी में अनेक स्थानों पर, खास कर वैद्यों के यहाँ धन्वन्तरि-पूजन होता है। शाम को लोग ठठेरी बाजार में जाते हैं और पीतल के बर्तन, चीनी के खिलौने आदि खरीदते हैं। चौक, ठठेरीबाजार के सब रास्ते लोगों से ठसाठस भरे रहते हैं।

(ग) नरक चतुर्दशी—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को हनुमान-जन्म मनाया जाता है। लोग सवेरे ही उठकर आँवले से सिर धोते, तेल लगाते और हनुमानजी की पूजा एवं दर्शन करते हैं। अनेक सज्जन शहर की प्रसिद्ध—खास कर गोस्वामी तुलसीदासजी की स्थापित—हनुमानजी की मूर्तियों का दर्शन करते हैं।

(च) अन्नकूट—दीपावली के प्रातःकाल अन्नकूट होता है। 'कूट' का अर्थ है—पर्वत। इसीलिये अनेक प्रकार का अन्न—मिठाई आदि के रूप में—पर्वताकार सजाया जाता है। काशी में यह उत्सव अनेक मन्दिरों में होता है; पर मुख्य स्थान विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के मन्दिर हैं। इन दोनों मन्दिरों में महीनों पहले से तैयारियाँ होने लगती हैं। मिठाइयाँ बनने लगती हैं और लोगों के आने-जाने भर को मार्ग छोड़कर सजा दी जाती हैं। मिठाइयों के शिवाले आदि भी बनाये जाते हैं। दोनों मन्दिरों में उबाले हुए चावल—भात—तरकारी तथा दाल का भी एक विशाल ढेर लगाया जाता है। प्रातःकाल से लोगों का ताँता बँध जाता है, जो दूसरे दिन समाप्त हो पाता है। इनमें बंगालियों की संख्या अधिक रहती है। बंगाली महीनों पहले से रुपये जमा करके रसीद ले लेते हैं और उसी के मुताबिक दाल-भात लेकर खाते हैं। दोनों मन्दिरों के चारों ओर की गलियाँ इन लोगों से ठसाठस भरी रहती हैं। पुलिस और स्वयंसेवक भीड़ का नियंत्रण करते हैं। भीड़ में बंगाली पत्तलों या अथरियों में गिजा हुआ, सड़ा और दुर्गन्धयुक्त दाल-भात लेकर जब चलते हैं, तो कौतूहल और घृणा का हृदय में अद्भुत समावेश होता है। इन्हीं बंगालियों की कृपा से सारा दाल-भात बिक जाता है और खा लिया जाता है, जिसे 'चाँटी न चाटत, मूस न सूँघत, माछी न आवत बास ते नेरे'। मिठाइयाँ भी बिकती हैं। एक दो दिन नहीं, पूरे साल-भर। खूब सड़ी हुई; पर 'प्रसाद' होने के कारण मँहगे दामों। इन्हें खाकर चाहे कोई हैजे से मर ही जाय, और मोक्ष के लिये, मरने को ही तो शायद खाई जाती होगी; इसीलिये भक्त और इन स्थानों के पंडे, इस बात पर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझते।

इस आमदनी के अलावा एक और ज़बरदस्त आमदनी होती है। वह है—सजी हुई मिठाइयों पर दर्शनार्थियों का धेला पैसा फेंक देना, जिससे मिठाइयाँ ढक-सी जाती हैं। आप चाहें, तो इसे अन्नकूट देखने का 'स्वेच्छा-कर' कह लें।

इस दर्शन में स्त्रियों की बड़ी दुर्दशा होती है; क्योंकि स्त्री-पुरुष साथ ही दर्शन करते हैं। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी नीचों-द्वारा कुछ घृणित कार्य भी हो जाते हैं। यद्यपि मन्दिर के अधिकारियों का ध्यान आमदनी करने के साथ-साथ इस बात पर भी जाना चाहिये और इसका समुचित प्रबन्ध होना चाहिये; पर प्रश्न तो यह है कि इन बातों को जानते हुए भी स्त्रियाँ जाँय ही क्यों?

(छ) भ्रातृ द्वितीया—कार्तिक शुक्ला द्वितीया 'भैया-दूज' के नाम से प्रसिद्ध है। स्त्रियाँ गोबर का गोवर्धन-पर्वत बनाकर पूजा और अपने भाइयों को मंगल-कामना करती हैं। दलित जाति की स्त्रियाँ अन्नकूट के समय भाइयों को 'खा जाने' तथा 'मार डालने' की शुभ कामनाएँ प्रकट करती हैं। उनका विश्वास है कि इससे उनके भाई

अमर हो जायँगे। बहनें भाइयों को मिठाई खिलाती और भाई उन्हें यथा शक्ति धन, आदर, प्यार प्रदान करते हैं। भाई-बहन के प्रेम को स्थिर करने का यह बहुत सुन्दर शासन है। इन दिनों हलवाइयों के यहाँ मिठाई लेने के लिये लोगों का ताँता बँधा रहता है।

मार्गशीर्ष

(क) भैरवाष्टमी—मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को काशी-वासी 'कालभैरव' का दर्शन करते हैं। कालभैरव के गंडे खूब बिकते हैं। गंडे बेचने वाले मोरपंख की एक छड़ी लिये रहते हैं। लोग छोटे बच्चों को उनके सामने खड़ा कर देते हैं। वे कुछ मंत्र से पढ़ने का नाट्य करते हुए उस कूँची को हिलाते रहते और बीच बीच में बालक पर 'फू-फू' करते रहते हैं। एक आध मिनट बाद कूँची के पिछले हिस्से से बच्चे की पीठ पर थाप देते, राख का तिलक लगाते और गंडा पहना कर पैसा ले लेते हैं। इन गंडों तथा कालभैरव की मूर्तियों की बिक्री खूब होती है।

(ख) खिचड़वार—सारा बनारस तथा आसपास के देहात के लोग गंगास्नान करते हैं। जाड़ा होने के कारण प्रायः ९-१० बजे भीड़ अधिक होती है। लोग खिचड़ी और तिल के लड्डुओं का दान करते हैं और इसी दिन से खिचड़ी खाना प्रारम्भ करते हैं।

पौष

गणेशचतुर्थी—पौष कृष्णा चतुर्थी को सारा बनारस गणेश-दर्शन करता है। 'बड़े गणेश' में अपार भीड़ होती है। माला-फूल, गणेशजी की मूर्तियाँ, कजली की किताबें बिकती हैं।

माघ

वसन्तपंचमी—माघ शुक्ला पंचमी को लोग वसन्त-पूजन करते हैं। आम का बौर खाते हैं। केसरिया कपड़े पहनते हैं। स्थानीय सेन्ट्रल-हिन्दू-स्कूल में लड़के और अध्यापक सरस्वती-पूजन करते हैं।

परिशिष्ट

(क) रंगभरी एकादशी—फाल्गुन कृष्णा एका-दशी को विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के मन्दिरों में विशि-श्रृंगार होता है। विश्वनाथजी में इस दिन 'पंचवक्त्र' अर्थात्—पाँच मुँह वाले सोने के महादेवजी रहते हैं। इनका यह खास दिन है। परात में गुलाल भर के पुजारी बैठ जाते है और प्रत्येक दर्शनार्थी के लगाता चलता है। जिसे चढ़ाना होता है, चढ़ाता चलता है। काशी में कोई ऐसा नहीं रह जाता, जो दर्शन न करे, यदि वह रोगी नहीं है। रात को भीड़ अधिक होती है और ज्ञानवापी के मैदान में हजारों आदमी पहले जाने के लिये धक्का-धुक्की किया करते हैं।

(ख) आमलकी एकादशी—फाल्गुन शुक्ल की एकादशी को लोग आँवले के पेड़ के नीचे रसोई बनाते खाते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ भी टोली बाँधकर जाती हैं। इसके लिये लोग बागीचों में जाते हैं। इस यात्रा का साधा-रण संकेत 'औरातरे' यानी आँवले के नीचे है।

(ग) निर्जला एकादशी—ज्येष्ठ शुक्ल की एकादशी को संध्या समय गंगाजी का विशेष स्नान होता है। लोग तैर कर गंगापार जाते और वहाँ रेती में कबड्डी खेलते और कुश्ती लड़ते हैं। तैर कर जाने वाले ही हज़ारों हो जाते हैं। कुछ दर्शक भी पहुँच जाते हैं। फिर अन्तिम स्नान कर इत्र वगैरह मिला हुआ चन्दन लगाकर लोग घर आते हैं।

(घ) हरिशयनी एकादशी—आषाढ़ शुक्ला एका-दशी को सनातनधर्म के अनुसार देवता सो जाते हैं और कार्त्तिक में उठते हैं। इतने दिनों कोई शुभ काम—विवाह, गौना यज्ञोपवीत आदि—नहीं होता।

(च) प्रबोधिनी एकादशी—कार्तिक शुक्ल की एकादशी को देवता उठ बैठते और ऊख चूस-चूसकर सिंघाड़े खाने लगते हैं। इस दिन से सब शुभ कार्य फिर होने लगते हैं।

नवरात्र—प्रति वर्ष चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ में नवरात्र पड़ते हैं; पर चैत्र और आश्विन के ही माने जाते हैं। चैत्र का नवरात्र रामनवमी को तथा आश्विन का विजया दशमी को समाप्त होता है। काशी में ९ दिनों में

देवियों के दर्शन लोग करते हैं। उसका क्रम यों है—(१) शैलपुत्री, वरुणातट पर, (२) ब्रह्मचारिणी, सिद्धेश्वरी महल्ला, (३) चन्द्रघंटा, घंटा-घर, चौक के पास, (४) कूष्माण्ड, दुर्गाकुंड, (५) स्कन्दमाता, स्कन्दमाता की गली, (६) कात्यायनी (७) कालरात्रि, कालि कागली (८) महागौरी, अन्नपूर्णा का मंदिर (९) सिद्धिदात्री।

इन दिनों लोग दुर्गा सप्तशती का पाठ करते और ब्राह्मणों द्वारा कराते हैं। कुमारी-भोजन कराते हैं और बहुत लोग विन्ध्याचल में जाकर देवी के दर्शन करते हैं। बहुत लोग ९ दिन वहीं रह जाते हैं। इस अवसर पर केवल ब्राह्मण ही लाभ में रहते हैं। आसन, रुद्राक्षमाला, धोती, अँगोछा और गौमुखी आदि वस्तुएँ बहुत बिकती हैं।

स्नान—काशी में अनेक तीर्थ हैं; अतः अनेक प्रकार के स्नान होते रहते है। एक तो नित्य स्नान है। लोग नियम से तड़के ही 'हरे राम' 'श्रीकृष्ण' आदि कहते हुए गंगास्नान करते हैं। कुछ प्रसिद्ध स्नानों का भी वर्णन हम करेंगे—

(क) वैशाख-स्नान—वैशाख स्नान का शास्त्रों में विशेष माहात्म्य बताया है; अतः लोग—ख़ासकर स्त्रियाँ—वैशाख भर दशाश्वमेध पर स्नान करती हैं।

(ख) कार्त्तिक-स्नान—कार्त्तिक भर स्त्रियाँ तड़के ३-४ बजे पंचगंगा-स्नान करती हैं। पुरुष भी थोड़े-बहुत जाते हैं। कार्त्तिक में घरों में तथा घाटों पर 'आकाश दीप' जलाये जाते हैं। लम्बे बाँस के सिरे पर एक छोटा आड़ा बाँस बाँध कर उसमें झपिया बाँधते हैं। उसी झपिया में एक दीप रखते हैं। पंचगंगा पर लाखों 'अकाशदीप' देखने में आवेंगे। बहुत जगहों पर तो लालटेन ही बँधी रहती हैं। इस स्नान में पुण्य से अधिक अनाचार—व्यभिचार—होता है।

(ग) माघ-स्नान—माघ में स्नान करने का माहात्म्य बताया गया है और हज़ारों आदमी करते भी हैं। और चाहे जो हो, जाड़ों में स्नान करने का इससे प्रोत्साहन मिलता है और शरीर-शुद्धता हो जाती है। जाड़े के प्रारंभ ही से अभ्यास रहने के कारण घोर जाड़े में भी लोग नहा लेते हैं।

(घ) तीर्थ-स्नान—जैसे लोलार्क और वृद्धकाल-कुण्ड तथा पंचतीर्थी, इन्द्रदमन आदि के स्नान। वृद्धकाल का कुंड तो इतना गन्दा रहता है कि वर्णन नहीं हो सकता। एक छोटा-मोटा नरक ही समझिये; पर स्त्रियाँ, बच्चे और कुछ पुरुष भी बड़े प्रेम से उसमें नहाते और आचमनादि करते हैं।

गंगाजी की बाढ़ कई विशेष स्थानों तक आ जाने पर 'इन्द्रदमन' लगता है; अर्थात्—उससे अधिक बाढ़ की आशा लोग नहीं करते। इन्द्रदमन कभी-कभी वर्षों में लगता है। लगने पर लोग मणिकर्णिका में स्नान करते हैं और विश्वास करते हैं कि 'मोक्ष' मिल गया। अब पुनर्जन्म न होगा।

यात्रा—साधारणतया देवदर्शनों के अतिरिक्त तीन यात्राएँ होती हैं—पंचतीर्थी, अंतर्गृही तथा पंचक्रोशी। पंचतीर्थी, अंतर्गृही तो बारहों महीने होती रहती हैं; क्योंकि शहर ही में ५-७ कोस का चक्कर करना पड़ता है; पर पंचक्रोशी में समस्त काशी की परिक्रमा होती है और कई दिन लग जाते हैं; अतः बरसात, घोर जाड़े तथा गर्मी में यह यात्रा नहीं होती। जाड़े के प्रारंभ या अन्त में यह यात्रा होती है। अब तो बहुत लोग मोटरों से इसे निबटा देते हैं। बाहर से आये हुए यात्री तो अवश्य ही यह यात्रा करते हैं।

विशेष दर्शन—सोमवार को महादेवजी का दर्शन लोग करते हैं। श्रावण के सोमवारों को लोग व्रत रहते हैं और 'केदारजी' के दर्शन करते हैं। इन्हीं सोमवारों को लोग सारनाथ जाते हैं। मारकण्डेय के दर्शन करते हैं। अजायबघर देखते हैं और भोजन बनाकर खाते हैं। हज़ारों आदमियों की भीड़ होती है और 'स्पेशल ट्रेन' आती-जाती हैं।

(ख)—मंगलवार को दुर्गाजी तथा संकटमोचन हनुमान के दर्शन होते हैं। श्रावण के मंगल को इन दोनों स्थानों में १०-१० हज़ार आदमी इकट्ठे हो जाते हैं।

काशी के संस्कृत-विद्यालय

लेखक—श्रीयुत अयोध्यानाथ सान्याल, शास्त्री

यद्यपि इस समय संस्कृत भाषा का अत्यन्त अधःपतन हो गया है, लोग इसे मृतकभाषा तक कह कर दिल्लगी उड़ाने लग गये हैं, इस भाषा के पढ़ने वाले को बेवकूफ आदि अश्लील उपाधियों से भूषित करने लगे हैं, तथापि ऐसी भयंकर परिस्थिति को सहन करती हुई संस्कृत-भाषा इस काशीपुरी में राज्य कर रही है। यहाँ की पाठशालाओं को तथा झुण्ड-के-झुण्ड संस्कृत-विद्यार्थियों को देखने से यही प्रतीत होता है, मानो अब भी हमारा देश क्षत्रीय राजाओं की शासन-शृंखला में बद्ध है। यहाँ पर पञ्जाब, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, बिहार, बङ्गाल आदि देशों से विद्याध्ययन करने के लिये विद्यार्थी आते हैं और बड़े परिश्रम से वेद, वेदान्त न्याय, मीमांसा, सांख्य, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष आदि गम्भीर विषयों का अध्ययन करते हैं। जिधर देखिये उधर ही बगल में पुस्तक दबाये हुए विद्यालय में पाठार्थ जाती हुई छात्र-मण्डली देख पड़ती है। कहीं सामवेद का गान हो रहा है, कहीं पर वेद-पाठी विद्यार्थीगण ऋग्, यजुः तथा अथर्व वेदों का पाठ स्वर-सहित कण्ठस्थ कर रहे हैं। कहीं पर तर्क-शास्त्र का अध्यापक तर्कशास्त्र की पंक्ति को समझाने के लिये दिमाग लड़ा रहा है, तो कहीं पर 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' का उपदेश देने में तत्पर हो रहा है। कहीं वैयाकरण विद्यार्थियों का मेला जुट रहा है। इस प्रकार इस अंग्रेजी युग में भी काशीपुरी में इस प्राचीनभाषा के पठन-पाठन की व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही है। इस भाषा के पढ़ने के लिये अच्छी-अच्छी पाठशालाएँ बनी हुई हैं, उनकी संख्या लगभग इस समय १०० या १५० होगी। उनमें अधिकतर विद्यालय या पाठशालाएँ मारवाड़ियों के धन से चल रही हैं। उनमें जो प्रसिद्ध विद्यालय हैं, उनकी व्यवस्था तथा नामों की तालिका नीचे दी जाती है। सबसे बड़ी संस्था गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज तथा हिन्दू-विश्वविद्यालय का प्राच्य-विभाग है, जिनमें अनेक विद्वान् पढ़ाते तथा सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन दोनों विद्यालयों से संस्कृत-भाषा का बड़ा भारी उपकार हो रहा है।

जोखीराम-मटरूमल संस्कृत-महाविद्यालय

इस संस्था का कोष ५५१,००० रुपए है, जो सूरत निवासी सेठ गोरखरामजी-साधुरामजी की कोठी में ६) रु० सैकड़े वार्षिक सूद पर जमा है। इस महाविद्यालय में १६ अध्यापक विविध शास्त्रों का अध्ययन करते हैं। वेद, वेदान्त, व्याकरण आदि सभी शास्त्रों की शिक्षा दी जाती है। इस विद्यालय के अन्तर्गत दो छात्रावास हैं। छात्र-संख्या ३०० तक है। अध्यापकों के वेतन में ७५०) रु०, छात्र-वृत्ति में ९७५) रु०, परीक्षा-शुल्क में ११००) रु० तथा फुटकर में ६४०) रु० खर्च किये जाते हैं। इस विद्यालय के अधीन एक 'अच्युत ग्रन्थ-माला' है, जिसका उद्देश्य प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन करना तथा विद्वानों द्वारा मौलिक ग्रंथ लिखवाना है। एक पुस्तकालय भी है; जिसमें विविध लिपियों में संस्कृत पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। यहाँ के अध्यापक तथा छात्रों के सिवाय और लोगों को भी इससे बहुत लाभ है। यह विद्यालय इस समय और विद्यालयों से उन्नत है। भविष्य में आशा है, इससे संस्कृत-भाषा की बड़ी भारी उन्नति होगी। इस विद्यालय में संकुचित विचारों को छोड़ कर यदि सभी सम्प्रदाय युक्त मनुष्यों को पढ़ने के लिये रुकावट न होती, तो जनता का इससे और भी

अधिक उपकार होता। इस विद्यालय से प्रति वर्ष सैकड़ों विद्यार्थी क्वीन्स कॉलेज की परीक्षा में बैठते हैं और उत्तीर्ण होते हैं।

मारवाड़ी संस्कृत-कॉलेज

इस विद्यालय के अध्यापकों की संख्या ८ है। व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि शास्त्र पढ़ाये जाते हैं। इस समय करीब २०० विद्यार्थी हैं। यह संस्था मैनेजिंग कमेटी कलकत्ता के आधीन है। सन् १९१७ ईस्वी में स्थापित हुई है। अध्यापकों के वेतन तथा छात्र-वृत्तियों में ७००) रु० खर्च किये जाते हैं। पहले इसकी दशा बहुत अच्छी थी। १३ अध्यापक काम करते थे, विद्यार्थी अधिक संख्या में पढ़ते थे। इसका मासिक व्यय २०००) से २५००) तक होता था। इस संस्था के अधीन एक दातव्य औषधालय भी था, जिससे आम जनता का भी बहुत उपकार होता था; परन्तु इस समय मारवाड़ी सेठों के व्यवसाय में हानि पहुँचने के कारण इस विद्यालय की दशा शोचनीय हो रही है। अब भी श्रीमदनमोहन शास्त्री आदि निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं के उत्कृष्ट उद्योग से इसका कार्य चल रहा है। वास्तव में इस संस्था की इस दशा से संस्कृत-भाषा की अत्यन्त हानि होने वाली है। जनता को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

टीकमणि संस्कृत-कॉलेज

यह वही कॉलेज है, जहाँ पर बड़े-बड़े विद्वान् तथा अधिक संख्यक छात्र रहते थे। पहले इसकी बहुत अच्छी दशा थी। ८ या १० अध्यापक थे, २०० छात्र पढ़ते थे। इस समय ६ अध्यापक पढ़ाते हैं, १०० छात्र पढ़ते हैं। सब विभागों में ४००) रु० खर्च किये जाते हैं। इसके साथ एक पुस्तकालय भी है, जिसमें करीब १००० या १५०० पुस्तकें है। इस समय विद्यालय की आर्थिक परिस्थिति अच्छी न होने के कारण यह विद्यालय सरकार से सहायता लेना चाहता है। सरकार को चाहिए, इस विद्यालय को मदद पहुँचाकर संस्कृत-भाषा को भी सहायता पहुँचाए।

श्रीचन्द्र-महाविद्यालय

इस विद्यालय में इस समय ७ अध्यापक काम करते हैं। सभी शास्त्रों की पढ़ाई होती है। २०० के करीब विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसकी परिस्थिति इस वक्त अच्छी है। इसके अधीन एक दातव्य औषधालय है, जिससे विद्यार्थियों के सिवाय साधारण जनता को भी बहुत लाभ पहुँचता है। इस विद्यालय का कार्य प्रशंसनीय है। स्वामी दर्शनानन्दजी निःस्वार्थ भाव से इस विद्यालय के उन्नति-साधन में तत्पर रहते हैं। भविष्य में इस विद्यालय से संस्कृत-भाषा को बड़ा लाभ होने की सम्भावना है।

बिड़ला-विद्यालय

इस विद्यालय में भी अनेक अध्यापक पढ़ाते हैं तथा सैकड़ों छात्र पढ़ते हैं। इसकी व्यवस्था अच्छी है। राजा बलदेवदास बिड़ला के दान से इस विद्यालय का कार्य चल रहा है। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस विद्यालय की उन्नति प्रति दिन हो।

विशुद्धानन्द-विद्यालय

यह विद्यालय काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती की स्मृति में स्थापित है। इस विद्यालय में पाँच अध्यापक काम करते हैं। विद्यार्थी अधिक संख्या में पढ़ते हैं।

इसकी परिस्थित इस समय सन्तोषजनक नहीं है। इन पाठशालाओं के अतिरिक्त और भी विद्यालय और पाठशालाएँ हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है—

(१) साङ्गवेद विद्यालय, नगवा, धर्मकूप, (२) राजस्थान संस्कृत-कॉलेज, (३) विश्वनाथ-संस्कृत पाठशाला, (४) मुमुक्षुभवन वेदवेदाङ्ग-विद्यालय, (५) कस्तूरीराम-गंगाधर संस्कृत-पाठशाला, (६) श्रीयुगुलकिशोर रूइया सं० पाठशाला (नगवा लंका), (७) अर्जुनराम-फूलचन्द खेतान सं० पाठशाला, (८) देवीदत्त-सूर्यमल खेतान सं० पाठशाला, (९) ब्रह्मविद्यालय, कालिकागली, (१०) श्रीसरस्वती पाठशाला, भदैनी, (११) शरत्कुमारी विद्यालय, गोधौलिया, (१२) काशीराम संस्कृत विद्यालय, ज्ञानपुर, (१३) श्रीरामचन्द्रजी हरिराम गोयनका सं० पाठशाला, (१४) धर्महितकारिणी संस्कृत-पाठशाला, नई बाजार, (१५) श्रीराम संस्कृत-पाठशाला, गोपीगंज-भदैनी, (१६) अन्नपूर्णा ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, (१७) विश्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम, (१८) युवराज कुमारी संस्कृत-पाठशाला, (१९) बाबू जगनप्रसाद-बैजनाथ संस्कृत-पाठशाला, (२०) उदासीन गुरुसंगत विद्यालय, मीरघाट, (२१) कबीर-महामण्डल-साधुविद्यालय, बड़ागाँव, (२२) राधास्वामी संस्कृत पाठशाला, भदोही, (२३) जयनारायणहरनारायण बुबनामारवाड़ी सं० पाठशाला, (२४) दाऊजी सं० महाविद्यालय, सिगरा, (२५) दुर्गा-पाठशाला, (२६) गणेश-संस्कृत-पाठशाला, गोमठ, (२७) भैरव-संस्कृत-पाठशाला, बाबतपुर, (२८) विशुद्धानन्द कान्यकुब्ज सं० विद्यालय, (२९) कपिलेश्वर सं० पाठशाला, (३०) कालिका वेद-विद्यालय, कालिकागली, (३१) सतुआ बाबा सं० पाठशाला, मणिकर्णिका घाट, (३२) संन्यासी संस्कृत-महाविद्यालय, (३३) सांगवेद प्रधान नगवा पाठशाला, (३४) रामवेद विद्यालय, तुलसीदासजी का मन्दिर, भदैनी, (३५) उदासी संस्कृत-विद्यालय, (३६) रणवीर-संस्कृत-पाठशाला, (३७) दयानन्द वैदिक विद्यालय, (३८) सत्यनारायण साङ्गवेद-विद्यालय, (३९) गायत्री-पाठशाला, (४०) निर्मल सन्त संस्कृत पाठशाला।

(८५ पृष्ठ का शेषांश)

क्षमा ने उसपर एक उल्लास की दृष्टि डालते हुए कहा—मेरे जी में आ रहा है, अम्माँ को यह रुपये न देकर खुद रख लूँ; लेकिन पहले कपड़े ऊपड़े तो उतारो, कुछ खाओ, आराम करो, फिर आरामसे चलेंगे। नहीं, अम्माँ को यहीं क्यों न बुला लूँ। और सच्ची बात तो यह है कि वह सब मेरी शरारत थी, जिसपर मैं रोज़ पछताती थी।

जटाशंकर ने विस्मय से कहा—सच! उफ़! कितना गहरा चकमा दिया! कितनी निष्ठुर हो तुम। अगर यह क़ाटरी न निकल आती, तो मैं तुम्हारी चौखट पर सिर पटकता रह जाता।

'निष्ठुरता पहले तुमने शुरू की।'

'मैं ने!'

'जी हाँ, हुजूर ने! जिस बाल-विधवा से विवाह करने का तावान आप पाँच हज़ार माँग रहे थे, वह यही मिस क्षमा, या क्षमा देवी हैं।'

जटाशंकर ने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया और बोला—ज़रा पंखा खोल दो क्षमा, मेरा सिर चक्कर खा रहा है। तुम्हें चाहिये था कि मुझ जैसे पशु को ठोकरें मारकर निकाल देतीं। आज मुझे अपनी नीचता का अनुभव हो रहा है और जी चाहता है कि तुम मुझे खंभे से बाँध कर एक हज़ार हंटर लगाओ। कसम ले लो, जो मैं मुँह से एक चीख भी निकालूँ। नहीं, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ क्षमा! उफ़! तुम-जैसी स्वर्ग की देवी के साथ यह अन्याय!

क्षमा ने पंखा खोल दिया और उसके गले लिपट कर बोली—अब उन बातों को भूल जाओ शंकर! उस वक्त तक तुम ने स्त्री का मूल्य न समझा था और मुझे सेवा का अवसर न मिला था। वही बालिका जिसका तुमने तिरस्कार किया था, आज तुम्हारे गले लिपटी हुई है, यह उसके लिये परम सौभाग्य की बात है। मुझे तो आज उस तिरस्कार में भी आनन्द आ रहा है।

पंडित उमानाथ प्रयाग के अच्छे रईस हैं। विचार नये रखते हैं; पर चलते हैं पुरानी लकीर पर। समाज की जिन बुराइयों को रोते हैं, वही बुराइयाँ करते हैं। छूत-छात को गधापन कहते हैं; पर जाड़ों में भी कपड़े उतारकर भोजन करते हैं। तर्पण की हँसी उड़ाते हैं; पर पितृपक्ष में रोज पिंडा देते हैं। सूद की निन्दा करते हैं; पर अपने असामियों से कसकर सूद लेते हैं। अगर कभी दिल मजबूत करके कोई नियम तोड़ना चाहते हैं, तो रमा पाँव पकड़ कर पीछे घसीटती है। वह बालविवाह के विरोधी थे; पर जब एक अच्छे कुल का लड़का मिल गया और रमा ने जोर लगाया, तो क्षमा का ग्यारह की अवस्था में विवाह कर दिया; पर जब गौना होने के पहले ही क्षमा विधवा हो गई, तो बाल-विधवा-विवाह के समर्थक होने पर भी पंडितजी उसका पुनर्विवाह न कर सके। उसे स्कूल में पढ़ने भेज दिया। यहाँ तक कि क्षमा बालिका से युवती हुई और अब उसे अपने जीवन में एक शून्यता की मर्म-पीड़ा होने लगी। उसकी सभी सहेलियाँ सुहागिनें हो गईं, कइयों की गोद में बालक भी खेलने लगे, नई-नई चिंताओं और नई-नई आशाओं ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया; लेकिन क्षमा के लिये वही स्कूल था, वही पुस्तकें थीं, और वही अपना घर था, जिससे उसे दिन-दिन अरुचि होती जाती थी। उसे अब अक्सर सिर-दर्द हुआ करता और कुछ स्वास्थ्य भी बिगड़ता जाता था; पर वह किसी खेल में शरीक न होती। उसे अपने वैधव्य पर दुःख नहीं, क्रोध होता था और इस क्रोध को किसी तरह निकाल न सकने के कारण अपने ही को घुलाती जाती थी।

नर्स

लेखिका—श्रीमती शिवरानी देवी

• • •

एक दिन उमानाथ ने स्त्री से कहा—मेरा जी चाहता है, कोई अच्छा आदमी मिल जाय, तो क्षमा का विवाह कर दूँ। बला से लोग हँसेंगे, इसका जीवन तो सुखी हो जायगा। सुख-दुख तो विधि के हाथ है, कम-से-कम उसे यह संतोष तो हो जायगा कि जिस संसार में औरों को सुख मिलता है, वहाँ वह भी पहुँच गई।

रमा ने छाती पर हाथ रख लिया, जीभ दाँतों के नीचे दबा ली, आँखें फैला दीं और एक ही साँस में ईश्वर से लेकर अपने भाग्य तक को कोस गई।

पंडितजी ने जोर देकर कहा—लेकिन सोचो, इस दशा में वह कब तक रहेगी?

'रहने की न कहो। ऐसी लाखों विधवाएँ आज भी पड़ी हुई हैं।'

'मगर मुझसे यह दशा नहीं देखी जाती।'

'दुख से कोई कहाँ तक भागेगा। उसे तो झेलना ही पड़ेगा। किसी को पति का दुख है, किसी को पुत्र का, किसी को धन का। यह तो संसार की लीला है।'

'जिस बीमारी की दवा हो सकती है, उसे क्यों पालें, यह मैं नहीं समझता। फिर यह बात हमारी ही जिंदगी तक तो नहीं है। अगर आज मैं मर जाऊँ और मेरे शोक में तुम भी मर जाओगी ही, तब क्षमा किसकी शरण जायगी, यह सोचो।'

'अच्छा बाबा, तुम्हारे जो मन में आवे करो। बे बात की बात मत करो। आदमी सलाह की बात भी करता है, तो अशकुन मुँह से निकालने लगते हो।'—यह कहती हुई उमा वहाँ से झल्लाई हुई चली गई।

• • •

पंडितजी अब वर खोजने लगे; लेकिन वर न मिला। मिलता भी था, तो अधेड़ या समाज से निकाला हुआ, या दरिद्र। इसमें महीनों लग गए। आख़िर बड़ी दौड़-धूप करने पर एक जवान मिला; जिसके माँ-बाप न थे; पर ज़हीन था और अपने बल पर विद्योपार्जन कर रहा था। वह इस शर्त पर राज़ी हुआ कि उसे विलायत जाने के लिये पाँच हज़ार रुपए दिए जायँ। पंडितजी राज़ी हो गए। अपना घर बेच डालेंगे। लड़की को ही तो मिलना है, चाहे अभी ले ले या मरने के बाद।

मगर जब क्षमा को मालूम हुआ, तो उसने साफ़ कह दिया, वह विवाह नहीं करना चाहती। यह अपमान वह नहीं सह सकती। जो आदमी उसके दुर्भाग्य से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, ऐसे आदमी से वह कभी विवाह न करेगी।

रमा ने समझाया—मगर माँग तो रहा है अच्छे ही काम के लिये, वहाँ से लौटेगा, तो कोई अच्छी जगह पा जायगा।

क्षमा बोली—तुम क्या कहती हो अम्माँ, जो अधर्म समझ कर नहीं करता, वह इतना बुरा नहीं। कम-से-कम वह अपने धर्म का सच्चा तो है। यह तो रुपयों के लिये वह काम करने को तैयार है, जिसे वह अधर्म समझ रहा है।

'तुझसे क्या मतलब। रुपए तो हम देंगे।'

'आपको मेरा अपमान करने का कोई हक़ नहीं है।'

'अच्छी तरह सोच ले।'

'सोच लिया।'

'बदनामी से बचना कठिन है।'

'बदनाम वही होते हैं, जो बदनाम होने लायक़ होते हैं।'

• • •

उस दिन से क्षमा में एक नया जीवन आ गया। पहले आग सुलगती रहती थी। अब हवा लग जाने से प्रचंड हो गई थी। असंतोष ने विद्रोह का जामा पहन लिया था।

पुस्तकों में अब उसकी रुचि यकायक बढ़ गई। वह जी-जान से पढ़ने लगी। वह अब किसी पुरुष की लौंडी न बनेगी, स्वयं अपनी स्वामिनी बनेगी।

आखिर मिस जोशी और मिश आग़ा और सुलोचना अविवाहित रहकर क्या सुख से नहीं रहतीं? उन्हें तो कभी विवाह का नाम लेते नहीं सुना। विवाह को तो वह गुलामी का पट्टा कहती हैं। तो मैं ही क्यों गुलामी का पट्टा लिखाऊँ? मैं क्यों दूसरों का मुँह देखूँ? इस भाव के उदय होते ही क्षमा के मन में एक विचित्र प्रकार की शक्ति आ गई। उसका नारीत्व जैसे धुल गया और भीतर से कठोर पत्थर निकल आया। बात-बात पर लजाना और सकुचाना, अकेले घर से बाहर निकलते कलेजे का काँपना, पुरुषों के सामने अपने को नीचा समझना, रात को कोई खटका होते ही थर-थर काँपने लगना, यह सब कुछ जाता रहा। बनाव-सिंगार भी उसे बुरा लगने लगा। अपनी अन्य सहेलियों को पाउडर और रंग भरे देखकर वह उनका मज़ाक़ उड़ाती। जीवन में उसे एक नया आनन्द आने लगा, जो अपने ही सुख-दुःख में बँधा हुआ न था। सामाजिक कर्त्तव्य और सेवा का भाव जागृत होने लगा।

उसका विचार एम० ए० की डिग्री लेकर अध्यापिका बनने का था; पर सहसा उसके पिता का देहान्त हो गया और उसे जीविका की चिंता हुई। माता पर भार से रहना उसे स्वीकार न था। उसने मेडिकल कॉलिज जाकर नर्स हो जाने की इच्छा प्रकट की।

रमा ने कहा—तुझे इसकी क्या चिंता है बेटी, तेरे पिता ने बहुत नहीं छोड़ा है, फिर भी हम दोनों की उसमें किसी तरह ज़िंदगी कट जायगी। तू जाकर कहीं नौकरी करे, यह तो मुझे अच्छा नहीं लगता। तेरे बाप की कितनी बदनामी होगी, जरा सोच।

'इसमें बदनामी की कौन-सी बात है अम्माँ! अच्छे अच्छे घरों की स्त्रियाँ नर्स का काम करती हैं।'

'मगर हमारे यहाँ तो रिवाज नहीं है?'

'तो रिवाज डालना पड़ेगा। घर में कुढ़-कुढ़ कर मरने से तो यह कहीं अच्छा है कि उद्योग करके आराम से रहें।'

'लोग यही तो कहेंगे कि बाप के मरते ही औरतें मजूरी करने लगीं।'

'मैं तो समझती हूँ, इसमें उनकी बदनामी नहीं, नेकनामी है। सम्पत्ति जोड़ने का अर्थ मेरी समझ में यही है कि आदमी दूसरों का हक़ दबा ले। यह जितने मोटे आदमी हैं, सभी लुटेरे हैं। और ग़रीबों का खून पी-पी कर मोटे होते हैं।

ऐसी बातों का माँ के पास क्या जवाब था। क्षमा ने मेडिकल कॉलिज प्रार्थना-पत्र भेज दिया और एक महीने के अंदर लखनऊ चली गई।

• • •

दो साल गुज़र चुके हैं। क्षमा लखनऊ के मेडिकल कॉलिज में नर्स है। वह अच्छी पढ़ी-लिखी होने के कारण अपने काम में इतनी कुशल है और अपनी जिम्मेदारी का इतना ध्यान रखती है कि जब कोई असाध्य रोगी आ जाता है, तो बहुधा उसकी सुश्रूषा के लिये वही चुनी जाती है। और वह अपनी योग्यता को बराबर बढ़ाते रखने की चेष्टा करती रहती है। डाक्टरों से कुछ-न-कुछ सीखते रहने की उसे हमेशा धुन रहती है। प्रायः जो मरीज़ उसके वार्ड में

आता है, वह अच्छा हो जाता है और कई मरीज़ों ने तो उसकी सेवाओं से मुग्ध होकर उसे अच्छी-अच्छी रक़में पुरस्कार में देनी चाहीं ; पर क्षमा ने धन्यवाद के साथ लौटा दीं। इससे उसका सम्मान और बढ़ गया।

अबकी गर्मियों में एक मुंसिफ़ साहब मेडिकल कॉलेज के वार्ड में दाख़िल हुए। आप अच्छे शिकारी थे। सुअर का शिकार कर रहे थे। निशाना सुअर पर पड़ा ज़रूर ; पर उसने उछल कर अपना खाँग उनकी रान में कुछ इस तरह चुभा दिया कि दाहनी रान बिलकुल नुच गई। गोश्त ग़ायब हो गया, हड्डी निकल आई। बेहोश होकर गिर पड़े। साथ के आदमियों ने दौड़कर उनकी जान बचाई। घर लाए गए और दवा-दारू होने लगी। मगर कुछ ऐसी लापरवाही से काम लिया गया कि ज़ख़्म बिगड़ गया और उसमें से सेरों मवाद निकलने लगा। जीने की आशा न रही। तब मेडिकल कॉलेज आए और वार्ड में दाख़िल हो गए। क्षमा उनकी सेवा के लिये नियुक्त हुई। मुंसिफ़ साहब का नाम था—जटाशंकर।

पहले ही हफ़्ते में मरीज़ की हालत सुधरने लगी। क्षमा की लगन को जिन्हों ने देखा था, वह भी कहते थे कि इतने मनोयोग से उसने पहले किसी को नर्स न किया था। खाने-पीने तक की सुधि न रहती।

एक दिन डाक्टर ने कहा—मुंसिफ़ साहब आप बड़े खुशनसीब हैं कि आपको मिस क्षमा जैसी नर्स मिली। ५००) रुपए माहवार खर्च करके भी आप इतनी अच्छी सेवा न पा सकते।

जटाशंकर अब उठने-बैठने लगे थे। बोले—मैं सचमुच खुशनसीब हूँ डाक्टर साहब ! मुझे तो यकीन है कि इन्हीं ने मुझे बचाया, वरना आप का कुशल प्रयास भी मुझे न बचा सकता।

डाक्टर साहब जब चले गए तब जटाशंकर ने क्षमा की ओर कृतज्ञता भरी आँखों से देखकर कहा—मालूम होता है पूर्व जन्म में मेरा आप से अवश्य घनिष्ट संबंध था।

क्षमा ने मुसकिराकर कहा—आप पूर्व जन्म मानते हैं ?

'पहले तो नहीं मानता था ; पर अब मानता हूँ।'

'तो आपने मेरे साथ कोई बड़ा उपकार किया होगा ?'

'मैं तो किसी ऐसे उपकार की कल्पना ही नहीं कर सकता, जिसका यह पुण्य मिले।'

'मैं तो कर सकती हूँ।'

'सच ! अच्छा क्या कल्पना करती हो।'

'आपने मेरी कन्या के विवाह के लिये दान दिया होगा।'

'मुझे तो अपनी दानशीलता पर ऐसा विश्वास नहीं। जब मैं पढ़ता था, तो एक बाल-विधवा से मेरा विवाह ठीक हो गया था ; लेकिन मैंने ५०००) दहेज के माँगे। ऐसा कमीना आदमी कभी दान दे सकता है ?'

क्षमा को पहले ही दिन से यह बात मालूम हो गई थी। जटाशंकर को कुछ मालूम न था।

क्षमा ने परिहास-भाव से पूछा—आपको ५०००) माँगते हुए ज़रा भी दया न आई।

'अब क्या कहूँ। उस वक्त ऐसी ही बुद्धि थी।'

'आख़िर आप उस बालिका के पिता को किस अपराध में इतना दंड देना चाहते थे। आपको पत्नी मिलती, आपके घर का काम-काज करती, आप उसका पालन-पोषण करते। इतना सस्ता दूसरा कोई इन्तज़ाम शायद आप न कर सकते। वह बालिका कोई युरोपियन लेडी तो थी नहीं, कि उसके आते ही आपका ख़र्च बढ़ जाता। वह तो पैसे की जगह धेला ही खर्च करती।'

'यह अनुभव तो अब हो रहा है। रसोइया है, दो नौकर हैं, फिर भी गतका खाना नहीं मिलता। जो कुछ पाता हूँ, सब खर्च हो जाता है। अगर कभी बीमार हो जाता हूँ, तो कोई पानी देने वाला नहीं।'

'तो आप अब भी उतना ही दहेज माँगते हैं ?'

'आप मुझे और ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिए।'

'मैं आपके मन का भाव जानना चाहती हूँ।'

'भाव इसके सिवा और क्या है कि मुफ्त की रक़म हाथ आजाय और जरा दिल खोलकर खर्च करूँ।'

'मुझे आश्चर्य होता है कि स्त्री का इतना अपमान करने के बाद आप कैसे आशा करते हैं कि वह आपसे प्रेम करेगी ?'

'स्त्री का मूल्य तो अब समझ में आया।'

'आप सच्चे दिल से कहते हैं कि अब आप बिना दहेज लिये विवाह कर लेंगे ?'

'हाँ देवीजी, सच्चे दिल से कहता हूँ। हाँ, औरत वैसी मिलनी चाहिए।'

'वैसी औरत तो जभी मिलेगी, जब आप वैसे पुरुष होंगे। आप अपने को इतना मूल्यवान समझते हैं कि जब तक स्त्री के पलड़े पर कई थैलियाँ रुपये की न रख दी जायँगी, वह आपके बराबर नहीं हो सकती। अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने की इससे बुरी मिसाल और क्या हो सकती है।'

'मैं आपको वचन देता हूँ, अब दहेज का नाम भी न लूँगा।'

• • •

एक महीने के बाद डाक्टरों ने जटाशंकर को अपने काम पर लौट जाने की अनुमति दे दी। अब वह पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गए थे। ज़ख़्म का निशान तक न था। मीलों बिना किसी कष्ट के चल सकते थे। चेहरे पर सुर्खी दौड़ने लगी थी और पहले से कई पौंड वज़न बढ़ गया था। जाने के एक दिन पहले वह मिस क्षमा के कमरे में जाकर बोले—'मैं कल चला जाऊँगा क्षमा देवी!'

क्षमा ने उदासीन मन से कहा—जाइए और फिर यहाँ कभी न आइएगा।

'मुझे तो इस बीमारी में जो आनन्द मिला, वह जीवन में कभी न मिला था और जी चाहता है कि फिर कोई बीमारी हो जाय और यहाँ लौट आऊँ।'

'ईश्वर न करे कि आप यहाँ फिर आवें।'

एक क्षण तक दोनों मौन बैठे रहे। तब जटाशंकर ने कहा—तुम्हें मुझ पर बिलकुल दया नहीं आती है क्षमा?

'बिलकुल नहीं।'

'क्या वह दया मेरी बीमारी में ही थी?'

'और क्या। आप अब भगवान् की कृपा से चंगे हो गए। मेरा अब आपसे क्या संबंध?'

'तुम बड़ी निष्ठुर हो क्षमा!'

'आपसे भी ज़्यादा।'

'मैं तो तुम्हारे सामने भिक्षा माँगने खड़ा हूँ। तुमने मुझे मौत के मुँह से निकाला है, तो तुम्हीं मेरा जीवन सार्थक कर सकती हो।'

'कैसे?'

'क्या मुझे यह शब्दों में कहना पड़ेगा क्षमा?'

'मैं तुम्हारे मन का हाल क्या जानूँ।'

'खूब जानती हो क्षमा; लेकिन मुझे अयोग्य समझती हो और बिलकुल ठीक समझती हो। मैं सौ बार जन्म लूँ तो भी तुम्हारे योग्य नहीं हो सकता। लेकिन उपासना के लिए तो केवल भक्ति चाहिए और मेरा एक एक अणु तुम्हारे चरणों........'

क्षमा ने बात काटी—लेकिन आप जानते हैं, मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ। मेरे घर वाले जब तक राज़ी न हों, मैं कुछ नहीं कर सकती, और यह कहते मुझे बड़ी शर्म आती है; पर जब तक कोई ऐसा पुरुष न मिले, जो उन्हें दस हज़ार दहेज दे सके, वह कभी मुझे छोड़ने पर राजी न होंगे। मैं घर वालों को ५०) महीना देती हूँ। विवाह कर लेने पर मैं उन्हें कुछ न दे सकूँगी; क्योंकि तब आप मुझे कोई काम न करने देंगे, और न मुझे बाहर का कोई काम करने का अवकाश ही मिलेगा। जब तक उन्हें इतने रुपये न मिल जाँय, जिससे उन्हें ५०) रुपये सूद मिलते रहें, वह किसी तरह राज़ी न होंगे।

जटाशंकर ने लम्बी साँस खींची—क्षमा, तुम ने ऐसी शर्त रख दी है कि मैं कुछ कह नहीं सकता। मेरे पास अगर रुपये होते, तो दस हज़ार क्या दस लाख तुम्हारे चरणों पर रख देता; मगर इस वक्त तो मैं खाली हाथ हूँ; लेकिन ज़रा सोचो तो क्षमा, क्या प्रेम का कुछ भी मूल्य नहीं है?

क्षमा ने भी मजबूरी का साँस ली—मेरे लिये वह प्रेम अमूल्य है, और उसका मूल्य मेरा जीवन ही हो सकता है; लेकिन मेरे माता-पिता के लिये तो उस प्रेम का कौड़ी भर भी मूल्य नहीं है।

दोनों फिर दो-तीन मिनट तक मौन रहे। तब जटाशंकर ने मानो अँधेरे में मार्ग पाकर पूछा—मैं तुम्हारी पूज्य माताजी और पूज्य पिताजी से मिलना चाहता हूँ। उनका पता मुझे बता दोगी?

क्षमा ने हथेली को उलटते हुए कहा—फुजूल है। मैं जानती हूँ, वह लोग किसी तरह न राजी होंगे। और आप खुद समझ सकते हैं, कैसे राजी होंगे। उनके लिये यह रोटी-दाल का सवाल है। अगर आप कहें कि मैं ५०) हमेशा देता जाऊँगा, फिर भी वह न मानेंगे। आदमी का क्या

एतबार। कल को आप न दें, या आप की नौकरी छूट जाय, तो वह बेचारे किसके द्वार पर जायँगे ?

यहाँ भी निराशा हुई। और अब की मौन का पाँच मिनट तक राज्य रहा। तब क्षमा ने मृदुभाव से कहा—जब तक आपको चाय पिला दूँ, फिर न जाने कब यह अवसर आए।

जटाशंकर ने आँखों में आँसू लाकर कहा—इस वक्त तो मुझे दस पाँच गालियाँ देकर दुत्कार बता दो, तो इससे कहीं अच्छा हो।

क्षमा ने विनोद-भाव से कहा—इतने दिनों के बाद तो आप मेरे एक प्रेमी पैदा हुए, उसका यों अनादर कर दूँ ?

'मैं तुमसे हाथ जोड़ कर कहता हूँ क्षमा, थोड़ी देर के लिये गंभीर बन जाओ और मेरे एक प्रश्न का जवाब दो। तुम्हें कभी पा सकूंगा या नहीं, यह तो भाग्य की बात है; लेकिन तुम्हारे इस जवाब से मुझे बड़ा संतोष मिलेगा। तुम्हें मुझसे प्रेम है या नहीं ?'

क्षमा ने सजल नेत्र होकर कहा—आपके लिये मैं अपने प्राण दे सकती हूँ।

जटाशंकर ने कुरसी से उठकर उल्लास भरे स्वरों में कहा—एक प्रश्न और। तुम वादा करती हो कि तुम्हारे प्रेम में मेरा यह स्थान स्वरक्षित रहेगा ?

क्षमा ने काँपते हुए स्वर में कहा—तुमने यह प्रश्न करके मुझे अपने भावों को प्रकट करने का बहुत अच्छा अवसर दे दिया शंकर ! मैं रूपवती नहीं हूँ कि कोई मुझे देखते ही मरने लगे। न इतनी अल्हड़ ही हूँ कि कोई मुझे नकली प्रेम से पागल बना सके। कर्तव्य-पालन का सच्चा मूल्य समझने वाले बहुत कम पुरुष होते हैं। उधर से भी कोई खटका नहीं है। तुम जैसे सहृदय और विचार-शील पुरुष का प्रेम मेरे जीवन की सबसे दुर्लभ वस्तु है, और मैं तुमसे अन्तःकरण से कहती हूँ कि जब तक तुम मुझे खुद इस अधिकार से वंचित न कर दोगे, मैं तुम्हारे प्रेम को हृदय से लगाए रहूँगी। जब मैं जान जाऊँगी कि तुमने अपना विवाह कर लिया, तब रो-धोकर अपने मन को समझा लूँगी और हृदय को चीर कर उस प्रेम को निकाल फेकूँगी। उसके पहले किसी तरह नहीं।

•

दिन बीतने लगे। क्षमा बार-बार पछताती कि उसने एक व्यर्थ की टेक के पीछे जटाशंकर को क्यों निराश कर दिया। मुंसिफ को चार-पाँच सौ मिलते होंगे। अगर बेचारा बड़ी किफायत करे, तब कहीं पाँच साल में दस हज़ार जमा कर सके। और रुपए लेकर उसे करना ही क्या है। अगर उसने जटाशंकर को दंड दे ही दिया, तो इससे दहेज की समस्या तो नहीं हल हुई जाती। उसने सोचा, क्यों न लिख दूँ, मेरे माता-पिता बिना दहेज के ही मेरा विवाह करने पर राजी हैं। क्यों न सारा वृत्तान्त साफ-साफ लिख दूँ। उनसे परदा ही क्या ? एक तमाशा था, वह हो गया। उधर वह तड़प रहे हैं, इधर मैं रो रही हूँ। एक-एक पल काटे नहीं कटता। बेचारे को न जाने कितनी तपस्या करनी पड़ेगी। इस पिछले पत्र को तो जान पड़ता है, आँसुओं ही से लिखा है। नहीं यह नाटक अब समाप्त कर दूँगी।

उसने पत्र लिखने का निश्चय किया और मेज पर जा बैठी कि सहसा जटाशंकर का परिचित स्वर बरामदे में सुनाई दिया। वह बैरा से पूछ रहे थे—मिस साहब अन्दर हैं या नहीं ?

वह तुरत बाहर निकल आई और बड़े तपाक से उनका हाथ पकड़कर कमरे में ले गई। जटाशंकर ने कुरसी पर बैठते ही कहा—मैं बड़ा भाग्यवान निकला, क्षमा ! एक लाटरी में मुझे २५ हज़ार मिल गए हैं और मैं उसे तुम्हारे माता-पिता की भेंट करने आया हूँ। तुम्हें इसी गाड़ी से मेरे साथ चलना होगा। मैं यहाँ से गया तो बहुत निराश था। तुम्हें दिल में कितना बुरा-भला कहा। वह अब याद नहीं। महीने में एक पैसा तो बचता ही नहीं, दस हज़ार तो शायद दस साल में भी न जमा कर सकूँ; लेकिन किस्मत आज़माने के लिये लाटरी का एक टिकेट ले लिया। पहले भी कई बार टिकटों पर पैसे गँवा चुका हूँ। कुछ आशा तो न थी; पर ले ही लिया। कल तार से ख़बर आई, पचीस हजार मिले, और उसके आध घंटे के बाद ही एलाहाबाद बैंक ने मेरे नाम उस रकम का चेक भेज दिया। तो अब देर न करो। मैं चलकर माताजी के चरणों पर चेक रख दूँ और उनका मंगलमय आशीर्वाद माथे पर चढ़ाऊँ और वहीं हम दोनों प्रणय के अमर बन्धन में बँध जायँ।

यह कहते हुए उसने चेक निकाल कर मेज़ पर रख दिया।

(शेषांश ८० पृष्ठ के नीचे)

काशी का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्रीयुत बाबू व्रजरत्नदास, बी. ए., एल-एल. बी.

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
विष्णोः पादमवंतिका गुणवती मध्ये च काञ्चीपुरीम् ।
नाभिं द्वारावतीन्तथा च हृदये मायापुरी पुण्यदाम् ॥
ग्रीवा मूलमुदाहरंति मथुरा नासाग्र वाराणसीम् ।
एतद् ब्रह्मविदो वदंति मुनयोऽयोध्यापुरी मस्तकम् ॥

भारत की सात प्राचीन पुरियों में सबकी नाक यही पवित्र काशी है, जिसके विषय में कहा जाता है कि यह तीन लोक से न्यारी है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में उल्लेख मिलता है कि काशी पृथ्वी के अन्य सब अंशों से अलग है। काशी-रहस्य में एक कथानक है कि सप्तर्षि एक बार भगवान विष्णु के पास गये और प्रार्थना की, कि यथा-शक्ति तपस्या करने पर भी वे पूर्णरूपेण इंद्रिय-दमन नहीं कर सके हैं, जिससे मोक्ष-प्राप्ति में बाधा पड़ती है। इस पर कुछ विचार कर भगवान ने एक लिंग बनाया, जो अत्यन्त प्रकाशमान था। यह लिंग क्रमशः बढ़कर पाँच कोस के घेरे में हो गया। इसे भी ऋषियों के रहने के लिए छोटा समझकर भगवान ने पृथ्वी बनाई और इसी के चारों ओर उसे स्थित कर दिया। यही केन्द्र-स्थल काशी कहलाया। इस आख्यानक का यही सार ज्ञात होता है कि जब यह आख्यानक रचा गया, उस समय भी काशी प्राचीनतम स्थान माना जाता था।

स्कन्दपुराण के अन्तर्गत काशी खंड है, जिसमें काशी के विषय में बहुत-सी कथाएँ हैं। उसमें लिखा है कि स्वयंभू मनु के समय साठ वर्ष तक अनावृष्टि होने से ऐसा अकाल पड़ा कि लोग गृह छोड़-छोड़कर पहाड़ों में चले गये और मांस पर काल यापन करने लगे। अन्त में ब्रह्मा ने राजा रिपुञ्जय को, जो बड़ा तपस्वी था, काशी का राजा बनाया, जिससे वृष्टि होने लगी और प्रजा सुखी हुई; परन्तु राजा ने राज्य ग्रहण करते समय ब्रह्मा से वचन ले लिया था, कि उसके राज्य-काल में कोई देवता काशी में न रहे, जिस कारण महादेवजी सब देवताओं के साथ मन्दार पर्वत पर चले गये। सहस्रों वर्ष के बाद, काशी में आने के लिये उत्कं-ठित हुए देवगण के लिये यहाँ का वृत्त जानने को शिवजी ने पहले चौंसठ योगिनियों को भेजा, जो यहीं रह गईं। इसके अनन्तर क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा आदि कई देवता आये; पर सब यहीं रह गये। अन्त में ढुण्ढिराज गणेश आये, जिनके प्रयत्न से राजा रिपुञ्जय के पुत्र दिवोदास स्वर्ग चले गये और सब देवता काशी में आकर बस गये।

इन ग्रंथों के सिवा हरिवंश, श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में भी काशी के विषय में कथाएँ मिलती हैं। महा-भारत तथा रामायण में भी काशी के विषय में बहुत कुछ विवरण मिलता है। शतपथ तथा कौषीतकी ब्राह्मणों में काशी का उल्लेख है, जिनका रचना-काल आज से तीन सहस्र वर्ष से अधिक प्राचीन माना जाता है। उस समय भी काशी प्रमुख नगरों में था, जहाँ दर्शन-शास्त्र का विशेष रूप से मनन किया जाता था और जो सनातन-धर्म का केन्द्र-स्थल था।

त्रेता युग में राजा सुहोत्र के पुत्र काश हुए, जिनके पुत्र काश्य या काशिराज ने काशीपुरी बसाई थी। इसके उत्तराधिकारी केतुमान ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। इसके अनन्तर हर्यश्व तथा उसके पुत्र सुदेव नामक दो राजाओं को हैहयों ने मार डाला। सुदेव का पुत्र दिवो-दास हुआ, जिसने दुर्ग बनवाकर उसे सुरक्षित किया; पर स्वयं युद्ध में राजा दुर्दम हैहय-द्वारा मारा गया। इसके पुत्र प्रतर्दन ने हैहयों को पूर्णतया परास्त कर अपने राज्य को दृढ़ किया। यह प्रतर्दन रामचन्द्र का समकालीन ज्ञात होता है। इस वंश के चौबीस पीढ़ी तक राज्य करने पर महाभारत युद्ध में अन्त हुआ। इस वंश के बाद हैहयों ने अट्ठाइस पीढ़ी तक राज्य किया, जिसके अनन्तर प्रद्योत-वंश के पाँच राजा हुए।

जब गौतम बुद्ध ने सारनाथ के पास पहले-पहल उप-देश आरम्भ किया था, उस समय यहाँ का राजा ब्रह्मदत्त था, जो सकुटुम्ब तथा सपरिवार बौद्ध-धर्मानुयायी हो गया। मगध-राज्य के मौर्य-वंश के अधीन उन्नति करने पर काशी

महारानी लक्ष्मी बाई



वीराग्रगण्या महारानी झाँसी का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा है। आज तक उनके जितने चित्र प्रकाशित हुए हैं, वे सब कल्पित थे। युद्ध में योग देते हुए घोड़े पर सवार एक चित्र विशेष प्रसिद्ध है; पर वह साधारण कोटि के चित्रकार की साधारण कल्पना है। जो चित्र इस लेख के साथ दिया जा रहा है, वह बहुत ही प्रामाणिक तथा प्राचीन है; क्योंकि जिस फोटो से यह तैयार किया गया है, वह लगभग ७० वर्ष पहले का है; अर्थात्—सन् ५७ के विद्रोह के आस-पास ही का है। महारानी का जन्म काशी में हुआ था; क्योंकि इनके पिता यहाँ आ बसे थे। जो फोटो-संग्रह मेरे पास है, उसमें प्रायः विद्रोह के समय तथा उस समय के पहले के राजाओं, नवाबों इत्यादि ही के चित्र हैं। यह चित्र देखने ही से परम स्वाभाविक ज्ञात होता है और स्त्री-सुलभ गुणों के साथ वीरता का भी द्योतक है। इस फोटो के पीछे 'रानी झाँसी कोठीवाली' हिन्दी में लिखा हुआ है। विद्रोह के समय; अर्थात्—अन्तिम समय इनकी अवस्था लगभग तेईस वर्ष की थी और चित्र से भी यही अवस्था जान पड़ती है।

(चित्र और परिचय श्री ब्रजरत्नदासजी बी. ए., एल-एल. बी. के सौजन्य से प्राप्त)

सैरन्ध्री



चित्रकार
श्री रामगोपाल विजयवर्गीय

भी उसी राज्य में मिल गया और कई शताब्दी तक यह उसी के अधीन रहा। मौर्य-वंश के बाद क्रमशः कण्व, शुंग तथा आंध्र-वंशों का सन् ४३० ई० के लगभग तक राज्य रहा; जिसके अनन्तर गुप्त राज्य का प्राधान्य हुआ। इस काल में काशी की विशेष उन्नति हुई। गुप्त-साम्राज्य के बाद उज्जैन के राजाओं का यहाँ अधिकार हुआ। इन्हीं उज्जयिनीपति के दौहित्र सम्राट् हर्षवर्द्धन के समय काशी सन् ६५० ई० तक इसी के अधिकार में था। इसी के समय हुएनत्सांग नामक चीनी यात्री भारत आया था, जिसने काशी का तत्कालीन आँखों देखा वर्णन किया है। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के साथ-साथ उसका साम्राज्य भी अस्त-व्यस्त हो गया। आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के यशोवर्मा मौखरी ने काशी पर अधिकार कर लिया और इसको उन्नत करने में उसने बहुत प्रयास किया। सन् ७४१ ई० के लगभग काश्मीर-नरेश ललितादित्य से लड़कर यह मारा गया। इस पराजय से कन्नौज का राज्य श्रीहत हो गया तथा उसका प्रभुत्व काशी पर नहीं रह गया।

इसी बीच चेदि के हैहय-वंशीय नरेशों का प्रभुत्व बढ़ने लगा, जिनके ताम्रपत्र काशी में मिलते हैं। इसी वंश के राजा कर्णदेव ने काशी में कर्णमेरु नामक मंदिर भी स्थापित किया था। इसको प्रबंधचिंतामणि नामक ग्रंथ में काशिराज लिखा गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस वंश का काशी पर कई पीढ़ियों से अधिकार चला आता था। कर्णदेव का वि० सं० १०९९ का ताम्रपत्र मिला है, जिससे उसका समय इसी के आस-पास निश्चित ज्ञात होता है; परंतु पालवंशीय बंगाल-नरेश महीपाल का एक शिलालेख संवत् १०८३ वि० का सारनाथ में मिला है, जिसमें लिखा है कि उसने काशी में कई मंदिर बनवाए थे और धर्मचक्र आदि का जीर्णोद्धार कराया था। इसके पुत्र नयपाल के समय कर्ण ने बंगाल पर चढ़ाई की थी। इससे यही ज्ञात होता है कि काशी पर अधिकार हैहयों ही का था और महीपाल ने अस्थायी प्रभुत्व के कारण या मित्रता के सम्बन्ध से ये मंदिर आदि बनवाए थे। कर्ण के पुत्र तथा पौत्र यशःकर्ण तथा गयकर्ण प्रबल राजे थे, जिनके अनन्तर यह राज्य क्रमशः निर्बल होता चला गया।

कन्नौज के मौखरी-वंश के अनन्तर वहाँ पड़िहारों का राज्य स्थापित हुआ; जिनमें सं० १०८४ वि० तथा सं० १०९३ वि० के त्रिलोचनपाल तथा यशःपाल के ताम्रपत्र मिले हैं। इस वंश का काशी पर बराबर अधिकार था या नहीं, यह निश्चित नहीं है। इस वंश को नष्ट कर महीचन्द्र के पुत्र चंद्रदेव गाहड़वाल ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया और राजा कर्ण हैहय, राजा भोज प्रमार आदि की मृत्यु से उत्पन्न अशांत समय में इसने अपना राज्य फैलाया। काशी पर इसने अधिकार कर लिया और यहाँ आदिकेशव नामक विष्णु मंदिर बनवाया था। इसका समय सं० ११३७ वि० से ११५७ वि० के लगभग था। इसका पुत्र मदनपाल भी बड़ा प्रतापी हुआ। यह विद्वान् था और इसने 'मदन-विनोद निघंटु' नामक वैद्यक ग्रंथ लिखा है। उसमें इसने अपने को काशी का राजा लिखा है—

रोगाम्बुधौ भवजनस्य निमज्जतो यः
पीतः प्रयच्छतु शुभानि च काशिराजः।

इसका पुत्र गोविंदचन्द्र इसका उत्तराधिकारी हुआ। यह भी पिता के समान ही प्रतापी था। इसके समय के चालीस से अधिक पत्र मिले हैं, जिनमें केवल बनारस के चौदह-पंद्रह हैं। सारनाथ से एक लेख मिला है, जिसमें इसकी रानी कुमार देवी के एक मंदिर बनवा कर जिनसेन को दान करने का उल्लेख है। यह पीठिका के छिक्कोर-वंशी राजा देवरक्षित की कन्या थी। यह बौद्धा थी। इसकी एक दूसरी रानी बसंत देवी भी बौद्धा थी; पर ये दोनों संभवतः एक ही के नाम हो सकते हैं। गोविंदचन्द्र का पुत्र विजयचन्द्र इसके बाद कन्नौज का राजा हुआ, जिसका पुत्र प्रसिद्ध जयचंद्र हुआ। इसके कई दानपत्र काशी के मिले हैं। फ़ारसी के इतिहासों में यह काशी का राजा के नाम ही से प्रसिद्ध है। जयचंद्र के पुत्र हरिश्चन्द्र के जात-कर्म-संस्कार के बनारस में होने का उल्लेख एक दानपत्र में किया गया है, जो सं० १२३५ वि० का है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह नगर राजधानी हो चुका था। जयचन्द्र कन्नौज का अन्तिम प्रभावशाली राजा हुआ और इसने राजसूय यज्ञ किया। इसी अवसर पर इससे और पृथ्वी-राज चौहान से वैमनस्य हो गया। इस फूट का यही फल निकला कि दोनों ही क्रमशः गोरी आक्रमणकारी-द्वारा

परास्त हो गए और उनका समृद्धिशाली राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया। काशी उस समय इतना समृद्ध हो गया था कि महम्मद गोरी सं० १२५० वि० में यहाँ की लूट चौदह सौ ऊँटों पर लादकर ले गया था!

गाहड़वालों के राज्य का इस प्रकार अन्त होने पर उसी वंश के एक राजपुत्र ने काशी में अपना राज्य स्थापित किया। इस राजा का नाम नहीं मिलता; पर छत्रप्रकाश में इसका काशिराज नाम रूढ़ि करके लिखा है। इसके अनन्तर उसी ग्रन्थ में ग्यारह राजाओं के नाम लिखे गए हैं, जो क्रमशः एक के बाद दूसरे राज्य करते रहे। यही वंश बाद को बुंदेला कहलाया। इस वंश का अन्तिम राजा कर्ण हुआ, जिसने कर्णघंटा तीर्थ स्थापित किया था। इसके पुत्र अर्जुनपाल काशी से हट कर मऊ सुहौनी चले आए और उसे राजधानी बनाया। इसका कोई कारण नहीं दिया गया है; पर ऐसा ज्ञात होता है कि जौनपुर का शासक फ़ीरोज़ तुगलक सन् १३९९ ई० में स्वतन्त्र बन बैठा और उसके पास के काशी के राज्य पर अधिकार कर लेने से वहाँ का राजा मऊ सुहौनी चला गया।

उत्तरी भारत पर पश्चिमोत्तर की ओर से मुसलमानों का आक्रमण सुबुक्तगीन से आरंभ हुआ था। इसका पुत्र प्रसिद्ध महमूद ग़ज़नवी था, जिसने सत्रह बार भारत पर चढ़ाई की थी। कुछ लोगों का कथन है कि इसने सन् १०१९ ई० तथा सन् १०२२ ई० में दो बार काशी को लूटा था और सहस्रों मन्दिर गिराए थे। इसी के एक सरदार अहमद नियालतगीं ने भी सन् १०३३ ई० में काशी को लूटा था। काशी की दंतकथा भी है, कि यहाँ के राजा बनार को महमूद गज़नवी ही ने परास्त किया था। साथही सालार मसऊद गाजीमियाँ की भी काशी पर चढ़ाई हुई थी, ऐसी दंतकथा प्रचलित है; पर इस सब में तथ्य कुछ भी नहीं है। महमूद गज़नवी के दो सम-सामयिक लेखक प्रसिद्ध हैं, आबूनस्त्र मुहम्मद अल् उतबी और अबुलफ़ज़ल बैहाकी। इन के लिखे इतिहासों के सिवा उसके बाद के फ़िरिश्ता तक के चौदह-पंद्रह इतिहासों में गज़नवी के विषय में लिखा गया है, जिन सबका मुख्य साधन इस विषय में ये ही दो प्राचीन ग्रंथ हैं। कुछ ऐसे ग्रंथों के भी उल्लेख हैं, जो अब अप्राप्य हैं। बाद के कुछ इतिहासों ने आक्रमणों की संख्या भी बढ़ाई है और उनके साधन का भी उल्लेख नहीं किया है। सन् १०१९ ई० में गज़नवी का बारहवाँ आक्रमण भारत पर हुआ था। और उसमें वह अल् उतबी के अनुसार पहले बारन (बुलन्दशहर) पहुँचा। वहाँ से महावन में कुलचन्द्र को परास्त करता मथुरा गया, जिसे लूटकर कन्नौज पर उसके सातों दुर्गों सहित अधिकार कर लिया। यहाँ से मुंज (मझावन?) लेता असनी गया। यहाँ से शूर्वा (सिरस-वागढ़ या सेनुरा) होता लौट गया। अन्य इतिहासज्ञों ने इन्हीं स्थानों का उल्लेख किया है। इसके तीन वर्ष बाद के दो आक्रमणों का अल् उतबी से पता नहीं चलता। तबक़ाते अकबरी में इन दोनों का वर्णन है, जिनमें पहला काबुल नदी के तटस्थ नूर और किरात स्थानों पर हुआ था, दूसरा ग्वालियर होते कालिंजर पर हुआ था। इसके बाद इसकी अन्तिम चढ़ाई सोमनाथ पर हुई थी। अहमद नियालतगीं की चढ़ाई के विषय में अबुलफ़ज़ल बैहाकी लिखता है कि 'यह लाहौर की सेना के साथ युद्ध के लिये निकला और ठाकुरों से कर वसूल किया। इसके अनन्तर गंगा उतर कर बायें तट से चला। एकाएक एक नगर में पहुँचा, जिसे बनारस कहते हैं और जो गंगा-प्रान्त में है। यहाँ मुसलमान सेना अब तक नहीं पहुँची थी। नगर दो फर्सङ्ग वर्ग में है और बहुत जल-पूर्ण है। सेना सुबहसे दोपहर तक ठहर सकी; क्योंकि खतरा था।' इसके अनन्तर उसी ग्रंथ में लिखा है कि ठाकुरों तथा उनके कार्दों को इस प्रकार लूटकर अमीर नियालतगीं विद्रोही हो गया जिसका समाचार इंदरदरवदी या इंदर बाँदी (अन्तर्वेदी) से भेजा गया था। लाहौर से गंगा उतरकर नागाह (अचानक) बनारस पहुँच जाना, जो कई सौ कोस पूर्व है, उस समय के लिये, जब बाहरी लोगों के लिये एक-एक इंच जमीन जुलमात थी, सम्भव नहीं है। बीच के किसी अन्य नगर का उल्लेख भी नहीं है। नगर के वर्णन से भी काशी का स्वरूप नहीं मिलता। यह नाम अवश्य किसी अन्य स्थान का है, जो इस प्रकार पढ़ लिया गया है। इसके सिवा गाज़ीमियाँ का काशी आना भी कपोल-कल्पना ही है।

सन् ११९३ ई० में मुहम्मद गोरी ने चांदावार तथा इटावा के दो युद्धों में काशिराज जयचन्द गहरवार को पूर्णतया परास्त कर दिया और उसकी राजधानी काशी पहुँच

कर उसे मनमाना लूटा। यहाँ उसने बहुत से मन्दिर गिराए तथा बहुत लूट उठा ले गया। नगर तथा उस प्रान्त का प्रबन्ध ठीक रखने के लिये गोरी ने एक योग्य शासक को वहाँ नियत कर दिया था; पर उसका शासन शीघ्र उठ गया और काशी में हिन्दू-राज्य स्थापित हो गया।

मुहम्मद गोरी की मृत्यु पर उसके दासों में षड्यंत्र चलने लगा, जिससे उनमें निर्बलता आ गई। सुलतान शमसुद्दीन अल्तमश (सन् १२१०—१२३५ ई०) के राज्य में बनारस भी एक प्रांत के रूप में परिगणित किया गया है। इसके अनन्तर जो दास-सुल्तान हुए, उनका प्रभाव अधिक नहीं था और कई अन्य दास अवध, गौंड़ आदि स्थानों में स्वतंत्र हो गये। काशी के छोटे राज्य पर इस काल में मुसलमानों की दृष्टि कम पड़ी और इसी कारण फारसी के इतिहासज्ञों में इसका इस काल में उल्लेख नहीं मिलता। खिलजियों के बाद तुगलकों के समय दिल्ली-साम्राज्य के पूर्वीय प्रान्त का अध्यक्ष ख्वाजाजहाँ नियत हुआ, जिसमें कन्नौज से बिहार तथा अवध से जौनपुर तक का कुल प्रान्त सम्मिलित था। सन् १३९९ ई० में इसकी मृत्यु पर इसका दत्तक पुत्र मलिक मुबारक स्वतंत्र बन बैठा और मुबारक शाह सुलतानुलश्शर्क की पदवी धारण कर जौनपुर को राजधानी बनाया। सन् १४०१ ई० में केवल दो वर्ष राज्य कर यह मर गया और इसका भाई इब्राहीम शाह गद्दी पर बैठा। इसके अनन्तर महमूद शाह तथा हुसेन शाह क्रमशः गद्दी पर बैठे। हुसेन शाह को कई युद्धों में परास्त कर सुल्तान बहलोद लोदी ने जौनपुर पर अधिकार कर लिया और बर्बक शाह को वहाँ शासक नियत किया। काशी पर जौनपुर के इन सुलतानों का बराबर अधिकार रहा था और उसके बाद दिल्ली के बादशाहों का हुआ।

बर्बकशाह बहलोल का छोटा भाई था; पर अयोग्य था। जौनपुर आदि स्थानों के जमींदारों ने बलवा कर एक भारी सेना एकत्र कर ली। बछगोती राजपूतों की मुख्यता में इस सेना ने जौनपुर आदि पर अधिकार कर लिया और बर्बकशाह डालमऊ भाग गया। सुलतान सिकन्दर लोदी ने यह समाचार सुन कर उस प्रान्त पर चढ़ाई की और जमींदारों को परास्त कर बर्बकशाह को वहाँ का फिर से अध्यक्ष बनाया। इस पर भी यह जब इस प्रान्त की रक्षा न कर सका, तब इस पद से हटा दिया गया और सिकन्दर ने स्वयं ससैन्य आकर विद्रोहियों को कठोर दण्ड दिया। इसी सिलसिले में यह भट्टा-नरेश राय भयददेव पर चढ़ाई कर फफूँद तक पहुँचा; पर अन्त में असफल होकर जौनपुर लौट आया। यह समाचार पाकर सुलतान हुसेन, जो बिहार चला गया था, सेना लेकर सिकन्दर से लड़ने आया। तब वह पहले चुनार गया; पर फिर बनारस चला आया। राजा भयददेव मर गया था और उसके पुत्र शालिवाहन को शांत कर इसने अपनी ओर मिला लिया तथा उसकी सहायता से सुलतानहुसेन को, जो बनारस से तेरह कोस पर आ पहुँचा था, परास्त कर बिहार भगा दिया। कहा जाता है, कि इसी समय रघुवंशी डोमनदेव को कटेहर सुलतान से मिला था; क्योंकि उसने बराबर उसका पक्ष लिया था।

लोदी-वंश का शीघ्रही अन्त हो गया और सन् १५२६ ई० में बाबर ने इब्राहीम लोदी को परस्त कर भारत में मुगल-राज्य स्थापित किया। इसने अपने पुत्र मिर्ज़ा हुमायूँ को ससैन्य भेज कर जौनपुर तथा गाजीपुर तक के प्रान्त पर अधिकार कर लिया; पर इसी समय राणा सांगा की चढ़ाई के कारण हुमायूँ सेना-सहित दिल्ली लौट गया और अफ़गानों ने पुनः इस प्रान्त पर अधिकार कर लिया। सन् १५२८ ई० में बाबर ने इस प्रान्त पर चढ़ाई की। बनारस में इसकी ओर से सुलतान जलाउद्दीन नामक अध्यक्ष नियत था; पर अफ़गानों की तैयारी देखकर भय से कुछ सेना वहाँ छोड़कर वह हट आया था। बाबर के वहाँ पहुँचने पर अफ़गानों ने चुनार का घेरा उठा लिया और जो बनारस में आ पहुँचे थे, वे भी यहाँ से भागे। घबड़ाहट तथा जल्दी में गंगा उतरते समय दो नाव डूब गईं और बहुत से अफ़गान डूब मरे। बाबर बिहार तक गया और अफ़गानों का दमन कर लौट आया। इसकी मृत्यु पर हुमायूँ ने पूर्व पर फिर चढ़ाई की, क्योंकि अफ़गानों ने फिर से विद्रोह कर दिया था। सन् १५३१ ई० में दौरा में युद्ध हुआ, जिसमें अफ़गान परास्त हुआ। चार महीने के घेरे पर हुमायूँ चुनार विजयन करने ही को था, कि शेरखाँ ने संधि का प्रस्ताव किया और उसके हो जाने पर हुमायूँ आगरा लौट गया। सन् १५३५ ई० में हुमायूँ ने फिर चुनार पर चढ़ाई की; क्योंकि इस बीच शेरखाँ ने अपना वचन तोड़कर कुल बिहार तथा

जौनपुर-प्रांत पर अधिकार कर लिया था। छः महीने के घेरे पर दुर्ग टूटा। हुमायूँ बंगाल की ओर बढ़ा और उस पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ के गौड़ जाने पर शेरखाँ ने बनारस घेर लिया और यहाँ के अध्यक्ष मीर फजली को मार कर उस पर अधिकार कर लिया। यहाँ से शेरखाँ जौनपुर गया और अपने लड़के जलालखाँ को वहाँ छोड़ कर बंगाल चला गया। वहाँ से हुमायूँ के आगरे लौटते समय शेरखाँ ने उसका पीछा किया और दो युद्धों में हुमायूँ को पूर्णतया पराजित कर भारत से निर्वासित कर दिया। इसके अनन्तर बनारस पर शेरशाह तथा सूरी-वंश का अधिकार बना रहा।

सन् १५५५ ई० में हुमायूँ भारत आया और दूसरी बार दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई; पर उसके पुत्र अकबर ने पानीपति के द्वितीय युद्ध में सूरी-सेनापति हेमू को परास्त कर मुगल-साम्राज्य दूसरी बार संस्थापित कर दिया। अलीकुलीखाँ खानेजमाँ जौनपुर का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके स्वयं विद्रोह करने के कारण उस प्रान्त में अशान्ति बनी रही। अन्त में अकबर स्वयं सन् १५६५ ई० में जौनपुर और बनारस गया तथा वहाँ शान्ति स्थापित की। उसके लौटने पर खानेजमाँ ने फिर विद्रोह किया और बनारस ले लिया। इस पर क्रुद्ध होकर अकबर ने फिर चढ़ाई की और वह सन् १५६७ ई० में मारा गया। बनारस के निवासियों ने विद्रोहियों का पक्ष लिया था; इसलिए अकबर ने इस नगर को लूटा। इसके अनन्तर यह प्रांत मुनइमखाँ खानखानाँ को सौंपा गया, जो इस पद पर सन् १५७४ ई० तक रहा। सन् १५७४ ई० में अकबर ने बंगाल पर चढ़ाई की और वहाँ जाते समय काशी में तीन दिन तक ठहरा था। मुनइमखाँ के बंगाल का प्रांताध्यक्ष नियुक्त होने पर बनारस, जौनपुर तथा चुनार कुछ दिन के लिए खालसा कर दिया गया था; पर बाद को फ़ौजदार नियत होने लगे। सन् १५७६ में मुहम्मद मासूमखाँ, इसके बाद तर्सून मुहम्मदखाँ, सन् १५८९ ई० में अब्दुर्रहीमखाँ खानखानाँ, सन् १५९१ ई० में कुलीजखाँ और सन् १५९४ ई० में मिर्जा युसूफखाँ नियत हुए।

सन् १५८४ ई० में इलाहाबाद दुर्ग के बन जाने पर वही इस प्रान्त की राजधानी बना और जौनपुर एक सरकार मात्र रह गया। इलाहाबाद प्रान्त में चौदह सरकार थे, जिनमें बनारस* एक था। अकबर के अधर्मांध राज्यकाल में बनारस की बराबर उन्नति होती गई और राजाओं के आश्रय में कितने नये मन्दिर भी बने। इनमें राजा मानसिंह का 'मानमन्दिर' प्रसिद्ध है।

यद्यपि जहाँगीर ने इलाहाबाद में विद्रोह किया था; पर वह विद्रोह ऐसा हुआ था कि उसमें अधिक मार-काट नहीं हुई थी। जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ के विद्रोह-काल में इलाहाबाद से भागते समय शाहजहाँ काशी में रुका था, जहाँ से उसने दक्षिण की यात्रा आरम्भ की थी। बादशाह होने पर उसने धर्मांधता के कारण यहाँ के भी मन्दिर तुड़वाए थे। शाहजहाँ के पुत्रों में जब राज्य के लिए युद्ध हुआ था, तब द्वितीय पुत्र शुजाअ, जो बंगाल का प्रांताध्यक्ष था, बनारस तक आया; पर महाराज जयसिंह तथा सुलेमान शिकोह ने बहादुर के पास गंगा के दाहिने तट पर उसे परास्त कर बंगाल लौटा दिया। दारा के पराजय तथा औरंगजेब के दिल्ली पर अधिकार कर लेने के बाद शुजाअ फिर बनारस आया और यहाँ के अध्यक्ष रामदास को निकाल कर तीन लाख रुपये वसूल किये। यहाँ से आगे बढ़ने पर खजुहा के युद्ध में औरंगजेब से परास्त होकर यह बंगाल लौट गया। यहाँ से भी निकाले जाने पर वह आराकान चला गया, जहाँ वह मारा गया। औरंगजेब का कुल साम्राज्य पर अधिकार हो गया।

सन् १६६६ ई० में जब शिवाजी दिल्ली आये और कट्टर औरंगजेब की नीति के कारण उन्हें भागना पड़ा, तो वह काशी होते हुए दक्षिण गये थे। धर्मांध औरंगजेब ने यहाँ के मन्दिर तुड़वाने की आज्ञा प्रचलित की, जिनके चिन्ह-स्वरूप ज्ञानवापी तथा बेनीमाधव की मस्जिदें अभी तक

---

* एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में लिखा है कि इस सरकार में आठ महाल थे। इसकी तहसील अकबर के समय ८८१८२०२ दाम (२२४०५५ रु० ३ पैसा), जहाँगीर के समय ९८१८ २०२ दाम (२४५४ ५५ रु० ३ पैसा), शाहजहाँ के समय १६१५२३०० दाम (४०३८०७ रु० ८ आना), औरंगजेब के समय १७३५०००० दाम (४३३८०० रु०) और मुहम्मदशाह के समय १४२४८४८२ दाम (३५६२१२ रु० ३ पैसा) थी।

मौजूद हैं। इसको बनारस का 'काशी' नाम भी कर्णकटु लगा था और उसने इसका नाम 'मुहम्मदाबाद' रखा था; पर किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। मुगलकाल में काशी में टकसाल थी, जहाँ के सिक्कों तथा कुछ कागजों में यह नाम मिलता है।

औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह तथा पौत्र जहाँदारशाह के समय सन् १७१२ ई० तक यह साधारण तौर पर साम्राज्य का अंश मात्र रहा और कोई घटना नहीं घटी। इसी वर्ष जहाँदारशाह के भतीजे फर्रुखसियर ने, जो अपने पिता की मृत्यु पर बंगाल का प्रांताध्यक्ष हुआ था, बिहार के सूबेदार हुसेनअलीखाँ और इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्लाखाँ को मिलाकर दिल्ली पर चढ़ाई की। उसकी सेना बनारस होती हुई गई थी; पर उसने नगर में न आकर केवल एक लाख रुपये नगरवासियों से उगाहे थे। खजुहा के युद्ध में जहाँदार को परास्त कर यह दिल्ली का बादशाह हुआ। सन् १७१९ ई० में फर्रुखसियर गद्दी से उतारा गया और उसके दूसरे वर्ष एक सैयद के मारे जाने पर, तथा दूसरे के कैद होने पर, मुहम्मदशाह बादशाह हुआ। इसने नवाब मुर्तजाखाँ नामक एक सरदार को बनारस, जौनपुर, गाजीपुर तथा चुनार चार सरकार जागीर में दिया, जिसने मीर रुस्तमअली को पाँच लाख वार्षिक तहसील पर उक्त जागीर का ठेका दे दिया। यह योग्य पुरुष नहीं था और इस कारण बराबर रुपया न भेज सका। जब नवाब सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क ने अवध में शान्ति स्थापित की, तब मुर्तजाखाँ ने सन् १७२८ ई० में ये चारों सरकार उसे सात लाख वार्षिक तहसील पर दे दिए। इसने रुस्तमअली ही को, आठ लाख वार्षिक देने का वचन देने पर, उसी पद पर बहाल रखा। यह इस पद पर सन् १७३८ ई० तक रहा।

गंगापुर-निवासी मनसाराम नामक एक भूमिहार ब्राह्मण ने रुस्तमअली के यहाँ नौकरी कर ली और अपनी योग्यता तथा प्रबन्ध-कौशल से इसने अपने मालिक को अपने वश में कर लिया। एक प्रकार वही चारों सरकार का प्रबन्धक बन बैठा। सन् १७३८ में पूरी तहसील न पहुँचने के कारण नवाब सआदतखाँ ने अपने दामाद नवाब सफदरजंग को हिसाब लेने के लिये भेजा, जिसने जौनपुर पहुँच कर वहीं पड़ाव डाला। रुस्तमअली ने मनसाराम को जौनपुर भेजा, कि नवाब का क्रोध शान्त करे। संधि की बातचीत का यही फल हुआ, कि रुस्तमअली उस पद से हटा दिये गये और बनारस, जौनपुर तथा चुनार तीन सरकार मनसाराम के पुत्र बलवन्तसिंह को तेरह लाख वार्षिक तहसील देने का वचन देने पर दिये गये तथा गाजीपुर शेख अब्दुल्ला को तीन लाख पर दिया गया। इसके एक वर्ष बाद मनसाराम की मृत्यु हो गई और बलवंतसिंह को मुहम्मदशाह बादशाह से राजा की पदवी तथा तीन सरकारों को ठेके की नियुक्ति मिल गई। यह भी योग्य पुरुष थे और बराबर अपने राज्य को दृढ़तर करने में लगे रहे। जब नवाब सफदरजंग दिल्ली गये, तब उसके सज़ावलों को इन्होंने निकाल दिया और इलाहाबाद के सहकारी प्रान्ताध्यक्ष अलीकुलीखाँ को परास्त कर उसके कुछ परगने दबा लिए। अहमदखाँ बंगश के इलाहाबाद आने पर इन्होंने उसका पक्ष लिया। जब नवाब वजीर पठानों का दमन करते हुए यहाँ पहुँचे, तब बलवंतसिंह ने पठानों के प्रतिनिधि साहबज़मानखाँ को यहाँ से भगा दिया। इसके अनन्तर जब नवाब वज़ीर ने बलवन्तसिंह को दण्ड देने का निश्चय किया, तब इन्होंने कुछ भेंट देकर तथा वार्षिक कर बढ़ाकर किसी प्रकार अपना पिंड छुड़ाया। सफदरजंग भी बादशाह से बुलाये जाने के कारण, इसे तय कर सन् १७५२ में दिल्ली चले गये।

राजा बलवन्तसिंह ने इस युद्ध से बहुत अनुभव प्राप्त किया था, जिससे गंगापुर की गढ़ी को सुरक्षित न समझ कर इन्होंने रामनगर दुर्ग बनवाया। सन् १७५४ ई० में दिल्ली से लौट आने पर नवाब सफदरजंग द्वितीय बार उसी वर्ष १७ फरवरी को बनारस पहुँचे। राजा बलवन्तसिंह गंगा पार कर चन्दौली चले गए और कुछ दे-दिला कर नवाब से संधि स्थापित कर ली। इसी वर्ष के अक्टूबर महीने में सफदरजंग की मृत्यु होने पर नवाब शुजाउद्दौला अवध के शासक हुए। इसी समय राजा बलवन्तसिंह ने चुनार पर अधिकार कर लेने का असफल प्रयास किया, जिससे नये नवाब क्रुद्ध हो गए; पर कुछ वार्षिक कर बढ़ाकर वह क्रोध शान्त कर दिया गया। ग़ाज़ीपुर के फ़ौजदार फज़लअलीखाँ ने एक बार इन्हें गिरफ्तार करा देने का प्रयत्न

किया था ; पर यह किसी प्रकार निकल गए थे। सन् १७५७ ई० में इन्होंने इसका बदला लिया और ग़ाज़ीपुर सरकार पर अधिकार कर लिया।

सन् १७६० ई० में शाहजादे अलीगौहर ने इलाहाबाद आकर वहाँ के सूबेदार की सहायता से बिहार तथा बंगाल पर आक्रमण किया। पटना घेर लिया गया और वह टूटने ही को था, कि शुजाउद्दौला ने इधर इलाहाबाद दुर्ग पर कब्जा कर लिया। इससे दोनों लौटे ; पर राजा बलवन्तसिंह ने नवाब की आज्ञा से उनका रास्ता रोका। सैदराजा में दोनों सेना का मुठभेड़ हुआ। शाहजादे को न रोक कर उसे चले जाने दिया ; पर इलाहाबाद का सूबेदार मुहम्मदकुलीखाँ पकड़ा जाकर शुजाउद्दौला के पास भेज दिया गया। शुजाउद्दौला शाहजादे से मिलने बनारस आये और इस अवसर पर भी बलवन्तसिंह को पकड़ लेना चाहा। पर वह पहले ही पहाड़ों में पहुँच गए थे। इसके अनन्तर दो वर्ष शांति रही।

सन् १७६३ ई० में मीरकासिम पटने से भागकर बनारस आया और शाहआलम तथा शुजाउद्दौला को मिलाकर अँग्रेजों पर चढ़ा ले गया। राजा बलवन्तसिंह भी आज्ञा मिलने पर लाचार हो सात सहस्र सेना-सहित साथ हुए ; पर युद्ध में इन्होंने योग नहीं दिया। बक्सर-युद्ध के बाद यह रामनगर लौट आए और यहाँ से लतीफपुर चले गए। कर्नल मुनरो ससैन्य बनारस पहुँचे और यहाँ से इलाहाबाद को रवाना हुए। इलाहाबाद में शुजाउद्दौला से संधि हो गई। यद्यपि पहले बलवन्तसिंह उक्त प्रान्त के शासक तथा मि० मेरियट रेजिडेण्ट नियत हुए थे ; पर इस संधि के बाद वह प्रान्त नवाब वज़ीर को इस शर्त पर लौटा दिया कि बलवन्तसिंह ही उसके अधिकारी नियत रहें। इस पर भी नवाब वजीर तथा राजा का संबन्ध पूर्ववत् ही बना रहा और दो बार इन्हें पकड़ने का प्रबंध भी किया गया। पहली बार सन् १७६७ ई० में लार्ड क्लाइव ने इस कार्य को रोक दिया ; पर कर बढ़ाने की आज्ञा दे दी और इसके दूसरे वर्ष दूसरी बार जब गवर्नर-जेनरल कार्टियर नवाब से मिलने बनारस आए, तब भी इसको कैद करने का प्रयत्न किया गया ; पर इसमें भी वह सफल नहीं हुआ।

सन् १७७० ई० में राजा बलवंतसिंह की मृत्यु पर राजा चेतसिंह गद्दी पर बैठे। नवाब शुजाउद्दौला इस अवसर पर बनारस आए और रामनगर गये। इनका इतना अच्छा स्वागत हुआ कि प्रसन्न होकर नवाब ने अपने पुत्र आसफुद्दौला से चेतसिंह की पगड़ी बदलवा कर भाई का सम्बन्ध कराया ; परन्तु सन् १७७३ ई० में कारण-वश दोनों में वैमनस्य हो गया और वारेन हेस्टिंग्ज़ के बहुत कुछ कहने-सुनने पर नवाब ने इन्हें सनद दे दी। सन् १७७५ ई० में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु पर नवाब आसफुद्दौला से कंपनी की जो संधि हुई, उससे कंपनी राजा चेतसिंह के कुल इलाकों की स्वामिनी हुई, और नवाब वज़ीर से राजा का जो सम्बन्ध था, वही अब कम्पनी से हुआ। कलकत्ते की काउंसिल में दो दल थे और जो उस समय प्रबल था, उसी को प्रसन्न रखने का राजा चेतसिंह ने प्रयत्न किया ; पर इस दल के एक सदस्य के मर जाने से दूसरा दल प्रबल हो गया। पहले का रेज़िडेंट बदला गया और दूसरा भेजा गया। सन् १७७८ ई० में चेतसिंह से निश्चित वार्षिक तहसील के ऊपर पाँच लाख रुपये माँगे गये, जो बड़ी कठिनाई के बाद दिये गये। दूसरे वर्ष भी यह माँगे गये और कम्पनी की सेना भेजने पर दिये गये। इसके बाद इन पाँच लाख के सिवा इनसे दो सहस्र सवार भी युद्ध के लिये माँगे गये। इनके अस्वीकार करने पर सन् १७८१ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज स्वयं इन्हें दण्ड देने बनारस आये। राजा चेतसिंह बक्सर में जाकर बड़े लाट से मिले ; पर कोई फल न निकला। बनारस आने पर बड़े लाट माधोदास के बाग में ठहरे और राजा को कैद करने दो कम्पनी तिलंगों के साथ रेजिडेंट को भेजा। राजा के सिपाही भी बिगड़ गये। खूब मारकाट हुई और अन्त में राजा चेतसिंह गद्दी से उतार दिये गये। राजा बलवन्तसिंह के दौहित्र महीपनारायणसिंह को गद्दी दी गई और वार्षिक कर चालीस लाख कर दिया गया। साथ ही दीवानी तथा फौजदारी के अधिकार ले लिये गये और एक मैजिस्ट्रेट नियत किया गया। यह प्रबन्ध भी अधिक दिन नहीं चला और सन् १७९४ ई० में बनारस आदि स्थान राजा से ले लिये गये तथा उनकी निजी रियासत मात्र उनको मिली। बनारस आदि नगरों में कम्पनी की ओर से प्रबन्ध होने लगा।

नवाब आसफुद्दौला का कहा जाने वाला पुत्र वजीरअली जब गद्दी से उतारा गया, तो उसे काशी ही में रहने की आज्ञा मिली। माधोदास के बाग में वह डेढ़ लाख रुपये वार्षिक पेंशन पर रहने लगा। वह युवक था और अवध-राज्य से निकाले जाने के कारण कंपनी से चिढ़कर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करने लगा। इस पर इसे कलकत्ते जाने की आज्ञा हुई, जिसका इसने घोर विरोध किया। अन्त में १४ जनवरी सन् १७९९ ई० को वह बनारस के रेजिडेंट मि० चेरी से मिलने गया और वहीं उसे तीन अन्य अँगरेजों के साथ मार डाला। इसके बाद मैजिस्ट्रेट मि० डेविस के बँगले पर गया; पर वह बच गये। छावनी में अन्य स्थानों को लूटते-जलाते यह चले गए। कंपनी की सेना के पहुँचने पर यह आजमगढ़ की ओर भाग गया। वहाँ से गोरखपुर होता राजपूताने की ओर गया, जहाँ जयपुर में यह पकड़ा गया। यह पहले कलकत्ता और वहाँ से वेलौर दुर्ग भेजा गया, जहाँ इसकी मृत्यु हो गई।

सन् १८०९-१० ई० में बनारस में हिन्दू-मुसलमानों की लड़ाई हो गई, जिसका कारण विश्वनाथजी के पास की मस्जिद थी। मन्दिर तथा मस्जिद के बीच में कुछ जमीन पड़ती थी, जिस पर नया मन्दिर बनने लगा। जुलाहों ने इकट्ठे होकर हनुमानजी के अपूर्ण मन्दिर को तोड़ डाला। दूसरे दिन हिन्दू लोग वहाँ इकट्ठे हुए; पर मैजिस्ट्रेट डब्ल्यू० डब्ल्यू० बर्ड ने उन्हें हटा दिया। इसके अनन्तर मुसलमान-मस्जिदों की रक्षा के लिए दो कम्पनी फौज मँगाई गई। इस पर मुसलमानों ने विश्वनाथजी के मन्दिर को तोड़ने का भी प्रयत्न किया, जिससे हिन्दुओं में उत्तेजना फैली। दोनों पक्ष वालों का गायघाट में सामना हुआ और खूब गहरी ठनी। अन्त में मुसलमान हारकर भागे। मस्जिद के पास भी लड़ाई हुई; पर मि० बर्ड ने उसे शान्त कर दिया। यहाँ से भागे हुए मुसलमान लाटभैरव पहुँचे और लाट को तोड़-फोड़ तथा एक गाय मारकर उसे भ्रष्ट कर दिया। दूसरे दिन हिन्दुओं का भारी दल वहाँ पहुँचा, मस्जिद में आग लगाकर उसे पूरी तौर भ्रष्ट कर दिया और आस-पास के मुसलमानों को मारा। यह बलवा जोर पकड़ता गया। पिशाचमोचन के पास की दरगाह और मकबरा तोड़े-फोड़े गये। जुलहापट्टी में खूब लूट मची। सेना तथा पुलिस में भी इसी धार्मिक द्वेष को लेकर झगड़ा हो गया। अन्त में बहुत प्रयत्न पर शान्ति स्थापित हुई।

सन् १८१७ ई० में हाउस टैक्स लगने की आज्ञा हुई, जिसके लिए बनारस में अहिंसात्मक आन्दोलन हुआ। अपने-अपने मकान बन्द कर सभी मैदान में जा बैठे और प्रार्थनापत्र दिया कि जब तक यह टैक्स न हटाया जायगा, वे अपने घर नहीं जायँगे। अन्त में यह टैक्स उगाहना, कम-से-कम उस समय के लिए रुक गया।

सन् १८५२ ई० में नागरों ने नगर में विद्रोह करने का प्रयत्न किया; पर वे सफल न हो सके और इसके पाँच वर्ष बाद ही उत्तरी भारत में बड़ा गदर हुआ। बनारस में कई पल्टनें थीं, जिनका प्रधान अफसर ब्रिगेडिअर जॉर्ज पौन्सौनबी था। मि० टकर कमिश्नर, मि० गबिन्स जज और मि० लिंड मैजिस्ट्रेट थे। बलवे का समाचार मिलते ही ये लोग अपने प्रबन्ध में लगे। ३७वीं पल्टन में विद्रोह के चिन्ह देखकर और कर्नल नील के सेना-सहित पहुँचने पर, ४ जून को वह पल्टन परेड पर बुलाई गई। इस तथा अन्य पल्टनों पर गोले चलाए गये, जिससे बहुत से मारे गये तथा और सब भाग गये। अंग्रेज अफसर वगैरह, टकसाल घर या कचहरी में जा रहे। कुछ पादरी लोग रामनगर तथा कुछ चुनार चले गए। ऐसे अवसर पर मुसलमानों ने विश्वनाथ के मन्दिर पर अपना हरा झंडा स्थापित करने का निश्चय कर बलवा मचाया; पर मि० लिंड ने राजपूतों की सहायता से उसे शान्त कर दिया। इस सब गड़बड़ के सिवा इस बलवे का बनारस पर विशेष असर नहीं पड़ा। एक बार ग्रामीणों का एक जत्था जौनपुर के बलवाइयों से मिलकर नगर लूटने आया; पर १७ जुलाई को परास्त कर भगा दिया गया। दीनापुर के बलवाई भी बनारस आ रहे थे; पर आरा के पास परास्त हो जाने पर, वे मिर्जापुर होते हुए इलाहाबाद चले गए। इसके अनन्तर चारों ओर के बलवे का समाचार मिलता रहता था, जिससे पूर्ण रूप से शान्ति नहीं स्थापित हो सकती थी। अन्त में जब भरत में सर्वत्र शान्ति हो गई, तब यहाँ भी शान्ति हुई। काशिराज के सिवा यहाँ के कई रईसों को पदवी-पुरस्कार आदि दिये गये।

इस विद्रोह-शान्ति के बाद कम्पनी के राज्य का भी

अन्त हो गया और १ नवम्बर सन् १८५८ ई० को क्वीन विक्टोरिया की ओर से एक घोषणापत्र निकाला गया, जिससे भारत बृटिश-साम्राज्य में मिला लिया गया। सन् १८६९ ई० में जब क्वीन विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आव एडिम्बरा भारत आए थे, तब वह काशी भी पधारे थे। इसके छः वर्ष बाद प्रिंस आफ वेल्स (सम्राट एडवर्ड सप्तम) भारत आए और जब वह काशी आए, तब उनका बड़े समारोह के साथ स्वागत हुआ। सन् १८७७ ई० में क्वीन ने भारत-सम्राज्ञी की पदवी धारण की और यह उत्सव भी सर्वत्र धूमधाम से मनाया गया था। इसके अनन्तर इनकी स्वर्ण तथा हीरक जुबिलियाँ भी भारत के प्रायः हर एक शहर में मनाई गईं। सन् १९०१ ई० में क्वीन विक्टोरिया की मृत्यु हुई, और सबसे बड़े पुत्र गद्दी पर बैठे। इस राज्याभिषेक का उत्सव मनाने के लिये दिल्ली में दरबार हुआ। यह उत्सव भी सभी नगरों में मनाया गया। सन् १९१० ई० में सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु होने पर उनके सबसे बड़े पुत्र किंग जॉर्ज पंचम गद्दी पर बैठे। सम्राट् तथा सम्राज्ञी दोनों भारत में पधारे और १२ दिसंबर को दिल्ली में बड़े समारोह के साथ दरबार हुआ।

राजनैतिक आंदोलनों में भी काशी बराबर भाग लेता आ रहा है। यहीं भारतेन्दुजी ने साठ-सत्तर वर्ष पहले हिन्दी में स्वदेश-प्रेम, प्राचीन भारत के गौरव तथा बाद को उसकी दशा तथा भविष्य में उसके कर्तव्य आदि पर पहले-पहल लेखनी चलाई। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने का प्रयत्न भी यहीं से आरम्भ हुआ। यहीं से अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सन् १९१० ई० में, जन्म हुआ। सन् १९०६ ई० में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का अधिवेशन महामना दिग्द्वद्दर पं० गोपाल-कृष्ण गोखले के सभापतित्व में धूमधाम से हुआ। महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आंदोलन में भी इस नगर ने काफी योग दिया। इसी आंदोलन के बीच अभी दो ही वर्ष (सन् १९३१ की फरवरी) हुए कि हिन्दू-मुसलमान बलवा मच गया था। कारण यह था कि भारत के बाहर सुदूर अफगानिस्तान का एक निवासी किसी कारणवश किसी (अब तक) अज्ञात आदमी-द्वारा मार डाला गया, जिस पर कुछ मुसलमान सज्जनों ने उसके शव का जुलूस निकाला और चौक पहुँच कर लूट-मार मचा दी। दो-तीन दिन तक नगर में अच्छा शोर-गुल रहा, काम बन्द हो गये। यहाँ तक कि एक दिन कचहरी तक का काम स्थगित हो गया। अन्त में किसी प्रकार शांति हुई।

काशी महाश्मशान भूमि कहलाती है। यहाँ कितने प्रतापी राजे तथा वीर तप गये; पर अन्त में इस पृथ्वी के ताप में उनका पता भी नहीं रह गया। भारतेन्दुजी ने सत्य ही लिखा है—

कनकपात्र रत नगजटित, फेंकत जौन उगार।
तिनकी आजु समाधि पर, मूतत स्वान सियार।
जे सूरज सों बढ़ि तपे, गरजे सिंह समान।
भुज-बल-विक्रम पारि निज, जीत्यो सकल जहान।
तिनकी आजु समाधि पर, बैठ्यो पूछत काक।
को हौ तुम अब कहा भए, कहाँ गये करि साक।

(६६ पृष्ठ का शेषांश)

वार्षिक समारोह के अध्यक्ष-पद को अलंकृत कर चुके हैं। अंत में हमारी कामना है कि इस तीर्थ त्रिवेणी के पवित्र तट पर एक ऐसे प्रेम-तरु का बीजारोपण किया जावे, जिसकी शीतल छाया सनातनी, जैन और बौद्ध यात्रियों के साम्प्रदायिक सन्ताप का शमन कर सके। पारस्परिक भेद-भाव को भुला कर तीनों भाई गले मिलें और कहें—'हिन्दू हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा।'

काशी और उसके जैनतीर्थ

लेखक—श्रीयुत कैलासचन्द्र शास्त्री

जैनधर्म के २४ तीर्थंकरों में से सातवें तीर्थंकर श्री सुपार्श्व तथा २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का जन्म इसी काशीपुरी में हुआ था। भदैनी तथा भेलूपुर महाल क्रमशः उक्त दोनों तीर्थंकरो की जन्म भूमि कही जाती है। दोनों महालों में विशाल जैन-मन्दिर बने हुए हैं। उनके अतिरिक्त ठठेरीगली तथा मैदागिन की चौमुहानी पर भी दो जैन-मन्दिर स्थापित हैं। पौष-कृष्णा एकादशी, भगवान् पार्श्वनाथ की जन्म-तीथि है। उस दिन प्रति वर्ष ठठेरीगली के मन्दिर से पर्श्वनाथ की मूर्ति का जलूस निकलता और भेलूपुरा के मन्दिर तक जाता है।

काशी से थोड़ी दूर पर सारनाथ और चन्द्रवटी नामक दो गाँव हैं। सारनाथ तो अपनी ऐतिहासिक सामग्री के कारण देश और विदेश में खूब प्रसिद्ध हो चुका है; परन्तु चन्द्रवटी को, काशी तथा उसके देहातों में रहने वाली जनता को छोड़, विरला मनुष्य ही जानता होगा।

ये सारनाथ और चन्द्रवटी, क्रमशः सिंहपुरी और चन्द्रपुरी के नाम से जैन-संसार में विख्यात हैं। सारनाथ में ग्यारहवे तीर्थङ्कर श्री श्रेयांशनाथ का जन्म हुआ था। उनकी स्मृति में वहाँ बौद्ध स्तूप के अहाते से लगा हुआ एक जैन-मन्दिर बना है, और सरकारी म्यूजियम की बगल में एक विशाल धर्मशाला भी है।

चंद्रवटी अपने नाम के अनुसार ८ वें तीर्थङ्कर श्री चन्द्रनाथ की जन्म-भूमि है। चंद्रवटी में भी गंगा के तट पर एक जैन-मन्दिर स्थापित है। इस तरह काशी तथा उसके समीपवर्ती स्थानों को एक-दो नहीं, चार तीर्थंङ्करों की जन्म-भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। इन तीर्थों की वन्दना करने के लिये प्रति वर्ष हजारों जैन-यात्री काशी आते हैं।

तीर्थ-स्थान होने के कारण, हजारों वर्ष से जैन जनता में काशी की मान्यता चली आ रही है। तीसरी शताब्दी के मध्यकाल की एक अद्भुत घटना ने उस मान्यता में विशेष श्रद्धा की धारा प्रवाहित कर दी है। संक्षेप में घटना इस प्रकार कही जाती है—दक्षिण देश के जैनाचार्य स्वामी 'समन्तभद्र' को भस्मक रोग हो गया था। वे जितना भोजन करते थे, थोड़ी देर में भस्म हो जाता था। इस महा-रोग की शान्ति के लिये यथेष्ट परिमाण में गरिष्ठ भोजन का मिलना आवश्यक बतलाया जाता था। उसकी खोज में स्वामी समन्तभद्र दक्षिण मथुरा से भ्रमण करते-करते काशी आये। और काशिराज शिवकोटि के शिवालय में ठहरे। शिवालय में प्रति दिन कई मन सुस्वादु पक्वान्न का भोग लगता था और भोग के समय स्वयं काशिराज पधारते थे। उस दिन जब भोग लगाने का समय हुआ, और काशिराज मन्दिर में पधारे, तब समन्तभद्र ने महाराज से कहा—राजन्, आपके पुजारीगण बड़े स्वार्थी हैं; भगवान का भोग भगवान को न खिला-कर स्वयं खा जाते हैं। यदि महाराज की आज्ञा हो, तो मैं भगवान को भोग लगाऊँ।

'क्या तुम यह सब मिष्टान्न शिव को खिला सकते हो?'—राजा ने आश्चर्य से पूछा।

'हाँ, किन्तु एक शर्त है—उस समय मन्दिर के भीतर मेरे सिवा दूसरा व्यक्ति न रह सकेगा।'—स्वामी ने कहा।

शर्त स्वीकृत हो गई। समन्तभद्र को मुँह-

माँगी मुराद मिली। उन्होंने द्वार बन्द किया और लगे दोनों हाथों से गपागप-सपासप करने। कुल भोग को उदर में रखकर मन्दिर का द्वार खोल दिया गया। बरतनों को रीते देखकर पुजारी लोगों को तो काठ मार गया। और राजा ने प्रसन्न होकर भोग लगाने का काम समन्तभद्र को सौंपा। प्रतिदिन राजमहलों से उत्तम-उत्तम व्यञ्जन आने लगे और द्वार बन्द करके समन्तभद्र उन्हें अपने उदर में रखने लगे। कुछ समय बाद, जब रोग शान्त होने लगा, तब भोजन भी बचने लगा। राजा ने इसका कारण पूछा, तो उत्तर मिला—शिवजी तृप्त हो गये हैं। अब उनसे इतना भोजन नहीं खाया जाता। स्वामी के उत्तर से राजा को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने भोजन का रहस्य जानने के लिये एक चालाक लड़के को मन्दिर के अन्दर छिपा दिया। लड़के ने ठीक समय पर भोजन करते हुए सन्यासी को पकड़कर मन्दिर का द्वार खोल दिया। सन्यासी का भण्डाफोड़ हो गया। राजा ने क्रुद्ध होकर कहा—रंगीले बाबा, या तो इस शिवपिण्डी को नमस्कार करो, नहीं तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा। उत्तर में समन्तभद्र ने कहा—राजन्, यह शिव की पिण्डी हमारे नमस्कार को सहन नहीं कर सकती। आप ऐसी हठ न करें; किन्तु राजा ने एक न सुनी। तब समन्तभद्र ने २४ तीर्थंकरों का स्मरण करते हुए, उसी समय उनके २४ स्तवन रचे। ८ वें तीर्थंकर की स्तुति के प्रारम्भ में 'वन्दे' शब्द का उच्चारण करते ही * शिवलिंग फट गया और उसमें से आठवें तीर्थंकर की प्रतिमा प्रकट हुई।

प्राचीन जैन-साहित्य में उक्त कथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। श्रद्धालु जैन जनता काशी की अन्य विशेषताओं के साथ उस कथा का भी स्मरण करती आती है। एक बार हमने अपने कुछ मित्रों के साथ उक्त कथा के स्मृति-चिन्हों को खोजने का प्रयत्न किया था। यद्यपि १८०० वर्ष की धार्मिक घटना का कुछ पता लगना असम्भव था, तथापि 'बाँस के फाटक' मुहाल में चौक जाने वाली सड़क के किनारे पर हमको एक छोटा-सा शिवालय मिला, जिसमें स्थापित महादेव का लिङ्ग बीच से फटा हुआ है, और 'फटे महादेव' के नाम से लोगों में प्रसिद्ध है। उस शिवालय के एक पुजारी से पूछने पर हमें यह भी मालूम हुआ कि उसे समन्तभद्रेश्वर भी कहते हैं। उक्त कथा और 'फटे महादेव' में कोई ऐतिहासिक सम्बन्ध है या नहीं—हम कुछ भी नहीं कह सकते। केवल काशी के कतिपय इतिहास-प्रेमी विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने के लिये इस कथा को उद्धृत कर दिया है।

जैन-विद्यालय

काशी संस्कृत-विद्या का केन्द्र है। और संस्कृत-साहित्य में जैन-साहित्य अपना गौरव-पूर्ण स्थान रखता है; इसलिये जैन-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन के लिये सबसे पहले ठठेरीगली की अँग्रेजी कोठी में एक जैन-विद्यालय खोला गया था। उस समय काशी में इस विद्यालय की यथेष्ट ख्याति थी। कई बार महाराज बनारस ने भी पधार कर उसका सम्मान बढ़ाया था; किन्तु कारणवश वह विद्यालय बन्द हो गया। अब भदैनी में गंगा के तट पर भी स्याद्वाद-जैन-विद्यालय के नाम से एक विद्यालय तथा छात्रावास स्थापित है। इस विद्यालय को महात्मा गाँधी, पूज्य मालवीयजी तथा बा० भगवानदासजी सरीखे महापुरुषों के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। जर्मनी के डॉक्टर हर्मन जेकोबी, आचार्य ध्रुव, बा० श्रीप्रकाशजी, आचार्य नरेन्द्रदेव जी-जैसे वाग्मी उसके

(शेषांश ९४ पृष्ठ के नीचे)

* स्वामी समन्तभद्र-कृत चतुर्विंशति जिन-स्तवन स्वयम्भू-स्तोत्र के नाम से ख्यात हैं और सरस दार्शनिक स्तुति है।

काश्यां मरणान्मुक्तिः।

लेखक—श्रीयुत विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री, सं० सूर्योदय

काशी में मरने से मुक्ति मिलती है, यह आर्यों का विश्वास है। यह विश्वास निराधार नहीं है। प्राचीन परम्परा से सनातन समाज जिनका अनुशासन, हुकूमत, शिरोधार्य करता आ रहा है, उन प्राचीन शास्त्रों में भी इस विश्वास के समर्थक अनेक प्रमाण हैं। उन सब प्रमाणों को उद्धृत कर इस लघु लेख का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं है, फिर भी एक-दो लिख देना अधिक अनावश्यक नहीं जान पड़ता।

'यः कश्चिन्मानवो लोके वाराणस्यां त्यजेद् वपुः।
स चाप्येको भवेन्मुक्तो नान्यथा मुनयो विदुः॥'
'जले स्थले चान्तरिक्षे वाराणस्यां मृतास्तु ये।
ददामि परमं ब्रह्म तेषां हि कर्णगोचरे॥
हित्वा च सकलं कर्म सुकृतं दुष्कृतं हि ते।
प्राप्स्यन्ति ब्रह्म निर्वाणं मनोपदेशतः क्षणात्॥'

प्रथम श्लोक लघु आश्वलायन स्मृति और द्वितीय तृतीय योगिनी तन्त्र के हैं। इनका भावार्थ यह है कि जो मनुष्य इस काशीपुरी में शरीर त्याग करते हैं, उनके कान में स्वयं भूतभावन तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं, जिसके प्रभाव से मनुष्य अपने पाप-पुण्य-कर्मों के बन्धनों से छुटकारा पाकर मुक्त होते हैं।

विश्वास बहुत बड़ी चीज़ है। इसको सब विद्वान् मानते हैं। यदि आत्मा में परम आत्मा का विश्वास हो जाय, तो जीवन सफल हो जाता है।

इस तुच्छ छोटे शरीर में आबद्ध न रहकर अपने को अनन्त विश्व में व्याप्त समझना, प्राणीमात्र को अपना ही रूप मानना मानवजीवन का चरम लक्ष्य है। आर्यशास्त्रों में सर्वत्र इसी सिद्धान्त का सर्वोच्च संकेत है। इसी के आधार पर तीर्थ और पुण्य स्थानों का मनोहर प्रतिपादन प्राचीन पुस्तकों में आर्यों के पूर्वज महर्षियों ने किया है।

सब ही पदार्थ त्रिगुणमय होने से त्रिभावात्मक हैं। अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म भाव सब में ओत-प्रोत हैं। यह तीन भाव वस्तुतः तीन सीढ़ियाँ हैं, जिनसे मनुष्य धीरे-धीरे परम आत्मा की ओर अग्रसर होता है। इसीलिये वेदों में तीन काण्ड हैं—कर्म, उपासना और ज्ञान। ये ही दर्शनों के तीन प्रस्थान हैं, ये ही स्मृतियों के तीन अनुशासन हैं, ये ही पुराणों और तन्त्रों के त्रिविध भाव हैं। सनातन शास्त्रों के सिद्धान्तानुसार इन तीनों के अधीन या तो पशुरूप नहीं हैं अथवा 'निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः' वाले पशुपतिरूप नहीं हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार तीर्थ आदि पवित्र स्थान भी अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म रूप से त्रिविध हैं; अतः काशी भी तीन प्रकार की है।

अविमुक्त, महाश्मशान, वाराणसी, काशिका आदि नामान्तर काशी के ही हैं। स्थूल नेत्रों से दिखाई देनेवाली यह काशी नगरी ही आधिभौतिक काशी है, यहाँ भूतभावन शङ्कर भगवान् अधिभूत रूप से विराजते हैं। शिवलोक अथवा कैलास आधिदैविक काशी है, यहाँ शङ्करजी अधिदैव रूप से रहते हैं। प्रतिपिण्ड में, प्रत्येक शरीर में स्थित शीर्षस्थान ही आध्यात्मिक काशी है, यहाँ देवादिदेव भूतनाथ अध्यात्मरूप से विराजमान रहते हैं। यहाँ पर अध्यात्मिक काशी के सम्बन्ध में कुछ सप्रमाण चर्चा करना आवश्यक है।

'वाराणसी महाप्राज्ञ भ्रुवोर्घ्राणस्य मध्यमे'
—जाबालदर्शन

'वाराणसी भ्रुवोर्मध्ये'
—तोडल तन्त्र

'वारणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी।
तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमुक्तकम् ॥'
—कूर्मपुराण

'य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इति। सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति? वारणायाम् अस्यां च प्रतिष्ठित इति। का वै वारणा का वै असी इति? सर्वान् इन्द्रियकृतान् दोषान् वारयति तेन वारणा भवति, सर्वान् इन्द्रियकृतान् दोषा आसयति तेन असी भवति। कतमं चास्याःस्थानं भवति? भ्रुवोर्घ्राणस्य च यः सन्धिः' इति।
—जाबालदर्शन

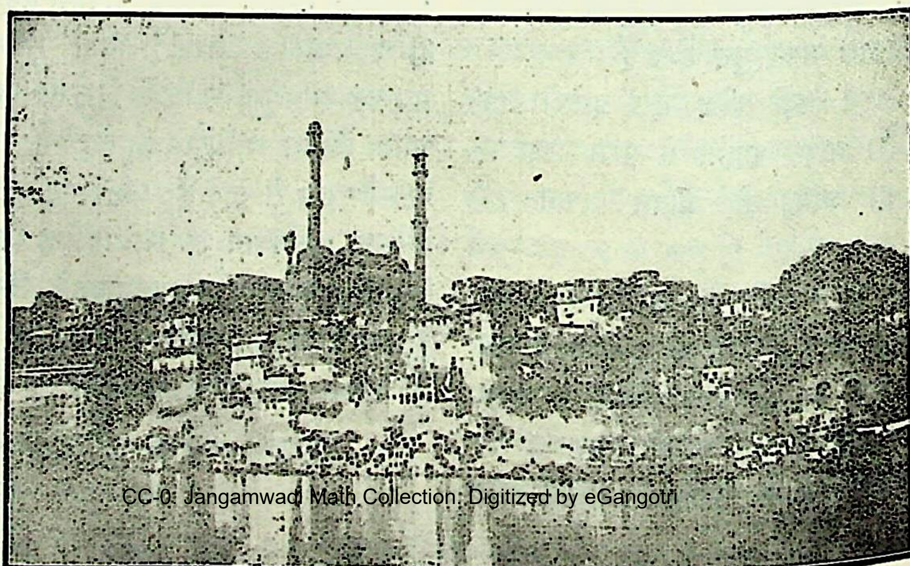
इन सब प्रमाणों का संक्षिप्त अर्थ यह है कि नासिका और दोनों भ्रुकुटियों के मध्य में जो स्थान है, एवं निखिल इन्द्रियकृत दोषों का वारण और असन (नाश) करने वाली वारणा और असी के बीच की जो भूमि है, उसको वाराणसी अथवा अवि-मुक्त कहते हैं। यहाँ ही आत्मा का, परम आत्मा का, विश्वनाथ का निवास है।

इस ब्रह्मरन्ध्र, अविमुक्त, वाराणसी अथवा काशीपुरी में जो योगी भाग्यवान् पुरुष अपने प्राणों को छोड़ते हैं, उन्हें काशीपति श्री विश्वनाथजी दर्शन देकर तारक मन्त्र का, तर जाने वाले ज्ञान का, उपदेश देते हैं। जिनको आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है, उनके 'ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन, क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' इस गीतोक्त सिद्धान्तानुसार शुभाशुभ सकल कर्म नष्ट हो जाते हैं और वे मुक्ति प्राप्त करते हैं; अतः जिन्हें उपर्युक्त त्रिविध काशी प्राप्त होती है, उन भाग्यशाली व्यक्तियों की मुक्ति में संदेह करना बुद्धिमत्ता नहीं है। आचार्य शङ्कर ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। देखिये—

'मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः,
सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका वै।
ज्ञानप्रवाहा विमलाऽऽदिगङ्गा,
सा काशिका वै निजबोधरूपा ॥'

'कार्यं हि काशते काशी, काशी सर्वं प्रकाशते।
सा काशी विदिता येन, तेन प्राप्ताहि काशिका ॥'

अर्थात्—सब तीर्थों में श्रेष्ठ वही मणिकर्णिका है, जहाँ मन का निरोध होता है और परम शान्ति मिलती है। विमल ज्ञान-प्रवाह ही आदि गङ्गा है। अपने स्वरूप को दिखानेवाली भूमि ही काशी है। काश का, प्रकाश का स्थान काशी ही अभ्यन्तर और बाह्य जगत्प्रपञ्च को प्रकाशित करती है। इस काशी को जो जानता है, उसीको काशी मिलती है।



यों तो भारतवर्ष के प्रत्येक तीर्थ-स्थान अपनी गलियों के लिये प्रसिद्ध हैं, फिर भी इस मामले में काशी अपना सानी नहीं रखती। इसकी पेचीली, सँकड़ी और अँधेरी गलियों की प्रसिद्धि काफी हो चुकी है।

यों कहना चाहिए कि काशी नगरी एक प्रकार से गलियों का जाल ही है। चौड़ी सड़कें तो यहाँ शायद ही किसी को भूले-भटके नजर आवें; पर इधर-उधर भटका देनेवाली टेढ़ी-मेढ़ी गलियाँ आप जहाँ-तहाँ देख लीजिए। समझ में नहीं आता कि इन गलियों को गलियाँ कैसे कहें, जो महज कूड़ा-करकट और गर्द-गुबार की एक मात्र जगह हो रही हैं; क्योंकि घरों की जूठी पत्तलों और सड़ी-गली चीजों को इन निर-पराध गलियों में ही आश्रय मिलता है। इन वेचारी गलियों पर इतनी ही आफ़त गुज़रे, तो भी कहना चाहिए कि ये सस्ती छूटीं; पर नहीं—'आगे-आगे देखिए होता है क्या।' राहगीरों के थूक, खँखार और पान की पीक-सी सुगंधित और पवित्र वस्तुएँ इनकी रही-सही कलुषता भी मिटा देती हैं। इन बातों के होते हुए भी ये गलियाँ भिखमंगों, साँड़ों और गुण्डों के प्रिय स्थान हैं और इन्हीं गलियों की रक्त-वर्णाच्छादित दीवारों के सहारे बैठ कर भिक्षुकगण 'दाता की जय' मनाया करते हैं। प्रायः बने-ठने बाबाओं से भी इन्हीं जगहों पर भेंट हो जाती है, जो सीधे-सादे आदमियों को फँसा कर उन्हें भली भाँति मूड़ते हैं।

काशी का गलियाँ

लेखिका—श्रीमती मनोरमादेवी अग्रवाल

इसी प्रकार अपनी अनुपम विशेषताओं से काशी की गलियाँ भरी-पूरी हैं। कहीं-कहीं तो ये ऐसी सँकड़ी हैं कि यदि कोई मोटा आदमी उधर से आ गुजरे, तो उसकी तो जान पर ही बीत जाय! क्या मजाल कि वेचारा बिना रगड़ खाए उसमें से पार हो ले। बरसात का दिन हो, तो फिर क्या कहना है! गोबर आदि गन्दगियों से लिपी-पुती गलियाँ कीचड़ और फिसलने का केन्द्र बन जाती हैं और वेचारे राह चलते मुश्किल से गिरते-पड़ते हुए उनमें से आते-जाते हैं।

कहीं-कहीं पर ये गलियाँ चौड़ी और स्वच्छ भी हैं। इनमें सेठ-साहूकारों की बड़ी-बड़ी विशाल कोठियाँ बनी हुई हैं। इन्हीं गलियों में बड़ी-बड़ी दूकानें नज़र आती हैं, जो सब प्रकार की सामग्रियों से विभूषित रहती हैं। यहाँ सदैव मनुष्यों की अपार भीड़ लगी रहती है।

यदि उपर्युक्त सब बातों का मज़ा लेना हो, तो काशी की प्रसिद्ध विश्वनाथ-गली की ओर तशरीफ़ ले जाइए। आपको उल्लिखित सारी बातों की सत्यता आप ही ज्ञात हो जायगी। सँकड़ी गन्दी गलियों में स्थित, सब प्रकार से सजी हुई अनेक दूकानें, ढोंगी बाबाजी, दीन-हीन भिक्षुकों की लम्बी कतार, सब क्रमशः निगाह में आवेगा। यहीं क्यों, कभी-कभी साँड़राम भी अपने मालिक 'विश्वनाथ' की ज़मीन्दारी देखने चले आते हैं। यदि दो हुए तो शंकर के पास सबसे पहले खबर ले जाने के लिए दोनों एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं और इसी चढ़ा-ऊपरी में प्रायः आपस में भिड़ भी जाते हैं। इस द्वन्द्व-युद्ध का क्या कहना। राहगीरों का आना-जाना भी बन्द हो जाता है। कोई-कोई तो इनकी झपेटों में आकर सख़्त चोट खाजाते हैं और कभी-कभी अपनी जान से भी हाथ धो बैठते हैं।

जब यहाँ की गलियों में बिजली नहीं लगी थी, तब ये प्रायः अँधेरी ही रहा करती थीं। उस समय उनमें अनेक प्रकार के भीषण काण्ड होते थे। ज़मानों

की अदावत मिनटों में ही इन गलियों में निपटा ली जाती थी। एक ही हाथ में दुश्मन को भूमि पर धर पटका और आप नौ-दो-ग्यारह। किसी को कानोंकान खबर नहीं।

काशी की गलियाँ महत्वपूर्ण भी बहुत हैं। हज़ारों वर्ष पूर्व का इतिहास, जो आप संसार भर की ऐतिहासिक पुस्तकों के छानने पर भी न पा सकेंगे, यहाँ मिनटों में ही जान सकते हैं। गलियों के कोने-कोने पर स्थित पुराने मन्दिर और भग्नावशेष, भारत के प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास का अच्छा खासा परिचय देते हैं। प्राचीन काल की गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, जो अब बिना मरम्मत पड़ी हुई हैं, काशी को इन गलियों के सिवाय, भारत में और जगह कम नज़र आवेंगी। इन्हीं गलियों में आप भारत की प्रायः सभी प्रकार की भाषाओं का आनन्द ले सकते हैं और ये ही गलियाँ काशी की घनी आबादी की भी साक्षी हैं।

यहाँ की भिन्न-भिन्न गलियाँ अपनी भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिये विख्यात हैं। ठठेरी बाजार की गली में केवल बर्तनों की दुकानों की ही भरमार है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक सुन्दर, सोना, चाँदी, और पीतल के नक्काशीदार बर्तन-ही-बर्तन दिखलाई पड़ते हैं। इस गली की महत्ता तथा अनुपम छटा दीपावली के 'धनतेरस' वाले दिन सौगुनी अधिक हो जाती है। उस समय केवल चमकीले बर्तनों की चमचमाहट से ही सारी गली बिना प्रयास चमक उठती है और उसपर से उत्सुक जनता की अपार भीड़! अजब ही दृश्य रहता है।

कुंजगली भी अपनी जोड़ की एक गली है। यहीं पर सब तरह के बनारसी कपड़े मिलते और काशी की इसी गली से विशेष कर कपड़े बाहर भेजे जाते हैं। इसी प्रकार की यहाँ सैकड़ों मशहूर गलियाँ मौजूद हैं, जिनको देख कर लोगों की तबीयत प्रसन्न हो जाती है।

काशी की गलियों में जो बुराइयाँ हैं, उनपर आजकल काशी के योग्य और चतुर नागरिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है, और अब उनका क्रमशः सुन्दरता के साथ सुधार हो रहा है।

(१०७वें पृष्ठ का शेषांश)

इसके भी कई नामी उस्ताद गुजरे हैं। अन्त में बिहारी नामक बिरहा-निर्माता बड़े नामी हुए। इनके सैकड़ों शिष्य वर्तमान हैं। खूब गाते हैं। कजली का रंग भी इन्होंने बिरहा पर चढ़ाया है। कजली के संग ढोलक बजती है। ये लोग प्रायः बिना किसी साज के यों ही कान पर हाथ रख कर जोर से गाते हैं। यदि कोई भारी शौकीन हुए, तो लोहे के चार टुकड़े, करेला के आकार के, करीब आठ इंच लम्बे और पौन इंच चौड़े, जो खास तौर से बनाये जाते हैं, व्यवहार करते हैं। इसका नाम करताल है, इसीसे बिरहा की लय बँधती है। दोनों हाथों में एक-एक जोड़ी लेकर बजाते हैं और ललकार कर बिरहा गाते हैं।—

राम भइलैं जोगिया लखन बैरगिया,
दुनो भइया होय गइलैं फकीई-ई-ई-र।

काशी का 'संगीत-समाज' प्राचीन संस्था है, जिसने नगर में संगीत का अच्छा प्रचार किया है और आज भी उसके अधिवेशन होते हैं

काशी-वर्णन

(भोजपुरी भाषा में)

चल भैया चल आज कासी विश्वनाथ-पुरी, चल आज गंगाजी के धार में नहाईं जा ;
बाबा विश्वनाथजी के दरसन करि आज, जनम-जनमवा के पातक कटाईं जा।
काशीजी में गंगाजी के कइसन बहार बाटे, घाटे-घाटे चल आज डुबुकी लगाईं जा ;
कालभैरो ढुंढिराज अन्नपूर्णा विश्वनाथ, दुर्गा महावीर के दरस करि आईं जा।
सुन्दर शंकरपुरी दुरि जाय पाप-पुञ्ज, नित नेम करि मणिकर्णिका नहाईं जा ;
बरुना ओ असी बीच दिव्य बारानसी बाटे, पावन नगर रज सिरसे लगाईं जा।
गंगाजी के तीरे-तीरे विमल बहार बाटे, साँझ के दसासुमेर घाट चलि जाईं जा ;
झुण्ड-झुण्ड लोग सब ओहिजे भजन गावैं, ओहिजे हमनिओके प्रभु गुन गाईं जा।
धनुही समान भागीरथीजी के धार बाटे, अस्सी घाटे नाव लेके राजघाट जाईं जा ;
राजघाट पुल बड़ा सुन्दर बनल बाटे, ओहिजे से काशीजी के छटा देखि आईं जा।
हाटे-हाटे घाटे-घाटे ठाठे-बाट देखि पड़े, चल आज देखि-देखि अँखिया जुड़ाईं जा ;
जहाँ बाबा विश्वनाथ अपने विराजमान, ओकरा विभव के कहाँ ले थाह पाईं जा।
बिन्दुमाधव धौरहरा दूरे से दिखाई देत, चल आज ओकरो बहार लेत आईं जा ;
गंगाजी में नैया लेके चल भैया ओह पार, राजा रामनगर के किला देखि आईं जा।
काशीजी के देवी-देव सबके दरस करि, चल पंचक्रोसी के परिक्रमा लगाईं जा ;
ओ ही ओर हिन्दू विश्वविद्यालय बनल बाटे, चल भैया ओकरो के आज देखि आईं जा।
केतना मकान बाटे बड़ा आलीशान बाटे, सड़क मैदान होके चक्कर लगाईं जा ;
वेद के उच्चार होता धर्म के पुकार होता, चल आज कान के पवित्र करि आईं जा।
थोड़ी दूर आगे अँगरेजिहा के ठाट बाटे, गिटपिट-गिटपिट बात सुनि आईं जा ;
ऊहै सब पढ़ि-पढ़ि लोग विद्यावान होला, अपनो बलकवा के ओहिजे पढ़ाईं जा।
तेल औ फुलेल बने रंग बहुमेल बने, लड़िका के सकल कारीगरी सिखाईं जा ;
बिजुली के कल बाटे पानिओ के नल बाटे, कालेज बनल बाटे चल देखि आईं जा।
धन्य-धन्य मालवी के महिमा अपार बाटे, चल आज उनको दरस करि आईं जा ;
आव भैया चल मिलि उनका बँगलवा पर, उनका चरनवा पर मथवा झुकाईं जा।
बड़ा उपकार कइले विद्या के प्रचार कइले, धर्म के उद्धार कइले आव गुन गाईं जा ;
दिन-दिन उन्नति हो बढ़े विश्वविद्यालय, हाथ जोड़ि बाबा विश्वनाथ से मनाईं जा।

मनोरञ्जनप्रसाद, एम० ए०

काशी में संगीत की सैर

लेखक—श्रीयुत गोकुलचन्द खत्री, 'वाचरल'

जिस प्रकार काशीपुरी अन्य सभी विद्याओं और कलाओं में किसी से पीछे नहीं है, उसी प्रकार भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन, परम मनोहर, मोक्षदायिनी सुकठिन संगीत विद्या में भी अपना खास स्थान रखती है। इसमें सन्देह नहीं, कि प्राचीन और शुद्ध संगीत ध्रुपद का भारतवर्ष से लोप होता जा रहा है, उसके सुनने और समझने की शक्ति जनता में नहीं है। फिर भी इस गई-गुज़री दशा में भी, काशी ऐसी नगरी में ध्रुपद के गुणी वर्तमान हैं। आइये, पं० हरिदासजी कविराज के यहाँ जंगमबाड़ी मुहल्ले में चलिए, देखिये रविवार का दिन है, मित्रमंडली विराज रही है, मृदंग बज रहा है, एक सज्जन ध्रुपद गा रहे हैं। इनके बाद दूसरे सज्जन गावेंगे। और ध्रुपद सुनने की इच्छा हो, तो वेणीमाधवजी के यहाँ रामघाट पर चलिये, देखिये पंडितजी शिष्य-वर्ग को शिक्षा दे रहे हैं। ध्रुपद का और प्रेम हो, तो बुलानाले पर प्रोफेसर पं० भोलानाथजी पाठक के यहाँ पधारिये, देखिये कैसा सादा निर्गर्व दृश्य है। न कोई आडम्बर है, न कोई साज-बाज। आप निवेदन करें, कृपा कर अमुक राग का ध्रुपद सुना दीजिये। यदि उनकी तबीयत मौजूँ हुई, तो फौरन सुना देंगे। उनके गाने का ढंग अद्भुत है। ध्रुपद-प्रेमियों के लिये पाठकजी अपने जवाब आपही हैं। केवल गान के आप ज्ञाता हैं, सो बात नहीं; मृदंग बजाने में भी आप परम प्रवीण हैं। ध्रुपद के और भी कई गायक यहाँ हैं; पर स्थान-संकोच के कारण सबका परिचय नहीं दिया जा सकता।

ध्रुपद मालकोस

बावरी भई, नेकुना सम्हारो जात चित,
ना रहत चैन जब तब, मुरली धुन सुन बावरी भई;
ऊबि ऊबि उठत, घूम घूम, झूम झूम, झुकि झुकि,
झुकत हैं री, बार-बार आप जात तावरी कही।
याही में आन मिले मदनमोहन प्यारे,
तन मन ते प्यारी न्योछावरी भई;
बानी बिलास आस पूज पूछत पिय को,
यह दसा कहा आज रावरी नई।

किसी भी गान का आनन्द स्वरों में है, शब्दों में नहीं, इस लेख में जो गान के शब्द-मात्र दिये गये हैं, वह इसी विचार से कि कुछ नहीं से कुछ अच्छा है।

इस कठिन काल में इन सज्जनों ने बिना किसी उचित सहायता के, जो ऐसे कठिन विषय को जीवित रक्खा है, उसके लिये काशी-वासियों को कृतज्ञ होना चाहिए, यथासाध्य इन विद्वानों की सहायता करना उचित है; क्योंकि काशी के संगीत-प्रेमियों का इन गुणियों के कारण गौरव है।

अब दूसरी ओर चलिए, देखिए यह मुहल्ला कबीरचौरा है, जहाँ गुणी गायक और वादकों का दौर-दौरा है। यह लोग हैं तो ब्राह्मण; मगर कई कारणों से अब कथक कहलाते हैं। पहले तो इस जाति में ध्रुपद के भी बड़े-बड़े विद्वान् थे; परन्तु अब उसकी आवश्यकता न समझ कर इन गुणियों ने ख्याल नामक गान का अभ्यास किया है, जो ध्रुपद से हलका होते हुए भी बहुत कठिन है। हैं तो अनेक गुणी; मगर काशी में प्रसिद्ध रामदासजी गायनाचार्य ही हैं। छोटे रामदास की भी ख्याति कम नहीं है, इनको ठप्पा गाने का खूब अभ्यास है। इनके अतिरिक्त और अनेक गुणी गायक-वादक इस जाति में काशी की संगीत-मंडली का गौरव बढ़ा रहे हैं। इसी मुहल्ले

में एक वृद्ध मिठाईलालजी हैं, जो गायन-कला के विशेषज्ञ होते हुए वीणा बजाने में भी प्रवीण हैं। इन लोगों की प्राचीन काल से यही जीविका है। ये गुणी ख्यालिए कहलाते हुए भी ठुमरी, गजल, दादरा इत्यादि खूब गाते हैं, जीविका जो ठहरी ! सभी श्रेणी के श्रोताओं को प्रसन्न रखना पड़ता है। इन दिनों इन में से अधिकांश आर्थिक कठिनाई से विकल हैं, बाप-दादे का पेशा है, दूसरा काम सीखा नहीं, घर-गृहस्थी कैसे चले। वह देखिये एक विद्यार्थी तबला ठनका रहा है, देखिये उस्ताद रामदास के यहाँ शिष्य-वर्ग हार्मोनियम-द्वारा स्वर-साधना कर रहे हैं, कोने में तंबूरा भी अपना विशाल पेट फुलाए विराजमान है। कंठे उस्ताद के यहाँ तबले की धूम है, शागिर्दों का हजूम है, बाँये पर थाप पड़ी, दिल मचल गया, हृदय का मुर्झाया फूल खिल गया। सरयूप्रसाद की सारंगी का अजब रंग है, सुनने वालों के होश दंग हैं, बोल ऐसा निकलता है, मानो सारंगी के अन्दर कामिनी-कंठ बोलता है! हृदय की शोक-संतप्त ग्रंथियों को खोलता है। इन उस्तादों के अतिरिक्त मुसलमान संगीतज्ञ भी हैं, उस्ताद आशिकअलीखाँ सितार-वादन में परम प्रवीण हैं, इनके परिवार के सभी लोग संगीत में होशियार हैं, शौकीन नहीं पेशेकार हैं। कोई वादक है, कोई गानेवाला है। इनके निवास का मुहल्ला शिवाला है। और भी कई मुसलमान गायक-वादक अन्य मुहल्लों में हैं।

अब विश्राम के पश्चात् सायंकाल में यहाँ का प्रसिद्ध बाजार दालमंडी देखिये। अजब बहार है, जहाँ गुल है वहाँ खार है, पुष्प और कंटक का विचित्र जमघट है, रूप-पिपासुओं का पनघट है। इस घाट की मिट्टी चिकनी है, पैर फिसला फिर पता नहीं, मरीजे इश्क की कोई दवा नहीं, कोई कहेगा दिमाग बदल गया है, यारों का जादू चल गया है। यह कबीरचौरे के उस्तादों की करामात है, इन्द्र का अखाड़ा मात है। वेश्याओं के काठे हैं, हरेक के ठाट अनूठे हैं। कबीरचौरे पर इस मनोहर वृक्ष का मूल है, यहाँ उसकी डालियों का रंगीन फूल है। श्रीमती विद्याधरी और सिद्धेश्वरी बाई काशी की वारांगनाओं की नाक हैं। जयदेव की अष्टपदी और सूर तथा तुलसी के पदों को गाने वाली भारत में विद्याधरी बाई के सिवा दूसरी नहीं है। एक बार स्वयं महाराज ग्वालियर ने उनका गाना सुनने के लिये अपना प्रोग्राम बदल दिया था।

सुनिये, ठुमरी खमाच

मोहिका डगर चलत दीन्ही गारी रे, ऐसो ढीठो बनवारी
मोरी गुँइयाँ, विनती करत में तो हारी रे।

अब चलिये जरा देव-मंदिरों के संगीत का आनन्द लें। सर्व-प्रथम यहाँ के सुप्रसिद्ध श्री गोपाल-मंदिर का कीर्तन सुनिए। अहा, कैसा शान्तरस का साम्राज्य है! भावुक भक्तों का समाज है। मृदंग, तम्बूरा, झाँझ बजती है। मंदिर की खास प्रणाली के अनुसार भजन गाया जाता है। महात्मा सूरदास, नंददास ऐसे भक्तों के रचित पद, राग रागिनियों में गाते हैं। दूसरा मंदिर श्रीयुत बाबू कामेश्वर-प्रसादजी रईस का नीचीबाग में है। यहाँ नित्य सायंकाल भजन-भाव होता है। रामनाथजी के तबले की संगत, गाने की रंगत को दूना बढ़ा देती है। खड़े भक्तों को बैठा देती है। श्रावण में झूले के अवसर पर देखिये कैसी छटा है, संगीत की नित्य नई घटा है। कभी ध्रुपद है, कभी ख्याल है, सुनने वालों का अजब हाल है। कभी जल तरंग, नस तरंग दिल मसलते हैं, कभी सितार और सराद से हृदय के तार हिलते हैं।

आगे देखिये—आदि विश्वेश्वर पर श्री सत्य-

नारायण का मंदिर है, यहाँ भी नित्य भजन होते हैं, शहद की मक्खियों की तरह रसिक भक्त इधर उधर बैठे रहते हैं, हार्मोनियम तबले का साज है, जिसकी बुलन्द आवाज है, अनेक गायक अपनी इच्छा से भी आकर संगीत की सेवा करते हैं, कभी-कभी तबले पर छमाछम घुँघरू की आवाज़ नाच का भ्रम पैदा करती है, राह चलतों को खींचती है। आइये पुण्य-सलिला श्रीगंगा-तट पर देखिये। यह महाराज ग्वालियर के दीवान साहब का जड़ाऊ मंदिर है, यहाँ कार्तिक के पुनीत महीने के अन्तिम पाँच दिनों में भीष्मपंचक पर प्रातःकाल से दोपहर तक श्री ठाकुरजी के सामने बड़े समारोह और प्रेम से गाना-बजाना होता है। भैरवी, टोड़ी, आसावरी इत्यादि की विचित्र बहार है, सुनने वालों की भरमार है, स्त्री-पुरुषों का रेला है, शोर और संगीत का झमेला है, कर्ण-रसिक टूटे पड़ते हैं, हाथ से जल के लोटे और गीली धोती के बंडल छूटे पड़ते हैं। गंगा-स्नान करके दर्शकगण आते हैं, नेत्र और कर्ण पवित्र कर घर जाते हैं। जिस दिन कोकिल कंठी वारांगनाओं का दंगल है, उस दिन श्रोताओं का अमंगल है, उधर से नजर के भाले हैं, इधर जान के लाले हैं। यह देखिए—इसी मंदिर की बगल में महाराज़ ग्वालियर का सुप्रसिद्ध श्री लक्ष्मण-बालाजी का विशाल मंदिर है। इस मंदिर में नीचे की मंज़िल को छोड़कर ऊपर लकड़ी का ठाट है, इसका प्राचीन नाम बालाघाट है, यहाँ देखिये एक दक्षिणी पंडित खड़े होकर हाथ में तम्बूरा लिये हरिकीर्तन कर रहे हैं, हरिकीर्तन की प्रथा श्री शिवाजी के गुरु समर्थ श्रीरामदास स्वामी ने निकाली है। कदाचित् इसी कारण इसके गुणी पंडित दक्षिणी ब्राह्मण ही देखे जाते हैं। बड़ी सुन्दर प्रथा है। संगीत और हरि कथा है। मणि-कांचन संयोग है, भक्तिरस का श्रोत है। श्रोताओं का हृदय ओत-प्रोत है। इन कीर्तनकार पंडितों को दक्षिणी भाषा में बोवा कहते हैं। विष्णु बोवा, विनायक बोवा इत्यादि सज्जन यहाँ के प्रसिद्ध कीर्तनाचार्य हैं। प्रथम एक भजन गाना प्रारम्भ करते हैं।

भजुमन राम चरण सुखदाई,
जा चरणन से निकलीं सुर-सरि शिव के जटासमाई,
जटा शंकरी नाम परो है, भव सागर को तारन आई।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में भी संगीत-शिक्षा का प्रबन्ध है। वहाँ कई विद्वान् सज्जन शिक्षा देते हैं। प्रो० पं० भोलानाथजी पाठक, प्रो० पं० शिवप्रसादजी, मुन्शी द्वारिकाप्रसादजी (सितार-शिक्षक), पं० मन्नूजी मृदंगाचार्य, इन महानुभावों की शिक्षा का उत्तम फल हुआ है। विषय कठिन है, विद्यार्थियों को अन्य विषय पढ़ने से अवकाश कम है, फिर भी जो हो रहा है, बहुत है।

फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को श्री रामलीला की पंचक्रोशी यात्रा निकलती है। जंगल में मंगल करती है, जिसके प्रधान श्री झगाजी महाराज थे। उन्हीं के आशीर्वाद से अभी तक यह यात्रा होती जा रही हैं। इस यात्रा के साथ भी भजन-मण्डली रहती है। जो प्रेमीगण हैं; पेशेकार नहीं, ढोलक सितार पर गाते हैं। गाने की खास प्रणाली है, जो सबसे निराली है।

होली, पोल्ड

चलो गुइयाँ खेलि आई होरी कन्हैया घर,
अपने अपने घर से निकसीं कोइ साँवर कोई गोरी।
एक से एक जोवन-मद माती सबै बयस की थोरी।
कन्हैया घर।

कार्तिक शुक्ला ११ से पूर्णिमा तक यही मंडली रामघाट पर एक प्राचीन राम-मंदिर में रात्रि के समय भजन-भाव करती है। अन्य गुणियों को भी आदर-पूर्वक निमंत्रित करती है।

काशी में कसेरों का होली-गान प्रसिद्ध है। ये लोग होलिका-दहन के दूसरे दिन सायंकाल में होली गाते निकलते हैं। प्रत्येक गोल में एक जोड़ उत्तम शहनाई बजानेवाले होते हैं, जो प्रायः मुसलमान हैं।

होली, काफी

ऐसे ब्रज के क्या तुम्हीं हो इजार दार।
काहे रंग छिरकत मो पै बार-बार॥
कर मोरा पकर, कलाई मोरी झटकी।
देखो अँगिया को कर दीनो तार-तार ऐसे०॥

गाने वालों का परिश्रम, स्वर का खिंचाव, प्रशंसनीय है।

यहाँ खम्सा नामक गान वर्ष में केवल एक दिन होता है। गाना क्या है शायरी है। हिन्दू मुसलमानों की यारी है। हिन्दू त्योहार में मुसलमान भाइयों का शरीक होना बड़ा मनोहर दृश्य है। होलिका-दहन को रात्रि को खम्से के अखाड़े उठते हैं। प्रत्येक अखाड़े में, १०-२० गायक होते हैं। साथ ढोलक-सितार बजता है। खम्सा उर्दू का एक छन्द है, उसी में अनेक प्रकार की बंदिशें बाँधते हैं। होली का अवसर होने से कुछ अश्लील कविता भी कह डालते हैं, मगर कम। इसके प्रवर्तक मुसलमान हैं। मियाँ तेराअली खम्से के नामी उस्ताद हो गए हैं। इनका अखाड़ा तेलिया नाले से उठता है। मदनपुरे से भी अखाड़े उठते हैं। हिन्दुओं के भी अखाड़े हैं। मुसलमानों में हिन्दू, हिन्दुओं में मुसलमान सबका दर्जा समान। खम्सों को रागिनियों के स्वर में भी गाते हैं। रात भर अखाड़े जागरण करते हैं। प्रातःकाल जब भैरवी के स्वर में प्रारम्भ होता है, तो अजब समाँ बँधता है। दालमंडी में देखिये रंगीन पर्दों को हटा-हटा कर कौन झाँक रहा है। क्या वेश्या? नहीं, वेश्या के प्रेमी, जो आज रात को खास खम्सा सुनने के उद्देश्य से यहीं रह गए हैं। जिनके धर्म-कर्म सब बह गये हैं। कोई देख न ले इस लिये छिप कर देखते हैं। अपने दुष्कर्म से झेंपते हैं। बड़ी भीड़-भाड़ है, चुप रहो चुप रहो। की चीख़ोपुकार है।

जरा सुनिए—

सर्द झोंका मेरी आहों का जो चल जाता है,
बाग में दम तने बुल-बुल से निकल जाता है।
उसके पिस्ताँ का कभी ज़िक्र जो चल जाता है,
दोनों हाथों से मेरा दिल कोई मल जाता है।

देखिये दूसरे गोल में क्या कह रहे हैं—

खोजवाँ से दौड़ल आईला राजा तोरे बदे,
छूरी कटारी खाईला राजा तोरे बदे;
पर्दा हटा के हँस दऽ तू हम हो जाईं निहाल,
काटी ला सात-चौदह खटाखट तोरे बदे।

यहाँ गाने वाली निकृष्ट श्रेणी की वेश्याओं का एक समुदाय है, जिन्हें गौनहारिन कहते हैं। ये अकेली नहीं गातीं। पाँच-सात का समूह होता है। इस गोल में एक या दो जनखे भी होते हैं। गाते भी खूब हैं! गाना क्या है, एक प्रकार का शोर है। शोर उनके लिये है, जिन्हें प्रभू की कृपा से स्वर-तालका ज्ञान है। जो बेचारे संगीत से अज्ञान हैं, उनके लिये इन गौनिहारिनों का गाना बड़ा प्रिय है। कोसों जाते, ख़ाक फाँकते घर आते हैं। राज-मज़दूर इत्यादि निम्न श्रेणी के प्रेमी अधिकतर इन पर मरते हैं। घर में भूँजी भाँग न हो; मगर इनका घर भरते हैं। शहनाई बाजा और गौनिहारिन की गोल का मेल है। जहाँ ये हैं, वहाँ लठ्ठबाज प्रेमियों की रेल-पेल है।

तोरे भोले भवन पर लाल तम्बुआ

उसी को शहनाई वाले बजाते हैं (यहाँ के शहनाई बजाने वाले कई बड़े उत्तम हैं, गुणी हैं। सच तो यह है कि यदि शहनाई की सहायता न हो, तो इन

बेचारी गौनहारिनों का गाना, रोना बन जाय)

तोरे भोले भवन पर लाल तम्बुआ

दो चार बार शहनाई में जब यह चरण बज चुकता है, तब फिर गौनहारिनें दूसरा चरण गाती हैं—

माया के द्वारे हरिअर पीपर लाल धजा फहरानी, तोरे भोले०

इसी प्रकार बार-बार अनेक प्रकार के प्राचीन और शुभ समझे जाने वाले गीत ये गाती हैं। उसी को शहनाई वाले बजाते हैं। जुलूस निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा कर विश्राम लेती हैं। वेष-भूषा साफ-सुथरी होती है।

इनका गोल बैठकर मुजरे के तौर पर भी गाता है। इनके शौकीन प्रायः वर्षा ऋतु में इन्हें, बुलाकर कजली नामक गीत सुनते हैं। ये बलिष्ठ होती हैं। खूब जोर से बड़ी देर तक गाती हैं। शहनाई थोड़ी देर उत्तम प्रकार बजा कर बन्द कर दी जाती है। केवल दुकड़ और झाँझ बजा करती है। एक ने यों कजली उठाई—

'आठ सखी मिल करती हैं बयान रे साँवलियाँ,
सगरे पर सब करन गईं असनान रे साँवलियाँ;

फिर सब ने इसी को दुहराया।

इसके बाद—

पहली बोली, बालम मोरे दंड पेलने जाते हैं,



श्री गोकुलचन्द खत्री 'वाद्यरत्न'

गदा व मुद्गर लेजिम तीनो, तीनो वक्त हिलाते हैं;
कसरत करके चूर रहें रुख हमसे नहीं मिलाते हैं,
घुमैं न करवट सूतैं लैं उतान रे साँवलिया।
आठ सखी मिल०

सखी पाँचवी कहे सखी सुन मोरे पिया की बात रे,
करै रात-दिन रंडीबाज़ी रखले बा परजात रे;
मोरे सँग में कबहूँ न बोलै गैर लगावे घात रे,
मना करूँ तो हो के गुस्सा मारै मुक्का लात रे।
मस्त हुई मैं फिरती हूँ बौरान रे साँवलिया,
आठ सखी मिल०

गाने के अतिरिक्त ये अनेक प्रकार की नकलें भी करती हैं। भाँड़ों के कान कतरती हैं। कभी धोबी बन के गाती हैं—कपड़ा लो धुलाई दो। कभी दूध वाली बन कर कहती हैं—दूध और मलाई लो। एक प्रसिद्ध नकल बिच्छू मारने की है। एक नकल करके गाती है—बिछिया लागल रे! दूसरी कहती है—कहवाँ लागो? फिर वृश्चिक दंश पीड़िता कहती है—इहवाँ लागी, और खूब तड़पती है, ऐसा वीभत्स और हास्य-पूर्ण नाट्य होता है कि दर्शक-वृन्द मारे हँसी के विकल हो जाते हैं। कितने सभ्यताभिमानी घबड़ाते हैं, मन में बड़बड़ाते हैं।

इसके अतिरिक्त गौनहारिनों की एक श्रेणी और

है, जिनका दूसरा तौर है। जो इनसे सभ्य हैं, वे मर्दों की नहीं, गृहस्थों के यहाँ अन्तःपुर की गायिकाएँ हैं। ढोल मंजीरा इनके गाने का साज है। इन में कोई बड़ी सुरीली आवाज वाली होती हैं। उनका ठेका भी अधिक है। सोहर, सिठनी, गजल, कजली, होली इत्यादि गाती हैं। नकलें भी करती हैं। नकलों में बहुओं से खूब पैसे झँसती हैं।

गाना

चलीजात भरन जल बाँकी
ब्रजनारी।
गोरा अंग मदन मद-
माती सखियन के
संग अति इतराती,
पहिरे सुन्दर सारी प्यारी
सोतियन माँग सवाँरी;
चली जात भरत जल०

काशी में पहले लावनी नामक गान के अधिक प्रेमी थे। उनमें बड़े-बड़े उस्ताद लावनी-रचयिता गुजरे हैं, जिनमें बनारसीजी बड़े नामी हुए। अखाड़े होते थे, गुरु-शिष्य की प्रथा थी। अब भी कभी-कभी कोई शौकीन लावनी के दृष्टि-गोचर हो जाते हैं। सिर्फ डफ बजाकर गाते हैं। अनेक प्रकार की रचनाओं से लावनी में लावण्य लाते हैं। बड़ी-बड़ी बंदिशें बाँधते हैं। लावनी के लोप होने का लक्षण मालूम पड़ते ही कजली पर रीझने वालों का प्रादुर्भाव हुआ। सहेवना, भैरों, खुदाबख्श इत्यादि कजली के नामी उस्ताद हाल ही में हो गये हैं, जिनकी शिष्य-मंडली वर्त्तमान है। वर्षा ऋतु में ये कजली गाते हैं, केवल ढोलक बजती है, उसी से खूब रंगत जमती है। इन लोगों के अखाड़े हैं, उस्तादी-शागिर्दी का ढंग है। अपना-अपना अलग रंग है। सुनने वालों की भीड़ अपार होती है, कभी-कभी गाने वालों में तकरार होती है। अनेक प्रकार की रचना रचते हैं, कभी पौराणिक वर्णन है, तो कभी नखसिख कथन है, कभी कृष्ण-चरित्र है, कभी किसी सांसारिक घटना का चित्र है। इनके गाने में स्वरों की नहीं, शब्दों की बहार है। इसी में कभी किसी की जीत और कभी हार है।



गायनाचार्य श्री रामदासजी

जरा गौर कीजिये—

कजली का अंश

ताता थेई ताता
थेई नाचत कन्हाई,
जब रचत रास
बिन्दराबन में;
छि छि छुम, छि छि
छुम, छुम छन नन,
घूँघुर की झनक
बाजै पैरन में।

काशी में अहीर जाति सुसंगठित जाति है और इनकी आबादी भी अधिक है। ये लोग प्रायः मकान बनाने के काम में मजदूरी करते और पेशराज कहलाते हैं। दूध-दही की दुकानें भी करते हैं। कई पढ़-लिख कर बाबू बन गये हैं और बाबूगिरी-पूर्वक रहते हैं। इन लोगों का प्रसिद्ध गान 'बिरहा' है।

(शेषांश १००वें पृष्ठ के नीचे)

काशी के साहित्यिक हास्यरसिक

लेखक—श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी

जब सारी वसुधा को विधाता बना चुके, तब उन्हें यह चिन्ता हुई कि काशी को कहाँ ठहरावें ; क्योंकि यह पुरी सब बातों में पृथ्वी के अन्य खंडों से अद्वितीय थी। इसका मेल किसी के साथ बैठ ही नहीं पाता था। चारों ओर उन्होंने दृष्टि दौड़ाई, सब देवताओं ने भी अपना-अपना दिमाग दौड़ाया ; किन्तु काशी को ठहराने-लायक स्थान इस संसार में कहीं दिखाई नहीं पड़ा। सब लोग सोच में पड़ गये। इसी बीच नारद मुनि विधाता से बोल उठे—महाराज, चिन्ता ही क्या, इसको गेंद की तरह लुढ़का दीजिए, जहाँ इसका भाग्य होगा, वहीं जाकर ठहर जायगी। उनकी इस सूझ की देवताओं ने भूरि-भूरि सराहना और वन्दना की। निदान, आकाश-मंडल से गेंद की तरह लुढ़काए जाने पर काशी एक टूटते हुए तारे की तरह, भूमण्डल की तरफ चली। सन्ध्या का समय था। शिव ने जो अनन्त की ओर दृष्टि दौड़ाई, तो अपनी ही तरह इसे भी विचित्र एवं अद्वितीय देखकर झट अपने त्रिशूल पर ही ठहरा लिया। ठहराते क्यों नहीं, जिन्होंने विष तक को अपने कण्ठ में स्थान दे दिया, फिर वे काशी ही को क्यों अशरण रहने देते! सो, तभी से यह काशी नवम खण्ड बनी।

शिवजी ने अपने त्रिशूल पर चर्खी की तरह काशी को चारों ओर हिला-घुमा कर खूब अच्छी तरह देखा-भाला। उन्होंने देखा—ब्रह्मा ने इसके अणु-अणु में केवल शुष्क ज्ञान-ही-ज्ञान भर दिया है, सरसता का कहीं नाम नहीं। जिनके ललाट पर स्वयं चन्द्रकला हँसती रहती है, साथ ही गंगा की तरंगें लहरें मारा करती हैं, वे भला काशी की इस शुष्कता और नीरसता को कैसे बरदाश्त कर सकते थे। काशी को त्रिशूल पर धारण करके वे भी बड़ी चिन्ता में पड़ गये, सोचने लगे—इस बालू से तेल कैसे निकले!

वे इसी सोच में पड़े हुए थे कि हँसते-खेलते, जंगल की सैर करते, तुन्दिल गणेशजो सिंगदार खिलौने की तरह आ पहुँचे। उनके एक हाथ में लड्डू थे, दूसरे में कुछ हरी-हरी जंगली जड़ी-बूटियाँ। शिवजो ने कौतूहल से पूछा—गणेश, आखिर यह है क्या? मैं नित्य इसे तुम्हारे हाथों में देखता हूँ! गणेशजी पुलकित होकर गद्गद् कण्ठ से बोले—महाराज, यह विजया है विजया! इसी के बूते तो मैं इतने लड्डू खा जाता हूँ।

शिवजी ने हँस कर कहा—अरे! जरा देखूँ तो मैं भी तुम्हारी विजया। गणेशजी ने जो घोंटकर उन्हें पिलाई, तो वे बोल उठे—बस-बस, जीते रहो बेटा चारों जुग! इसमें तो वह लहर है कि काशी तो क्या, तीनों लोक रसमय हो जायँ।

तभी से शिवजी के झोले में धतूरे और विजया ने एक साथ ही स्थान पाया। इस भाँति काशी की शुष्कता में सरसता का संचार करने के लिये शिवजी को विजया का आह्वान करना पड़ा और अब तो काशी की गली गली में, घर-घर में, घाट बाट में सरसता का पनारा वह रहा है। 'महाकवि चचा' ने भी सरसता की देवी इन भंग भवानी की उपासना के लिये काशी में सभी स्थानों की उपयुक्तता सूचित कर दी है—

छत पै, तखत पै कि जगत पै इनारे के,
आँगन में, बागन में, साँकरी डगर में।

'महाकवि चचा' भाँग-बूटी में बाधा डालने वालों के लिये किसी भी दण्ड को अधिक नहीं समझते थे—

भंग के प्रसंग में चमारिये जे भंग डारें,
बाँधि सिलाखण्ड तिन्हें सागर में डारिये।

काशी की गृहिणियों का मुख्य धर्म वे यही समझते थे कि भंग की उपासना में पति की सच्ची सहयोगिनी बनें। पति की सेवा करने वाली सती स्त्री की प्रशंसा एक बार उन्होंने इन शब्दों में की थी—

विजन डुलावति है, पगन पलोटति है,
घोंटति है भंग परे हाथन में लोढ़ा हैं।

सच तो यह है कि विवाह के पहले शिवजी भी भंग से अछूते ही थे, उसकी महिमा तो इसके बाद ही जान पड़ती है। यदि कहीं भंग का चस्का उन्हें विवाह के पहले ही लग जाता, तो भला कौन सती हाथ में लोढ़ा लिये हुए अपने सतीत्व का परिचय देती!

तो हाँ, काशी के आराध्य, देवाधिदेव शंकर स्वयं मूर्तिमान हास्यरस हैं। उनकी हास्य-रसिकता का क्या कहना! बारात भी निकाली, तो वह बेजोड़, कि अब तक संसार के इतिहास में उसका रेकर्ड है—

'जस दुलहिं तस बनी बराता!'

धन्य थीं पार्वती, जो इतना सुन्दर वर पा गईं—

'देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं;
वर लायक दुलहिनि जग नाहीं।'

उसी हास्यरस के परम सुन्दर नटवर की इस नगरी के सभी कुओं में भाँग पड़ी हुई है, यदि किसी पर उसकी लहर अभी तक नहीं चढ़ी है, तो समझ लो वह अभी पिशाचमोचन से आया है। क्या पण्डित, क्या कवि, क्या राजा, क्या रंक, सभी पर उस दिगम्बरानन्द की झोली का ही तो जादू है। काशी की नाक तो हैं वे, जिनकी दोनों बेला बहरी ओर गहरी छनती है।

उसी शिव के प्रसाद से ही तो गो० तुलसीदास से लेकर आज तक के सभी काशी-वासी साहित्यिक, हास्यरस की तरंगों में लहराते आ रहे हैं।

गोस्वामीजी ने यत्र-तत्र सर्वत्र हास्यरस की धारा बहाई है, विशेषतः रामचरितमानस में। नारद-मोह, लक्ष्मण-परशु-संवाद, अंगद-रावण-संवाद इत्यादि प्रसंग पढ़ते ही हँसी का फौवारा छूट पड़ता है।

गो० तुलसीदास के साथ ही कबीरदास कम हास्य-रसिक नहीं हैं। उनकी तो नस-नस में व्यंग्य-हास्य और चुटकी भरी हुई है। कहते हैं—'दढ़िया बढ़ाय जोगी बनि गैलन बकरा।' इसीलिये ब्रह्मा से लेकर पण्डित और मुल्ला तक की हजामत उन्होंने अच्छी तरह बना दी है।

परन्तु भई, इन सन्त कवियों के परिहास में भी तो वेदान्त-ही-वेदान्त भरा हुआ है। अपने राम तो सांसारिक-जीव हैं; इसलिये कुछ यहीं की बातें सुनना-सुनाना चाहते हैं। अच्छा लीजिए, ये कौन हैं? ये तो हैं भारतेन्दु हरिश्चंद्र! जो हिन्दी-साहित्य के बादशाह अकबर हैं। इनकी हँसी-ठोली और इनके दरबार का क्या कहना! इनके दरबार में न बीरबल के चुटकुलों की कमी है, न नवरत्नों की जगमगाहट की। यहाँ तो बात की करामात में ही साहित्य बन जाता है। और हँसी-हँसी में ही साहित्य समुद्र का मन्थन हो जाता है।

वे ऐसे अनूठे हास्यरसिक थे कि मरते दम तक परिहास से नहीं चूके। मृत्यु से कुछ समय पूर्व, जनाने से मजदूरिन उनकी तबीयत का हाल लेने आई। आपने हँस कर कहा—हमारे जीवन-नाटक का प्रोग्राम नित्य नया-नया छप रहा है—पहले दिन ज्वर का, दूसरे दिन दर्द का, तीसरे दिन खाँसी का सीन हो चुका, देखें, लास्ट नाइट कब होती है!'

आखिरी दिनों में जब भारतेन्दुजी आर्थिक कष्ट से पीड़ित थे, उन दिनों भी उनके मुख की हँसी ताजी ही रहती थी। उन्हीं कष्ट के दिनों में छत्तीस हजार रुपये उन्होंने अपने एक मुसाहब को सुरक्षित रखने के लिये दिये। एक दिन मुसाहब ने आकर रोते हुए कहा—हुजूर, मेरे यहाँ चोरी हो गई! आपके रुपयों के साथ मेरा भी सर्वस्व जाता रहा! भारतेन्दुजी ने मुस्करा कर कहा—तो रोते क्या हो, गया सो गया, यही गनीमत समझो कि चोर तुम्हें न उठा ले गये!

भारतेन्दुजी द्वारा लिखित और संकलित परिहासों का एक संग्रह बहुत वर्ष पहले 'परिहासिनी' नाम से निकला था। उस युग के चुटीले व्यंग्यों और हास्यविनोदों की जिन्हें झलक देखनी हो, वे इसको तलाश देखें। इसके अतिरिक्त, 'वसंतपूजा', 'वेश्यास्तोत्र', 'अँग्रेजस्तोत्र', 'कंकड़स्तोत्र', 'पाँचवें पैगम्बर', 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' इत्यादि हास्य-निबन्ध भी उन्होंने लिखे थे। स्वयं भारतेन्दुजी-द्वारा सम्पादित 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में उस युग के अन्यान्य हास्यरसिक साहित्यिकों की भी अनेक हास्यमयी कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं—मुन्शी ज्वालाप्रसाद की 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' मुन्शी कमलाप्रसाद का 'रेल का विकट खेल' शीर्षक हास्य आज भी पढ़ने योग्य हैं; किन्तु खेद है कि ये सब परिहास, पत्रों के पुराने चिथड़ों में ही गुदड़ी में लाल की तरह छिपे हुए हैं।

भारतेन्दु-काल के हास्यरसिकों में काशी के पं० रामशंकर व्यास और पं० अम्बिकादत्त व्यास भी अच्छे हास्य-लेखक थे। उदीयमान कहानी-लेखक पं० विनोदशंकर व्यास के पूज्य पिता भी बड़े परिहास प्रिय थे। एक बार उन्होंने 'पीयूष-प्रवाह' में बड़े ही मनोरंजक नौ प्रश्न किये

थे, जिनके बड़े ही मजेदार जवाब स्व० लाला भगवानदीनजी ने उस समय गया से निकलने वाली प्राचीन पत्रिका 'उपदेश-लहरी' में दिये थे। आज-कल ऐसी चीजें दुर्लभ हो गई हैं। अस्तु। बाहर के गण्यमान्य साहित्यिकों पर भी भारतेन्दु-काल के हास्यरस का प्रबल प्रभाव पड़ा। इनमें से स्व० पं० प्रतापनाराय मिश्र और स्व० पं० बदरीनारायण चौधरी इत्यादि हास्यरसिक लोकप्रसिद्ध हैं।

इधर भारतेन्दु के उत्तरकाल में भी हास्यरस भलीभाँति अग्रसर हो रहा है। हाँ, देश, काल और साहित्य की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल उसकी गति में परिवर्तन भी होता जा रहा है। उत्तरकाल के हास्यरसिकों में नवयुवक और वृद्ध, दोनों का ही संगम दर्शनीय है।

इन सम्मानित हास्यरसिकों में निम्नलिखित नाम द्रष्टव्य हैं—स्व० पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, स्व० जगन्नाथदास 'रत्नाकर', स्व० लाला भगवानदीन, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल, श्री प्रेमचन्द, श्री जयशंकर 'प्रसाद', बा० अन्नपूर्णानन्द 'निखट्टू', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', बा० कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'।

स्वर्गीय रत्नाकरजी भी बड़े हँसोड़ थे। कितनी भी झंझटों में क्यों न हों; पर आगन्तुक मित्रों से खिलते ही मिलते थे। बात-चीत में परिहास भी खूब करते थे। बिना परिहास के तो वे कोई बात ही नहीं करते थे। कलकत्ता-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर जब मुझसे भेंट हुई, तब बोले—'आप शरीर नहीं आत्मा ही-आत्मा हैं। जय हो आत्मदेव की!' अपनी कृतियों में भी यत्र-तत्र आपने अपने स्वभाव का परिचय दिया है।

स्व० लाला भगवानदीनजी हँसना और हँसाना, दोनों ही खूब जानते थे। बूढ़े शरीर में बड़ी जिन्दादिली छिपाये हुए थे। छोटा हो या बड़ा, सबका हँसी में हँसी मिला देते थे। यही नहीं, आप पूरे हाज़िर जवाब भी थे। मोटर पर आपकी अनूठी उक्ति देखिये—

अति प्रबला अति चंचला, सदा नेह आधार।
चक्रपाणि अनुगामिनी, रमा कि मोटरकार॥
बड़ी प्रबला है, नवला है, चंचला है सदा,
छोटे-छोटे नरन को दूरि ही भगावै है।
मोटे-मोटे नरन को छाती पै चढ़ावै नित्य
'दीन कवि' याही हेत मोटर कहावै है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल के गंभीर हृदय की निर्झरी भी कभी-कभी उनकी लेखनी से निर्गत होकर हास्य-साहित्य के गंभीर पृष्ठों में छहर जाती है। साहित्य के गहन आलोच्य प्रसंगों के बीच-बीच में उनके हास्य की मधुर कलियाँ यत्र-तत्र उसी प्रकार खिल पड़ती हैं, जिस प्रकार सन्ध्या के मौन गंभीर आकाश में विरल तारिकाएँ। उनकी भी कुछ झलक देखिए—

१—हवा से खेलने वाली स्त्रियाँ देखी नहीं, तो कम से कम सुनी तो बहुतों ने होंगी, चाहे उनको जिन्दःदिली की कद्र न हो।

२—एक कविजी ने कहा है—

'काजर दे नहिं, ए री सुहागिन!
आँगुरि तेरी कटैगी कटाछन।'

यदि कटाक्ष से उँगली कटने का डर है, तब तो तरकारी चीरने या फल काटने के लिये छुरी, हँसिया आदि की कोई जरूरत न होनी चाहिए।

३—बिहारी की नायिका जब साँस लेती है, तब उसके साथ चार कदम आगे बढ़ जाती है। घड़ी के पेंडुलम की-सी दशा उसकी रहती है।

औपन्यासिकवर श्री प्रेमचन्द भी बड़े हँसमुख हैं। हँसते समय दिल खोलकर हँसते हैं। उनके कहकहे से वायु-मण्डल गूँज उठता है। हास्यरस की आपने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उपन्यासों में भी कहीं-कहीं हास्यरस का अच्छा पुट देते हैं। 'काया-कल्प' में मुंशी वज्रधर के मुँह से तोंद की प्रशंसा में आपने खूब कहलाया है—

'यार ज़रा-सी कसर रह गई, तोंद के बगैर पंडित कुछ जँचता नहीं। लोग यही समझते हैं कि इनको तर माल नहीं मिलते, जभी तो ताँत हो रहे हैं। तोंदल आदमी की शान ही और होती है, चाहे पंडित बने, चाहे सेठ, चाहे तहसीलदार ही क्यों न बन जाय, उसे सब कुछ भला मालूम होता है।'

हिन्दी के अप्रतिम नाटककार श्री जयशंकर 'प्रसाद'जी

की सिफ़त ही निराली है। बनारस का साहित्यिक ठाट उन्हीं के रूप में भलीभाँति खिलता है। वह मस्तानी चाल, वह पान की लाली पर हँसी की रंगत, वह बात-बात में गूढ़ हास्य! चाहे जिस प्रसंग को उठा लीजिए, उस पर ऐसी खिलती हुई बात कहेंगे कि दिल बाग़ बाग़ हो जाय।

प्रेमचन्दजी और प्रसादजी की कृतियों में मुझे एक बड़ी मजेदार बात मिली है। प्रसादजी के नाटकों के विदूषक भोजन की सौंधी महँक का पता बहुत जल्द पा जाते हैं। इधर प्रेमचन्दजी के उपन्यासों के अनचले नायक खोमचे-वालों की मधुर आवाज तुरत सुन लेते हैं। इन दो कलाकारों की इस चटपटी रुचि में क्या रहस्य है?

श्री अन्नपूर्णानन्दजी 'निखट्टू' बड़े निखरे हुए हास्य-रसिक हैं; किन्तु आप खुलकर हँसते नहीं, बल्कि अपनी हँसी को भीतर-ही-भीतर लैमजूस की गोली की तरह चुभलाया करते हैं। आप निखट्टू हैं, इसीलिये भोज़न-भट्ट भट्टाचार्यों की नब्ज खूब पहचानते हैं। वल्लाह, किसी ने क्या खूब आप-जैसों के लिये भी कहा है—

वृथा ऐसे निखट्टू मर्दुए की रोश पर तुफ़ है।
निगोड़ा माँगता है जोरू से पैसा 'हजामत' का॥

'मेरी हजामत' के लेखक निखट्टू बाबू अपने इस सार्टिफिकेट को न जाने कैसा पसन्द करेंगे!

ख़ैर, इसमें कोई एक छटाँक भी संशय नहीं कर सकता कि इस समय हिन्दी-साहित्य में हास्यरस के सर्वोत्कृष्ट लेखक निखट्टू बाबू ही हैं।

अब तक हम लोगों ने पश्चिमीय प्लाटों के आधार पर हिन्दी के चौखटे में अनफिट परिहास का चित्र लगाने का प्रयत्न किया है अथवा किसी तरह हँसा देने के लिये लेखनी को कोंच मारा है; परन्तु निखट्टू बाबू के परिहास का लक्ष्य भारतीय समाज और साहित्य है। वे यहीं की भावभाषा और स्वाभाविक शैली में हमारी दुर्बलताओं पर ऐसी फबती हुई बात कहते हैं, कि हास्य के साथ ही वह हमारे हृदय में भी अपनी एक लकीर छोड़ जाती है। आपकी उपमाएँ और उक्तियाँ बिलकुल नवीन हैं। अन्य लेखकों की अपेक्षा आप अपने परिहास में अतिशयोक्ति कम करते हैं। अतिशयोक्ति-पूर्ण हास्य से पाठकों का मनोरंजन तो हो सकता है, किन्तु हृदय-मंथन नहीं।

निखट्टूजी की अब तक ये तीन हास्यकृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं—'मेरी हजामत' 'मगन रहु चोला' और 'महाकवि चचा।' इनके अतिरिक्त कुछ और भी मजेदार कृतियाँ छिपी-छिपाई रक्खी हुई हैं।

आप विद्यार्थी-जीवन से ही हास्यप्रिय हैं। 'हंस' के आत्मकथा अंक में आपकी 'काम की बात' पढ़ते ही बनती है। पाठक उसे भी इस लेख का उद्धरण समझ कर पूरा पढ़ जायँ। स्कूल की सातवीं कक्षा में पढ़ते समय पेट के ऊपर आपने जो अनुपम कविता लिखी है, यदि उसे कहीं बिहारी की आत्मा सुन पावे, तो रूह फड़क जाय—

नित रितवत नित के भरत जिमि चुअना कंडाल;
इति न होत अति अजब गति, पेट गजब चंडाल।

'मेरी हजामत' के 'ब्राह्मण-भोजन' शीर्षक परिहास में भूखे पेट की हलचल भी देखते ही योग्य है। दो बजे तक ब्राह्मण देवता का रास्ता देखते-देखते जब घर-भर और सब नौकर-चाकर बौंडियाने लगे तब, आपने एक-एक को बुलाकर उनके पेट की बात पूछनी शुरू की।

छोटे भाई ने कहा—मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पेट में चौरीचौरा-काण्ड का अभिनय हो रहा है।

नौकर ने कहा—हमके निरफुले ऐसन बुझात हौ कि पेटवा में जैसे कौनो घसियारिन खुरपी चलावत होय।

दूसरे नौकर ने कहा—हामैं तो ऐसन जनात हौ कि जैसे कौनो मिला पेटे में बर्रे क छत्ता खोद दिये होयँ।

ड्योढ़ीदार ने कहा—हमका तो साहब ऐसा समुझ परत है कि देहिया के बीच पेटे में कौनो सरवा डिगरीदार कुड़की कराय रहा है।

लघुसिद्धान्त कौमुदी के एक विद्यार्थी ने कहा—मुझको तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रलय को निकट समझ कर भगवान शंकर मेरे पेट में ताण्डव नृत्य का अभ्यास कर रहे हैं।

इसीलिये तो 'महाकवि चचा' ने साफ़-साफ कह दिया है—

बैल बने पै मिले दुरबा कि
मिले सुरबा बनि मोमिन मुल्ला,
रंक बने रिरकौं बिनु अन्न

कि राउ बनौं करि दुधन कुल्हा,
माँड़ मिलै कि मिले दधि-माखन
खाँड़ मिलै कि मिलै रसगुल्ला,
पेट अनन्त रहै नित नूतन
और सबै बिनसै जिमि बुल्हा,

तभी तो काशी से भागकर अन्तिम समय में उन्होंने मथुरा के चौबों के बीच में शरण ली थी। विश्वास न हो, तो पं० बनारसीदास चौबे से पूछ लीजिए।

श्रीनिखट्टू बाबू भारत के सामयिक प्रसंगों पर भी बड़ी चुभती हुई चुटकी लेते हैं, यथा—

१—जम्बू नामक द्वीप के भारतवर्ष नामक खंड में—अवध के ऊपर और तराई के नीचे—हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ स्थान है, जिसका नाम है बहराइच। .....एक अर्ध-शास्त्री ने पता लगाया है कि जितना फूल यहाँ गाजोमियाँ की दरगाह में प्रतिवर्ष हिंदू-स्त्रियाँ चढ़ाती हैं, उन्हें बटोरकर यदि उनसे शहद निकाला जाय, तो इतना काफी शहद तैयार हो सकता है कि हिन्दू-महासभा उसे अपने प्रस्तावों में लगाकर सदियों तक आनन्द-पूर्वक चाट सकती है।

२—हिन्दी उर्दू पढ़े, पढ़े कुछ ए. बी. सी. डी.,
दफ़तर में घहरायँ खेत में जैसे टीडी।

३—पिल्ला लीन्हें गोद में मोटर भइ असवार,
अली, भली घूमन चलीं किये समाज-सुधार।
किये समाज-सुधार हवा योरप की लागी,
शुद्ध विदेशी चाल-ढाल सों मति अनुरागी।
मियाँ मचावैं सोर करैं अब तोबा-तिल्ला,
पूत धाय के गोद खेलावैं बीवी पिल्ला॥

४—बेटा सीख सोहावनी घर में बैठे खाहु,
गुन अनुभव के कारनै दूर देस जनि जाहु।
दूर देश जनि जाहु नहीं तुम कुली खलासी,
उत्तम कुल में जनम अहौ पुनि भारतवासी।
क्या लन्दन क्या रोम कहा फिर काबुल क्वेटा,
संग फिरै तकदीर चलौ घर बैठो बेटा!

निखट्टूजी के मित्र बाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़ भी 'बेढब' रसिया हैं। आपका कमरा बनारसी गप्पों का अखाड़ा है। हँसी का दंगल आपके यहाँ रोज सुबह-शाम होता है। आपकी हँसी में गुड़ की तरह गाढ़ापन रहता है। हिन्दी में इलाहाबादी अकबर की आत्मा को जिन्दा रखने का श्रेय आपही को है। छोटे-बड़े सामयिक विषयों पर आप बड़ी रसदार टुटकियाँ लेते हैं, खास कर आज-कल के अप-टु-डेट फैशन और नई-नई इश्कबाजी पर। यहाँ दो-चार अश-आर आपकी नजर है—

१—'बेढब' एहि संसार में कबहुँ न मिलि है धाय;
का जाने केहि भेप में सी. आई. डी. मिलि जाय।

२—मुँह मुड़वाने का जबसे शौक़ पैदा हो गया;
हजरते मजनू का चेहरा मिस्ले लैला हो गया।

३—बॉल में देखा मिसों के साथ उनको कूदते,
डारविन साहब की थ्योरी का खुलासा हो गया।

४—क्रिश्चियन मिस व्लेक पर मगरूर है;
बाबुओं के वास्ते वह हूर है।

५—अगर खटमल बना देते हमें गाड;
उसी खटिया में हम भी जाके बसते।
जहाँ वह मस्त होकर आके पड़ते;
व सारी रात उनसे हम लिपटते।

६—रेज़े हुए ज़िगर के, है तार-तार टूटा;
आशिक की जिन्दगी भी, साड़ी बनारसी है।

७—न फाउनटेन पेन न ऐनक है न कॉलर है न नेकटाई;
भला इनको कहेगा कौन काबिल देखते जाओ।

८—सैकड़ों तसवीर खिंच कर मिट गईं;
उनका दिल है या कोई स्लेट है।

९—भारतवासिन की रही नहीं जगत में पूछ;
जैसे चेहरे से उड़ी है युवकों की मूछ।

अब लगे हाथों अपनी भी बात कह दूँ। अपने राम हँसने-हँसाने की कला में दक्ष नहीं हैं; किन्तु छिड़ जाने पर बेतुके भी नहीं रहते, उस समय मनहूसियत को कालेपानी या साइबेरिया भेज देते हैं।

काशी के तीर्थाध्यक्ष

लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

अनादि काल से ज्ञान का विस्तार करने के लिये ही तीर्थों की सृष्टि हुई थी। देशाटन का भाव भी इसमें निहित था। सभी तीर्थों का महत्व किसी-न-किसी महापुरुष अथवा देवता के नाम से संबद्ध है। इन तीर्थों में काशी से भी कोई प्राचीन तीर्थ है, नहीं कहा जा सकता। इसकी प्राचीनता का प्रमाण यही है कि वैदिक ग्रंथों में भी इसकी चर्चा है। बौद्धकाल के मगध, कोशल आदि जन-पदों की तालिका में भी इसका नाम है। अतीत में, जब कि काशी आनन्दवन के नाम से प्रख्यात थी, इस स्थान पर केवल गृह-त्यागी मुमुक्षु ही निवास करते थे और अपने जीवन के संध्याकाल में शान्तिपूर्वक अनन्त का आलिंगन करने की कामना से भी लोग यहाँ आ जाया करते थे। 'काशीवास' इसी का वर्तमान रूप है। इसी कारण इसे महाश्मशान कहते हैं। 'अविमुक्तक्षेत्र (काशी) का भगवान् शंकर कभी त्याग नहीं करते, 'येषांक्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः' 'काश्यां मरणान्मुक्तिः' इत्यादि वचनों द्वारा काशी का महत्व अन्य तीर्थों की अपेक्षा अधिक बढ़ गया और यहाँ आने वाले यात्रियों की संख्या में भी अभिवृद्धि हुई।

इस प्रकार जब तीर्थ-यात्रियों की संख्या में वृद्धि हुई, तो तीर्थ-पुरोहितों का होना अनिवार्य हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन तीर्थ-पुरोहितों की सृष्टि आगंतुक जनता के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई। यात्रियों को तीर्थ में ऐसे स्थानों की तथा ऐसे आदमियों की बड़ी आवश्यकता थी; जहाँ वे बिल्कुल घर की तरह रह सकें तथा जिन पर वे पूर्ण विश्वास कर सकें और धर्म समझ कर दान रूप में उन्हें इसका बदला दें। इसीलिये तीर्थ-पुरोहितों की उत्पत्ति हुई और वे भिन्न-भिन्न तीर्थों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे गये। जिस प्रकार गया के पुरोहित गयावाल, प्रयाग के प्रयागवाल कहे जाते हैं, उसी प्रकार काशी का तीर्थ-पुरोहित-मंडल गंगापुत्र कहलाता है। पहले गंगा की पूजा लेने के कारण ये गंगा-पूज्य कहलाते थे; परन्तु बाद में इस दृष्टि से कि गंगा ही माता के समान इन लोगों का पोषण करती हैं, ये अपने को गंगापुत्र कहने लगे। किसी समय इन गंगापुत्रों की कौटुम्बिक संख्या एक हज़ार तक पहुँच गई थी; परन्तु इस समय तो अँगुलियों पर गिनी जा सकती है।

मध्यकाल में जब कि रेल आदि का अभाव था, तथा यात्रा भी आपत्ति से खाली नहीं थी, ये पुरोहितगण पचास-पचास साठ साठ आदमियों की टोली बनाकर निकलते थे और दूर-दूर से यात्रियों को तीर्थयात्रा कराने ले आते थे; अतः ठगों और डाकुओं से बचाते हुए यात्रियों को तीर्थ में लाने और ले जाने में कितना श्रम अपेक्षित था, इस समय इसकी कल्पना भी कठिन है।

इस तरह बढ़ते-बढ़ते इनकी पुरोहिती हिन्दुओं तथा हिन्दू-राजा महाराजाओं तक ही सीमित न रही; इनकी पहुँच दिल्ली के सम्राटों तक हुई। मणिकर्णिकाघाट पर एक 'चक्रपुष्करणी' कुंड है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति विष्णु के चक्र-द्वारा हुई है। कहा जाता है कि शिव-पार्वती यहाँ एक बार विहार कर रहे थे। उस समय उमा के कानों का कुंडल गिर गया। बहुत खोजने पर भी न मिला। तब विष्णु ने चक्र-द्वारा खोद कर कुंडल निकाला और यह कुंड बना। इसी कुंड की पूजा के लिये प्रसिद्ध सम्राट् शेरशाह ने मणिकर्णिका के राज-भोग के लिये कुछ गाँव दिये थे। सम्राट् अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ के फर्मान एक पुरोहितजी के पास हैं, जिनमें पुरोहितजी के पूर्वजों को तहसील चन्दौली के सब गाँव दिये गये हैं और लिखा है कि इनसे किसी प्रकार का कर इत्यादि न लिया जाय, तथा यह भी आदेश है कि वे इसके बदले में सम्राट् एवं साम्राज्य के लिये दुआ करें। इस समय काशी के तीर्थ-पुरोहितगण विद्या, बल, विभव इत्यादि से सब प्रकार संपन्न थे।

भारत में अङ्गरेजी राज्य की जड़ जम चुकी थी। यहीं से इनकी अवनति का युग प्रारम्भ हुआ। बाहर के दक्षिणी, बंगाली इत्यादि सज्जनों ने—जो यहाँ आकर बस गये थे—पुरोहिती प्रारम्भ कर दी। अपने-अपने देश के यात्रियों को अपने यहाँ ठहराना आरम्भ किया। यात्री भी अपने देश के, अपनी ही भाषा बोलने वाले के यहाँ क्यों न ठहरते? इधर

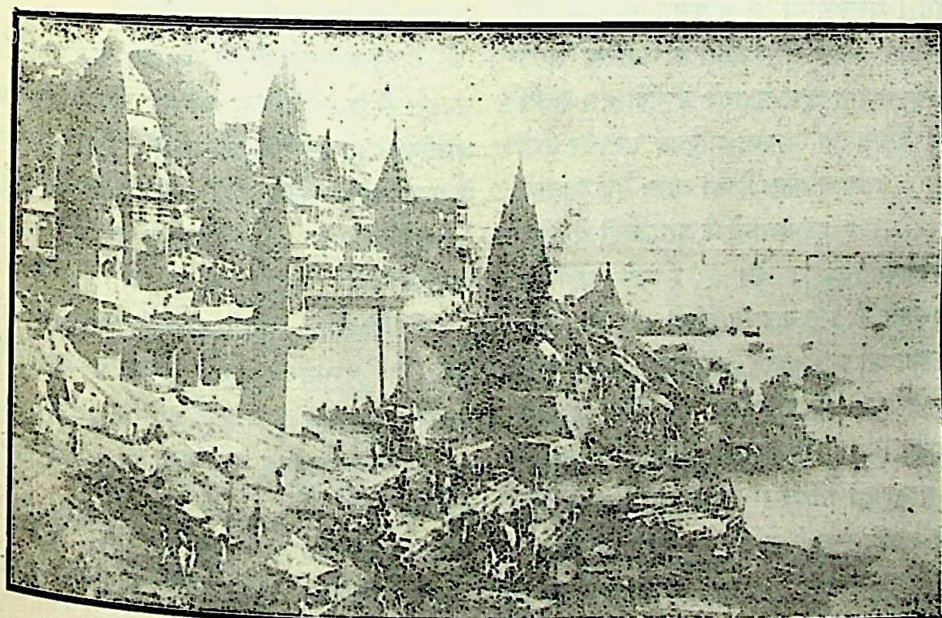
अन्य ब्राह्मणों ने भी, जिनका कार्य केवल यात्रियों को मंदिर-दर्शन कराना एवं घुमाना था, पुरोहिती पेशा अख्तियार किया। इधर असली तीर्थ-पुरोहितों में आपस की फूट उनकी सफलता का कारण बन बैठी। इस समय कुछ यात्रावालों ने अपनी शक्ति और वैभव इतना बढ़ा लिया है कि तीर्थ-पुरोहितों की एक बड़ी संख्या उनकी अनुचरी बन कर अपना पेट पाल रही है। इतना होने पर भी आजकल तीर्थाध्यक्ष तीर्थ-पुरोहित ही हैं। यह दो धक्के ही काशी-स्थ पुरोहित-समाज को नष्ट कर देने के लिये पर्याप्त थे; किन्तु एक चौथे प्रकार के पुरोहितों की उत्पत्ति ने तो उन्हें जनता की दृष्टि ही से गिरा दिया और पुरोहित-मंडल स्त्रियों को भगाने वाला और यात्रियों का सर्वस्व लूट लेने वाला प्रसिद्ध हो गया।

उत्तर भारत में एक 'भंड़ेरिया' नामक समाज है, जिसे भंडर भी कहते हैं। इनके कार्य-कलाप बड़े ही विचित्र अथच शूद्रों से भी गये बीते हैं। इनके यहाँ यज्ञोपवीत इत्यादि का भी कोई नियम नहीं। जब इच्छा हुई-बाज़ार से दो पैसे का जनेऊ लिया और गले में डाल लिया। यहाँ तक कि जाड़े के दिनों में भस्म इत्यादि के अभाव में बीड़ी पीकर उसकी राख मस्तक में लगा लेना भी इनके यहाँ कुछ अनुचित नहीं माना जाता। पहले ये शनैश्चर का दान लेते थे और अब एक प्रकार से तीर्थ पुरोहिती ही कर रहे हैं। यात्रियों के वस्त्र तक उतरवा लेना इनका प्रति-दिन का व्यवसाय है। इन्होंने अपना काम चलाने के लिये बड़े ही अद्भुत शब्दों की सृष्टि कर ली है। पान के लिये 'बरँगा' शराब के लिये 'लेख' यात्री के लिये 'माँझा' पुलिस के लिये 'खोटर' और चोर के लिये 'रगुल' शब्द इनके शब्द-कोष के नमूने हैं। ये अच्छी तरह जानते हैं कि एकबार जो यात्री इनके पंजे में फँसा, फिर इनके हाथ लगने वाला नहीं; अतः निर्दयता-पूर्वक एक बार ही उससे वसूल कर लेने का प्रयत्न करते हैं। मंदिर का पुजारी, पंडा कहलाता है, तीर्थाध्यक्ष पुरोहित, घाट पर बैठने वाला घाटिया और दर्शन कराने वाला यात्रावाल। यह भेद नवागंतुक यात्री नहीं जानते, वे सभी को पंडा समझते और कहते हैं। यही कारण है कि इनके द्वारा सताए जाने पर वे बदनाम करते हैं तीर्थ-पुरोहितों ही को। इस समय भंडरों की बहुत बड़ी संख्या काशी में वर्तमान है और इनका परिवर्तित नाम है—'जोषी पंडा'। ये स्टेशनों तक दौड़ लगाते हैं। अधिकारियों के पूछने पर कहते हैं कि हम यात्रावाल हैं। यद्यपि यात्रावाल बन कर भी इनको स्टेशन तक जाने की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि यात्रावालों का काम है—पुरोहितों के यहाँ से यात्री ले जाकर दर्शन कराना।

काशी का एक प्रसिद्ध मंदिर है—काशी करवट। कुछ दिनों पूर्व यह एक अहीर के अधिकार में था; किन्तु इस समय यह श्री किशोरीलाल उपाध्याय (तीर्थ पुरोहित) के मकान में है। फिर भी यहाँ के प्रधान पुजारी भंडर (जोषी पंडा) ही हैं। यहाँ दो खंड का एक प्राचीन तहखाना है, उसमें एक शिवलिंग है। तहखाने का रास्ता बंद रहता है और उसकी ताली चौक थाने में रहती है। केवल प्रति सोमवार ताली दो तीन घंटे के लिए मिलती है और तब तहखाने की सफ़ाई होती है। कहा जाता है कि पहले यहाँ कोई 'आरा' था। जायसी का 'करवत तपा लेहि होइ चूरू' तथा सुकवि शीतला का 'काशी करवट के आरों पर' यह साबित करता है। प्राचीन काल में काशी-करवट का आरा पर्याप्त प्रसिद्ध था। इस आरे पर मोक्ष के इच्छुक यात्रीगण गिरकर या गिराए जाकर जान देते थे। नहीं कहा जा सकता कि यह तहखाना कितनी निर्मम हत्याओं का, कितने भयंकर रहस्यों का मूक साक्षी है। यहाँ पर कपूर छोड़कर दर्शन किया जाता है, यद्यपि अन्दर बिजली की बत्ती लगी हुई है। भंडर यात्रियों के हृदय में इसकी महिमा की छाप इस प्रकार देते हैं—'जब नौरंगजेब बादशाह विश्वनाथजी को छूने आया, तो बाबा इसी कुएँ (तहखाने को वे कुआँ कहते हैं) में कूद पड़े। देख न लो, इतना अब खोदा जाय, तो पानी निकल आये। बाँझिन को पूत, कोढ़ी को काया, दरिद्री को धन सब कुछ यहीं मिलता है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष जो कुछ माँगना हो, कपट छोड़कर माँग ले।' यहाँ पर जिस मंत्र से दान कराया जाता है, ज़रा उसकी भी बानगी लीजिये—'काशी, पाप नासी, बरना, पाप हरना, दादा के नाम, दादी के नाम…… …रुपया दिया—हो बाबा भोलेनाथ साक्षी रहना।' यद्यपि तीर्थेश महासभा के प्रबन्ध तथा श्री किशोरीलालजी के सुविचार से कुछ सुधार हुआ है, फिर भी

अभी जो कुछ है, वह देखने ही की वस्तु है, लिखने की नहीं।

एक ओर अनधिकारियों द्वारा इस प्रकार यात्रियों का धन-धर्म लिया जाता है, दूसरी ओर अधिकारी क्या करते हैं, वह भी देखिये। तीर्थाधिकारी काम सम्हालने के लिये कुछ आदमी रखते हैं, जिन्हें वे 'रोज़गारी' कहते हैं। ये रोज़गारी जिसके यहाँ रहते हैं, उसके यात्रियों को स्टेशन से उसके पास ले आते हैं। उस पुरोहित का यदि वह पुराना यात्री है, तब तो 'रोज़गारी' को केवल उसे उनके यहाँ तक पहुँचा देने का पुरस्कार-मात्र प्राप्त होता है; किन्तु यदि यात्री नया है, तब रोज़गारी महोदय पुरोहित से टिकट खर्च, इक्का भाड़ा और यात्री से प्राप्त धन का आधा ले लेते हैं। अब अवशेष आधी रकम में पुलिस भी 'हक' माँगती है। यात्री के लिए रोशनी आदि का प्रबन्ध पुरोहितजी को करना पड़ता है। जिस घाटिए के घाट पर वह यात्री नहाता है, उसे भी कुछ देना पड़ता है। इस प्रकार अब जो कुछ बचे, वह पुरोहितजी लें। सम्पन्न श्रीमानों को छोड़कर यात्रियों का साधारणतया दान रुपये-सवा-रुपये तक ही होता है। इस प्रकार पुरोहित को तीन रुपये में ६ आने से लेकर दस आने तक अपने लिये प्राप्त होता है। ऐसी दशा में रहने पर भी अविद्या एवं फूट के कारण आपस का कलह बहुत बढ़ गया है, जिसके कारण इनके धन, बल और सम्मान तीनों का नाश हुआ और दिन-प्रति दिन होता जा रहा है। अपने समाज की यह दशा देखकर स्वर्गीय श्री छन्नूलालजी पाठक तथा पंडित महावीरप्रसादजी मिश्र आदि के सदुद्योग से तीर्थेश महा-सभा की स्थापना हुई; किन्तु समाज से पर्याप्त सहयोग एवं सहायता न प्राप्त होने के कारण सभा को असमय में ही हाथ-पैर सिकोड़ लेना पड़ा। इनका बल आपस की लड़ाई में और धन अदालतों में नष्ट हो रहा है। इस समय जब कि संसार की सभी जातियाँ, सभी समाज आगे बढ़ रहे हैं, काशी के तीर्थपुरोहितगण जहाँ थे वहाँ से भी पीछे ही खसक रहे हैं।



मणिकर्णिका घाट

काशी के निवासियों की विशेषताएँ

लेखक—श्रीयुत कृष्णलाल मेहता

'काशी विश्वनाथजी के त्रिशूल पर स्थित है' यह कथन स्वयं काशी के निवासियों की एक विशेषता है। ऊँची दीवारों से घिरे और काल कोठरी के समान बंद काशी निवासियों के निवास-स्थान भी एक प्रकार की विशेषता रखते हैं।

काशी की प्राचीन बस्ती में निवास की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। ये निवास-श्रेणियाँ भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों-द्वारा रची गई थीं और वर्तमान काल में भी वे प्राचीन श्रेणियाँ उसी संगठन और शक्ति के साथ बहुत कुछ अंशों में वर्तमान हैं। जिस क्रम से गुजराती, महाराष्ट्र, बंगाली, पंजाबी तथा अन्य लोग आने लगे, उसी क्रम से उन्होंने अपनी भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ बनालीं। निवास की भिन्न-भिन्न श्रेणियों का प्रमाण 'बंगालीटोला' 'लाहौरीटोला' तथा अन्य पक्के महाल हैं।

एक और विशेषता—जो इन पक्के महालों के रहने वालों में चली आती है—यह है कि उन्होंने कभी मुसलमान भाइयों को अपने महालों में निवास करने की अनुमति नहीं दी। इसी कारण पक्के महालों में मुसलमान नहीं रहते। मुसलमानों के आक्रमण-काल में और उनके राज्यकाल में भी—जब मुसलमानों का ही सब जगह बोलबाला था—मुसलमान इन महालों में नहीं बस सके। केवल इन महालों में यत्र-तत्र अपनी मस्जिदें बनाकर उन्हें सन्तुष्ट होना पड़ा। वर्तमान काल में भी प्रायः पक्के महालों के लोग जल्दी अपने मकान मुसलमानों के हाथ नहीं बेचते।

एक खास विशेषता उनका वेष है, जिससे यहाँ के निवासी पहचाने जाते हैं,। इन मस्त जीवों को कदाचित सिर पर टोपी रखना भी भारी ज्ञात होता है। यही क्यों, बेचारे सौन्दर्य-वृद्धि की एक प्राकृतिक देन केशों को भी नहीं सम्हाल सकते। अब तो समय में विशाल परिवर्तन दीख पड़ता है; परन्तु तो भी सिर घुटाये और तेल से उसे चमकाये रहने की अजीब छटा अब भी बहुतायत से दृष्टि-गोचर होती है।

सिर मुड़ाया भला किया, बेल तरे मत जाना।
बेल गिरेगा सिर फूटेगा, गुड़ चिवड़ा मत खाना॥

यह ऊपर लिखा पद किसी परदेशी ने ही काशी-निवासियों को चेतावनी के ढंग पर कहा होगा।

इन काशी-निवासियों को, एक कुरता और पूरी धोती तो दूर रही, एक छोटी धोती भी भारी प्रतीत होती है; क्योंकि ये बेचारे मानव-सभ्यता पर मानों महा उपकार करते हुए, जो एक छोटी धोती या लंगोटी पहनते हैं, उसे भी—असहनीय होने के कारण—एक विचित्र और असभ्य सीमा तक ऊपर चढ़ा लेते हैं। उन्हें यह विचार करने की फुर्सत ही कदाचित् अपने मस्त मंगलमय जीवन में नहीं मिलती, जिसमें वे यह विचार सकें कि वे अपने सुभीते के पीछे कितने असभ्य हो जाया करते हैं। वे यह भी ध्यान नहीं रखते कि रास्ते में सभ्य घर की स्त्रियाँ तथा उनकी माँ बहनें और बच्चे आदि भी चलते हैं।

कपड़ों पर साफा देना—कपड़े धोना—भी यहाँ की एक विशेषता है। जब साफा देने लगते हैं, तब मालूम होने लगता है कि बेचारे कपड़े का अन्त शीघ्र ही आ जायगा। वे अपने कपड़े पर साबुन लगाकर उसपर खूब हाथ साफ करते हैं।

आराम-तलबी में ये मुगल बादशाहों और अवध के नवाबों से कुछ नम्बर बढ़ कर ही होते हैं। भारत-भूषण, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने अपनी 'प्रेम-योगिनी' नाटिका में एक परदेशी के मुख से ठीक ही कहलवाया है—

'लोग निकम्मे, भंगी, गंजड़, लुच्चे, बे विसवासी,
महाआलसी, झूठे, सुहदे, बे फिकरे बदमासी।'

मैं भी अपने अनुभव से बाबू साहब-द्वारा कहलाये हुए सत्य का अनुमोदन करता हूँ। इन आलसियों को अगर आलस्य छोड़कर काम करने को कहा जाय, या कुछ शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी जाय, तो तुरन्त एक तत्वज्ञानी की तरह कह उठेंगे—

'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, कि सबके दाता राम॥'

या

'जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं।

जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं ॥
तब फिर दंत कटाकट किं करतव्यं।'

काशी-निवासी बड़े आनंदी जीव होते हैं। ये अपने में ही मस्त रहते हैं। ये लोग अनेक प्रकार के आनन्दोत्सव मनाया करते हैं; जैसे—होलिकोत्सव, वसंतोत्सव आदि। सबसे अधिक उत्सव मेरी समझ में काशी-निवासी ही मनाते हैं।

एक्के-बाजी, नाव-बाजी, कबूतर-बाजी वगैरह भी यहाँ के निवासियों के विशेष शौक हैं। इनकी एक्के-बाजी प्राचीन समय के रथ की साहस-पूर्ण दौड़ का स्मरण दिलाती है। कुछ लोग, जो विदेश में होने वाली मोटरों की दौड़ों से उनके विशेष साहस-पूर्ण कार्य का उदाहरण देते हैं, वे अगर इन एक्के-बाजों के साहस को तौलें, तो देख सकते हैं कि ये भी विशेष साहस रखते हैं। ये एक्के-बाज अपनी जान हथेली पर रखे रहते हैं। यहाँ की नाव की दौड़ में भी साहस और शक्ति का एक सफल प्रदर्शन होता है। कबूतर-बाजी-द्वारा ये एक सेनापति के समान युद्ध-कौशल की एक हलकी झलक अपने कबूतर की टुकड़ियों-द्वारा दिखला देते हैं। इन लोगों के कबूतर-बाजी के चाव से और इनके कबूतरी-सेना के संचालन में प्रचलित दावों-पेचों से कदाचित् वायुवानों के सेनापति अच्छा पाठ पढ़ सकते हैं।

यहाँ के अधिकतर रईसों को निद्रा, आलस्य और विशेषकर चिट्ठेबाज़ी से अधिक प्रेम रहता है। ये पूरे कूप-मण्डूक होते हैं। इनको अपने शौक़ या दूषणों के आगे दुनिया के दूसरे समाचारों की जानकारी प्राप्त करने का समय ही नहीं मिलता। इन रईसों की प्रशंसा में नीचे लिखे शेर ठीक लागू होते हैं—

दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा,
मर जाना पे उठ के कहीं जाना नहीं अच्छा।
धोती भी पहनें जब कि कोई ग़ैर पिन्हा दे,
उमरा को हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
सिर भारी चीज़ है इसे तकलीफ़ हो तो हो,
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा।
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या,
ऐ मीरे फ़र्श रंज उठना नहीं अच्छा।

इस नगरी में ऐसे कई हज़ार संस्कृत के विद्यार्थी पढ़ते हैं, जो क्षेत्रों में भोजन करते और मठों में सोते हैं—'छत्रे भोजन मठे निद्रा।' इन विद्यार्थियों में से बहुतेरे दूकानदारों से कुछ रुपया-पैसा पाकर रात को उनकी दुकानों की रखवाली करते और सड़क की बत्तियों के नीचे बैठ कर रात को अध्ययन करते हैं। यह ऐसी बात है, जो दूसरी जगहों में देखने को नहीं मिल सकती।

पान और सुरती का प्रयोग यहाँ की खास विशेषता है। और शहरों में भी लोग पान सुरती खाते हैं; परन्तु काशी-निवासियों जितना नहीं। और-और शहरों या देशों में जब कोई मिलने आता है, तो लोग चाय, हुक्का या सिगरेट वगैरह से उसका सम्मान करते हैं; परन्तु यहाँ उनका सम्मान पान और सुरती के द्वारा ही विशेषकर किया जाता है।

यहाँ होली में हिन्दू-मुसलमानों की एकता का अच्छा दृष्टान्त मिलता है। मुसलमान अकसर रंग भी खेलते हैं और एक प्रकार का शेर, जिसे खम्सा कहते हैं, गाते हैं। यहाँ के मुसलमान रंग के प्रति और जगहों के मुलसलानों-जैसी घृणा नहीं प्रकट करते।

यहाँ के लोगों की जो एक बहुत बड़ी विशेषता है, वह यह है कि वे काशी-नरेश से अपने ही राजा के समान प्रेम करते हैं। हालाँ कि काशी अंगरेज-सरकार के राज में है, तिसपर भी यहाँ के निवासी महाराज को देख कर 'महादेव-महादेव !' का अपूर्व घोष करते हैं। नाटी इमली के भरत-मिलाप के समय महादेव-महादेव !' के तुमुल नाद से वायुमंडल गुञ्जित हो उठता है।

दिल्ली-दरबार में भी काशी-नरेश के पधारने पर काशी-निवासियों-द्वारा घोषित 'महादेव ! महादेव ! के आदर-सूचक शब्दों ने क्षण-भर के लिये लोगों में हलचल मचा दी थी।

परन्तु समय परिवर्त्तनशील है। पश्चिमीय सभ्यता के विजयी-विस्तार से काशी भी अपने को निःस्पर्श न रख सकी; परन्तु, इस परिवर्त्तन में भी काशी-निवासियों की यह विशेषता है कि वे और जगह के निवासियों के मुकाबिले बहुत ही धीमी चाल से पश्चिमीय सभ्यता को ग्रहण कर रहे हैं।

हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी की कुछ विशेषताएँ

लेखक—श्रीयुत प्रो० मनोरञ्जनप्रसाद, एम० ए०

'येषां क्वापिगतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः।' मैं असहयोग-आन्दोलन का थका हुआ सैनिक, फिर पढ़ना चाहता था। यह सन् १९२४ की बात है। आन्दोलन उस समय स्थगित हो चुका था। सिवाय खादी और कौंसिल के और कोई काम नहीं रह गया था। राष्ट्रीय शिक्षा का स्वप्न भी नष्ट-प्राय हो चुका था। फिर कहाँ जाऊँ, जहाँ अच्छी शिक्षा मिल सके, और साथ ही अपनी स्वतन्त्रता में कोई बाधा भी न हो। गवर्नमेंट कॉलेज का ख़याल करके काँप उठता था। मैं वहाँ के बन्धन कैसे बर्दाश्त कर सकूँगा और फिर इतने दिनों बाद इतने पुराने पापी को वहाँ लेगा ही कौन? मेरे मित्रों ने हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ने की राय दी। मैं वहाँ गया, तो उसे देखते ही चित्त प्रसन्न हो उठा। सुन्दर दिव्य स्थान, जहाँ खुली हवा के साथ सभी स्वतन्त्र विचरण करते हैं। मैं डरता-डरता पूज्य प्रो० श्यामाचरण से मिला। 'मैंने असहयोग-आन्दोलन में भाग लिया था।' उत्तर मिला—'कोई हर्ज नहीं, इसका जिक्र कर देना।' मैं आनन्द से फूल उठा। आश्चर्य भी हुआ कि इस देश में ऐसे भी विद्यालय हैं, जहाँ अँग्रेजी शिक्षा मिलती है; किन्तु असहयोग में भाग लेना कोई गुनाह नहीं समझा जाता। मेरे लिए यह नई बात थी। मुझे सचमुच राष्ट्रीय विद्यालय मिल गया और मैंने सानन्द अपना नया जीवन प्रारम्भ किया।

मुझे पहले-पहल यहाँ के फ़ोर्थ होस्टल में जगह मिली। विश्वविद्यालय की साधारण भाषा में इसे अस्तबल कहते हैं। उस अस्तबल के दारोगा थे प्रो० (अब डाक्टर) यदुनाथप्रसाद, जो इन दिनों आगरा कॉलेज में हैं। उनके साथ मुझे एक साल रहना पड़ा और मैं वहीं रह कर अपनी पढ़ाई में लग गया। पब्लिक उछलकूद से तबीयत भर गई थी। अस्तु, शुरू-शुरू मैंने यहाँ की साधारण कार्रवाइयों में भाग नहीं लिया; किन्तु Addison (एडीसन) के Mr. Spectator (मि० स्पेक्टेटर) के समान बैठा-बैठा चुपचाप विश्वविद्यालय की गति-विधि देखता रहा। उसके बाद तीन साल तक मैं फ़र्स्ट होस्टल के 'ए' ब्लॉक में रहा और वहीं मैंने अपना विद्यार्थीजीवन समाप्त भी किया। मेरे अग्रजतुल्य स्वर्गीय प्रो० इन्द्रदेव तिवारी उस समय वहाँ के वार्डन थे और उनका मुझ पर असीम स्नेह था। उन चार वर्षों में मेरा जो अनुभव हुआ और उसके बाद फिर अध्यापक रूप में मुझे जो यहाँ का अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला, उसी अनुभव के सहारे आज हिन्दू-विश्व-विद्यालय की विशेषताओं के विषय में कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

सबसे पहली विशेषता जो इस विश्वविद्यालय की है, वह है इसका उन्मुक्त वायुमंडल। इतनी खुली हवा, इतने हरे-भरे मैदान, ऐसे सुन्दर मकान और कहाँ मिलेंगे! शहर के कोलाहल से दूर, धूल और धुएँ के अत्याचार से रहित ऐसा स्थान और कहाँ है! जहाँ खेलने के लिये इतने मैदान हैं, घूमने के लिये इतनी सड़कें हैं, पढ़ने के लिये इतनी किताबें हैं, पढ़ाने के लिये इतने अध्यापक हैं, वहाँ भला किसकी तबीयत नहीं लगेगी। एक साथ ही इतने विद्या-व्यसनी लोग कहाँ मिलेंगे! इतना बढ़िया प्लेन, इतने सुन्दर दृश्य और कहाँ देखने में आ सकते हैं! यहाँ आते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। मेरे बहुत से मित्र, जो सुदूर विदेशों की यात्रा कर आये हैं, वे भी बतलाते हैं कि इतना प्रशस्त प्लेन और इतना अधिक विस्तार संसार के अन्य किसी भी विश्वविद्यालय का नहीं है।

दूसरी बात जो किसी भी दर्शक पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती, वह है इसका विशाल राष्ट्र-रूप। इस एक ही स्थान में सारे भारत के प्रतिनिधि वर्तमान हैं। सुदूर सीमाप्रान्त से लेकर सीलोन तक के, सिन्ध से लेकर आसाम तक के। इतना ही नहीं, कुछ विद्यार्थी तो यहाँ समुद्र-पार से भी आते हैं। मेरे सामने ही यहाँ एक मॉरिशस का, एक फ़िज़ी का और एक पूर्व अफ्रीका का विद्यार्थी था। एक साथ ही सारे प्रान्तों का सम्मेलन कितना अद्भुत, कितना सुखकर है। आप यदि सन्ध्या-समय इसकी सड़क पर निकल जायँ, तो कांग्रेस-नगर या स्वराज्य-नगर का-सा दृश्य देखने में आएगा। कहीं बंगालियों का दल है, तो कहीं

मराठों की मंडली ; कहीं पञ्जाबियों का समूह है, तो कहीं दक्खिन वालों की कतार । ऐसा मधुर मिलन और कहाँ है। एक जगह बैठकर हमें भारत के सारे प्रान्तों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलता है । उनकी चालढाल, उनके रस्मोरिवाज, उनकी रहनसहन, उनकी वेषभूषा, उनकी भाव-भाषा आदि सभी का परिचय यहीं बैठे-बैठे हमें हो जाता है । यहाँ आते ही हम भारत की राष्ट्रीयता तथा उसके विभिन्न प्रान्तों की एकात्मता का अनुभव करते हैं और हृदय में एक अभूतपूर्व आनन्द का उद्रेक हो आता है । सारे भारतवर्ष के अध्ययन की जैसी सुविधाएँ यहाँ प्राप्त हैं, वैसी शायद भारत के और किसी भी विश्व-विद्यालय में नहीं हैं ।

चौथी बात, जिसकी ओर ध्यान आप-ही-आप आकर्षित होता है, वह है यहाँ की सादगी । छात्रों में तथा अध्यापकों में, किसी में भी आप किसी प्रकार की टीमटाम नहीं पाइयेगा । सूट न पहनने के कारण कोई यहाँ किसी की हँसी नहीं उड़ाता । सभी अपनी-अपनी धुन में मस्त अपनी राह चलते रहते हैं । कोई रोक-टोक नहीं, कोई विघ्न बाधा नहीं, कोई आडम्बर नहीं । रहने का खर्च भी कोई अधिक नहीं । इसका कारण है, यह गरीबों का विश्वविद्यालय है । अभी हाल ही में बात-चीत के सिलसिले में पूज्य मालवीयजी ने हमें बतलाया था कि यहाँ चालीस हज़ार रुपये सालाना की फ़ीस माफ़ है । इतनी अधिक सहायता विद्यार्थियों को और कहाँ मिल सकती है ?

किन्तु, पाँचवीं बात और सबसे महत्त्वपूर्ण बात जो मेरे जानते यहाँ की है, वह है यहाँ का विचार-स्वातंत्र्य और विचार-विनिमय का सुअवसर । चाहे कोई भी मत क्यों न हो, कोई भी दल क्यों न हो, सभी को समान अधिकार है अपने संदेश सुनाने का । इसे पक्ष और विपक्ष दोनों की बातें सुनने का अवसर मिलता है । सरकार और कांग्रेस— दोनों के ही नेता समानभाव से उनका आदर करते हैं । राजा और प्रजा दोनों को ही यह प्रिय है । इस सम्बन्ध में मुझे रह-रह कर एक घटनावली का ध्यान आ जाता है । सन् १९२७ का जनवरी महीना था । तीन तारीख को वाइसराय महोदय आ रहे थे और महाराजा सर गायकवाड़ आ रहे थे लायब्रेरी के शिलान्यास के लिये । लार्ड इरविन आये, और बड़ी धूमधाम से आये । पुलीस का प्रचुर पहरा था । सरकारी सैन्यबल का काफी प्रदर्शन था । वे आये और

My days among the dead are past,
Around me I behold
Where'er these casual eyes are cast,
The mighty minds of old.

का जिक्र करते हुए कुछ बातें बतला गये ।

छः जनवरी को ऑल इण्डिया डिबेट था । स्वर्गीय लाला लाजपतराय प्रधान विचारक थे । विषय था लीग ऑफ नेशन्स । पंजाबकेशरी ने गर्जना की 'According to me the leagul of Natoins is an organised hypocrisy' नौ तारीख को महात्मा गाँधी आये । भारत के दोनों सर्वश्रेष्ठ भिखमंगे एक साथ इकट्ठे हुए । काफ़ी चहल पहल रही । महात्मा गाँधी का भाषण हुआ और यथासम्भव उनकी झोली भी भरी गई । उसके बाद ग्यारह तारीख को यहाँ भारत के सेनापति आये और सेन्ट्रल हॉल में उनका समुचित स्वागत हुआ । एक ही सप्ताह में ऐसा समारोह देखकर एक बार चकित हो जाना पड़ा । ऐसा अद्भुत समारोह किसने देखा है । एक ओर वाइसराय और कमांडर इन-चीफ़, गवर्नमेंट के सर्वश्रेष्ठ अफसर । दूसरी ओर महात्मा गान्धी और लाला लाजपतराय—भारत के श्रेष्ठतम नेता । एक जगह बैठकर ही कौन इन सभी के दर्शन कर सकता था और इनकी बातें सुन सकता था । यह तो हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में ही सम्भव है ।

इतना ही नहीं—साल भर में हमें देश-विदेश के जितने प्रमुख महापुरुषों के भाषण सुनने को मिलते हैं, उनका हिसाब नहीं हो सकता । प्रायः जो भी भारत में आता है, वह काशी अवश्य आता है, और जो काशी आता है, वह एक नज़र विश्वविद्यालय को भी देख लेता है और अवसर रहने पर कुछ सुना भी जाता है । इस प्रकार हमें घर बैठे-बैठे बड़े-बड़ों के विचार सुनने को मिल जाते हैं ।

इतनी विशेषताएँ और इतनी सुविधाएँ रहते हुए भी हमें यह देखकर दुःख होता है कि प्रायः फ़र्स्ट क्लास लड़के यहाँ नहीं आते । मेरे जानते इसका सबसे बड़ा कारण है— हमारे देश की गुलामी । आजकल लोग पढ़ते हैं नौकरी के लिये और लोगों की यह धारणा है कि प्रान्तीय सरकारें

(शेषांश १२२वें पेज के नीचे)

काशी के अखाड़े

लेखक—श्रीयुत बलदेवप्रसाद मिश्र

काशी के सबसे पुराने चार अखाड़े हैं—संतराम, नागनाथ, अधीनासिंह तथा भंगड़भिच्छुक। ये २०० वर्ष के हैं। संतराम और नागनाथ के अखाड़े मणिकर्णिका पर हैं, अधीनासिंह का ईसरगंगी पर, तथा भंगड़भिच्छुक का ऐतरनी-बैतरनी पर है।

संतराम पैरों से लूले थे। एक दिन कोई पर्व था और वे किसी तरह लाठी टेक कर गंगा-स्नान के लिये जा रहे थे। रास्ते में एक कोढ़ी मिला और कहने लगा—मैं थक गया हूँ, मुझे नहला दो। संतराम उसे कंधे का सहारा दे कर लाये और नहलाया। नहाकर वह कोढ़ी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने संतराम को बटुकभैरव की एक मूर्त्ति दी और मंत्र बतला कर चल दिया। उन्हीं बटुकभैरव के पूजन तथा जप से संतराम का वह रोग जाता रहा और धीरे-धीरे ऐसे बली हुए कि उनकी ताकत की थाह न रही। इनके अखाड़े में इनकी मूर्त्ति के ऊपर एक आले में वह बटुकभैरव अभी तक रक्खे हुए हैं। संतराम के शिष्य थे बनरा चौबे और उनके थे काशीनाथ और बख्तावरगिरि। इन बख्तावरगिरि के हाथ के जोशन; अर्थात्—इनके भुजदंड का ऊपरी हिस्सा १६ अंगुल चौड़ा था। इसी से उनके शरीर का अंदाजा कर लीजिये। संतराम के अखाड़े के एक और शिष्य थे दुद्धी महाराज, जिनका असली नाम फतेहशंकर था। इन्हें बख्तावरगिरि ने कुंभक प्राणायाम सिद्ध करा दिया था, जिससे ये कुश्ती में कभी थकते ही न थे। कहा जाता है कि जब गुलाम पहलवान काशी में आया, तो इनसे ११ दिन कुश्ती हुई; पर वह इनका बाल भी बाँका न कर सका। गुलाम पहलवान की शक्ति का भी कोई अन्दाज न था। इन दुद्धी महाराज के भानजे हरीराम नागर पंचौली अभी हैं। ये भी संतराम के अखाड़े के शिष्य हैं। सन् १८९० में ये अलीगढ़ गये थे। उन दिनों वहाँ महाराज ग्वालियर तथा गवर्नमेण्ट की फ़ौज़ों में 'शैमफाइट'; अर्थात्—लड़ाई का अभ्यास हो रहा था। उस अंग्रेज़ी फौज के जेनरल लक का घोड़ा एक दिन बिगड़ गया और उन्हें गिरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने उसे बेच दिया। वहाँ के कोतवाल अज़ी-नक़ीखाँ ने उसे खरीद कर अख्ता कराया; पर चाँदनी खा-कर वह और बिगड़ गया और काटने लगा। एक दिन वह रस्सा तोड़ कर भागा और रास्ते में कई आदमियों को मार डाला। हरीरामजी ने यह देख एकाएक उसे रोक लिया और मुँह में हाथ डाल कर उसकी जीभ पकड़ ली। घोड़े ने भरपूर जोर से हाथ में काटना शुरू किया और उन्होंने उसे लात से मारना। देखते-देखते हज़ारों आदमियों की भीड़ हो गई और वह घोड़ा भी लात खाते-खाते बेहोश होकर गिर पड़ा और मर गया। लोग इन्हें अस्पताल ले गये और ८ दिन बाद एक आम जलसे में कलक्टर ने इन्हें एक पदक देकर सम्मानित किया। इस घटना का सब विवरण तत्कालीन अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गज़ट में छपा है। दाँतों के निशान इनके हाथ में अब भी हैं। अब भी इस अखाड़े में कुश्ती होती है; पर कोई उल्लेख-योग्य लड़ंतिया नहीं है। कोई समय था, जब इसमें सैकड़ों पट्ठे लड़ते थे और सब एक-से-एक बढ़कर थे। यह अखाड़ा गुरुसाहब के अखाड़े के नाम से भी प्रसिद्ध है।

नागनाथ एक योगी और कुश्ती के अद्वितीय वेत्ता थे। इनका अखाड़ा 'नागनाथ की बैठक' के नाम से भी प्रसिद्ध है। ये हिन्दू-मुसलमान सबको सिखाते थे, बिलकुल समान भाव से। अब इस अखाड़े में भी कोई अच्छा लड़ंतिया नहीं है।

अधीनासिंह बड़े अच्छे पहलवान थे। दयानन्द स्कूल के पिछवाड़े के मैदान में पत्थर के शेर की एक विशाल मूर्त्ति पड़ी है, जो उस समय जोड़ा थी। अधीनासिंह नित्य दोनों को अपने कन्धों पर रख कर मछोदरी तालाब में नहाने जाते थे और लौटते समय फिर वहीं रख देते थे। इनके मर जाने के बाद इनका एक शिष्य भी इसी तरह स्नान करता था; पर एक दिन उससे एक मूर्त्ति तालाब में गिर पड़ी, जो अब भी उसी में है और एक उस मैदान में है। अब यहाँ भी कोई प्रसिद्ध पट्ठा नहीं है।

भंगड़भिच्छुक के अखाड़े का विशेष वृत्तान्त ज्ञात नहीं। वहाँ भी दो-चार आदमी अभी लड़ते हैं। आश्चर्य और

प्रसन्नता तो यही है कि इन चारों अखाड़ों का नाम अभी किसी तरह चला जाता है।

प्राचीनता में इनके बाद दो अखाड़ों का नाम आता है। वे हैं रामकुंड तथा कोंडभट्ट। ये दोनों १०० वर्ष के हैं।

रामकुंड पर भी पहले बड़े अच्छे लड़ंतिये थे। यहाँ आजकल उस्ताद पन्नालाल दाँव-पेंच सिखाते हैं। ये इसी अखाड़े के शिष्य हैं और अब इतने वृद्ध हैं कि लड़ नहीं सकते। बैठे-बैठे बता देते हैं। यहाँ पर एक 'भगवन्जी' ब्रह्मचारी रहते हैं। ये कुश्ती के मार्मिक विद्वान् हैं और वृद्ध हो चले हैं। ये भी बड़े प्रेम से लोगों को बताते तथा कुश्ती के प्रचार में लगे रहते हैं।

कोंडभट्ट दक्षिण से यहाँ आये थे। नागपुर, बरार, गुजरात आदि में मलखम का प्रचार इन्हीं के कारण हुआ। अब इनके पौत्र गुरु अनंतरामजी हैं। इस अखाड़े की कुश्ती, मलखम तथा बेंत पर झूलकर कर कसरत करने की विद्या भारत-प्रसिद्ध है। महाराज बड़ौदा का प्रसिद्ध अखाड़ा इन्हीं कोंडभट्ट की कलाओं के आदर्श पर है। अनन्तरामजी गुरु हिन्दू-विश्वविद्यालय में इन कलाओं को सिखाते हैं और विश्वविद्यालय का अंग होने के कारण सेन्ट्रल हिन्दू-स्कूल में भी ये कलाएँ सिखाई जाती हैं।

इसके बाद नम्बर आता है 'रज्जू' नालबंद के अखाड़े का, जिसका अब निशान भी बाकी नहीं है। रज्जू नालबन्दी करता था और पहलवान था। उन दिनों मुसलमानों का यही अखाड़ा था।

इसके बाद प्राचीनता के क्रम से ये अखाड़े हैं—जग्गू-सेठ, पंडाजी, स्वामीनाथ, बबुआ पाँड़े, शकूर, रामसिंह, मन्नासाहु, और नन्हासिंह। यों तो और भी सैकड़ों अखाड़े हैं; पर कोई बढ़िया लड़न्तिया न होने के कारण उनका नामोल्लेख नहीं किया गया।

पहले काशी में घर-घर पहलवान थे; पर अँग्रेजी शिक्षा के प्रभाव तथा अन्य अनेक कारणों से कुश्ती और कसरत से लोग हट रहे हैं; पर नीची जाति के लोग अब भी नियम से कसरत करते हैं। यों तो जहाँ कहीं हनुमानजी की मूर्त्ति है, वहाँ किसी-न-किसी रूप में अखाड़ा वर्त्तमान है। एक बात यह भी स्मरण रखने की है कि हिन्दुओं के अखाड़ों में मुसलमान नहीं लड़ने पाते और न मुसलमानों के यहाँ हिन्दू जाते हैं। प्रारंभ में नागनाथ ने इस नियम को तोड़ा था और इधर कुछ वर्षों के लिये जग्गू सेठ के अखाड़े से यह नियम विदा कर दिया गया था। अस्तु।

जग्गूसेठ के अखाड़े ने इधर जितना काम किया, उतना कम अखाड़ों ने किया होगा। इस अखाड़े से हजारों पट्ठे निकले और सैकड़ों ने तो बड़ा नाम पैदा किया। कुछ मुख्य लड़ंतियों के बारे में कुछ लिखना अनुचित न होगा।

१—भवानीशंकर वाजपेयी—ये अब वृद्ध हो गए हैं; पर थोड़ा-बहुत लड़ते रहते हैं। ये हज़ारों दंगल लड़ चुके हैं और बड़े प्रसिद्ध लड़ंतियों को पछाड़ा है। ये ८, ९ हज़ार दण्ड रोज खींचते थे।

२—वाहिद—यह मुसलमान है और इस समय बनारस का सर्वश्रेष्ठ पहलवान है। नवाब, अदालत वगैरह से लड़ चुका है।

३—मोतीसिंह—ये कालायोगी, अदालत, नसीरहुसैन वगैरह से लड़ चुके हैं।

४—श्यामनारायण—दो वर्ष हुए, ये भरी जवानी में मर गए। ये अताउल्ला, इलाहीगंजा, पोस्ती वगैरह से लड़ चुके थे।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों हैं, जिनमें केदार सेठ, मुन्नी-लाल, जमना, भद्दू बाबा, चम्मन, छेदी, गणेश वगैरह हैं। गणेश वर्त्तमान उस्ताद छन्नू सेठ के पुत्र हैं और इनसे बहुत आशाएँ हैं। उस्ताद छन्नू सेठ अब वृद्ध हो चले हैं; पर अब भी इनकी 'सवारी' लेकर उठना और कलाइयों की मार खाना आसान बात नहीं है। इनके दो स्त्रियाँ हैं, जिनसे दर्जनों लड़के हुए थे। अब चार जीवित हैं। ये बड़े सज्जन और मन लगाकर बतानेवाले उस्ताद हैं।

अब विस्तार-भय से अत्यन्त संक्षेप में शेष अखाड़ों का हाल दे दिया जाता है।

पंडाजी के अखाड़े में गुन्नी महाराज एक प्रसिद्ध लड-न्तिया हैं, जो सेठजी के यहाँ के शिष्य हैं।

स्वामीनाथ का अखाड़ा अस्सी पर है। कुछ लोग इसे तुलसीदासजी के समय का बताते हैं। यहाँ कई अच्छे लड़ने वाले हैं।

बबुआ पाँड़े का अखाड़ा अस्सी पर है। यहाँ मुरली और शारदा बड़े प्रसिद्ध हैं।

शकूर मुसलमान है। इस अखाड़े में शिवमूरत नामक हिन्दू पहलवान है। यह बड़े-बड़ों से लड़ चुका है।

रामसिंह का अखाड़ा बेनियाबाग पर है। यहाँ सर्वजीत और विन्ध्येश्वरी हैं, जो बनारस में किसी से भी लड़ सकते हैं।

मन्नासाहु का अखाड़ा मीरघाट पर है। यहाँ निक्के पाधा हैं, जो इलाहीगंजे से लड़ चुके हैं।

नन्दासिंह का अखाड़ा कोरौता गाँव में है। यहाँ अँगनू अहीर है। इसका शरीर वज्र-सा कठोर है। यह भी अनेक दंगल लड़ चुका है।

यहाँ की प्रसिद्ध संस्था 'भारत-सेवा-मण्डल' में एक 'रावसाहब' हैं। ये और इनके वृद्ध दादा तलवार और पटा के फन में अपना सानी नहीं रखते। काशी के मुसलमान इन कलाओं से एक दम अपरचित थे और इन्हीं वृद्ध राव-साहब से इन्होंने सीखा। रावसाहब अगर किसी मुसलमानी जलसे में शरीक हों और तलवार के खेल होने लगें, तो इनसे 'मर्जी'—आज्ञा—माँगी जाती है। अब सेवा-मण्डल में तलवार, लाठी, पटा, बनेठी आदि की ट्रेनिंग दी जाती है और इसे गवर्नमेंट से सहायता मिलती है।

बड़े हनुमानजी के पुजारी—जो अभी जवान हैं—धनुष-बाण में अद्वितीय हैं। इनकी धनुष-बाण विषयक निपुणता यहाँ तक बढ़ी हुई है कि ये शब्दवेधी बाण भी अचूक मारते हैं। इसके अतिरिक्त चलती मोटर रोक लेना, भारी-भारी रोलर अपनी छाती पर चढ़ाना आदि भी इनके लिये सहज बातें हैं।

एक बात और लिखकर यह लेख समाप्त किया जायगा। करीब ४० वर्ष पहले दो मुसलमानों तथा दो हिन्दुओं ने दंगल-जगत् में धूम मचा दी थी। यह दोनों जोड़ी सगे भाइयों की थी। इनका नाम था—बब्बन-गुज्जन तथा रूपा-अनूपा।

कुछ ही वर्षों की बात है कि एक बहुत ही होनहार युवक दयाशंकर का खिलते-खिलते देहान्त हो गया। इनका सीना जवानी के प्रारम्भ में ही डेढ़ गज का था। लोगों को आशा थी कि ये विदेशों में भी भारतवर्ष का नाम करेंगे।

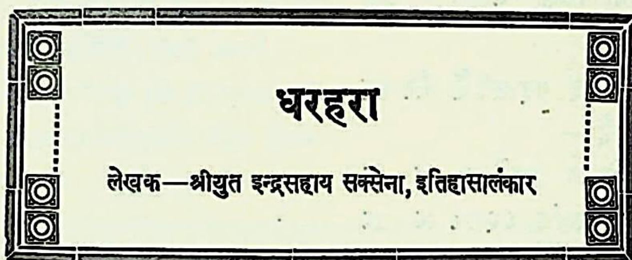
(११९वें पेज का शेषांश)

अपनी प्रान्तीय यूनिवर्सिटियों का ही पक्षपात करती हैं। इसीसे हमारे यहाँ बहुत से अच्छे नवयुवक नहीं आते। कुछ ही दिन हुए, हमें पूज्य प्रो० श्यामाचरण दे ने बतलाया था कि ६० फ़ी सदी लड़के यहाँ थर्ड डिवीज़नर हैं। फिर भी यहाँ के लड़के कहीं बेकार बैठे हों, ऐसी बात नहीं है। यहाँ का इन्जीनियरिंग कॉलेज तो भारत में एक है। इन्डस्ट्रिअल केमेस्ट्री की भी काफ़ी धाक है और इसकी चारों ओर पूछ है। फिर भी अभी जितना हम चाहते हैं और जैसी सुविधाएँ हमें प्राप्त हैं, उतना लाभ हमने नहीं उठाया है। यह हमारे लिये लज्जा की बात है; किन्तु निराशा का कोई कारण नहीं।

महामना मालवीयजी हमारे विश्वविद्यालय के प्राण हैं। उनके त्रिपत्र में जो भी धारणा आपके हृदय में हो, कुछ अंश में वही धारणा आप इस विश्वविद्यालय के विषय में भी कर सकते हैं; किन्तु हमारे लिये पूज्य मालवीयजी और विश्वविद्यालय में एक बड़ा-सा भेद है—वही भेद, जो एक पिता और उसकी सन्तान में हो सकता है। हमारे दुर्भाग्य से मालवीयजी अब वृद्ध हो चले; किन्तु विश्व-विद्यालय की किशोरावस्था है। अभी तो सत्रह साल की ही उमर है। इतने ही में इसने जितना कर दिखलाया है, उसे देखकर स्तम्भित हो जाना पड़ता है। युवक विश्वविद्यालय आगे क्या करेगा, यह तो भविष्य के गर्भ में निहित है। किन्तु हमारा कर्त्तव्य तो उद्योग करने का ही है। आगे भगवान विश्वनाथ की इच्छा!

धनुषके आकार में बसी हुई काशीपुरी को यदि धनुष के रूपक में देखा जाय, तो श्रीगंगाजी उसकी प्रत्यञ्चा होंगी। असी और वरुना के सङ्गम दो छोर होंगे और धरहरे के दो शिखर स्वर्ग के कपाटों को खोदने वाले दो बाण प्रतीत होंगे। मन्दिर के शिखर का दर्शन होने से मन्दिर में स्थापित देवमूर्ति के दर्शन का पुण्य प्राप्त होता है। इसी तरह काशी का धरहरा कोसों दूर से देख कर श्रद्धावान् स्त्री-पुरुषों के सिर श्रद्धा से झुक जाते हैं। इस कारण धरहरे का परिचय हुए बिना काशी का वर्णन सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि इन दो मीनारों के ही रूप में अपने दोनों हाथ उठाकर काशीपुरी मानों अपनी ऐतिहासिकता की साक्षी दे रही है।

प्रातःकाल हो और आकाश स्वच्छ, तब देखिये इसकी किसी ऊँची मीनार से। बनारस में ही हिमालय पर्वत हो जाते हैं।



धरहरा

लेखक—श्रीयुत इन्द्रसहाय सक्सेना, इतिहासालंकार

कलकत्ते के प्रसिद्ध बिशप हेबर ने यह बात जनता के अनुभव पर लिखी है।

धरहरा बनारस नगर में चोटी की इमारत है। इसका पूरा नाम 'बेनी माधवजी का देवरा'× है। देवाग्रहार शब्द संस्कृत भाषा के कोष में चोटी वाले मंदिर का वाचक है। धरहरा और देवरा देवाग्रहार के अपभ्रंश शब्द हैं। शिखर वाले मंदिर राजपूताना में देवरा ही कहलाते हैं।

शहीद का नाम भुलाए से भी नहीं भूलता। यद्यपि बेनीमाधव के चोटीदार मन्दिर के स्थान पर मस्जिद को बने पौने तीन सौ वर्ष का एक दीर्घ काल व्यतीत हो चुका है; किन्तु इस मस्जिद को अभी तक मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है।

बनारस में यह इमारत गंगा-तट पर है। गंगा-तट से घाट और पुश्ता को मिलाकर प्रायः ३०० फ़ीट ऊँची है। प्रायः १५० फ़ीट के ऊपर मस्जिद बनाई गई है। मस्जिद की इमारत साधारण है; किन्तु उसके अगले दो मीनार प्रायः १५०।१५० फीट ऊँचे हैं। और काशी की यात्रा को आने वाले प्रत्येक देशी अथवा विदेशी मनुष्य को आकर्षित करने वाले हैं। इन दोनों में प्रत्येक मीनार के सिर पर छत्री है। छत्री पर पहुँचने के लिये मीनार के भीतर से मारपेच ज़ीना है। छत्री पर पहुँचकर देखने से बनारस नगर का घर-घर दृष्टिगोचर होता है। कहते हैं कि पूर्वकाल में यह मीनार पूरे २००।२०० फीट ऊँचे थे। उस समय इनकी छत्री के दीपक दिल्ली में दिखाई देते थे। बाद में ५० फीट ऊँचा एक खण्ड प्रत्येक मीनार का उतरवा दिया गया, कि दीर्घकाल तक बने रहें; क्योंकि इन मीनारों के आसार पतले हैं।

यह तो सब जानते हैं कि यह मस्जिद औरंगजेब आलमगीर बादशाह के समय की है; परन्तु बेनीमाधव का देवरा कब बना, उसका निर्माणकर्त्ता कौन था, कब ध्वंस को प्राप्त हुआ—इन बातों से अभी तक इतिहासकार परिचित नहीं पाए जाते। यह इतिहास बड़े परिश्रम से खोज करने पर प्राप्त हुआ है।

इस मस्जिद के समीप ही सीताराम का मन्दिर है। उक्त मन्दिर के गोस्वामियों के अधिकार में शाही लेख हैं। एक लेख इस बात का सूचक है—

'दफ्तर खानसामानो से कैफ़ियत गुज़री है कि गुसाईं जीवनराम की अर्जी पेश हुई है। अर्जी में उक्त गुसाईं वर्णन करता है कि राजा मानसिंह ने बनारस मुहल्ला बेनीमाधव में गङ्गा-किनारे कई किता जमीन के खरीद किये थे, और एक किता पर सीताराम का मन्दिर बनवा कर मेरे पूर्वज गुसाईं रामगोपाल को भेंट (पेशकश) दिया। पीछे दूसरे किता पर इसी मन्दिर के समीप बेनीमाधव का मन्दिर बना था। मन्दिर बेनीमाधव आलाहजरत (श्रीमान् औरंगजेब) के हुक्मे कज़ाशमे से तोड़ा गया। उसके स्थान पर उसी के मसाले से जामए मस्जिद का निर्माण हुआ और मन्दिर सीताराम एक फर्मान-द्वारा सुरक्षित रखा गया, जो मेरे पास है। यह मन्दिर सदैव मेरे पूर्वजों के अधिकार में रहा है और अब मेरे अधिकार में है।'

इस लेख का शेषांश इस खोज से सम्बन्ध नहीं रखता; अतः उसे उद्धृत नहीं किया जाता। अब पहले इस बात की खोज करनी चाहिए कि मन्दिर बेनीमाधव किस संवत में

निर्मित हुआ था ? इसका निश्चय पञ्चगंगाघाट पर के एक शिला-लेख से होता है।

'बनारस' नामक पुस्तक में बाबू बालमकुन्द वर्मा लिखते हैं कि पंचगंगाघाट राजा मानसिंह ने बनवाया था। यह घाट बेनीमाधवघाट और लक्ष्मीबालाघाट के बीच में है। इसके पूर्व में बेनीमाधवघाट है और पश्चिम में वही लक्ष्मीबालाघाट।

इस घाट के पूर्वीय भाग में सीतारामजी का मन्दिर है और पश्चिम में यह जामए मस्जिद। जिस पुश्ते पर जामए मस्जिद की इमारत है, उसकी दक्षिण दिशा वाली दीवार में पञ्चगङ्गाघाट की विस्तृत सीढ़ियों के ऊपर एक शिला-लेख है। लेख खुर्चा हुआ-सा है। उसके अक्षर दिन-प्रति-दिन मिटते जाते हैं। पुरातत्व-विभाग को इस ओर जल्द ध्यान देना चाहिए। शायद यह रत्न अभी किसी जौहरी की दृष्टि में तुला नहीं है।

हम इस लेख में केवल यह शब्द पढ़ सके हैं और यह हमारे विषय की पूर्ति करने वाले हैं—

× × × महाराजाधिराज जयसिंह × ×
× यात्रा सफल × × × सवंत् १६९९ × ×

हम जानते हैं कि महाराजाधिराज मिर्जा राजा मानसिंह दरबार-अकबरी के नवरत्नों में कोहेनूर हीरा-ऐसे और मुग़ल साम्राज्य को प्रकाशमान करने वाले थे। उनकी राजधानी राजपूताना में आमेर के नाम से प्रसिद्ध है। आमेराधिपतियों की उपाधि महाराजाधिराज पुरातन काल से है। मिर्जा राजा का खिताब इनको साम्राट् अकबर ने प्रदान किया था। सवाई की उपाधि औरङ्गजेब द्वारा प्राप्त है।

राजा मानसिंह के वंशधर और आमेर-पतियों में दो जयसिंह नामी श्रीमान्, भारतवर्ष के इतिहास में अति प्रसिद्ध हैं; मिर्ज़ा राजा जयसिंह का शासन-समय-संवत १६७१ से १७२३ है और सवाई जयसिंह का संवत १७५७ से १८०० विक्रम है। * मिर्जा राजा जयसिंह की प्रसिद्धि इतिहास में इस बात के लिये है कि आपने शिवाजी महाराज को समझा-बुझा कर औरङ्गजेब के दरबार में भेजा था। सवाई जयसिंह ने आमेर के निकट पैरिस (Paris) ऐसा भारतवर्ष का अत्यन्त सुन्दर नगर जयपुर बसाया है। तभी से आमेर राजधानी जयपुर के नाम से प्रसिद्ध है।

ऊपर वर्णित शिला-लेख से स्पष्ट है कि बेनीमाधव के धरहरा का निर्माण संवत् १६९९ में हुआ था। गुसाईं जीवनराम की अर्जी से विदित होता है कि इस मन्दिर का ध्वंस औरङ्गजेब के प्रथम राज-वर्ष में हुआ था। औरङ्गजेब का प्रथम राज-वर्ष संवत १७१५ में था। इन संवतों में सवाई जयसिंह का जन्म-संस्कार तक नहीं हुआ था; अतः सिद्ध है कि यह संस्कृत लिपि मिर्जा राजा जयसिंह की है। आप संवत् १६९९ में काशी की यात्रा को पधारे थे और अपनी सफल यात्रा की स्मृति में आपने यह पुश्ता और पुश्ते पर बेनीमाधव के धरहरे का निर्माण कराया था।

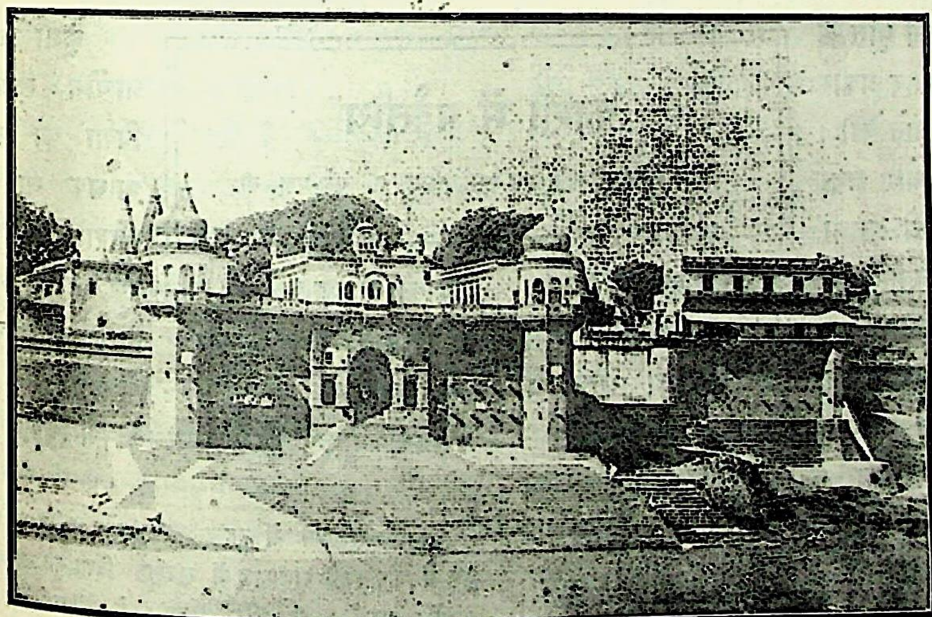
जैसे शहीद का नाम भुलाये से नहीं भूलता, वैसे शहीद का खून भी रङ्ग लाये बिना नहीं रहता।

मिर्जा राजा जयसिंह मुगल-साम्राज्य की सेवा जहाँगीर बादशाह के समय से कर रहे थे। हिन्दू राजाओं में सबसे पहले औरङ्गजेब का साथ मिर्जा राजा ने ही दिया था। जोधपुर-नरेश महाराजा यशवन्तसिंह शाहजहाँ बादशाह को बन्दी-गृह से निकालने का प्रयत्न कर रहे थे। शाहजहाँ के ममेरे भाई थे। महाराजा यशवन्तसिंह और औरङ्गजेब की खटपट कोड़ा की लड़ाई से हो गई थी; इसलिये उन्हों ने औरङ्गजेब के सबसे बड़े भाई दाराशिकोह को गुजरात से बुलाया था और आशा दिलाई थी कि उनकी सहायता स्वयं करेंगे तथा अन्य राजाओं से कराएँगे। दाराशिकोह इस आशा से अजमेर में पड़े थे। औरङ्गजेब का मुकाम अजमेर के निकट टोडा ग्राम में था। मिर्जा राजा ने यशवन्तसिंह और हिन्दू राजाओं को दाराशिकोह की तरफ जाने से रोक रखा था, कि राजपूताना के जंगल पहाड़ पुकार उठे—'मज़हब नहीं सिखाता परजा से बैर रखना।' साईं की इस सदा पर औरङ्गजेब के कान खड़े हुए। इसमें यह आवाज मन्दिर-सीताराम के गोस्वामी की थी। औरङ्गज़ेब इस समय या तो मिर्जा राजा का मन रख सकते थे, अथवा राज-पाट से हाथ धो सकते थे। यह बड़ी कठिन समस्या का समय था। आखिर औरंगजेब को मन्दिरों का ध्वंस उस मिती से बन्द करना पड़ा। इस बात का सूचक

* मुआसर उल उमरा हिन्दी, बाबू व्रजरत्नदास-लिखित।

वह फर्मान है, जिसके द्वारा मन्दिर-सीताराम सुरक्षित रहा। यह फर्मान ता० १५ जमादि उस्सानिया सन् १०६९ हिजरी का लिखा हुआ है। उस दिन बृहस्पतिवार था—जुमा रात-सैरात का दिन, चैत वदी ९ सम्वत् १७१५ तदनुसार २७ फरवरी, सन् १६५९ ई०। औरंगजेब को आज शासन की बागडोर सम्हाले २६० दिन, तख्तपर बैठे २१९, और प्रयाग से लौटे ३३ दिन हुए थे। हम इस बात को सीताराम के मंदिर के वर्णन में सिद्ध करेंगे कि फर्मान को जारी करके फिर औरंगजेब ने मंदिर तुड़वाने का कभी नाम तक नहीं लिया। नवीन मंदिर बनाने की आज्ञा दी।

इस विवरण से यह तो स्पष्ट ही है कि संवत् १६९९ में मिर्जा राजा जयसिंह ने बेनीमाधव का देवरा या देवाग्र-हार बनवाया था और औरंगजेब ने संवत् १७१५ में उसे नष्ट करवा डाला था। सम्भवतः काशी का यही अन्तिम मन्दिर टूटा था। इसके अनन्तर औरंगजेब की नीति बदल गई और उसने मन्दिर ध्वंस करना बन्द कर दिया। इसी के उपरान्त देवरे का जीर्णोद्धार किया गया और उसे वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। यह धरहरा औरंगजेब के स्मारक का काम तो कर ही रहा है; किन्तु मन्दिर के ध्वंस की नीति के अन्त होने का भी स्मरण दिला रहा है। काशी के वक्ष-स्थल पर मुसलमानी साम्राज्य की यह छाप लगी हुई है, तथापि उस छाप को हिन्दुओं ने नहीं माना। स्थान की पवित्रता के विचार से सब लोग उसे अब तक बेनीमाधव का धरहरा ही कहते हैं।



शिवालाघाट

काशी में पर्वतीय

लेखक—श्रीयुत गणेशदत्त शास्त्री, एम्. ए. एल्-एल्. बी.

संयुक्त प्रान्त के उत्तर-पश्चिम कोण में कूर्मांचल प्रदेश है। इसका प्रचलित नाम कुमायूँ है। कुमायूँ कमिश्नरी में अल्मोड़ा, नैनीताल तथा गढ़वाल जिले सम्मिलित हैं। इनमें से अल्मोड़ा तथा नैनीताल के रहने वाले ही पर्वतीय कहलाते हैं। अँग्रेजी राज्य के पूर्व कूर्मांचलियों का अपना स्वतन्त्र राज्य था। कूर्मांचल का राज्य अति प्राचीन तथा विस्तृत भी था। १८वीं शताब्दी के अन्त तथा १९वीं शताब्दी के आरम्भ-काल में गोर्खालियों द्वारा भारतवर्ष में यत्र-तत्र आक्रमण हुए और इसी समय गोर्खालियों ने इस देश पर भी चढ़ाई की और इस पर अपना अधिकार जमा लिया; पर वे अधिक समय तक यहाँ राज न कर सके। इनका शासन-सूत्र अधिकतर सैनिकों के हाथ में रहने के कारण प्रजा पर अधिक अत्याचार होने लगा। सैनिक-व्यय अत्यधिक होने के कारण राजकोष हमेशा ही रिक्त रहने लगा और इसकी पूर्ति के लिये प्रजा पर हर प्रकार के कर लगाये जाने लगे। अनीति, अत्याचार तथा प्रजोत्पीड़न की मात्रा बढ़ने लगी। गोर्खालियों के थोड़े ही काल के शासन की भीषणता कैसी होगी, इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि पर्वतीय भाषा में 'गोख्योल' शब्द अव्यवस्था तथा अन्धेर का पर्यायवाची है। कूर्मांचल के अन्तिम स्वतन्त्र राजा चन्द्रवंशी * थे। इनके मन्त्री पं० हर्षदेव † जोशी देश को स्वतन्त्र तथा गोर्खालियों से उन्मुक्त करने में प्रयत्नशील हुए। और इन्होंने अँग्रेजों से मिलकर कुछ शर्तों पर—जिनमें प्रधान शर्त यह थी कि कुमायूँ के राज्य-सिंहासन पर पुनः प्राचीन राजवंश स्थापित कर दिया जायगा—उन्हें सहायता देना स्वीकार किया। इन्हीं की सहायता से अँग्रेजों का कुमायूँ में प्रवेश हुआ। अँग्रेज और गोर्खालियों के युद्ध में गोर्खालियों की पराजय का एक मुख्य कारण कूर्मांचल में प्रजा का असन्तोष और पं० हर्षदेवजी की सहायता थी। गोर्खायुद्ध के अनन्तर १८१६ में जो सिगौली की सन्धि हुई, उसके अनुसार यह प्रदेश अँग्रेजों के अधिकार में आगया। इसी बीच पं० हर्षदेवजी की मृत्यु हो गई और उनकी शर्तें केवल लिपि-बद्ध ही रह गईं। यदि वे जीवित रहते, तो कूर्मांचल का क्या भाग्य होता, यह कहना कठिन है।

कूर्मांचल-प्रदेश में प्राचीन समय से ही विद्या का प्रचार बहुत अधिक था। हिमवन्त प्रदेश होने के कारण यह सदा से ही ऋषियों की तपोभूमि रहा है। हर समय में विद्वान् तथा तपस्वी लोग यहाँ आकृष्ट होते रहे। यहाँ के राजा भी * विद्या-प्रेमी तथा धर्म-परायण हुए; इनके आश्रय में विद्या का प्रचार

* चन्द्रवंश राजाओं का राज्य संवत् १२३५ या ११७८ सन् से आरम्भ होता है। और इन्हीं के वंशज काशीपुर (नैनीताल) के राज हैं।

† पं० हर्षदेवजी जोषी सन् १७६७ में कुमायूँ राजा के प्रतिनिधि होकर नवाब आसफुद्दौला के दरबार में लखनऊ आये थे और इसके बाद बनारस भी आये।

* इन राजाओं में रुद्रचन्द्र अतिशय बुद्धिमान् और विद्याप्रेमी हुए हैं और इनके राजकाल में संस्कृत विद्या की बहुत उन्नति हुई। इनके पण्डित काशी और काश्मीर के पण्डितों का मुकाबला करते थे। During his reign he so encouraged the study of Sanskrit that his Pandits were said to have rivalled those of Benares and Kashmir. (Himalayan Gazetter of India, by E. T. Atkinson. B. A. F. R. G. S.)

यथेष्ट था। अनेक विद्वानों ने यहाँ के राजाओं के आश्रय में रहकर ग्रन्थ-निर्माण किये। मुसलमानों का शासन जब शिथिल होने लगा और हिन्दु राजाओं की शक्ति बढ़ने लगी, तो यहाँ के अनेक विद्वान् नीचे की ओर के देशों में भी रहने के लिये आने लगे। संयुक्त-प्रान्त के अनेक नगरों में पर्वतीय बस गये। मुख्यतया इनके आने का मार्ग पश्चिम में बरेली, मुरादाबाद, मेरठ, अनूपशहर तथा इनके आस-पास के नगर तथा पूर्व में काशी, प्रयाग रहा। काशी में कितने पहले पर्वतीय आये, यह कहना कठिन है। इस समय काशी में जो पर्वतीय रहते हैं, उनके पूर्वजों को आये अधिक-से-अधिक २५० वर्ष हुए हैं, और करीब-करीब संयुक्त प्रान्त के अन्य नगरों में रहने वाले पर्वतीयों के लिये भी यही कहा जा सकता है। अपनी विद्या तथा पाण्डित्य से इन पर्वतीयों ने प्रत्येक स्थान में अच्छी प्रतिष्ठा तथा ख्याति प्राप्त की। केवल काशी ही में जो पर्वतीय आये, उन्होंने कुछ कम यश तथा मान उपार्जन न किया।

कौन पर्वतोय विद्वान् काशी में सर्वप्रथम आये, यह कहना कठिन है। प्राचीनता की दृष्टि से जिनका उल्लेख सर्वप्रथम किया जा सकता है, वे हैं अग्निहोत्रि पं० हरिहरजी।* इनके समय का अनुमान करना कठिन है। इनका प्रसिद्ध भाष्य पारस्कर गृह्यसूत्र के ऊपर है। तत्पश्चात् विद्वच्छिरोमणि पं० विश्वेश्वर पाण्डेय का नाम उल्लेखनीय है। विश्वेश्वरजी ने अपने पिता से ही शिक्षा पाई। अपने पिता एवं गुरु की स्तुति में अपनी 'आर्यासप्तशती' में विश्वेश्वरजी ने निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

'पार्यन्तिकपर्याप्त्या कविपद शक्तिद्वयोविषयम्।
उत्तीर्णवाङ्मयाब्धिं वन्दे लक्ष्मीधरं तातम्॥'

इनके ग्रन्थों को छोड़कर इनकी जीवनी के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनके समय का अनुमान इनके 'अलंकार-कौस्तुभ' ग्रंथ में पंडितराज जगन्नाथ के उल्लेख से किया जा सकता है कि ये उनके कुछ ही पश्चात् होंगे। इनकी विद्या सर्वतोन्मुखी तथा प्रतिभा विलक्षण थी। इनके उपलब्ध ग्रन्थ व्याकरण, न्याय, साहित्य, धर्मशास्त्रादि सभी विषयों में हैं और प्रत्येक ग्रन्थ अपने विषय का अनमोल रत्न है। इनके कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो गये हैं और यदि अप्रकाशित शेष ग्रन्थ मुद्रित हो जायँ, तो संस्कृत-शास्त्र-भण्डार में अभिवृद्धि ही होगी। व्याकरण में सिद्धान्त-सुधानिधि, साहित्य में अलंकार कौस्तुभ, अलंकार कुलप्रदीप, अलंकार-मुक्तावली, रस-चन्द्रिका, आर्यासप्तशती आदि; न्याय में तर्क कौतूहल; गद्य-काव्य तथा नाटकों में मन्दारमञ्जरी तथा रुक्मिणी-परिणय इत्यादि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नैषध पर भी इन्होंने 'भाव प्रदीपाख्य' टीका की रचना की है। खेद है कि यह अविकल तथा पूर्ण कहीं भी उपलब्ध नहीं है। खंडित अंश तो यत्रतत्र उपलब्ध होते हैं, उनसे इनकी काव्य मर्मज्ञता का सहज ही में बोध हो जाता है। 'सिद्धान्त-सुधानिधि' व्याकरण पर पातञ्जल महाभाष्य के अनुरूप एक बृहद् व्याख्यान है; पर यह भी ग्रन्थ अभी तक खण्डित ही मिला है। 'चौखम्भा-संस्कृत सीरीज' से जितना भी यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उससे यदि अनुमान किया जाय, तो आकार में यह महाभाष्य से भी बृहद् होगा। गद्य-काव्य में 'मन्दारमञ्जरी' अनोखी है। संस्कृत-साहित्य के अविच्छिन्न प्रवाह का यह ग्रन्थ एक प्रमाण है। इस ग्रन्थ के पठन से पं० विश्वेश्वरजी की कल्पना-शक्ति, रचना-कौशल, भाषा

* पारस्कर गृह्यसूत्र के भाष्यकार किस प्रान्त के निवासी थे, इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। वे पर्वतीय थे, इस प्रकार की प्रसिद्धि कूर्माचल में बहुत पहले से चली आ रही है। इसी के आधार पर इनका पर्वतीय होना यहाँ पर लिखा गया है। —लेखक

पर अधिकार आदि सभी प्रस्फुटित होता है। अभी तक यह ग्रंथ भी अप्रकाशित ही है; पर लेखक की इसे शीघ्र प्रकाशित करने की इच्छा है।

पं० विश्वेश्वरजी के अनन्तर काशी में पं० प्रेमनिधिजी पन्त स्मरणीय हैं। तन्त्र तथा धर्मशास्त्र में इनका पाण्डित्य प्रकाण्ड था। इन दो विषयों में इनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित और अप्रकाशित उपलब्ध हैं। इनके ग्रन्थों से इनके समय का भी अनुमान किया जा सकता है। लेखक के संग्रहालय में एक हस्तलिखित पुस्तक है, जो कि इन्हीं की कृति मालूम पड़ती है, शाके १६५४ की निर्माण की हुई है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की ओर से पं० नारायणजी शास्त्री खिस्ते का लिखा हुआ एक लेख इनकी जीवनी पर कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। धर्मशास्त्र के ऊपर रचे हुए इनके ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाणिक हैं, जिनमें से 'प्रायश्चित्त प्रदीप', 'प्रयोगरत्न'-'पृथ्वी-प्रेमोदय' इत्यादि उल्लेख्य हैं। इसी प्रकार तन्त्रशास्त्र विषयक इनके अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें से मुख्य 'शिवताण्डव' की 'मल्लादर्श' टीका, 'प्रयोगरत्नाकर' तथा शारदातिलक की 'शब्दार्थचिन्तामणि' टीका उद्धृत किये जा सकते हैं।

इनके समकालीन या कुछ ही अनन्तर पण्डितवर श्रीधरणीधर पन्त थे। वेदान्त तथा धर्मशास्त्र में इनकी गति अद्वितीय थी। काशी में आये हुए पर्वतीय विद्वानों में ये भी एक उज्ज्वल देदीप्यमान रत्न हुए हैं। इनके भी लिखे हुए अनेक ग्रन्थ हैं; पर वे अधिकतर अप्रकाशित ही हैं। 'सापिण्ड्य तत्व' 'ईशतत्व' इनकी विशेष रचनाओं में से हैं। ये रीवाँ राज्य के राजपण्डित भी हुए। धर्मशास्त्र में इनकी प्रामाणिकता इतनी अधिक है, जिसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि 'निर्णयसिन्धु' में इनके मत का कई स्थलों पर उल्लेख है।

काशी के २०० वर्ष पूर्व के लगभग स्थायी रूप से आये हुए थोड़े से पर्वतीयों में पं० नीलाम्बर पन्त तथा पं० कमलापति त्रिपाठी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रथम अल्मोड़ा जिले के तिलाड़ी ग्राम के और दूसरे ज्योली ग्राम के निवासी थे। नीलाम्बरजी कर्मठ तथा त्यागी थे। वे वरुणा और गंगा के संगम—आदिकेशव—के समीप एक गुफा में रहते थे। इन्हीं से चौथी पीढ़ी में स्वनामधन्य कैवल्य-वासी म० म० पं० विद्यानन्दजी पन्त हुए हैं।

पं० कमलापतिजी यात्रा करते हुए काशी आये। बहुत अवस्था होने पर भी इन्हें पुत्र-प्राप्ति न हुई; अतएव तीर्थराज प्रयाग में षडक्षर राम महामंत्र का इन्होंने सांगोपांग एक कोटि जप-विधान किया। जिसके फल-स्वरूप इन्हें एक पुत्र हुआ, जिनका नाम गंगाराम रक्खा गया। अपने पुत्र का अध्यापन इन्हीं के द्वारा हुआ। अपने पुत्र को सांगोपांग वेद-वेदांग, व्याकरण आदि सम्यक् प्रकार से अध्ययन कराने के बाद पं० गंगारामजी के सोलहवें-सत्रहवें वर्ष में पं० कमलापतिजी का देहान्त हो गया। थोड़ी ही अवस्था में सर्वशास्त्रसम्पन्न और सर्वविद्यानिष्णात होने के बाद ये अपने देश के लिये रवाना हुए। यात्रा करते हुए मार्ग में इनकी भेंट ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिन्धिया से, जो कि बद्रीनाथ-यात्रा के लिये जा रहे थे, हुई। इनके पांडित्य से मुग्ध होकर उन्होंने इनको ५००) रु० सालाना पुरस्कार दिया। इसे पाकर ये पुनः काशी लौटे और अस्सीघाट के समीप रहने लगे तथा वहीं पर व्याकरण पढ़ाना शुरू किया। इनके प्रथम शिष्य महाराष्ट्र चित्पावन जगन्नाथ शास्त्री गाडगील तथा रघुनाथ शास्त्री हुए। पं० जगन्नाथ शास्त्री पीछे तो बहुत ही प्रतिष्ठित हुए और चित्रकूट में जो अमृतराव पेशवा रहते थे, उनके राज पंडित हो गये। इनके

दूसरे शिष्य, जिन्होंने बहुत ख्याति प्राप्त की, पं० रंगनाथजी हुए। ये नेपाली थे और काशी में पं० गंगारामजी शास्त्री के पास रहकर विद्याध्ययन करते थे। इसी समय काशी में राज्य छोड़कर नेपाल के महाराजाधिराज रणबहादुर शाह आये हुए थे। एक प्रकार से ये राजच्युत ही हो गये थे। पुनः राज्य में प्रत्यागमन की इच्छा होने पर इनको रुपये की आवश्यकता पड़ी। पं० रंगनाथजी ने अपने गुरु से निवेदन किया और पं० गंगारामजी शास्त्री ने अपनी जमानत पर चालीस हजार रुपये काशी की तात्कालिक प्रसिद्ध कोठी त्रिलोकसी-अमरसी से दिलवाया। रुपया लेकर रणबहादुर शाह रंगनाथजी के साथ नेपाल लौटे और सिंहासन पर फिर बैठे। पं० रंगनाथजी इनके प्रधान अमात्य हुए। इनके पुत्र गीर्वाणयुद्ध विक्रमशाह तथा पौत्र राजेन्द्र विक्रम शाह के भी ये राजगुरु तथा अमात्य रहे। पं० रंगनाथजी ने गुरु-भक्ति से प्रेरित होकर तथा गुरु-द्वारा दिलाई गई सहायता के बदले में अपने गुरु पं० गंगारामजी शास्त्री को अल्मोड़ा तथा नैनीताल जिले में—जो कि उस समय नेपाल के अधिकार में था—माफी जागीरें समर्पित कीं।

काशी की वर्तमान व्याकरण - पठन - पाठन-प्रणाली की नींव पं० गंगारामजी शास्त्री ने डाली। इस समय व्याकरण की जो प्रणाली है, इसके प्रवर्तक ये ही हुए। इन्हीं की शिष्य-परम्परा में काशी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् अभी तक हुए हैं। लघुशब्देन्दुशेखर तथा परिभाषेन्दुशेखर की पाठ्य-प्रणाली आप ही ने सर्वप्रथम चलाई। इसके पूर्व व्याकरण में मनोरमा, भाष्य, भूषणसार की ही पढ़ाई होती थी। न्यास तथा प्रक्रिया का शास्त्रार्थ होता था। शेखरद्वय क्रोड़पत्र के स्थान पर समझा जाता था। शेखरद्वय का पाठ्य-ग्रन्थों में समावेश हो जाने पर तथा इनका अति प्रचार होने पर व्याकरण-शास्त्र में दार्शनिक विचार-प्रणाली चल पड़ी; अर्थात्—अवच्छेदकता, प्रकारता अनुयोगिता वैयाकरण भी भली-भाँति समझने लगे। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि व्याकरण भी नव्य न्याय की भाषा में परिष्कृत रीति से पढ़ाया जाने लगा। इसका फल यह हुआ कि विद्यार्थियों में प्रत्येक सूत्र का अर्थ परिष्कृत रीति से जानने की इच्छा हुई। इनके प्रधान शिष्य पं० जगन्नाथजी शास्त्री का नाम ऊपर उल्लिखित हो चुका है। जगन्नाथजी शास्त्री के शिष्य पं० काशीनाथ शास्त्री हुए। इन्होंने शेखर के ऊपर परिष्कारों की रीति चलाई और इनके शिष्य पं० राजाराम शास्त्री ने परिष्कारों को बढ़ाया। पं० राजाराम शास्त्री के शिष्य पं० बालजी शास्त्री ने सम्पूर्ण शेखर को परिष्कार-पुञ्जों से सुशोभित किया।

पं० बालजी शास्त्री के समय में काशी में दूसरे पर्वतीय विद्वान् पं० नीलदेवजी पन्त के पुत्र पं० वाचस्पति पन्त थे। नेपाल-राज्य में प्रधान पण्डित-पद मिलने के कारण ये नेपाल चले गये। पं० बालजी शास्त्री के ६ धुरन्धर शिष्य हुए—म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री, म० म० पं० गंगाधर शास्त्री, म० म० पं० दामोदर शास्त्री, म० म० पं० तात्या शास्त्री, पं० हरिनाथ त्रिपाठी (मनीस्यानन्द स्वामी), पं० जगन्नाथ (दण्डी भट्ट)। इनमें प्रत्येक ही अति प्रसिद्ध हुए। सारांश में इस समय की व्याकरण-प्रणाली को प्रचरित करने का श्रेय एक पर्वतीय विद्वान् को है। इन्हीं के कारण व्याकरण-शास्त्र परिष्कृत होकर ऐसी तीव्र दार्शनिकता के रूप में आया कि शास्त्रार्थ-विचार-चतुर नव्य नैयायिक भी व्याकरण-शास्त्रार्थ से चकित होने लगे। व्याकरण के विद्वान् भी धुरन्धर विद्वान् समझे जाने लगे। पूर्वकाल में केवल वैयाकरण की

वह प्रतिष्ठा न थी, जो इनकी चलाई हुई परिपाटी के कारण हुई। कुल्लूक भट्ट के निम्नलिखित अवतरण से जो कि उनकी मन्वर्थमुक्तावली से उद्धृत है—'जाता व्याकरणानि बालसखिता युष्माभि......' स्पष्ट है कि व्याकरण प्रारम्भिक विद्या थी। पं० गङ्गारामजी शास्त्री ने अपनी विद्या के कारण बड़ी प्रतिष्ठा उपार्जित की और नेपाल तथा ग्वालियर-राज्यों से, जहाँ उनके शिष्य बड़े-बड़े पदों पर हुए, इन्हें जागीरें मिलीं।

इन्हीं के समकालीन पं० हरिवल्लभ उप्रेतीजी काशी के पर्वतीयों में प्रसिद्ध हुए हैं, जिनकी बनाई हुई 'दर्पण' नामक 'वैयाकरण-भूषणसार' की टीका है।

हाल में पर्वतीयों में प्रसिद्ध विद्वान् म० म० पं० नित्यानन्दजी पन्त हुए। इनका जन्म संवत् १९२४ और समाधि संवत् १९८८ है। ये म० म० पं० गंगाधरजी शास्त्री के पट्ट शिष्य थे। इनके पिता पं० नामदेवजी, पं० गंगारामजी शास्त्री के दौहित्र तथा पं० नीलाम्बरजी पन्त के पौत्र थे। गंगाराम शास्त्री की विद्या तथा पं० नीलाम्बरजी पन्त के त्याग का इनमें पूर्ण समावेश था। जितने ही अधिक ये विद्वान् हुए, उतनी ही गम्भीर इनकी सादगी थी प्रचण्ड त्याग भी थे। थोड़े ही समय तक हिन्दू कॉलेज में अध्यापकी करने के बाद इन्होंने नौकरी छोड़ दी और फिर बड़े-बड़े पद मिलने पर भी धन लेकर विद्यादान करना स्वीकार न किया। अपने समय के व्याकरण, धर्मशास्त्र, मीमांसा के ये एक ही पण्डित थे। इनके पढ़ाये हुए शिष्य अनेक पदों में विराजमान हैं। धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड तथा व्याकरण में विशेषतया इन्होंने ग्रन्थ-निर्माण किये हैं। हमेशा ही इनका स्वास्थ्य दुर्बल रहा और जीवन के अन्तिम पचीस वर्षों में तो ये प्रायः शय्याग्रस्त ही रहे। यदि इनका स्वास्थ्य थोड़ा भी अधिक अच्छा हुआ होता, तो इसमें सन्देह नहीं कि ये पाण्डित्य के फल-स्वरूप अधिक ग्रन्थ छोड़ जाते। इनके जितने भी ग्रन्थ हैं, वे सभी रुग्णावस्था में ही रचे गये। संस्कार-दीपक, अन्त्यकर्म-दीपक, वर्षकृत्य-दीपक, कात्यायन श्रौतसूत्र (११ अध्याय तक टिप्पणी), जैमिनीसूत्र के ऊपर टिप्पणी तथा लघुशब्देन्दुशेखर पर 'दीपक' नामक टीका इनके मुख्य ग्रन्थ हैं।

काशी में अन्य जातियों की अपेक्षा पर्वतीय समुदाय बहुत ही छोटा है। स्थायी रूप से निवास करने वाले केवल ६।७ परिवार हैं। इनमें से प्रत्येक के पूर्वज अपने समय में प्रतिष्ठा और ख्याति के भागी हुए हैं। इस समय भी कुछ अच्छे संस्कृत के विद्वान् हैं और आशा है कि समय पाकर ये भी प्रतिष्ठित होंगे। काशी में संस्कृत तथा अँग्रेजी पढ़ने वाले पर्वतीय छात्रों की संख्या ३०० के होगी। काशी विश्वविद्यालय में तथा इससे सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं में लगभग ७ अध्यापक तथा १०० विद्यार्थी होंगे। पर्वतीयों की काशी में एक 'पर्वतीय धर्मशाला' भी है। और जातियों की अपेक्षा पर्वतीय बहुत ही कम संख्या में और बहुत पीछे आये। काशी में आने वाले पर्वतीय अपने साथ केवल विद्या ही लाये और विद्या के बल पर उनका यथेष्ट सम्मान हुआ। काशी की विद्या-प्रगति में पर्वतीयों का योगदान कम नहीं है। जहाँ काशी की वैभव-वृद्धि में दूसरी जातिवाले अनेक प्रकार से सहायक हुए, वहाँ थोड़े से पर्वतीय जो काशी में आये और बसे, शास्त्र तथा साहित्य की सेवा कर संस्कृतराशि-भण्डार को अपनी कृति के द्वारा परिवर्धित कर गये।

काशी के गुजराती

लेखक—श्रीयुत श्यामलाल-भैरवलाल मेढ़, एम० ए०, एल-एल० बी०

पहला गुजराती कब और किस लिये यहाँ आया—यह कहना कठिन है और इस विषय की अधिक चर्चा भी यहाँ करना अनावश्यक है। अन्तर-प्रान्तीय सम्बन्ध भारत में. बहुत पुराने समय से चला आता है और यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भारतवर्ष में एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में आना-जाना जिस युग में प्रारम्भ हुआ, उसी युग से गुजराती भी यहाँ आने लगे। शुरू में कदाचित् स्थायी रूप से कोई गुजराती-कुटुम्ब यहाँ न रहा; परन्तु धीरे-धीरे दो-चार कुटुम्बों ने यहीं बस जाने में लाभ देखा। कोई वानप्रस्थी यहाँ मरने की इच्छा से आकर रहता। अपने देश से आये हुए यात्रियों के लिए श्राद्धादि का उचित प्रबन्ध कर उन्हें प्रसन्न करना उन्होंने धनोपार्जन का अच्छा मार्ग समझा। इन्हीं में से कोई गुजराती, विद्यार्थी और व्यापारी का स्वागत कर चार पैसे पैदा कर लेता। इस प्रकार अनेक उद्देश्य से गुजराती यहाँ आकर बस गये। काशी के गुजरातियों के पास जो कागजात हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि सबसे पुराना कुटुम्ब यहाँ श्रोत्रिय और कर्मकाण्डी. ब्राह्मणों का ही है। वैश्य और नौकरी करनेवाले लोग, प्रायः मुसलमानों के समय में आये। नौकरी के कारण अपने देश से निकलकर मालवा, दिल्ली, आगरा, और लखनऊ होकर काशी में आनेवाले कई गुजराती कुटुम्बों का इतिहास बड़ा ही रोचक है।

गुजरातियों ने धीरे-धीरे काशी में एक अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया। नगर के प्रायः एक ही भाग में ये रहते थे और इनमें आपस में बड़ा मेल रहता था। कोट और द्वारबन्दियों से सुरक्षित मोहल्लों में गुजराती ललनाएँ स्वच्छन्दता से अपने त्यौहार और उत्सव मनाती थीं। इन्हीं मुहल्लों में बैठे गुजराती पंडित विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। यहीं पर गुजराती व्यापारियों की पेढ़ियाँ—कोठियाँ—थीं और इन्हीं मुहल्लों के किसी प्रासाद में बैठा गुजराती-राजनीतिज्ञ राजनीति की उलझन सुलझाया करता था।

इस समय काशी में करीब २००० गुजराती हैं और इनमें मुख्यतः दो ही वर्ण के लोग हैं, ब्राह्मण और वैश्य। ये सब शहर के पक्के महालों में ही रहते हैं। ब्राह्मणों में नागर, खेड़ावाल, औदीच्य, मोढ़ आदि मुख्य जातियाँ हैं और इसी प्रकार वैश्यों में भी उपजातियाँ हैं। ब्राह्मण और वैश्यों की उपजातियों का पृथक्-पृथक् उल्लेख करने से और प्रत्येक के विषय में विस्तारपूर्वक बातें लिखने से इस लेख के बहुत बढ़ जाने का डर है; अतः यहाँ काशी के गुजरातियों की संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ मुख्य बातों का.ही उल्लेख किया जायगा।

काशी के गुजराती-जीवन की एक विशेष बात उसकी भाषा है। गुजराती-कुटुम्ब अपने साथ अपने रीति-रिवाज और अपनी मातृभाषा को भी लेते आये। इतना ही नहीं, सैकड़ों वर्षों से अन्य प्रान्त में रहकर भी उन्होंने अपने रीत-रिवाज और अपनी भाषा को क़ायम रक्खा। भाषा का यह ऐक्य कुल गुजरातियों को एक सुवर्ण सूत्र में बाँधे हुए है। सब के सामने वह मातृभूमि की मनोहर मूर्ति खड़ी कर देता है। स्थल और काल भी भाषा के इस प्रेम को न हिला सके। स्थानीय भाषाओं के शब्द कभी-कभी व्यवहार में लाये जाते हैं। शब्दोच्चारण के तर्ज़ में कभी-कभी स्थानीय असर देख पड़ता है, और कितने गुजराती अपनी भाषा को —देवनागरी - लिपि—में लिखते हैं; परन्तु भाषा सर्वदा वही रहती है। गुजरात के रहने वाले कदाचित् काशी के किसी गुजराती की भाषा सुनकर हँसें; परन्तु उनको स्मरण रखना चाहिये कि उनके पुरखे भी किसी समय ऐसी ही गुजराती बोलते थे। काशी के गुजरातियों की भाषा उस समय की है, जिस समय वे अपना देश छोड़ कर यहाँ आये। तब से आज तक भाषा का जो विकास गुजरात में हुआ, वह यहाँ नहीं हो सकता था। यहाँ तो गुजरातियों ने अपनी भाषा को ज़ीवित रक्खा, यही एक आश्चर्यजनक काम किया, जिसके लिये वे सर्वथा बधाई के पात्र हैं।

अपनी मातृभाषा गुजराती होते हुए भी यहाँ के गुजरातियों ने संस्कृत, हिन्दी, फारसी आदि अन्य भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त की। उन्होंने इन भाषाओं में अनेक ग्रंथ लिखे। कितने पण्डितों ने संस्कृत में भाष्य और टीकाएँ

लिखीं। कितनों ने स्वतंत्र ग्रंथों की रचनाएँ कीं। कुछ विद्वानों ने फ़ारसी में तवारीख लिखीं। कुछ काव्यरसिक कवियों ने हिन्दी में कविताएँ बनाईं और भजन तैयार किये। सब पुस्तकों और विद्वानों का उल्लेख यहाँ नहीं हो सकता; अतः कुछ मुख्य-मुख्य नाम यहाँ दिये जायँगे। सत्रहवीं शताब्दी में काशी-निवासी देवभद्र पाठक ने श्रौतस्मार्त ग्रन्थों पर अनेक भाष्य और टीकाएँ लिखीं और वेदान्त के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वेदान्तसार' पर 'सुबोधिनी' नाम की टीका संस्कृत में लिखी। कदाचित इन्हीं के वंश में आगे चल कर विद्वान् वामनभद्र पाठक ने जन्म लिया। वामनभद्र एक विख्यात मंत्रशास्त्री और कर्मकाण्डी थे और उनकी ख्याति पेशवा के दरबार तक थी। काशी के इस पाठक-कुटुम्ब में और भी अनेक विद्वान् हुए, जिन्होंने काफी संपत्ति और यश कमाया। इनके वंशज अब भी काशी में विद्यमान हैं। कितनों की यह मान्यता है कि फारसी में औरंगजेब के समय का प्रसिद्ध इतिहास लिखने वाले ईश्वरदास ने अपने बहुमूल्य ग्रन्थ का अधिक भाग वानप्रस्थ-जीवन बिताते हुए काशी ही में लिखा। प्रेमरंगजी के नाम से हिन्दी के प्रेमी परिचित हैं। काशी की पंचक्रोशी में होने वाली रामलीला में आज भी प्रेमरंगजी के भजन प्रेम से गाये जाते हैं। इनके शिष्य इन्द्रदेवजी नागर ब्राह्मण ने 'आभास-रामायण, आदि ग्रन्थों की रचना हिन्दी में की। नागर कवि रायचन्द की कृतियों को प्रायः प्रत्येक हिन्दी-काव्य-प्रेमी जानता है। हरिकुँवर उर्फ मन्मन बाई की विद्वत्ता, तत्वचिकित्सा और लेखन-शक्ति से काशी के बहुत लोग परिचित हैं। इनके अतिरिक्त सूर्यनाथ त्रिपाठी और कृपाराम के भजन अभी तक गाये जाते हैं। आधुनिक समय में भी काशी का गुजराती समाज विद्वानों से रहित नहीं हैं। ज्योतिष में दाऊजी दीक्षित, कर्मकाण्ड में कन्हैयाजी दीक्षित तथा शंकरजी त्रिपाठी, हिन्दी-लेखन और अध्यापन में पं० साँवलजी नागर का स्थान ऊँचा है। सुन्दरदेवजी ज्योतिषी का कार्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत है। काशी की संकुचित सीमाओं में इनकी महत्वाकांक्षा परिमित न रह सकी और उन्होंने बंबई को अपनाया। बाहर रहने पर भी काशी की जो साहित्य-सेवा उन्होंने की है, वह हम भूल नहीं सकते। इस जगह 'लीडर' पत्र के सुयोग्य संपादक पं० कृष्णाराम मेहता का नाम भी उल्लेखनीय है। पं० महीपतरामजी भी काशी की विभूति हैं।

गुजरातियों के सामाजिक जीवन में यद्यपि इस प्रान्त का काफी असर पड़ा है, तथापि मूल विशेषताएँ लुप्त नहीं हो गई हैं। उनका रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि सब गुजरात के ही हैं। घर, जो सामाजिक जीवन का एक प्रधान अंग है, वह अभी ज्यों-का-त्यों बना है। स्थानीय असर उसे नहीं बदल सका। घरों में गृहस्वामिनी का प्राधान्य है और इन्हीं गुजराती महिलाओं ने अपनी संस्कृति को यत्नपूर्वक बचा रक्खा है। स्त्रियाँ सर्वदा आपस में और ज्ञातीय बन्धुओं से गुजराती ही में बोलती हैं और भाषा को भी बचा रखने का श्रेय उन्हीं को है। कुटुम्ब, ज्ञातीय रीति-रिवाज और कायदों में स्त्रियों का जो प्रधान स्थान गुजरात में है, वही यहाँ के गुजरातियों में भी है। यद्यपि कुछ गुजराती कुटुम्ब की स्त्रियों ने औरों की देखादेखी चादर और दुपट्टे ओढ़ने की प्रथा चलाई है, तथापि परदे का रिवाज गुजरातियों में बहुत कम है। और अब तो धीरे-धीरे बिलकुल ही अदृश्य हो रहा है। गुजरातियों के ब्राह्मण भोजन, उनकी ब्याह-शादी और उनके गरबे काशी में प्रख्यात हैं।

काशी के सामाजिक जीवन में भी गुजरातियों का स्थान आगे ही है। अन्तर प्रान्तीय समागम से गुजरातियों के हृदय सर्वदा से विशाल हैं। समय के महत्व को वे अच्छी तरह से जानते और समाज-सुधार के काम में कितने गुजराती कुटुम्ब सर्वदा से अग्रणी रहे हैं। काशी की सार्वजनिक संस्थाओं को, चाहे वह धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक हों, गुजरातियों से काफ़ी सहायता मिली है। म्युनिसीपैलिटी के प्रारंभिक जीवन में जो उत्साह राय हरिदास उर्फ श्री बुआसाब और राय नरोत्तमदासजी ने दिखलाया वह प्रशंसनीय है। राय नरोत्तमदासजी ने तो म्युनिसीपैलिटी के कार्यों में शारीरिक कष्ट भी बहुत उठाया है। गुर्जर पाठशाला, बल्देवदास-ठाकुरदास एन्डाउमेन्ट ट्रस्ट आदि अनेक लोकोपकारिणी संस्थाओं के जन्म रायसाहब के ही अपूर्व उत्साह और परिश्रम से हुए। काशी की सेवासमिति डारविन पिल्ग्रिम ट्रस्ट आदि संस्थाओं की उन्नति में भी गुजरातियों का काफी हाथ रहा है।

राजा मुंशी माधवलाल के भाई मुंशी साधोलाल के नाम पर दी गई चालीस हजार की रकम के सूद से आज भी अनेक विद्यार्थी संस्कृत का अभ्यास कर रहे हैं। स्वर्गवासी राय बहादुर केप्टन कुमार मुंशी नन्दलाल ने कितने विद्यार्थियों को पढ़ाया, कितने गरीब और अनाथ कुटुम्बों का पालन किया और मुसीबत के समय छोटे बड़े कितने नागरिकों की सहायता की, यह तो भुक्तभोगी ही जानते हैं। सामाजिक सुधार में भी गुजराती सबसे आगे रहे हैं। काशी से सर्व प्रथम विलायत जाने वाले पं० बिहारीलालजी मेढ़ गुजराती ही थे और जिस धैर्य, सहिष्णुता और दृढ़ता से आपने स्थिति को सँभाला वह उनके गुणों का द्योतक है। उनके बाद तो अनेक गुजराती सद्‌गृहस्थ विलायत हो आये। पं० बिहारीलालजी के विलायत से लौट आने पर कुछ ब्राह्मणों ने जो जाति-बहिष्कार का आन्दोलन उठाया, उसमें दूरदर्शिता से काम करने वाले पं० लक्ष्मण द्विवेदी का उल्लेख यहाँ करना आवश्यक है। पं० लक्ष्मणजी द्विवेदी नागर ब्राह्मण थे। अपने समय के काशी के इने-गिने कार्य-चतुर और समझदार व्यक्तियों में उनका ऊँचा नाम है। समग्र ऋग्वेद का उन्होंने सफलता-पूर्वक हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है। उनके अनेक गुण उनके सुयोग्य पुत्र पं० साँवलजी ने विरासत में पाये, यह प्रायः सब लोग जानते हैं।



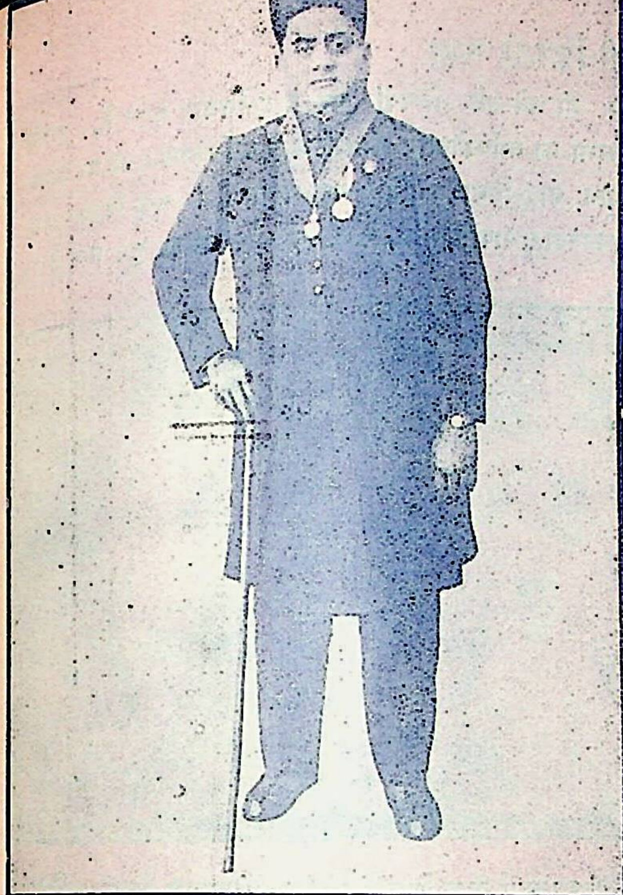
स्वर्गीय राजा मुंशी माधवलालजी

काशी के गुजरातियों का मुख्य काम व्यापार और नौकरी है। व्यापार और नौकरी से ही कितनों ने बड़ी-बड़ी ज़मीन्दारियाँ खरीद ली हैं। कुछ लोग अब भी यजमानी और कर्मकांड का काम करते हैं। यजमान वृत्ति करने वाले गुजराती ब्राह्मणों में पं० शंकरजी दीक्षित का कुटुम्ब उल्लेखनीय है। यह कुटुम्ब बहुत पुराना है और इसे अच्छे-अच्छे यजमानों का आश्रय मिला है। भारत के मध्यकालीन इतिहास में नागरों का नाम सुवर्ण के अक्षरों में लिखा गया है। गुजरात और काठियावाड़ में तो इस ज्ञाति के राजनीतिज्ञों का प्राधान्य था ही, मध्य भारत, दिल्ली और हाल के संयुक्त प्रान्त में भी इनका काफी जोर था। बादशाह फरुखशियर और मुहम्मदशाह के दाहिने हाथ राजाबहादुर छबीलाराम नागर थे। राजा छबीलाराम के कुटुम्ब के पुरोहित पं० शंकरजी दीक्षित के ही पूर्वज थे। राजा छबीलाराम और उनके भाई राजा गिरधरबहादुर ने सिद्धेश्वरी मुहल्ले की नीची ब्रह्मपुरी को बनवाकर संवत् १७७२ माघ कृष्ण ३० रविवार को अपने पुरोहित पं० शंकरजी दीक्षित और पं० इन्द्रजी दीक्षित को दान दे दिया। जिन सोने-चाँदी के बर्तन और जवाहिरात के साथ ब्रह्मपुरी दान में मिली, उनमें के कितने बर्तन और जवाहिरात अभी तक पं० शंकरजी और उनके

सम्बन्धियों के पास हैं। पाठक-कुटुम्ब का उल्लेख ऊपर हो चुका है। व्यापार करने में गुजराती वणिक-वर्ग ने अच्छी सफलता प्राप्त की। इनमें से कितने लखनऊ, फैजाबाद और मुर्शिदाबाद के नवाबों के आश्रित थे और उनकी कृपा से विपुल धन कमाया। ब्राह्मणों में व्यापार करने वाली खेड़ावाल जाति है, जिसने जवाहिरात और जेवरात के धन्धे में काफी यश और धन उपार्जित किया है। खेड़ावालों का जोशी कुटुम्ब प्रख्यात है और पं० दामोदरजी जोशी इस समय भी काशी के सर्वोत्तम जौहरी गिने जाते हैं। महाराजा बनारस को छोड़कर काशी में मुंशी बेनीलाल और मुंशी माधवलाल सबसे बड़े जमीन्दार थे। नौकरी के क्षेत्र में भी गुजरातियों को असाधारण सफलता मिली है। काशी में आकर बसे हुए नागर कुटुम्बों में से स्थानेश्वर नाम के एक नागर गृहस्थ के वंशज साढ़ और उसके पुत्र वामन और स्कन्द बारहवीं शताब्दी में अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के मंत्री और सेनापति थे। राजनीति और नौकरी की उलझन सुलझाने में नागर जाति अपना सानी नहीं रखती। राजा छबीलाराम के पहले से ही नागरों का प्रभुत्व मालवा और दिल्ली की शाहनशाही पर पड़ने लगा था। अपनी तलवार और प्रतिभा के बल से इज्जत और सत्ता प्राप्त करने वाले राजा बहादुरजी संयुक्त प्रान्त में बस गये। उनके वंशजों ने फैजाबाद और लखनऊ के नवाबों की, एक निष्ठा से सेवा की। उन्हीं के एक वंशज भवानीलालजी मेहता सन् १८०१ ई० में बनारस में आकर बसे। इनके तीन पुत्र हुए—लाला लक्ष्मीलाल, लाला गोविन्दलाल और लाला गिरधरलाल। लाला लक्ष्मीलाल ने वकालत में अच्छा धन कमाया। लाला गिरधरलाल के लाला बेनीलाल नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। लाला बेनीलाल के पुत्र प्रख्यात मुंशी माधवलालजी और मुंशी साधोलालजी थे। काशी के नागर गृहस्थों के प्रायः अधिकांश कुटुम्ब इन्हीं मेहता भवानीलाल के वंशज हैं। राजा मुंशी माधवलाल के नाम से काशी-निवासी प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। उनके परिचय के विस्तार को बढ़ाने से कोई लाभ नहीं। उनके दौहित्र राय बहादुर कैप्टन कुंवर नन्दलालजी ने तो काशी-निवासियों के हृदय में अमर स्थान प्राप्त कर लिया है। काशी के प्रथम बैरिस्टर पं० बिहारीलालजी मेढ़ गुजराती थे। काशी में सर्वप्रथम इम्पीरियल स वस प्राप्त करने वाले राय बहादुर जगन्नाथप्रसाद मेहता आज भी नौकरी से निवृत्त होकर काशी-वासियों की सेवा कर रहे हैं। बनारस के वकील श्री बेनीराम पंडित के नाम से भी बहुत से काशी-निवासी परिचित हैं। सन् १७८१ ई० में काशी के राजा चेतसिंह को गद्दी से उतारने के कारण काशी में जो बलवा हुआ, उसमें तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स की जान बचाने वाले यही बेनीराम पण्डित तथा विशम्भर पण्डित थे। कहा जाता है कि इस कार्य के उपलक्ष में सरकार ने उन्हें पचीस हजार रुपये साल की जागीर इनाम में दी। गंगा किनारे बना हुआ गंगा-महल नाम का भव्य प्रासाद इन्हीं पं० बेनीरामजी की पत्नी का बनवाया हुआ बतलाया



स्वर्गीय कुं० नन्दलालजी

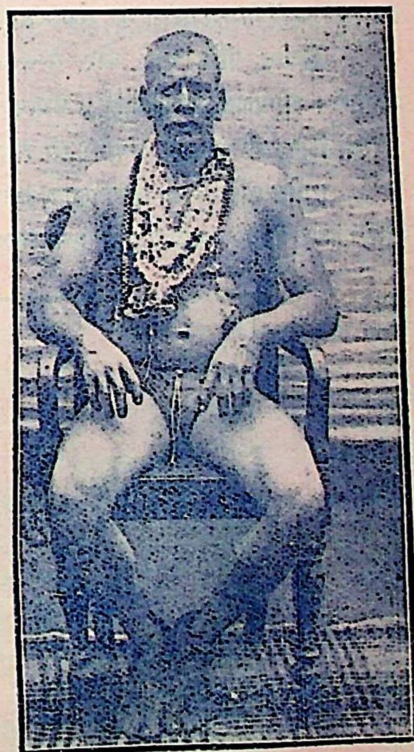




श्री श्यामलालजी मेड़, एम० ए० एल-एल० बी०
'काशी के गुजराती' लेख के लेखक

श्रीयुत राजा मोतीचन्दजी, सी. आई. ई.

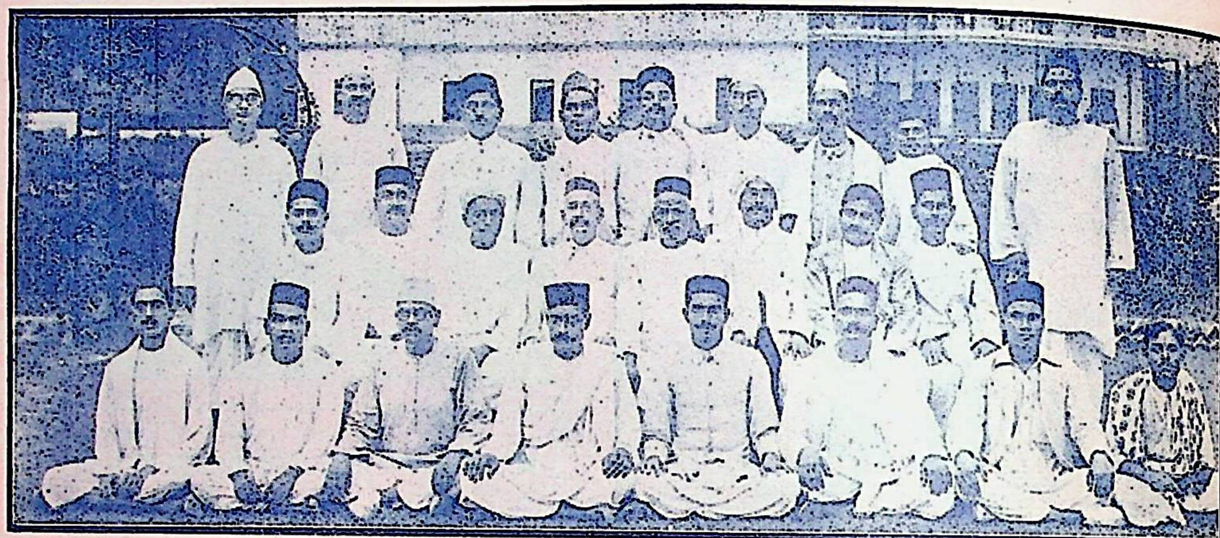




जगत्सेठ

काशी की चलती-फिरती सभा

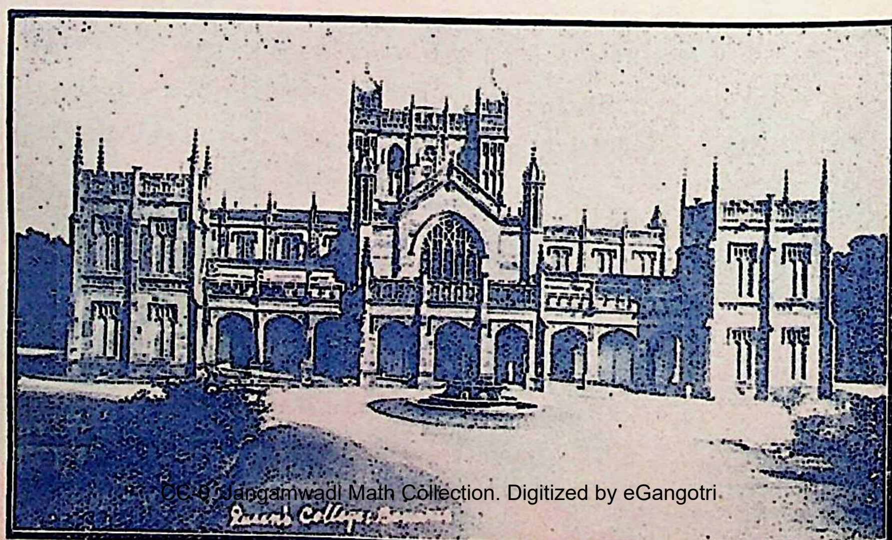
इस सभा के सदस्य प्रातःकाल दो घण्टा चल-फिरकर नित्य ही नये-नये विषयों पर वाद-विवाद करते हैं, इसके अधिवेशन और विशेष अधिवेशन सब चलते-फिरते होते हैं। सभा का वार्षिकोत्सव गंगाजी में एक विशाल बजरे पर होता है। दर्शकों व आमन्त्रित सज्जनों को भी चल-फिर कर ही व्याख्यान, वाद-विवाद आदि सुनना पड़ता है। चल-फिरकर कुल काम करने में सभा का उद्देश्य स्वास्थ्य-सुधार से है। सभा में बाकायदा सभापति, मंत्री, खजानची और सदस्य चुने जाते हैं।



खड़े हुए बाईं ओर से—श्री ज्ञानचन्द्रजी, आप पंजाब आयरन वर्क्स के मालिक हैं। श्रीरामशंकरलाल कस्तूरी मर्चेण्ट। श्री ऊँसिंह भाई बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्रीरामलुभाया आरोड़ा, जर्मन सिलवर की चद्दर के व्यापारी। श्रीविश्वेश्वर नाथजी, खजानची इम्पीरियल बंक आफ इंडिया। श्री देवीप्रसाद, बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री संकठाप्रसाद सेठ, बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री शंकरप्रसाद तिवारी। श्री अमरनाथजी।

द्वितीय पंक्ति बाईं ओर से—श्री चुन्नीलालजी। श्री गौरीशंकरप्रसाद। सेठ हरिबख्शजी बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री पन्नालालजी जौहरी, सभापति। सेठ हजारीलालजी गोटावाले। श्री रामस्वरूपजी वैद्यशास्त्री। श्री मङ्गलीप्रसाद अवस्थी सिल्क के व्यापारी, मन्त्री। श्री रामरतनमल, बनारसी कपड़े के व्यापारी।

तृतीय पंक्ति—श्री शिवप्रसाद, बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री बलदेवदास, बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री कमल-नाथ, कागज के बड़े व्यापारी। श्री छगनलाल, बनारसी कपड़ों के व्यापारी। श्री हनुमानदास। श्री गोपालदास। श्री वेदराम।

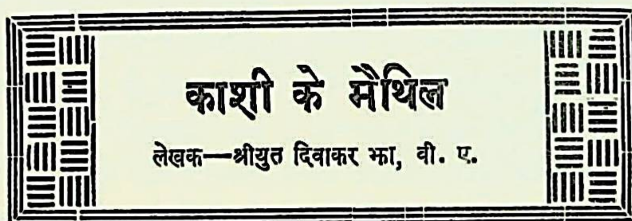


जाता है। इन्हीं के वंश में आज राव वैजनाथदास शापुरी विद्यमान हैं। लब्धप्रतिष्ठ श्री सालिगराम-वल्लभराम के नाम से भी काशी के लोग परिचित हैं। यद्यपि आजकल उनके कुटुम्ब का कार्य-क्षेत्र कलकत्ते में है, तथापि उनके किये हुए उपकार को काशी-वासी भूल नहीं सकते। इन्हीं का स्थापित किया हुआ सांगवेद-विद्यालय उनकी कीर्ति को अमर बना रहा है। वैद्यों में मधुवनदास-द्वारकादास का कुटुम्ब, राणासाव वालों का कुटुम्ब और राय हरकृष्णदास तथा राय नरोत्तमदासजी के कुटुम्ब अब भी कीर्ति-सम्पादन कर रहे हैं। स्वर्गीय बा० पुरुषोत्तमदास कलकत्ते वाले भी एक साधु पुरुष थे। उनका निरभिमान व्यवहार, सादगी और उपकार-वृत्ति अनुकरणीय हैं। ऑनरेरी मुन्सिफ़ बा० माधवलालजी भी गुजराती हैं। काशी के डाक्टरों में डाक्टर शोभाराम का स्थान बहुत ऊँचा है। डाक्टरी द्वारा विपुल धन और सम्मान प्राप्त करने का लोभ छोड़ आजकल वे आध्यात्मिकता की ओर खिंचे जा रहे हैं। नवयुवक नौकरी करने वालों में प्रोफेसर राजेन्द्रलाल मेढ़, हिन्दू स्कूल के उत्साही असिस्टेन्ट हेडमास्टर पं० सम्पतरामजी, श्री रमाशंकर जानी, श्री हरिराम दीक्षित, पं० वल्लभनाथ दुवे, श्री विट्ठलनाथ दवे, श्री मणी लाल वच्छ राजानी के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री जयकृष्णदासजी की ओर से जो संस्कृत-साहित्य का अनुपम उपकार हुआ है, वह श्लाघनीय है। उनकी चौखंभा-संस्कृत-सीरीज के लिये संस्कृत-जगत् ऋणी है।

काशी के गुजराती मुख्यतः वैष्णव और शैव हैं। वैश्य-वृन्द प्रधानतः वैष्णव हैं और ब्राह्मण-मण्डली शैवमत को मानती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो विष्णु और शिव दोनों के उपासक हैं। ब्राह्मणों में सर्वोत्तम स्थान नागरों का है और इनके ज्ञाति-देवता भगवान् हाटकेश्वर हैं। समय के परिवर्तन से नवयुवकों का एक ऐसा भी दल तैयार हो रहा है, जो धर्म की पुरानी व्याख्या को और ज्ञाति के असामयिक प्रतिबन्धों को मानने के लिये तैयार नहीं। वह धर्म, राजनीति और समाज-सुधार के नये-नये स्वप्न देखता है और अपने आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिये बड़े-से-बड़ा स्वार्थ त्याग करने को तैयार है।

मिथिला देश भारत-विख्यात है। विदेह जनक के पूर्वजों में मिथि नामक एक प्रतापी राजा हुए, इसी से इस देश का नाम मिथिला पड़ा। जगज्जननी जानकी इसी देश में उत्पन्न हुईं, जिसके कारण उनका एक नाम मैथिली भी पड़ा। मिथिला की सभ्यता और संस्कृति अति प्राचीन है। यह प्रान्त विद्या तथा धर्म के लिये प्रसिद्ध रहा है। अध्यात्म-ज्ञान में यह देश इतना आगे बढ़ा था कि देहधारी होने पर भी इस देश के राजा जनक 'विदेह' कहलाते थे। न्यायसूत्र प्रणेता गौतम मुनि इसी देश में हुए। उदयन, वाचस्पति मिश्र, गंगेश उपाध्याय आदि मैथिल आचार्यों के ही द्वारा न्याय-शास्त्र का प्रसार तथा प्रचार हुआ। स्मृतिकार याज्ञवल्क्य इसी मिथिला में हुए। सारे भारत में और मिथिला के अति निकट बिहार प्रान्त में भी — जिसका नामही बौद्ध-बिहारों के कारण बिहार पड़ा—जब बौद्धधर्म का प्रचार जोरों पर था, तब भी मिथिला-प्रान्त अपने प्राचीन धर्म पर डटा रहा। बौद्धधर्म का निराकरण और सनातनधर्म का प्रतिपादन करनेवाले कुमारिलभट्ट इसी मिथिला में उत्पन्न हुए। इस देश में एक से बढ़कर एक न्याय और मीमांसा के आचार्य हुए। विद्यापति ठाकुर की जननी भी मिथिला-भूमि ही है। तान्त्रिक युग में तन्त्रशास्त्र में मैथिलों ने बड़ी दक्षता प्राप्त की और फलतः देशी रियासतों में शायद ही कोई ऐसी हो, जहाँ मैथिल तान्त्रिकों के वंशज आज भी सगौरव पूजित न होते हों।



मिथिला के लोगों को किसी दूसरे प्रान्त में जाकर विद्याध्ययन करने की आवश्यकता नहीं थी। क्रमशः काल की गति बदली। क्रमशः मिथिला के लोग भी न्याय पढ़ने के लिए उस नवद्वीप को जाने लगे, जहाँ के पंडितों को सब दिन मैथिलों ने अपना शिष्य बनाया था। मीमांसा की विद्वत्ता मैथिलों में बहुत दिन बाद तक भी बनी रही। पहले मैथिलों में व्याकरण पढ़ने की प्रथा कम थी। जो थोड़े से लोग इस शास्त्र से रुचि रखते थे, उन्हें पढ़ाने के लिये मिथिला में व्याकरणाचार्यों की भी कमी नहीं थी। धीरे-धीरे मैथिलों ने व्याकरण तथा अन्य शास्त्रों के अध्ययन के लिये काशी आना आरम्भ किया।

'सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ मैथिल उत्कलाः'
ये पञ्च गौड़ ब्राह्मण कहलाते हैं और इसीलिये मैथिल शब्द का अब तक यही मूल अर्थ बना है।

काशी में नागेश भट्ट के समय से व्याकरण-शास्त्र का रूपान्तर हो गया। पहले शास्त्र-रूपेण इसका अध्ययन प्रचलित नहीं था। भट्टोजी दीक्षित ने प्रचलित सिद्धान्त-कौमुदी लिखकर व्याकरण को जटिल बना दिया। बाद में नागेश भट्ट ने तत्सम्बन्धी और क्लिष्ट ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस शास्त्र का अब ऐसा रूप हो गया है, कि ९९ फी सदी छात्रों की जिन्दगी केवल व्याकरण शास्त्र के ही अध्ययन में बीत जाती है। नागेश भट्ट के शिष्य-प्रशिष्यों में राजाराम शास्त्री, बाल शास्त्री, दामोदर शास्त्री, गंगाधर शास्त्री, तात्या शास्त्री इत्यादि प्रसिद्ध पण्डित हुए, जिनसे व्याकरण का अध्ययन करने को मैथिल भी काशी आने लगे।

महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री तथा महामहोपाध्याय सुधारकर द्विवेदी आदि अद्वितीय ज्योतिपाचार्यों से ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करने को भी मैथिलों का काशी आना आरम्भ हुआ।

मैथिल परम आस्तिक और अति अपरिग्रही होते [illegible] हैं। आरम्भ में जब ये काशी आने लगे, तब इनकी यही चेष्टा रहती थी, कि काशी क्षेत्र में किसी से कोई सहायता न लें। घर से ही ये अपना खर्च चलाते थे।

दरभंगा के मैथिल महाराज ने यह प्रस्ताव किया कि मैं काशी में एक अन्नसत्र स्थापित करता हूँ, जिसमें मैथिल भोजन करें। मैथिलों को यह प्रस्ताव ग्राह्य नहीं हुआ। विवश होकर महाराज को अपने सत्र में संन्यासियों को भोजन देने का प्रबन्ध करना पड़ा, जो प्रथा अब तक प्रचलित है।

आज से कोई बीस ही वर्ष पहले बनैली की मैथिल रानी पद्मावती महोदया ने तारा-मन्दिर नामक एक संस्था की प्रतिष्ठा की थी। उस मन्दिर के प्रतिष्ठा-यज्ञ के समय हुए भोज में सम्मिलित होने को खुशामद करने पर भी

मैथिल नहीं राज़ी होते थे। काशी में परान्न भोजन को वे इतना हेय समझते थे!

मैथिलों को सरकारी नौकरी करने या सरकारी छात्र-वृत्ति लेने में भी शुरू-शुरू में बड़ी आपत्ति थी। कहते थे, कि म्लेच्छों का धन अग्राह्य है। पण्डित विश्वनाथ झा नैयायिक को क्वीन्स कॉलेज के प्रिन्सिपल ग्रिफ़िथ साहब ने कॉलेज में अध्यापन करने को कहा, तो आपने अस्वीकार कर दिया। अब जमाना बदल गया है।

क्वीन्स कॉलेज में सबसे पहले मैथिल अध्यापक हुए पंडित दीनानाथजी मिश्र। फिर महामहोपाध्याय मुरलीधर झा ज्योतिषाचार्य एवं पण्डित जीवनाथ मिश्र नैयायिक भी उसी कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए। पश्चात् महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा क्वीन्स कॉलेज के संस्कृत-विभाग के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए। इस कॉलेज के सर्वप्रथम भारतीय प्रिन्सिपल आपही हुए और यहीं से प्रयाग-विश्व-विद्यालय के वाइस चांसलर होकर गये। काशी में आपने अपना घर भी बना लिया है।

सम्प्रति काशी में तीन श्रेणी के मैथिल हैं। प्रथम विद्यार्थी, द्वितीय काशीवास करने आये हुए अथवा किसी रोजगार में लगे हुए लोग और तृतीय इन लोगों से उपजीवित वर्ग। इन तीनों वर्गों की संख्या लगभग ५०० के है।

विद्यार्थियों में पहले सब संस्कृत पढ़ने वाले ही होते थे। अब हिन्दू-विश्व-विद्यालय तथा अन्य विद्यालयों में अंग्रेजी पढ़ने वाले भी बहुत हैं। मैथिल विद्यार्थी तीक्ष्णधी होते हैं; इसलिये अध्यापकों का इनपर सहज स्नेह होता है। छात्रों की संख्या करीब ३०० के होगी।

काशी के विभिन्न प्रसिद्ध संस्कृत और अंग्रेजी विद्यालयों में अनेक मैथिल अध्यापक भी हैं। क्वीन्स कॉलेज में १, गोयनका-विद्यालय में ३, हिन्दू-विश्व-विद्यालय में ३, टीकमणी कालेज में १, तथा अन्यान्य विद्यालयों में भी मैथिल अध्यापक हैं।

महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमारजी मिश्र के बाद मैथिल महामहोपाध्याय पंडित जयदेव मिश्र की विशेष ख्याति हुई। आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय की शोभा बढ़ाते थे। शास्त्रार्थ में अद्वितीय थे। आपके बनाये कई अच्छे-अच्छे ग्रन्थ हैं। सम्प्रति मैथिल पंडित बालकृष्णजी मिश्र हिन्दू-विश्व-विद्यालय के प्राच्यविद्या-विभाग के उपाध्यक्ष (वाइस प्रिंसिपल) हैं।

काशी में मैथिलों के कई अन्नसत्र हैं, जहाँ केवल मैथिलों को ही भोजन मिलता है। पुर्निया जिले के बनैली राज्य की ओर से तीन सत्र हैं— (१) काली-मंदिर, (२) तारा-मंदिर और (३) श्यामा-मंदिर। काली-मंदिर में प्रति-दिन प्रायः दस व्यक्तियों को और तारा-मंदिर में प्रति दिन पचास को नियमित रूप से भोजन मिलता है। इन पचास के अतिरिक्त यदि और पचास भी मैथिल-अतिथि आ जायँ, तो उनको तीन दिनों तक भोजन देने की व्यवस्था है। श्यामा-मंदिर की प्रतिष्ठा अभी कई साल पहले रानी चन्द्रावती ने की है और इस सत्र में भी तारा-मंदिर के ही अनुकरण का आयोजन धीरे-धीरे हो रहा है। अब इन सत्रों में, न केवल गरीब मैथिल-विद्यार्थी हैं; बल्कि बहुत-से ऐसे मैथिल अध्यापक भी हैं, जिन्हें नौकरी से निश्चित आय होती है; पर वे नियमित रूप से भोजन करने में संकोच नहीं करते।

दरभंगा की महारानी श्रीमती लक्ष्मीवती साहबा आज पन्द्रह वर्षों से क्षेत्रन्यास-पूर्वक काशीवास कर रही हैं। जब से आप यहाँ रहने लगी हैं, तबसे आपका आश्रय पाकर बहुत से मैथिल स्त्री-पुरुष यहाँ रहते हैं। महारानी साहबा की ड्योढ़ी में भी एक अन्नसत्र है और वहाँ भी बहुत-से मैथिल भोजन पाते हैं। महारानी की ओर से बाँसफाटक पर एक विशाल राममन्दिर बन रहा है। इस मन्दिर में भी नियमित रूप से अन्नसत्र चलाने का प्रबन्ध किया जायगा।

काशी से मैथिलों का 'मिथिलामोद' नामक मैथिली भाषा का एक मासिक-पत्र भी प्रकाशित होता था, जो उन्नीस वर्षों तक चलकर बन्द हो गया। इस पत्र का सञ्चालन मैथिल-विद्वज्जन-समिति की ओर से होता था और इसके सर्वेसर्वा थे—महामहोपाध्याय पण्डित मुरलीधरजी झा।

महारानी लक्ष्मीवती-छात्रावास में, मीरघाट पर, 'भारती निकेतन' नामक एक पुस्तकालय और वाचनालय भी है।

मैथिल छात्रों की एक व्याख्यान-समिति भी स्थापित है, जिसमें प्रतिमास विविध विषयों पर हिन्दी तथा मैथिली में मैथिल-छात्रों का व्याख्यान होता है और सर्वोत्तम व्याख्यान-दाता को महारानी लक्ष्मीवती की ओर से पाँच

रुपया पुरस्कार दिया जाता है। यह समिति छात्रों से अच्छे-अच्छे लेख लिखाने का प्रबन्ध करती है और सुलेखकों को पुरस्कार भी दिया जाता है।

मैथिल-सेवक-संघ के नाम से मैथिलों की एक सेवा-समिती भी है। यह संघ ग्रहण आदि के मेले के अवसर पर मिथिला देश से आये यात्रियों की सुविधा का प्रबन्ध करता है। इस संघ को भी महारानी लक्ष्मीवती से समय-समय पर विशेष सहायता मिलती है।

हिन्दू-विश्व-विद्यालय में अँगरेज़ी और संस्कृत पढ़ने वाले जो छात्र रहते हैं, उनकी भी एक मैथिल-छात्र-समिति है और एक मैथिली-साहित्य-समिति है, जिसकी ओर से मैथिली भाषा की पुस्तकें प्रकाशित करने की चेष्टा होती है।

मैथिल-विद्वज्जन-समिति के अध्यक्ष हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या-विभाग के उपाध्यक्ष पण्डित बालकृष्णजी मिश्र हैं।

काशी में मैथिलों की पाठशालाओं में पहले दरभंगा-पाठशाला विशेष प्रसिद्ध थी। आजकल महाराज दरभंगा के मन्दिर में अखिलवेद-पाठशाला है। श्यामा-मन्दिर में रानी चन्द्रावती-द्वारा स्थापित श्यामा-पाठशाला है।

मैथिलों की धर्मशालाएँ भी हैं। गोमठ महल्ले में महाराज दरभंगा की ओर से अयोध्यानाथ-धर्मशाला है। महारानी लक्ष्मीश्वरी के नाम पर जो छात्रावास है, उसका भी कुछ अंश धर्मशाला के रूप में व्यवहृत होता है। नील-कण्ठ पर महाराज दरभंगा का जो विशाल शिवमन्दिर है, उसके पास के बरामदों का भी धर्मशाला जैसा उपयोग होता है।

जब से दरभंगा के महाराजाधिराज कामेश्वरसिंह गोल-मेज सम्मेलन से लौटकर आये हैं, तब से मैथिल-समाज में क्रान्ति-सी हो गई है, जिसके प्रभाव से काशी के मैथिल भी नहीं बचने पाए। समुद्र-यात्रा को मैथिल जात्यन्तर का विषय समझते आ रहे थे। महाराज ने समुद्रयात्रा करके मैथिलों में नवजागृति उत्पन्न कर दी। काशी के ही मैथिल महामहोपाध्याय पण्डित राजनाथ मिश्र ने महाराजाधिराज को प्रायश्चित्त की व्यवस्था दी। इस पर काशी के मैथिलों ने मिश्रजी का बहिष्कार किया। फिर क्रमशः मैथिलों में दो दल हो गये। एक 'विलायती' और दूसरा 'देशी' दल कहलाया। यह झगड़ा अभी चलही रहा है, यद्यपि 'विलायती' दल की संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है और प्रगतिशील मैथिल समाज उसी दल का पक्षपाती है। एक तो मैथिलों की दल-बन्दी योंही मशहूर है और 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' के वज़न पर मैथिलों में भी कहावत है कि 'तीन तिरहुतिया तेरह पाक' (रसोई), दूसरे जब से विलायती और देशी का झगड़ा खड़ा हुआ है, तब से तो दलबन्दी ने और उग्र-रूप धारण कर लिया है।

काशी-नरेश के दरबार से भी मैथिल-पण्डितों का बराबर सम्बन्ध रहा है और उस दरबार से सदा मैथिल पण्डित सम्मानित होते आये हैं। आजकल पण्डित लक्ष्मणजी झा काशी-नरेश के दानाध्यक्ष हैं।

अध्यापक के सिवा अन्य पदों पर भी काशी में कई मैथिल प्रतिष्ठित हैं। दो वकील भी हैं—पण्डित बेचू मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी० और पण्डित नित्यानन्द झा, बी० ए०, एल-एल० बी०।

काशी के मैथिलों में जो कई सज्जन हिन्दी-साहित्य को सेवा में लगे हैं, उनका उल्लेख करके मैं लेख समाप्त करूँगा। श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' काशी के निवासी नहीं है; पर आपने विद्याध्ययन-काल में काशी-प्रवास करते हुए हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की है। आप अँग्रेज़ी और हिन्दी दोनों में एम० ए० हैं। सामयिक हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में बराबर आपके गद्य और पद्य-लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। श्री लक्ष्मीकान्त झा भी हिन्दी के उदीयमान लेखक और हिन्दी और अँग्रेजी दोनों के वक्ता हैं। आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय में इस साल बी० ए० की परीक्षा देनेवाले हैं। आइ० एस-सी० में आप विश्वविद्यालय-भर में सर्वप्रथम हुए और गणित में 'डिस्टिंक्शन' (विशेषत्व) भी प्राप्त किया। आपके लेख की शैली अपने ढंग की निराली है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। व्याख्यान-प्रतियोगिता में भी आपको विभिन्न विश्व-विद्यालयों से कितने ही पदक प्राप्त हुए हैं। पण्डित दिनेशदत्तजी झा स्थानीय प्रसिद्ध राष्ट्रीय हिन्दी-दैनिक 'आज' के सम्पादकीय विभाग में रह कर बारह वर्षों से हिन्दी की सेवा कर रहे हैं और कुशल सम्पादकों में परिगणित होते हैं। पण्डित बलदेवजी मिश्र ज्योतिषाचार्य ने भी कुछ दिनों से स्थानीय 'पण्डित-पत्र' का सम्पादन-भार ग्रहण किया है।

काशी और खत्री-समाज

लेखक—श्रीयुत बालमुकुन्द वर्मा

श्री विश्वेश्वर की पवित्रपुरी काशी सचमुच तीन लोक से न्यारी है। भारत की प्रायः सभी जातियों के लोग यहाँ मिलेंगे, इनमें से खत्री जाति के लोग भी प्राचीन काल से यहाँ रहते और व्यापार करते हैं। इस जाति के हाथ में बनारसी माल, किमखाब, चाँदी सोने के कामों की हौदे, कुर्सी आदि चीजों को तैयार करवाना और रियासतों में भेजना यह मुख्य व्यापार था। देखा-देखी अन्य जाति वाले भी आगे आये; मगर फिर भी अभी तक यह व्यापार खत्री भाइयों के ही हाथ में है। समय की गति को देखकर इन लोगों ने कारीगरों से अप-टू-डेट चीजें तैयार कराईं, जिन्हें लोगों ने अधिक पसन्द किया। यद्यपि आज वह भाई नहीं हैं, फिर भी अर्जुनमल-रामशरण, भद्दोमल-गोवर्द्धनदास, पूरनचन्द-हरनारायण, आत्माराम-हरिशंकर, अर्जुनमल-काशीनाथ, परमानन्द-सीताराम, मंशाराम-दिवानचन्द, गोपालमल-परसोतमदास, पाल्हूमल-भोलानाथ, मखनलाल-श्यामसुन्दर, कन्दामल-माधोप्रसाद, मुकुन्दलाल-दुर्गाप्रसाद, लालचन्द-राधाकृष्ण, रामनाथ-चम्मनलाल, गोकुलचन्द-रामचन्द, काशीनाथ मेहरा, दाताराम कपूर, रामलाल-शम्भूनाथ, काकामल-वेणीप्रसाद, दीनानाथ-बालमुकुन्द, नन्दलाल एण्ड सन्स, मल्लूमल गिरधरदास आदि बहुत से खत्री भाइयों की कोठियाँ हैं, जो इन कामों को कर रही हैं।



स्वर्गीय रा० ब० बटुकप्रसादजी

जिस प्रकार व्यापार को इन भाइयों ने अपनाया, उसी प्रकार जातीय कामों में तथा सार्वजनिक हित के लिये भी यह जाति आगे रही है और इस जाति के भाइयों को इस बातका अभिमान है, कि उनके भाइयों ने जिन संस्थाओं को जन्मदिया, वह आज फली-फूली दिखलाई दे रही हैं।

श्री गुरु नानकजी खत्री का 'गुरुद्वारा' और गुरु का बाग तथा भद्रकाली के स्थान जाति का मस्तक ऊँचा करते हैं।

लखनऊ के नवाब सफदरजंग के तोशाखाने के प्रधान श्री काश्मीरीमल खत्री ने मणिकर्णिका के श्मशान और मढ़ी को बनवाया, जिसपर पूज्य पुरोहित सारस्वत ब्राह्मण और खत्री भाइयों के मुर्दे जलाये जाते हैं; और चौधरी का सफाई का केवल -) दिया जाता है। नगर की प्रधान 'कारमाइकेल लाइब्रेरी' के स्थापन का श्रेय राय सकठाप्रसाद खत्री को था, उसी प्रकार भारतजीवन-प्रेस और भारतजीवन पत्र प्रकाशित कर तथा अनेकों पुस्तकें छाप कर श्रीरामकृष्ण वर्मा ने अच्छा लाभ उठाया। 'कर्मसंचारिणी पाठशाला, का श्रेय रायबहादुर श्री दुर्गाप्रसाद खत्री और श्री पन्नालाल सहगल को मिला। नागरी-प्रचारिणी-सभा ऐसी लोक-प्रिय संस्था के जन्मदाता रायबहादुर श्री श्यामसुन्दरदास बी० ए० हैं। उसी प्रकार 'खत्री एजुकेशन कमेटी' के स्थापन करने वालों में श्री युगलकिशोर खत्री तथा श्री श्यामसुन्दरदास बी० ए० हैं। आजकल श्री वेणीप्रसाद

मेहरा उक्त संस्था के का संचालन कर रहे हैं। 'भारत-मानचित्र' को संगमरमर पत्थर पर तैयार करने का यश श्री दुर्गाप्रसाद खत्री बी० ए० को मिला, 'चन्द्रकांता' उपन्यास-द्वारा हिन्दी के सहस्त्रों पाठक उत्पन्न करने का यश श्री देवकीनन्दन खत्री को हुआ। और इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद खत्री भी साहित्य और समाज की अच्छी सेवा कर रहे हैं। विदेशियों में बनारसी माल तथा यहाँ की अन्य चीजों के प्रचार में श्री भद्दोमल खत्री ने अच्छी ख्याति पाई। बर्सात के लिये श्मशान की ऊँची मढ़ी बनवाने में अधिक रुपया श्री नृसिंहदास खत्री का लगा।

'सारस्वत खत्री-वद्यालय' को जन्म देने का सुयश श्री हरीशंकर पिशौरिये को हुआ। उसी प्रकार 'खत्री-हितकारिणी-सभा' के जन्मदाता श्री भोलानाथ मेहरौत्रा हुए, श्री दामोदरदास खन्ना (लालाबाबू) ने अपने पिता की स्मृति में 'छुटकामल खन्ना' धर्मशाला और औषधालय रामघाट पर खोला, जिससे लोगों का बड़ा उपकार आ। श्री गोकुलचन्द सहगल का अन्न-सत्र शीतलागली में चल रहा है। रायबहादुर श्री बटुकप्रसाद खत्री का मत्स्योदरी वाला पार्क, अरविन-या-श्री-सेवा-संघ, शिल्प-कारीगरी का स्कूल (जिसके लिये एक लाख रुपया दिया) और कालका गली की वृहत् धर्मशाला खोलने से उनकी ख्याति बढ़ गई, श्री पुरुषोत्तमदास खन्ना के अन्नपूर्णा मन्दिर के सामने वृहत् मन्दिर और भव्य मूर्तियाँ, श्री विश्वनाथजी का चाँदी का हौज तथा सोने के कंठे-द्वारा इस जाति की दानशीलता का परिचय मिलता है।



श्री दामोदरदास खन्ना

श्री कार्तिकप्रसाद खत्री, मुं० संकठाप्रसाद शायर, श्री परमेश्वरीदास आदि सज्जनोंने विन्ध्याचल की धर्मशाला के बनवाने में अधिक परिश्रम किया, चौधरी मोहनलाल खन्ना आदि इसी जाति के रत्न हुए हैं।

वर्तमान समय में डा० प्राणनाथ विद्यालंकार, श्री नरेन्द्रदेव, श्री गुरुमुखसिंह, श्री दुर्गाप्रसाद धवन, श्री गुरुचरणप्रसाद, श्री जगन्नाथप्रसाद खत्री, श्री रामचन्द्र वर्मा, श्री आनन्दप्रसाद कपूर, श्री मूलचन्द कपूर, श्री काशीनाथ मेहरा, श्री दाताराम कपूर, श्री दुर्गाप्रसादसिंह आदि से भी इस जाति का हित हो रहा है।

काशी में मद्रासी

लेखक—श्रीयुत् अध्यापक कुमारस्वामी मुदालियार

लगभग ४०० वर्ष पूर्व इस नगर में मुसलमानों का प्रभुत्व था। इसकारण, हिन्दुओं का जीवन सदा कंटकाकीर्ण बना रहता था। हिन्दू लोग यहाँ बसने में डरते थे; उनका यहाँ आना भी भय से रहित न था। ऐसे संकट के समय दक्षिण-भारत के महात्मा कुमार गुरु स्वामीजी का शुभागमन हुआ। आपका जन्म मद्रास सूबे के तिनेवली जिला के अंतर्गत श्री वैकुंठ नामक ग्राम में हुआ था। आप जन्म से ५ वर्ष तक मौन धारण किये रहे। लोग इनको गूंगा समझते थे। अनेक विद्वानों के आग्रह, विशेषतः त्रिचेन्दूर के श्याम-कार्तिकजी के अनुरोध से आपने भगवान् की स्तुति आरंभ की। जब कुछ बड़े हुए, तो कार्तिकजी के आदेशानुसार गुरुजी की तलाश में निकले। रास्ते में मदुरा पड़ा, जहाँ मीनाक्षी देवी की कृपा से इनके तेज से प्रभावित होकर उस समय के मदुरा-नरेश ने प्रचुर-द्रव्य इनको भेंट किया। वहाँ से चले, तो रास्ते में जितने ग्राम या नगर मिले, सभी जगह इनकी प्रतिष्ठा हुई। अन्त में कावेरी के तीर धर्मपूर नामक ग्राम में आपने अपने गुरुजी को ढूंढ़ निकाला। वहाँ कुछ दिन ठहरे और दीक्षा प्राप्त की और तप करने लगे। गुरुजी को आज्ञा के अनुसार सिंह के ऊपर सवार होकर काशी को रवाना हुए।

जब काशी पहुंचे, तो मालूम हुआ कि बादशाह दिल्ली में रहते हैं। फिर क्या था, दिल्ली पहुँचे। जब बादशाह को फकीर के आने की खबर हुई, तो महात्माजी को पहले दावत में बुलाया। वहाँ माँस परोसा जारहा था। आपने पूछा शूकर का मांस कहाँ है? बादशाह ने कहा मेरे धर्म में उसका निषेध है। आप ने कहा मेरे धर्म में सब मांस का निषेध है और मांस को फूल बना दिया। इस प्रकार करामात दिखलाकर बादशाह को खुश कर अपने डेरे पर वापस आये। दूसरे दिन बादशाह के दरबार में पुनः जाना हुआ। बादशाह ने आपकी बड़ी इज्ज़त की और इतनी दूर आने के कष्ट करने का कारण पूछा। तब आपने कहा कि गुरुजी की आज्ञा है कि मैं काशी में मठ कायम करके अन्न-दान करूँ, सो जगह के लिये भिक्षा माँगने आया हूँ। बादशाह प्रसन्न हुए और फौरन फरमान जारी किया कि यह दक्षिणी फ़कीर हमारे गुरु हैं, बनारस में जितनी जगह चाहें, खाली कर इनको सौंप दी जाय। कुमार गुरु फरमान लेकर काशी पहुँचे। केदारघाट पर जगह पसन्द की। बादशाह के परवाने का सूबेदार पर बड़ा असर पड़ा, उसने भरपूर सहायता दी। मठ बनाकर ये अन्नदान करने लगे। तबसे सुदूरवर्ती मद्रास-प्रान्त के हिन्दू लोग बेरोक-टोक निश्चिंत काशी आने-जाने लगे। दीर्घकाल से भयभीत यात्रियों में धार्मिक प्रेम की धारा नवीन रूप से बह चली। पाँच पीढ़ी तक सूबेदारों ने बराबर यथेष्ट सहायता दी। हजारों यात्री प्रति वर्ष आने लगे, से जिनमें अनेका यहाँ बस गए।

इनके बाद छठवें गद्दीदार ने देखा कि पहले के अनुसार अब रहना कठिन है; क्योंकि राज्य में, सूबेदारों में तथा उनके भावों में परिवर्तन हो गया था। अब सूबेदारों को बादशाह का डर न रहा। वे प्रजा को सताने लगे और उनका माल जब्त करने लगे। लालखाँ-सरीखे दुष्ट खूँटों में पैर कसकर रईसों को सताते तथा उनसे इच्छित धन प्राप्त करते थे; इसलिए गद्दीदार तिल्लैनायकस्वामीजी ने अपने स्थान में एक गुरु भाई नियत कर दिया। अपने साथ प्रचुर धन लेकर अपने देश दक्षिण की ओर चले गए।

वहाँ जाकर तंजौर जिले के त्रिपनैंदाल नामक ग्राम में अपना नया मठ बनवाया और अपने धन से सन् १७२० में कुछ जमींदारी खरीदी। वे उस समय से वहीं रहने लगे। वह समय बड़ा कठिन समय था, न रेल न तार—रास्ते में चोर-डाकू लगते थे। जंगली जानवरों का भय अलग था। लोग आज-कल की तरह सुगमता से आ नहीं सकते थे; अतएव लोग उक्त स्वामीजी के पास पहुँचते थे और अपनी इच्छा प्रकट करते थे कि मेरे नाम से काशीजी में ब्राह्मण-भोजन होना चाहिए और उसके लिए नक़द रुपये या जमींदारी गद्दी को सौंपते थे। इस तरह से दक्षिण के राजे-महाराजे, सेठ-साहूकारों ने अपनी धार्मिक लालसा इनके द्वारा पूर्णकर सन्तोष प्राप्त किया। लगभग १७५ वर्ष तक दोनों गद्दियों का काम खूब जोर-शोर से चला। रेल व तार के न होने से दोनों गद्दीदार अपनी हुंडी चलाते थे। जिससे कुछ लाभ भी हो जाता था, तथा द्रव्य के लूटे जाने का कोई खटका न रहता था। काशीजी में अन्न-दान इन्हीं के द्वारा ब्राह्मणों तथा एतद्देशियों में होता था।

एक बार फिर महाराज सेंधिया आए, जिन्होंने अन्नसत्र खोला। उस समय के मालिक ने उक्त राजा साहब से पारी माँग ली, कि महाराष्ट्र और द्राविड़ों को बारी-बारी से सत्र में भोजन कराएँ, फिर और-और राजाओं व साहूकारों के अन्नसत्र खुले। अनेक श्रद्धालु काशी में वास करने की भावना से इस सुभीते के कारण भी बस गए।

इनमें दक्षिण के वणिक नाट्टुकोट सेठी लोगों का धर्म प्रसंशनीय तथा सराहनीय है। दक्षिण में ग्राम-ग्राम में, शहर-शहर में इनके-द्वारा स्थापित वेद-पाठ-शालाएँ, पशुशालाएँ तथा अन्नसत्र पाए जाते हैं। काशीजी में अगस्त कुंडे में इनका विशाल अन्नसत्र स्थित है। श्री विश्वनाथजी का पूजन दोपहर और रात्रि में इन्हीं की तरफ से होता है, जिसमें मनों दूध चढ़ता है। खास बगीचे के फूल ब्राह्मण तोड़ लाते हैं। घर की गाय के दूध से शिव-स्नान कराया जाता है। बाजे-गाजे से पूजा होती है। बाजे वाले भी मद्रास के नौकर हैं। सत्र में मध्यान्ह के समय हर एक को, जो समय से पहुँच जावे, भोजन मिलता है। काशी के अतिरिक्त प्रयाग, गया, अयोध्या तथा हरिद्वार में भी इनके अन्नसत्र हैं।

श्री काशीजी में श्री केदारेश्वरजी का सुप्रसिद्ध मन्दिर कुमारस्वामीजी की गद्दी के सुप्रबन्ध में है। यहाँ दक्षिण के संप्रदाय के अनुसार साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, वार्षिक उत्सव होते हैं और प्रति दिन चार बार पूजन होता है। सैकड़ों मद्रासी इनके द्वारा काशी-वास करते हैं। बंगाली लोग, जो यहाँ के बाशिन्दे हैं, अकसर कहा करते हैं कि रानी भवानी ने ३६४ मकान बनवा कर ब्राह्मणों को दान करना चाहा; परन्तु किसी ब्राह्मण ने लेना स्वीकार नहीं किया तब कुमार स्वामीजी को दे दिया। यह बात निर्मूल है; क्योंकि जहाँ तक कागज-पत्रों द्वारा जाँच की गई है, कुल जायदाद मद्रासियों ने ही अर्पण की है।

अनेक मद्रासी, महाराज विजयानगरम् की कृपा से काशी आए और यहाँ सुख पूर्वक निवास करने लगे। टाउनहाल, भेलूपूर अस्पताल, कारमाइकेल लायब्रेरी का भवन, वाटर वर्कस की भूमि, संस्कृत सीरीज़ आदि विजयानगरम्-राज की कीर्ति है। मैसूर, कोचीन आदि राजाओं-द्वारा भी काशी के मद्रासियों की संख्या-वृद्धि हुई है। व्यापार के कारण थोड़े ही कुटुम्ब यहाँ रह सके हैं। धार्मिक भाव, विद्याप्रेम, तथा अविमुक्तक्षेत्र के प्रभाव ने ही मद्रास वासियों को काशीपुरी की ओर सदा से आकर्षित किया है। मद्रास में शैव-सम्प्रदाय का बड़ा जोर रहा है। काशीपुरी शिव का आनन्द वन है; अतएव इसमें विहार करने की इच्छा रखना धर्म-प्रेमी मद्रासियों के लिये उचित तथा स्वाभाविक ही है।

काशी-विश्वनाथ

लेखक—श्रीयुत श्रीकृष्ण हसरत

काशी के सर्वस्व—विश्व-ब्रह्माण्ड के सर्वस्व—श्री काशी-विश्वनाथ, ज्योतिर्मय स्वयम्भू लिंग के रूपमें विराजमान हैं। शिव-लिङ्ग का आभिधानिक अर्थ है—शिव=(शी-अचि-व) महादेव, मोद, मंगल ; और लिंग का अर्थ है—लिङ्ग—(लिङ्ग-कर्तृ-अन्) चिन्ह, शिवमूर्त्ति विशेष, अर्थ-प्रकाशक सामर्थ्य ; अर्थात्—ईश्वरत्वके सामर्थ्य को प्रकट करने वाला। अभिधान के अर्थ से मिलता-जुलता वचन भविष्य-पुराण का भी है—

आकाशं लिङ्ग मित्याहुः पृथ्वी तस्य पीठिका।
आलयः सर्वभूतानां लयनाल्लिंग मुच्यते॥

अर्थात्—आकाश लिंग है, पृथ्वी उसकी पीठिका या गौरीपीठ है, और इसीमें सब जीवों का निवास है। प्रलय के समय सब इसीमें लय हो जाते हैं।

इस तरह वेद, पुराण आदि ग्रन्थों से प्रमाणित हो चुका है, कि शिव ही परब्रह्म-परमात्मा हैं और शिवलिंग उनका आकार है ; अर्थात्—ईश्वर स्वयं ज्योतिर्मय लिंग है। जगत् के समस्त धर्मवादियों का एकही मत है, कि ईश्वर एक है और सर्वमय है। जब सर्वमय होनेकी वजह से उसका कोई रूप नहीं, तब साधक उनका ध्यान कैसे कर सकते हैं? यही सोच-समझ कर हमारे दीर्घजीवी ऋषि-मुनि ने ईश्वर की उपासना के लिये शिव-लिंग (ईश्वर-चिन्ह) की सृष्टि की है। जगत् के समस्त धर्मों में उपासना-चिन्ह के सहारे ही ईश्वर की पूजा का विधान है।

काशीके श्री विश्वनाथ-मन्दिर में ऐसे ही एक स्वयं-जात ज्योतिःस्वरूप लिंग हैं, इनके ही दर्शन और अर्चन से भक्त लोग अपनी समस्त कामनाओं की पूर्त्ति के साथ-साथ मोक्ष-जैसा अलभ्य फल प्राप्त करने को काशी आते हैं। स्वर्गीया महारानी अहिल्याबाई ने पञ्च मण्डप-संयुक्त एक विशाल मन्दिर बनवा दिया है। ५१ फीट ऊँचा यह वर्त्तमान मन्दिर क़ीमती लाल पत्थरों से बना है। इसके बाद ही सन् १८३९ ई० में सिख जाति के मुकुटमणि पञ्जाब केशरी स्वर्गीय महाराजा रणजीतसिंह ने मन्दिर के ऊपरी हिस्से को स्वर्णमण्डित कराके उसकी सौगुनी शोभा बढ़ा दी। इसके बाद जिन मुसलमान शासकों ने प्राचीन मन्दिर को तोड़ा था, उन्हीं ने वर्त्तमान मन्दिर के सिंहद्वार के सामने एक नौबतखाना बनवा दिया, जहाँ अब तक नौबत बजती है और जिसके ऊपर से विजातीय लोग दर्शन किया करते हैं। केवल दर्शन ही नहीं, अंगरेज लोग पूजोपहार तथा दक्षिणा भी दे जाते हैं। सम्राट् पञ्चमजार्ज से लेकर प्रत्येक वायसराय विश्वनाथ-दर्शन कर चुके हैं। अभी हाल में जब लार्ड इरविन महोदय आये थे, तब श्रद्धा के साथ चाँदी के पूजा पात्र उपहार स्वरूप भेंटकर गये थे। इस तरह विश्वनाथ इस समय समस्त जातियों द्वारा सम्मानित और पूजित होकर काशी में सुख से विराज रहे हैं।

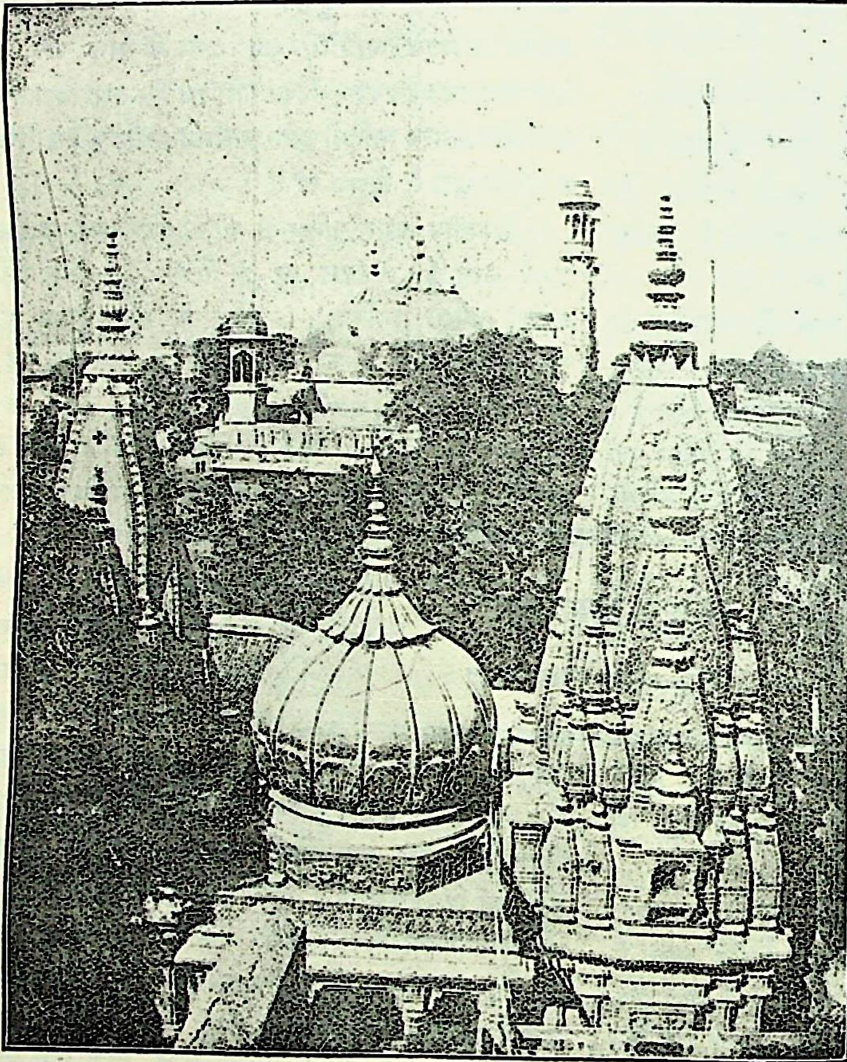
द्विजातीय हिन्दू-मन्दिर के भीतर। प्रवेश कर दर्शन-पूजन करते हैं। सिंहद्वार पर ही लिखा है—'आर्यधर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः'; । मंदिर के भीतर जाते ही संगमरमर के फर्श पर जड़े हुए रुपये ऐसे जान पड़ते हैं, मानों शिव-भक्तों के चरणों तले कुबेर की निधि लोट रही हो। गर्भ-द्वार के भीतर जाते ही चाँदी के ठोस हौदे के बीच, सोने.के गौरीपीठ पर ज्योतिर्मय काशी-विश्वेश्वर-लिङ्ग का अलभ्य दर्शन मिलता है।

गोसाईंजी के कहने के अनुसार 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' लोग एक काशी-विश्वनाथ को अनेक हृदय में अनेक रूप से प्रतिबिम्बित देखते हैं। दर्शकों के हृदय में अनेक कामनाएँ उठती हैं। भगवान् विश्वनाथ अपनी दया-दृष्टि से समस्त मनोगत सद् कामनाएँ पूर्ण किया करते हैं। विश्वनाथ समस्त विश्व के राजा की भाँति अपनी प्रिय राजधानी काशी में राजा की तरह ही दया का दान करते हैं ; अतएव उनकी सेवा-पूजा भी राज-सेवा-पूजा की भाँति ही होती है। दर्शन के कुछ नियम हैं, जो पाठक महोदयों की जानकारी के लिये यहाँ क्रमसे लिख दिये जाते हैं—

१—चार बजे सवेरे मंगला आरती के उपरान्त लोगों के दर्शन-पूजन के लिये द्वार खोल दिया जाता है। दिन के ग्यारह बजे भोग-आरती आरम्भ होती है, उस समय भोग-आरती करने वाले पुजारी ही गर्भ-द्वार के भीतर जाने पाते

हैं, अन्य लोगों के लिये निषेध है। दूध से स्नान तथा मलय-चन्दन लेपन के बाद भोग-आरती का आनन्द देखते ही बनता है।

२—१२ बजे के बाद से ७ बजे सन्ध्या तक फिर जनता की सुविधा के लिये दर्शन-पूजन का अवसर दिया



श्री काशी विश्वनाथ-मन्दिर

जाता है। ७ बजे से छोटी आरती आरम्भ होती है। उस समय आरती करने वालों के अतिरिक्ति और कोई भी गर्भ-मंडप में प्रवेश नहीं कर सकता, बाहर से आरती का दर्शन और स्तोत्र-श्रवण का अपूर्व आनन्द मिलता है। ऐसे समय में कोई-कोई भक्त-आवेश में आकर माला-फूल फेंक देते हैं।

३—छोटी आरती के बाद दर्शन का अवसर देकर, ९ बजे बड़ी आरती आरम्भ होती है। इसके समाप्त होते ही भोग तथा शयन आरती होती है; यह दृश्य देखते ही बनता है। भगवान् शङ्कर के शयन का राज-आयोजन भक्त-हृदय के लिये अत्यन्त आनन्द-दायक होता है।

※ ४—भक्तों के लिये यह सन्तोष का विषय है, कि विश्व-नाथ के भोग-निमित्त जो फल, दूध, मिठाई आदि चढ़ाया जाता है, उसका अधिकांश अंश दीन-दुखियों में बाँट दिया जाता है।

※ ५—मन्दिर में जो दक्षिणा चढ़ाई जाती है, उससे कई विभागों का व्यय-भार उठाया जाता है; जैसे—

(क) श्री सनातनधर्म-पाठ-शाला के संस्कृत-विभाग का सारा ख़र्च, जिसमें २०० विद्यार्थी विद्या-दान पाते हैं।

(ख) श्री विश्वनाथ अन्नसत्र का पूरा व्यय उठाया जाता है, जिसमें प्रतिदिन १०० संन्यासी ब्राह्मण तथा अनाथ अपाहिज भोजन पाते हैं।

(ग) गोशाला।

※ ६—भक्तजन श्रद्धा और सेवा के निमित्त जो कुछ चढ़ाना चाहें; जैसे—शयन या पूजा-सामग्री, सोने-चाँदी का अर्घ्य या घण्टा इत्यादि लगाना चाहें, उनके लिये किसी तरह की रुकावट नहीं है। मन्दिर के आदमियों को यात्री से कुछ माँगने का अधिकार नहीं है।

※ ७—पर्व-दिन में मन्दिर की ओर से यात्रियों की दर्शन-सुविधा के लिये प्रबन्ध किया जाता है।

८—प्रति दिन मन्दिर की ओर से यात्रियों की सुविधा के लिये चार कर्मचारी नियुक्त रहते हैं। असमर्थ लोगों को भीड़ से बचाकर दर्शन की सुविधा कर देना इनका काम है। मन्दिर में किसी तरह की तकलीफ होने से इन्हीं चारों में किसी एक से मन्दिर के प्रधान महन्तजी को सूचना दिलाना चाहिये। ये चारों सर्वदा मन्दिर के प्रधान द्वार पर मालियों के समीप रहते हैं। 'मन्दिर के आदमी' आवाज़ देते ही इनमें से कोई एक सामने हाज़िर हो जाता है।

९—हिन्दू जाति में जिस जाति के लोग मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते, उनके लिये मन्दिर-निर्माण के समय ही पूर्व ओर की परिधि में एक मोखा बना दिया गया है—वहाँ से वे अच्छी तरह दर्शन कर सकते हैं।

शृङ्गार

प्रति वर्ष श्रीविश्वनाथ का शृङ्गार तीन बार होता है; जैसे—(१) फाल्गुन शुक्ला ११—रंगभरी एकादशी, (२) दीवाली का अन्नकूट और (३) महाशिवरात्रि। इनमें रङ्गभरी-एकादशी को जो शृङ्गार होता है, वह साल भर फिर कभी देखने में नहीं आता। मूर्त्ति द्विभुजी है, दाहिने हाथ में दुष्ट-दलन त्रिशूल और बाएँ में अभय की घोषणा करने वाला डमरू है। एक मुख, त्रिनेत्र भगवान् के दर्शन होते हैं। मस्तक से गंगा बहती नज़र आती हैं। बाएँ गिरिराज-नन्दिनी पार्वती और दोनों के बीच बालक-रूप गणेशजी बैठे दिखाई देते हैं।

बाकी दो उत्सवों की मूर्त्ति पञ्चमुख, चतुर्भुज, त्रिनेत्र और राजवेश से सुसज्जित है। दो भुजाओं में दुष्ट-दमन के लिये अस्त्र धारण कर राजा विश्वनाथ दो भुजाओं से भक्तों को अभयदान करते दिखाई देते हैं।



श्री काशी विश्वनाथ-मन्दिर के महन्त

अन्यान्य देव-दर्शन

श्री विश्वनाथ-मन्दिर के भीतर और बाहर और भी अनेक देव-मूर्त्तियाँ हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है—

विश्वनाथ-मन्दिर के पश्चिम जो मण्डप है, उसके बीचो-बीच वेंकटेश्वर की लिङ्ग मूर्त्ति है। दक्षिण ओर के मन्दिर में अविमुक्तेश्वर लिङ्ग है। सिंहद्वार के पश्चिम सत्यनारायणादि देव विग्रह हैं। सत्यनारायण के उत्तर शनैश्वर लिङ्ग हैं। इनके समीप ही दण्डपाणीश्वर का वृहत मन्दिर है, जिसका द्वार वैकुण्ठेश्वर के पश्चिम के मण्डप में ही है। इसके उत्तर एक कोठरी में जगत्माता पार्वती देवी की दिव्य मूर्त्ति है। इसी दालान के अन्तिम कोने पर श्री विश्वनाथजी के ठीक सामने अन्नपूर्णा विराजमान हैं।

मन्दिर का प्रबन्ध

जिन ब्रह्मचारी महाराज ने मुसलमानी आक्रमण के समय विश्वनाथ-लिङ्ग की रक्षा और बाद को जिनके परि-

वार ने ज्ञानकूप से निकाल कर उनकी पुनः स्थापना की थी, उन्हीं के हाथ मन्दिर का प्रवन्ध का भार सौंपा गया था। वह समय काशी के यात्रावालों या तीर्थ-पुरोहितों के अभ्युत्थान का समय था। यात्री को अपनाने के लिये एक दूसरों का सिर तोड़-फोड़ डालना बिलकुल सहज हो रहा था। अत्याचारियों का अपयश भारत के देश-देश में, काशी के पण्डे और पुजारियों के नाम लग रहा था। गुण्डे-शाही का बाजार गर्म हो उठा था। जिसकी लाठी उसकी भैंस की कहावत चरितार्थ होने लगी थी। जो जबर्दस्त पड़ता, वही यात्रियों को पुजाता और विश्वनाथजी के महन्त को खुश करने के लिये, उनका हिस्सा उन्हें दे देता था। इस तरह धीरे-धीरे प्रवन्ध में खराबी आने लगी और महन्त लोग रुपये के आनन्द में पड़ श्री विश्वनाथ की सेवा-पूजा से विमुख होने लगे।

इस तरह उन महन्तों के साथ-ही-साथ उनकी संसार-लीला भी समाप्त हो गई। ब्रह्मचारीजी के घराने से महन्त का नाम ही उठ गया, सिर्फ दो विधवाएँ मन्दिर की मालकिन रह गईं। एक समय काशी-धाम में श्री विश्वेश्वर दयाल त्रिपाठी वैद्यक-शास्त्र के विख्यात पंडित विराज रहे थे। आप गोरखपुर, पीड़ी ग्राम के शुद्धकुल सर्यूपारीण त्रिपाठी थे और कुछ दिन से काशी में ही निवास कर रहे थे। चिकित्सा-शास्त्र में निपुण होने की वजह से काशी के गण्यमान्य पुरुषों में आपकी अच्छी ख्याति थी। काशी-नरेश श्रीईश्वरीप्रसादनारायणसिंह तथा श्री प्रभुनारायणसिंह की दृष्टि में भी त्रिपाठीजी आदरणीय थे; अतएव काशी के रईस तथा काशी-नरेश के विशेष आग्रह से पण्डित विश्वेश्वरदयाल त्रिपाठी ने उक्त विधवाओं के हाथ से मंदिर का प्रवन्ध-भार ग्रहण कर लिया। सुयोग्य पुरुष थे; इसलिये मन्दिर का प्रवन्ध भी योग्यता के साथ होने लगा। आपके जीवन-काल में मन्दिर की सेवा-पूजा में किसी प्रकार की कोताही न होने पाई; किन्तु खेद का विषय है, कि आप दीर्घजीवी न हो सके; इसलिये मन्दिर-प्रबन्ध के बारे में एक विल (Will) तैयार कराके आपने स्वर्ग-वास किया। यह विल आधार-शिला के रूप में मौजूद है, जिसका आशय है—इस परिवार का योग्य पुरुष ही मंदिर के प्रधान महन्त का पद ग्रहण कर सकता है। परिवार के अन्य लोग केवल व्यय, निर्वाहार्थ निश्चित रकम पा सकेंगे। मन्दिर-प्रवन्ध में सिवा महन्त के और किसी का कोई दखल न होगा। रेहन और व्यय का अधिकार भी किसी को न होगा। इत्यादि।

महन्त विश्वेश्वरदयाल त्रिपाठी का स्वर्गवास हो गया। शिला-लेख के अनुसार इनके पुत्र श्री भानुप्रसाद त्रिपाठी साहित्याचार्य विद्या-व्यसनी होने के कारण महन्त पद पर न बैठ सके। विश्वेश्वरदयालजी के छोटे पुत्र भगवानप्रसादजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीउमाशंकरजी त्रिपाठी महन्त-पद पर अभिषिक्त किये गये। आप पंडित और सुयोग्य प्रवन्ध-कर्त्ता थे सही; किन्तु आप में रियासत की मात्रा अधिक थी; अतएव आप भी ऐशो-आराम में पड़ गये। आपके समय में इनके प्रिय-सेवक दो अहीरों को मन्दिर की सेवा-पूजा का अधिकार मिला। ये दोनों अहीर भस्माच्छादित शरीर से मन्दिर की आमदनी वाली गद्दी पर पुजारी की भाँति बैठते और यात्रियों की पूजा-सेवा ग्रहण करते थे। मन्दिर के प्रबन्ध तथा यात्रियों की सुविधा में फिर लबड़-धोंधों शुरू हो गई। ब्रह्मचारी-परिवार में बिगड़ैल प्रवन्ध कर्त्ताओं की भाँति फिर मन्दिर में तरह-तरह के अत्याचार होने लगे।

इसके बाद सन् १९१७ ई० में स्वर्गीय विश्वेश्वर-दयाल के छोटे पौत्र श्री महावीरप्रसाद त्रिपाठी महोदय ने मन्दिर के महन्त-पद को सुशोभित किया। आपने विश्वनाथ सम्बन्धी पूजा-सेवा में बहुतही आकर्षण उत्पन्न कर दिया। आजकल ग्यारह बजे दिन जो को भोग आरती होती है, उसे आप भक्तिपूर्वक अपने हाथों सम्पन्न करते हैं। विश्वनाथ-दर्शन की नियमावली में जहाँ ※ चिन्ह लगा है, वे सब प्रबन्ध आपके प्रबन्ध-काल में ही चलाए गये हैं। लोगों के चढ़ाये फलों से दीन-दुखियों को परितृप्त करना, मन्दिर में चढ़ाये गये अर्थ की सहायता से 'सनातनधर्म-पाठशाला' कायम करना, विश्वनाथ अन्न-सत्र को अटल और अचल बनाये रखने के लिये जागीर लगाना, दानियों को रसीद मिलने की व्यवस्था करना, असमर्थों को दर्शन कराने के लिये कर्मचारी नियुक्त करना, इत्यादि आपका आदर्श कार्य है। कितने ही गरीब ब्राह्मण-क्षत्रिय विद्यार्थी आपकी सहायता से बी० ए० और एम० ए० की वृत्ति पा रहे हैं।

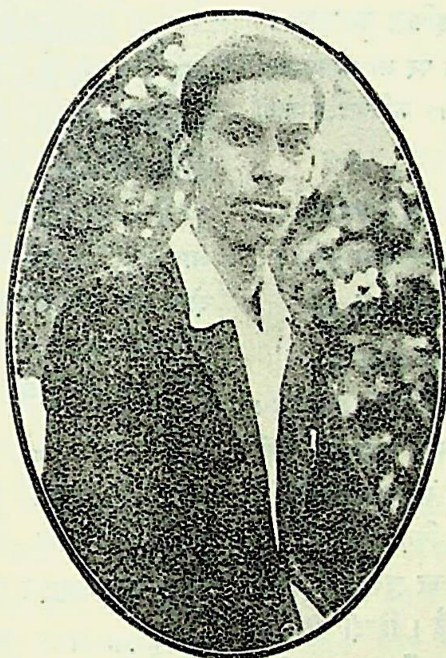
काशी के नवयुवक कवि

लेखक—श्रीयुत कमलाप्रसाद अवस्थी 'अशोक'

प्रत्येक युग के काव्य-साहित्य को, भाषा, भाव तथा वर्णन-सम्बन्धी अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। किसी युग में काव्य रमणीयार्थ-प्रतिपादक वाक्यों का शिकार बनता है, तो किसी युग में रसात्मक वाक्यों का ; किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से किसी युग के काव्य-साहित्य को अधिक महत्त्वपूर्ण ठहराना सर्वथा असम्भव है ; कारण, प्रत्येक युग का दृष्टिकोण पृथक होता है। यद्यपि किसी काल में किसी ढंग की कविता सर्वश्रेष्ट मानी जा सकती है, फिर भी हर काल में उसी का एकाधिपत्य बना रहे, यह तभी हो सकता है, जब कि हमारा दृष्टिकोण सदा एक रूप बना रहे ; किन्तु समाज के साथ-ही-साथ साहित्य में परिवर्तन उपस्थित होता ही है। फलतः काव्य जगत् में भी बारम्बार युगपरिवर्तन और अनेक प्रकार की कविताओं का प्रादुर्भाव होता है। नवीन युग में भलेही कुछ कवि प्राचीन बीन बजाते रहें ; पर इससे युग-परिवर्तन में अणु-मात्र भी अन्तर नहीं पड़ता।

इसी सिद्धान्त के अनुसार हम हिन्दी-काव्य-साहित्य में तीन प्रौढ़ युगों का दिग्दर्शन करते हैं। पहला व्रजभाषाकाल है—वर्तमान समय में भी जिसके नेता महाकवि 'रत्नाकर' रहे हैं। दूसरा खड़ी बोली का वह काल है, जिसके नायक कवि-सम्राट् 'हरिऔध' जी हैं ; परन्तु इस समय दूसरे युग की भी समाप्ति हो चली है और तीसरा काल-छायावाद का—'प्रसाद' जी के नेतृत्व में उद्भूत हुआ है। यह काल-छायावाद का ही युग माना जा सकता है।

काशी के नवयुवक कवियों की विवेचना करते समय भी हमारे सामने वे इन्हीं तीन श्रेणियों में उपस्थित होते हैं। काशी और हिन्दी साहित्य का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, यह कहने की आवश्यकता नहीं ? कबीर, तुलसी तथा आधुनिक काल के उक्त नेतागण काशी के ही हैं। इन्हें यदि हिन्दी कविता का 'कर्णधार' कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। यहाँ के नवयुवक कवियों में भी हमें उसी युगपरिवर्तिनी शक्ति का बीज निहित-सा प्रतीत होता है। यही कारण है कि वे अन्य स्थान के कवियों से भिन्न कोटि के हो जाते हैं। यहाँ उन्हीं नवयुवकों में से चुन कर कतिपय देदीप्यमान रत्नों का उल्लेख किया जाता है।



लेखक

यद्यपि बाबू कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम० ए०, एल-टी आसानी से पुराने कवियों की श्रेणी में आ सकते हैं, फिर भी नवयुवकों की गौरव-वृद्धि के ख़याल तथा उन्हीं से आपका अधिक सम्पर्क होने से हम आपको नवयुवकों से पृथक नहीं कर सकते। आपका स्वभाव—डी० ए० वी० हाई स्कूल के उप-प्रधानाध्यापक होते हुए भी—नवयुवकों-सा ही मिलनसार तथा चेहरा हँसता हुआ है। कविता के क्षेत्र में भी आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आपका स्कूल अपना ही है। आपकी हिन्दी-अंग्रेजी-उर्दू-मिश्रित सरल तथा चुभती हुई भाषा आपकी कविताओं को जनता के हृदय में शीघ्र अंकित कर देती है ; जैसे—

'लोग कहते हैं तुम तमाशा हो,
प्रेमियों के हृदय की आशा हो।
मीठे, छोटे, सफ़ेद, चिकने से,
मैं तो कहता हूँ तुम बताशा हो।'
'श्रीमतीजी गल्प लिखने लग गईं,
खोज में कैरेक्टरों के पग गईं।

कल जो लौटा चौक से मैं घूम कर,
घर से देखा श्रीमतीजी भग गईं।'
'अपनी ब्यूटी के नशे में बेतरह वो चूर हैं,
यह समझते हैं कि हम जन्नत के कोई हूर हैं।
जर्द चेहरा है बहुत 'बेढब' मुँहासों से भरा,
हम ये कहते हैं कि वो जँघई के मोतीचूर हैं।'
'जो सिविलसर्जन ने प्रेस्क्रिप्शन लिखे बेकार थे,
उनका खत सीने पर रक्खा दर्द सब जाता रहा।'

कभी-कभी आप समाज की कमजोरियों पर भी चुटकियाँ लेते हैं।—

'नाम संघटन सुनि जरैं, उलमाओं के गोल,
दूरहु देखे आँच जिमि, जरन लगै पेट्रोल।
हिन्दू मुस्लिम मेल की गति थी सुन्दर खूब,
पथ बीचहि दिल फटि गयो, ज्यों साइकिल का ट्यूब।'

महाकवि 'चकबस्त' आदि के ढंग पर भी आपने उर्दू में कुछ राष्ट्रीय कविताएँ लिखी हैं। कतिपय पंक्तियाँ देखिए—

'जनूने हुब्बे कौमी में करेंगे चाक दिल अपना,
लिखेंगे खून से अशआर, तीरों के कलम होंगे।
लड़ेंगे जंग-आजादी में यों हिन्दोस्तां वाले,
जो बाजू होंगे अर्जुन के तो अंगद के कदम होंगे।'

श्री रामनाथलाल 'सुमन' का घर काशी में ही है। यहाँ 'आज' के सम्पादकीय विभाग में भी आप कुछ दिनों तक काम कर चुके हैं। आप इधर कुछ समय से अजमेर में हैं। पहले 'त्यागभूमि' के सम्पादकीय विभाग में भी थे। आप देश-भक्ति के लिए जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। नवीन ढंग के कवियों में आपका अपना स्थान है। हिन्दी की उच्च-कोटि की पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। कभी-कभी आप मुक्त वृत्तों में भी कविता करते हैं। आपकी लिखी कविरत्न 'मीर' 'दागे जिगर' विपंची आदि पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। आपकी कविताओं में वेदना और दार्शनिक विचारों का सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। उदाहरण के रूप में दो कविताएँ उपस्थित की जाती हैं।—

'विपञ्ची, रोकर आज रुला दे।
अपने वादक की चोटों में अपना रूप भुला दे,
दुनिया कैसी मतवाली है प्रतिध्वनि में बतला दे।
पीड़ा से है क्षुब्ध जगत तू क्षणभर उसे सुला दे,
कौन बताये किसे राह ? तू मुझको जरा भुला दे।
उनमें खो जाऊँ कण-कण को मदिरा आज पिला दे,
मैं रो दूँ, वे रो दें, जग को आंसू से नहला दे।'
'रो-रो तेरे चरणों का आँखों से अभिषेक किया,
रुदन किसीका हृदय किसीका दोनोंका व्यतिरेक किया।
द्रवित प्रणय के कम्पित स्वर में 'अपना तेरा' एक किया,
तुम रो पड़े, हृदय के भूले जादू ने अविवेक किया।
अंचल से आँखें मत पोंछो हृदय बुझा अब लेने दो,
दुखिया के रोते आँसू से अपने चरण भिगोने दो।'

श्री भगवतीप्रसादसिंह 'वीरेन्द्र' काशी के छिपे हुए कवि रत्नों में से हैं। आप अध्यापक होते हुए भी काव्य साधना में सदा दत्तचित्त रहते हैं। ऊँचे दर्जे का साहित्यक ज्ञान रखते हुए भी आप अखबारी दुनिया से दूर हैं। यही कारण है कि अब तक साहित्यकों के समक्ष आप नहीं आ सके हैं। आप खड़ी बोली में नये तथा पुराने दोनों ढंग की कविताएँ करते हैं। आपकी नये ढंग की कविताएँ अधिक सुन्दर होती हैं। 'निर्वेद' शीर्षक कविता में देखिये भावों की गंभीरता के साथ भाषा कैसी प्रौढ़ तथा प्राञ्जल है—

'आई किस घड़ी कहाँ पर शाश्वत सोहाग की वेला,
व्यापक बना विचरता है हाहाकार अकेला।
सुख की अदृश्य आभा में दुख की रसार्द्र हरियाली,
आकर्षक बनी लहरती नीरस रसाल की डाली।
ऐ फूल ! झूलता है तू लय की विलोल डाली में,
क्यों तीव्र गन्ध भर लाया आमोद मधुर प्याली में।
सुन्दर विकास यह तेरा इस उपवन की हरियाली,
निश्चित उत्थान पतन की है कटु परिणाम प्रणाली।
बनकर अभिन्न रस-भोगी कितने मधुकर मतवाले,
अनुराग शून्य हो बैठे पीकर विराग के प्याले।

खड़ी बोली की कविताओं में अलंकारों के आधिक्य से भाव दब से गये हैं, फिर भी भाषा पर आपका अधिकार स्पष्ट है। अप्रकाशित पद्मिनी नामक खण्डकाव्य की मेवाड़-वर्णन सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

'सजा चारु चित्तौड़ देखने में यों आया,
मानों सीसौदिया शक्र ने स्वर्ग सजाया।
किंवा किसी कुबेर की आशंकित अलकापुरी,
रमी राज्य-श्री रूप में दीप्ति देखती थी दुरी।'

पांडेय श्रीयुत बेचनशर्मा उग्र को गद्य के क्षेत्र में ईंसा, खतूत, चाकलेट आदि से काफी प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी है। कविता की कोई पुस्तक तो देखने में आई नहीं; किन्तु पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठों में कुछ समय पूर्व आपकी स्फुट कविताएँ देखने को मिल जाया करती थीं। भाषा ऊबड़-खाबड़ होते हुए भी भावों की दृष्टि से आपकी कविताएँ बड़ी सुंदर होती हैं। यहाँ 'अ-संबल गान' कविता का कुछ अंश उद्धृत किया जाता है, इसमें उपदेशक और राही के वचनों द्वारा जीवन-पथ के पथिक मानव को आत्मा द्वारा उपदेश दिलाया गया है और मानव की कमजोरियाँ वर्णित हैं—

उपदेशक—'तेरी कंथा के कोने में,
कुछ संबल है, या संशय है—अरे पथिक! होने में?
दूर देश तुझको जाना है, पथ का ध्रुव दुख-सुख पाना है,
समझ सावधानी से इसको, विदित विश्व यह बेगाना है;
अरे, गुनगुना इतना गा, ना, पड़ना है आगे रोने में।
(यदि कुछ हो न, ठहरता जा ना, कंथा अपनी भरता जा ना,)
बीहड़ बाट हाट से आगे, जा मत मुसका मत भय त्यागे,
गिरि, गह्वर, नद, निर्झर-झर हैं पछतावेगा अंत अभागे!
खो देगा अपनेको, पागल! होती हँसी यहाँ खोने में।'
राही—'खो जाने ही का तो डर है,
इसीलिये संबल-संचय में-संशय है, कुछ कोर कसर है।
इसीलिये यह कंथा खाली—
मलिनमुखी, गलिता अति काली—
लाद पीठ पर नाच नाचता,
गाता आसावरी निराली;
इसीलिये यह गाल बजाता,
इसीलिये यह सूना स्वर है।
दूर देश से आता हूँ,
सच है दूर देश जाता हूँ;
किन्तु जिसे पाता हूँ पथ में,
खाने ही वाला पाता हूँ।
सुना—घटे मिट गये हजारों,
यह घटिया घाटों का घर है।'

पण्डित रघुनन्दन प्रसाद शुक्ल 'अटल' ने हिन्दी पद्य में गीता, मीराबाई, अरगल की रानी आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। आपने बहुत दिनों तक पण्डित-पत्र का सम्पादन किया है। अनावश्यक विस्तार होते हुए भी आपकी बातों में बड़ी रोचकता रहती है। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार है। रस के अनुसार शब्दों का चयन सफलता-पूर्वक करते हैं। हाँ, शब्दालंकारों के फेर में पड़कर भावों की हत्या प्रायः कर डालते हैं। यथा—

'दरकीं दिशायें, छाती धरकी मँदोदरि की,
करकीं, भयीं सो चूरचूर चूरी करकी।
चर की अचर की क्या—हर की समाधि छूटी,
ररकी रण-चण्डी, रही राजि थरथर की।
भरको प्रबल कोप-ज्वाल रघुनन्दन की,
लरकी धराहू, सोय वाम-भुजा फरकी।
मरकी छयी छन चहूँघा चाप चापत ही,
शर सरकत न निशानी रही सरकी।

पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, बी० ए०, लाला भगवान दीनजी के प्रधान शिष्यों में हैं। आप स्वभाव से बहुत सीधे, अध्ययन शील और परिश्रमी हैं। साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में आप सर्व-प्रथम आ चुके हैं। नये ढंग पर पुस्तकों का सम्पादन करना भी खूब जानते हैं। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है, तीनों ढंग पर कविताएँ करते हैं; किन्तु व्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली की कविताएँ अधिक ललित और भावमयी होती हैं। श्लेषादिक अलंकारों का बाहुल्य होते हुए भी आपकी कविताओं का सौन्दर्य नष्ट नहीं होने पाता। दो उदाहरण लीजिए—

'छेड़ो मत जीवन मेरा पक गया फूट निकलेगा,
शीतल उपचार करोगे यह उलटा और जलेगा।
यह बन्धन सह न सकेगा जब व्यथा बढ़ेगी इसकी,
आवरण रक्त-रंजित कर यह ऊपर को उबलेगा।
इसका विस्तार बढ़ेगा कल नहीं पड़ेगी कुछ भी,
दल-फूल झड़ेंगे सत्वर दुख पा विष-वृक्ष फलेगा।
पय से मत सींचो इसको उसका परिणाम न अच्छा,
खारे आँसू से सिंचकर यह पलता, और पलेगा।
यह उपवन की न लता है इसको सँवारना मत तुम,
यह तो बन की झाड़ी है कैसे उस ढार ढलेगा?'

'तपना जब मित्र के ताप से है,
खर वात के वेग से क्यों टरना?
चखना जब मानस का रस है;
मृग-वारि के फेर में क्यों मरना?
लखना भव को जो विभूति को है,
तो मनोभव-मूर्ति न क्यों बरना?
जब प्रेम के पंथ में पैर पड़े,
तब बैर के शूल से क्यों डरना?'

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी से हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है। 'नीरव', 'परिचय', 'मोतियों की लड़ी' आदि पुस्तकें आपकी लेखनी से ही लिखी गई हैं। आपकी काव्य-व्यञ्जना स्पष्ट होती है। विशुद्ध प्रेम और इस जटिल जगत से विरक्ति एवं प्रकृति के प्रति अनुरक्ति (व्यथित संसार की मंगल कामना का सन्देश) आपकी कविताओं की सर्वप्रधान विशेषता है। 'विजन में' शीर्षक कविता देखिए—

'अकेले ही रोओ तुम प्राण!
विजन में ही गाओ दुख-गान।
यहाँ बह कर दृग-जल की धार;
धरा में मिलती है निःसार।
न कोई स्नेह, न कोई प्यार,
न अपना बन्धु, न और उदार।
अहो पोंछे तब कौन अधीर!
छलकते इन नयनों के नीर।
तुम्हारे घायल आँसू हाय!
जगत में हैं परिहास-समान।
सुनेंगे कभी न जग के कान,
तुम्हारी आह भरी सिसकान।
विजन में आओ चलो अनाथ!
प्रतिध्वनि दुखिया देगी साथ।'
'विजन में ही खोलो मुसकान,
हँसो मत जग में दुर्बल प्रान!
तुम्हारा मुकुलित मुख भी आज,
न दे सकता जगको आह्लाद।
तुम्हारे लघु सुख में भी हाय!
छिपा है जग का चरम विषाद।
यहाँ हँसकर फिर किसको आह!
रिझाने की है सूनी चाह?
विजन में ही खोलो मुसकान,
वहीं गाओ सुख के मधु गान।
वहीं फूलों का मंजुल हास,
तुम्हे देगा मृदु मोद-निधान—
वहीं निर्झरिणी को कल तान,
तुम्हारे दुहराएगी गान।'

श्री श्यामसुन्दर खत्री 'सुन्दर', बी० ए० बड़े सौम्य, सरल और मृदुभाषी हैं। आजकल आप कानून पढ़ रहे हैं। आप नवीन ढंग पर कविताएँ करते हैं। आपकी रचनाएँ प्रायः 'माधुरी' में प्रकाशित होती रहती हैं। आपका काव्य ओज गुण-प्रधान है। ऊँची उड़ान के कारण कभी-कभी आपकी कविता अस्पष्ट भी हो जाती है! आपके प्रकृति-वर्णन में भी रहस्यवाद का पुट रहता है। 'सरसिज-गान' शीर्षक कविता में कमल से कवि कहता है—

'कहो किस लज्जा से हो लाल,
चुराये कितने अरुण प्रवाल;

पड़ी किसको यह पीली छाप,
कोमलता के निलय अजान?
मूर्च्छा-सी मोहक अनुहार,
निखिल विश्व में दो न पसार!
उतरता नभ से रुचिर प्रभात,
तुम्हें ऊषा की यह सौगात।
उसी से खेल रही छविमान,
तुम्हारे अधरों पर मुस्कान?
भृंगों की मृदु मधु गुञ्जार,
गुञ्जित कर यह नव संसार।
शिशु-सा सुन्दर भोलापन,
भर लहरों का नव यौवन।
इन नेत्रों के मुग्ध स्वर्ग में,
अंकित कर दो नव जीवन।
छिपा दो आँखों का संसार,
पिला पद्म! तुम पागल प्यार।'

श्री कान्तानाथ पाण्डेय चोंच बी० ए० के विद्यार्थी हैं। आप अपने ही में मस्त रहते हैं किसी बात की चिन्ता में व्यर्थ परेशान होना नहीं जानते। तुरन्त पद्य रचने में सिद्ध हस्त हैं। व्रजभाषा में आपकी कुछ कविताएँ बहुत सुन्दर हैं पर खिचड़ी भाषा में हास्यरसात्मक कविताएँ ही आपने अधिक लिखी है। अधिकांश में ये कविताएँ अश्लील तथा भाव एवं कवित्व-हीन हैं। साधारण जनता में ही इनका प्रचार है। दोनों के नमूने लीजिये—

'घोर सोर सुनिकै सुमेर बेर बेर हाले,
बंक लखि लोचन सशंक सुर जकि जायँ।
खोल खोल मुख आग उगलि फनिन्द डारै,
डोल डोल कोल दिगपाल सबै थकि जायँ।
धार बार गंग बार पकरि उछरि परैं,
ललित ललाट तैं सुधाकर चपकि जायँ।
ठौरि ठौरि नाचक महेश बौरि बौरि देखि,
दौरि कै गनेस गोद गौरि कै दबकि जायँ।'

'बड़े बड़े टाल बाल तरु से प्रखर खड़े,
उनकी अपार क्या थिकेट यह थिक है।
रोड़े अटकाती है न किस कर पाती मैं हूँ,
माउथ है बिएडो यह कोई चारु चिक है।
होती देख सिक हाय ब्रिक सी कठोर यह,
आप की बियर्ड है या कोई ब्रूम-स्टिक है।'

श्री शिवप्रसाद मिश्र रुद्र भी बी० ए० के विद्यार्थी हैं। आप जैसा जो हो उससे उसी प्रकार मिलते हैं। समय के अनुसार व्यवहार करना खूब जानते हैं। आप सब प्रकार की कविता करते हैं। खिचड़ी भाषा की एक कविता की बानगी लीजिए—

कवि एक अभिसारिका नायिका से पूछता है—

थरण्डरख हिय में बवण्डर सा उठता है,
ऐसे दृश्य से भी नहीं मनमें भय लाती हो।
पूछ रहा रुद्र कहाँ ऐसी डार्क नाइट में,
हाथ लिये लाइट डिलाइट फूली जाती हो।

पर आपकी खड़ी बोली की कविताएँ बहुत सुन्दर होती हैं। उसका एक उदाहरण लीजिये—

'रह अमर सदा मेरे अभाव,
नयनों में बनकर अश्रु-स्राव।
भव-विभवों के अन्तिम अनुभव,
इस अन्तस्तल के अविरत रव।
दिखला स्वरूप निज नित अभिनव,
जीवन रस के बन कर विभाव।
घिर घिर कर बिखरें सुघन जाल,
हो कभी न पूरा सरस ताल!
चातक के जीवन का सवाल,
बढ़ता नस नस में रहे चाव।
काँटों से बिंधता रहे फूल,
सैकत हो सरिता का दुकूल।
तू खटके बन कर सदा शूल,
रे रे अभाव! जगके स्वभाव!

स्थिर रहे सदा स्वर्णाभिलाष,
बढ़ती यश की भी रहे प्यास।
प्रिय मिलन न हो पर रहे आश,
पूजे न हृदय का कभी घाव।'

श्री बलदेवप्रसाद मिश्र, ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में सुन्दर कविताएँ करते हैं। पुरानी कविताओं के आप बड़े प्रेमी हैं। ब्रजभाषा की सैकड़ों कविताएँ आपको याद हैं। ब्रजभाषा-कवियों के सिर अक्सर पुराना राग अलापने का दोष मढ़ा जाता है। बलदेवप्रसादजी ने इस दोष को दूर करने की ओर ध्यान देकर पुरानी भाषा और नये भावों को एक साथ ढालने का सफल उद्योग किया है। 'री कोकिल' कविता का एक अंश देखिए—

'चले मोह तज कुसुम विदेसी,
पतियाँ हू झरि लाई री।
मनौ संग छूटत विलोकि कै,
विटप आँखि भरि आई री।
अरी कोकिल! तैं अपना चूक,
कहा बैठी अबहूँ तै मूक।
करेजैं उठति न तेरैं हूक,
करुन बानी मैं कछु तौ कूक।
फिरि न मिलैगो समय रोइलै,
करिलै कछु मन-भाई री।'

खड़ी बोली की भी कविता का रसास्वादन कीजिए—

'चल-चल उस जगती के अंचल,
जहाँ प्रेम-व्यापार न हो।
जहाँ बनावट भीगी चितवन
का दिल पर आभार न हो।
चल री जहाँ बिंधे फूलों का,
बनता कोई हार न हो।
जहाँ भ्रमर कम्पित कलियों पर,
करता अत्याचार न हो।'

श्री बलभद्र द्विवेदी, बी० ए० के विद्यार्थी हैं। कविता करने के साथ-ही-साथ आप कहानियाँ भी लिखते हैं। एक एकांकी नाटक भी लिखा है। आप बहुत सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अच्छी कविताएँ करते हैं। यहाँ खड़ी बोली का एक उदाहरण दिया जाता है। आँख के डोरों पर कवि कहता है—

'इन अभागिनी आँखों में यौवन की ये रेखाएँ,
पलकों में लिखतीं केवल दुख की नव परिभाषाएँ।
आशाओं ने जो आँखें थीं शैशव-जल से सींचीं,
किसने हा! आज उन्हीं में रक्त-शलाकायें खींचीं!
आहत अभिलाषाओं की रक्त-ध्वजाएँ फहरातीं,
या मेरे हृदय-चिता की उठकर लपटें लहरातीं।
मेरी आशाज्वालाएँ जो डूबीं इनमें मरकर,
कनक-केश उलझे उनके तिरते आँसू के ऊपर।'

श्री राजेन्द्रनारायण शर्मा बड़े सज्जन और सहृदय व्यक्ति हैं। पढ़ाई छोड़ने के बाद—कई सालसे आप काव्याराधन में दत्तचित हैं। आपकी कविताएँ बहुत सुन्दर होती हैं। भावों की गहनता के साथ ही साथ भाषा की सरलता एवं सुबोधता आपके काव्य-सौन्दर्य को दूना कर देती है; जैसे—

'अरे नहीं तुमने देखा है, मुझे प्यार करनेवालेको।
नभ-गंगा के तीरे-तीरे, तब आती धीरे अति धीरे,
तम के परदों में रजनी रे, तब भर२ लघु ज्योति-कनी रे,
निज अनंत सुषमा के हीरे, चुप बिखरा जाने वाले को।
नव२ अलियों के गुंजनमें, कलियों के मधु अभिनंदन में,
सौरभके आनंद-भवनमें, मुकुलों के मोती चुम्बन में,
उनके खोये अपने पनमें, कुछ२ मुसकाने वाले को।
जीवनके उपनाम मरनमें, सुख-दुखमय विच्छेदमिलनमें,
जगके इस उत्थान-पतनमें, अभिलाषाओंके अवगुण्ठनमें
आशाके उजड़े उपवन में, बन बसन्त आनेवालेको।'

प्रसिद्ध साहित्य-सेवी पण्डित ज्वालाराम नागर 'विलक्षण' के सुपुत्र श्री 'रसराज' नागर को रसराज का अवतारही कहना चाहिये। आप बी० ए० के छात्र हैं। बड़े

ही मृदुभाषी, सौम्य तथा मिलनसार हैं। आप स्वयं सुन्दर हैं और आपकी कविताएँ भी सुन्दर होती हैं। कण्ठ तो और भी अधिक सुन्दर है। कवि-सम्मेलनों में आपका कविता-पाठ बड़ा ही मनोहारी होता है। आप खड़ी बोली तथा व्रज-भाषा दोनों में कविता करते हैं; किन्तु सफलता आपको व्रजभाषा और खासकर सवैया छन्दों के साथ विप्रलम्भ श्रृङ्गार वर्णन में मिली है। दो उदाहरण लीजिए—

'गोल कपोलन पै अलकैं छलकैं,
छवि त्यों अँखिया कजरारी।
पीत दुकूल धरे 'रसराज' जू,
किंकिनि नूपुर की धुनि प्यारी।
मंद हँसी अधरान पै राजति,
तोतरे बोलनि की बलिहारी।
जै जसुदा-नँद के धन श्री—
जदुबीर हरो सब पीर हमारी।'

• • •

'अब चाह अकेली रही रहिबे की,
न बात करो सुखके लहिबे की।
हियरो दहिबे की सदा में रह्यौ,
मैं रही दृग-धारन में बहिबे की।
'रसराज' जू काह करौं या उसाँस को,
बानि परी है गरो गहिबे की।
यह नेह-बिथा कर दीन्ही कहा,
सहिबै को सबै न कछू कहिबे की।'

श्री सर्वदानन्द वर्मा काशी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् बाबू सम्पूर्णानन्द वर्मा के उदीयमान सुपुत्र हैं। कविता के सिवा आपको भाषण-कला, अभिनय-कला आदि का भी अच्छा शौक है। यों तो आप कविताएँ कई साल से करते हैं; किन्तु इधर की रचनाएँ प्रौढ़ होने लगी हैं। आप कविताएँ खड़ी बोली में करते हैं; भाव सुन्दर और मानव-जीवन एवं संसार के असारता-जनित विराग से ओत-प्रोत रहते हैं; यथा—

'यह मिट्टी का निर्मित पुतला,
इसको तुम कहते हो नर-तन।
जीवन क्या है—कोरी माया,
सपनों का रे वह चिर नर्तन।
सब जान-बूझ अनजान बना,
कैसा चंचल चंचल यह मन।
फिर भी क्यों जग पागल बन-बन,
कहता रहता जीवन-जीवन।
यदि रोते रहना ही जीवन,
तो मेरा जीवन अहोभाग।
औरों के होंगे कुछ सुहाग,
मेरे तो ये आँसू सुहाग।
सुख किसको कहती है दुनिया,
सुख पाया मैंने रोने में।
जीवन का सच्चा मोल निहित,
अपने जीवन के खोने में।'

श्री नरेन्द्र वर्मा मालवीय हाईस्कूल के विद्यार्थी होते हुए भी बहुत दिनों से सफलता-पूर्वक बाल-साहित्य के सृजन में लगे हैं। अंग्रेज़ी में भी आपने कतिपय कविताएँ लिखी हैं। प्रायः आपकी रचनाएँ बालकों के पत्रों में छपा करती हैं। आपकी भाषा सरल-सुबोध तथा भाव जागृति की भावना से भरे रहते हैं; यथा—

'जब तक मुझ में एक बूँद भी खून रहेगा प्रान रहेगा,
प्यारी भारतमाता! रग-रग में तेरा सम्मान रहेगा।
तेरी अमर कीर्ति पर मुझमें भक्ति रहेगी, मान रहेगा,
तेरी सेवा करते मर मिटने का ध्येय महान रहेगा।

आपने गम्भीर कविता लिखने का भी प्रयास किया है। आशा है, भविष्य में इस ढंग पर भी अधिक सुन्दर और प्रौढ़ रचनाएँ प्रस्तुत कर सकेंगे। एक नमूना देखिए—

'ऐ कवि! गा दे तू मस्ती से जागृति का ऐसा गाना,
जिसको सुन मृत-प्राय देश यह हो जीवित, हो मस्ताना।

तेरा एक तराना करदे उसको ऐसा दीवाना,
स्वतंत्रता के दिव्य दीप का हो जावे वह परवाना।
पराधीनता की बेड़ी के टूक-टूक करदे क्षण में,
जाग उठे वह आग प्रबल उसके तन में, उसके मन में।'

वस्तुतः 'काशी के नवयुवक कवि' लेख का अन्त यहीं हो जाता है; किन्तु एक कवियित्री ऐसी और रह जाती हैं, जिन्हें लेख की सीमा में रखने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता। वह हैं काशी की प्रख्यात कवियित्री श्रीमती कमलाकुमारीजी। आप सुप्रसिद्ध महिला-कवि श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की बहन हैं; काशी के एक सम्भ्रान्त कुल में ब्याही हैं। आप बहुत दिनों से नये ढंग पर खड़ी बोली में कविताएँ करती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी रचनाएँ प्रायः प्रकाशित हुआ करती हैं। आपकी भाषा में सादगी, भाव में सुकुमारता और वाणी में आकर्षण है। 'वेदना' शीर्षक कविता का एक अंश देखिए—

'वह सुख सोहाग सोने-सा,
तप उठा बिरह पावक में।
वह उसकी तरुण तपन है,
जो जागृति कवि-जीवन में।'

'आँसू' पर भी आपकी कुछ प्रकृष्ट पंक्तियाँ पढ़िए—

'नयन कमल के मंजुल मोती,
भग्न हृदय के मृदु उद्गार।
नील कमल में तुहिन-बिन्दु से,
नयनों के प्रिय मुक्ता-हार।
ढलकते गालों पर दिन रात,
लिये नव पीड़ा का आधार।
चढ़ाते प्रियतम हित अज्ञात,
गूँधकर अश्रुकणों का हार।
हमारे मूक रुदन का सार,
समझता है क्या जड़ संसार।
आँसुओं का यह सुरभित हार,
चढ़ाती हूँ 'भू' को उपहार।
बिरह में कैसी दाहक आग,
और स्मृति में मादक अनुराग।
हुआ जगती से विषम विराग,
हृदय में रही वेदना जाग।
यही मेरी अन्तिम अभिलाष,
कि इन नयनों के मुक्ता-हार।
चढ़ा प्रिय-पद-पद्मों पर आज,
मिले तुझको भी जीवन-सार।'

इतना लिख चुकने के उपरान्त भी यह कह देना कि यहीं से काशी के नव-युवक कवियों की समाप्ति है, उचित नहीं। अभी काशी में पुराने स्कूल के अनेक कविगण छिपे पड़े हैं। सम्भव है, कुछ प्रमाद-वश भी छूट गये हों। 'प्रिय' जी आदि के सदृश कुछ कवि अपने को प्रकाश में लाना ही नहीं चाहते। श्री० सूर्यनाथजी तकरू, एम० ए० अब काशी-निवासी हो गये हैं। आपने पहले कुछ कविताएँ लिखी थीं; पर शायद अब आपने लिखना छोड़ दिया है। गद्यकाव्य भी आप लिखते हैं, बड़े भावुक हैं। बड़ी सरल भाषा में सुन्दर रचना आप करते हैं। हमें खेद है कि आपकी कोई रचना हम प्राप्त न कर सके। श्रीमती रमा देवी की भी एक ही कविता और कहानी प्रकाशित देखने को मिल सकी है। इनके अलावा बहुत से बाहर के कवि भी यहाँ अस्थायी-रूप से विद्यमान हैं, जो कि निस्सन्देह अच्छी कविताएँ करते हैं, जैसे सर्व श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' एम० ए०, सरयूप्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र', श्यामनारायण पाण्डेय 'श्याम', सूर्यदेव शर्मा, रामबालक शास्त्री, ईशदत्त पाण्डेय 'श्रीश' आदि। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिन्होंने बहुत थोड़ी कविताएँ की हैं, या बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में हैं; जैसे— सर्व श्री देवकीनन्दन मिश्र गौड़, वेणीराम त्रिपाठी श्रीमाली, कालीप्रसाद शुक्ल 'सुरेन्द्र', देवधर शर्मा, श्रीनारायण मिश्र, रामानन्द मिश्र, मुरारीलाल केडिया, रामजी वाजपेयी 'वसन्त' गंगाशंकर दीक्षित 'अरुण' नन्दकेश्वर आदि। ऐसी अवस्था में हमें यही कहना पड़ता है कि काशी में कवियों की संख्या अपार है; थोड़े से स्थान में उन सब का वर्णन करना कठिन कार्य है; इसीलिए यहाँ चुने हुए कवियों का ही उल्लेख किया गया है। इन लोगों की कविता और प्रतिभा

देखकर यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि इनका भविष्य उज्ज्वल होने के साथ-ही-साथ हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान भी है।

'सन्ध्या और कवि' का एक अंश

अमृत विहगों के स्वर में घोल,
बहाती वसुधा पर रसधार।
गगन के आँगन से चुपचाप,
क्षितिज के जाती है उस पार—
लिए निज अञ्चल में रोली,
खेलने किससे तू होली?
वहाँ तुझसे बोलेगा कौन,
वहाँ की तो बस्ती है मौन;
अरे वह अन्धकार का देश,
वहाँ क्या पा सकती सुख-लेश?
वहाँ विपदाओं का घेरा,
रूप लुट जायेगा तेरा।
सँभल जा अब भी ओ सुकुमारि!
वहाँ का अयि! जाना दे छोड़;
यहाँ आ आहत के पास,
और नाता ले अपना जोड़;
कभी से यह दुनिया काली,
कलिमा धो, भर दे लाली।
बिखर जा तू बनकर हिम-बिन्दु,
बना जाता मैं सुमन-समाज;
बरस जा या बन स्वाती-बिन्दु,
कल्पना सीपी भर यों आज;
रही तो जो कविता रोती,
लगे बरसाने नव मोती।*

* इस लेख के नवयुवक लेखक श्री कमलाप्रसाद अवस्थी हिन्दी के एक होनहार कवि हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय में बी० ए० में पढ़ते और हिन्दी-साहित्य के अध्ययन में विशेष रूप से चाव रखते हैं। इनकी कविताएँ सुन्दर होती हैं और कई अवसरों पर पुरस्कारादि-द्वारा सम्मानित हुई हैं। आशा है, आगे इनकी कविताओं का विकास होगा और उनकी गणना उच्च श्रेणी की कविताओं में होगी। ऊपरवाला उद्धरण इनकी एक रचना का नमूना है। —सं०

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न।
रा० च० मा०, कि० का०।

काशी नगरी की पहले-पहल बुनियाद किसने डाली, इसका पता इतिहास को नहीं है। अभी तक इतिहास ने जब वेदों के काल का ठीक निश्चय नहीं किया है, तो जिस नगरी की चर्चा शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में और ऋग्वेद के कौशीतक ब्राह्मण के उपनिषत् में मिले, उसकी आदि का निश्चय किस प्रकार हो सकता है। रामायण-काल के पहले का राजा हरिश्चन्द्र का इतिहास साक्षी है कि यहाँ का डोम अयोध्यानरेश को खरीद सकता था और यहाँ के ब्राह्मणों के पास उनकी पटरानी भी क्रीतादासी हो सकती थीं। श्रीरामचन्द्रजी के रामराज्य में भी यह नगरी समृद्ध थी। महाभारत-काल में तो काशिराज पांडवों की ओर से लड़े थे और काशी एक समृद्ध नगरी थी ही। विक्रम की छठी शताब्दी के लगभग जब फ़ाहियान भारत में आया था, तो वाराणसी का नाम भारी शहरों में गिना जाता था। जितना कुछ ज्ञात इतिहास है, उससे पता चलता है कि जहाँ बड़ी-बड़ी राजधानियाँ बसीं और उजड़ीं, और फिर बसीं और फिर उजड़ी, वहाँ यह पुण्यपुरी काशी अनादि काल से बसी ही चली आ रही है। कभी उजड़ी नहीं। शायद इसी से यह प्रसिद्ध है कि यह बाबा विश्वनाथ के त्रिशूल पर बसी हुई है और तीनों लोकों से न्यारी समझी जाती है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के समय में काशी

लेखक—श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०

इधर चार-पाँच सौ बरसों के राजनीतिक इतिहास में काशी का चाहे जिस तरह पर वर्णन हो, उससे हमें इस लेख में सरोकार नहीं। ऐतिहासिक उथल-पुथल तो समय-सागर की तह की ऊपरी हिलोरों की बातें हैं। साधु-सन्त और कवि जिस तरह पर अपने समय का वर्णन करते हैं, उसे मैं तह के भीतर की बातें समझता हूँ और कबीर और तुलसी यह काशी के दो बड़े महात्मा हो गये हैं, उनके समय में काशी की क्या दशा थी, यह जानना बहुत मनोरंजक होगा। सम्प्रति इस लेख में हम मानसकार श्री स्वामी तुलसीदासजी के ही समय की काशी का अवलोकन करने का प्रयत्न करेंगे।

गोस्वामीजी ने अपने १२७ बरस के लम्बे जीवन-काल का अधिकांश भाग काशीजी में ही बिताया और यहीं शरीर छोड़ा। जब बारह बरस के थे, तब पंचगंगाघाट पर शेषसनातनजी से पढ़ने लगे। पूरे पन्द्रह बरस तक पढ़कर काशी छोड़ी और अपने गाँव गये। सं० १५८९ में जब गृह त्याग किया, तब फिर घूम फिर कर काशी पहुँचे। काशी में ही अपना स्थान स्थिर करके सत्रह बरस तक तीर्थाटन करते रहे। फिर काशी ही आये और बराबर रह गये। बाबा बेनीमाधवदास के अनुसार गृहस्थाश्रम त्यागने के समय उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष की थी। रामचरितमानस का आरम्भ उन्होंने संवत् १६३१ की रामनवमी को अयोध्याजी में किया। आधा काम अयोध्याजी में हुआ; परन्तु किष्किन्धाकाण्ड से अन्त तक की रचना फिर भी काशी में ही हुई।

गोस्वामीजी काशी में कई स्थानों पर रहे। छात्रावस्था में तो अपने गुरुजी के पास पंचगंगाघाट पर रहे। पंचगंगाघाट पर मानसकार से दो सौ बरस पहले स्वामी रामानन्द का स्थान था। दशाश्वमेध तक घाटों का सिलसिला उनके समय में ही बँधा जान पड़ता है। संवत् १६६९ में उनके मित्र टोडरमल का देहान्त हो गया। गोस्वामीजी ने उनके वंश वालों का झगड़ा निबटाया था। इस सिलसिले में लिखे हुए पंचनामे से पता चलता है कि भदैनी, छीतूपुर, लहरतारा, नदेसर और शिवपुर यह गाँव थे। इनमें से भदैनी और नदेसर आज आबाद मुहल्ले हैं। गोस्वामीजी जब तक काशी के अखण्डवासी नहीं हुए थे, तब तक जब-जब काशी आते थे, अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के यहाँ प्रह्लादघाट पर ठहरते थे। ज्योतिषी गंगाराम उस समय राजा के यहाँ समादृत थे, जिनका निवास राजघाट के किले में था। और किला तो अस्सी बरस पहले तक आबाद और सही सालिम था। उसमें के बारूदखाने (मैगज़ीन) में जब आग लगी और पीपे फटे, तो किला तो

फट-टूटकर रेजे-रेजे हो गया और नष्ट हो गया ; बल्कि बँधा हुआ सुन्दर घाट, जो उसी किले के नीचे था, और मन्दिर और भारी-भारी हवेलियाँ, सब दम-के-दम में नष्ट हो गईं। उसका असर मीलों तक पहुँचा। गोस्वामीजी के जीवन की घटनाओं का अधिक सम्बन्ध पहले तो प्रह्लादघाट, हनुमानफाटक और राजघाट से मालूम होता है। पीछे गोपालमन्दिर से हुआ। गोपालमन्दिर के गोसाइयों से अनबन होने पर वह नगरी छोड़ कर जाने की प्रतिज्ञा कर के चले, तो उनके मित्र ने अस्सीघाट पर अपने नवनिर्मित मन्दिर में रोक लिया। यह अवश्य ही उस समय नगरी से दूर था। जब भदैनी गाँव था, तो अस्सीघाट अवश्य ही उस गाँव के पार था। नगरी से बाहर होने ही के कारण मानसकार अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए वहाँ टिक गये। इन घटनाओं से और बाद की इस घटना से कि काजीटोला, चौहट्टालालखाँ आदि आदमपुरा हलके में हैं, हमारा अनुमान है कि गोस्वामीजी के समय में काशी नगरी का आरम्भ वरुणा-संगम के पास आदिकेशव से होता है। वहीं से क़िला भी शुरू होता है। किले के बाद आबादी बराबर दशाश्वमेधघाट तक गंगाजी के किनारे-किनारे चली जाती है। दशाश्वमेधघाट और विश्वनाथजी का मन्दिर काशी नगरी की दक्षिणसीमा थी। भेलूपुरा हलका और दशाश्वमेध हलके के सोनारपुरा, बंगालीटोला, शिवाला, हनुमानघाट आदि उस समय आबाद न रहे होंगे। यह गावों की हद के भीतर रहे होंगे। काशी नगरी के बाहरी हिस्से में कबीरदास का चौरा था और कबीर की उत्पत्ति भी लहरतारा गाँव में ही हुई होगी। आज, जैसे शहर का घना भाग घाटों के किनारे से लेकर चौक और दशाश्वमेध वार्ड में है, उसी तरह गोस्वामीजी के समय में आदमपुरा हलका सबसे अधिक घना बसा होगा। चौहट्टालालखाँ उस समय चौक बाजार था। क़ाज़ी आदि शाही अफसर उसी हलके में रहते थे और शाही दफ़्तर वहीं थे। त्रिलोचन और विश्वेश्वरगंज की मंडी क्रमशः नगर के भीतर और बाहर की मंडी थी। मुहल्ले घिरे होते थे और फाटक लगे होते थे, जिनके द्वारा उस समय गलियाँ बन्द कर दी जाती थीं। पाटन दरवाजे का फाटक और इसी तरह के अनेक फाटक जो मौजूद हैं, इस बात के गवाह हैं।

शहर के परनाले बहाने का बन्दोबस्त जबरदस्त था। तेलियानाला बीच शहर से बहकर गंगाजी के भीतर चला जाता था। अब तो तेलियानाले का नाम-ही-नाम रह गया है। फिर भी धरती के भीतर अभी तक बादशाही जमाने के वह ऊँचे लम्बे-चौड़े परनाले हैं कि तीन सवार बराबर-बराबर चले जा सकते हैं। उस नाले के भीतर जाने के लिये अब भी पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, जिनके ऊपर बन्द कमरा है और ताला लगा रहता है। यह दुःख की बात है कि जो चीज कई लाख रुपये लगाकर कभी बनी थी, उससे काम लेना तो दूर रहा, कोई उसे झाँकने तक नहीं जाता।

उस समय विश्वनाथजी का मन्दिर कहाँ था? जहाँ अब है वहाँ न था। वह उसी जगह था, जिस जगह आज ज्ञानवापी की मसजिद है। जहाँ आज हमारा मुसलमान भाई श्रद्धापूर्वक पाक-परवर्दिगार को सिजदा करता है, वहीं गोस्वामी तुलसीदासजी ने विश्वम्भर विश्वनाथ को साष्टांग करके पूजा की थी। और पंचगंगाघाट पर माधवजी के धवरहरे वाली मसजिद जहाँ आज है, वहीं विन्दुमाधवजी विराजमान थे, जिनकी स्तुति और दर्शन से गोस्वामीजी कृतार्थ होते थे। आज विन्दुमाधवजी उसी मसजिद के पास एक मन्दिर में हैं। उनके बायीं ओर लक्ष्मीजी हैं ; परन्तु गोस्वामीजी ने जिन विन्दुमाधवजी की स्तुति और ध्यान लिखा है, उनके दक्षिण ओर लक्ष्मीजी विराजती हैं।* गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में काशीजी को कामधेनु बाँधा है। इस रूपक में काशीजी के देवस्थानों की चर्चा है।

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी।

• • •

अन्तर अयन अयनभल थनफल, बच्छवेद बिस्वासी,
गल कम्बल बरुना बिभाति, जनु लूम लसति सरितासी[1]।
दण्डपानि भैरव बिषान मलरुचि खलगन भयदासी,
लोलदिनेस[2] त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटासी।

---

*'दच्छ भाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई।' तथा 'रूप सील गुनखानि दच्छ दिसि सिंधु सुता रत पद-सेवा।' विनयपत्रिका, ६२-६३।

१—सरिता = असी २—लोलार्क।

मनिकर्निका बदनससि सुंदर सुरसरि सुख सुखमासी ,
स्वारथ परमारथ परिपूरन पंचकोस महिमासी ।
• • •
पंचाच्छरी प्रान मुद माधव[३] गव्यसुपंच नदासी[४]
• • •
कहत पुरान रची केसव[५] निज कर करतूति कलासी ।
• • •

मानसकार के समय काशी के भूगोल का तो इतना पता लगता है । अब काशी की आर्थिक दशा का वर्णन मानसकार के ही मुख से सुनिये । कवित्त रामायण के उत्तरकाण्ड में उस समय देश की आर्थिक दशा का वर्णन जो किया है, वह यद्यपि सारे देश के लिये कहा गया है, तथापि काशी को उसमें अपवाद नहीं रखा है ; अतः कवित्त में काशी नागरी का स्पष्ट उल्लेख न होते हुए भी हमारी समझ में वह काशी नगरी की आर्थिक दशा का परिचायक है ।

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि ,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविकाविहीन लोग, सीद्यमान सोच बस ,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई का करीं ।'
बेदहू पुरान कही लोकहू बिलोकियत ,
साँकरे सबै पै रामरावरे कृपा करी ।
दारिद - दसानन दबाई दुनी, दीनबन्धु ,
दुरित - दहन देखि तुलसी हहा करी ९७ ।

कवित्त रामायण की चर्चा बेनीमाधवदास के गुसाईं-चरित में नहीं है । यह पता नहीं कि इसकी रचना कब हुई । अन्तः साक्षी से यही अनुमान होता है कि गोस्वामीजी के देहावसान के बाद इसका संग्रह किसी शिष्य ने किया होगा । इस संग्रह में भिन्न-भिन्न काल की रची कविताओं का समावेश हुआ है ; अतः हम इस कवित्तके लिये यह कह सकते हैं कि गोस्वामीजी के जीवन के अधिकांश में सर्व-साधारण की ऐसी ही दशा रही होगी ।

गोस्वामीजी के दीर्घ जीवन-काल में लोदियों का पतन हुआ । मुगल साम्राज्य की नींव बाबर ने डाली । हुमायूँ का पहला राज्य हुआ । फिर शेरशाह सूर के साथ पठानों के जमाने ने थोड़े ही बरसों के लिये पलटा खाया । फिर हुमायूँ का भाग्योदय हुआ । उसके मरे पीछे अकबर का राजत्वकाल उन्होंने पूरा देखा और जहाँगीर का अधिकांश राजत्वकाल देख कर शरीर छोड़ा । निदान उनके सामने आठ मुसलमान बादशाहों ने राज किया ।

इन मुसलमानों के राज में प्रजा सुखी न थी । काशी नगरी सभी बादशाहों की निगाहों पर चढ़ी रहती थी । हुमायूँ तो आया ही था । सारनाथ में अपनी यादगार बना गया है । शेरशाह सूर ससराम का था और बनारस उसकी राह में पड़ता था । अकबर और जहाँगीर के अधीन तो पूरबी देश बंगाल तक हो चुके थे । निदान बनारस की सुदशा या कुदशा के लिये ये मुसलिम बादशाह जिम्मेदार थे । उस समय सारी प्रजा रोजी से तंगहाल थी । बार बार दुर्भिक्ष पड़ता था । सिक्के का रवाज कम होने से भाव तो था अत्यन्त सस्ता । एक आदमी दो आने के अनाज में महीने भर भरपेट खाकर गुजर कर सकता था ; परन्तु वह दो आने लावे कहाँ से । मजदूरी अधिकांश अनाज में मिलती थी । पैसे बहुत कम मिलते थे । जो कारीगर बढ़ई आज १) से १॥) तक लेता है, उस समय एक आने से दो आने रोज तक पाता था । समाज के अस्तव्यस्त हो जाने से लोग अपने-अपने पैतृक रोजगारों को छोड़कर दूसरे रोजगार करने लगे थे । वर्णाश्रम-धर्म्म भारत की आर्थिक नीति का पुष्ट आधार था, वह कब का नष्ट हो चुका था । बादशाह के अहलकार बेतरह सताते थे । गाँव-गाँव में शाही अमले, कानूनगो पटवारी आदि राज करते थे और प्रजा को लूटे खाते थे । काशी नगरी उस समय के इस नियम का अपवाद न थी ।

सामाजिक और धार्मिक अवस्था भी अच्छी न थी ।

३—माधव = विन्दुमाधव । ४ – पंचगंगा । ५—आदि केशव । इस अवतरण में (१) वरुणा, (२) असी, (३) कालभैरव, (४) लोलार्क, (५) त्रिलोचन, (६) करनघंटा, (७) मणिकर्णिका, (८) विन्दुमाधव, (९) पंचगंगा, (१०) आदिकेशव, (११) पंचकोसी, इन ११ तीर्थों के नाम आये हैं । यह जरूरी नहीं है कि ये सभी तीर्थ आबादी के भीतर हों । ३, ५, ६, ७, ८, ९ और १० के लिये आबादी के भीतर होने का अनुमान हो सकता है ।—ले०

अछूतों और शूद्रों के साथ अच्छा बर्ताव न था। काशी में एक हत्यारे को साथ बैठाकर खिलाने और अयोध्या के एक भंगी को गले लगाने के कारण गोस्वामीजी से उस समय के वर्णाश्रमी हिन्दू बुरा मानते थे। संस्कृत और भाषा का बड़ा झगड़ा था। ब्राह्मण पंडित भाषा के द्रोही थे। जो हालत गौतम बुद्ध के समय में भाषा और संस्कृत के विरोध की थी, वही दो हजार बरस बाद भी काशी में बनी हुई थी। इसी पर गोस्वामी जी ने कहा था—

'का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम तो आवै कामरी, का लै करै कमाँच॥'

हिन्दू-मुसलमानों का पारस्परिक द्रोहभाव मिटाने की कोशिश तो दो सौ बरस पहले कबीर ने की थी; परन्तु वह द्रोहभाव शायद कबीर के मिटाये न मिट सका, उलटे अवतारवाद का उनके द्वारा जो खंडन हुआ था, उसका प्रचार साधारण जन-समुदाय में इतना बढ़ गया था कि लोगों के मन में अवतार और मूर्त्ति पूजा की ओर अश्रद्धा हो गई थी। गोस्वामी तुलसीदासजी सरीखे संस्कृत के महान् पंडित, वेदवेदांगपारग को इसीलिये भाषा में ही अपनी रामभक्तिपरक सारी कविता करनी पड़ी। रामचरितमानस में 'प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि' यह शंका भरद्वाज की ओर से उठवाकर एक बहाने से गोस्वामीजी ने कबीरजी के अवतारवाद के खंडन का उत्तर रामकथाविस्तार-द्वारा दिया है।

काशी में शैव और वैष्णवों का साम्प्रदायिक झगड़ा भी उन दिनों जोरों पर था। शैव-वैष्णव परस्पर एक दूसरे के खंडन और अपने-अपने मंडन में अपनी सारी शक्ति लगा रहे थे। गोस्वामीजी ने विश्वनाथपुरी में बसकर रामचरित का प्रचार किया और शिव-कथा से आरंभ करके उन्हीं भगवान् शंकर के मुख से रामकथा कहलायी है और आदि से अन्त तक शिव और राम में अभेद प्रतिपादन का एक भी अवसर नहीं चूके हैं। गोस्वामीजी के समय में मुसलमानों के अत्याचार भी कम न होंगे; परन्तु उनकी चर्चा ही नहीं है। इससे यह न समझना चाहिये कि गोस्वामीजी की समझ में वह अत्याचार ही न थे अथवा उन्होंने उनके सच्चे इतिहास पर परदा डाला। उन्होंने निशाचरों-द्वारा विविध धार्मिक कर्मों का नाश और उनमें विघ्न-बाधा को चित्रित करते हुए साफ कहा है—

'जिनके अस आचरन भवानी,
ते जानहु निसिचर सम प्रानी।'

ये निसिचरसम प्रानी कौन हैं, जो जिस काल में होंगे, अपने को समझ लेंगे। जासूसों का जैसे आज बोलबाला है, मुसलमानों के राजत्वकाल में भी था। उनके राजत्वकाल में भी बागियों को भाँति-भाँति के दण्ड मिलते थे। ब्राह्मणों ने तो मुसलमानों से असहयोग बोल रखा था, जो आज तक मिटा नहीं है। गोस्वामीजी ने मुसलमानों का स्पष्ट नाम न लेकर बुद्धिमानी की, नहीं तो रामचरितमानस की रक्षा होने में सन्देह था। व्यंजना से, ध्वनि से, वास्तविक व्यवहार से उन्होंने यह दिखाया है कि विजयी प्रबल अत्याचारी शत्रु को यह न मालूम करने देना चाहिये कि पराजित निर्बल शत्रु अपने हित के लिये क्या कर रहा है। उसे यह भी मालूम हो जाय कि हमसे छुटकारा पाने को भगवान् से प्रार्थना की जा रही है, तो उस प्रार्थना को भी वह सह न सकेगा। फलतः रावण के विरुद्ध भगवान् के दरबार में पुकार करने में भी एक शब्द रावण के विरोध में नहीं कहा गया। उसका नाम भी नहीं लिया गया। इस नीति के अनुकूल ही आकाशवाणी में भी कहीं रावण या उसके अत्याचार की चर्चा नहीं है। मुसल्मानी राज्य के जासूस भी बड़े प्रबल होंगे, इसमें इन बातों से कोई सन्देह नहीं रह जाता।

काशी नगरी के स्वास्थ्य की दशा भी उस समय अच्छी न रही होगी। गोस्वामीजी का इतना दीर्घजीवी होना तो अपवाद ही समझना चाहिये। साधारणतया 'लघु जीवन संवत पंचदसा' पचास बरस ही जीवन की अवधि थी। रोगों का तो राज्य था। स्वयं गोस्वामीजी को घोर जरावस्था में बाहुपीड़ा ने बेहाल कर रखा था। दो-दो बार उन्हींके जीवन-काल में प्लेग फैला। पहली बार संवत १६४२ के लगभग जब फैला, तो जल्दी ही दूर भी हो गया; परन्तु दूसरी बार सं० १६६७ के लगभग जब फैला, तो आठ बरस तक रहा और जमके रहा। इसकी चर्चा तुजुके जहाँगीरी में भी आई है।

राजनीतिक दशा उस समय जो काशी नगरी की थी, वही प्रायः सारे देश की थी। गोस्वामीजी ने उस दशा को अत्यन्त निन्द्य माना है। 'निसिचरसम प्रानी' कहकर उन्होंने इशारा किया है कि वर्त्तमान राज्य रावण-राज्य है। उसके बदले उन्होंने रामराज्य का आदर्श मानस के द्वारा ही जनता के सामने रखा। जो देशवासी मुसलमानी राज्य के दास हो रहे थे, उनकी मनोवृत्ति गोस्वामीजी ने खूब समझी थी। वह जानते थे कि आपस की फूट से ही हिन्दुओं ने अपनी प्राचीन स्वाधीनता खोई है। वह कहते हैं—

रामायन अनुहरत सिख जग भई भारत रीति।
तुलसी सठकी को सुनै कलिकुचालि पर प्रीति।

अर्थात्—जगत् में शिक्षा तो रामायण की-सी मिलती है कि भाई-भाई में गहरा अनुराग करो और अपने भाई के लिये सब कुछ त्याग करो; परन्तु व्यवहार में रीति महाभारत की-सी चलती है कि भाई-भाई से कठिन द्वेष और विरोध करते हैं और एक दूसरे के प्राण ले लेते हैं। हिन्दुओं ने अपनी स्वाधीनता इसी रीति से खोई। आपस की इस तरह की फूट को संप्रदायवाद ने और भी बढ़ा रखा था। इस पर सारी जनता में Inferiority Complex दासता का भाव बेतरह घर किये हुए था। मुसलमानों में भक्ति-भाव के प्राचुर्य ने, उनकी धार्मिकता ने, साधारण हिन्दूजनता पर भारी प्रभाव डाला था। पाँच बार की नमाज, रोजा, जप, बात-बात में अल्लाह का नाम बड़ा असर रखता है। भगवान् के प्रति उनका यह भक्ति-भाव देख कर पतित हिन्दू सहज ही मुग्ध हो जाता था। इसीलिये पीरों-फकीरों ने हिन्दुओं पर अपनी धाक जमाई। बलवान की दासता और गुणवान का अनुकरण मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। उस समय जनता के इस पतन की दशा काशी नगरी में सबसे अधिक दृगोचर थी। गोस्वामीजी सारे भारत का पर्य्यटन कर चुके थे। काशी आज की तरह तब भी सारे भारत का नमूना थी। उसके रोग का जो इलाज था, वही सारे देश के लिये हितकर था। उन्होंने एक रामचरितमानस-द्वारा सभी रोगों का इलाज किया। दासत्व मनोवृत्ति वालों को दिखाया कि दासत्व करो राम का। 'मोर दास कहाइ नर आसा, करइ तो कहहु कहा बिस्वासा।' इससे कम दरजे के किसी देवता का दासत्व न करो। अनुकरण करो उन्हीं के चरित्रों का। रावणराज्य को धर्म के रथ से जीतो। रामराज्य स्थापित करो। पंथ-संप्रदाय आदि के भेद-भाव से बचो। अनन्य भक्ति करो। राम, शिव, कृष्ण आदि में भेद मत मानो। राम-नाम का जप करो। असत्य और हिंसा के मार्ग को छोड़ सत्य और अहिन्सा के मार्ग पर चलो। संसार में सचराचर में अपने प्रभुको देखो; अर्थात्—राम-रहीम में तो क्या, अणु-अणु में प्रभु को ही देखो, और किसी से विरोध न रखो। यही उपदेश किसी उपदेशक के मुख से कहलाते, तो कोई सुनने को तैयार न होता; परन्तु इस तरह की व्यावहारिक शिक्षा से लबालब रामचरितमानस उन्होंने लोकप्रिय सुबोध भाषा में जनता को दिया, जिसमें सुन्दर साहित्य के रूप में कान्तासम्मित उपदेश मौजूद है। यदि संवत् १६३१ को रामनवमी को भगवान् का स्थूल शरीर में अवतार होता, तो उसका कभी-न-कभी अन्त हो जाता और स्वभावतः उसका प्रभाव भी शायद इतना व्यापक न होता, जितना कि अजरामर काव्य रामचरितमानस का है।

मानसकार-जैसे क्रान्तिकारी कवि और सन्त का आश्रय होने से उस समय की काशी वस्तुतः धन्य है और उस समय इस नगरी को अवस्था चाहे आज की अपेक्षा बहुत अच्छी न रही हो, तो भी एक गोस्वामीजी के उस समय मौजूद होने से काशीपुरी उसी तरह धन्य और गण्य थी जैसे महात्मा गाँधी के होने से आज भारत की पुण्यभूमि धन्य और गण्य है।

काशी के महाराष्ट्र

लेखक—श्रीयुत लक्ष्मण-नारायण गर्दे

श्री काशी-विश्वनाथ, और श्री अन्नपूर्णाजी का यह 'आनन्दवन महाश्मशान' अनादि काल से अथवा जिस किसी काल से है, तभी से मनुष्य जीवन के परम कल्याण-साधन-स्वरूप यह महारुद्र महामंगल हिन्दू मात्र को अपनी ओर खींच रहा है। काशी की भौतिक रचना, पौराणिक परंपरा और ऐतिहासिक महिमा बड़ी विलक्षण है। यह विश्वब्रह्माण्ड के भीतर रहती हुई भी, विश्वब्रह्माण्ड का गुटका बनी हुई विश्व से सदा न्यारी रही है। विश्व सागर है, तो यह गागर में सागर है। और राष्ट्र तो राष्ट्र है; पर यह विश्व से स्वतंत्र प्रतिविश्वरूप विश्वराष्ट्र है। इसमें सभी राष्ट्र हैं और एक 'महाराष्ट्र' भी है। इसी महाराष्ट्र की कुछ चर्चा इस लेख में करेंगे।

इस महाराष्ट्र का जो विराट् रूप तुंगभद्रा और नर्मदा के बीच में है, उसी का गुटका काशी में वरुणा और असी के बीच में है। कवि-कल्पना में इसका बड़ा ही मनोहर दृश्य है; पर ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ उसे व्यक्त करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इस लेख में मैं जो कुछ लिखूँगा, वह कुछ सुनी हुई, कुछ पं० कृष्णभटजी गोडबोले की कृपा से प्राप्त, पंचद्राविड़-पुरोहित-सभा के कागज-पत्रों से पाई हुई और कुछ-कुछ महाराष्ट्र के इतिहास-ग्रन्थों में पढ़ी हुई बातों के आधार पर होगा; पर यहाँ जो कुछ लिखा जायगा वह इतना अल्प, इतना रूखा-सूखा और इतना असम्बद्ध होगा कि उसे पढ़ कर किसी को संतोष नहीं हो सकता। हाँ, यह आशा है कि असंतोष ही बढ़ेगा और उससे काशी तथा उसके अन्तर्गत काशीस्थ महाराष्ट्र का विश्व मनोहर इतिहास लिखने की ओर किसी-न-किसी की प्रवृत्ति विकल हो उठेगी, और यदि इतना भी हुआ, तो बहुत हुआ।

पंचद्राविड़ पुरोहित-सभा के पास जो कागज-पत्र हैं, उनसे इतना ही पता चलता है कि काशी में महाराष्ट्र संवत् ९३६ के पहले से हैं। इस संवत् में इन्द्रप्रस्थ के सार्वभौम महाराज अनङ्गपाल ने उपमन्यु गोत्री कोंड नामक पाठकवंशीय महाराष्ट्र ब्राह्मण को काशी के सब तीर्थों का पौरोहित्याधिकार बड़े मान-सम्मान के साथ एक ताम्र पत्र पर लिख दिया। चक्रवर्ती महाराज अनङ्गपाल के तीर्थ-पुरोहित यही कोंडभट पाठक थे; परन्तु इससे भी बहुत पहले से महाराष्ट्रीय यहाँ बसे हुए थे। कारण, पंचगंगा पर रहने वाले पुरोहित वनकटे पुराणिक कहलाते हैं। ये पुराणिक धर्माधिकारी-वंश के पुरोहित हैं और धर्माधिकारी पुराणिक-वंश के पुरोहित हैं। दो कुलों का इस प्रकार एक दूसरे का यजमान और पुरोहित दोनों होना, एक विलक्षण-सी बात है और उससे यही प्रमाणित होता है कि किसी समय काशी में महाराष्ट्र के ये दो ही ग्रहस्थाश्रमी कुल थे। और ये संवत् ९३६ के बहुत पहले आकर यहाँ बसे थे। धर्माधिकारी कुल में महीपति नाम के कोई बड़े तेजःपुंज तपस्वी धर्मशास्त्रविद् हुए, जिन्हें महाराज यशपाल (?) ने षोडष संस्कार कराने का संपूर्ण अधिकार प्रदान किया था और इन महीपति ने इसी ९३६ संवत् में अपने षोडष संस्काराधिकारों में से अंत्येष्टि का अधिकार एक दूसरे महाराष्ट्र-कुल को अर्पण कर दिया। धर्माधिकारी और पुराणिक सबसे पहले आकर बसे। पीछे कोंड पाठक आदि आये। कोंड पाठक कागज-पत्रों के हिसाब से आज भी काशी, गया और प्रयाग आदि नर्मदा तक के एकमात्र सर्वश्रेष्ठ तीर्थ-पुरोहित हैं और सब देव-मंदिरों और तीर्थों पर इनका चतुर्थांश स्वत्व-स्वामित्व है; परन्तु इस वृत्ति से औदासीन्य रहने के कारण इसकी उपेक्षा ही रही है। शिवस्व लेना या गंगातट पर दान-दक्षिणा लेना महाराष्ट्र ब्राह्मणों के विचार में अच्छा नहीं है; इसलिये यह अधिकार इन्होंने गंगापुत्रों को दिया, इसका भी एक कागज पंचद्राविड़ पुरोहित-सभा के पास है। इस आनन्द-वन में महाराष्ट्र परमानन्द की ही खोज में आये थे; पर यहाँ भी राजा-महाराजा आदि शिष्यों के संसर्ग से प्रवृत्ति उनके पीछे पड़ी और उनकी प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों के वैभव बढ़ने लगे। यह विक्रमी १०वीं शताब्दी का जिक्र है, जब हिन्दूराष्ट्र पूर्णतया स्वाधीन हिन्दूराष्ट्र ही था।

अब १०वीं शताब्दी से एक-दम १४ वीं शताब्दी में आना पड़ता है। बीच की तीन शताब्दियों में काशी के महाराष्ट्रियों की बसती, संपत्ति, संतति और विद्यादि वैभव

का कैसे-कैसे विस्तार हुआ होगा, इसकी कल्पना मात्र करते हुए संवत् १३४७ के कुछ ही काल बाद काशी के मणिकर्णिकाघाट पर, जहाँ श्रीमुद्गलाचार्य एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहे हैं, श्री ज्ञानेश्वर महाराज के साथ आते हैं। मुद्गलाचार्य के इस यज्ञ में काशी के विद्वान् महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों का बड़ा जमघट रहा होगा। इस महायज्ञ में अग्रपूजा का सर्वोच्च सम्मान काशी के विद्वन्ब्रह्मवृन्द ने महाराष्ट्र के ज्ञानसूर्य श्री ज्ञानेश्वर महाराज को प्रदान किया था। इसके पूर्व के काशीस्थ विद्वान् या अन्य प्रकार से विख्यात् पुरुषों की गुणावली का कोई वृत्तान्त इस लेख के लिखने तक मुझे नहीं मिला है। काशी के विख्यात् दिग्विजयी महाराष्ट्र पण्डित शेष, भट्ट, मौनी, वाजपेयी, पायगुंडे आदि ज्ञानेश्वर महाराज के बाद ही भारत-प्रसिद्ध हुए। भट्ट घराना तो विद्वानों का एक ही घराना हुआ। इस वंश के नारायण भट्ट ही पहले-पहल काशी में आये। इनका जन्म संवत् १५७१ है। यह अकबर के समकालीन थे। अकबर की इनपर बड़ी श्रद्धा थी। 'भट्टवंश काव्य' में लिखा है कि एक बार अनावृष्टि के कारण प्रजा का हाहाकार सुन अकबरशाह बहुत चिन्ताग्रस्त हुए और नारायण भट्ट से उन्होंने दैवी उपाय करने की प्रार्थना की। भट्टजी ने शिवजी का मन-ही-मन ध्यान किया और तुरत विपुल वृष्टि हुई। अकबरशाह ने इससे प्रसन्न होकर इनके जगद्गुरु होने की ख्याति की। अकबर की सहायता पाकर इन्होंने श्री काशीविश्वनाथ का बहुत बड़ा मन्दिर संवत् १६०० के लगभग बनवाया। यह वही मंदिर था, जहाँ अब मसजिद है। इससे पहले जो मन्दिर था, वह बनारस गजेटियर में लिखा है कि 'कारमाइकेल लाइब्रेरी के पास जो ऊँची जमीन है, वहाँ था। उसे सन् ११९४ (संवत् १२५१) में शाहबुद्दीन गोरी ने तोड़ा। वही काशी-विश्वनाथ का आदि मन्दिर था। शायद वर्तमान 'आदि विश्वेश्वर' के मन्दिर के पास ही नारायण भट्ट के मन्दिर के स्थान में अब मसजिद है, जिसका चौतरा अब भी पूजा जाता है। नारायण भट्ट की विद्या, तप और तेज के न केवल हिन्दू; बल्कि मुसलमान भी कायल थे। राजा टोडरमल इन्हें बहुत मानते थे। भारत भर में इनकी ख्याति थी। इनकी 'नारायण भट्टी' प्रसिद्ध है।

नारायण भट्ट के पुत्र रामकृष्ण भट्ट और शंकर भट्ट भी प्रसिद्ध विद्वान् हुए। इनके अनेक संस्कृत ग्रंथ हैं। रामकृष्ण भट्ट के तीन पुत्र थे—दिनकर भट्ट, कमलाकर भट्ट और लक्ष्मण भट्ट; और शंकर भट्ट के एक पुत्र थे—नीलकंठ भट्ट। इन चार भाइयों ने मिलकर संस्कृत-साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है। नीलकंठ भट्ट के 'व्यवहार मयूख' आदि १२ 'मयूख' ग्रंथ हैं, दिनकर भट्ट के १२ 'उद्योत' ग्रंथ हैं और कमलाकर भट्ट के १२ 'कमलाकर' ग्रन्थ हैं। इन्हीं कमलाकर भट्ट का 'निर्णय कमलाकर' निर्णय-सिन्धु नाम से प्रसिद्ध होकर धर्मशास्त्र का सर्वमान्य ग्रन्थ हुआ। यह ग्रन्थ उन्होंने संवत् १६६९ में रचा। कमलाकर भट्ट भी नारायण भट्ट के समान अद्वितीय हुए। हिन्दुस्तान के तत्कालीन सब राजा-महाराजा और नवाब-बादशाह इन्हें मानते और धर्म सम्बन्धी झगड़ों में इनसे व्यवस्था लेते थे। विक्रम की १० वीं शताब्दी में जद्गुरुका-सा जो मान महीपति धर्माधिकारी का था, वह १७ वीं शताब्दी में आकर भट्ट घराने का केन्द्रीभूत हो गया। अब तक काशी की धर्म सभाओं में गन्धाक्षत द्वारा अग्रपूजन का जो मान धर्माधिकारी घराने को प्राप्त था, वह सोलहवीं शताब्दी में जद्गुरु नारायण भट्ट के समय से भट्ट घराने को प्राप्त हुआ।

संवत् १६२७-२८ में श्री एकनाथ महराज यहाँ आये थे। इन्होंने अपना 'नाथ-भागवत' ग्रन्थ (श्री मद्भागवत एकादशम स्कन्ध का भाष्य) काशी में तीन वर्ष रहकर लिखा था। यहीं उन्होंने 'रुक्मिणी-स्वयम्वर' नामक ग्रन्थ भी लिखा था। नाथ-भागवत ग्रन्थ की पूर्णता के उपलक्ष में नाथ-भागवत की पोथी हाथी के ऊपर अम्बारी में रख कर नगर में नाम संकीर्तन के साथ घुमायी गयी, घर-घर एकनाथ महाराज की जयध्वनि हुई। नगर भर की नर-नारियों ने नाथ-भागवत की पोथी पर पुष्प-वृष्टि की। जब तक एकनाथ महाराज यहाँ रहे, गंगा के तट पर भिन्न-भिन्न स्थानों में उनके कीर्तन होते रहे। इनके पश्चात् इनके पुत्र उस काल के बड़े विद्वान् पं० हरि शास्त्री ने भी काशी में आकर शास्त्रार्थ और प्रवचनादि में कुछ काल व्यतीत किया। इसी समय (संवत् १६४५ के लगभग) काशी में उद्भट महाराष्ट्रीय विद्वान् श्री मधुसूदन सरस्वती भी थे, जिनकी गोस्वामी श्री तुलसीदासजी के संबन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'आन-

न्द' कानने स्वस्मिन्तुलसी जंगमस्तरुः । कविता मञ्जरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता ।' श्रीमद्भगवद्गीतापर इनकी मधुसूदनी टीका बड़ी ही मधुर है। इनके सिद्धान्तविवेक, अद्वैतसिद्धि, संक्षेप शारीरभाष्य, आदि अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

संवत् १६८९ के फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में श्री काशी-धाम में श्री समर्थ गुरु रामदास स्वामी पधारे। श्री हनुमंत स्वामी द्वारा कथित श्री समर्थ चरित की मोडी हस्त-लिखित ग्वालियर की प्रति में लिखा है कि (महाराज किसी के घर पर नहीं ठहरे) गंगास्नानादि करके सीधे श्रीविश्वनाथ-दरबार पहुँचे। उस समय वहाँ विश्वनाथजी के रुद्राभिषेक हो रहा था। इनकी दिव्य कान्ति देखकर, अभिषेक में लगे ब्राह्मण इनकी ओर आश्चर्य-मुद्रा से देखने लगे; पर अभिषेक हो रहा था, इस कारण इन्होंने उन्हें भीतर आने से रोका। उस अवसर पर समर्थ रामदास स्वामी ने शिव और राम की अन्तरंग-भक्ति का एक चमत्कार दिखाया, जिससे प्रभावान्वित होकर उसी क्षण ब्राह्मणों ने उन्हें वहीं साष्टांग प्रणाम किया। समर्थ रामदास स्वामी काशी में कुछ दिन रहे। इसी मोडी हस्त लिखित प्रति में लिखा है कि हनुमान घाट पर, 'यह देख कि हनुमानजी का घाट तो है; पर यहाँ हनुमानजी नहीं हैं, उन्होंने वहाँ हनुमानजी की मूर्त्ति स्थापित की। अन्तर्गृही में भीड़ नकी एक हनुमन्मूर्ति स्थापित की हुई है। श्री 'समर्थप्रताप' ग्रन्थ में लिखा है कि काशी में उन्होंने एक मठ भी स्थापित किया था और रामचन्द्र नामक शिष्य को वहाँ रखा था। संवत् १७२३ में श्री शिवाजी महाराज भी, आगरे की कैद से निकलकर, काशी आये थे। यहाँ उन्होंने गंगा-स्नान किया, काशी-विश्वनाथ के दर्शन किये और दान-पुण्य किये; पर इस समय वह गुप्त वेश में थे।

सम्वत् १७२१ में महाराष्ट्र के राजापुर नामक स्थान में एक बड़ी धर्म-निर्णय सभा हुई थी। उसमें काशी के जो प्रसिद्ध विद्वान् उपस्थित थे, उनकी नामावली परमानन्द कवि कृत श्री 'शिव-भारत' के उपोद्घात में दी हुई है—

गागाभट्टस्त्वनूचानो निगमागमवित्तमः ।
सभायां शुशुभे राज्ञः सुधर्मायां यथा गुरुः ॥१॥
दीक्षितः शितिकण्ठश्च रघुनाथो बुधाधिपः ।
कवीन्द्रः परमानन्दो महादेवश्च पण्डितः ॥२॥
प्रभाकर उपाध्यायस्तथा श्रीरंग शास्त्रिणः ।
नृसिंह शास्त्रिणश्चान्य भट्ट विश्वंभरोऽपिच ॥३॥
अयाचित महादेव पण्डिताग्र्यो विनायकः ।
सोमनाथो जगन्नाथो भट्ट विष्णुस्तथैव च ॥४॥
भू गोपालाभिधोऽनन्तोपाध्यायः पण्डिताग्र्यो ।
शेषोपाख्य महादेवः काशीस्थाः पण्डिता अमी ॥५॥

इनमें जो 'शेष' हैं, काशी में उनका बहुत प्राचीन गुरु-घराना है। इस घराने में भी विद्वानों की परंपरा चली आयी है। श्री महादेव भट्ट शेष औरंगजेब के भाई दारा शिकोह के गुरु थे। दाराशिकोह बहुत काल तक काशी में रहे। परमानन्द कवि का नाम 'शिवभारत' का पता लगने से सबको विदित हुआ है। इन परमानन्द ने काशी में ही रह कर अध्ययन किया, पीछे महाराष्ट्र की यात्रा करके लौट आये और यहीं बैठ कर 'शिव भारत' नामक संस्कृत ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थ लिखा जिसमें शिवाजी महाराज का चरित्र बड़ी ही सुन्दर भाषा में लिखा गया है और इसकी ऐतिहासिकता इतनी खरी है कि श्री शिवाजी महाराज के चरित्र-संकलन तथा जन्म-तिथि निर्णयादि में इससे बहुत बड़ी सहायता मिली है। यह कवि शिवा जी के समकालीन थे, शिवाजी महाराष्ट्र में चरित्र कर रहे थे और परमानन्द काशी में वही चरित्र लिख रहे थे। इस 'शिव भारत' की सब से पहली कथा काशी के पण्डितों ही के सामने गंगा के किनारे हुई थी।

इन पण्डितों में गागाभट्ट का नाम आया है, जो उस धर्मनिर्णयसभा में 'गुरु के समान शोभा पा रहे थे'। यह गागा भट्ट उसी भट्ट वंश के हैं जिसमें 'नारायणभट्टी' के नारायण भट्ट और 'निर्णय कमलाकर' के कमलाकर भट्ट हुए। कमलाकर भट्ट के भाई दिनकर भट्ट के पुत्र विश्वम्भर भट्ट थे जिनका प्यार का नाम 'गागा' था और जो गागा भट्ट के नाम से विख्यात हुए। यह न्याय, मीमांसा, अलंकार और वेदान्त में उस समय एकही थे। इनके पिता दिनकर भट्ट ने अपने 'दिनकरोद्योत' में कई विषयों को सरल जानकर छोड़ दिया था। ऐसे सब छूटे विषयों की

पूर्ति उस ग्रन्थ में गागा भट्ट ने की। यह 'दिनकरोद्योत' हेमाद्री के 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' के समकक्ष हुआ। जैमिनी सूत्र पर गागाभट्टी टीका है। न्याय शास्त्र पर इनका 'भट्ट चिन्तामणि' ग्रन्थ है। एक ग्रन्थ इनका 'कायस्थ प्रदीप' नाम से है जो 'गागाभट्टी' भी कहा जाता है। 'शिवराज प्रशस्ति' आदि कुछ राजनीतिविषयक तथा ऐतिहासिक ग्रंथ भी इनके मिल रहे हैं। सभासद की बखर में लिखा है कि श्रीशिवाजी महाराज को वेदोक्त राज्याभिषेक कराने की सलाह इन्होंने ही दी थी और इन्होंने ही शिवाजी को वेदोक्त राज्याभिषेक कराकर सर्वमान्य हिन्दू छत्रपति श्री शिवाजी महाराज बनाया, यह बात तो सर्व विदित ही है। इनका समय श्रीशिवाजी महाराज का समय है।

इसके पश्चात् काल में काशीस्थ महाराष्ट्रों में नारायण दीक्षित पाटणकर (कायगाँवकर) नामके एक बड़ेही विलक्षण पुरुष हुए। संवत् १७५१ के लगभग महाराष्ट्र से यह काशी में आये। यह बड़े तेजस्वी पुरुष थे। श्री छत्रपति शाहू महाराज तथा पंत प्रधान बालाजी बाजीराव पेशवा, जिनके समय में महाराष्ट्र का उत्तर भारत में बड़ा प्राबल्य विस्तार हुआ, इन्हें गुरु तुल्य मानते थे। यह जैसे तपस्वी थे, वैसे ही विद्वान भी थे, वैसे ही धनी, दानी, कर्मनिष्ठ और यशस्वी राष्ट्र-कार्यकर्त्ता भी थे। काशी के महाराष्ट्र ब्राह्मणों पर उनकी छत्र-छाया-सी थी। लोगों को वैदिक मार्ग में लगाना, अनाचार करने वालों से प्रायश्चित कराना, साहुकारी कोठी चलाना, लेन-देन करना, दान-दक्षिणा देना, महाराष्ट्र से से आने वाले यात्रियों की रक्षा करना, जरूरत पडने पर महाराष्ट्र के काम से यहाँ के लोगों को भेजना, राज-काज में महाराष्ट्र के शासकों को सलाह देना, उनका काम बनाने में हर तरह से सहाय होना, राजकाज की मंत्रणा के लिए काशी के राजा और नवाब-नियुक्त हाकिमों के पास आना-जाना—ये सब काम यह और इनके पुत्र वासुदेव दीक्षित आदि किया करते थे। इनके कुल के, १७५१ से लेकर १८-७५ तक १० पुरुषों के नाम स्व० राजवाड़े के तीसरे खंड में प्रकाशित पत्रव्यवहार में आये हैं। इस पत्र व्यवहार से यह मालूम होता है कि दिल्ली के शाही दरबार में भी इनकी बड़ी इज्जत थी। नारायण दीक्षित और वासुदेव दीक्षित के अतिरिक्त बालकृष्ण दीक्षित आदि ने नारायण दीक्षित की परंपरा बहुत काल तक चलायी। यह पत्र व्यवहार इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्व का है। नमूने के तौर पर दो-एक पत्रों का सारांश यहाँ देते हैं। १३ फरवरी सन् १७-५१ के पत्र में काशी में १० दिन तक पठानों के 'प्रलय' की चर्चा है और कहा है कि काशी में आने वाले महाराष्ट्रीय यात्रियों पर 'मोहन की सराय' में रात के समय पठानों ने आक्रमण किया। उस प्रसंग में सदाशिव भट इंगले, उनकी भावज, नारो महादेव मुले और उनके पिता मारे गये। तीनों शहीदों की स्त्रियाँ सती गईं। एक पत्र में रघूजी भोसले ने कई हजार रुपया दीक्षितजी से कर्ज माँगा है। २४ जून १७५२ के पत्र में बालाजी बाजीराव पेशवा दीक्षितजी को लिखते हैं कि निजामराज्य में गुप्तचरों का काम करने के लिये ५० आदमी भेजिये। २७ जून १७४२ के पत्र में जिक्र है कि मल्हारराव होल्कर ज्ञानवापी वाली मसजिद गिराने और उसके स्थान में पूर्ववत् मन्दिर बनाने पर तुले हुए हैं। मन्दिर बनाने को कौन रोक सकता है; पर मसजिद गिराना हमारी राय में ठीक नहीं है। १ अप्रेल सन् १७४२ के पत्र में चर्चा है कि आपकी फौज अयोध्या के समीप आ जाय तब सब काम बन जाय, राजा बलवंतसिंह भी तब आपसे मिलेंगे। ३ अक्तूबर सन् १७५४ के पत्र में यह वर्णन है कि जब दीक्षितजी दिल्ली पधारे तब बादशाह ने उनका बड़ा सत्कार किया और कहा कि बड़े महाराज की (नारायण दीक्षित की) हमारे खानदान पर बड़ी कृपा थी, वैसी ही आपकी भी रहनी चाहिए। आप शाहू महाराज के जैसे पूज्य हैं वैसे ही हमारे भी हैं, इत्यादि। बालाजी बाजीराव के समय से दिल्ली के दरबार में यह बात चल रही थी कि काशी, गया और प्रयाग महाराष्ट्र-राज्य में जोड़ दिये जायँ। कायगाँवकर-पत्रावली में इसी सिलसिले में मथुरा का भी जिक्र आया है। झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने काशी में ही जन्म लिया था।

काशी के देव-मन्दिरों, घाटों और भव्य अट्टालिकाओं में महाराष्ट्र की कृतियाँ सब से अधिक हैं। खास खास का नामोल्लेख मात्र यहाँ करते हैं। काशी-विश्वनाथ का वर्तमान मन्दिर, लोलार्क कुण्ड का अधिकांश भाग, अहल्या बाई घाट और ऊपर का भव्य भवन अहल्या बाई होल्कर का है। श्री विश्वनाथ मन्दिर में जो शिवलिंग स्थापित है,

वह नर्मदा से लाया गया है और स्थापना भट्ट घराने से ही हुई है। मुंशीघाट श्री भोंसले के सेवक कारीगर श्रीधर मुंशी ने अपने मालिक के धन से अपने नाम पर बनाया। अब उसे दरभंगा महाराज ने खरीद लिया है। श्रीअन्नपूर्णाजी का मन्दिर श्री गद्रे नामक महाराष्ट्रीय का है। मन्दिर के स्थान में पहले महाराष्ट्रियों के ही कई घर थे, जिन्हें गिराकर यह मन्दिर बनाया गया। श्री साक्षी विनायक और अस्सीनाले के उस पार श्री खंडोबा का मन्दिर श्री चंद्रचूड़ का बनवाया है। भोंसला घाट भोंसले वंश का है। त्रिलोचन घाट, त्रिलोचन मन्दिर, त्रिलोचन बाजार, ब्रह्माघाट, नारायण दीक्षित के ही बसाये नारायण दीक्षित महल्ले में नारायण दीक्षित का बाड़ा, ये सब स्थान नारायण दीक्षित पाटणकर के हैं। शीतलाघाट नारायण दीक्षित जड़े का है। यहाँ बूंदी के राजा सुर्जनसिंह हाड़ा का एक प्रसंग है, जो काशी में संवत् १६२६ में आये थे। उनके वर्तमान काशीस्थ मैनेजर डा० इन्द्र सहाय बतलाते हैं कि ब्रह्माघाट से लेकर जतनबड़ तक की भूमि हाड़ाओं की जमींदारी में थी और राज-मन्दिर की अधिकांश भूमि महाराष्ट्रियों को माफी दे दी गयी। संवत् १८-४२ में महाराज विष्णुसिंह से आज्ञा लेकर नारायण दीक्षित जड़े ने शीतलाघाट बनवाया। बूंदी के राजाओं से महाराष्ट्रियों का बड़ा परस्पर था। दुर्गाघाट, घाट के ऊपर श्रीविट्ठल मन्दिर, श्रीकाल भैरव और बड़े गणेश श्री बक्रतुंडजी के मन्दिर पोतनवीस घराने के हैं। दुर्गाघाट पर नानाफडनवीस का बाड़ा भी ऐतिहासिक है। यह एक तालाब को पाट कर बना है। टाउनहाल के पीछे जो गौशाला है, वहाँ पहले भैरव-बावली थी। वह वैदिक दीक्षित जोशी घराने की और ज्ञानवापीका मुक्तिमण्डप बायजा बाई शिंदे का है। नारदघाट, अमेश्वर घाट, कोनिया घाट, छत्तरघाट, बालाघाट, बालाजी-मन्दिर, काठ की हवेली, गंगाबाग, आनन्दबाग, गणेशबाग, अन्तिम श्रीमान् बाजीराव पेशवा के, गणेश मन्दिर श्रीमन्त अमृत राव पेशवा का और गऊघाट (बालाबाई घाट) ग्वालियर के सरदार शितोले का है। गंगामहल और तारकाश्रम मठ सुप्रसिद्ध कीर्तनकार गोविन्द बोवा (पीछे के तारकाश्रम महाराज) का और सेंधिया घाट बायजा बाई शिंदे का है। श्रीदत्तात्रेय का मन्दिर ग्वालियर के केशव राव भाऊ ने काशी के दत्तोपासक तपस्वी गोविन्द बोवा भिडे को (संवत् १९२१ में) बनवा दिया। श्री बिन्दुमाधव मन्दिरादि पंतप्रतिनिधि और वरुणापर आदि-केशव का मन्दिर चिटणीस घराने का है। रामघाट पर समर्थ भक्त श्री चौंडे महाराज का बनवाया राममठ है, जहाँ श्रीरामचन्द्र पंचायतन के अतिरिक्त श्रीरामदास स्वामी की मूर्त्ति स्थापित है। यह मन्दिर हाल में ही बना है। गहना बाई गायकवाड़ का बाड़ा, सरदार जटार का जड़ाऊ मन्दिर और राव राजा राजवाड़े का राम-मन्दिर उल्लेख योग्य स्थान हैं। शेणवाई मठ, शेणवाई बाड़ा और वृद्धकालेश्वर का मन्दिर कूप, भवनादि शेणवाई घराने के हैं, जो किसी समय शिवाजी महाराज के अष्ट प्रधानों में से थे। बालाजी-मन्दिर की सीढ़ियों से नीचे उतर कर पातालेश्वर का जो मन्दिर है, वह पं० गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर बतलाते हैं कि भास्कर 'राय' नामक एक विद्वान् महाराष्ट्रीय का बनवाया है, जिनकी एक गुहा भी वहाँ है। पातालेश्वर के समीप इन्हीं का स्थापित श्री यंत्र है। त्रिशति और ललिता सहस्रनाम पर इन के भाष्य हैं।

अब इधर का हाल। अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, जब काशी के महाराष्ट्रियों में विद्वन्मान्य पं० राजाराम शास्त्री कार्लेकर और फिर उनके जगन्मान्य शिष्य पं० श्री बाल सरस्वती रानडे जैसे जगन्मान्य विद्वद्रत्न और पं० बापूदेव शास्त्री जैसे विश्व-विख्यात ज्योतिर्विद, पं० राजाराम शास्त्री बोडस जैसे पण्डिताग्रणी, पं० दामोदर शास्त्री सप्रे जैसे हिन्दी के भारतेन्दु के सह लेखक, फिर उनके बाद पं० वामनाचार्य, पं० रामचन्द्र दीक्षित जड़े, सर्व शास्त्रविद् पं० गंगाधर शास्त्री (तैलंग), प्रसिद्ध वैदिक पं० वासुदेव भट्ट खांडेकर, परम निस्पृह श्रौतस्मार्त पं० सीताराम दीक्षित पुरोहित, भीष्म पितामह-से पं० महादेव शास्त्री घाटे, वेदाध्यापक पं० रामजी और रामकृष्ण दादा जोशी, उद्भट विद्वान् पं० दामोदर शास्त्री भारदे; परम क्रियावान् विद्वान् प्रवचनकार पं० बाल शास्त्री दातार और पं० बाबू शास्त्री केलकर, दिग्विजयी कीर्तनकार पं० रामचन्द्र बोवा चाँदवडकर आदि अनेकानेक असाधारण विद्वान् औ, कर्तृत्ववान् पुरुष इस काशी नगरी की शोभा बढ़ा रहे थे। स्व० पं० नित्यानन्दजी पर्वतीय और स्व० पं० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ तो अभी कल तक मौजूद थे और अपना आदर्श

छोड़ गये हैं। धनिकों में ठोके कुल नाम के ऐसे पुरुष हुए जो धन के दान और आडम्बर दोनों में अपना कोई सानी नहीं रखते थे, नायक काले (नायक कालिया) जो काशी में सबसे बड़ी साखवाले बड़े धनी कहलाये उनके पूर्वज इन्हीं कोठे के मुनीम थे। धन तो अब काशीस्थ महाराष्ट्रीयों के पास नहीं रह गया है ; पर विद्या, तप और तेज की परंपरा अभीतक किसी प्रकार चली जाती है और उज्ज्वल भविष्य की आशा दिलाती है।

वेद, विद्या, तपस्तेज और निस्पृह ब्राह्मणत्व में पं० बब्बूजी कोटिभास्कर काशीस्थ महाराष्ट्र के भुवन भास्कर ही हैं। वैदिकों में श्री गोपालभट्ट गोरे, श्री गंगाधर भट्ट हर्डीकर, श्री गोपीनाथजी आठवले, श्रीकेशव दीक्षित बापट, श्रीवैजनाथजी रायकर और श्रीविनायक दीक्षित जोशी के नाम उल्लेख योग्य हैं। अग्निहोत्री पं० शेष और पं० रहाटे प्रसिद्ध हैं। विद्वान् पण्डितों में पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री (द्रविड़), पं० श्री लक्ष्मण शास्त्री और श्रीभालचंद्र शास्त्री (तैलंग), पं० नारायण शास्त्री खिस्ते, पं० गोपाल शास्त्री नेने, पं० भाऊ शास्त्री वझे, पं० आत्माराम शास्त्री लोकरे, पं० भारदे शास्त्री, पं० गणपति शास्त्री मोकाटे, पं० लक्ष्मण शास्त्री हैदराबादकर आदि अनेक रत्न चमक रहे हैं। वैद्यों में पं० त्र्यंबक शास्त्री वैद्य मार्त्तण्ड के समान हैं, उनके शिष्य और सनातन धर्म के कार्यकर्त्ता पं० श्रीनिवासशास्त्री हैं। कवि और नाटक-कारों में पं० गोविन्द शास्त्री दुग्वेकर इस समय संवत् कर्त्ता श्री विक्रमादित्य के अनुसन्धान में प्रवृत्त हैं। स्व० पं० गणपति कृष्ण गुर्जर-प्रेस के एक ही व्यवस्थापक थे जिन्होंने हिन्दी में शेक्सपियर के हैम्लेट का अनुवाद किया। हिन्दी दैनिक पत्र संपादकों में पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर सर्वमान्य हैं। समाचार-पत्रों द्वारा कार्य करने वाले सनातन-धर्म की ओर से पं० कृष्णराव सीताराम पेंढरकर एक ही हैं। काशीस्थ महाराष्ट्रियों में अंगरेजी-सी भाषा में संपादन की योग्यता श्री हरहर राय दुग्वेकर में ही है। वकीलों में पं० गोविन्दराव जोगलेकर विशेष प्रसिद्ध हैं। वकील भारदे और होशिंग भी अच्छे हैं। प्रवचनकारों में पं० माधव शास्त्री दातार और पं० दामोदर शास्त्री केलकर, पं० गदाधर शास्त्री ललित, पं० काशीनाथ शास्त्री पटवर्धन और पं० राम शास्त्री सोलापुरकर हैं। कीर्तन-कारों में पं० विनायक बोवा भागवत और पं० विष्णु बोवा विशेष हैं। प्राचीन हस्त-लिखित दुर्लभ ग्रन्थों का संग्रह पं० बापू दीक्षित जड़े के पास है, जो तंत्रादि ग्रन्थों के विशेष जानकार ग्रन्थी हैं। सरस्वती भवन के मुख्य पं० शिवनाथजी झाड़खंडी हैं जो प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों की अच्छी जानकारी रखते हैं। पं० श्री अनन्त रामजी गुरु सुप्रसिद्ध मल्लविद्यापारंगत पं० कोंडभट्टजी के पुत्र और कोंडभट्टजी के शिष्य सिद्धमल्ल बाबाजी के शिष्य हैं और कुश्ती, मल्लखंभ, बेंत की कसरत आदि का अखाड़ा परंपरा से चला रहे हैं। इनके छोटे भाई पं० नारायण गुरु भी इस विद्या में निपुण थे। उनके स्वर्गवासी हो जाने से अनन्तरामजी गुरु बहुत दुखी हो गये। बाबाजी गुरु के एक और शिष्य सम्मान के साथ उल्लेख योग्य पं० राजारामजी ताँबे हैं। शस्त्र संचालन विद्या में श्री बालकृष्ण राव और उनके पुत्र काशी में सर्वमान्य हैं। भारत-सेवा-संघ की व्यायाम-शाला के येही गुरु हैं। गवैयों में पं० विश्वनाथजी ध्रुपदिये यहीं के थे, पं० विश्वनाथजी माँडवगणे यहीं के हैं और पं० भैयाजी यहीं है। श्री गणपत राव फड़के हारमोनियम में विशेष प्रवीण हैं। सार्वजनिक कार्य-कर्ताओं में पंडित माधव राव करमरकर अब नहीं रहे। महाराष्ट्र शिक्षण-संस्था के संचालक श्री खांडिलकर, श्री पावगी और श्री पाटणकर आदि हैं। इस संस्था का वर्तमान विद्यालय श्री अण्णा साहब नेने के अनेक वर्षों के निःस्वार्थ शिक्षा-सम्बन्धी प्रयास का फल है। पं० विनायक राव हर्डीकर भी अपनी पाठशाला बड़ी दक्षता के साथ चला रहे हैं। कुछ वर्ष पहले महाराष्ट्र स्कूल था, जो हाईस्कूल होकर पीछे टूट गया। श्री जोगलेकर वकील और श्री केलकर अध्यापक प्रसिद्ध हैं। श्री भाऊराव दामले राष्ट्र सेवा-संघ के संचालक हैं। सरदारों में श्री सप्रे, श्रीगोडबोले, श्रीकात्रे आदि, तथा सद्वैद्य श्री पं० गोविन्द दीक्षित पुरोहित, ज्योतिषी पं० भैयाजी गणनाथ, प्रेस-प्रपंच में श्रीपावगी, श्री पराडकर, श्री सोमण, श्रीनिगोसकर और श्रीकाले और जमींदारों में श्रीगेठे और श्रीगर्दे हैं। ये सभी काशीस्थ महाराष्ट्र विश्वराष्ट्र काशी में अपने भूतकालीन गौरव की रक्षा करते हुए भविष्य की ओर आगे बढ़ रहे हैं। विश्वराट् काशी और तदन्तर्गत महाराष्ट्र का ईश्वर मंगल करे।

—मिती मार्ग शीर्ष शुक्ल ९ संवत् १९९०

काशी और वर्तमान हिन्दी-साहित्य

लेखक—श्रीयुत कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०, एल-टी०

Is it not strange that a little child
should be heir to the whole world.
—Thomas Traherne.

काशी एक छोटी-सी नगरी है; परन्तु जिस प्रकार मानसरोवर-सी छोटी-सी झील से पुण्य सलिला भागीरथी निकलकर देश में पापनाशिनी त्रिपथगा होकर विश्व के मानस की पिपासा शान्त करती है, उसी प्रकार इस छोटे-से नगर से भी विद्या तथा ज्ञान की सरिता विस्तृत होकर सारे भारत में व्याप्त रही है। जब संस्कृत का युग था, काशी विद्या व्यसनियों का नन्दन कानन था। जब भारतीय उद्यान में हिन्दी का पौदा आरोपित हुआ, काशी ने पूर्णरूप से उसका सिंचन किया। कबीर ने रहस्य का ताना यहीं तना, तुलसी ने मानव हृदय-मानस को भक्ति-पीयूष से यहीं भरा, भारतेन्दु की चांदनी यहीं बिखरी, राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द यहीं जगमगाये और दीनदयाल गिरि ने अपना अनुराग-बाग यहीं लगाया। यह सब पुरानी बातें हैं। साहित्य के इतिहास की सामग्री हैं। साधारण जनता भूलती जाती है। विद्वानों और विद्यार्थियों के पढ़ने की चीज़ रह गयी हैं। उनका कितना महत्त्व है, कितनी पुख़्ता है, पारखी समझें। इतना ही योग काशी ने हिन्दी-साहित्य के विकास में दिया होता, तो भी उसका नाम संसार में अमर होता; परन्तु बनारस वह है, जिसका रस सदा बना रहा, यहाँ के बाग में सदा बहार रही। एक फूल मुरझाया और दूसरी कली चटकी। भारतेन्दु और सितारेहिन्द दूसरे लोक में प्रकाश फैलाने गये, तो सुधाकर, राधाकृष्णदास, देवकीनन्दन खत्री, आदि अभिनव नक्षत्र काशी के प्रांगण में उदय होगये, जिन्होंने निज नूतन प्रकाश से साहित्य को आलोकित किया।



इस लेख के लेखक

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर आजतक हिन्दी की बड़ी उन्नति हुई है। इस उन्नति में काशी का कितना श्रेय है, क्या लिखा जाय। लोग इसे आत्मश्लाघा समझेंगे। कुछ लोग, संभव है आत्मप्रवंचना तक समझें; पर बात सच्ची है। किसी नगर ने, किसी नगर के निवासियों ने हिन्दी के लिये इतना नहीं किया, जितना काशीवालों ने।

उपन्यास-साहित्य में बाबू देवकीनन्दन खत्री ने एक नयी सृष्टि की ही रचना कर डाली। जहाँ पंडित किशोरीलाल गोस्वामी शृंगार-रस के उपन्यास ताबड़-तोड़ लिख रहे थे, वहाँ देवकीनन्दन खत्री ने ऐयारी का तिलस्म तोड़ना शुरू किया। लखनऊ की कब्र में हिन्दी जाने वाली ही थी, कि खत्री महोदय ने लखलखा सुंघाया और नयी जान आगई। हज़ारों आदमियों ने चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिए

हिन्दी पढ़ी। उसका युग बीत गया। तेजसिंह और भूतनाथ से प्रेम अब उठ गया; पर खत्रीजी अपना काम कर गये। सुधाकर द्विवेदी ने हिन्दी में एक नयी शैली का आविष्कार किया। वह 'रामकहानी' पुरानी है। भारतेन्दु की कमी राधाकृष्णदास ने पूरी की। वह उनके 'अपेंडिक्स' थे।

यह समुदाय समय के सागर में लोप हो ही रहा था कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन आदि ने रिक्त स्थान की पूर्ति की। वर्माजी ने हिन्दी में ऐतिहासिक खोज-पूर्ण ग्रंथ लिखे। जिन ग्रंथों का स्वाद केवल अंग्रेजी पढ़ने वाले पाते थे, उन्हीं के समान ग्रंथ हिन्दी में भी वर्माजी-द्वारा लिखे गये। चीनी यात्रियों की सैर हिन्दी के पाठकों को पहले-पहल उन्हींने कराई। लाला भगवानदीन आये तो बाहर से; पर यहीं के हो गये और उनकी साहित्य-सेवा का मुख्य क्षेत्र यहीं था। जिन लोगों ने उन्हें देखा है, वेही उन्हें जानते हैं, कितने सहृदय; पर अपने पक्ष के कट्टर व्यक्ति थे। प्राचीन दुरूह ग्रंथों की टीका करके उन्होंने हिन्दी-पाठकों की जो सेवा की वह अवर्णनीय है। बहुत-से ऐसे ग्रंथ थे, जो अब पढ़े ही न जाते यदि लालाजी ने उनकी टीका न की होती। फारसी बहरों में हिन्दी की कविता का ढंग उन्हींने निकाला। ब्रजभाषा में भी रचनाएँ कीं। आज शायद ही कोई कॉलेज अथवा विश्वविद्यालय हो, जहाँ उनके पढ़ाये व्यक्ति हिन्दी के अध्यापक न हों। उस समय और भी कितने ही लेखक काशी में थे, जो थोड़ी बहुत-हिन्दी की सेवा करके चल दिये। कहाँ तक उनकी गणना की जाय।

हमारे सामने इस समय भी कितने साहित्य-सेवी काशी में हैं, जिनका हिन्दी-संसार में एक विशिष्ट स्थान है। इतना ही नहीं, उन्होंने हिन्दी के लिये इतना किया है कि हिन्दी का इतिहास जब तक रहेगा, उनका नाम नहीं मिट सकता।

अपने सहयोगियों के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले हम एक व्यक्ति को नहीं भूल सकते, जो अभी हमारे सामने था, हिन्दी-साहित्य का जगमगाता रत्न था, काशी का गौरव था। हमारा अभिप्राय स्वर्गीय श्री जगन्नाथदासजी रत्नाकर से है। कविता का रंग पुराना था, भाषा ब्रज थी। कैसी कविता करते थे, काव्य-जगत् में उनका क्या स्थान था, यह ब्रजभाषा के मर्मज्ञ और काव्य के समालोचक जानें। मैं इतना कह सकता हूं कि वह ब्रजभाषा के आचार्य थे, यह भाषा उनके हाथ में मँज गई थी। पद्माकर के पश्चात् यदि किसी ने ब्रज भाषा सुन्दर लिखी, तो रत्नाकर ने।

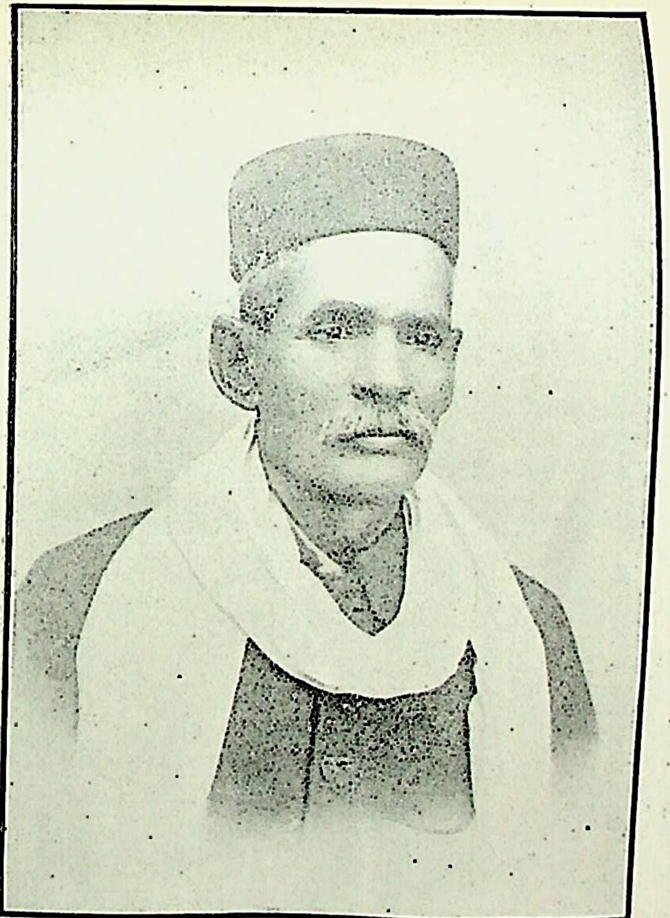
डॉक्टर भगवानदास की हिन्दी-सेवाएँ किसी से छिपी नहीं हैं। और उसका पुरस्कार सम्मेलन का सभापतित्व उन्हें मिल चुका है। आप कवि भी हैं और भागवत का पद्य-बद्ध हिन्दी अनुवाद कर चुके हैं। गद्य में 'समन्वय' नाम की पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। अंग्रेजी, संस्कृत, धर्मशास्त्र के प्रकांड पंडित होने पर भी हिन्दी के आप गौरव हैं। आपकी शैली बड़ी साधारण, सब के समझने लायक और घरेलू होती है। ऐसे शब्द; जैसे—'डबियाय गया', 'आवते हैं' आपकी विशेषताएँ हैं। काशी को ही यह गौरव प्राप्त है कि 'विमल बी० ए० पास' रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास यहाँ के निवासी हैं। कोई हिन्दी-सम्बन्धी संस्था ऐसी नहीं है, जहाँ के आप सदस्य नहीं हैं। सैकड़ों पुस्तकों का आपने सम्पादन किया है और साहित्यालोचन, भाषाविज्ञान, तुलसीदास, हिन्दी का इतिहास आदि पुस्तकें लिखकर आपने हिन्दी का बड़ा उपकार किया है। जिन लोगों को आप के साथ कार्य करने का कुछ भी अवसर मिला है, वह जानते हैं कि आप बड़े निर्भीक, साहसी और हिन्दी के कट्टर हिमायती हैं।

मुंशी प्रेमचन्द-ऐसे लेखक जिस देशमें पैदा हों, वह धन्य है। मुंशीजी काशी के हैं, यह जानकर काशीवालों का कलेजा चौगुना हो जाता है। आपकी कहानियों ने हिन्दी साहित्य को भारतीय भाषाओं में ऊँचा स्थान दिया है। आपकी कहानियों का असर है कि अन्य प्रान्त-निवासी हिन्दी की क़द्र करने लग गये हैं। आपके उपन्यासों और कहानियों की आलोचना का यह स्थान नहीं है। और हिन्दी वालों को वह सब मालूम है।

बाबू जयशंकरप्रसाद साहित्य के वह लाड़ले पुत्र हैं, जिनका लालन पालन सरस्वती और लक्ष्मी दोनों ने किया है। नाटक, कविता और कहानी लिखने में आपने अपने लिये एक ऊँचा स्थान बना लिया है, जो अनुपमेय है। आपके ऐसे नाटक हिन्दी में अभी लिखे ही नहीं गये हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति को नये परदे पर आपने चित्रित किया है। आपकी कहानियों में एक खास मजा आता है। कविता के



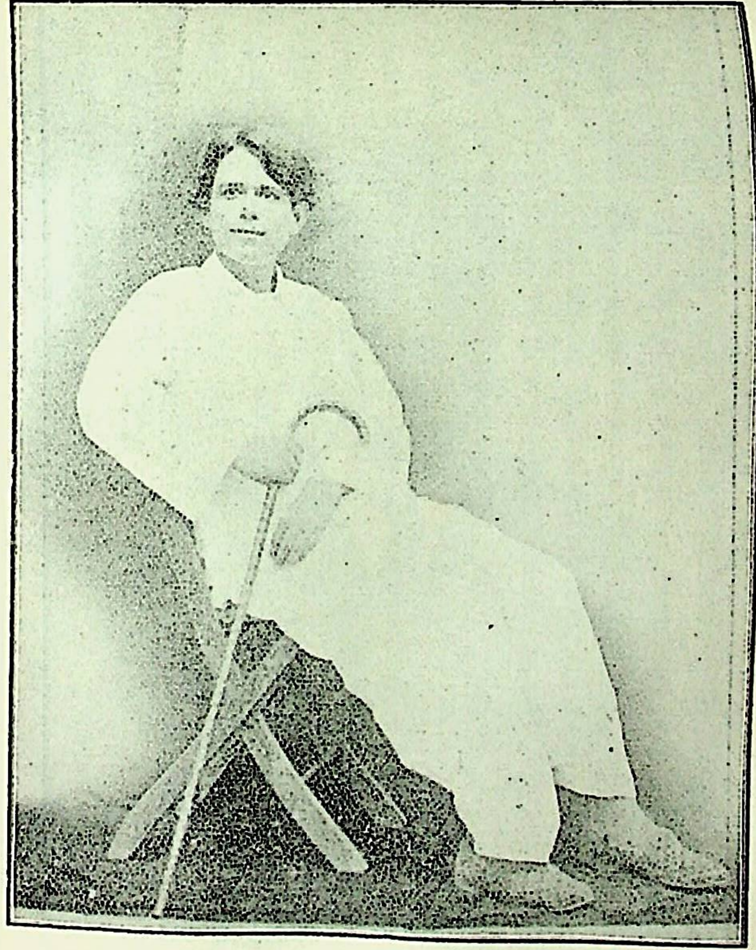
पं० रामचन्द्रजी शुक्ल



स्व० लाला भगवानदीनजी



राय कृष्णदासजी



पं० विनोदशंकर व्यास

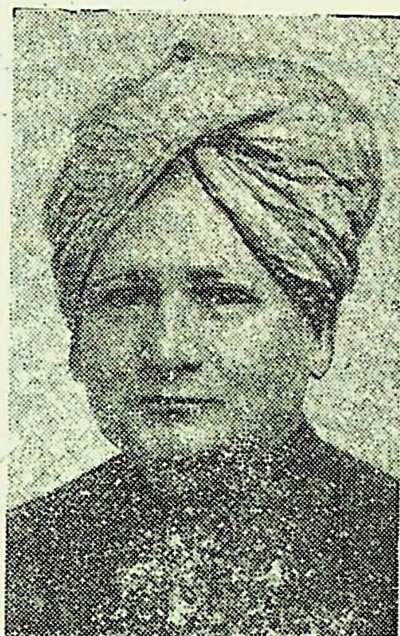
एक विशेष स्कूल के आप आचार्य हैं। साहित्य-प्रेम में आपने व्यवसाय को भी ठुकरा-सा दिया है।

श्रीयुत राय कृष्णदासजी कला के पारखी होने के साथ-साथ हिन्दी के अच्छे लेखक और कवि हैं। जैसा गद्यकाव्य 'भावना' आपने लिख दिया, वैसा अभी तक हिन्दी में किसी ने न लिखा। आप बड़े उदार और सहृदय व्यक्ति हैं।

पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का जन्म यद्यपि मिर्जापुर में हुआ है, तथापि आपके साहित्यिक कार्य का क्षेत्र है काशी और यहीं आप बस गये हैं। आप के समान समालोचक और गंभीर गद्य लेखक अभी हिन्दी-साहित्य को पैदा करना है। आप की शैली बड़ी संगठित है। हिन्दी के विद्वानों में आप का बड़ा ऊँचा सम्मान है। आप ब्रजभाषा में कविता भी करते हैं।

बाबू सम्पूर्णानन्द हिन्दी के उन लेखकों में हैं, जिन्होंने राज-नीति-क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त की है। अनेक कार्य करते रहने पर भी, हिन्दी के अनेक भागों की आपने पूर्ति की है, जिसे न और लोग कर सकते थे, न उनका ध्यान ही उस ओर गया था। जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि पर आपने पहले-पहल पुस्तक लिखी। अभी किसी ने दूसरी पुस्तक इस विषय की नहीं लिखी। इसके अतिरिक्त इतिहास, जीवन-चरित्र-सम्बन्धी बीसों पुस्तकें आपने लिखी हैं। आप हिन्दी और काशी दोनों के गौरव हैं।

हिन्दी तथा शिक्षा-जगत् में कोई ऐसा व्यक्ति न होगा, जिसने पंडित रामनारायण मिश्र का नाम न सुना हो। पंडितजी हिन्दी के पुराने लेखक हैं और द्विवेदीजी के समय 'सरस्वती' में लिखा करते थे। हिन्दी में आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं; पर इससे भी बड़ा कार्य यह है कि आप बाबू श्यामसुंदरदास की भाँति हिन्दी की सेवा में सदा रत रहते हैं। परोक्ष रूप से आपने हिन्दी की जितनी सेवा की है, कम लोग करते हैं। आप के ही साथी स्वावलम्बी आदर्श पुरुष बाबू गौरीशंकरप्रसाद वकील उन लोगों में हैं, जिन्होंने अपने कार्यों का कभी ढिंढोरा नहीं पीटा। प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति रह चुके हैं। आपने उपर्युक्त पंडित-जी के साथ यूरोप-यात्रा पर एक बड़ी सुंदर पुस्तक भी लिखी है, जो भाषा शैली और शिक्षा के विचार से बड़ी मनोरंजक पुस्तक है। अदालतों में हिन्दी-भाषा में काग़ज़-पत्र लिये जायँ, इसका श्रेय बाबू गौरीशंकरप्रसादजी को ही है। इसके लिये आपको कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वह एक दूसरा ही इतिहास है।



श्री० गौरीशंकरप्रसादजी बी०ए०,एल-एल०बी०

काशी-निवासी बाबू रामदास जी गौड़ हिन्दी के पुराने सेवकों में हैं, जिन्होंने किसी समय हिन्दी की अच्छी सेवा की थी। प्रयागस्थ साहित्य-सम्मेलन के परीक्षा-विभाग के संगठन में आपने बहुत योग दिया था। इस समय आप 'भूत' वाद के 'भारी भ्रम' में फँस गये हैं।

जिस भाँति काशी में लेखकों तथा कवियों की एक अनुपम रत्न-राशि जगमगा रही है, उसी भाँति अनुवादकों में भी बाबू रामचन्द्र वर्मा एक रत्न हैं। कितनी ही सुन्दर और उपयोगी पुस्तकों का उत्कृष्ट अनुवाद हिन्दी-जनता के सामने रखकर आपने हिन्दी का उपकार किया है। अनुवाद भी साहित्य का एक विशेष अंग है। काशी उसमें किसी से पीछे नहीं है।

हिन्दी-लेखकों में पंडित बाबूराव-विष्णु पराड़कर का खास स्थान है। दैनिक-संपादन के कार्य-भार के कारण आपको पुस्तक-लेखन का अवकाश कम मिलता है; परन्तु यदि आपके लेखों का संग्रह किया जाय, तो वह एक चीज़ होगी। पत्र कला के क्षेत्र में पराड़करजी ने जो आदर्श बना दिया है, वह अनुकरणीय है। पराड़करजी तथा 'आज' से काशी का गौरव है। पंडित लक्ष्मणनारायण गर्दे भी हिन्दी

के सफल सम्पादकों में हैं। आप बड़े विद्वान्, हिन्दी के गंभीर लेखक और अनेक पत्रों के सम्पादक रह चुके हैं। आप का 'श्रीकृष्ण-संदेश' हिन्दी में एक ही चीज़ था।

पंडित विनोदशंकर व्यास ने अपनी कहानियों की बदौलत काशी का नाम गौरवान्वित किया। प्रसाद-स्कूल के आप एक सफल कहानी-लेखक हैं। बाबू अन्नपूर्णानन्द उन गिने हुए हास्यरस के लेखकों में हैं, जिनकी रचना बहुत ही परिष्कृत और सुरुचि-पूर्ण होती है। पंडित सूर्यनाथ तकरू कम लिखते हैं, पर बड़े भावपूर्ण और काव्यमय आपके लेख होते हैं। आप कविता भी करते हैं, गद्य-काव्य भी लिखते हैं।

ऐसे कितने ही विद्वान् काशी में हैं, जिन्होंने पुस्तक कम लिखी हैं, परन्तु हिन्दी के मुकुट हैं। पंडित केशवप्रसाद मिश्र कवि होने के अतिरिक्त प्राकृत-अपभ्रंश के भारी विद्वान् हैं। अपभ्रंश पर आपकी पुस्तक एक चीज होगी। पंडित विजयानन्द त्रिपाठी रामायण के प्रगाढ़ पंडित हैं। आपके सम्पादन में रामचरितमानस का एक संस्करण शीघ्र ही निकलनेवाला है।

इतने लेखकों और विद्वानों को ही काशी ने जन्म नहीं दिया और भी सज्जन हैं, जिन्होंने अपनी निःस्वार्थ सेवा-द्वारा हिन्दी के विकास में योग दिया। बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने तन-मन-धन-द्वारा हिन्दी के लिये जो कुछ किया, शायद ही किसीने किया हो। स्वयं पुस्तक भी लिखी। वह हिन्दी में अपने ढंग की पहली पुस्तक है। लाखों रुपये लगाकर 'ज्ञानमण्डल' संस्था खोली, जिसके द्वारा विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें निकली हैं और दैनिक 'आज' का प्रकाशन होता है। बाबू श्यामसुंदरदास, पंडित रामनारायण मिश्र, तथा ठाकुर शिवकुमारसिंह द्वारा स्थापित नागरी-प्रचारिणी-सभा देश में एक ही संस्था है, जिसने अकेले हिन्दी की जो सेवा की है, किसी संस्था ने नहीं की। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की यही जन्मदात्री है, काशी ही उसका जन्मस्थान है। रायकृष्णदास ने अपना संगृहीत कला-भवन, जो नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दिया है, हिन्दीवालों के लिये एक ही चीज़ है। वहाँ हिन्दी की लिपियाँ चित्र और लेखकों के पत्र इत्यादि रखे जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त कितने ही होनहार लेखक, लेखिकाएँ, हिन्दी के सेवक काशी में बिखरे हुए नक्षत्र लोक के समान पड़े हुए हैं, जिनकी गणना करना और इस लेख में उनपर नोट लिखना असंभव है। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि और नगरों में हिन्दी के लेखक और कवि नहीं हैं। हमारा केवल यह कहना है कि काशी ने हिन्दी-साहित्य की उन्नति में अथवा विकास में जो योग दिया है, वह किसी और स्थान से कम नहीं है। काशी का दम किसी से पीछे नहीं है। कवियों में, लेखकों में, नाटककारों में काशी ने एक-एक व्यक्ति ऐसे पैदा किये हैं, जो शिरमौर हैं। हिन्दी की जो संस्थाएँ यहाँ है, अग्रगण्य हैं। होनहार युवक लेखकों की वह सेना काशी में है, जो आगे चलकर हिन्दी के लिये एक महान् शक्ति होगी। काशी ने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को चार सभापति दिये। इसीसे अनुमान हो सकता है कि काशी ने हिन्दी के लिये क्या किया।

समाचार-पत्रों के लिये काशी अच्छा स्थान नहीं है। फिर भी जो पत्र यहाँ से निकलते हैं, उनका आदर्श किसी से गिरा नहीं है। विख्याता 'सरस्वती' का जन्म भी काशी में ही हुआ था।

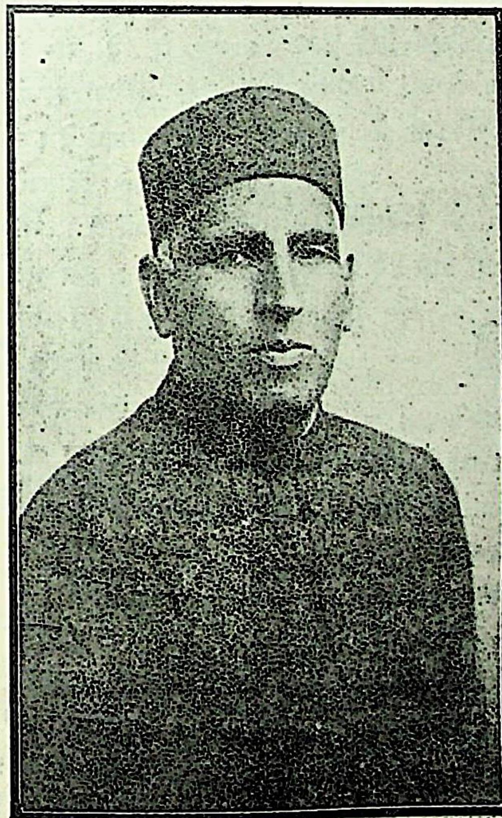
हम आशा करते हैं कि काशी-निवासियों ने जो स्थान हिन्दी-जगत् में अपने लिये बना लिया है, उससे वे बढ़ते ही जायँगे।

काशी में सामाजिक सुधार का प्रारम्भिक उद्योग

लेखक—श्रीयुत पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०

पहली शुद्धि

सन् १८९९ में मैं बनारस गवर्नमेण्ट कॉलेज के बोर्डिङ्ग-हाउस में रहा करता था। उस समय काशी-आर्यसमाज का मंदिर बोर्डिङ्ग हाउस से क़रीब तीन फ़रलांग पर था। समाज में मध्य प्रदेश के दो ब्राह्मण-बालकों की—जो ईसाई हो गये थे—'शुद्धि' की तैयारी हो रही थी। हमलोगों को इसकी कुछ ख़बर न थी। एक दिन कुछ मित्र मुझसे मिलने आये। उनके साथ महाशय केशवदेवजी थे, जिनसे मैं उस समय अपरिचित था। इन लोगों ने मुझसे अन्य छात्रों के साथ शुद्धि में सम्मिलित होने के लिये कहा, यह शुद्धि भी ऐतिहासिक थी। उन दिनों लाहौर दयानन्द-वैदिक-कॉलेज के संस्कृत अध्यापक पं० राजाराम 'शास्त्री' काशी में 'ब्राह्मण'-ग्रन्थों का अध्ययन करने भेजे गये थे। उनकी योग्यता, सौम्यता और सद्व्यवहार को देखकर एक सर्वमान्य महामहोपाध्याय ने उनको पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। पढ़ाई अच्छी चल निकली थी। गुरु-शिष्य एक दूसरे से प्रसन्न थे। एक दिन ये ईसाई बालक महामहोपाध्यायजी के यहाँ पहुँच गये। उनके पिता हृदय से दुखी थे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार ये बालक प्रायश्चित्त के उपरान्त हिन्दू-समाज में ले लिये जायँ। गद्गद होकर इन्होंने महामहोपाध्यायजी से इसकी प्रार्थना की। गुरु-शिष्य दोनों उस समय एक ही स्थान पर थे। आपस में प्रायश्चित्त-विषय पर कुछ विचार हुआ और पंडितजी ने व्यवस्था दे दी कि किस प्रकार का प्रायश्चित्त हो। यही शुद्धि थी, जिसमें हमलोग निमन्त्रित किये गये थे। संस्कार बड़े धूम-धाम से हुआ। आर्यसमाजी जोशीले तो होते ही हैं, एक महाशय ने महामहोपाध्यायजी के पत्र को समाज में पढ़कर सुना दिया। बस, अब क्या था, सारे नगर में इस की चर्चा फैल गई। गुरुजी ने शिष्य को इसका ज़िम्मेदार ठहराया और उनसे अपने लेख को वापस लाने का आग्रह किया, नहीं तो पढ़ाना बन्द करने की धमकी दी। शिष्य करते ही क्या, उन्होंने ढूँढ कर लेख लौटा दिया, जो तुरन्त ही नष्ट कर दिया गया और 'भारत-जीवन' में यह छपवा दिया गया कि व्यवस्था देने की बात सर्वथा निर्मूल थी। शिष्य महाशय भी सदा के लिये गुरु के दर्शनों से वञ्चित किये गये।



इस लेख के लेखक

पहली कन्या-पाठशाला

काशी में ईसाइयों-द्वारा खोली हुई दो-एक कन्या-पाठशाला बहुत दिनों से चली आ रही हैं; परन्तु हिन्दुओं ने जिस कन्या-पाठशाला को सबसे पहले खोला, वह लाहौरी टोला कन्या-पाठशाला है। यह बात सन् १९०१ की है, जिसका श्रेय मित्रवर बाबू माधवप्रसाद जी को है। जब यह पाठशाला खोली गई, तब उस मुहल्ले में हलचल मच गयी। गुंडे पाठशाला के इधर-उधर आकर खड़े हो जाते और अध्यापिकाओं तथा लड़कियों से छेड़-छाड़

करते। अध्यापिकाएँ भी ऐसी मिलती थीं, जिनका चरित्र संदिग्ध था। भले घरों की लड़कियाँ भी नहीं आती थीं, बहुत समझाने पर 'शरीफ़ ख़ान्दान' की दो-एक लड़कियाँ आने लगीं। कभी-कभी प्रतिष्ठित लोगों को बुलाकर मिठाई बटवाई जाती; परन्तु प्रतिष्ठित लोग भी कन्या-पाठशाला में आने में आनाकानी करते। हाँ, जिस दिन कलक्टर साहब बुलाये जाते, उस दिन बेशक कुछ सज्जन आ उपस्थित होते। उन दिनों कलक्टर ही म्युनिसपल-बोर्ड के प्रधान हुआ करते थे। जिस गली में बाबू माधवप्रसाद और पाठशाला के अन्य संचालक निकल जाते, लोग कहते—यह देखो, आर्य-समाजी आये।' क्योंकि उस समय तक केवल आर्य-समाज ही ने संयुक्त प्रान्त और पंजाब में स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ खोली थीं। लाहौरीटोला के बाद गायघाट और बुलानाला में कन्या-पाठ शालाएँ खोली गईं। समय पाकर बुलानाला पाठशाला सेंट्रल ट्रेनिंग कन्या-पाठशाला में परिवर्तित हो गई, जिसके लिये राजा साहब भिनगा ने दस हजार रुपया दान दिया। गायघाट पाठशाला के लिए राजा बलदेवदास बिड़ला ने भवन बनवा दिया।

स्त्री-शिक्षा का दूसरा उद्योग काशी के थियोसोफिस्ट लोगों ने किया और उनको बड़ी सफलता प्राप्त हुई।

भर जाति में जागृति

भर नाम की एक जाति है। कहीं उनके हाथ का पानी पिया जाता है और कहीं नहीं पिया जाता। वे पहले राज्य करते थे, अब अछूत और 'जरायम पेशा' समझे जाते हैं। जरायम पेशा वे लोग हैं, जो चोरी करके अपना निर्वाह करते हैं। बिना पुलिस की आज्ञा के वे अपना घर नहीं छोड़ सकते। इस जाति का एक लड़का १९०५ ई० में बनारस ज़िले के एक देहाती स्कूल में अपना नाम लिखवाने आया। स्कूल-भर में शोर मच गया। अध्यापक लोगों ने नाम लिखने से इनकार किया; परन्तु नियमानुसार पीछे से उनको उसका नाम लिखना पड़ा। मिडिल पास होने पर वह नार्मल स्कूल भेजा गया। वहाँ भी उसको अपमान सहकर पढ़ना पड़ा। फिर वह अध्यापक नियुक्त हुआ। लोग उसको न कुर्सी पर बैठने दें, न चारपाई पर सोने दें, 'ब्राह्मण-क्षत्रियों के सामने कुर्सी पर बैठोगे? चारपाई पर सोओगे?' ऐसी-ऐसी बातें लोग कहते, तिसपर भी उन्नति करते-करते वह भर-बालक एक स्कूल का मुख्याध्यापक हो गया। वैसी ही कठिनाई उसके भाई के सामने उपस्थित हुई, जो इस समय स्कूलों के सब डिप्टी इन्सपेक्टर हैं। मुख्याध्यापकजी का नाम श्री अयोध्या प्रसादजी है और सब डिप्टी इन्सपेक्टरजी का नाम बाबू रामप्रताप है। इस जाति को रज-भर भी कहते हैं। इनमें शिक्षित लोगों की संख्या खूब बढ़ रही है।

पहला प्रीति-भोज

मार्च १९१० में काशी में प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन के साथ सोशल कांफ्रेन्स (सामाजिक संशोधन सम्बन्धीपरिषद्) भी हुई। २७ मार्च को उसकी ओर से प्रीतिभोज हुआ। सोशल कान्फ्रेन्स के सभापति देहरादून के बा० ज्योतिस्वरूप थे, वे बा० सीताराम साह बी० ए० के भवन में—जो गौरीशंकर के बगीचे के नाम से उस समय प्रसिद्ध था—ठहरे थे। वहीं यह प्रीति-भोज रचा गया। इसमें हर जाति के हिन्दुओं के अतिरिक्त कुछ अङ्गरेज और मुसलमान भी थे। भोजन ज़मीन पर बैठ कर किया गया था। इसका प्रबन्ध श्रीकेशवदेवजी शास्त्री ने किया था। आर्यसमाज में इस पर बड़ा आन्दोलन मचा। एक दल यह कहने लगा कि अङ्गरेज और मुसलमान जब तक शुद्ध न हो जायँ, उनके साथ न खाना चाहिए। दूसरा दल सहभोज का समर्थन करता था। उस समय का 'नवजीवन' इस विषय के लेखों से भरा हुआ है। दोनों ओर से शास्त्रों के प्रमाण और युक्तियाँ पेश की जाती थीं। स्वर्गीय पं० तुलसीराम स्वामी सहभोजियों के विरोधियों के नेता थे। महात्मा हंसराजजी उनके विरोधी थे। पक्ष में समाज के अनेक प्रसिद्ध नेताओं ने लेख लिखे थे, जिनमें से महात्मा मुन्शीराम जी, पं० गंगाप्रसादजी, मास्टर आत्मारामजी के नाम उल्लेख करने योग्य हैं। इस सहभोज में शरीक होने वाले बहुत से व्यक्ति अजाति किये गये और करीब एक साल तक अनेक बिरादरियोंमें हलचल मची रही।

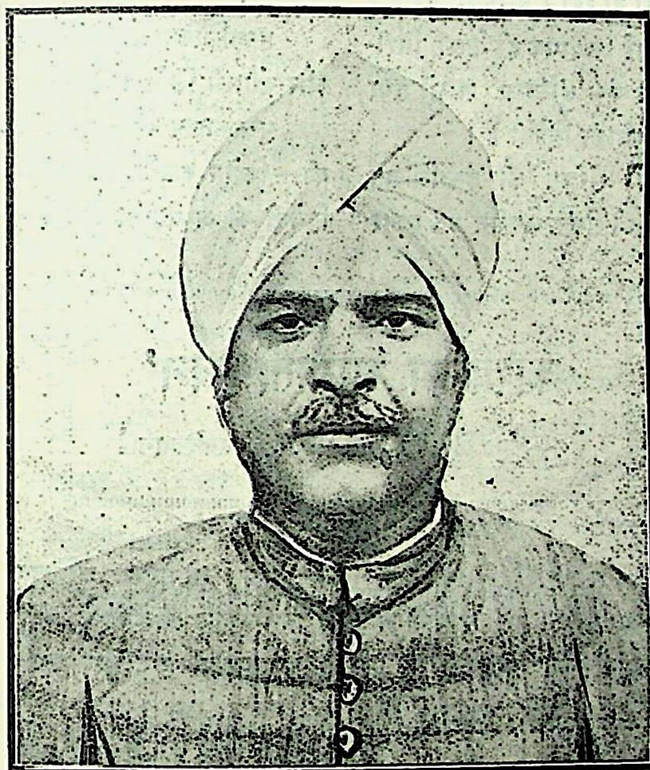
विलायत-यात्रा पर आन्दोलन

मई सन् १९१० में स्वर्गीय बा० लक्ष्मीचन्द्रजी के

विलायत से लौट आने पर अग्रवाल वैश्यों में बड़ा आन्दोलन मचा। इसके कारण बिरादरी में मुक़दमेबाज़ी की नौबत आ गई। सभा-पर-सभा होने लगीं। एक ओर पंडित-दल और पुराने विचार के अग्रवाल, दूसरी ओर अंग्रेजी पढ़े अग्रवाल और प्रायः समस्त अंग्रेजी जानने वाले हिन्दू। प्रातःस्मरणीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने ११ जुलाई को एक सभा में स्पष्ट शब्दों में विदेश-यात्रा का समर्थन किया था। श्रीमान् काशी-नरेश महाराजा प्रभूनारायणसिंहजी ने भी पत्र-द्वारा अपनी सम्मति इसके पक्ष में प्रकट की थी। इस आन्दोलन के नेता स्वर्गवासी बा० गोविन्द-दासजी थे। बा० लक्ष्मी-चन्द से पहले दो-एक और सज्जन भी विलायत हो आये थे। उन दिनों विलायत जाना एक अद्भुत बात समझी जाती थी। काशी में पढ़े-लिखे लोग टाउनहाल में मीटिंग करके ऐसे लोगों का स्वागत किया करते थे।

अछूतों को अपनाने का पहला उद्योग

सन् १९११ की मनुष्य-गणना की तैयारी हो रही थी, देश में यह चर्चा फैली हुई थी कि सरकारी कर्मचारी अछूत जातियों को हिन्दुओं में नहीं गिनेंगे। जगह-जगह इसके विरुद्ध सभाएँ हो रही थीं। समाचार-पत्रों में लेख लिखे जा रहे थे। ३ दिसम्बर १९१० शनिवार के दिन मित्रवर श्री शिवप्रसादजी गुप्त के साथ मैं स्वर्गवासी महामहोपाध्याय श्रीशिवकुमारजी शास्त्री के घर गया। इसी विषय पर बातचीत होने लगी। उनके विचार स्पष्ट थे, उन्होंने कहा—'अछूत लोग अवश्य हिन्दू हैं।' उनसे प्रार्थना की गयी कि आप अपने विचारों को सर्व-साधारण की सभा में प्रकट करें। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे ही दिन नागरी-प्रचारणी-सभा-भवन में बहुत बड़ी सभा की गई। पण्डित शिवकुमारजी शास्त्री ने सभापति का आसन ग्रहण किया और अपने व्याख्यान में शास्त्र का हवाला देते हुए बतलाया कि अछूत जाति के लोग हिन्दू हैं। इस व्याख्यान का सारांश देश के दैनिक पत्रों में छप गया। पूरा व्याख्यान 'नवजीवन' में—जिसको स्वर्गीय केशवदेव शास्त्री निकालते थे—छपा।



स्वर्गीय श्री केशवदेवजी शास्त्री, एम० डी०

जितना पण्डित शिवकुमारजी ने कहा, उतना भी उस समय कहना बहुत था। अब समय बदल गया है, विचार का क्षितिज विस्तृत हो गया है। हिन्दू-जाति के संचित कर्मों का फल अब घाव के रूप में प्रकट हो रहा है। पण्डितों का हृदय भी बदल गया है। उन में भी देशहित की लहर उमड़ आई है। हिन्दू-सभा और सनातनधर्म-सभा के अधिवेशनों पर और संस्कृत के पत्रों-द्वारा उनमें से बहुत-से लोग स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट करने लग गये हैं। उस समय अछूतों को हिन्दू कहने में भी संकोच था। आज पूज्य मालवीयजी उनको मंत्रोपदेश देते हैं। देश में सर्वत्र उनके प्रति सद्भाव प्रकट किया जा रहा है। महात्मा-जी प्राणपण से उनके उद्धार और सुधार का यत्न कर रहे हैं।

काशी का 'सरस्वती-भवन'

ले०—श्रीयुत दौलतराम शर्मा, एम० ए०, साहित्याचार्य

यों तो काशी में अनेक पुस्तकालय हैं ; पर संसार के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में 'सरस्वती-भवन' की ही गणना है। इस पुस्तकालय का प्रारंभ उतना ही प्राचीन है, जितना कि 'संस्कृत कॉलेज' का, जो कि अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में स्थापित हुआ। सन् १९१४ तक यह पुस्तकालय अपने संक्षिप्त रूप में 'संस्कृत कॉलेज' में ही रहा। इसके बाद डॉक्टर आर्थर वेनिस की प्रेरणा से 'सरस्वती-भवन' का निर्माण हुआ। उस समय से इसका नाम 'प्रिंसेस आफ वेल्स गवर्नमेण्ट संस्कृत लाइब्रेरी' रक्खा गया ; पर प्रसिद्धि 'सरस्वती-भवन' की ही रही। इसके संक्षिप्त रूप के समय 'संस्कृत कॉलेज' के कोई अध्यापक ही इसके निरीक्षक रहते थे, जिनमें उल्लेख्य पं० ढुंढिराज शास्त्री तथा स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी हैं।

यह पुस्तकालय मुख्यतया संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों के लिये प्रसिद्ध है, जिनकी संख्या लगभग ४५ हज़ार है। हस्तलिखित पुस्तकों की इतनी संख्या कदाचित् संसार के किसी पुस्तकालय में नहीं हैं। छपी हुई पुस्तकें भी लगभग ३० हज़ार हैं। इस पुस्तकालय का ध्येय सभी मुद्रित पुस्तकों का चयन नहीं; प्रत्युत् हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और छानबीन—रिसर्च—में काम आने वाली पुस्तकों का चयन है। छपी पुस्तकों में जर्मन, फ्रेंच, पाली आदि भाषाओं की पुस्तकें भी हैं। मुद्रित पुस्तकों का ऐसा अपूर्व संग्रह उत्तर भारत में तो कदाचित् कलकत्ते में ही हो।

हस्तलिखित पुस्तकें मुख्यतया काशी और उसके आसपास के स्थानों तथा बंगाल से मिली हैं। अनेक उद्भट विद्वानों के संग्रह भी उनके काशीस्थ वंशधरों से प्राप्त हुए हैं ; जैसे—नारायण भट्ट तथा यजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार महीधर के संग्रह। महीधर के संग्रह में कई पुस्तकें उनके हाथ की लिखी हुई हैं।

हस्तलिखित ग्रंथों में कुछ की संसार में वही एक-मात्र प्रति है। उदाहरण में यजुर्वेद की 'कपिष्ठल संहिता' ले लीजिये। इस पुस्तक को यूरोपीय विद्वान काम में लाते हैं और इसके खो जाने से संसार इस ग्रंथ-रत्न से वंचित ही रह जाता। वाल्मीकि रामायण का एक कांड गोस्वामी तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ है। श्रीमद्भागवत की एक बड़ी प्राचीन प्रति है, जो विद्वानों की सम्मति से बारहवीं शताब्दी की है। यह ग्रंथ कागज़ पर लिखा हुआ है। ऐसे ग्रंथ दर्शनीय हैं।

हस्तलिखित ग्रंथ बहुत अधिक संख्या में कागज़ पर लिखे हुए हैं ; परंतु कुछ ताड़पत्र पर और कुछ कागज़नुमा लकड़ी पर हैं। इन्हें देखने से भी किसी को वंचित न रहना चाहिए।

हस्तलिखित ग्रंथ प्राचीन तथा नवीन देवनागरी, मैथिली और बंगाली लिपि में हैं।

पुस्तकालय की—ख़ास कर हस्तलिखित ग्रंथ-विभाग की—विशेष उन्नति महामहोपाध्याय पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में हुई थी। इसके बाद नये भवन का निर्माण हो जाने पर, तथा पुस्तकालय के विशाल हो जाने पर, यू० पी० प्राविन्शल सर्विस की ओर से एक प्रधान पुस्तकाध्यक्ष की नियुक्ति आवश्यक समझी गई और इस पद पर प्रसिद्ध विद्वान् पं० गोपीनाथ कविराज की नियुक्ति हुई, जो इस समय 'संस्कृत कॉलेज' के प्रिंसिपल हैं। इनके समय से पुस्तकालय की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है।

करीब सन् १९१९ से यहाँ से दो पुस्तक-मालाएँ निकलने लगी हैं। एक तो हस्तलिखित ग्रंथों के प्रकाशन के लिये और दूसरी अनुसन्धान-विकास—रिसर्च स्टडीज़—के लिये। इन मालाओं में अबतक अनेक विद्वानों के संपादकत्व में बहुत से 'रिसर्च पेपर्स' तथा प्रायः ५० पुस्तकें निकल चुकी हैं।

सन् १९२० के लगभग म० म० पं० विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी के स्थान में पं० नारायण शास्त्री खिस्ते असिस्टेण्ट लाइब्रेरियन नियुक्त हुए, जिन्होंने हस्तलिखित ग्रंथ-विभाग में काफ़ी अभिवृद्धि की। सन् १९२४ में डॉक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० फ़िल० (ऑक्सन) को प्रधान

(शेषांश १८८ पेज के नीचे)

काशी का प्राचीन कवि-समाज

लेखक—श्रीयुत ठाकुर वैजनाथसिंह

चारिहुँ आश्रम बर्न, बसैं जहँ सुन्दर धाम अकास विभासिका।
सोभा नहीं कहि जाय कछू विधि नै रची मानों पुरीन की नासिका॥
आपु बसे गिरिधारन जू तट देवन की बरबारि विलासिका।
पुन्य-प्रकासिका पाप-विनासिका हीय-हुलासिका सोहति काशिका॥

काशी सदा-सर्वदा से विद्यापीठ रही है। इस समय भी है और आगे भी रहेगी। संस्कृत के लिये इस नगरी ने जैसी ख्याति प्राप्त की है, वैसी ही हिन्दी के लिए भी। संस्कृत-साहित्य की सेवा में यह कभी किसी से पीछे न रही और न रहने की सम्भावना ही है। इसकी हिन्दी-साहित्य-सेवा के विषय में भी यही बात कही जायगी। यह वास्तव में विद्या के अधिष्ठाता देवता विश्वनाथ की राजधानी है।

इस महानगरी में बड़े-बड़े सन्त-महात्मा, विद्वान्, पण्डित, कवि और लेखक हो चुके हैं। बहुत-से इस समय भी हैं और आगे भी रहेंगे। इसकी गोद सदा अनमोल लालों से भरी रही है और विश्वनाथ की दया से आगे भी सदा भरी रहेगी। यदि यहाँ के सिद्ध-सन्तों और धुरन्धर पण्डितों की कथा लिखी जाय, तो एक बड़ा पोथा तैयार हो सकता है। इस लेख में यहाँ के कुछ पुराने हिन्दी-कवियों की चर्चा करना ही अभीष्ट है।

मीर रुस्तमअलीखाँ

ये लखनऊ के नवाब के चकलेदार थे। इनका बनवाया हुआ मीरघाट आज भी टूटी हालत में इनके गौरव का गुणगान करता हुआ गंगा-तट पर विद्यमान है। ये बड़े ऊँचे ख़याल के कवि थे। इनकी एक कविता मुझे याद है। उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ। देखिये, काशी पर इनकी कैसी अद्भुत निष्ठा थी—

जहाँ अर्थ निज धर्म छूटै सकल भर्म,
सुभ कर्म को मर्म जय जय प्रकासी।
सुगम की अगम है, अगम की कथा नित्य,
अगम सुरसरी पान दोषै विनासी।
पढ़ैं पंडितौ वेद विद्या सदा ही,
परमहंस दंडी अखंडी सन्यासी।
कहै 'मीर रुस्तम' जहाँ भीति ना यम,
सु चलु चित्त चलु चित्त चलु चित्त कासी

महाराज बरिवंडसिंह

उक्त मीर साहब के बाद इनका युग आया। इनके दरबार में 'रघुनाथ' के समान कुशल कवि विद्यमान थे। रघुनाथ कवि का 'रसिक मोहन' ग्रन्थ वास्तव में यथानाम तथागुण प्रकट करने में समर्थ है। रघुनाथ कवि के पुत्र 'गोकुलनाथ' और पौत्र 'गोपीनाथ' थे। ये दोनों भी बड़े अच्छे कवि थे। 'गोपीनाथ' के शिष्य 'मणिदेव' की कविता साहित्य-संसार में सूर्य के समान प्रकाशमान् है। गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव ने अठारहो पर्व महाभारत का छन्द-बद्ध अनुवाद किया है। यह ग्रंथ लखनऊ के नवलकिशोर-प्रेस से प्रकाशित हुआ है। यह हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय एवं बृहत् ग्रन्थरत्न है। इसमें छन्द-शास्त्र के लगभग सभी प्रकार के छन्दों की उत्तम रचना मिलती है। यह ग्रन्थ काशी-नरेश श्रीमान् महाराजाधिराज उदितनारायणसिंहजी बहादुर की आज्ञा से तैयार किया गया था। उक्त तीनों कवि इस विशाल ग्रन्थ के रूप में अपनी अटल कीर्त्ति छोड़ गये हैं। गोकुलनाथ कवि का 'चेतचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ काशी-नरेश श्रीमन्महाराज चेतसिंहजी को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया था। यह भी बड़ा सुन्दर ग्रन्थ है।

इसी समय में 'लाल', 'बेनी', 'यार', 'देवकीनन्दन सिंह', 'गोविन्द', 'किंकर' आदि कवि हुए थे। देवकीनन्दन सिंह ने 'बिहारी-सतसई' की 'देवकीनन्दन-टीका' लिखी है। 'यार' कवि वीररस तथा भक्तिरस के प्रधान कवि थे।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह

ये गुणियों के कल्पतरु थे। इनके दरबार में एक-से-एक श्रेष्ठ कवि उपस्थित थे। टीकमगढ़-दरबार के 'सरदार कवि' इनके दरबार में आये, तो फिर लौटकर टीकमगढ़ कभी गये ही नहीं। सरदार कवि ने उक्त काशी-नरेश के दरबार में रहकर बड़ा काम किया। बिहारी-सतसई की टीका लिखी। रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका आदि का तिलक करके महाकवि केशवदास के गूढ़ ग्रन्थों को सुगम करना इन्हीं का काम था।

कवि (बचऊ चौबे), माधव कवि, द्विजबेनी, बाबू हरिशंकर प्रसादसिंहजी, छबीले, किन्नर, लाला मारकंडेय प्रसाद (चिरंजीवी कवि) आदि । कभी-कभी डुमराँव के नकछेदी तिवारी (अजान कवि) तथा पंडित अम्बिकादत्त व्यास भी—जब काशी में रहते थे—कवि समाज में आ जाते थे । ग़रज़ यह कि निराशा के अन्धकार के बाद एक बार फिर आशा की ज्योति जगमगाई । बाबा जीवनलालजी महाराज स्वयं खासी रचना करते थे, जिससे कविसमाज में स्वतः बड़ी चहल-पहल रहती थी । और-और महाराज लोग भी पधारते थे । बड़ी रौनक़ रहती थी । एक समस्या काँकरौली के महाराज ने दी थी, जिसमें रसीले कवि के हाथ पाँसा रहा—"यह ब्रजभूमि जानु खेत रसिकन का !"

इसी समय कविवर लछिरामजी अयोध्या से पधारे थे । उन्होंने अपनी ओजस्विनी कविता सुनाकर लोगों को चकित कर दिया । जब उन्होंने यह पद पढ़ा कि "पिली जात पन्नगी हरे रे परबत मैं" तब द्विजबेनी कवि ने टोका कि इस पद में तो व्यतिक्रम है । इस पर लछिरामजी ने हँसकर कहा कि वाह कविजी, आपका कहना ठीक है, कवित्त सब जगहों से ठीक बना है, सिर्फ़ इसी जगह ज़रा दोष है ; लेकिन इसके सुधारने से कवित्त का लालित्य चला जायगा । इस बात को सब लोगों ने मान लिया और लछिरामजी की बड़ी प्रशंसा की ।

यह कवि-समाज पहले प्रतिपूर्णिमा को हुआ करता था । पीछे महीने में दो बार होने लगा । कई साल तक भली भाँति चला ; किन्तु एकाएक बाबा जीवनलालजी के स्वर्गवासी होनेपर बिलकुल बन्द हो गया । ऐसा बन्द हुआ कि फिर नाम-निशान भी न रहा ।

हाँ, बाक़ी बचे हुए कुछ मनचले लोग रह गये थे । वे ही कभी-कभी 'भारतजीवन-कार्यालय' में, कभी बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के घर पर और कभी सराय-गोवर्धन मुहल्ले में श्रीमाधवसिंहजी के मकान पर जुटकर मनोरंजन कर लेते थे । ठाकुर माधवसिंहजी स्वयं एक अच्छे कवि थे ; परन्तु वह प्रसिद्धि से बहुत दूर रहते थे । हाँ, कवियों से बड़ा अनुराग रखते थे । उनके यहाँ कभी मुशायरा और कभी कवियों का जमघट हुआ ही करता था । 'उर्दूशतक' के रचयिता कवि रमानन्द, पण्डित नकछेदी तिवारी 'अजान कवि' तथा हलधर जी सन्यासी का तो उन्हीं के यहाँ डेरा पड़ा रहता था । कभी-कभी पं० सुधाकर द्विवेदी, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, रघुनाथप्रसाद बख्शी, मिर्ज़ा फ़ायज़, मियाँ नैयर, मीर तेग़अली आदि का भी जमाव हो जाता था; किन्तु बाबू माधवसिंहजी के स्वर्गवास से वह आनन्द भी जाता रहा ।

सच पूछिये तो अब वैसे कविसमाज की आवश्यकता भी नहीं है । भगवान् विश्वनाथ की दया से अब काशी में कविता की उन्नति के लिए किसी को उत्साहित करने की आवश्यकता नहीं है । आज भी यह पुण्य नगरी अच्छे-अच्छे कविता-मर्मज्ञों तथा कवितानुरागियों से भरपूर है । यद्यपि वह पुराना ढंग और वह सजीव चहलपहल कहीं देखने में नहीं आती, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि काशी निर्जीव अथवा नीरस हो गई । आज भी 'ईश कवि' के समान ब्रजभाषा के मर्मज्ञ कवि यहाँ विद्यमान हैं । स्वर्गीय साहित्याध्यापक लाला भगवानदीनजी के स्नेहियों ने 'दीन-सुकवि-मंडल' तथा स्वर्गीय रत्नाकरजी के अनुरक्त भक्तों ने 'रत्नाकर-रसिक-मंडल' की स्थापना करके आज भी काशी में प्राचीन ढंग की कविता को अनुप्राणित कर रक्खा है । हिन्दी के युगान्तरकारी कवि बाबू जयशंकर 'प्रसाद' तथा ब्रजभाषानुरागी सहृदय कवि राय कृष्णदासजी इस समय भी हिन्दी-साहित्य-जगत् में काशी का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं । कविवर हरिऔधजी भी काशी को ही अलंकृत कर रहे हैं । और भी कई नवयुवक कवि अपनी प्रतिभा की प्रभा से काशी का नाम रौशन कर रहे हैं । कहने का तात्पर्य यह कि इस समय भी काव्यक्षेत्र में काशी किसी से पीछे नहीं है—न पहले रही, न अब है, न आगे रहेगी ; क्योंकि संसार के अन्यान्य सभी स्थान पृथ्वी पर हैं और काशी भगवान् शंकर के त्रिशूल पर बसी है—तीनों लोक से न्यारी है ।

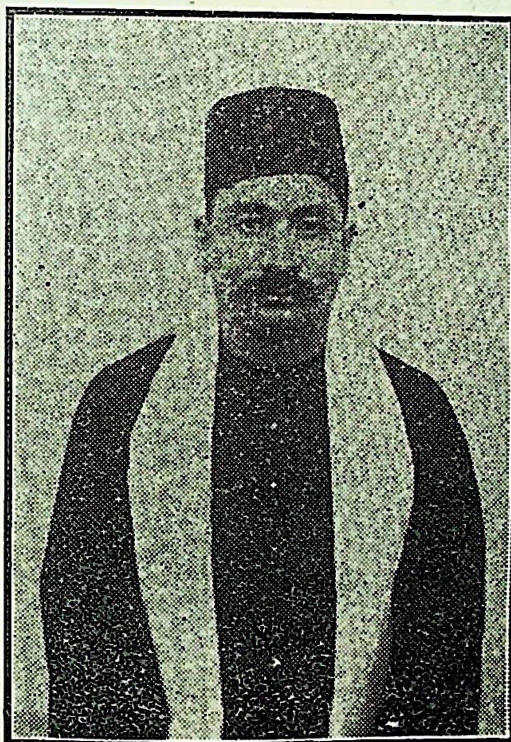
काशी का बनारसी वस्त्रों का व्यवसाय

लेखक—श्रीयुत मंगलीप्रसाद अवस्थी

काशी के बनारसी कपड़े भारत ही नहीं, समूचे संसार में प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में कन्या-कुमारी से लेकर काश्मीर तक और अटक से लेकर कटक तक ऐसा कोई नगर न बचा होगा, जहाँ बनारसी कपड़ा न जाता हो। भारतवर्ष के अतिरिक्त, विदेशों में भी यहाँ का माल जाता है। आज से बारह वर्ष पहले, केवल राजे-महाराजे और सेठ साहूकार ही बनारसी कपड़े पहनते थे; किन्तु अब तो भारत के गाँव-गाँव और घर-घर में इसका प्रचार हो गया है। इसका प्रधान कारण यह है, कि पहले इन कपड़ों में कीमती-से-कीमती ज़री और अच्छे-से-अच्छा रेशम लगाकर, खासी मजदूरी देकर ठोस, भारी और मजबूत काम बनवाया जाता था, जिससे इन कपड़ों की लागत बढ़ जाती थी; इसलिये मध्यम श्रेणी के लोग, इन्हें पहनने में असमर्थ रहते थे।

काशी में जरी के कपड़ों की कारीगरी सदियों से होती आ रही है। कहा जाता है कि पहले यहाँ की बुनाई का कुल काम हिन्दुओं के हाथों में था। इस काम के करनेवाले हिन्दू पटवे या पाटीकस लोग थे। इन लोगों के दस-पाँच घर अब भी काशी के घुघरानीगली नामक मुहल्ले में मौजूद हैं। मुगल-साम्राज्य में मुसलमान जुलाहों ने इन्हीं से यह कारीगरी सीख कर, अपने समाज में इसका प्रचार किया और काफी उन्नति की। ऐसे तो मुद्दत से प्रत्येक कारखाने में धागा या डोरी उठानेवाले प्रायः हिन्दुओं के ही लड़के रहते हैं; किन्तु इधर दस साल से बुनाई के काम में भी हिन्दुओं ने बड़ी उन्नति की है। आज बहुत बड़ी संख्या में राजपूत, अहीर, कुनबी, और कोयरी आदि जाति के लोग निहायत ही उम्दा तरनदाज़ी की बनारसी साड़ियाँ और तरह-तरह के कपड़े बना रहे हैं।

मुसलमान जुलाहे, जिनकी संख्या, लगभग ४० हजार से कम न होगी, काशी में ५२ पुरे या मोहालों में रहते हैं। ये बावनों पुरे तीन बड़े बड़े पुरों के अन्तर्गत बसे हुए हैं। जिनके नाम ये हैं—१ मदनपुरा, २ अलईपुरा, और ३ लल्लापुरा। काशी नगर के इन पुरों के अतिरिक्त, हजारों कारखाने, लोहता, बजरडीहा आदि काशी के इर्द-गिर्द के गावों में भी चल रहे हैं, जहाँ पर बनारसी कपड़ा ही बुना जाता है। अनुमान किया जाता है कि बनारसी वस्त्रों के समस्त कारखानों में लगभग लाख-सवा-लाख का कपड़ा नित्य तैयार होता और वर्ष भर में इसी अनुपात से चालान भी होता है। इन आँकड़ों के अनुसार चार-पाँच करोड़ रुपये साल का केवल जरी का कपड़ा यहाँ से बाहर जाता है।



इस लेख के लेखक

जरी के कपड़े बुननेवाले कारीगरों के अतिरिक्त एक बड़ी संख्या सिल्क के कारीगरों की भी है, जो कि काशी-सिल्क के नाम से पुकारा जाता है। काशी-सिल्क बुननेवाले कारीगर, बनारस जिले के कतिपय गावों में रहते हैं, जिनकी संख्या सात-आठ हजार से कम न होगी। काशी-सिल्क के कुछ कारीगर शहर में भी रहते हैं। जो कि बंगाली हिन्दू हैं। ये लोग बंगाल के ढाका, मैमनसिंह,



स्वर्गीय श्री हरनारायणजी,—आप बनारसी कपड़ों में नई-से-नई और अपने ढंग की निराली तरनदाजो निकालने और बनवाने में, एक ही थे। आपने ही सर्व-प्रथम बनारसी साड़ी में कतान का रेशम बनवाया और उसका प्रचार किया। आपका बनवाया हुआ एक फर्श और मसनद अभी तक मौजूद है, जिसकी कीमत तीन हजार रुपया बताई जाती है। आप के फर्म का नाम—श्री पूरनचन्द-हरनारायण पड़ता है। अब आपके दो सुपुत्र—श्री मूलचन्द व श्री लालचन्द—कोठी को चला रहे हैं।

जैसोर आदि स्थानों से आकर यहाँ बस गये हैं। इनको तांती कहते हैं। इनकी संख्या भी सात-आठ सौ से कम न होगी। ये लोग काशी में लगभग बीस-बाइस साल से आकर रहते हैं।

कपड़े की बुनाई के अन्तर्गत और भी कितने ही उद्योग धन्धे हैं, जिनसे हजारों स्त्री-पुरुषों की रोटी चलती है। जैसे रेशम का कारोबार, करघे व ढरकी की दुकानें, रंग की दुकानें, रेशम की फेराई का काम, जो कि प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। तानी तननेवाले, रेशम खारनेवाले, सिल्क धोनेवाले आदि इनकी संख्या भी सहस्राधिक होगी।

यहाँ के कारोबार में कपड़ों में माड़ी लगाने या पालिश करने का काम भी प्रधान है और साथ-ही-साथ निराला भी माड़ी बिलकुल देशी ढंग से लगाई जाती है, जिसका तरीका यदि विस्तृत रूप से लिखा जाय, तो पूरे एक लेख की सामग्री है। माड़ी लगने के बाद, बनारसी साड़ी-दुपट्टों में जान आ जाती है। माड़ी का काम पहले मुसलमान कारीगर करते थे; किन्तु इस बेकारी के जमाने में हिन्दुओं ने भी यह काम आरम्भ कर दिया है और आज तक माड़ी के पचीसों कारखाने, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के खुल गये हैं।

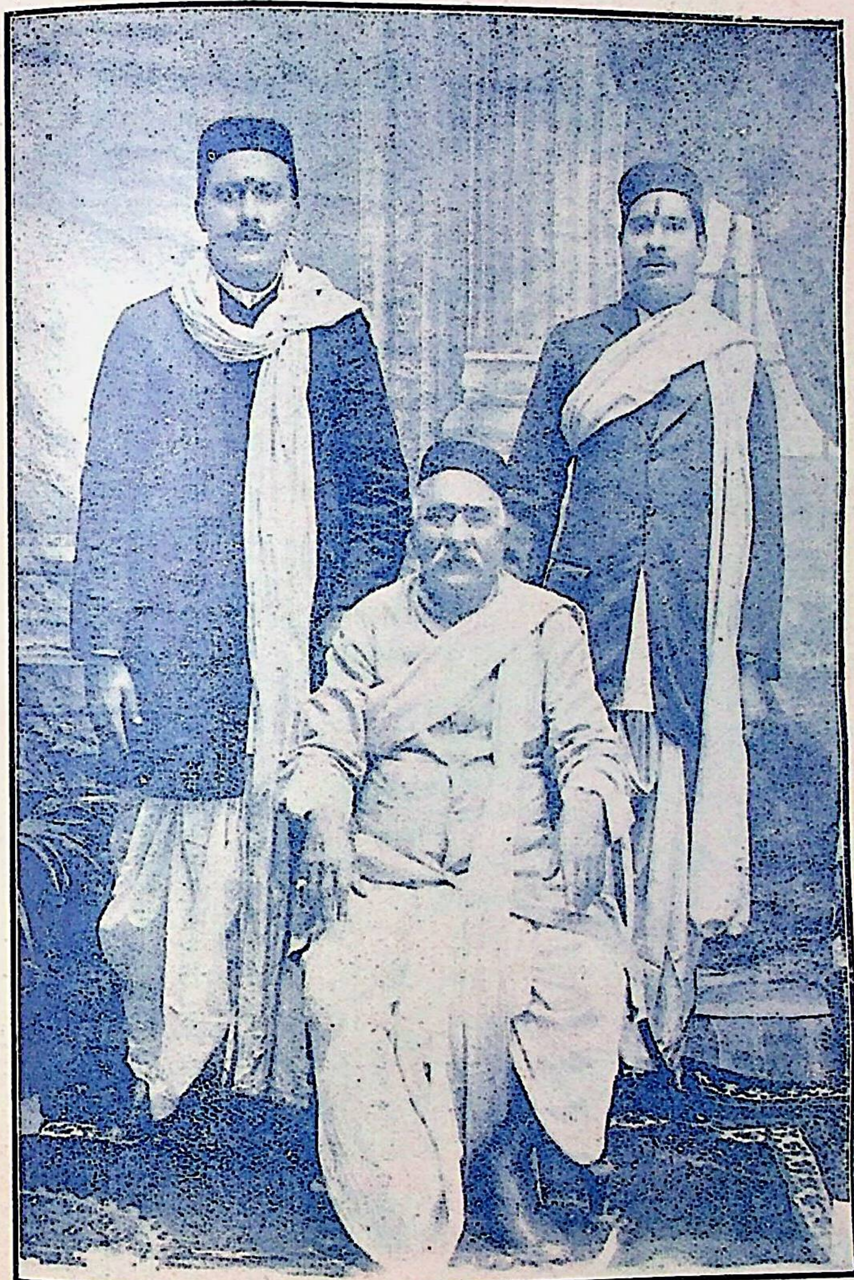
बनारसी कपड़ों में सबसे पहले काम होता है, अच्छे-अच्छे बेल बूटों और डिजाइनो का बनाना। ये बेल-बूटे पहले एक कागज़ पर खिंचवाये जाते हैं। जिनको खाका कहते हैं। यहाँ इन बेल बूटों के खींचनेवाले कई कारीगर हैं; किन्तु विश्वेश्वर कुहार नामक एक कारीगर इस काम में बड़ा निपुण है। विश्वेश्वर के बराबर, बनारस में कोई दूसरा कारीगर नहीं है।

बनारसी कपड़ों में प्रायः काश्मीर, आसाम, मालदह



श्री जंगीलालजी—आप बनारसी माल में नित्य नई-नई तरनदाजी निकालने में प्रसिद्ध हैं। आपने दिल्ली और पंजाब की ओर चलने वाले बनारसी कपड़ों में बड़ी उन्नति की है। आपके फर्म का नाम—श्री अमीचन्द-जंगीलाल पड़ता है।

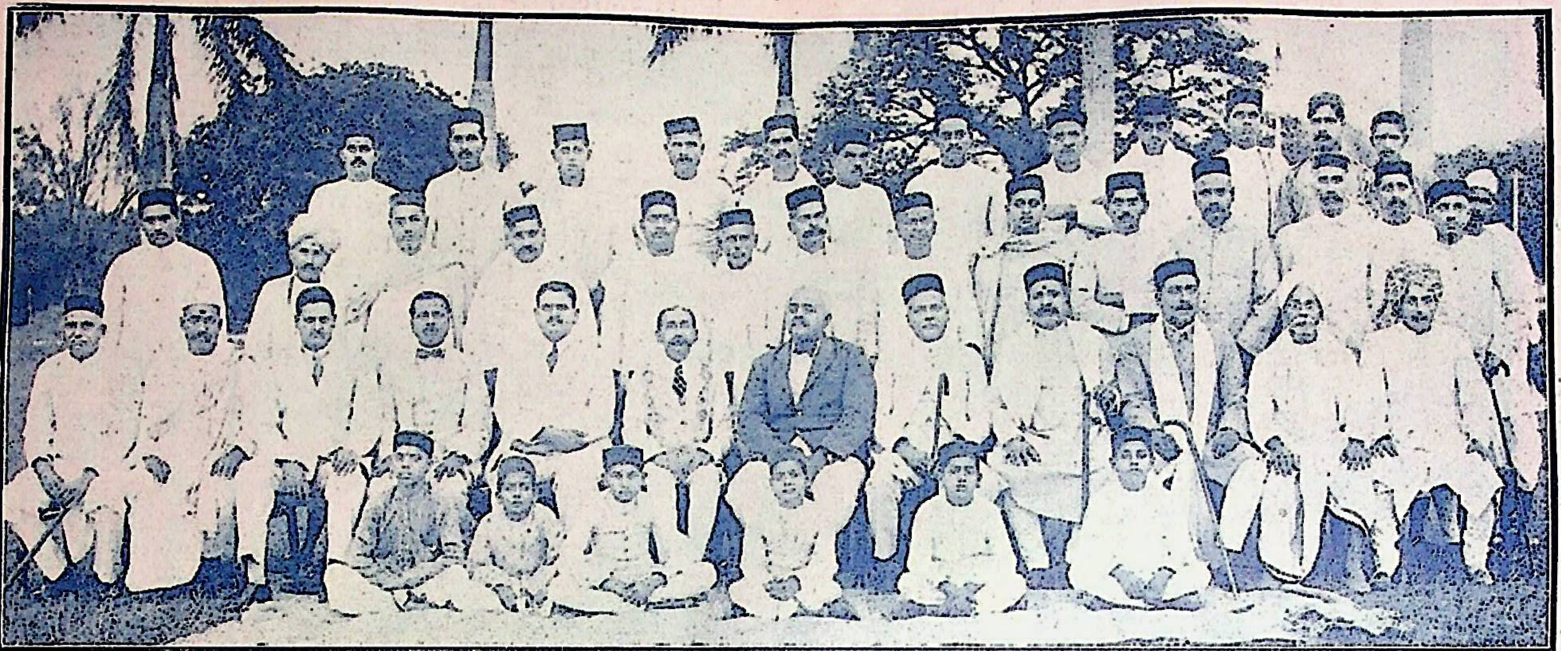
दीवान बालमुकुन्दमलजी कपूर, अपने दोनों सुयोग्य पुत्रों के साथ



बाईं ओर दीवान गोकुलचन्दजी कपूर—आप भारत के दूसरे उड़ाके और आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं। बैठे हुए स्वर्गीय दीवान बालमुकुन्दमलजी कपूर—आपने ही सर्व प्रथम काशी-सिल्क बनवाया और दूर देशों में उसका प्रचार किया। आप बड़े स्वावलम्बी, उद्योगी और कर्तव्यनिष्ठ थे। आपकी एक विशाल सिल्क-मिल भी है।

दाहिनी ओर दीवान रामचन्द्रजी कपूर—आप कुशल व्यापारी और यहाँ के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ता हैं। जलयात्रा भी कर आये हैं।

बनारसी माल के व्यापारी और उनसे सहानुभूति रखने वाले अधिकारी



बाईं ओर से खड़े हुये—प्रथम पँक्ति—श्री संतलाल, श्री गोपीनाथ, श्री श्रीकृष्ण, श्री चुन्नीलाल, श्री संकठाप्रसाद सेठ, श्री मथुरानाथ, श्री लछिमनदास, श्री भीखूजी, श्री लालचन्दजी, श्री पुरुषोत्तमदासजी, श्री हरिश्चन्द्र शर्मा, श्री बच्चेजी।

बाईं ओर से खड़े हुये—द्वितीय पँक्ति—श्री देवी नारायण वकील, श्री शोभाराम, श्री जयरामदास, श्री काशीनाथजी, श्री रामलालजी, श्री मुन्नीलाल, श्री प्रहलादप्रसाद काही, श्री देवकीनन्दन, श्री बालकृष्णदासजी, श्री वंशीधर, श्री नित्यानन्द, श्री माधोप्रसाद, श्री धन्नूजी, श्री मुकुन्दीलाल।

बाईं ओर से बैठे हुये—श्री महाराजसिंहजी, श्री मूलचन्दजी, श्री गौरीनाथजी, स्वर्गीय श्री सत्यनारायणप्रसादजी, श्री हरिश्चन्द्रजी 'जज' श्री राजनारायण टंडन, श्री वी० एन० मेहता, स्वर्गीय रायबहादुर बटुकप्रसादजी, राय साहब माधोराम संड, दीवान गोकुलचन्द कपूर, लाला परमानन्दजी चौधरी, श्री युगलकिशोरजी।

और बेलडाँगा आदि का रेशम लगाया जाता है; किन्तु इधर कुछ वर्षों से और देशों का रेशम भी खर्च होने लगा है, जिससे बनारसी माल की तरक्की तो अवश्य हुई; किन्तु देशी रेशम को धक्का लगा है।

आज के दस वर्ष पहले, फ्रांस का बना हुआ कलाबत्तू इन कपड़ों में लगाया जाता था; किन्तु विदेशी कलाबत्तू पर तीस रुपये सैकड़े कर बैठा देने के कारण वह बिलकुल बंद होगया। फ्रांस के कलाबत्तू के एक बहुत बड़े कारखाने की सोल एजेन्सी, यहाँ के प्रसिद्ध फर्म दीवान गोकुलचन्द्र-रामचन्द्र के हाथों में थी। ड्यूटी बढ़ जाने के कारण फ्रांस-कारखाने के मालिकों ने, भारत में और खास कर बनारस में ही कलाबत्तू का कारखाना खोलने का विचार किया। इस पर, दीवान-बन्धुओं ने उसका विरोध करके देश-प्रेम का अच्छा परिचय दिया। जब से विलायती कलाबत्तू बंद हुआ, तब से बनारस में ही अच्छी तादाद में, इसके कारखाने खुल गये हैं, जिनमें तार बनाने वाले, सूत लपेटने वाले, रंग चढ़ाने वाले आदि हज़ारों आदमी अपना



श्री हरिशंकरलालजी नेपाली—तिब्बत और नेपाल की डिज़ाइन का किमखाब बनाने में आप प्रसिद्ध हैं। इसके लिए आपको अनेक प्रदर्शिनियों से स्वर्ण और रजत् पदक मिले हैं। आप की फर्म का नाम हरिशंकरलालराम-शंकरलाल पड़ता है।



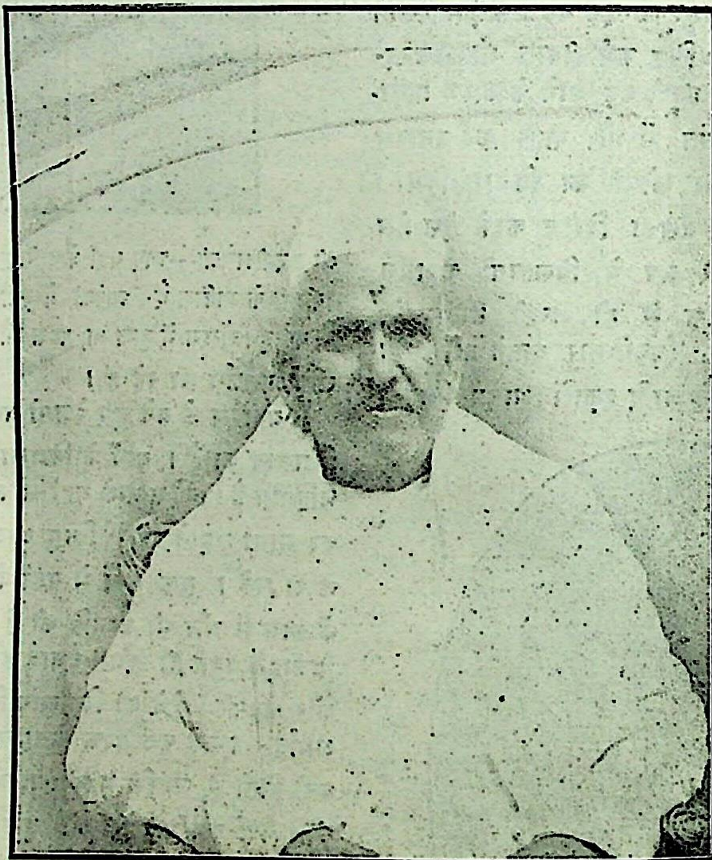
श्री लक्ष्मीदासजी—आप यहाँ के प्रसिद्ध फर्म 'इण्डियन टैक्स टाइल्स कंपनी के मालिक हैं। आपको वेम्बली एक्ज़िबीशन में, जो कि कई वर्ष हुए लन्दन में हुआ था, पदक और प्रशंसा-पत्र प्राप्त हुए हैं।

जीवकोपार्जन कर रहे हैं।

बनारस के बने हुए रेशमी वस्त्रों में, सबसे बड़ा स्थान किमखाब का है। यहाँ के किमखाब की कारीगरी संसार में अद्वितीय है। विदेश वाले यहाँ आकर, तमाम पुर्ज़ों में घूम-घूम कर माथा लड़ाते रहे; किन्तु आज तक इस कारीगरी को न पा सके। कुछ वर्षों से यहाँ के कारीगरों ने किमखाब के काम में और भी उन्नति की है। उन्होंने किमखाब में दो डिज़ाइनें बहुत ही अच्छी बनाई हैं, जिनका नाम है—खेवा और अलफी। खेवे का किमखाब बिलकुल ज़री-मय होता है; अर्थात्—इसके एक तरफ बिलकुल जरी की ही फूल-पत्तियाँ बनी होती हैं, जो कि अपनी चमचमाहट से आखों में चकाचौंध पैदा कर देती हैं। और दूसरी अलफी की तरनदाजी का किमखाब तो किमखाब-जगत् की कारीगरी में, अपनी जोड़ ही नहीं रखता। अलफी के किमखाब में जरी की अत्यंत बारीक फूल-पत्तियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें देखकर काश्मीर के जामेवार की याद आजाती है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि जामेवार में, ऊन की फूल-पत्तियाँ रहती हैं। और अलफी के किमखाब में ज़री की। इन्हीं खेवे और अलफी के किमखाबों की पोशाकें, राजे-महाराजे बनवाते थे और अब तो इनके छोटे-छोटे टुकड़े भी बनने लगे हैं। गोरी बीबियाँ इन किमखाब के टुकड़ों के जूते बनवाती हैं जिनको कि Brocade कहते हैं। पहले बनारस में,

किमखाब के ही ढंग से, एक तरनदाजी 'वाफता' के नाम से बनाई जाती थी, और वह किमखाब के ही नाप का थान होता था। इस थान के बीच में बूटियाँ होती थीं, और उन बूटियों में आधा रेशम और आधा जरी बुना जाता था। ये थान बहुत सस्ते बिकते थे। अब बाफते का स्थान बनारसी पोत के थानों ने ले लिया है। ये थान बड़े चमकीले रेशम के बने हुए, रंग-बिरंगे रंगों के होते हैं। जिनके बीच में जरी की बनी हुई सुन्दर बूटियाँ, आकाश में तारों की तरह शोभा देती हैं। आज-कल पोशाकों के लिये इन थानों की बड़ी खपत है; क्योंकि दामों में बहुत सस्ते पड़ते हैं। किमखाब और पोत के थान प्रायः संसार-भर में जाते हैं।

बनारसी साड़ियों के लिये क्या कहना, ये तो शैतान की तरह मशहूर हैं। साड़ियाँ तीन तरह की होती है। साटन पोत, कतान पोत, और करेब पोत। सबसे पहिले साटन पोत की ही साड़ियाँ बनारस में बनतीं थीं, जिनका कपड़ा साटन की ही तरह मोटा, मुलायम, और मजबूत होता था; किन्तु लगभग ३० साल हुए कि कतान की साड़ी विशेष व्यापक हो गई। यह कतान का रेशम निहायत ही उमदा, चिकना और चमकदार होता है। कहा जाता है, कि सबसे पहले इस रेशम की साड़ियाँ यहाँ के प्रसिद्ध श्री पूरनचन्द-हरनारायण के फर्म के मालिक स्वर्गीय श्री हरनारायणजी ने अपनी सूझ के अनुसार तैयार कराई थी और बनारस में कतान के रेशम का प्रचार किया था। आज-कल करेब फैशन की साड़ियों का भी बहुत प्रचलन हो गया है। ये झिलमिले-झिलमिले कपड़े की साड़ियाँ, खुशनुमा रंगों की, चमकीली जरी के सुन्दर लहराते हुए बेल-बूटों की बनी होती हैं।



स्वर्गीय श्री आत्मारामजी—आप बनारसी साड़ियों के लिए प्रसिद्ध रहे और अब उसी काम को आपके सुपुत्र श्री हरिशंकरजी दूने उत्साह से चला रहे हैं। आपके फर्म का नाम 'आत्माराम-हरिशंकर' पड़ता है।

साड़ियों में जंगला नामक साड़ो की कारीगरी बड़े ही कमाल की होती है। इस साड़ी के बीच में जरी की लताएँ रहती हैं। साड़ियों में यह साड़ी कीमती होती है।

काशी में किमखाब और साड़ियों के अतिरिक्त लँहगे, दुपट्टे, साफे और पीताम्बर इत्यादि भी, बड़ी कसरत के साथ बनाये जाते हैं। आज के बारह साल पहले, दिल्ली और पंजाब प्रान्त में, लँहगे बहुत जाते थे; किन्तु अब उनका चलन एक दम बंद-सा होगया है। अब पंजाब में, सूट बहुत जाने लगे हैं। एक कमीज और एक सलवार, जो कि पायजामेनुमा होती है, एक साथ ही कारखाने पर बिनी जाती है। इस सूट में कमीज और सलवार में जरी की बूटियाँ तथा बेल बनाई जाती हैं। इस सूट की बुनावट भी एक अद्भुत कौशल की परिचायक होती है। इस सूट के ऊपर एक बनारसी दुपट्टा ओढ़ा जाता है, जो कि

कतान का होता है। इस दुपट्टे के बीच में मनोहर बूटे और चारों ओर बेल बनी रहती है। जरा का साफा बिलकुल बारीक रेशम का बनाया जाता है, इसके बीच में जरी की डोरियानुमा धारियाँ फेंकी जाती हैं। ये रंग-विरंगे रंगों के साफे बीच-बीच में जरी की डोरियाँ पड़े हुए, बड़े सुहावने मालूम पड़ते हैं। पहले सूती साफे बनते थे; किन्तु रेशम सस्ता हो जाने के कारण, अब बंद हो गये हैं। पीताम्बर भी काशी में निहायत उम्दा व अच्छे बनाये जाते हैं। ये नाखूनी किनारे के जरी के होते हैं। इनके साथ एक दुपट्टा भी होता है। दोनों को मिलाकर जोड़ कहते हैं। ये केवल पूजा-पाठ के समय व्यवहार में लाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त, और भी बहुत तरनदाजियों के कपड़े बनारस में तैयार होते हैं; जैसे—सादी साड़ियों में टाँकने की बेल या फीते, स्कार्फ, जिनको गोरी बीबियाँ अपनी हैट पर डालती हैं। तांखाने का मलमल, जिनमें एक तरफ़ रेशम और एक तरफ बिलकुल जरी रहती है। ये मलमलें प्रायः अंग्रेज ही ज्यादा खरीदते हैं। मंदील भी बनते हैं, जोकि ज़री के होते हैं, और पगड़ी की तरह सिर पर बाँधे जाते हैं, आदि आदि।

बनारस में जितने कपड़े बनते हैं, प्रायः स्त्रियों के ही पहनावे के होते हैं; इसीलिये बनारसी माल के व्यापारी, बाबा विश्वनाथ से सदा यही मनाया करते हैं कि संसार में कोई भी रंडुआ न रहे। परमात्मा करे सबके ब्याह हो जायँ; क्योंकि बनारसी कपड़े के व्यापारियों के रोज़गार का वही हाल है, जो कि बाजा बजाने वाले बजनियों का; अर्थात्—जब ब्याह-शादियों के दिन आते हैं, तभी बाजेवालों का रोजगार चमकता है। उसी तरह जब विवाह आरम्भ होते हैं, तभी बनारसी माल धूमधाम से बिकता है।

काशी-सिल्क

काशी में बने हुए सिल्क के कपड़े, काशी-सिल्क के नाम से प्रसिद्ध हैं। काशी-सिल्क एक खास और व्यापक नाम है। काशी-सिल्क में धोती, दुपट्टे, साफे तथा कुरता, कमीज, शेरवानी, और सूट आदि के कपड़े बुने जाते हैं। यहाँ का सिल्क का माल, काशी के आसपास के गाँवों में रहने वाले, निहायत ही गरीब कारीगरों के झोपड़ों में तैयार होता है। काशी-सिल्क का रेशम, साफ-सुथरा, और बटा हुआ होने के कारण, बहुत मजबूत होता है। यही कारण है कि यहाँ के बने हुए धोती-दुपट्टे खूब टिकाऊ होते हैं। फाड़े से भी जल्दी नहीं फटते। यहाँ की बनी हुई फैन्सी किनारों की सिल्क की साड़ियाँ आजकल बहुत चल रही हैं। सिल्क में नक्सी बेल के दुपट्टे तथा साड़ियों की कारीगरी का प्रधान स्थान है, ये दुपट्टे-साड़ियाँ, एक निहायत चमकोले रेश की दौड़ती और लहराती हुई बेल के बुने हुए होते हैं। आजकल स्त्री-समाज में इनकी बड़ी माँग है। कहा जाता है कि, स्वर्गीय दीवान बालमुकुन्द कपूर ने, अपनी प्रगाढ़ बुद्धि के अनुसार पहले-पहल काशी-सिल्क बनवाया, और उसका प्रचार किया। काशी-सिल्क भी कोव्याधिक के लगभग काशी से बाहर जाता है; क्योंकि यह सूती

स्वर्गीय श्री बलदेवदासजी उर्फ़ बदाऊ साव

आप यहाँ के बलदेवप्रसाद-सीताराम नामक फर्म के मालिक थे। आपने किमख़ाब के काम में बड़ी उन्नति की और तरह तरह की तरनदाजियाँ निकालकर इस काम को खूब उत्तेजन दिया। अब आपके बड़े सुपुत्र श्री सीतारामजी ने इस फर्म के कारोबार को खूब बढ़ाया है।

से भी सस्ता पड़ रहा है। और यही कारण है, कि बच्चे-बच्चे के बदनपर दिखाई देता है।

बनारसी कपड़े का व्यवहार और बाजार

यहाँ के कारीगर, साड़ी, दुपट्टे, तथा अन्य जरी के कपड़ों को, अपनी लागत से, रेशम-कलाबत्तू आदि कुल सामान लगाकर बनाते हैं, और जो माल तैयार होता है, उसे बाजार में बेचने के लिये लाते हैं। इस माल को बनारसी माल के व्यापारी, अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार दाम लगाकर खरीद लेते हैं। बहुत से रोजगारी अपनी खास डिजाइन व नकशा बनवाकर, केवल मजदूरी पर भी माल तैयार करवाते हैं। जिसे लगार कहते हैं। यहाँ के व्यापार में एक बड़ी विशेषता है और वह यह कि, कुल माल रात को ही खरीदा जाता है; क्योंकि दिनभर, कारीगर लोग अपने-अपने काम-धंधे में लगे रहते हैं और सूर्यास्त होनेपर, तैयार किया हुआ माल लाकर, बाजार में बेचने के लिये आते हैं। वैसे तो बनारसी माल की कोठियाँ, चौक, रानीकुआँ, और लक्खी चौतरा आदि बाजारों में भी है; किन्तु इस माल की बिक्री का मुख्य बाजार कुंजगली है, जहाँ कई सौ दुकानें पाँच फाटकों के अन्तर्गत, एक विशाल मार्केट के रूप में बनी हुई हैं। प्रायः इन एक ही ढंग की बनी हुई दुकानों में सफेद रंग के लगे हुए गद्दी-तकिये बड़े भले मालूम होते हैं। कुंजगली में कुछ दुकानें काशिराज की, कुछ राजा मोतीचन्द जी की, और कुछ अन्य महाजनों की हैं, जो कि किराये पर बसी हैं। यहाँ दुकानदारों में बड़ी एकता है। इन लोगों ने मिलकर, अपने चौधरी चुन रक्खे हैं, जोकि हरतरह से बाजार की निगरानी रखते हैं। आजकल निम्नलिखित सज्जन बाजार के चौधरी कहे जाते हैं—सर्व श्री काश्मीरीमलजी, उर्फ काके साव; मूलचन्दजी, काशीनाथजी साफावाले और सीतारामजी। बनारसी माल के रोज़गारियों में कुछ ब्राह्मण कुछ अग्रवाल वैश्य, कुछ गुज़राती, कुछ मारवाड़ी और बड़ी संख्या में खत्री हैं। इन्हीं लोगों से बाहर के व्यापारी माल ले जाते तथा मंगाते हैं।

(१७६ पेज का शेषांश)

पुस्तकाध्यक्ष का पद दिया गया, जो १९३२ तक इस पद पर रहे। उन्होंने बड़ी लगन से काम किया और पुस्तकालय की बड़ी उन्नति की। इस समय पं० शिवनाथ झारखंडे, एम० ए०, प्रधान पुस्तकाध्यक्ष, पं० नारायण शास्त्री खिस्ते साहित्याचार्य पुस्तकाध्यक्ष, तथा पं० सदाधर पांडेय सहायक पुस्तकाध्यक्ष हैं। डॉक्टर मंगलदेव शास्त्री प्रधान निरीक्षक हैं।

इस पुस्तकालय के निरीक्षण के लिये अनेक वायसराय और महाराज आये हैं और विदेशी विद्वान् तो इसे देखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

एक बात यह भी जान लेनी चाहिए कि यह पुस्तकालय रिसर्च और रेफ़रेन्स पुस्तकालय है; अर्थात्—यहाँ की पुस्तकें सर्वसाधारण यहीं—भवन में ही—देख और काम में ला सकते हैं।

हस्तलिखित ग्रंथ-विभाग में दर्शन (विशेषतः न्याय और मीमांसा), धर्मशास्त्र, तंत्र, व्याकरण, कर्मकांड (गृह्य और श्रौत) आदि का विशेष संग्रह है, जो बहुत कम स्थानों में मिलेगा।

यहाँ से पुस्तकें यूरोप, पूना आदि स्थानों में भेजी जाती हैं, जहाँ अमुद्रित ग्रंथ प्रकाशित होते हैं। ये पुस्तकें उन पुस्तकों के पाठ-क्रम आदि में बड़ी सहायक होती हैं।

इस पुस्तकालय का भवन भी बड़ा भव्य और विशाल है। विद्या-प्रेमियों से—खासकर संस्कृत के—हमारी प्रार्थना है कि वे इसे अवश्य देखें और यहाँ की पुस्तकों से लाभ उठावें।

काशी-नरेश

ले०—श्रीयुत देवीदत्त मिश्र, बी० ए०, एल-एल० बी०

काशी भारत का बहुत पुराना धार्मिक गढ़ है; इसलिए काशी राज्य का स्थान भारत के राज्यों में प्राचीन काल से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। इतिहास-प्रसिद्ध अनेक धर्म-प्रवर्तकों ने काशी-राज्य से ही अपने-अपने मतों का प्रचार आरम्भ किया था। काशी-राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान ऐतिहासिक परिवर्तनों के समय प्राय: राजनीतिज्ञों के विचार का विषय रहा है। यों तो काशी राज्य के राजवंश समय-समय पर बदलते रहे हैं। पहले बहुत समय तक तो वह क्षत्रियों के अधीन रहा, फिर कुछ समय क्षत्रियों के अधीन, तो कुछ समय के लिए मुसलमानों के अधीन भी और कभी-कभी उसका अस्तित्व किसी प्रबल हिन्दू या मुसलमान-सम्राट् के साम्राज्य में निमग्न हो जाता रहा है; परन्तु इन सभी हालतों में काशीराज्य का स्थान शासन की दृष्टि से कुछ अलग ही रहा है। मुसलमानों के समय में उसके सूबेदार या प्रमुख अधिकारी प्राय: शाही खानदान के ही नियुक्त किए जाते थे। अकबर और औरंगजेब के समय में भी यद्यपि वह सम्राट् के सूबों में मिला लिया गया था; परन्तु शासन सूबे से स्वतन्त्र रखा गया था और राज-काज का सम्बन्ध सूबे के प्रधान से न होकर सीधा सम्राट् से रहता था। काशी-राज्य उन थोड़े-से राज्यों में है, जिनका अस्तित्व अनेक आँधी और तूफान देख चुका है। कभी-कभी तो उन आँधियों और तूफानों के बीच उसकी रूप-रेखा ही बिल्कुल मिट जाती हुई मालूम पड़ी है; परन्तु वातावरण शान्त होते ही वह फिर चट्टान की तरह पूर्ववत् खड़ा पाया गया है। अत्यन्त प्राचीन समय में कभी वह अयोध्या-राज्य में मिलाया गया, कभी मौर्यों ने उसपर आधिपत्य जमाया और कभी वह कन्नौज-राज्य के अधीन हुआ, फिर मुसल्मानी समय में ग़ोरी और ग़ज़नी, पठान और कुछ मुग़लों ने मनमानी की, धन के लोभ में लूटा, धार्मिक जोश और प्रभुत्व के मद में धर्म-स्थानों को भ्रष्ट किया, यहाँ तक कि औरङ्गज़ेब ने काशी का नाम तक बदल डाला। अंग्रेज़ों, मराठों और सिक्खों आदि के उत्कर्ष और घोर अव्यवस्था के युग में भी उसका अस्तित्व बना रहा।



इस लेख के लेखक

काशीराज्य के किसी भी अंग पर विचार करते समय उपरोक्त बातों की जानकारी अनिवार्य है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, काशी राज्य के राजवंशों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान काशी-नरेश का राजवंश गौतम गोत्रीय भूमिहार ब्राह्मणों से उत्पन्न है। इस राजवंश के प्रथम राजा थे राजा मनसाराम। इनके पूर्वज श्रीकृष्ण मिश्र थे; जो उच्च प्रकार का आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते थे। संस्कृत का नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' उन्हीं का लिखा हुआ था। श्रीकृष्ण मिश्र ने किसी प्रसंग पर एक राजा को शाप दिया था। उसीके परिणाम-स्वरूप आगे चलकर राजा मनसाराम से इस राजवंश का प्रारम्भ हुआ। राजा मनसाराम मीर रुस्तम-अली के यहाँ, जो कि अवध-नवाब की ओर से बनारस और उसके आसपास की सरकारों के प्रबन्धक थे, नौकर थे। राजा मनसाराम उनके बड़े प्रीतिभाजन थे। यह सन् १७३८ के पहले की बात

है। इनकी प्रतिभा और चातुरी से मीर रुस्तमअली इनपर बड़े प्रसन्न रहते थे और सम्पूर्ण राज-प्रबन्ध इन्हीं पर छोड़ रक्खा था। अपनी ओर से मीर इन्हीं को नवाब-अवध तथा दूसरे लोगों के यहाँ भेजते थे। राजा मनसाराम सब कार्यों को बड़ी सफलतापूर्वक कर लेते थे। बाद में शत्रुओं के कुचक्र से मीर और मनसाराम में अनबन हो गई। और अवध के नवाब ने मीर को निकाल कर राजा मनसाराम को ही प्रबन्धक मान लिया। राजा मनसाराम ने अवध के नवाब से इसकी सनद अपने लड़के बलवन्तसिंह के नाम लिखा ली। इस प्रकार राजा मनसाराम ने अपने कौशल और बाहुबल से काशी और उसके आस-पास के स्थानों में अपना प्रभुत्व स्थापित किया; परन्तु उस प्रभुत्व को सुदृढ़ बनाकर उसे स्थायी बना देनेवाले राजा बलवन्तसिंह थे। राजा बलवन्तसिंह का समय सन् १७४० से प्रारम्भ हुआ। उस समय बलवन्तसिंह की आयु २६ वर्ष की थी। बलवन्तसिंह के समय देश और काशी के आस-पास की अव्यवस्था साधारण न थी। बलवन्तसिंह ने प्रारम्भ से ही अवध के नवाब से स्वतंत्र हो जाना चाहा। इसके लिए आपने छिपे-छिपे प्रयत्न करके सीधे दिल्ली-सम्राट् से राजा की उपाधि प्राप्त कर ली। किले-बन्दी की और आस-पास चढ़ाइयाँ तक कीं। यह सब कार्य साधारण न था। छोटे-छोटे अनेक विरोधी समूह इधर-उधर बिखरे पड़े हुए थे; परन्तु बलवन्तसिंह ने इन सबको परास्त किया और अनेक महत्त्वपूर्ण किलों को अपने वश में कर लिया। अवध के नवाब बलवन्तसिंह के इन स्वच्छन्द कार्यों से रुष्ट थे और बलवन्तसिंह को दबा देने के लिए कोई अवसर छोड़ते न थे; परन्तु वे हाथ न आते थे। अंग्रेजों और नवाब के बीच हुए बक्सर के युद्ध में जब बलवन्तसिंह ने अंग्रेज़ों की बड़ी मदद की और एक संधि के अनुसार नवाब की संरक्षता से स्वतंत्र होकर अंग्रेज़ी कम्पनी की संरक्षता में आ गए, उस समय नवाब बलवन्तसिंह पर भी अधिक रुष्ट हुए। बाद में अँग्रेज़ों और नवाब में एक और सन्धि हुई, जिसके अनुसार बलवन्तसिंह फिर से नवाब के अधीन होगए। यह अनिश्चित परिस्थिति बलवन्तसिंह के लिए बड़ी हानिकारक थी। कम्पनी की चाल थी कि इस तरह से नवाब और बलवन्तसिंह का झगड़ा जारी रहे और बलवन्तसिंह की बढ़ती हुई शक्ति सदैव अंग्रेज़ों के हाथ में रहे और उनके सहयोग की इच्छा करती रहे। कम्पनी बलवन्तसिंह की शक्ति को सहायक समझते हुए भी उसे अबाधित न रहने देना चाहती थी। वह उसे अपने और अवध-नवाब तथा सम्राट् की सम्मिलित शक्ति के बीच अपनी ढाल बनाए रखना चाहती थी। बङ्गाल, बिहार की रक्षा के लिए काशी-राज्य, अवध और दिल्ली के मार्ग में, रुकावट का कार्य करता था। बलवन्तसिंह ने बक्सर के युद्ध में दिल्ली और अवध की सम्मिलित शक्ति के विरुद्ध अंग्रेज़ों की जो मदद की थी, उसका ज़िक्र 'अनुपमेय और असाधारण मदद' के नाम से अनेक बृटिश राजनीतिज्ञों ने पार्लामेन्ट आदि अनेक अवसरों पर किया था। अगर यह कहा जाय कि अंग्रेज़ों के उत्तर भारत में बढ़ने और बङ्गाल-बिहार की रक्षा करने में बलवन्तसिंह का ज़बरदस्त हाथ था, तो अनुचित न होगा। इस प्रकार सहायता देकर बलवन्तसिंह ने अपनी स्थिति बिल्कुल स्वतंत्र बना ली। वे अत्यन्त वीर, नीति-निपुण और दूरदर्शी राजा थे। उन्होंने राज्य को बढ़ाया, सुदृढ़ किया और नवाब की अधीनता से स्वतंत्रता प्राप्त की। जो काशी अवध-नवाब के सूबे का केवल एक हिस्सा था, वह बलवन्तसिंह के पराक्रम से काशी-राज्य बन गया। अवध की नवाबी मिट गई; परन्तु काशी-राज्य का अस्तित्व कायम रहा।

राजा बलवन्तसिंह के बाद राजा चेतसिंह हुए। ये राजा बलवन्तसिंह की अविवाहिता क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न थे। वास्तव में राजा बलवन्तसिंह अपने बाद राज्य का मालिक अपने भतीजे मनियारसिंह को बनाना चाहते थे। राज्याधिकार के लिए उम्मीदवार, राजा बलवन्तसिंह की लड़की के लड़के महीपनारायणसिंह भी थे; परन्तु षड्यन्त्र-कारियों की सहायता से गद्दी चेतसिंह को ही मिली।

राजा चेतसिंह बड़े सुन्दर और हृदय के बड़े कोमल थे। शान्तिप्रिय इतने थे कि वारेन् हेस्टिंग्स की सेना ने जब शिवालाघाट पर इन्हें घेर लिया और कहा कि आप हिरासत में हैं, उस समय आपने दोनों पैर बढ़ा दिए और कहा कि आप चाहें तो बेड़ियाँ भी पहना सकते हैं। इसी शांति-प्रियता के कारण एक ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उच्छृंखलता और अर्थ-शोषण पिपासा बढ़ती गई और दूसरी ओर राज्य की प्रजा का मौन क्षोभ इस दर्जे तक बढ़ गया कि

लोगों ने बिना चेतसिंह के नेतृत्व के अंग्रेज़ी कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। विद्रोह की तेज़ रफ़्तार में जब कम्पनी की सेना कट चुकी थी और वारेन् हेस्टिंग्स अकेले पड़ गए थे, उस समय कुछ सरदारों ने कहा कि वे गिरफ़्तार कर लिए जायँ; परन्तु राजा चेतसिंह ने, सब कुछ अपने पक्ष में समझते हुए भी इसकी अनुमति नहीं दी। चेतसिंह जिस समय राजा थे, उस समय के उपयुक्त नहीं थे। किसी शान्ति के समय सम्भवतः वे अपनी सुन्दरता, शान्ति-प्रियता और सुशीलता के लिए यश पाते। उनमें शासक होने का गुण न था। राज्य छोड़कर वे भाग गए। यदि बलवन्तसिंह के समय के कुछ वीर सरदार उस समय मौजूद न होते, तो राज्य की रक्षा भी न हो पाती।

राजा चेतसिंह के बाद अंग्रेज़ों की मदद से राजा महीपनारायणसिंह गद्दी पर बैठे। ये बलवन्तसिंह की लड़की के लड़के थे, बिहार में रहते थे और वहाँ के प्रतिष्ठित भूभागों में से थे। इन्हें इतने बड़े और कठिन राज्य के सँभालने का अनुभव न था। उस समय काशी-राज्य के अन्तर्गत ९६ परगने थे, बिहार में आरा तक सरहद फैली हुई थी। राजा महीपनारायणसिंह की नाबालिगी आदि से लाभ उठाकर अंग्रेज़ों ने धीरे-धीरे उनसे ९३ परगने यह कह कर अपने हाथ में कर लिए, कि उनका शासन-प्रबन्ध बिगड़ा हुआ है, उन्हें सुधार कर वापस कर दिया जायगा; परन्तु राजा महीपनारायणसिंह के बालिग़ हो जाने पर भी वे ९३ परगने वापस न किए गए। राजा महीपनारायणसिंह उन परगनों का शासन अस्थायी रूप से भी सौंपने को केवल इस शर्त पर राजी हुए थे, कि बालिग़ होनेपर वह वापस कर दिया जायगा और जब तक हस्तान्तरित रहेगा, तब तक राज्य का प्रबन्ध अंग्रेज़ों के हाथ में होने पर भी सब काग़ज़ातों पर राजा के हस्ताक्षर होते रहेंगे और बिना राजा के हस्ताक्षर के कोई कार्य जायज़ न समझा जायगा। परन्तु, थोड़े समय के बाद अँग्रेज़ों की ओर से इन शर्तों का पालन किया जाना आवश्यक नहीं समझा गया; विपरीत इसके नए-नए प्रतिबन्ध लगाए गए। टकसाल, फ़ौजदारी अदालत और अनेक करों का अधिकार छीन लिया गया। रेज़ीडेन्ट नियुक्त किया गया, जिसके हस्तक्षेपों के कारण राज्य और कम्पनी के बीच आगे चलकर पारस्परिक सबंध में कटुता उत्पन्न हो गई।

राजा महीपनारायणसिंह के बाद उनके लड़के उदितनारायणसिंह गद्दी के मालिक हुए। ये बहुत ही तेजस्वी और स्वाभिमानी राजा थे। इनका शासन सन् १७९५ से सन् १८३५ तक रहा। इनका सम्पूर्ण शासन-समय राजा महीपनारायणसिंह-द्वारा खोये हुए अधिकारों के लिए लड़ने में व्यतीत हुआ था; परन्तु वे उन अधिकारों को प्राप्त न कर सके। विपरीत इसके अंग्रेज़ी कम्पनी के प्रतिबन्ध राज्य में अधिक मज़बूती से कायम कर दिए गए। ३ परगने जो राजा के निजी परगने कहकर अंग्रेज़ी प्रबन्ध से स्वतंत्र रक्खे गए थे, वे भी अंग्रेज़ी-प्रबन्ध के अन्तर्गत कर दिए गए। जिस राज्य में कम्पनी ने वारेन् हेस्टिंग्स के समय अपना रेज़ीडेन्ट तक इस ख़याल से न नियुक्त किया था कि कहीं राजा के अबाधित अधिकारों या राजा के राजकीय भावों पर चोट न पहुँचे, वहाँ अब सुपरिन्टेन्डेण्ट, रेज़ीडेण्ट आदि अनेक प्रकार के कर्मचारी ही नहीं नियुक्त कर दिए गए; बल्कि ज़मीन के बन्दोबस्त आदि मामलों तक में भी हस्तक्षेप किया जाने लगा। इन सब हस्तक्षेपों का विवरण बहुत लम्बा है, जो किसी अन्य लेख का विषय है। यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि राजा उदितनारायणसिंह बराबर इन हस्तक्षेपों का विरोध करते रहे; परन्तु उनका विरोध अत्यन्त वैध, शिष्ट और न्यायोचित रहा। यदि उस समय के अदूरदर्शी अधिकारियों ने जान-बूझ कर इनके साथ अन्याय का व्यवहार न किया होता और उन्हें अपना विरोध विलायत के अधिकारियों तक करने के लिए उन सब काग़ज़ातों की नक़लें दे दी होतीं, जिनके लिए राजा उदितनारायणसिंह बराबर प्रार्थना करते रहे और जिन्हें पाने का उनका न्यायोचित अधिकार उस समय के गवर्नर जेनरल तक ने स्वीकार कर लिया था, तो निश्चय ही राजा उदित-नारायणसिंह की माँगों में इतना बल था कि वे सब स्वीकार कर ली गई होतीं; परन्तु, उस समय के अधिकारियों ने राज्य की लगातार कीगई सेवाओं पर ज़रा भी ध्यान न दिया। बक्सर के मैदान की 'अनुपमेय और असाधारण मदद' की बात भुला दी गई, सन्धियों के काग़ज़-पत्र ही न मिलते थे; परन्तु राजा उदितनारायणसिंह इन विपरीत परि-स्थितियों में कभी अवैध या अशिष्ट नहीं हुए, यद्यपि अधि-

कार की बात-बात पर वे जीवन-भर अपना विरोध प्रकट करते रहे। अन्त में एक समय राजा उदितनारायणसिंह ने गवर्नर जेनरल को एक पत्र में लिखा कि, 'मैं अब अधिक अपमान बर्दाश्त करने में असमर्थ हूँ, आप कहें तो मैं अपने समस्त राज-कर्मचारियों को उनके पदों से वापस बुला लूँ और राज्य से तटस्थ होकर मैं किसी जंगल की शरण लूँ और अपने आपको अधिक अपमान सहने से बचा लूँ। उस हालत में राज्य का सरकार जो चाहे वह करे।'

राजा उदितनारायणसिंह के बाद उनके भतीजे राजा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह गद्दी के मालिक हुए। राजा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह अत्यन्त नीति-निपुण और योग्य शासक थे। इनके समय में भी अंग्रेजी कम्पनी की हस्तक्षेप करने की कार्रवाई जारी रक्खी गई; परन्तु प्रारम्भ में ही आपने ऐसा ज़बरदस्त विरोध किया कि कम्पनी के अधिकारियों को उस समय अपने कार्य-क्रम को रोक देना पड़ा। बाद में जब रोके हुए कानून राज्य में लागू किए गए, तब प्रजा में बड़ी गड़बड़ मची। समाज के पुराने ढाँचे को सँभालना कठिन हो गया। विवश होकर कम्पनी को अपने कानून स्थगित कर देने पड़े और राजा से परिस्थिति सुधारने की प्रार्थना करनी पड़ी। राजा ने बड़ी योग्यता के साथ परिस्थिति को सँभाल दिया। प्रजा भी पूर्ण रूप से राजा को अपने हितों की संरक्षक समझने लगी; परन्तु यह वायुमण्डल राज्य के लिए हितकर होते हुए भी बना रहने न दिया गया। सन् १८५७ के ग़दर में राजा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह ने अंग्रेजों की वैसी ही महत्वपूर्ण मदद की थी, जैसी बक्सर के मैदान में राजा बलवन्तसिंह ने की थी। ग़दर के समय राजा ने बनारस में रहनेवाले सभी अंग्रेजों और योरोपियनों को अपने रामनगर के किले में शरण दी। अपनी सेना और सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री कम्पनी की सेवा में दे दी। जब विद्रोहियों ने आगरा से लेकर बनारस तक अंग्रेजों का पर मारना कठिन कर दिया था और गवर्नर जेनरल को उत्तर-पश्चिम तथा पंजाब के समाचार बम्बई के रास्ते से बड़े विलम्ब और बड़े खतरे से मिल पाते थे, उस समय आपने ही अपने गुप्तचर-विभाग-द्वारा आगरा से बनारस तक के सम्पूर्ण समाचार अंग्रेज़ी कम्पनी को सुलभ कर दिए थे। उस भयानक समय की सेवाएँ अंग्रेज़ी राज्य कायम होने में जैसी महत्त्वपूर्ण थीं, उसका अनुमान इस समय नहीं किया जा सकता। ग़दर के बाद आपको महाराज की उपाधि दी गई थी। तब से काशी के राजा महाराजा के नाम से विभूषित होते आ रहे हैं। जी० सी० एस० आई० की उपाधि आपको मिली थी।

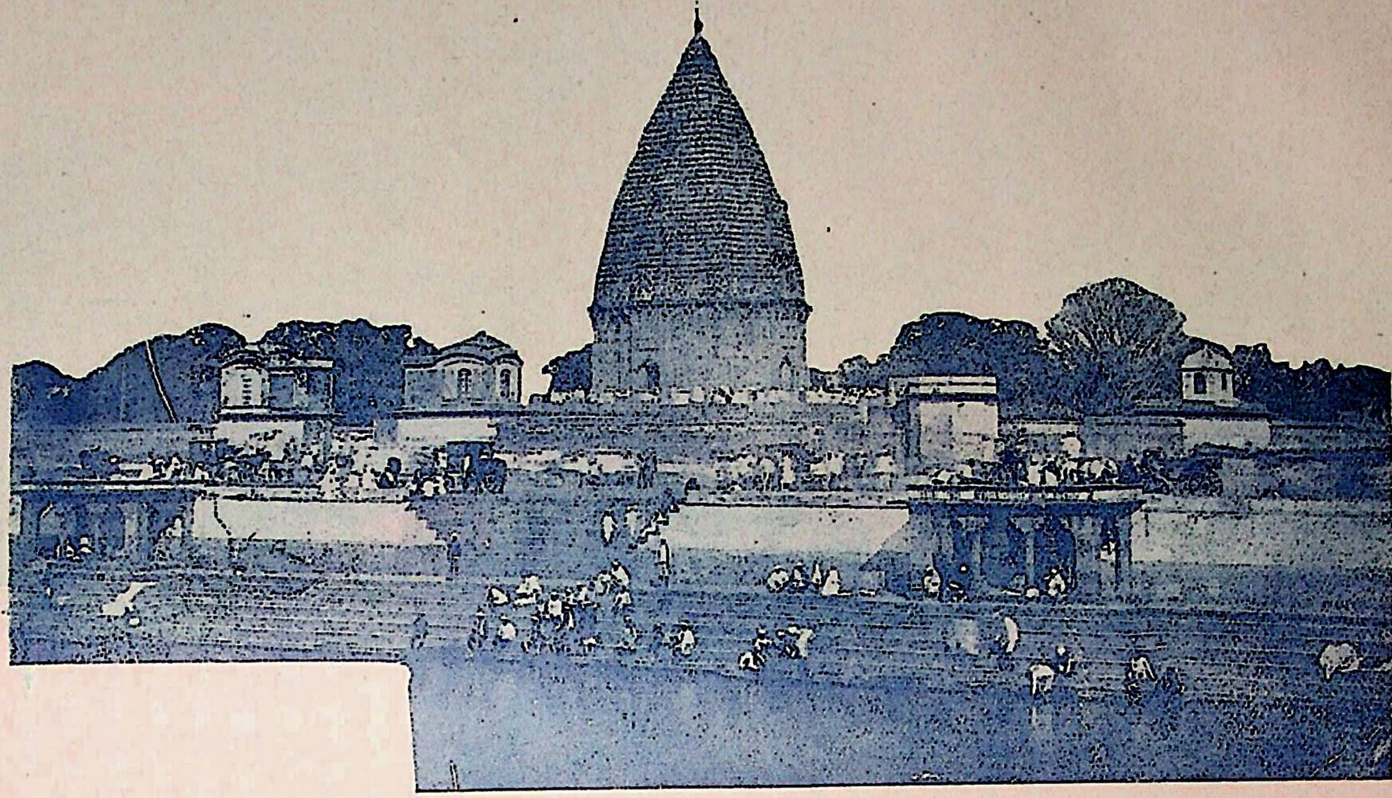
इसके बाद राज्य के मालिक महाराज सर प्रभुनारायणसिंह हुए। आपने सन् १८८९ से सन् १९३१ तक शासन किया। आप नीति-शास्त्र के अत्यन्त विद्वान्, यशस्वी, प्रजापालक और आकर्षक व्यक्तित्व के थे। आपको अपने पूर्वजों के समय के खोए हुए अधिकारों को फिर से प्राप्त कर लेने का गौरव प्राप्त है। सन् १९११ में आपको ३ परगनों में "रूलिंग चीफ" के अधिकार प्रदान किए गए। बृटिश सरकार ने आज तक और किसी को भी रूलिंग चीफ के अधिकार नहीं प्रदान किए। काशी-राज्य ने अंग्रेजी राज्य की जो सेवाएँ प्रारम्भ से अब तक की हैं, यह अधिकार-प्रदान उसके अनुरूप ही था। महाराज के शासन-समय में सम्पूर्ण राज्य की काया-पलट हो गयी। आधुनिक युग की सम्पूर्ण सुविधाएँ 'रूलिंग चीफ' के अधिकार के प्राप्त होते ही राज्य में प्रचलित कर दी गईं। शिक्षा, न्याय-विभाग, कृषि, स्वास्थ्य, म्यूनिसिपल प्रबन्ध आदि सब में आधुनिक बृटिश भारत के ढंग का प्रबन्ध जारी कर दिया। महाराज सर प्रभुनारायणसिंह शिक्षा के अनुपम प्रेमी रहे हैं। रामनगर किला के सामने गङ्गा तट की कोसों की उपजाऊ भूमि आपने हिन्दू-मात्र के गौरव और सम्पूर्ण भारत के अभिमान की वस्तु, हिन्दू-विश्वविद्यालय को सहज ही प्रदान कर दी। उत्तर-भारत की केन्द्रीय थियोसॉफिकल सोसाइटी को भी आपने सुन्दर प्रशस्त उपवन और भवन प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त सभी धर्मों और सभी जातियों की शिक्षा-संस्थाओं को आपने समय-समय पर सहायता दी है। उनका विवरण बड़ा लम्बा है। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि काशी-राज्य ने शिक्षा और साहित्य के विषय में अपनी बराबरी के किसी भी दूसरे राज्य की अपेक्षा अधिक धन व्यय किया है। महाराज सर प्रभुनारायणसिंह अत्यन्त लोक-प्रिय शासक हो गए



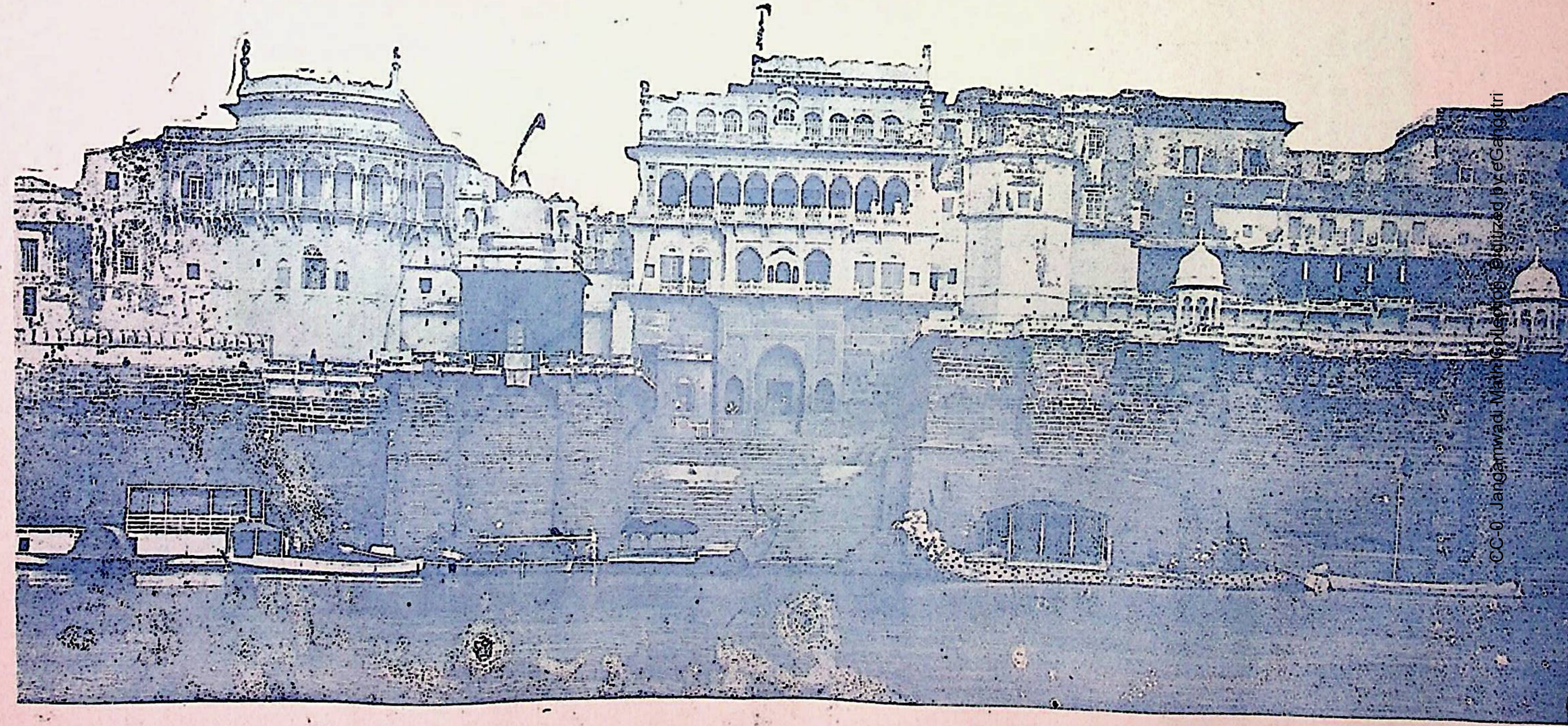
वर्त्तमान काशिराज महाराजाधिराज श्रीमान् आदित्यनारायणसिंहजी बहादुर



स्वर्गीय श्रीमान महाराजाधिराज काशीराज सर प्रभुनारायणसिंहजी बहादुर ।



रामनगर का दर्शनीय सुमेर मन्दिर और उसका तालाब, जहाँ पर रामलीला व वेदव्यास-मेला के समय हजारों नर-नारियों की भीड़ होती है ।



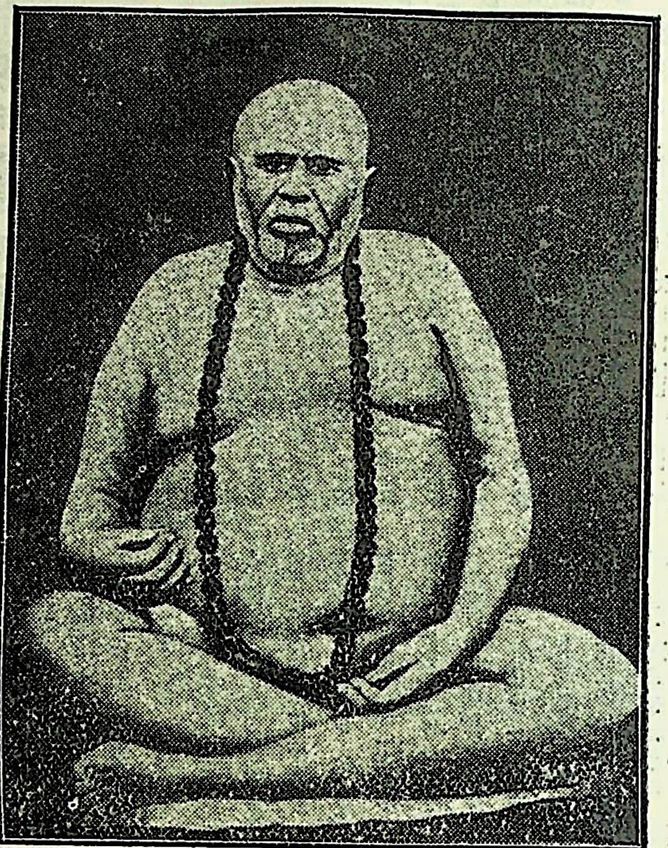
रामनगर का सुन्दर व सुदृढ़ दुर्ग (किला) जो कि गंगा के दायें किनारे पर है और जहाँ से काशी नगरी का अनुपम दृश्य देखते ही बनता है।

हैं। आपकी उदारता, सुशीलता, प्रजापालकता और सबसे बढ़ कर न्याय-परायणता के अनेक उदाहरणों की चर्चा आज भी उनके राज्य में ग़रीब-से-ग़रीब झोपड़े में होती है। आप एक उच्च दर्जे के घुड़सवार, अत्यन्त सूक्ष्म निशानेबाज़ और घड़ी की तरह नियमित जीवन व्यतीत करने वाले महाराज थे। सरकार, प्रजा, कर्मचारी, सभी के आप प्रिय थे। सरकार से आपको लेफ्टिनेन्ट कर्नल, सर, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० एस० आई० और हिन्दू-विश्व-विद्यालय से एल० एल० डी० की उपाधियाँ मिली थीं। काशी-राज्य को आधुनिक युग की सुविधाओं की प्राप्ति महाराज के शासन-समय में बड़ी शीघ्रता से सुलभ हो गई। अनेक उच्च कोटि के अस्पताल, हाईस्कूल प्रजा की सेवा कर रहे हैं।

वर्तमान काशी-नरेश महाराज सर आदित्यनारायण-सिंह बहादुर सन् १९३१ से शासन-कार्य का सञ्चालन कर रहे हैं। आप अपने पिता के अनुरूप ही हैं। राज्य के कार्यों में गहरी दिलचस्पी रखने और उसकी छानबीन करने में आप अपना सानी नहीं रखते। आप अपने राज्य की अत्यन्त साधारण से भी साधारण प्रजा के लिये प्रत्येक समय सुलभ रहते हैं। प्रजा की भलाई के लिये आप एक तटस्थ निरीक्षक की भाँति सदैव सतर्क रहते हैं। आपने लगभग ५६ या ५७ वर्ष की आयु में राज्य का शासन-भार ग्रहण किया है, इससे आपके द्वारा राज्य को एक अत्यन्त अनुभवी और परिपक्व शासक के लाभ प्राप्त हैं। आप संस्कृत, फारसी और अंग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् हैं। युवराज रहने के समय आप प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य रहकर आधुनिक ढङ्ग की व्यवस्थापक सभाओं का अनुभव प्राप्त कर चुके हैं। आप राज्य की सेना के चीफ़ कमान्डर भी रह चुके हैं। ५६-५७ वर्ष की अवस्था तक युवराज रहने पर आपने सदैव अपने प्रत्येक कार्य में विनयन और युवराजत्व का ही परिचय दिया। कभी किसी प्रकार का असन्तोष नहीं प्रकट किया। युवराज रहने के समय राज्य के कुछ कार्यों का संचालन-अधिकार अपने हाथ में रखते हुए भी, आप केवल एक विनीत कर्मचारी की तरह राजाज्ञा के अनुरूप कार्य करते रहे। आपकी पितृ-भक्ति ऐसी थी, जैसी राजघरानों में प्रायः दुर्लभ रहती है। आपने एक पत्नीव्रत के आदर्श का पालन करते हुए द्वितीय विवाह नहीं किया। आप किसी समय अच्छे खिलाड़ी रह चुके हैं। इस समय आप राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के सुधार करने में लगे हुए हैं। राज्य का शासन-प्रबन्ध बिल्कुल बृटिश भारत के शासन-प्रबन्ध के ढंग पर होता है। राज्य ज़िलों, तहसीलों आदि में विभक्त है, जिनमें मैजिस्ट्रेट, तहसीलदार आदि कर्मचारी नियुक्त हैं। राज्य की सबसे बड़ी अदालत चीफ़ कोर्ट है, जो रामनगर राजधानी में है और जिसके प्रधान न्यायाधीश वयोवृद्ध राय बहादुर श्री चन्द्रशेखर मल्लिक हैं। राज्य में हिन्दू, मुसल्मान, धनी, निर्धन प्रजा का अनुचित भेद-भाव नहीं किया जाता। इन्ट्रेंस तक की शिक्षा राज्य भर में वर्तमान महाराज के शासन-भार ग्रहण करते ही निःशुल्क कर दी गई है। काशी-राज्य में प्रारम्भ से ही शिक्षा के प्रति जो प्रोत्साहन चला आ रहा है, और बड़े-बड़े ऐतिहासिक विद्वानों का जैसा आदर होता आया है, उसे देखते हुए महाराज का यह शिक्षा-प्रेम स्वाभाविक ही है। इसी कारण राज्य में उच्च अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या कुछ ही वर्षों में यथेष्ट बढ़ गई है। राज्य में नवीन आकांक्षाओं और भावनाओं का भी प्रारम्भ हो गया है। काशी-राज्य को इस बात का गौरव है कि उसकी छत्र-छाया में प्राचीन समय में कपिल, गौतम, शंकराचार्य, बुद्ध आदि अपने यश को प्रकाशित कर चुके हैं और आधुनिक युग में अच्छे-अच्छे कवि और साहित्यिक, शास्त्री और व्याकरणाचार्य आदि, नागोजी भट्ट, शेख़अली हज़ीं, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति राज्य की शोभा बढ़ाते रहे हैं। काशी राज्य को लगभग देश भर के राजाओं और विदेशों के प्रतिष्ठित महापुरुषों का सदैव आतिथ्य-पूजा करने का गौरव प्राप्त होता आ रहा है। इतने अधिक अतिथियों का शुभागमन बहुत ही कम देशी राज्यों में होता होगा।

राज्य की चौहद्दी का रकबा ८७५ मील है, आबादी सन् २७ के सरकारी आँकड़ों के अनुसार ३६२७३५ है और उसी सन् के सरकारी आँकड़ों के अनुसार आमदनी २२ लाख ९ हज़ार रुपया है। तोपों की स्थायी सलामी १३ है। इसके अतिरिक्त महाराज सर प्रभुनारायणसिंह के समय व्यक्ति-गत और स्थानीय तोपों की सलामी भी पन्द्रह-पन्द्रह थी।

कैलास वासी श्री तैलङ्ग स्वामी



लोग काशी-विश्वनाथ की तरह आपकी पूजा करते थे। आपने अपनी माताजी से ही अनेक शास्त्र और योग विद्या का अध्ययन किया था। माताजी का परलोक-वास हो जाने पर, ५२ वर्ष की अवस्था में, आप घर से निकल गये और अनेक देशों की यात्रा करते हुए बीस बरस के बाद काशी लौटे। आप बड़े ही सिद्ध महात्मा थे। कहते हैं, आपने २८० वर्ष की अवस्था में शरीर-त्याग किया था।

श्रीयुत अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'



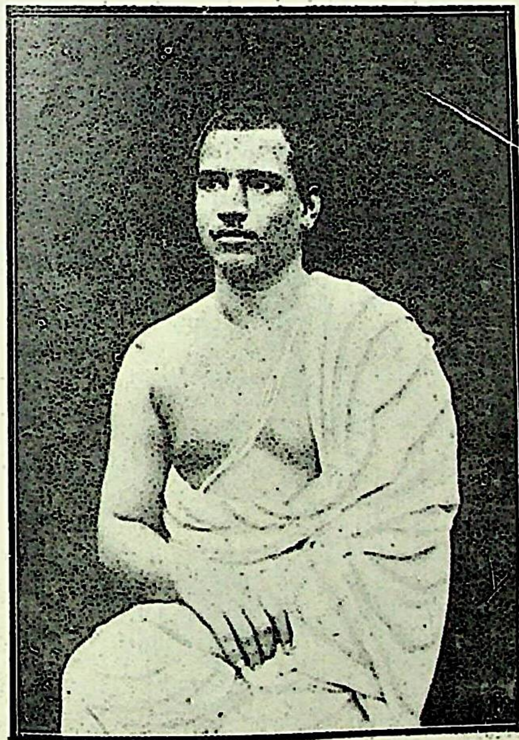
यद्यपि आप काशी के निवासी नहीं हैं; पर अब काशी-वास करते हुए ही आप हिन्दी-साहित्य की सेवा कर रहे हैं। हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में आप सूर्य की तरह प्रकाशमान हैं; अतएव आपके विषय में अधिक क्या लिखा जाय।

काशी की सर्व-प्रथम संस्था गवर्नमेन्ट संस्कृत-कॉलेज है। इसके पूर्व का इतिहास गम्भीर अन्वेषण करने पर मिल सकता है। इस संस्था के स्थापित होने के साथ, या कुछ ही बाद, यहाँ प्रिन्स आफ वेल्स लायब्रेरी की स्थापना हुई। यह संस्कृत का परम प्रसिद्ध और विशाल पुस्तकालय है। इस संस्था में काशी के योग्य तम प्रसिद्ध विद्वान् अध्यापक थे और इसके अध्यक्ष भी जर्मन तथा इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध अन्वेषक विद्वान् रहा करते थे, इसी कारण यहाँ संस्कृत-साहित्य के उद्धार का विशेष आयोजन हुआ और काशी के दिग्गज एवं प्रचण्ड विद्वान् यहीं के छात्र और अध्यापक हुए थे।

संस्कृत-साहित्य और काशी के पण्डित

लेखक—श्रीयुत केदारनाथ शर्मा, सम्पादक—'सुप्रभातम्' और 'वनौषधि'

गणित-शास्त्र के जगत्-प्रसिद्ध दो विद्वान् म० म० बापूदेव शास्त्री, सी० आई० ई० और म० म० सुधाकर द्विवेदी इसी संस्था के प्रधान गणिताध्यापक थे। आपलोगों की आश्चर्यजनक प्रतिभा के कारण विदेशी विद्वान् भी स्तब्ध हो गये थे। इन विद्वानों ने गणित-शास्त्र पर अनेकानेक उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं और अनेक नवीन आविष्कार भी किये हैं। इन्हीं विद्वानों की सहायता से सब से प्रथम प्रसिद्ध योरोपियन डॉक्टर ई० जे० लाजरस ने मेडिकल हॉल प्रेस-द्वारा 'पण्डित-पत्र' नामक मासिक-पत्र निकाला था। इस पत्र के द्वारा संस्कृत-साहित्य के अनेकानेक प्राचीन और नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन, परिवर्तन और परिष्करण आदि हुआ। काशी में साहित्य की दृष्टि से प्रेस, पत्र और प्रकाशन का प्रथम कार्य यहीं हुआ था।


लेखक

इस पत्र के साथ गवर्नमेण्ट संस्कृत-कॉलिज या क्विंस कॉलेज का ही घनिष्ट सम्बन्ध था। इसी अवसर पर भारत के परम पूज्य विद्वान् बालसरस्वती श्री बाल शास्त्रीजी भी अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दे चुके थे। आपने अपने अनेक दिग्गज शिष्यों को तैयार करने के साथ-साथ व्याकरण महाभाष्य का सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित कराकर संस्कृत-साहित्य का महान् उपकार किया था। संस्कृत साहित्य के इस प्रधान और महान् ग्रन्थ का यह प्रथम ही प्रकाशन था।

इसी अवसर पर संस्कृत-साहित्य के महारथी विद्वान् पं० बेचनजी भी संस्कृत कॉलेज के प्रधान साहित्याध्यापक थे। कहा जाता है कि यदि आप की कविता बिना कवि का नाम बताए ही रख दी जाय, तो यह सन्देह होता था कि यह आधुनिक है, या एक हजार वर्ष पूर्व की। आप के सम्बन्ध की एक सत्य और अद्भुत घटना यह भी सुनी जाती है कि आप बड़े पहलवान भी थे। उन दिनों आप प्रातः एक रुपये के बेसन के लड्डू (दो या ढाई सेर) लेकर घर से चलते थे और बड़े गणेशजी को भोग लगाकर खाना शुरू कर देते थे। क्विंस कॉलेज के फाटक तक पहुँच कर आप हाँडी फेंक देते और जल पीकर पढ़ाने बैठते थे। इस घटना को अपनी आँखों देखनेवाले विद्वान् अब भी विद्यमान हैं। आ-पका जीवन-चरित्र काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० चन्द्रभूषणजी

ने लिखा है, जो अभी कहीं-कहीं उपलब्ध है। आप की स्फुट कविताएँ तो कुछ सुनने में आती हैं; लेकिन कोई पुस्तक सम्भवतः आपने नहीं लिखी।

लाजरस के 'पण्डित-पत्र' के बाद विजयानगरम्-संस्कृत-सिरीज़ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। इसमें भी संस्कृत की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। इसके कुछ ही दिन बाद चौखम्भा-संस्कृत-सिरीज का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह अब भी चल रही है। इसमें भी संस्कृत की अनेकानेक महत्त्व-पूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। अब यह कुछ शिथिल और व्यर्थ पुस्तकें भी प्रकाशित करने लगी है।

लाजरस के पण्डित-पत्र ने संस्कृत-साहित्य की ओर काशी के विद्वानों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया। इसी अवसर पर क्विंसकॉलेज के दर्शनाध्यापक म० म० राम मिश्रजी शास्त्री ने भी संस्कृत-साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की। कहते हैं, आप बड़े ही उद्भट संस्कृत-लेखक थे। आप अपने भाषण में, या लेख में, जिस शब्द का एक बार प्रयोग कर देते थे, फिर उसका दोबारा प्रयोग नहीं करते थे। आप की लेखन-शक्ति इतनी उत्कृष्ट थी कि आप ४-५ दिनों में ही एक पुस्तक लिख डालते थे। आप ने व्रात्यसंस्कार-मीमांसा, मन्त्र मीमांसा, अग्निधनौयान-मीमांसा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण धर्म-निबन्ध लिख डाले हैं। आप उस समय के प्रचण्ड संस्कृत-विद्वान् होकर भी अंग्रेजी के अच्छे वक्ता थे। कहा जाता है कि एक बार भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड मिन्टो, गीता पर आपका व्याख्यान सुनकर मुग्ध हो गये और निश्चित समय से अधिक समय तक तन्मयता से खड़े रह गये थे।

इन्हीं के समय काशी में साहित्य का एक अद्भुत अवतार हुआ। स्वर्गीय दुःखभञ्जन कवि के नाम से प्रायः हिन्दी के विद्वान् भी परिचित ही होंगे। वे वस्तुतः एक अवतार थे। इन पंक्तियों के लेखक के गुरुवर स्व० म० म० देवीप्रसादजी शुक्ल कवि-चक्रवर्ती इन्हीं के सुपुत्र थे। सुना जाता है कि वे चौंसठ कलाओं में से



१ म० म० देवीप्रसाद शुक्ल कवि चक्रवर्ती, २ श्री गिरीश शुक्ल, ३ श्री केदारनाथ शर्म्मा, ४ श्री विन्ध्येश्वरी-प्रसाद शास्त्री, ५ श्री गोपाल शास्त्री, ६ श्री तारादत्त पन्त, ७ श्री दामोदर शास्त्री,
पीछे की लाइन—कार्यकर्त्ता

५० कलाएँ जानते थे। अश्व-शास्त्र, गजशास्त्र, रत्नपरीक्षा-शास्त्र, सामुद्रिक, ज्यौतिष आदि अनेक विषयों पर आपने पुस्तकें भी लिखी थीं। कहते हैं कि आपको चौदह कोष कण्ठस्थ थे। बच्चों के खेलने के काठ के विविध प्रकार के खिलौने आप बना लिया करते थे। किसी भी श्लोक के १५-२० अर्थ कर देना, तो आपके लिये एक खेल था। किसी भी हिन्दी-कविता के बीसों संस्कृत-अर्थ कर डालते थे। आप भारत-प्रसिद्ध महात्मा विशुद्धानन्दजी महाराज की पाठशाला में अध्यापक रहकर भी उन्हें सदा 'मुँडिया सारे' इसी शब्द से सम्बोधित किया करते थे। जगत्-प्रसिद्ध विद्वान् म० म० शिवकुमारजी शास्त्री को 'शिशुमार' कहा करते थे। जब वे कभी-कभी चिढ़ जाते, तो कविजी कहा करते कि तुम तो 'शिशु-मार' हो; अर्थात्—बाल कामदेव हो। इसी प्रकार की अनेक अद्भुत बातें मैंने अपने पूज्य गुरुवर से सुनी थीं। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी थीं। आपकी हस्तलिखित रचनाओं के देखने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ है। आपकी लिपि इतनी सुन्दर और मनोहर होती थी कि निर्णय सागर के टाइप मात हो जाते हैं! बिना रूल के कागजों पर इतनी सीधी लाइनें आश्चर्य-चकित कर देती हैं। आप परमप्रसिद्ध महापुरुष थे। शक्ति के परम उपासक थे। कहा जाता है कि आप १०-१० बोतल कड़ी-से-कड़ी शराब पीकर कविता लिखते थे; लेकिन फिर भी लाइन टेढ़ी न हो पाती थी और न कोई बात ही ऐसी होती थी कि जैसी कि नशे में हुआ करती है। आप पानी की तरह शराब का प्रयोग करते थे। अनेक बार अधिकारियों को आपकी शक्ति के सामने मुँह की खानी पड़ी थी। आपकी दो पुस्तकें प्रकाशित हैं। एक—चन्द्रशेखर महाकाव्य और दूसरी—वाग्वल्लभ (छन्दःशास्त्र)। वाग्वल्लभ पर आपके स्वर्गीय सुपुत्र म० म० देवीप्रसादजी शुक्ल ने एक टीका भी लिखी है, जो चौखम्भा-संस्कृत-सिरीज-द्वारा हाल ही में प्रकाशित की गयी है। आपकी अन्यान्य रचनाओं का अब पता नहीं।

जगत् प्रसिद्ध बालसरस्वती बालशास्त्री के चार दिग्गज विद्वान् शिष्य भी जगत्-प्रसिद्ध ही हुए। काशी ही नहीं, भारत के संस्कृत-साहित्य में उन लोगों का असाधारण और सर्वोच्च स्थान है। म० म० गङ्गाधर शास्त्री, सी० आई० ई०, म० म० पण्डित-सम्राट् शिवकुमारशास्त्री, म० म० तांत्या शास्त्री और म० म० दामोदर शास्त्री। इस शिष्य-चतुष्टयी ने संस्कृत-साहित्य के लिये जो कुछ किया, वह वास्तव में इधर सैकड़ों वर्षों में किसी भी विद्वान् ने नहीं किया। यह सौभाग्य परम गुरुवर बाल शास्त्री को ही प्राप्त हुआ था कि उनके चारों शिष्य बनारस गवर्नमेंट संस्कृत-कॉलिज के समकालीन अध्यापक, महामहोपाध्याय और जगत्-प्रसिद्ध दिग्गज हुए। इनमें पण्डित-सम्राट् प्रातःस्मरणीय शिवकुमार शास्त्री का नाम तो हिन्दू मात्र जानते थे और जानते हैं। उन्होंने अध्ययनाध्यापन के अतिरिक्त भारत के बड़े-बड़े विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ किये थे। आपकी धर्म-व्यवस्थाओं को सारा सनातनी हिन्दू-समाज वेद-वाक्य समझता था। आपने दरभंगा-नरेश लक्ष्मीश्वरसिंहजी की प्रशस्ति में लक्ष्मीश्वर-महाकाव्य लिखा था, जिसके कुछ फार्म ही छप कर रह गये। इसके अतिरिक्त और उन्होंने कुछ लिखा या नहीं; पता नहीं।

म० म० रामकृष्ण शास्त्री—ताँत्याजी शास्त्री लेखन के प्रेमी थे। आप पं० शिवकुमारजी के समान ही व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही; परन्तु पुस्तक-लेखन और प्रकाशन के भी शौक़ीन थे। आपका राजराजेश्वरी नाम का एक प्रेस भी था। आपने शेखर पर 'भूति' नाम को टीका की है, जो प्रसिद्ध और प्रचलित पुस्तक है।

म० म० दामोदरजी शास्त्री ने कोई रचना नहीं की, वे सिर्फ अध्यापन ही कराते थे।

साहित्य की दृष्टि से प्रातःस्मरणीय म० म० गङ्गाधरजी शास्त्री सी० आई० ई० का स्थान बहुत ही महत्व पूर्ण है। आपके सम्बन्ध में परमाराध्य गुरुवर म० म० आचार्य रामावतारजी शर्मा की यह उक्ति ही पर्याप्त है—

गतार्थोऽद्य जगन्नाथो नापेक्ष्योऽप्यय्यदीक्षितः।
कटुवाग्वेंकटार्योऽपि सति गङ्गाधरे गुरौ॥

(भारतीयमितिवृत्तम्)

अर्थात्—आज गुरुवर गङ्गाधरजी के रहने पर पण्डितराज जगन्नाथ की आवश्यकता न रही, अप्पय्य दीक्षित की अपेक्षा नहीं और कटु कविता करने वाले वेंकटाचार्य की भी आवश्यकता नहीं।

संस्कृत-साहित्य के अन्तिम काल में उक्त तीन विद्वान् दीप-निर्वाण का अन्तिम उल्लास थे। ये तीनों ही दक्षिणी (तैलङ्ग) विद्वान् थे। हमारे परम गुरुवर शास्त्रीजी महाराज भी तैलङ्ग थे और उसी कोटि के साहित्य-मर्मज्ञ विद्वान् थे। संस्कृत-साहित्य आपका चिर ऋणी रहेगा। आपने अपने जीवन में जो अनेक महत्त्वपूर्ण साहित्य-सेवाएँ की हैं, उनमें आपका अलिविलासि-संलाप नामक काव्य, परम उत्कृष्ट रचना है। इस काव्य में नास्तिक और आस्तिक के सम्वाद-रूप में दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों का ऐसा उदात्त और प्राञ्जल प्रतिपादन किया है कि विद्वानों का चित्त मुग्ध हो जाता है। यह महाकाव्य प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त आपने अपने गुरुवर बालशास्त्री का जीवन-चरित गद्य-पद्य मय लिखा है। आपने अन्यान्य अनेक कविताएँ भी की हैं। चित्र-काव्य-के रूप में जो आपने विस्मयजनक रचनाएँ की हैं, वे देखते ही बनती हैं। आपने महर्षि वात्स्यायन के न्याय भाष्यपर मार्मिक टिप्पणी भी लिखी है। आप थे तो साहित्य के विद्वान्; लेकिन पढ़ाते व्याकरण-शास्त्र ही थे। आपका पाण्डित्य सर्वतोमुख और अति गम्भीर था। संस्कृत की तत्कालीन मासिक-पत्रिका 'सूक्तिसुधा' में आपकी कविताएँ प्रकाशित होती थीं। आपने इस साहित्य-सेवा के अतिरिक्त सबसे बड़ी सेवा यह की, कि अपने ही समान अनेक प्रचण्ड विद्वान् शिष्य तैयार किए, जो इस समय के संस्कृत-साहित्याकाश के जाज्ज्वल्यमान नक्षत्र थे और हैं।

जिस प्रकार स्वर्गीय गङ्गाधर शास्त्री का संस्कृत-साहित्य में प्रधान स्थान था, उसी प्रकार उनके योग्यतम महारथी शिष्यों का भी भारतवर्ष के संस्कृत और हिन्दी-साहित्य-संसार में अद्वितीय स्थान है। उनके भारत-प्रसिद्ध शिष्योंमें आचार्य रामावतार शर्मा, पूज्यपाद आचार्य दामोदरलालजी गोस्वामी, नित्यानन्दजी पर्वतीय, श्रीयुत गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', नागेश्वर पन्त धर्माधिकारी और श्रीयुत नारायण शास्त्री खिस्ते इत्यादि अनेक प्रसिद्ध विद्वान् हैं। इसी प्रकार शास्त्रीजी के कनिष्ठ भ्राता स्वर्गीय महामहोपाध्याय रामशास्त्री तैलङ्ग, और म० म० लक्ष्मण शास्त्री तैलङ्ग भी काशी के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में सर्वोत्तम स्थान रखते हैं। सारांश यह कि उधर ५० वर्षों से साहित्य-संसार में इसी स्कूल का आधिपत्य रहा है और अब भी है।

प्रातःस्मरणीय आचार्य म०म० रामावतार शर्मा संस्कृत-साहित्य के जैसे महारथी विद्वान् थे, हिन्दी-संसार में भी वैसा ही उनका साम्राज्य था। म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी और अम्बिकादत्तजी व्यास के बाद आचार्य रामावतार शर्मा ही ऐसे विद्वान् थे, जिन्होंने संस्कृत-साहित्यके साथ-साथ हिन्दी-साहित्य में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था। षष्ठ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने आपको अपना सभापति निर्वाचित कर उनका सर्वाधिक सम्मान किया था। आपके सम्बन्ध में, आपकी अकाण्ड मृत्यु के समय, अनेक लेख हिन्दी-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने अपने अध्ययनकाल में ही परमार्थ-दर्शन नामक एक नवीन दर्शन-शास्त्र लिख कर भारत के विद्वत्समाज में क्रान्ति मचा दी थी। आपने अपने जीवन के अन्तिम १५ वर्षों तक घोर परिश्रम के साथ संस्कृत का एक महान् कोष तैयार किया था, जो कुछ शेष रह गया है। यदि वे जीवित रहते, तो सम्भव था, यह संस्कृत-साहित्य की महान् निधि होती। आप एक नया महाभारत भी लिख रहे थे, जिसके ३५ सहस्र श्लोक बन चुके थे। इसके अतिरिक्त आपने अनेक हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकें लिखीं। आप जिन दिनों काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज में अध्यापक थे, उस समय अपने मित्रों के साथ आपने मित्र-गोष्ठी स्थापित की थी, जिसके द्वारा मित्र-गोष्ठी नाम की संस्कृत-पत्रिका प्रकाशित होती थी। इसके सम्पादक थे, विश्वभारती के प्रधान आचार्य विधुशेखरजी शास्त्री। गोष्ठी के अन्य सदस्य श्री नीलकमल भट्टाचार्य एम० ए०, साहित्याचार्य पं० ताराचरण भट्टाचार्य, श्रीयुत विज्ञानाचार्य भीमचन्द्र चटर्जी आदि से आज भी संस्कृत-साहित्य का गौरव है। आचार्य रामावतार शर्मा के कलकत्ता चले जाने पर गोष्ठी का प्रकाशन बन्द हो गया।

पूज्य गङ्गाधरजी शास्त्री के दूसरे शिष्य माध्वसम्प्रदायाचार्य श्री दामोदरलालजी गोस्वामी काशी में ही नहीं; भारतवर्ष में संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय विद्वान् हैं। आप ने 'सुक्ति-सुधा' नामक संस्कृत की मासिक पत्रिका का संचालन कर के साहित्य का महान् उपकार किया था। इस पत्रिका में म० म० पं० गङ्गाधर शास्त्री, म० म० पं० राम शास्त्री और म० म० लक्ष्मण शास्त्री की कविताएँ और नियमित प्रकाशित होते रहे हैं। इस त्रयी में अब म० म०

लक्ष्मण शास्त्री तैलङ्ग विद्यमान हैं। आज भी काशी में क्या, भारत में आपके समान संस्कृत की सुधा-वर्षिणी प्रौढ़ कविता करने वालें का अभी तक तो हमें परिचय नहीं हुआ। म० म० राम शास्त्री या म० म० लक्ष्मण शास्त्री ने किसी पुस्तक या अन्य साहित्य का निर्माण नहीं किया।

पूज्यचरण गोस्वामी दामोदरलालजी महाराज ने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों पर भाष्य टीका आदि लिखे हैं। हिन्दी के 'कल्याण' में आपके प्रौढ़ दार्शनिक लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। आपके प्रधान शिष्यों से स्वर्गीय महामहोपाध्याय देवीप्रसादजी कविचक्रवर्ती का स्थान संस्कृत-साहित्य में तो ऊँचा है ही, साथ ही आपने हिन्दी की कविताओं में भी कमाल किया है। इनके सम्बन्ध में प्रायः सभी, संस्कृत-हिन्दी-साहित्य से परिचय रखने वाले, परिचित हैं।

प्रातःस्मरणीय गंगाधरजी शास्त्री के तृतीय शिष्य म० म० पं० नित्यानन्दजी पर्वतीय का स्थान भी काशी में सर्वोच्च और अद्वितीय विद्वानों में था। ये सभी शास्त्रों के प्रधान और प्रामाणिक विद्वान् माने जाते थे। आपने अनेक विषयों पर बड़ी ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें, टीकाएँ, टिप्पणियाँ और संकलन किये हैं, जो आधुनिक विद्वत्समाज में महत्त्वपूर्ण और प्रमाण समझे जाते हैं। आप अल्मोड़ा जिले के पन्त ब्राह्मणों में से थे। आपका अवसान अभी हालही में हुआ है।

इस प्रकार प्रातःस्मरणीय गंगाधरजी शास्त्री के प्रधान शिष्यों में गोस्वामी दामोदरलालजी महाराज वर्तमान् समय के सर्वोच्च विद्वान् समझे जाते हैं। आप अनेकानेक शास्त्रों के विद्वान् हैं। व्याकरण, साहित्य, नव्यन्याय के प्रखर विद्वान् होने के साथ ही दर्शन-शास्त्र, भारतीय सङ्गीत-शास्त्र, वात्स्यायन काम-शास्त्र, यहाँ तक कि अरबी के गुलिस्ताँ और बोस्तां के भी आप विद्वान् हैं। भारत में ऐसे संस्कृत विद्वानों की तुलना कठिन है।

आप ही लोगों के समकालीन अन्यान्य विषयों के प्रखर लेखक विद्वानों का स्मरण कर लेना भी आवश्यक है।

गणित-शास्त्र के विद्वानों में—म० म० सुधाकरजी द्विवेदी के प्रधान शिष्य स्वर्गीय महामहोपाध्याय मुरलीधर झा एवं पं० सुधाकरजी के पुत्र पं० पद्माकरजी का नाम भी साहित्य-संसार में उच्च स्थान रखता है। पं० मुरलीधरजी झा अपने गुरुवर के स्थान पर बनारस गवर्नमेन्ट संस्कृत-कॉलेज के प्रधान गणिताध्यापक थे। आपने अनेक पुस्तकों पर टीकाएँ लिखीं, गणितशास्त्र की अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया है। अब उसी स्थान पर पं० पद्माकरजी द्विवेदी आजकल अध्यापक हैं। ये अपने पिताजी के सुयोग्य सुपुत्र हैं और आपने उनके अनेक कार्यों को पूर्ण किया है। आप हिन्दी के भी अच्छे कवि हैं।

पं० सुधाकरजी की शिष्य-परम्परा में ही हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रधान गणिताध्यापक पं० रामयत्न ओझा वर्तमान काल के सर्वप्रधान गणितज्ञ समझे जाते हैं। आप फलित ज्योतिष के भी अच्छे विद्वान् हैं। आपने फलित-विकाश और फलित-संग्रह नामकी दो पुस्तकें लिखीं हैं।

इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य में स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० प्रभुदत्तजी अग्निहोत्री का विशेष स्थान है। आप उत्तर भारत के एक-मात्र वैदिक विद्वान् थे। कर्म-काण्ड के सम्बन्ध में आप का विशेष स्थान है। आपने भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आप के बाद आपके सुयोग्य सुपुत्र पं० विद्याधरजी अग्निहोत्री आपही के स्थान पर हिन्दू-विश्वविद्यालय के धर्मविज्ञान-विभाग के प्रधान आचार्य हैं। आपने कात्यायन श्रौत सूत्र पर टीका लिखकर महान् कार्य किया है। इसके अतिरिक्त आपने वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में और भी पुस्तकें लिखी हैं और हिन्दी के भी लेखक हैं।

इसी प्रकार न्यायशास्त्र की अनेक पुस्तकों के सम्बन्ध में पं० प्रभुदत्तजी के द्वितीय सुपुत्र पं० शिवदत्तजी न्यायाचार्य ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं और लिखते ही रहते हैं। आप बनारस गवर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज में न्याय के प्रधानाध्यापक हैं।

इधर लगभग १५ वर्षों से संस्कृत साहित्य की उत्तमोत्तम पुस्तकें, प्रकाशित करने का काम साहित्याचार्य पण्डित गौरीनाथजी पाठक ने उठाया है। आपने अनेक संस्कृत-पुस्तकों पर खास कर काव्यों पर सुन्दर हिन्दी टीकाएँ, संस्कृत टीकाएँ की हैं एवं अनेक पुस्तकों के सम्पादन और सुन्दर संस्करण किये हैं। आपकी पुस्तकें संस्कृत छात्रों के लिए परमप्रिय होती हैं। संस्कृत अनभिज्ञ लोगों को भी संस्कृत सीखने के लिये परम उपयुक्त हैं। अब आप इस कार्य में उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे हैं। कुछ दिनों तक आपने 'सहस्रांशु' नामक

पाक्षिक संस्कृत-पत्र निकालना प्रारम्भ किया था ; परन्तु अनेक कारणों से उसे बन्द कर देना पड़ा।

संस्कृत-साहित्य-समाज

वर्तमान समय में काशी में संस्कृत-साहित्य की सर्व-प्रधान संस्था है। सम्वत् १९८० में इसकी स्थापना का श्रीगणेश इन पंक्तियों के लेखक ने ही किया था। समाज के चित्र में आये हुए व्यक्ति इस संस्था के सञ्चालक हैं। इसके द्वारा काशी के संस्कृत-विद्वानों और छात्रों में आशातीत उन्नति हुई। सर्वप्रथम संस्कृत का मासिक-पत्र 'सुप्रभातम्' इसी संस्था से निकाला गया। इसका सर्व-प्रथम श्रेय स्वर्गीय आचार्य रामावतारजी शर्मा को है। जब आप हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष होकर आये थे, उस अवसर पर तीन वर्षों तक लेखक को सेवा और अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उसी समय उन्हीं की शिक्षाओं के फल-स्वरूप मैंने संस्कृत-साहित्य-समाज की योजना की थी। इस योजना में मेरे अन्यतम गुरुवर महामहोपाध्याय पं० देवीप्रसादजी शुक्ल ने अत्यन्त उत्सुकता प्रकट की और सर्वप्रथम आपने ही इसके प्रधान मन्त्री और सुप्रभात के सम्पादन का भार लिया था। इस समाज के प्रधान-सञ्चालकों और सहायकों में सर्वप्रथम स्थान स्वर्गीय गिरीश शुक्ल न्यायाचार्य का है। आपने अपना अधिकांश समय इस ओर लगाकर संस्कृत-साहित्य की सेवा में अपना शरीर तक अर्पण कर दिया था। आप प्रातः ५ से रात को १० बजे तक अनवरत संस्कृत-सेवा में लगे रहते थे। सुप्रभात का सञ्चालन और सम्पादन करते हुए ३२ वर्ष की युवावस्था में ही आपका अकाल काल-कवलित हो जाना, संस्कृत-साहित्य-समाज और उसके मुखपत्र के लिए भी अत्यन्त हानिकर हुआ। आपने अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया था और कर भी रहे थे। आपकी साहित्य-सेवा का प्रत्यक्ष प्रमाण यही था कि आपकी आकस्मिक मृत्यु के बाद संस्कृत-समाज ने सिर्फ एक मास में ही दो सहस्र रुपये एकत्र करके आपके ऋणग्रस्त अनाथ परिवार की सहायता की थी। आपकी मृत्यु से काशी के पंडित-समाज का एक उद्भट उत्साही और नव-युवक रत्न खो गया, जिसकी क्षतिपूर्ति असम्भव है। ये हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग में नव्यन्याय-शास्त्र के अध्यापक थे।

इसी प्रकार साहित्य-समाज के प्रधान नेता और भारत-वर्ष के अद्वितीय साहित्यज्ञ विद्वान् स्वर्गीय म०म० देवी-प्रसाद शुक्ल कवि चक्रवर्त्ती का अकाल कैलास-वास भी साहित्य-संसार के लिये अत्यन्त हानिकर हुआ। आपने अपने जीवन में महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं सहस्रों कवि-ताओं का निर्माण किया था। सुप्रभात में आपका पुण्यश्लो-कोदय नामक नाटक भी प्रकाशित हुआ है, जो एक नवीन साहित्यमय रचना है। इसके अतिरिक्त आप हिन्दी के भी मर्मज्ञ और प्रौढ़ कवि थे। आपकी हिन्दी-कविताओं का एक सुन्दर संग्रह भी था, जो अब न जाने किस अवस्था में है। आपने अपने समस्त जीवन में साहित्य-सम्बन्धी प्रत्येक कार्य में सोत्साह सहयोग प्रदान किया और संस्कृत-साहि-त्य-समाज के तो आप प्राण ही थे। आपका परलोक-प्रयाण समाज के शैथिल्य का प्रधान कारण हुआ।

साहित्य-समाज के प्रधान जन्म-दाताओं में पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री का स्थान भी अत्यन्त महत्व-पूर्ण है। आधुनिक प्रगतिशील विद्वानों में उक्त शास्त्रीजी को क्रान्तिकारी कहना चाहिए। आप सर्वप्रथम सुप्रभात के सम्पादक थे। आप के ही सदुद्योग से काशी के भारतधर्म-महामण्डल द्वारा 'सूर्योदय' नामक संस्कृत के पाक्षिक-पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आप उसके सम्पादक थे और अब भी उसके सहायक हैं। आप संस्कृत-काव्यरचना और नवीन प्रकार की संस्कृत-संगीतरचना में सिद्धहस्त हैं। आपका संस्कृत भाषण भी महत्त्व पूर्ण होता है।

संस्कृत-साहित्य-समाज के अन्यतम कर्णधार गोपाल शास्त्री दर्शन-केशरी, जो संस्कृत और हिन्दी के प्रखर प्रतिभा सम्पन्न ठोस विद्वान् एवं आधुनिक साहित्य-समाज के जाज्ज्वल्यमान रत्न हैं। आपने 'राष्ट्रभाषा-भूषण' नामक हिन्दीव्याकरण की रचना करके हिन्दी का महान् उपकार किया है। आप बड़े ही समाज-सुधारक और राष्ट्रीय विचार के संस्कृत-विद्वान् हैं। आप काशी ज़िला कांग्रेस कमेटी के सभापति होकर एक साल के लिए जेल-यात्रा भी कर आये हैं। आप भी सुप्रभात के जन्म-दाता और सम्पादक थे। आपने संस्कृत में आप धाराप्रवाह संस्कृत-भाषण करते हैं।

अनेक लेख लिखकर नवजीवन का सञ्चार कर दिया है।

इनके अतिरिक्त पं० तारादत्त पन्त भी संस्कृत-साहित्य के बड़े ही अन्वेषक विद्वान् हैं। आपने संस्कृत-साहित्य में भूगोल शास्त्र पर २-३ पुस्तकें लिखकर एक नवीन विषय का आविष्कार किया है। आपने गोलविद्या और गोल सूत्र नामक पुस्तकों के अतिरिक्त सूर्य-चरित नामक एक नवीन महाकाव्य की रचना की है। आप बड़े ही विमर्श-शील और गवेषक विद्वान् हैं। आप अपना जीवन साहित्य-सेवा में ही व्यतीत करते हैं।

इन सब विद्वान् साहित्य-सेवियों के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत के मार्मिक और प्रगाढ़ विद्वान् पं० केशव प्रसादजी मिश्र को सभी हिन्दी लिखने-पढ़ने वाले जानते हैं। इनकी विद्वत्ता और गवेषकता बहुत ही गम्भीर और मार्मिक होती है।

संस्कृत-साहित्य-समाज-द्वारा सञ्चारित नवजीवन से संस्कृत-संसार में अनेक पत्रों और संस्थाओं का जन्म हुआ। सुप्रभातम् की जागृति से सर्व-प्रथम भारतधर्म महामण्डल-द्वारा सूर्योदय नामक पाक्षिक-पत्र निकला, जो अब मासिक रूप में बाबाजी के काषायाम्बर से निकलता है।

इसी की स्पर्द्धा में कुछ दिन शारदाभवन से 'सहस्रांशु' नामक पत्र भी निकला था, जो ऐसी ही स्वार्थपूर्ण नीति से चल न सका। सुप्रभातम् और संस्कृत-साहित्य-समाज के घोर आन्दोलन से ही स्वर्गीय लक्ष्मणजी शास्त्री ने आवेशवश ब्राह्मण-महासम्मेलन नामक संस्कृत मासिक-पत्र निकालना प्रारम्भ किया, जो अब भी निकलता है; लेकिन इस में 'अहोरूपम्, अहोध्वनिः' की ध्वनि निकलती है। फिर भी काशी में इन दो पत्रों के जन्म का श्रेय सुप्रभात को ही है।



म० म० स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी

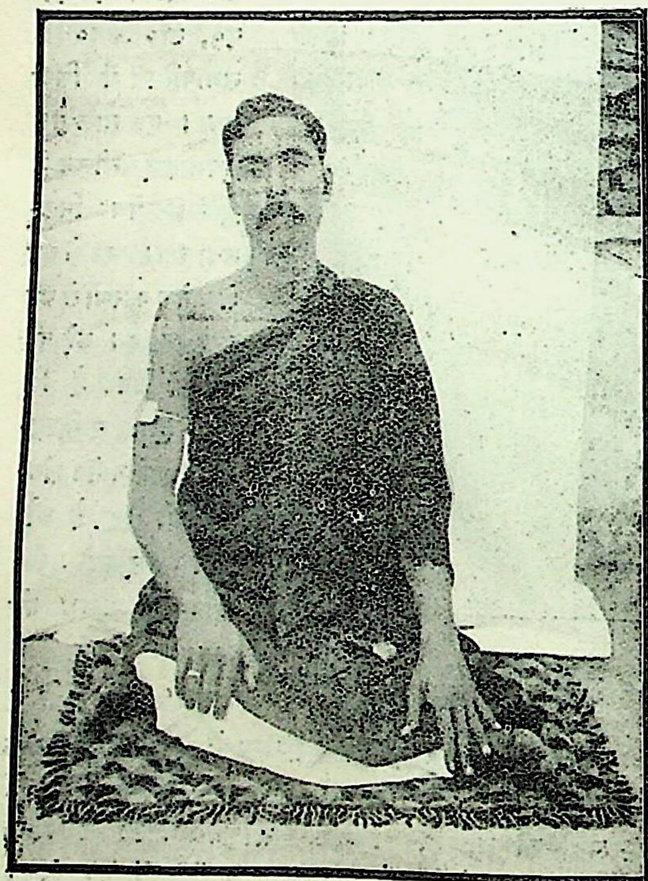
संस्कृत-साहित्य-समाज के प्रबन्ध से काशी में अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का एकादश अधिवेशन म० म० डा० गङ्गानाथ झा एम-ए०, डो० लिट्० के सभापतित्व में किया गया। एक साल तक सुप्रभातम् सम्मेलन के मुखपत्र-रूपेण निकलता रहा। इधर दो वर्ष से अनेक कारणों से यह बन्द रहा है। बड़े ही हर्ष का विषय है कि अब पुनः साहित्य-समाज का नवीन संगठन हो रहा है और सुप्रभातम् का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हो गया है।

'संस्कृत-साहित्य और काशी के पण्डित' इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। इस लेख में काशी के उन्हीं विद्वानों की चर्चा की गई है, जिन्होंने संस्कृत-साहित्य के लिए कुछ लिखा है। काशी संस्कृत के विद्वानों की केन्द्र-भूमि है। इसमें विद्वानों की इतनी प्रचुरता है कि छोटे-से

लेख में इस का भलीभाँति स्वरूप वर्णन करना कठिन है। काशी में प्रधानतः विद्वानों की तीन श्रेणियाँ की जा सकती हैं। एक शास्त्रार्थी विद्वान, दूसरे अध्यापक विद्वान् और तीसरे लेखक विद्वान्। इसका तात्पर्य यह नहीं कि लेखक विद्वान् अध्यापक न थे या अध्यापक शास्त्रार्थी न थे; किन्तु यह श्रेणी-विभाग उनकी विशेषता के कारण किया जा सकता है।

उक्त लेख में हमने उन्हीं विद्वानों पर प्रकाश डाला है, जिन्होंने संस्कृत-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ लिखा है, या जिनकी विशेष ख्याति साहित्य सेवा के कारण ही थी। ये विद्वान् काशी के इने-गिने ही हैं। इनके अतिरिक्त काशी के प्रसिद्ध विद्वानों में से अभी अधिकाधिक विद्वानों का परिचय अवशिष्ट है, जिनके सम्बन्ध में हम आगामी अङ्क में विशिष्ट रूप से लिखकर इस लेख को पूर्ण कर सकेंगे। उनमें से कतिपय चुने हुए व्यक्तियों का स्मरण-मात्र करके ही हम इस लेख को समाप्त कर देना चाहते हैं।

गौतमावतार म० म० पं० राखालदास न्यायरत्न, गौतमावतार



पं० गोपीनाथ पाठक
"संस्कृत पुस्तकों के प्रसिद्ध सम्पादक और प्रकाशक"

आचार्य गोस्वामी दामोदरलाल शर्म्मा



पं० सीतारामजी शास्त्री, म० म० कैलासचन्द्र शिरोमणि, म० म० पञ्चानन तर्करत्न, म० म० प्रमथनाथ भट्टाचार्य, म० म० वामाचरण भट्टाचार्य, म०म० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि आदि बंगदेशीय विद्वान् काशी के ही नहीं, भारत के न्यायशास्त्र के विद्वानों में अपनी तुलना नहीं रखते।

दार्शनिक विद्वानों में मीमांसक-शिरोमणि पं० नित्यानन्दजी, म० म० अम्बादास शास्त्री, म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्राविड आदि विद्वान् भी अद्वितीय थे। आप लोगों ने भी संस्कृत-दर्शनों के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

वर्तमान समय के शास्त्रार्थी दार्शनिक विद्वानों में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीबालकृष्ण मिश्र, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र श्रीपद्मनाभ शास्त्री और पं० राजराजेश्वर शास्त्री अपनी तुलना नहीं रखते।

वैयाकरण विद्वानों में म० म० जयदेवजी, मिश्र पं० अनन्तराम शास्त्री, सर्वतंत्र स्वतंत्र पं० काशीनाथजी, पं० रामभवन शास्त्री, पं० हरिनारायण त्रिपाठी, पं० रामयशजी पं० सभापति उपाध्याय आदि दिग्गज विद्वान् प्रसिद्ध हैं।

वह पचास वर्ष से ऊपर का था। तब भी, युवकों से अधिक बलिष्ट और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नङ्गे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूछें बिच्छू के डंक की तरह, देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग, साँप की तरह चिकना और चमकीला था। नागपुरी धोती उसका लाल रंग का रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता था। सुनहले पल्ले का साफा उसके घुँघराले बालों पर, जिसका छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। उसके ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँड़ासा, यह थी उसकी धज! पंजों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।

गुण्डा

लेखक—श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वही काशी नहीं रह गई थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिए विद्वान ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मन्दिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण, प्रायः बन्द-से हो गए थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छुआछूत में कट्टर वैष्णव-धर्म भी उस विश्रृङ्खलता में, नवागन्तुक धर्मोन्माद में, अपनी असफलता देख कर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था। उसी समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देखकर, काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने, एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मर मिटना, सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खा कर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताए हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उनका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुण्डा कहते थे।

जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वञ्चित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर, एक प्रतिष्ठित ज़मीदार का पुत्र होने पर भी, नन्हकूसिंह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथों से उसने अपनी सम्पत्ति लुटाई। नन्हकूसिंह ने बहुत-सा रुपया खर्च करके जैसा स्वाँग खेला था, उसे काशी वाले बहुत दिनों तक नहीं भूल सके। वसन्त ऋतु में यह प्रहसन-पूर्ण अभिनय खेलने के लिए उन दिनों प्रचुर धन, बल, निर्भीकता और उच्छृंखलता की आवश्यकता होती थी। एक बार नन्हकूसिंह ने भी एक पैर में नूपुर, एक हाथ में तोड़ा, एक आँख में काजल, एक कान में हजारों के मोती तथा दूसरे कान में फटे हुए जूते का तल्ला लटका कर, एक हाथ में जड़ाऊ मूठ की तलवार, दूसरा हाथ आभूषणों से लदी हुई अभिनय करने वाली प्रेमिका के कंधे पर रख कर गाया था—

'कहीं बैंगन वाली मिले तो बुला देना।'

प्रायः बनारस के बाहर की हरियालियों में, अच्छे पानी वाले कूओं पर, गङ्गा की धारा में मचलती हुई डोंगी पर वह दिखलाई पड़ता था। कभी-कभी जूआखाने से निकल कर जब वह चौक में आ जाता, तो काशी की रँगीली वेश्याएँ मुस्कराकर उसका स्वागत करतीं और उसके दृढ़ शरीर को सस्पृह देखतीं। वह तमोली की ही दूकान पर बैठकर उनके गीत सुनता, ऊपर कभी नहीं जाता था। जूए की जीत का रुपया मुट्ठियों में भर-भरकर, उनकी खिड़की में वह इस तरह उछालता कि कभी-कभी समाजी लोग अपना सिर सहलाने लगते, तब वह ठठाकर हँस देता। जब कभी लोग कोठे के ऊपर चलने के लिये कहते, तो वह उदासी की साँस भर कर चुप हो जाता।

वह अभी वंसी के जूआ-खाने से निकला था। आज उसकी कौड़ी ने साथ न दिया। सोलह परियों के नृत्य में उसका मन न लगा। मन्नू तमोली की दुकान पर बैठते हुए उसने कहा—आज सायत अच्छी नहीं रही मन्नू!

'क्यों मालिक! चिन्ता किस बात की है। हम लोग किस दिन के लिये हैं। सब आपही का तो है।'

'अरे बुद्धू ही रहे तुम! नन्हकूसिंह जिस दिन किसी

से लेकर जूआ खेलने लगे, उसी दिन समझना वह मर गये। तुम जानते नहीं कि मैं जूआ खेलने कब जाता हूँ। जब मेरे पास एक पैसा नहीं रहता ; उस दिन नाल पर पहुँचते ही जिधर बड़ी ढेरी रहती है, उसी से बदता हूँ और फिर वही दाँव आता भी है। बाबा कीनाराम का यह वरदान है।

'तब आज क्यों मालिक ?'

'पहला दाँव तो आया ही, फिर दो-चार हाथ बदने पर सब निकल गया। तब भी लो, यह पाँच रुपये बचे हैं। एक रुपया तो पान के लिये रख लो और चार दे दो मलूकी कथक को, कह दो कि दुलारी से गाने के लिए कह दे। हाँ वही एक गीत—

'विलमि विदेस रहे।'

नन्हकूसिंह की बात सुनते ही मलूकी, जो अभी गाँजे की चिलम पर रखने के लिये अँगारा चूर कर रहा था, घबरा कर उठ खड़ा हुआ। वह सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ चढ़ गया। चिलम को देखता ही ऊपर चढ़ा इसलिये उसे चोट भी लगी ; पर नन्हकूसिंह की भृकुटी देखने की शक्ति उसमें कहाँ। उसे नन्हकूसिंह की वह मूर्ति न भूली थी। जब इसी पान की दूकान पर जूए-खाने से जीता हुआ रुपये से भरा तोड़ा लिए वह बैठा था। दूर से बोधीसिंह की बारात का बाजा बजता हुआ आ रहा था। नन्हकू ने पूछा—यह किसकी बारात है ?

'ठाकुर बोधीसिंह के लड़के की।'—मन्नू के इतना कहते ही नन्हकू के ओठ फड़कने लगे। उसने कहा—मन्नू ! यह नहीं हो सकता। आज इधर से बारात न जायगी। बोधीसिंह हमसे निपट कर तब बारात इधर से ले जा सकेंगे।

मन्नू ने कहा—तब मालिक मैं क्या करूँ ?

नन्हकू गड़ासा कन्धे पर से और ऊँचा करके मलूकी से बोला—मलुकिया देखता है अभी, जा ठाकुर से कह दे कि बाबू नन्हकूसिंह आज यहीं लगाने के लिये खड़े हैं। समझ कर आवें, लड़के की बारात है। मलुकिया काँपता हुआ ठाकुर बोधीसिंह के पास गया। बोधीसिंह और नन्हकू से पाँच वर्ष से सामना नहीं हुआ है। किसी दिन नाल पर कुछ बातों में ही कहा-सुनी होकर, बीच-बचाव होगया था। फिर सामना नहीं हो सका था। आज नन्हकू जानपर खेल कर अकेले खड़ा है। बोधीसिंह भी उस आन को समझते थे। उन्होंने मलूकी से कहा—जा बे, कहदे कि हमको क्या मालूम है कि बाबूसाहब वहाँ खड़े हैं। जब वह हैं ही तो दो समधी जाने का क्या काम है। बोधीसिंह लौट गये और मलूकी के कन्धेपर तोड़ा लादकर बाजे के आगे नन्हकूसिंह बारात लेकर गए। ब्याह में जो कुछ लगा खर्च किया। ब्याह करा कर तब दूसरे दिन इसी दूकान तक आकर रुक गए। लड़के को और उसकी बारात को उसके घर भेज दिया।

मलूकी को भी दस रुपया मिला था उस दिन। फिर नन्हकूसिंह की बात सुन कर बैठे रहना और यम को न्योता देना एकही बात थी। उसने जाकर दुलारी से कहा—हम ठेका लगा रहे हैं, तुम गाओ, तबतक बल्लू सरंगी वाला पानी पीकर आता है।

'बाप रे ! कोई आफत आई है क्या बाबु साहब ? सलाम'—कहकर दुलारी ने खिड़की से मुस्करा कर झांका था कि नन्हकूसिंह उसके सलाम का जवाब देकर, दूसरे एक आने वाले को देखने लगे।

हाथ में हरौती की पतली-सी छड़ी, आँखों में सुरमा, मुँह में पान, मेंहदी लगी हुई लाल दाढ़ी, जिसकी सफेद जड़ दिखलाई पड़ रही थी, कुव्वेदार टोपी, छकलिया अँगरखा और साथ में लैसदार परतले वाले दो सिपाही ! कोई मौलवी साहब हैं। नन्हकू हँस पड़ा। नन्हकू की ओर बिना देखे ही मौलवी ने एक सिपाही से कहा—जाओ दुलारी से कहदो कि आज रेजिडेण्ट साहब की कोठी पर मुजरा करना होगा, अभी चलें, देखो तबतक हम जानअली से कुछ इत्र ले रहे हैं। सिपाही उपर चढ़ रहा था और मौलवी दूसरी ओर चले थे कि नन्हकू ने ललकार कर कहा—दुलारी ! हम कबतक यहाँ बैठे रहें ! क्या अभी सरंगिया नहीं आया क्या ?

दुलारी ने कहा—वाह बाबू साहब ! आप ही के लिए तो मैं यहाँ आ बैठी हूँ। सुनिये न। आप तो कभी ऊपर...मौलवी जल उठा ! उसने कड़क कर कहा—चोबदार ! अभी वह सूअर की बच्ची उतरी नहीं। जाओ कोतवाल के पास, मेरा नाम लेकर कहो कि मौलवी अलाउद्दीन कुबरा ने बुलाया है। आकर इसकी मरम्मत करें।

देखता हूँ तो जब से नवाबी गई, इन काफिरों की मस्ती बढ़ गई है।

कुबरा मौलवी! बापरे—तमोली अपनी दूकान सम्हालने लगा। पास ही एक दूकान पर बैठकर ऊँघता हुआ बजाज चौंक कर सिर में चोट खा गया। इसी मौलवी ने तो महाराज चेतसिंह से साढ़े तीन सेर चींटी के सिर का तेल माँगा था। मौलवी अलीउद्दीन कुबरा! बाजार में हलचल मच गई। नन्हकूसिंह ने मन्नू से कहा—क्यों चुप-चाप बैठोगे नहीं। दुलारी से कहा—वहीं से बाई जी! इधर-उधर हिलने का काम नहीं। तुम गाओ। हमने ऐसे घसियारे बहुत से देखे हैं। अभी कल रमल के पासे फेंक कर अधेला-अधेला माँगता था, आज चला है रोब गाँठने।

अब कुबरा ने घूम कर उसकी ओर देख कर कहा—कौन है यह पाजी!

'तुम्हारे चचा बाबू नन्हकूसिंह!'—के साथ ही पूरा बनारसी झापड़ पड़ा। कुबरा का सिर घूम गया। लैस के परतले वाले सिपाही दूसरी ओर भाग चले और मौलवी साहब चौंधिया कर जानअली की दूकान पर लड़खड़ाते, गिरते पड़ते, किसी तरह पहुँच गये।

जानअली ने मौलवी से कहा—मौलवी साहब! भला आप भी उस गुण्डे के मुँह लगने गये। यह तो कहिए कि उसने गँड़ासा नहीं तौल दिया। कुबरा के मुँह से बोली नहीं निकल रही थी। उधर दुलारी गा रही थी—'...विलमि विदेस रहे......' गाना पूरा हुआ, कोई आया-गया नहीं। तब नन्हकूसिंह धीरे-धीरे टहलता हुआ दूसरी ओर चला गया। थोड़ी देर में एक डोली रेशमी परदे से ढँकी हुई आई। साथ में एक चोबदार था। उसने दुलारी को राजमाता पन्ना की आज्ञा सुनाई।

दुलारी चुप-चाप डोली पर जा बैठी। डोली धूल और सन्ध्याकाल के धूएँ से भरी हुई बनारस की तंग गलियों से होकर शिवालेघाट की ओर चली।

२

श्रावण का अन्तिम सोमवार था। राजमाता पन्ना शिवालय में बैठकर पूजन कर रही थीं। दुलारी बाहर बैठी कुछ अन्य गानेवालियों के साथ भजन गा रही थी। आरती हो जाने पर, फूलों की अञ्जलि बिखेर कर पन्ना ने भक्ति-भाव से देवता के चरणों में प्रणाम किया। फिर प्रसाद लेकर बाहर आते ही, उन्होंने दुलारी को देखा। उसने खड़ी होकर हाथ जोड़ते हुए कहा—मैं पहले ही पहुँच जाती। क्या करूँ, वह कुबरा मौलवी निगोड़ा आकर रेजिडेण्ट की कोठी पर ले जाने लगा। घण्टों इसी झंझट में बीत गया, सरकार!

'कुबरा मौलवी! जहाँ सुनती हूँ उसी का नाम। सुना है कि उसने यहाँ भी आकर कुछ ......'—फिर न जाने क्या सोच कर बात बदलते हुए पन्ना ने कहा—हाँ तब फिर क्या हुआ? तुम कैसे यहाँ आ सकीं।

'बाबू नन्हकूसिंह उधर से आगये। मैंने कहा सरकार की पूजा पर, मुझे भजन गाने को जाना है। और यह जाने नहीं दे रहा है। उन्होंने मौलवीको ऐसा झापड़ लगाया कि उसकी हेंकड़ी भूल गई। और तब जाकर मुझे किसी तरह यहाँ आने की छुट्टी मिली।'

'कौन बाबू नन्हकूसिंह?'

दुलारी ने सिर नीचा कर के कहा—अरे, क्या सरकार को नहीं मालूम? बाबू निरंजनसिंह के लड़के! उसदिन, जब मैं बहुत छोटी थी, आपकी बारी में झूला-झूल रही थी, जब नवाब का हाथी बिगड़ कर आ गया था, बाबू निरंजनसिंह के कुँअर ने ही तो उस दिन हम लोगों की रक्षा की थी।

राजमाता का मुख उस प्राचीन घटना को स्मरण करके न जाने क्यों विवर्ण हो गया। फिर अपने को सम्हाल कर उन्होंने पूछा—तो बाबू नन्हकूसिंह उधर कैसे आगये?

दुलारी ने मुसका कर सिर नीचा कर लिया। दुलारी राजमाता पन्ना के पिता की ज़मींदारी में रहने वाली वेश्या की लड़की थी। उसके साथ ही, कितनी बार झूले हिंडोले अपने बचपन में पन्ना झूल चुकी थी। वह बचपन से ही गाने में सुरीली थी। सुन्दरी होने पर चंचल भी थी। पन्ना जब काशीराज की माता थी, तब दुलारी काशी की प्रसिद्ध गाने वाली थी। राजमहल में उसका गाना-बजाना हुआ ही करता। महाराज बलवन्तसिंह के समय से ही संगीत, पन्ना के जीवन का आवश्यक अंश था। हाँ, तब-प्रेमदुःख और दर्द-भरी विरह-कल्पना के गीत की ओर अधिक रुचि थी। अब सात्विक भाव-पूर्ण भजन होता था। राज-माता पन्ना का वैधव्य से दीप्त शान्त मुख-मण्डल कुछ मलीन हो गया।

बड़ी रानी की सापत्न्य ज्वाला बलवन्तसिंह के मर जाने पर भी नहीं बुझी। अन्तःपुर कलह का रंगमंच बना रहता, इसीसे प्रायः पन्ना काशी के राजमन्दिर में आकर पूजा-पाठ में अपना मन लगाती। रामनगर में उसको चैन नहीं मिलता। नई रानी होने के कारण बलवन्तसिंह की प्रेयसी होने का गौरव तो उसे था ही, साथ में पुत्र उत्पन्न करने का सौभाग्य भी मिला, फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता। उसे अपने ब्याह की आरंभिक चर्चा का स्मरण हो आया।

छोटे-से मंच पर, गङ्गा की उमड़ती हुई धारा को पन्ना अन्यमनस्क होकर देखने लगी। उस बात को, जो अतीत में एक बार, हाथ से अनजान में खिसक जाने वाली वस्तु की तरह गुप्त हो गई हो, सोचने का कोई कारण नहीं। उससे कुछ बनता-बिगड़ता भी नहीं; परन्तु मानव-स्वभाव हिसाब रखने की प्रथानुसार कभी-कभी कही बैठता है, 'कि यदि वह बात होगई होती तो?' ठीक उसी तरह पन्ना भी राजा बलवन्तसिंह-द्वारा बल-पूर्वक रानी बनाई जाने के पहले की एक सम्भावना को सोचने लगी थी। सो भी बाबू नन्हकूसिंह का नाम सुन लेने पर। गेंदा मुँह लगी दासी थी। वह पन्ना के साथ उसी दिन से है, जिस दिन से पन्ना बलवन्तसिंह की प्रेयसी हुई। राज्यभर का अनुसन्धान उसी के द्वारा मिला करता। और उसे न जाने कितनी जानकारी भी थी। उसने दुलारी का रंग उखाड़ने के लिये कुछ कहना आवश्यक समझा।

'महारानी! नन्हकूसिंह अपनी सब जमीदारी, सवाँग, भैंसों की लड़ाई, घुड़दौड़ और गाने-बजाने में उड़ाकर अब डाकू हो गया है। जितने खून होते हैं, सब में उसी का हाथ रहता है। जितनी......'—उसे रोककर दुलारी ने कहा—यह झूठ है। बाबू साहब के ऐसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएँ उनकी दी हुई धोती से अपना तन ढकती हैं। कितनी लड़कियों की ब्याह-शादी होती है। कितने सताये हुए लोगों की उनके द्वारा रक्षा होती है।

रानी पन्ना के हृदय में एक सरलता उद्वेलित हुई। उन्होंने हँसकर कहा—दुलारी, वे तेरे यहाँ आते हैं न? इसीसे तू उनकी बड़ाई......।

'नहीं सरकार! शपथ खाकर कह सकती हूँ, कि बाबू नन्हकूसिंह ने आज तक कभी मेरे कोठे पर पैर भी नहीं रखा।'

राजमाता न जाने क्यों इस अद्भुत व्यक्ति को समझने के लिये चंचल हो उठी थी। तब भी उसने दुलारी को आगे कुछ न कहने के लिये तीखी दृष्टि से देखा। वह चुप हो गई। पहले पहर की शहनाई बजने लगी। दुलारी छुट्टी माँगकर डोली पर बैठ गई। तब गेंदा ने कहा—सरकार! आजकल नगर की दशा बड़ी बुरी है। दिन-दहाड़े लोग लूट लिये जाते हैं। सैकड़ों जगह नाल पर जुए में लोग अपना सर्वस्व गँवाते हैं। बच्चे फुसलाये जाते हैं। गलियों में लाठियाँ और छुरे चलने के लिए टेढ़ी भौंहें कारण बन जाती हैं। उधर रेजीडेण्ट साहब से महाराज की अनबन चल रही है। राजमाता चुप रहीं।

दूसरे दिन राजा चेतसिंह के पास रेजिडेण्ट मार्कहम की चिट्ठी आई। जिसमें नगर की दुर्व्यवस्था की कड़ी आलोचना थी। डाकुओं और गुण्डों को पकड़ने के लिये, उन पर कड़ा नियंत्रण रखने की सम्मति भी थी। कुबरा मौलवी वाली घटना का भी उल्लेख था। उधर हेस्टिंग्स के आने की भी सूचना थी। शिवालयघाट और रामनगर में हलचल मच गई। कोतवाल हिम्मतसिंह पागल की तरह, जिसके हाथ में लाठी, लोहाँगी, गड़ासा, बिछुआ और करौली देखते, पकड़ने लगे।

एक दिन नन्हकूसिंह सुम्भा के नाले के संगम पर, ऊँचे से टीले की घनी हरियाली में अपने चुने हुए साथियों के साथ दुधिया छान रहे थे। गंगा में, उनकी पतली डोंगी बड़ की जटा से बँधी थी। कथकों का गाना हो रहा था। चार उलाँकी इक्के कसे-कसाये खड़े थे।

नन्हकूसिंह ने अकस्मात कहा—मलूकी! गाना जमता नहीं है। उलाँकी पर बैठ कर जाओ, दुलारी को बुला लाओ। मलूकी वहाँ मजीरा बजा रहा था। दौड़कर इक्के पर जा बैठा, आज नन्हकूसिंह का मन उखड़ा था। बूटी कई बार छानने पर भी नशा नहीं। डेढ़ घण्टे में दुलारी सामने आ गई। उसने मुस्कुरा कर पूछा—क्या हुक्म है बाबू साहब!

'दुलारी! आज गाना सुनने का मन कर रहा है।'

'इस जंगल में क्यों ?'—उसने सशंक हँसकर कुछ अभिप्राय से पूछा।

'तुम किसी तरह का खटका न करो।'—नन्हकूसिंह ने हँसकर कहा।

'यह तो मैं उस दिन महारानी से भी कह आई हूँ।'

'क्या, किससे ?'

'राजमाता पन्नादेवी से'—फिर उस दिन गाना नहीं जमा। दुलारी ने आश्चर्य से देखा कि तानों में नन्हकू की आँखें तर हो जाती हैं। गाना-बजाना समाप्त हो गया था। वर्षा की रात में झिल्लियों का स्वर उस झुरमुट में गूँज रहा था। मन्दिर के समीप ही छोटे से कमरे में नन्हकूसिंह चिन्ता में निमग्न बैठा था। आँखों में नींद नहीं। और सब लोग तो सोने लगे थे, दुलारी जाग रही थी। वह भी कुछ सोच रही थी। आज उसे, अपने को रोकने के लिये कठिन प्रयत्न करना पड़ रहा था; किन्तु असफल होकर वह उठी और नन्हकूसिंह के समीप धीरे-धीरे चली आई। कुछ आहट पाते ही चौंक कर नन्हकू ने पास ही पड़ी हुई तलवार उठा ली। तब तक हँस कर दुलारी ने कहा—बाबू साहब यह क्या ! स्त्रियों पर भी तलवार चलाई जाती है ?

छोटे-से दीपक के प्रकाश में वासना भरी-रमणी का मुख देखकर नन्हकू हँस पड़ा। उसने कहा—क्यों बाईजी ! क्या इसी समय जाने की पड़ी है। मौलवी ने फिर बुलाया है क्या ?—दुलारी नन्हकू के पास बैठ गई। नन्हकू ने कहा—क्या तुमको डर लग रहा है ?

'नहीं, मैं कुछ पूछने आई हूँ।'

'क्या ?

'क्या,... ..यही कि... . कभी तुम्हरे हृदय में......'

'उसे न पूछो दुलारी ! हृदय को बेकार ही समझ कर तो उसे हाथ में लिये फिर रहा हूँ। कोई कुछ कर देता—कुचलता—चीरता—उछालता ! मर जाने के लिये सब कुछ तो करता हूँ; पर मरने नहीं पाता।'

'मरने के लिये भी कहीं खोजने जाना पड़ता है। आपको काशी का हाल क्या मालूम ! न जाने घड़ी भर में क्या हो जाय। उलट-पुलट होने वाला है क्या, बनारस की गलियाँ जैसे काटने दौड़ती हैं।'

'कोई नई बात इधर हुई है क्या ?'

'कोई हेस्टिंग साहब आया है। सुना है कि उसने शिवालेघाट पर तिलंगों की कंपनी का पहरा बैठा दिया है। राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना वहीं हैं। कोई-कोई कहता है कि उनको पकड़ कर कलकत्ता भेजने......'

'क्या पन्ना भी......रनवास भी वहीं है'—नन्हकू अधीर हो उठा था।

'क्यों बाबू साहब, आज रानी पन्ना का नाम सुनकर आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गये !'

सहसा नन्हकू का मुख भयानक हो उठा। उसने कहा—चुप रहो, तुम उसको जानकर क्या करोगी ! वह उठ खड़ा हुआ। उद्विग्न की तरह न-जाने क्या खोजने लगा। फिर स्थिर हो कर उसने कहा—दुलारी ! जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि एकान्त रात में एक स्त्री मेरे पलँग पर आकर बैठ गई है, मैं चिरकुमार ! अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिये सैकड़ों असत्य, अपराध करता फिर रहा हूँ। क्यों ? तुम जानती हो ? मैं स्त्रियों का घोर विद्रोही हूँ और पन्ना ! ... किन्तु उसका क्या अपराध ! अत्याचारी बलवन्तसिंह के कलेजे में बिछुआ मैं न उतार सका। किन्तु पन्ना ! उसे पकड़ कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे ! वही... ।

नन्हकूसिंह उन्मत्त हो उठा था। दुलारी ने देखा, नन्हकू अन्धकार में ही वट वृक्ष के नीचे पहुँचा और गंगा की उमड़ती हुई धारा में डोंगी खोल दी। उसी घने अन्धकार में। दुलारी का हृदय काँप उठा।

३

१६ अगस्त सन् १७८१ को काशी डावाँडोल हो रही थी। शिवालेघाट में राजा चेतसिंह लेफ्टिनेन्ट इस्टाकर के पहरे में थे। नगर में आतंक था। दूकानें बन्द थीं। घरों में बच्चे अपनी माँ से पूछते थे—माँ, आज हलुए वाला नहीं आया। वह कहती—चुप बेटे !—सड़कें सूनी पड़ी थीं। तिलङ्गों की कम्पनी के आगे-आगे कुबरा मौलवी कभी-कभी आता-जाता दिखलाई पड़ता था। उस समय खुली हुई खिड़कियाँ भी बन्द हो जाती थीं। भय और सन्नाटे का राज्य था। चौक में चिथरूसिंह की हवेली अपने भीतर काशी की वीरता को बन्दी किए कोतवाली का अभिनय कर रही थी। इसी समय किसी ने पुकारा—हिम्मतसिंह !

खिड़की में से सिर निकाल कर हिम्मतसिंह ने पूछा—कौन ?

'बाबू नन्हकूसिंह !'

'अच्छा, तुम अब तक बाहर ही रहे ?'

'पागल ! राजा कैद हो गये हैं। छोड़ दो इन सब बहादुरों को ! हम एक बार इनको लेकर शिवालेघाट पर जायँ।'

'ठहरो'—कह कर हिम्मतसिंह ने कुछ आज्ञा दी, सिपाही बाहर निकले। नन्हकू की तलवार चमक उठी। सिपाही भीतर भागे। नन्हकू ने कहा—नमक हरामो ! चूड़ियाँ पहन लो ! लोगों को देखते देखते नन्हकूसिंह चला गया। कोतवाली के सामने फिर सन्नाटा हो गया।

नन्हकू उन्मत्त था। उसके थोड़े से साथी उसकी आज्ञा पर जान देने के लिये तुले थे। वह नहीं जानता था कि राजा चेतसिंह का क्या राजनैतिक अपराध है ? उसने कुछ सोच कर अपने थोड़े-से साथियों को फाटक पर गड़बड़ मचाने के लिये भेज दिया। इधर अपनी डोंगी लेकर शिवाले की खिड़की के नीचे धारा काटता हुआ पहुँचा। किसी तरह निकले हुए पत्थर में रस्सी अटका कर उस चंचल डोंगी को उसने स्थिर किया और वह बन्दर की तरह उछल कर खिड़की के भीतर हो रहा। उस समय वहाँ राजमाता पन्ना और युवक राजा चेतसिंह से बाबू मनियारसिंह कह रहे थे—आप के यहाँ रहने से, हम लोग क्या करें यह समझ में नहीं आता। पूजा-पाठ समाप्त करके आप रामनगर चली गई होतीं, तो यह...

तेजस्विनी पन्ना ने कहा—अब मैं रामनगर कैसे चली जाऊँ ?

मनियारसिंह दुखी होकर बोले—कैसे बताऊँ ? मेरे सिपाही तो बन्दी हैं।

इतने में फाटक पर कोलाहल मचा। राज-परिवार अपनी मंत्रणा में डूबा था कि नन्हकूसिंह का आना उन्हें मालूम हुआ। सामने का द्वार बन्द था। नन्हकूसिंह ने एक बार गंगा की धारा को देखा। उसमें एक नाव घाट पर लगने के लिये लहरों से लड़ रही थी। वह प्रसन्न हो उठा। इसी की प्रतीक्षा में वह रुका था। उसने जैसे सबको सचेत करते हुए कहा—महारानी कहाँ हैं ?

सबने घूम कर देखा। एक अपरिचित वीर मूर्ति ! शस्त्रों से लदा हुआ पूरा देव !

चेतसिंह ने पूछा—तुम कौन हो ?

'राज-परिवार का एक बिना दाम का सेवक ?'

पन्ना के मुँह से हलकी सी एक साँस निकल कर रह गई। उसने पहचान लिया। इतने बरसों के बाद ! वही नन्हकूसिंह !

मनियारसिंह ने पूछा—तुम क्या कर सकते हो ?

'मैं मर सकता हूँ ! पहले महारानी को डोंगी पर बिठाइये। नीचे दूसरी डोंगी पर अच्छे मल्लाह हैं। फिर बात कीजिए।'—मनियारसिंह ने देखा कि जनानी ड्योढ़ी का दारोगा राज की एक डोंगी पर चार मल्लाह लिए खिड़की से नाव सटाकर प्रतीक्षा में है। उन्होंने पन्ना से कहा—चलिये, मैं साथ चलता हूँ।

'और······'—चेतसिंह को देखकर, पुत्र-वत्सला ने जो संकेत से एक प्रश्न किया, उसका उत्तर किसी के पास न था। मनियारसिंह ने कहा—तब मैं यहीं रहूँगा ? नन्हकू ने हँसकर कहा—मेरे मालिक ! आप नाव पर बैठें। जब तक राजा भी नाव पर न बैठ जाँयगे, तब तक सत्रह गोली खाकर भी नन्हकूसिंह जीवित रहने की प्रतिज्ञा करता है।

पन्ना ने नन्हकू को देखा। एक क्षण के लिये चारों आँखें मिलीं। जिनमें जन्म-जन्म का विश्वास ज्योति की तरह जल रहा था। फाटक बल-पूर्वक खोला जा रहा था। नन्हकू ने उन्मत्त होकर कहा—मालिक ! जल्दी कीजिये।

दूसरे क्षण पन्ना डोंगी पर थी और नन्हकूसिंह फाटक पर। इस्टाकर के साथ चेतराम ने आकर एक चिट्ठी मनियारसिंह के हाथ में दी। लेफ्टिनेन्ट ने कहा—आप के आदमी गड़बड़ मचा रहे हैं। अब मैं अपने सिपाहियों को गोली चलाने से नहीं रोक सकता !

'मेरे सिपाही यहाँ कहाँ हैं साहब ?'—मनियारसिंह ने हँसकर कहा। बाहर कोलाहल बढ़ने लगा था।

चेतराम ने कहा—पहले चेतसिंह को कैद कीजिये।

'कौन ऐसी हिमत करता है।'—कड़क कर कहते हुए बाबू मनियारसिंह ने तलवार खींच ली। अभी बात पूरी न हो सकी थी कि कुबरा मौलवी वहाँ पहुँचा ! यहाँ

(शेषांश २१५ वें पृष्ठ के नीचे)

काशी की एक-मात्र बीमा कम्पनी

लेखक—श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

भारत में इस समय लगभग ११० भारतीय बीमा कम्पनियाँ काम कर रही हैं, फिर भी 'किस्तों' के रूप में करोड़ों रूपया प्रति वर्ष विदेशी कम्पनियों के लिये भेजा जा रहा है। किन्तु, बड़े सन्तोप का विपय है कि भारतीयों ने इस विषय में अपना कर्तव्य समझना प्रारम्भ कर दिया है और दिन-ब-दिन नई कम्पनियाँ खुलती जा रही हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि भारत में आवश्यकता से अधिक बीमा-कम्पनियाँ हो गई हैं; पर यह विचार भ्रम-पूर्ण है।

सच बात तो यह है कि भारत में जीवन-बीमा का कार्य बहुत ही पिछड़ा हुआ है। उन्नत देशों में बीमा का काम कितना बढ़ा हुआ है तथा भारत कितना पीछे है, यह नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

आबादी के फ़ी व्यक्ति पीछे औसतन बीमा

देश	फ़ी व्यक्ति पीछे	बीमा
अमेरिका	२,०७६)	रुपया
कनाडा	१,३००)	,,
ग्रेट बृटेन	९७०)	,,
न्यूज़ीलैण्ड	९००)	,,
आष्ट्रिया	६८०)	,,
नॉरवे	४५०)	,,
स्वेडन	४२०)	,,
नीदरलैण्डस	४१८)	,,
डेन्मार्क	३२९)	,,
भारत	५)	,,

जीवन-बीमा मनुष्य के लिये नितान्त आवश्यक है, यह बात निर्विवाद है। राइट ऑन० श्रीयुत वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री का कथन है कि निस्सन्तान आदमी प्रायः कहा करता है कि उसको किसके लिये प्रबन्ध करना है तथा भारत में विधवा को खाने भर के लिए काफी मिल जाता है; अतएव वह जीवन-बीमा क्यों करावें। इस प्रकार के हरेक आदमी से मैं पूछता हूँ कि—'क्या तुम्हारा कोई दरिद्र सम्बन्धी नहीं है! क्या कोई विश्वास-पात्र नौकर नहीं है? क्या कोई अस्पताल नहीं है, अनाथ-सदन नहीं है, स्कूल नहीं है' आश्रम नहीं है?'

काशी का प्रयत्न

जब जीवन-बीमा समाज के लिये, इतनी आवश्यक वस्तु है, तो यह कहना अनुचित है कि इस दिशा में प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। यदि भारत को स्वावलम्बी तथा सम्पन्न बनना है, तो उसके लिये यह अनिवार्य है कि कम-से-कम, हरेक व्यक्ति का ३००) का बीमा हो जाय। इसी पवित्र उद्देश्य से काम करने का संकल्प लेकर, 'दि न्यू इंश्योरंस लिमिटेड' ने बीमा-क्षेत्र में कदम रखा है। इस कम्पनी से प्रान्त को, देश को, भारतीयों को कितना लाभ होगा, वह तो समझने की बात है: पर काशी के नगर की शोभा, उसके व्यवसाय-जगत् को गौरव प्रदान करने का पूरा अवसर देने के कारण काशी-वासियों के लिये यह कम्पनी गर्व की वस्तु है। यह उनकी है, उनकी सेवा भी करेगी और उनकी सहायता का उसे पूरा हक़ है और इस हक़ का भरोसा होना स्वाभाविक ही है।

कम्पनी की साख

कम्पनी की साख के विषय में तो कुछ लिखना ही व्यर्थ है। जिस कम्पनी के डाइरेक्टरों के अध्यक्ष श्री घनश्याम दास बिड़ला हों, जिसके प्रबन्ध-संचालक तथा एक्स-ऑफिशियो डाइरेक्टर श्रीमान् पं० गोविन्द मालवीय हों, जिसके व्यवस्थापक बीमा-जगत् के अनुभव-प्राप्त व्यक्ति मि० लक्ष्मीनारायण कपिल हों, उसकी साख और उसकी दृढ़ता निर्विवाद है। कम्पनी का स्वीकृत मूलधन १० लाख है; पर केवल ३ लाख रुपये के ही शेयर 'इशू' किये गये हैं। शेयर ख़रीदने के लिये कितना 'रश' हो रहा है, यह पाठकों को बतलाना अनुचित होगा। बीमा-व्यवसाय के लिये बहुत बड़ी पूँजी की ज़रूरत नहीं पड़ती और इस प्रकार की बड़ी-बड़ी संख्याएँ देखकर पाठकों को लुभाना नहीं चाहिए। कम्पनी ने अपने लाभ के धन के

सदुपयोग की भी बड़ी सुन्दर व्यवस्था की है। कम्पनी ने यह निश्चय किया है कि आमदनी का ५० प्रतिशत् 'गिल्ट एज्ड' सिक्यूरिटीज़ में लगाया जायगा; शेष रुपया किस प्रकार व्यय किया जाय, यह पहले 'जेनरल बॉर्ड', फिर डाइरेक्टरों की सभा तथा अन्त में मैनेजिङ्ग एजेण्ट के निर्णय पर निर्भर करेगा और इनमें से किसी की अस्वीकृति होने पर वह किसी विशेष काम में नहीं लगाया जावेगा। इस प्रकार कम्पनी का धन इतना सुरक्षित हो जाता है कि पॉलिसी लेने वालों के लिये अत्यधिक लाभ होने की संभावना है।

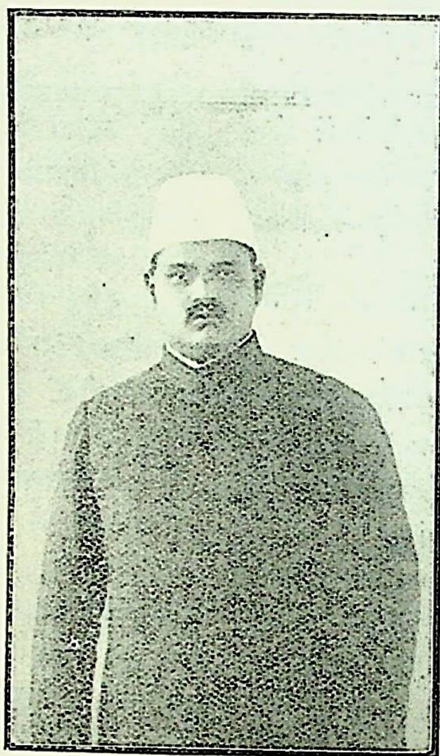
इसके अतिरिक्त, बीमा-क़ानून (१९२२) के कारण हरेक बीमा-कम्पनी को कार्यारम्भ के पहले सरकार में एक निश्चित रक़म जमाकर देनी पड़ती है। इससे कार्य बिल्कुल सुरक्षित हो जाता है तथा कम्पनी की साख तथा सत्ता और भी ठोस हो जाती है। इसलिये इस दिशा में न्यू इंश्योरंस से, हर प्रकार से अत्यधिक आशा की जा सकती है।

कम्पनी की साख पर जनता का भी विश्वास कितनी जल्दी जम गया है, यह कई बातों से स्पष्ट है। कम्पनी ने कम-से-कम समय में, कम-से-कम ख़र्च में कार्यारम्भ किया है और कार्य आरम्भ करने के पहले ही दिन उसके यहाँ १,३८,५००) का काम आया, जिस में से प्रायः सभी पॉलिसियाँ १० हजार से १ हज़ार के भीतर हैं।

काम का ताँता

पहले ही दिन से काम का ताँता बँध गया है। भारत के बड़े-बड़े प्रान्तों के सम्भ्रान्त तथा अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति कम्पनी की एजेन्सी लेने के लिये उत्सुक हैं। यद्यपि सभी नये तथा सच्चे प्रयास के विरोधी और छिद्रान्वेषी होते हैं; कम्पनी की उत्तरोत्तर वृद्धि को किसी प्रकार की बाधा का सामना नहीं करना पड़ रहा है। आज-कल के राजनैतिक युग में, देशभक्तों के लिये स्वतंत्र व्यवसाय की बड़ी आवश्यकता है और इसीलिये बड़े प्रतिष्ठित कांग्रेस-सेवक भी इस व्यवसाय को अपना रहे हैं, इस दृष्टि से भी न्यू इन्श्योरंस की स्थापना बड़े मौके से हुई है।

न्यू इन्श्योरंस को इस समय यदि किसी वस्तु की आवश्यकता है, तो वह है जनता के हार्दिक सहयोग की, सम्भ्रान्त कार्त्त-कर्त्ताओं की, सत्यनिष्ठ तथा लोक-सेवा-भाव से सेवा करने वाले प्रतिष्ठित कार्य-कर्त्ताओं की। काशी के हरेक आत्म-सम्मानी इन्श्योरंस कार्य-कर्त्ता का यह धर्म है कि कम्पनी की सेवाकर अपना यश तथा कम्पनी का यश बढ़ाए और बनारस के गौरव के उद्यान में एक और पुष्प सुरभित होने दे।


श्री गोविन्द मालवीय

सुविधा

केवल लोक-सेवा-भाव से कोई कार्य नहीं होता। हरेक की अपनी आवश्यकता होती है और उसका पूरा ध्यान रखना चाहिए। जहाँ तक मुझे मालूम है, कम्पनी ने इसका पूरा ध्यान रखा है। कमीशन की दर बहुत उदार है। उसमें किसी प्रकार का निरर्थक आकर्षण नहीं रखा गया है। अच्छी और बड़ी कम्पनियों की तुलना में समान होने पर भी साधारण एजेण्ट को काफी कमीशन मिलता है। कम-से-कम ३०००) रुपये का काम देते ही एजेण्ट की नियुक्ति पक्की हो जाती है। 'आर्गनाइज़र' पद के लिये १५ हज़ार का काम देना ज़रूरी है। वैतनिक कार्यकर्त्ता के विषय में कम्पनी की नीति स्पष्ट है। निश्चित गारण्टी देकर उस हिसाब से कमीशन पाना कहीं लाभदायक है, न कि उतनी ही गारण्टी पर 'वेतन' के बहाने कमीशन के लाभ से हाथ धो बैठना। वेतन के नाम पर जो 'संरक्षण' मालूम होता है,

वह बीमा के असली कार्यकर्त्ता के लिए निर्मूल है। कम्पनी की पॉलिसियाँ बन्धन-रहित तथा सार्वभौमिक हैं, किस्तों की अदायगी वार्षिक, छः माही, तिमाही तथा मासिक हो सकती है। हर प्रकार की किस्त पर एक मास का रिआयती दिन दिया जाता है। उम्र निकटतम जन्म दिन से जोड़ी जाती है, अगले जन्म-दिन से नहीं। इससे बीमेदार को बड़ा लाभ होता है, डूबी हुई पॉलिसी बक़ाया किस्त देकर चालू की जा सकती है। बाक़ाया क़िस्त को ६ प्रतिशत सूद जोड़कर देना होगा। बिना बक़ाया क़िस्त दिये भी, डूबी हुई पॉलिसी चालू की जा सकती है। डूबने की अवधि तक मूल पॉलिसी की अधिक बढ़ा दी जायगी। यदि बीमेदार के किस्त के न चुकाने से पॉलिसी डूब जाती है तथा कम्पनी पॉलिसी की नक़द वापसी क़ीमत से उसको चालू रखती है तथा पहली बक़ाया किस्त के सात महीने के भीतर बीमा कराने वाले की मृत्यु हो जाय, तो भी उसके रुपये का दावा कम्पनी पर बना ही रहता है। यह बड़ी सुन्दर सुविधा है तथा इस रिआयत के लिए कम्पनी प्रशंसा की पात्र है। बिना मुनाफे या मुनाफे सहित पॉलिसियों की प्रथम वर्ष की किस्त काटकर, तीन वर्ष के बाद, चुकायी गई किस्तें, बीमे की श्रेणी, शर्तें और बीमेदार की उम्रके अनुसार पॉलिसी का नकद वापसी भुगतान मूल्य होजाता है। इसी प्रकार कुछ तालिकाओं को छोड़कर शेष पॉलिसियों का चुकती बीमा हो सकता है। गृह-निर्माण या जायदाद खरीदने के लिये, पॉलिसी के चार वर्ष-तक चालू रहने के बाद बीमे की मूल रकम का ९० प्रतिशत तक सूद पर मिल सकता है। असामयिक दुर्घटना-द्वारा मृत्यु होने पर, यदि बीमे पर ३) रुपया अधिक किस्त दी जा रही है, तो बीमे की मूल रकम का दुगना मिलता है। पॉलिसी चालू रहनेके १३महीने बाद आत्महत्या करने पर भी दावे का भुगतान होजाता है। स्थायी अशक्यता तथा असमर्थता में बीमे की किस्त देना बंद हो जाता है और बीमे की मूल रकम को १० किस्तों में, १० वर्षों में बीमेदार को दिया जाता है। औसत के नीचे का तथा स्त्रियों का भी जीवन-बीमा होता है।

इस प्रकार बहुत-सी सुविधाएँ हैं। हर कम्पनीकी किस्त उसकी सुविधा पर निर्भर करती है; इसलिये किस्तों की तालिका मिलाकर कम्पनी की अच्छाई-बुराई की परख कम किस्तो से करना अनुचित है। पर, इस दिशा में न्यू इन्श्योरंस की किस्तें विदेशी कम्पनियों के समान न अत्यधिक हैं और न द्वितीय श्रेणी की कम्पनियों के समान कम। वे सुदृढ़, ठोस, उत्तम और सबके देने लायक हैं। निबटारे की रीति आदि के लिये भी बड़े उदार नियम हैं।

अस्तु, इस कम्पनी के विषय में विशेष लिखना अनुचित होगा। काशी के नागरिकों के लिये ही नहीं, इस प्रान्त के लिये भी, इस देश के लिये भी, यह कम्पनी गौरव की वस्तु है और काशी के हरेक प्रतिष्ठित नागरिक को इसमें जान-बीमा कराना चाहिए।

(१२ वें पृष्ठ का शेषांश)

मौलवी साहब की कलम नहीं चल सकती थी—और न ये बाहर ही जा सकते थे। उन्हों ने कहा—देखते क्या हो चेतराम!

चेतराम ने राजा के ऊपर हाथ रखा ही था कि नन्हकू के सधे हुए हाथ ने उसकी भुजा उड़ा दी। इस्टाकर आगे बढ़े, मौलवी साहब चिल्लाने लगे। नन्हकूसिंह ने देखते-देखते इस्टाकर और उसके कई साथियों को धराशायी किया। फिर मौलवी साहब कैसे बचते!

नन्हकूसिंह ने कहा—क्यों, उस दिन के झापड़ ने तुमको समझाया नहीं? ले पाजी!—कहकर ऐसा साफ जनेवा मारा कि कुबरा ढेर हो गया। कुछ ही क्षणों में यह भीषण घटना हो गई, जिसके लिये अभी कोई प्रस्तुत न था।

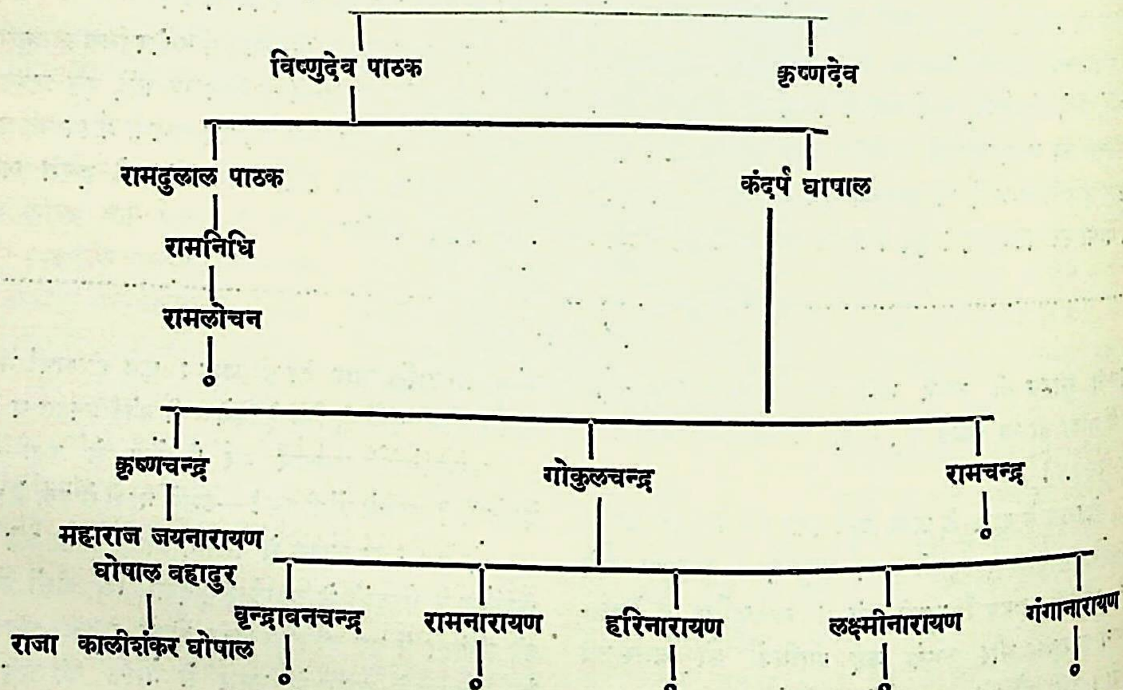
नन्हकूसिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा—क्या देखते हैं? उतरिये डोंगी पर!—उसके घावों से रक्त के फुहारे छूट रहे थे। उधर फ़ाटक से तिलंगे भीतर आने लगे थे। चेतसिंह ने खिड़की से उतरते हुए देखा कि बीसों तिलंगों की संगीनों में वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा है। नन्हकू के चट्टान-से शरीर से गैरिक की तरह रक्त धारा बह रही है। गुण्डे का एक-एक अंग कटकर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुण्डा था।

महाराज जयनारायण घोषाल

लेखक—श्रीयुत ब्रजजीवनदास

इस कर्मभूमि में कर्म के अधीन रह कर कर्म करने ही के लिये प्राणियों की उत्पत्ति होती आई है। सभी अपनी जीवन-यात्रा में कर्मों का पदाङ्क स्थापन करता जाता है; किन्तु कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो अपना एक आदर्श छोड़ जाते हैं। पश्चाद्वर्ती उस आदर्श को लक्ष्य में रखकर बढ़ते-बढ़ते भलेही आगे हो जाँय; किन्तु उसका महत्व तत्वदर्शियों की दृष्टि में ज्यों-का-त्यों बना रहता है। मैं इस लेख के चरित्र-नायक को उसी कोटि के कर्मकारों में समझता हूँ।

इनके चरित्र का इति वृत उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी स्वनामधन्य राजा कालीशंकर घोषाल ने एक ताम्रपत्र पर, जो दो हाथ १७ अँगुल लम्बा और एक हाथ १३ अँगुल चौड़ा है, अँग्रेजी और फ़ारसी भाषा में खुदवाया था, जिस से विशेष बातों का पता चला और थोड़ा संकेत इनके सम-कालीन भारत के बड़े लाट मारक्विस ऑव हेस्टिंग्ज़ के प्राइ-वेट जर्नल * से भी मिला। जिस समय उक्त बड़े लाट ने नौका-द्वारा कलकत्ता से उत्तरी भारत के आगरा, फतेहपुर-सीकरी आदि स्थानों की यात्रा की थी, वे काशी में सन् १८१४ ई० की २६वीं आगस्त से ९ वीं सितम्बर तक रहे थे और उन्होंने यहाँ का विवरण बड़ी दिलचस्पी से लिखा है। उसमें इनको इस पाठशाला का प्रबन्ध बड़े विनय-पूर्वक समर्पण किया गया था, जिससे यह संस्था भंग न हो जाय। राजा साहब की वंशावली का जहाँ तक पता लगा है, उसका आवश्यक अंश नीचे दिया है—



* I rode again this morning. With sense of benefit, fearful af not being able to bear the heat of the church, we had divine service performed at Mr, Salmon's. A remarkable proposal was this day made to me. Jai Narain Ghoshal, a rich native inhabitant

जिस स्थान पर इस समय फोर्ट विलियम की दुर्गश्रेणी विद्यमान है, पहले वहाँ गोविंदपुर नाम का एक गाँव था। उस गाँव में हिन्दू ही रहते थे। वहाँ कन्दर्प घोषाल नाम के एक धनी ब्राह्मण रहते थे। उनके बड़े लड़के का नाम कृष्णचन्द्र था। बंगला सन् ११५९ के आश्विन में (१७५१ ईसवी सितम्बर महीने में) उनको एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जयनारायण रखा गया। कुछ दिनों पीछे जब फोर्ट विलियम के लिये जमीन ली जाने लगी, तब औरों की तरह कन्दर्प घोषाल को भी वह स्थान छोड़ना पड़ा। गोविन्दपुर को छोड़ने पर कुछ दिनों वेहालागडो में रहकर अन्तमें कंदर्प घोपाल ने सन् १७५३ ई० खिदिरपुर में अपना स्थायी निवास-भवन बनवाया। बालक जयनारायण ने १६ वर्ष की अवस्था में हिन्दी, फारसी, बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी बहुत कुछ सीख लीं। सन् १७६४ में (अर्थात् १३ वर्ष की अवस्था में ?) जयनारायण तत्कालीन सूबा बंगाल के नवाब मुबारक उद्दौला के अधीन कर्मचारी नियुक्त हुए, वहाँ तीन वर्ष रहकर वे घर लौट आये। फिर कलकत्ते के पुलिस सुपरिण्टेन्डेन्ट मिस्टर जॉन शेक्सपियर को अपनी योग्यता और क्षमता का परिचय दे, वे उनके यहाँ काम करने लगे। जब शेक्सपियर जैसोर की मालगुजारी के सम्बन्ध के झगड़े तय करने गए, तब इनको भी साथ लेते गए। जिस समय बंगदेश में प्रादेशिक कानून सभाएँ स्थापित हुईं, तब शेक्सपियर साहब भ ढाका के सभापति चुने गए। सन् १७७८ तक जयनारायण ने साहब के साथ रहकर उनकी बड़ी सहायता की, जिससे सरकार बड़ी प्रसन्न रही। इनके परामर्श से बहुत अच्छे-अच्छे नियम बने। उसी वर्ष श्रावण के महीने में अस्वस्थ होकर ये घर लौट आये। अंग्रेज इनकी कार्य-दक्षता से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने प्रयत्न कर तात्कालिक दिल्लीश्वर मुहम्मद-जहाँदार शाह से एक सनद महाराजा बहादुर की पदवी की, और साथही तीन हजारी मंसबदारी की उच्चतम पदवी भी उनको दिलादी। इस सनद की सही सन् १७८० में शाहज़ादा मिर्ज़ा जवांबख्त ने की थी। उन दिनों विष्णुपुर के राजा दामोदरसिंह के साथ जमींदारी के बन्दोबस्त में भी इन्होंने बड़ी सहायता की थी। सन् १७८५ में २४ परगने के कलक्टर मिस्टर केमेक ने जिस समय सब जिलों पर कर लगाकर सरकार की आय-वृद्धि की थी, उस समय भी महाराज जयनारायण घोपाल ने बड़ी सहायता पहुँचाई थी। सन् १७९५ में टॉमस पेटेल साहब जब मुर्शिदाबाद के नवाब बावरजंग-बहादुर के साथ बन्दोबस्त का काम कर रहे थे, उस समय भी आपने मध्यस्थ होकर बहुत से मामले निबटाये थे। इन सब कार्यों को इन्होंने वेतन या पुरस्कार के लिये नहीं, केवल अपने नाम के लिये ही किया था। अपने पुरुषार्थ से व्यापार द्वारा इन्होंने अच्छा लाभ उठाया। धीरे-धीरे खिदिरपुर के आस-पास इन्होंने बहुत-सी जमींदारी खरीद ली। अपने धन का सदुपयोग भी इन्होंने खूब किया। दान धर्म में ये बराबर धन लगाते रहे। इन्होंने कई देवालय निर्माण कराए और उनके व्यय-निर्वाहार्थ भूमि भी दान की। उनके कुछ दानों का उल्लेख आवश्यक है।

of Benares, has begun a considerable building on a lot ground belonging to him in the suburbs. He desires to make over to trustees, to be appointed by Government, this ground, with the building which he will complete on it, as the establishement of a school for instructing native children in the English language. He proposes to make over at the same time landed property, producing 1,200 rupees annually, and company's paper yielding interest to the same amount for the salaries of English master and his assistants. All that is required by him in return is a pledge, on the part of Government, tnat the funds shall not be diverted to any other purpose. I have put this into formal train. The disposition to learn English is strong among the natives. Dr. Hare informs me that, before our departure from Calcutta, having found a proper instructor, he had fixed a day school for teaching English to children in the neighbourhood of Pulta powder-works ; and that three young Brahmins had immediately enrolled themselves among the students.

सन् १७७९ ई० में इन्होंने कालीघाट की कालीजी की मूर्त्ति के चारों हाथ चाँदी के बनवा दिये। खिदिरपुर के पास की नीची भूमि को पटवाकर वहाँ इन्होंने एक विशाल प्रासाद निर्माण कराया, जिसमें एक-से-एक उत्तम देवमूर्त्तियाँ बनवा कर स्थापित कराईं। इस प्रासाद के बीच 'शिवगंगा' नाम का एक तालाब भी खुदवाया। सन् १७९२ में महाराज ने 'करुणानिधान' नाम की श्रीराधाकृष्ण की मूर्त्ति स्थापित कराई। सन् १८१६ में शिक्षा का अभाव दूर करने के लिये काशी में एक विद्यालय स्थापित किया। जब उस में पढ़नेवालों की संख्या दो सौ के लगभग हुई, तब उनके निर्वाहार्थ इन्होंने कुछ वृत्तियाँ भी बाँध दीं। दुर्गाकुंड के पास एक बड़ा बगीचा बनवाया, जिसमें एक भवन के भीतर धातु की गुरु-प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई। यह स्थान अब तक गुरुधाम कहलाता है। एक गुरुकुण्ड नाम की पुष्करिणी भी इन्हीं की कीर्ति है।

काशीवास करते हुए इन्होंने जिन ग्रंथों के निर्माण करने में कालातिपात किया, उन ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देना अनावश्यक न होगा।—

(१) 'शंकरी संगीत' (संस्कृत श्लोकों में एकान्त-कानन-विहारिणी भगवती का लीला-वर्णन।)

(२) 'ब्राह्मणार्चन चंद्रिका' (ब्राह्मणों की अनेक मत से पूजा प्रतिपत्ति)।

(३) 'जयनारायण कल्पद्रुम' (संस्कृत श्लोकों में श्रीकृष्णलीला)।

(४) 'काशीखंड का अनुवाद' (व्रजभाषा, बंगभाषा मिश्रित अनुवाद)।

(५) 'करुणानिधान विलास' (श्रीकृष्णलीला-बंग भाषा में)।

महाराजा जयनारायण घोषाल बहादुर ने अपनी मृत्यु के सात दिन पूर्व अपने समस्त आत्मीयों को घर बुलाकर सब से विदा ली और अन्त में संवत् १८७४ कार्तिक शुक्ल ९ को दोपहर के समय, एक पुत्र और अनेक पौत्रादि छोड़, ६९ वर्ष की अवस्था में इह लोक से प्रस्थान किया।



स्वर्गीय महाराज जयनारायण घोषाल

काशी का शिल्प और व्यापार

लेखक—श्रीयुत नरसिंहदास

वैसे तो इस समय काशी में अनेक प्रकार के शिल्प और व्यापार नज़र आ रहे हैं; पर यहाँ का बहुत प्राचीन शिल्प बनारसी माल और पीतल के बरतनों का ही है। हम यहाँ सभी प्रकार के शिल्प और व्यवसायों का संक्षेप में वर्णन करेंगे।

बनारसी माल—यह यहाँ का बहुत ही पुराना शिल्प है। मुग़लों के समय तक का उल्लेख मिलता है कि यहाँ के किमखाब वगैरह से शाही महल सजाया जाता था। उसके पहले हिन्दू राजा लोग यहाँ के ज़री के कपड़ों का प्रयोग करते थे और देश-देशान्तरों में भी यह कपड़ा यहाँ से जाता था। पहले इसके बनाने वाले पटुआ लोग थे, जिनको पाटी-कस भी कहते हैं। अब भी इस जाति के कुछ घर बचे हैं और बुनाई का काम करते हैं। मुसलमानी राज के समय से मुसलमान लोग इस व्यवसाय में ज्यादा लग गए। इस समय उनकी संख्या हिन्दू कारीगरों से कुछ अधिक है। यहाँ रेशम ज्यादा बुना जाता है। सूती साफे, दुपट्टे वगैरह भी बनते हैं; मगर सूती माल, रेशम की अपेक्षा बहुत ही कम तैयार होता है।

यहाँ के माल का दूर-दूर तक चालान होता है। हिन्दोस्तान में तो कोई बड़ा शहर ऐसा न होगा, जिसमें यहाँ का माल न बिकता हो। १० वर्ष पहले तो अमेरिका, इंग्लेन्ड, जर्मनी, फ्रांस, मिश्र और रूस वगैरह सभी देशों में यहाँ का माल जाता था; मगर इधर अन्य राष्ट्रों ने बनारसी माल पर कर बहुत बढ़ा दिया, इससे जाना बंद-सा हो गया। यहाँ तक कि इंग्लेन्ड ने भी, जो पहले इस पर कर नहीं लगाता था, सन् १९२७ से ३०) सैकड़े कर लगा दिया और इधर कुछ और बढ़ा दिया है। सीलोन में पहिले १०) सैकड़े कर था; इधर २०) सैकड़े हो गया है। बरमा में अभी कर नहीं है। यदि वह हिन्दोस्तान से पृथक् कर दिया गया, तो उसी वक्त कर लग जायगा। हिन्दोस्तान की सभी रियासतों में बनारसी माल जाता है। कुछ रियासतों में कर होने पर भी अधिक तादाद में माल जाता है। इस माल के चलने का मुख्य कारण यह है कि यहाँ झूठे कलाबत्तू का माल बुना ही नहीं जाता। सच्ची ज़री का माल होने से सभी लोग ब्याह-शादी के समय या अन्य शुभ अवसरों पर बनारसी कपड़ों का व्यवहार करते हैं और जब बहुत पुराना हो जाता है, तब भी उस को जला कर कुछ दाम, चाँदी-सोना बेच कर, वसूल कर लेते हैं। यह अनुमान करना बहुत कठिन है कि शहर-भर में कितने आदमी इस व्यवसाय से जीवन व्यतीत करते हैं; मगर अनुमान से काशी-भर में करघों की संख्या ३०,००० होगी। करीब ७५,००० आदमी बुनाई करते होंगे।

कलाबत्तू—बनारसी कपड़े के व्यवसाय का एक मुख्य अङ्ग कलाबत्तू है। ज्यादातर बनारसी कपड़ा जरी का बनता है। सादा रेशम का कपड़ा भी बनता है; परन्तु उसकी तादाद बहुत कम है। ज़री के कपड़े में रूपा व सोना दोनों प्रकार का कलाबत्तू लगता है। असली चाँदी के, चपटे किये हुए पतले तार को रेशम या सूत पर बटने से कलाबत्तू तैयार होता है। जब इस पर सोना चढ़ा दिया जाता है, तब यह सोना-कलाबत्तू कहलाता है। जब सच्ची चाँदी के कलाबत्तू को हलदी के धूएँ से ज़रद कर दिया जाता है, तब वह रासी-कलाबत्तू कहलाता है। घटिया चीजों में यही रासी-कलाबत्तू सोना की जगह इस्तेमाल होता है और यह भी काला कभी नहीं पड़ता; क्योंकि यह भी सच्ची चाँदी का तार होता है। जब से सोना-कलाबत्तू बैटरी से तैयार होने लगा है, तब से कलाबत्तू का प्रयोग बहुत कम हो गया और होता जा रहा है। १०-१२ वर्ष पहले यहाँ देशी सोना-कलाबत्तू पावटे से तैयार होता था। पावटा तार खीचने का यंत्र है। चाँदी के छड़ पर सोने का पत्र लगाकर यंत्र से खींचने पर सोना-तार बन जाता था, उसी से कलाबत्तू तैयार होता था। करीब ३०-३५ वर्ष हुए कि फ्रांस वाले, बैटरी से सोना चढ़ा हुआ कलाबत्तू यहाँ भेजने लगे। वह पावटे के कलाबत्तू से सस्ता पड़ा, इससे बहुत चलने लगा। देशी कलाबत्तू की खपत कम होने लगी। सन् १९२१ में फ्रांस का कलाबत्तू सिर्फ बनारस में, साल भर में लगभग लाख का आया होगा। सरकार ने इसपर कर बढ़ा दिया और यहाँ के उद्योगी लोगों ने बेटरी से सोना

चढ़ाना सीख लिया, इसका परिणाम यह हुआ कि अब बनारस में फ्रांस का कलाबत्तू आना एकदम बन्द हो गया और देशी चलने लगा।

इस कलाबत्तू के काम से हज़ारों आदमी अपना निर्वाह करते है। यहाँ का बना कलाबत्तू बाहर भी जाता है, यद्यपि उसकी तादाद बहुत कम है। अनुमानतः ६००० तोला कलाबत्तू यहाँ प्रति दिन तैयार होता है

काशी-सिल्क—बनारसी कपड़े से सम्बन्ध रखने वाला रेशमी सादा कपड़ा, जो कोट, कमीज तथा चादर के काम में आता है, वह काशी-सिल्क के नाम से मशहूर है। इसका व्यवसाय यहाँ बहुत बड़ा है।

काशी-सिल्क का धागा मशीन से बटा जाता है। रेशम के खूज को लोहे की कंघी से सुलझा कर मशीन से रूई की तरह कातते हैं, तब काशी-सिल्क का धागा तैयार होता है। इसको अंग्रेजी में Spun Silk कहते हैं। धागा मजबूत होने से बुनने में बहुत आसानी होती है। यहाँ इसकी बुनाई लगभग ४० वर्षों से आरंभ हुई है। यहाँ यह प्रायः देहातों में बुना जाता है। बनारस के आस-पास के सभी गाँवों में, जहाँ जुलाहे हैं, काशी-सिल्क तैयार होता है। पहले यह सादी ढरकी से बुना जाता था, अब यह फ्लाई शटल (Fly Shettle) से बुना जाता है। इधर ५-६ वर्ष से इसका रोजगार यहाँ कम होगया है। इसका मुख्य कारण यह है कि अब यह कपड़ा भागलपुर, सहारनपुर, शाहजहाँपुर, मऊ, टाँडा वगैरह बहुत से शहरों में बुना जाने लगा है। दूसरा कारण यह हुआ कि काश्मीर में काशी-सिल्क का जाना बिल्कुल बन्द होगया। वहाँ की सरकार ने इस पर कर-वृद्धि करके अपने यहाँ कपड़ा बनवाने का प्रबन्ध कर लिया है, फिर भी यहाँ से सालमें १०-१२ लाख का काशी-सिल्क बाहर जाता है।

पीतल के बर्त्तन—यहाँ का यह व्यवसाय बहुत पुराना है। यहाँ का नक्काशी का काम जगत-विख्यात है। नक्काशी की हुई एक थाली ५००) तक की मिल सकती है, जो छः महीने में तैयार होती है। यहाँ सादा बरतन हर प्रान्त के लोगों के पसंद का बनता; है जैसे—बंगालियों के पसन्द का, मद्रासियों के ढङ्ग का और दक्षिणी तथा गुजराती प्रकार का। पहले अंग्रेजों के पसन्द के बरतनों की निकासी बहुत ज्यादा थी। बड़े-बड़े टेबुल टाप, किश्ती, झाड़, वगैरह बहुत बड़ी संख्या में विदेश जाते थे; मगर पाश्चात्य देशों में कर-वृद्धि हो जाने से विदेश जाना कम हो गया। पीतल पर उभाड़ का काम (Embossing भी यहाँ का अच्छा होता है, ढलवाँ लोटे वग़ैरह खोजवाँ के तरफ बहुत तैयार होते हैं। पीतल के काम करने वाले कसेरों की संख्या लगभग हज़ार पन्द्रह सौ होगी। यहाँ के प्रसिद्ध महाजन स्वर्गीय रायबहादुर बाबू बटुकप्रसाद खत्री के उद्योग से पीतल के काम का एक स्कूल खुल गया है, उसमें मुरादाबाद वगैरह के कारीगर बुला कर रखे गये हैं, जो यहाँ के लड़कों को अच्छी-अच्छी चीज़ें को बनाना सिखाते हैं। आशा है कि लोग जरूर उन्नति करेंगे, जिससे यह व्यवसाय फिर पुरानी उन्नति के शिखर पर पहुँच जायगा।

जर्मन-सिलवर—जर्मन-सिलवर के बरतन यहाँ वैसे ही अच्छे बनते हैं, जैसे कि पीतल के। इनकी भी बिक्री काफी है।

जरदोज़ी—यहाँ जरदोज़ी का काम बहुत अच्छा बनता है। हाथी की झूल, मसनद, जरदोज़ी छाते, कोट और टोपी आदि पर जरदोज़ी का काम होता है। यद्यपि जरदोज़ी का काम आगरा, लखनऊ, देहली में भी बनता है, तथापि यहाँ का काम निराला ही है। बहुत मजबूत व पक्का काम होने से प्रायः सभी रियासतों में बनारस ही की जरदोज़ी की चीज़ें पसन्द की जाती हैं। सन् १९११ के दिल्ली-दरबार के लिए बाबू गोपीनाथजी ने एक जरदोज़ी की मसनद बनाई थी, जिसकी कीमत बीस हज़ार रुपया थी। इधर जरदोज़ी की चीजों का रिवाज कम होता जा रहा है।

सलमा-सितारा—जरदोज़ी से सम्बन्ध रखने वाली चीज़ें—सलमा, सितारा, खारदार, मोतिया, गोखरू वग़ैरह भी यहाँ पर बहुत बड़ी तादाद में तैयार होता था, पाँच-छः सौ कारीगर इसी काम में लगे रहते थे; मगर आज-कल वही बेटरी का रंग चल जाने से यहाँ का काम कम हो रहा है।

मसाला अब सूरत से आने लगा है। यदि लोग बेटरी से रँगना यहाँ शुरू कर दें, तो सूरत से आना बन्द हो जाय।

गोटा-पट्टा, बाकड़ी—यह व्यवसाय भी यहाँ का बड़ा पुराना है। पहले यहाँ से गोटा-पट्टा बहुत बड़ी तादाद में सारे हिन्दोस्तान में और प्रायः राजपूताना-मारवाड़ आदि में जाता था; मगर आज-कल मदरास ने गोटे के काम में बड़ी तरक्की की है; इसलिये इसकी निकासी कम होती जा रही है। थोड़ी-बहुत जो इसकी निकासी है, वह मारवाड़ियों के हाथ में है। बाकड़ी व गोटे का रिवाज भी कम हो रहा है।

कामदानी—कामदानी का कार्य यहाँ अच्छा होता था। कामदानी ज्यादातर मारवाड़ी लोगों में बहुत चलती है। मगर इसका भी रिवाज रोज-ब-रोज कम होता जा रहा है। इसके कारीगर भी १०० से कम न होंगे।

टिकुली—यहाँ टिकुली, टिकली, टीकी या बेंदी का बहुत बड़ा व्यवसाय होता है। साल में लगभग बीसों हज़ार की टिकुली बाहर जाती होगी। देहातियों—खास कर विहार और बुन्देलखंड निवासियों—में इस की बड़ी खपत है।

काठ के खिलौने—काठ के खिलौने यहाँ के बहुत मशहूर हैं। साल में लगभग १० हज़ार का माल बाहर जात होगा। डिबिया, खिलौना वगैरह हर जगह बड़े चाव से विकते हैं। श्रीराजाराम-गनेसदास बाँस के फाटक वाले इसके प्रसिद्ध व्यापारी हैं।

चाँदी का काम—यहाँ चाँदी की कुरसी-हौदे, सिंहासन वगैरह बहुत अच्छे बनते हैं। यहाँ का उभाड़दार काम मशहूर है। प्रायः सभी रियासतों में यहाँ की चीज़ें पाई जायगी। यहाँ पर २-३ सौ कारीगर ऐसे हैं, जो सिर्फ चाँदी ही का काम करते हैं। अभी हाल में, दशहरे के मौके पर, एक महाजन बाबू बलदेवदास ने एक चाँदी का तख्त महाराज दरभंगा के वास्ते तैयार कराया था, जिसकी लागत २५-३० हजार से कम न रही होगी। ऐसी सफाई व नक्काशी शायद ही कहीं देखने में आए। चाँदी के चीज़ों पर सोने का मुलम्मा यहाँ बहुत अच्छा चढ़ता है। चाँदी-सोने का वरक़ भी यहीं तैयार होता है। सैकड़ों कारीगर इस व्यवसाय में लगे हैं।

जवाहिरात—यहाँ जड़ाव का काम बहुत अच्छा होता है। जौहरी लोग सारे हिन्दोस्तान की रियासतों में माल बेचते हैं। बनारस के हीरा काटने वाले सारे भारत में मशहूर थे; मगर जब से विलायती कट का हीरा आने लगा, तब से यहाँ के हीरा-कटों का रोजगार बन्द ही सा हो गया। यहाँ के प्रसिद्ध जौहरी श्रीदामूजी जोशी, बाबू बनारसीदास, माधोरामजी सेठ, बाबू विश्वंभरदासजी इत्यादि हैं।

अल्यूमीनियम फैक्टरी—यहाँ अल्यूमीनियम के बर्तन बनाने की एक फैक्टरी बाबू, पुरुषोत्तमदास सफरीवाले की है। यहाँ मशीन से अल्यूमीनियम के बरतन तैयार होते हैं।

बैलेन्स वर्क्स—यहाँ एक बड़ा करखाना बैलेन्स (तराजू, जो वैज्ञानिक वस्तुओं के तौलने में काम आती है) बनाने का है। यह बैलेन्स बहुत अच्छे और विलायती बैलेन्सों से किसी तरह खराब नहीं हैं।

ज़रदा-सुर्ती—यहाँ की ज़र्दा-सुर्ती बहुत प्रसिद्ध है। सारे भारत में भेजी जाती है। इसके प्रमुख दो व्यापारी हैं—बदलराम-लक्ष्मीनरायन और माठूराम-वेनीराम। सुँघनी में, सुँघनीसाहु की सुँघनी बड़ी मशहूर है। इनका कारखाना सौ वर्षों से भी ऊपर का है और इस के अध्यक्ष काशी के प्रसिद्ध साहित्यिक बाबू जयशंकरप्रसादजी हैं। तमाखू के और भी ३-४ बड़े व्यापारी यहाँ हैं।

कॉटन मिल्स—यहाँ एक बहुत बड़ी कॉटन मिल है, जिसके मैनेजिंग ऐजेन्ट शीतलप्रसाद-खड़गप्रसादजी हैं। इसमें शेयर होल्डरों का कई लाख रुपया लगा है। अभी तक तो यह मिल घाटा देती चली आई है; मगर अब की ता० २६ अक्टूबर से शेयर-होल्डरों ने चार नये डाइरेक्टर अपने चुनाव के भेजे हैं, जिससे आशा है कि अब इस मिल को फ़ायदा होगा। इस मिल का कपड़ा बहुत अच्छा होता है।

पत्थर का काम—यहाँ चुनार के पहाड़ से, जो गंगाजी के किनारे है, पत्थर आता है। यहाँ के शिवाले

मशहूर हैं ; बने हुए शिवाले बहुत दूर-दूर तक जाते हैं। पत्थर की बनी कुंडियाँ, खल-बत्ता वगैरह भी बहुत प्रसिद्ध हैं। पत्थर की मूर्तिकारी भी यहाँ अच्छी होती है। इसके भी कई कारखाने हैं।

लेस का कारखाना—यहाँ मलदहिया पर लेस का एक नया कारखाना खुला है, जहाँ मशीन से बहुत अच्छी लेस तैयार होती है। यह कारखाना बाबूलाल गोविला का है। इसमें एक जर्मन काम करता है। इसका माल दिल्ली, पंजाब, कलकत्ता वगैरह में बहुत बिकता है। यहाँ के फ़ीते जरमनी से अच्छे व सस्ते होते हैं। आशा है, यह कारखाना बहुत जल्दी उन्नति करेगा।

पॉटरी—इस विषय में विश्व-विद्यालय ने बड़ी उन्नति की है। यह विभाग सरदार डोंगरसिंह के अधीन है, जो कि विलायत, जर्मनी वगैरह सब जगह से सीखकर यहाँ आये हैं। यहाँ चीनी-मट्टी के खिलौने व फूलदान बहुत ही सुन्दर तैयार होते हैं। लोहे की चद्दर पर चीनी चढ़ाना भी सिखलाया जाता है।

सिलवर व गिलट के गहने—यहाँ के गिलट व सिलवर के नक़ली गहने बड़ी दूर-दूर तक जाते हैं। सारे बङ्गाल व आसाम में यहाँ के गहने, हाटों में बिकते हैं। यहाँ इसका बहुत बड़ा व्यापार है। इसकी मंडी हड़हा की सराय में है।

मनिहारी चीज़ें—डिबिया, आइना, पीतल की अंगूठी, छल्ले, नक़ली नथिया इत्यादि भी यहाँ से बहुत ज्यादा बाहर जाती हैं। इसका भी केन्द्र हड़हा की सराय है।

फल—बनारस का मशहूर फल, जो बाहर बहुत जाता है, लंगड़ा आम और आँवला है।

बैंक, बीमा-कंपनी व हुंडीवाले—हुंडी का रोज़गार बहुत पुराना है। कई बड़े-बड़े महाजन इस काम को करते हैं। अब भारी लेन-देन ज्यादातर बैंकों के द्वारा होता है। यहाँ इस समय सिर्फ ६ बैंक है—(१) इम्पीरियल बैंक, (२) इलाहाबाद बैंक, (३) बनारस बैंक, (४) ज्वाला बैंक, (५) बिहार बैंक और (६) को-ऑपरेटिव बैंक। इनमें पहला तो सरकारी बैंक है, इलाहाबाद बैंक को अंगरेजी पी० ओ० कंपनी ने ले लिया, बनारस बैंक ही स्थानीय व स्वदेशी बैंकों में प्रधान है। इसकी ४ ब्राञ्च हैं—भागलपुर, मुजफ्फरपुर, आगरा और सहारनपुर। जब से इसमें नये डाइरेक्टर लोग आ गये हैं, तब से बराबर तरक्की कर रहा है।

'न्यू इन्शोरन्स लि०' नाम की बीमा-कम्पनी अभी खुली है, जिसके सेक्रेटरी पं० गोविन्द मालवीय—महामना पं० मदनमोहनजी मालवीय के पुत्र—हैं। आशा है यह कंपनी अच्छी तरक्की करेगी।

ट्रेड एसोसिएशन यहाँ का मुख्य व्यापारी-मंडल है, जिसको प्रारंभ हुए कई वर्ष हुए। पहले इसकी नींव वी० एन० मेहता साहब ने, जो यहाँ के कलेक्टर थे, डाली थी और इसके सेक्रेटरी दीवान गोकुलचन्दजी थे। अब तीन वर्ष से इसका सेक्रेटरी इन पंक्तियों का लेखक है। इसके मेम्बर करीब-करीब हर फिरके के व्यवसायी हैं और संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है।

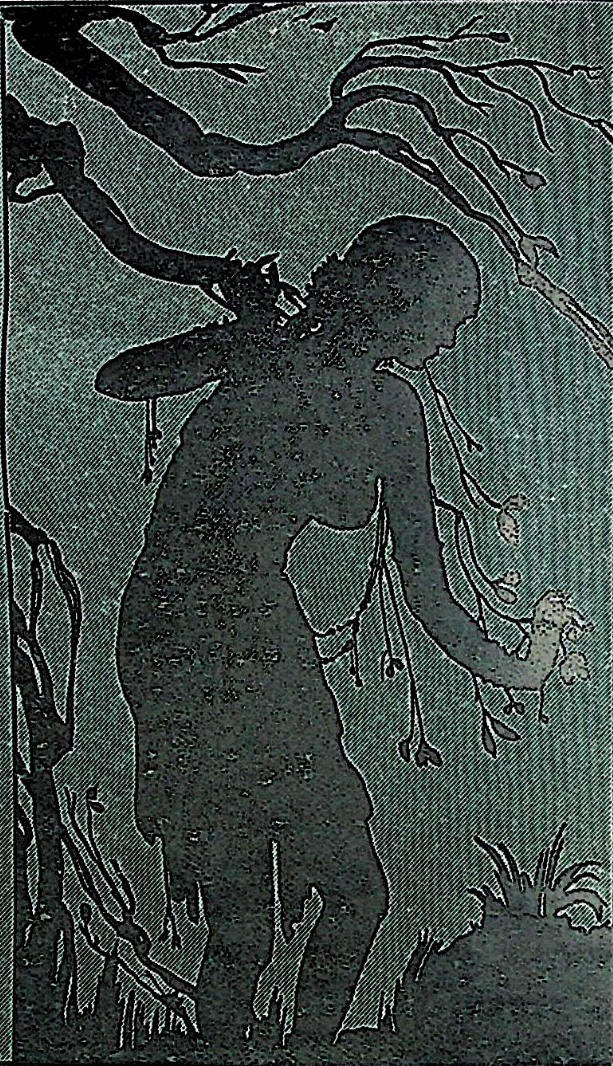
हंस



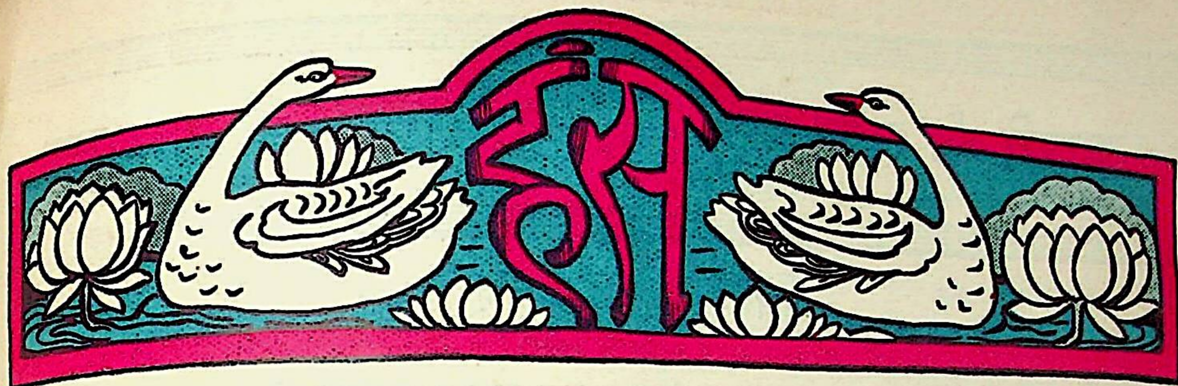


सम्पादक-प्रेमचन्द

लेख - सूची



वनवासिनी शकुन्तला



वर्ष—४ : संख्या—३

दिसम्बर	१९३३
अगहन	१९९०

वार्षिक मूल्य	...	३॥)
एक अंक का	...	।=)

एक बूँद

'मैं हूँ कृपण, कहाँ आई तू,
लेकर जीवन भर की प्यास?
दे सकता हूँ एक बूँद मैं,
जा तू अन्य धनी के पास।'
'बस, बस, एक बूँद ही दे दे!'—
कहा तृषार्त्ता ने खिलकर—
'किसके पास, कहाँ जाऊँ अब,
तुझ-से दानी से मिलकर?
सिकता की कण्टक-शय्या पर,
इसी बूँद की आशा में;
आतप के पञ्चाग्नि-ताप से,
डिगी नहीं हूँ मैं तिल-भर।
मेरे पुलक, स्वाति के घन हे!
पूरा कर मेरा अभिलाप।
अधिक नहीं, बस, इस सीपी को,
एक बूँद की ही है प्यास!'

सियारामशरण गुप्त

काशी के तीन रूप—कारण, सूक्ष्म, और स्थूल

लेखक—श्री डॉ० भगवान्दासजी

(गतांक से आगे)

मनु के उक्त श्लोकों की चर्चा आज-काल की पंडित-मंडली में नहीं सुन पड़ती, दूसरे श्लोकों का हवाला बहुत दिया जाता है, जिन में ब्राह्मण अदंडनीय बताया जाता है। देव ही जानता है कि वे श्लोक क्षेपक हैं या मौलिक।

पर स्थूल लोक में चाहे जो कुछ हो, सूक्ष्म लोक में सदा वही मर्यादा बनी है, कि ज्ञानी जैसा पुण्य-पाप कर्म करे, वैसा अधिक सुफल या दुःष्फल होता है; क्योंकि यमराज तो अंतरात्मा है, वह अपने को धोखा दे ही नहीं सकता।

शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्

वह अपने 'प्रेत शरीर', सूक्ष्म भूतों से बने शरीर, को स्वयं आज्ञा देता है कि 'जो-जो तूने पाप करके क़रज़ा खाया है, वह अब दुख भोग करके चुका।' यह व्यवस्था काशी में पाप की है, और 'दीये के नीचे अन्धेरा' के न्याय से काशी में, जैसे अन्य तीर्थ स्थानों में, पाप बहुत होता है। 'यद् देवा अकुर्वंस्तद् दैत्या अभिद्रुत्य पाप्मना अविध्यन्।' 'जो काम देवताओं ने भलाई के लिये किया, उसमें दैत्यों ने दौड़कर बुराई पैठाल दी।' वाम मार्गियों के केन्द्र भी यहाँ सुनने में आते हैं।

(साम्प्रत लेखक का एक अनुभव इस उपनिषद्वाक्य की व्याख्या के रूप में लिख देना उचित जान पड़ता है। श्री एनी बिसेंट और उनके सहायकों ने हिन्दू धर्म के जीर्णोद्धार के लिये, भारत-माता का धूल में लोटता हुआ सिर उठाने के लिये, सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज की नींव डाली। बोर्डिंग हाउस में वृद्ध पितामह तुल्य पंडित छेदालालजी की अध्यक्षता में सौ सवा-सौ छात्र रहने लगे। थोड़े ही दिनों के भीतर मालूम हुआ कि पड़ोस में एक मनुष्य-पिशाच ने शराब की दूकान और उसके साथ छिपी हुई वेश्याशाला की भी स्थापना की है और छात्रों का प्रलोभन उस ओर किया जा रहा है। इन नर-पिशाचों को यही फ़िक्र होती है कि हमें कुछ रुपये मिल जायँ, बीसियों लड़कों का चरित्र भ्रष्ट हो जाय, उनका सारा जीवन और कुटुम्ब बरबाद हो जाय तो हो जाय। बनते देर लगती है, बिगड़ते देर नहीं। कठिनता से, उस समय के ज़िला मैजिस्ट्रेट की सज्जनता और सहायता से, इस पिशाच-शाला का उद्वासन किया गया। पर, एक जगह से एक पिशाच के उद्वासन से क्या होता है। सारे देश की हवा, जिह्वा और उपस्थ के उपासना की, पहले से भी अधिक, पाश्चात्य सभ्यता के साथ भारतवर्ष के भाग्य का गँठजोड़ा हो जाने के कारण, हो रही है। इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः। पहले 'धर्माधिकारियों' ने बिगाड़ा, अब 'अधर्माधिकारी' और भी बिगाड़ रहे हैं। अंग्रेजी कहावत है कि मछली कढ़ाई में से उछली और आग में जा गिरी। सो दशा भारतवर्ष की देख पड़ती है।)

प्रसिद्ध उत्तम अपूर्ण काव्य, 'बुद्धचरित', के रचयिता अश्वघोष ने, आज से प्रायः २००० वर्ष पहले, अपनी दूसरी कृति 'सौन्दरनन्द' काव्य में काशी की वेश्याओं की चर्चा की है। उसी समय के आस-पास के बने भर्तृहरि के शतकों में भी काशी के विहारोद्यानों की चर्चा है। आज से आठ-नौ सौ वर्ष पहले के 'कुट्टनीमतम्' नाम के काव्य में इसका वर्णन है कि काश्मीर देश की वेश्याओं ने अपने शिष्य को काशी भेजा कि काशी की वेश्याओं से वेश्याधिकारिक शास्त्र सीख आवें। यहाँ आज-काल भी वेश्याओं के महल्ले बसे हैं, और सुनने में आता है, जो कि और भी भयंकर चरित्र भ्रष्ट करने वाली बात है, कि इन प्रकट वेश्याओं के सिवाय, प्रच्छन्न वेश्याओं का वास भले आदमियों के महल्लों में भी बढ़ता जाता है। यह सब यहाँ के इतिहास का भी द्योतक है और इस बात का भी कि किस प्रकार तीर्थतम नगरी में पापिष्ठतम कर्म भी होता है।

जातकमाला में, जो बुद्धदेव के कुछ शताब्दियों के पीछे संग्रह की गई, काशी के व्यवसायों का वर्णन है। जान पड़ता है कि उस समय किसी महल्ले में हाथी दाँत का काम अधिक होता था। अब तो प्रायः बिलकुल नहीं है। उस समय में पास के विंध्य पर्वत में हाथी बहुत थे। साढ़े तीन सौ वर्ष

पहले अकबर ने चुनार (चरणाद्रि) के पास खेदा करके किले के भीतर एक झुण्ड को भगाकर पकड़ा था ; पर अब तो प्रायः समस्त विंध्य पर्वत से हाथी लुप्त हो गये हैं।

ऊपर उद्धृत श्लोकों में कहा है, 'तीर्थसारस्ततो गतः'। तौ भी भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य तीर्थों में, और विशेष कर के तीर्थोत्तम काशी में, दीया जलता ही है, यद्यपि धुआँ बहुत हो गया है। भूख प्यास शीत उष्ण आदि द्वंद्वों के सुख-दुःख की उग्र मात्राओं को सहने वाले सच्चे तपस्वी, और ज्ञानी विद्वान् भी, देख पड़ जाते हैं। सिद्ध योगी हैं या नहीं, यह कहना कठिन है। 'स तीर्थराजो जयति प्रयागः' ऐसी प्रथा प्रयाग के विषय में है। इसमें भी कारण होगा कि गंगा-यमुना और (अदृश्य) सरस्वती के संगम से, त्रिवेणी के रूपक से, उन्हीं तीन प्रधान नाड़ियों की, और 'सर्वमेतत् त्रिवृत् त्रिवृत्' के रहस्य ज्ञान की, सूचना होती है, जो वरणा-असी-ब्रह्मनाल से, और काशी के पर्यायों में भी 'तीर्थराजी' मिलता है।

वाराणसी शिवपुरी तीर्थराजी तपःस्थली।

भारतवर्ष की सात पवित्र पुरी प्रसिद्ध हैं—

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।

जान पड़ता है कि जो कार्य आज-काल 'युनिवर्सिटी' करती हैं, वह कार्य प्राचीन समय में इन पवित्र पुरियों से निकलता था। विशेष यह था कि 'धर्म' का भाव, 'अध्यात्म' का भाव, 'रूहानियत' 'स्पिरिचुअलिटी' का भाव, सब कार्यों में अनुस्यूत रहता था। वर्तमान समय में अयोध्या, मथुरा (वृन्दावन), द्वारावती, देखने में, राम-कृष्ण-भक्तिप्रधान हो रही हैं। मायापुरी (हरद्वार कनखल, जिसका एक पुराना नाम 'गंगाद्वार' भी था ; क्योंकि द्वार-स्तम्भ के ऐसे दोनों ओर के पर्वतों के बीच में से यहाँ पर हिमालय में से गंगा बाहर निकलती हैं), देखने में, वैराग्य प्रधान है। अवंतिका (उज्जयिनी) में महाकाल और देवी के मंदिर हैं, सिप्रा नदी का स्नान है। शिव-कांची विष्णु-कांची में शिव-विष्णु की पूजा के साथ-साथ कुछ वेदाध्ययन और कर्मकांड की चर्चा है। ज्ञान की चर्चा इन स्थलों में शिथिल हो गई है। काशी ज्ञान-प्रधान क्षेत्र सदा से रही है। 'भक्ति-ज्ञान-विरागाणां', 'भक्ति-ज्ञान-विरक्तयः', भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः', (भागवत), इन तीनों का साथ होना चाहिये। पर ठीक-ठीक साथ कम देख पड़ता है। ऊपर 'देखने को' शब्द इसलिये कहा कि कितनी सच्ची कितनी झूठी भक्ति विरक्ति आदि की मात्रा है, यह कहना कठिन है। अधिकांश तो मिथ्या ही जान पड़ती है। पर, कुछ सच्ची भी अवश्य होगी। यदि 'दीया के नीचे अँधेरा' ठीक है, तो 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः' यह भी ठीक है। अँधेरा है, तो दीया भी है ही। जहाँ धुआँ बहुत है, वहाँ कुछ-न-कुछ आग भी होगी ही। हरद्वार कनखल तो अब वेष-धारी साधुओं के बड़े-बड़े भवनों और महलों से, इधर पन्द्रह बीस वर्षों के भीतर, भर गये हैं, तो भी 'अनिकेतः स्थिरमतिः' भी कभी-कभी देख पड़ जाते हैं। अस्तु।

काशी ज्ञान-प्रधान क्षेत्र सदा से रही और अब भी है। संवत् ७०७ के आसपास वामन (वैदिक) और जयादित्य (जैन) ने मिलकर पाणिनीय सूत्रों पर काशी में विस्तृत वृत्ति लिखी, इसी से उसके नाम ही 'काशिकावृत्ति' हुआ। उसी समय के आसपास, शंकरदिग्विजय की कथा से जान पड़ता है, शारीरक भाष्य को 'प्रमाण-पत्र' 'प्रतिष्ठा की छाप' यहीं से मिली। चाण्डाल मूर्ति से समागम की कहानी ऊपर कही है। आगे, रास्ता चलते, शंकराचार्य को एक वृद्ध मिले, जिनसे पूछ-ताछ के सिलसिले में कुछ शास्त्र की चर्चा चल पड़ी। वृद्ध ने कुछ बात कही, उसकी अल्पवयस्कता के कारण (शंकर का वयस् उस समय पचीस वर्ष से कम ही था), इन्होंने 'दशधा चखण्ड'। वृद्ध ने उसको 'शतधा चखण्ड'। फिर क्या था। 'दिनाष्टकं वाक्कलहो जजृम्भे'। आठ दिन तक वाग्युद्ध जारी रहा। नहाते-धोते खाते-पीते सोते शौचादि करते थे या नहीं, यह ग्रन्थकार ने नहीं लिखा। आठ दिन पीछे शंकराचार्य ने पहचाना। 'आपतो साक्षात् नारायण के अवतार वेद व्यास ब्रह्मसूत्रकार जान पड़ते हैं'। वृद्ध ने भी कहा (त्वं शंकरः शंकर एव साक्षात्')। परीक्षा समाप्त हुई, कलह भी शान्त हुआ, शारीरक भाष्य को प्रमाण-पत्र मिला।

जैसे 'मध्ययुग' 'मेडीवल एज' से पहले भारतवर्ष में क्षत्रिय राजा, अभिषेक होने पर, अश्वमेधादि के नाम से दिग्विजय शस्त्रास्त्र से करने निकला करते थे, वैसे मध्ययुगीन विद्वान् काव्य शास्त्र आदि का अध्ययन समाप्त करके शास्त्र से 'दिग्विजय' करने को निकला करते थे। काशी के वृद्ध

विद्वान् यदि उनकी विद्वत्ता को स्वीकार करें, तब वे सच्चे विद्वान् समझे जाते थे । ऐसा काशी का गौरव था। यह गौरव तभी तक रह सकता है, जब तक एसे वृद्ध अनुभवी विद्वान्, शास्त्र का हृदय, शास्त्र का मर्म, जानने वाले, तथा उदारचित्त, और वृद्धोचित गुरुता का धारण करने वाले, यहाँ बसते रहें, जिनके शील स्वभाव का, आर्यता का भी, और विद्या के पारंगतत्व का भी, सिक्का और आदर समग्र भारतवर्ष में हो । आज काल जैसो क्षुद्र छिछोरी 'अहंच त्वंच' की शीलरहित शिष्टताशून्य मर्यादा-विहीन, परस्पर तिरस्कार और द्रोह से भरी, वितंडामय चाल शास्त्रार्थों की देख पड़ती है, उससे काशी के गौरव का दिन-दिन क्षय ही होता जाता है ।

शंकर से कुछ पूर्व, प्रायः संवत ७०० के आसपास, जब महाराज हर्षवर्धन का साम्राज्य भारतवर्ष में था, विख्यात बौद्ध यात्री ह्युएनत्सांङ् चीन देश से भारत आये थे, और उन्होंने सारनाथ के स्तूपादि का दर्शन किया, और काशी का हाल लिखा है । कई शताब्दी बाद, प्रायः सवत १२५ में, मुहम्मद गोरी की सेना ने काशी का विध्वंस किया । चौदह सौ ऊँटों पर लूट का माल ले गये । कन्नौज के राजा जयचन्द के आधिपत्य में उस समय काशी भी थी । जयचन्द युद्ध में मारे गये । नैषधकार और खण्डन-कार श्री हर्ष उन्हीं के सभापण्डित थे । ऐसी किंवदन्ती है, कि उनके बाद सन्यासी होकर यहीं रहे और यहीं शरीर छोड़ा।

शंकर के पीछे, एक-एक, दो-दो, शताब्दी के अन्तर से यहाँ रामानुज, वल्लभ, चैतन्य आदि सम्प्रदाय स्थापक, जीर्ण धर्म के उद्धारक, सभी काशी के दर्शन को आते रहे । रामानन्द ने यहीं उपदेश दिया और प्रभावशाली शिष्य तैयार किये, जिन्होंने भारतवर्ष में दूर-दूर जाकर 'सन्तों' का कार्य किया । इन्हीं शिष्यों में प्रसिद्ध कबीर हुए, जिनका जन्म यहाँ काशी ही में, संवत् १४५५ वि० में कहा जाता है और जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम के विरोधपरिहार का और मिथ्याधर्म के दुराग्रह के संहार का बड़ा यत्न किया ।

साम्प्रतकाल मे काशी का गौरव इस हेतु से पुनः बहुत बढ़ गया है कि यहीं पर 'बालमीकि तुलसी भये' । शरीर के स्नान से मल के शोधन का कार्य, जो गंगा देवी अपने पास आने वालों के लिये करती हैं, उससे बढ़कर 'रामचरित मानस' के मानसरोवर में मानसस्नान से चित्त के मल के शोधन, चित्त के परिष्करण का कार्य तुलसीदासजी की रामायण की कविता-सरिता की धारा दूर से बैठे हुओं के लिये भी आज तीन सौ वर्षों से कर रही है ।

भारतं भानुमान् इन्दुर् यदि न स्युर् अमी त्रयः।
ततोऽज्ञानतमोऽधस्य काऽऽवस्था जगतो भवेत् ॥

'यदि भारत का इतिहास, यदि सूर्य, यदि चन्द्र —यह तीन न होते तो अज्ञान और अन्धकार में भटकते जगत की क्या अवस्था होती' । यह व्यासजी के लिये कहा गया है। पाँच हजार वर्ष तक व्यासजी के रचे महाभारत आदि पुराण इतिहास के ग्रन्थों ने संस्कृत जाननेवालों के लिये, और उनका अर्थ प्रचलित भाषाओं में समझाने वाले, कथा कहने वाले, सज्जनों ने जहाँ तक उनसे अर्थ ठीक समझते समझाते बन पड़ा, ('ऋणलोभेन' बिगाड़ा नहीं) साधारण जनता के लिये जो कार्य किया, और अब भी कर रहे हैं, वह कार्य तुलसीदासजी की रामायण का पोथा हिन्दी जाननेवालों के लिये तीन सौ वर्ष से कर रहा है और जब तक हिन्दी भाषा जायेगी, तब तक करती रहेगी ।

संस्कृत के धुरंधर सर्वभारतमान्य विद्वान् यहाँ सदा बसते रहे हैं । वैशेषिक सूत्रोपस्कार के कर्त्ता शंकर मिश्र के पूर्वज भवनाथ मिश्र काशी में, विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में संयासी होकर रहे, और इन्होंने यहाँ नव्य न्याय की चर्चा चलाई । संयासी अवस्था में श्री मधुसूदन सरस्वती ने उपस्कार-कार शंकर मिश्र के अन्य ग्रंथों में अद्वैतवाद पर किये आक्षेपों का खंडन किया, और अद्वैत सिद्धि नामक प्रसिद्ध ग्रंथ, तथा संक्षेप-शारीरक की, तथा भगवद्गीता की पाण्डित्यपूर्ण टीका यहाँ लिखी। इसी समय में भट्टोजी दीक्षित ने व्याकरण-सिद्धान्त-कौमुदी के अति प्रसिद्ध ग्रंथ को यहीं लिखा। अन्य प्रान्तों के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी, यदि यहाँ बस न सके, तो प्रायः विद्यार्थी अवस्था में विद्यासंग्रह यहीं किया । शाहजहाँ के समय में कवींद्र सरस्वती नाम के प्रकाण्ड पंडित, हिन्दू जनता की ओर से, अन्य प्रतिनिधियों के साथ, दिल्ली गये थे, इस लिये कि हिन्दुओं के साथ किये जाते दुर्व्यवहार का विशेष अंशों में सुधार करावें । इनका स्थान गंगा-वरुणा के संगम के समीप था, और इन्होंने पुस्तकों का वृहत् संग्रह किया था। उनके सरस्वती भाण्डार की सूची, थोड़े दिन हुए,

बड़ोदा की संस्कृत ग्रन्थमाला में छपी है। दक्षिण देश में, अग्निस्तम्भन की विद्या चिरकाल से चली आती है। सहदेव के दक्षिण दिग्विजय के सम्बन्ध में इसका वर्णन महाभारत में किया है। आज तक काशी में 'जङ्गमबाड़ी' नाम के स्थान में रहने वाले जंगम सम्प्रदाय के गुरुओं के पास वह विद्या है। कुर्ग देश पर जब अंग्रेजों ने अपना अधिकार जमाया, तब वहाँ के राजवंश के शेष को नज़रबन्द के तौर पर काशी में रहना पड़ा। उस वंश से इन जंगम गुरुओं का सम्बन्ध था। वह यजमान राजवंश तो अब सर्वथा लुप्त हो गया, याजक कुछ रह गये हैं। इन काशीस्थ जंगमों को, इनकी अग्निस्तम्भन विद्या देखकर औरंगज़ेब ने भी माना, और इनको बारह ग्राम की जागीर दी। इसमें से एक गाँव की कुछ ज़मीन काशी-विश्वविद्यालय की परिधि के भीतर आई है। यहीं, लक्ष्मी कुण्ड पर 'अपारनाथ का टेकरा' के नाम से प्रसिद्ध बड़े संगीन मकान के विषय में प्रथा है, कि इसको भी औरंगज़ेब ने ही, तत्कालीन अपारनाथ की कुछ हठयोग की सिद्धियाँ देखकर, बनवा दिया था। इस से जान पड़ता है कि अन्य धर्मों का विद्वेषी होकर भी, जहाँ कोई सच्चा गुण देखता था, वहाँ औरंगज़ेब आदर भी करता था। इंदौर के पास, उसी रियासत की हद में, नर्मदा के बीच, एक ऊँचे पहाड़ी टापू पर, ओंकारेश्वर का मंदिर है। बहुत यात्री दर्शन को जाते हैं। अठारह वर्ष हुए, सारस्वत लेखक भी गया था। उस टापू पर अन्य कई विशालकाय सुन्दर पत्थर के उत्किरणों से पूर्ण, पर भग्नावशेष, मंदिर देख पड़े। पूछने पर लोगों ने कहा कि 'नौरङ्ग बादशाह' का हुक्म हुआ कि जिस किसी मंदिर में कोई विशेष चमत्कार देख पड़े, उसको तो रहने दो, दूसरों को तोड़ दो, सो ओंकारेश्वर के छोटे पुराने स्थान में कुछ चमत्कार देख पड़ा; इसलिये वह रहने दिया गया, अन्य सब कृत्रिम जान कर गिरा दिये गये। 'नौरंग बादशाह' के लिये मन में यह भाव उदय हुआ कि निरा अविवेकी धर्मान्ध नहीं था। उसके द्वारा अन्तरात्मा ने हिन्दुओं को चेतावनी दी कि केवल और अत्यन्त मूर्त्ति पूजा पर मगन (मग्न) मत हो, अपने में विशेष चमत्कार साधो, तपस् और योग को सर्वथा मत भूल जाओ, केवल ईंटा-पर-ईंट और पत्थर-पर-पत्थर मत जोड़ो, सज्ज्ञान-पर-सज्ज्ञान और सत्कर्म-पर-सत्कर्म भी जोड़ो। औरङ्ज़ेब के समय में ही, उनके बड़े भाई दाराशिकोह के मित्र जगन्नाथ पंडितराज ने, जिन्होंने,

दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः,

अपना यौवनकाल संस्कृत के नितान्त शौक़ीन दाराशिकोह के साथ बिताया था, उनके औरंगज़ेब के हाथ मारे जाने के बाद, तथा अपनी यवनी भार्या की मृत्यु आदि अन्य कारणों से, खिन्न होकर, यहीं काशी में अपना जीर्ण शरीर, गंगालहरी स्तोत्र बनाते-बनाते, वर्षाकाल की बढ़ती हुई गंगा की गोद में अर्पण कर दिया। इस प्रकार से उन्होंने, भामिनीविलास नामक अपने कविता-संग्रह में लिखे हुए, इन आगे लिखे श्लोकों को अपने ऊपर चरितार्थ किया।—

रवौ अस्तं याते समुदयति खद्योतपटली
मरालालीं मूका कलकलमुलूका विदधति।
मुहुः कष्टं दृष्ट्वा व्यथितहृदया पंकजवनी
मिलद्भृङ्गव्याजात् कवलयति हालाहलमिदम्॥

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिंतयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

आकाशमाविशति पन्नवतो बलाका
भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयंते।
संकोचमंचति सरस् त्वयि दीन-हीनो
मीनो नु हंत कतमां गतिमभ्युपैतु॥

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत्
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथय रे कथं वर्त्तताम्॥

औरंगज़ेब के समय से कुछ पूर्व काशी में ही षड्दर्शनभाष्यकार विज्ञान भिक्षु और यजुर्वेदभाष्यकार महीधर रहे, और जगन्नाथ पंडितराज के पिता पेरुभट्ट के गुरु खंडदेव ने यहीं मीमांसा के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भाट्टदीपिका' और 'मीमांसाकौस्तुभ' लिखा। उस समय काशी में मीमांसा और धर्मशास्त्र की चर्चा अधिक थी। औरङ्ज़ेब के समय में महाराज शिवसिंह (शिवाजी) के वीर्य शौर्य से महाराष्ट्र जनता और जनपद का जब बड़ा अभ्युदय हुआ, तब वैदिक कर्मकांड के अनुसार उनके

राज्याभिषेक के लिये काशी से ही पंडित गागाभट्ट बुलाये गये थे। औरंगज़ेब और उस के परिवार को अपना रूप दिखा कर, उस के छल-कपट के दुर्ग से निकल कर, जब शिवाजी दक्षिण को अज्ञात रूप से लौटे जाते थे, तब उन्होंने काशी में विश्वनाथ-दर्शन और गंगा-स्नान किया। जैसे ही शिवाजी क्षत्रपति के उत्तम चारित्र्य और उनके सद्गुरु रामदास के सच्चे राजनीतिक उपदेश से देश का और धर्म का उदय हुआ, वैसे ही उनके पीछे उनके वंशजों के चारित्र्य भ्रंश से, और तपस्वी निस्स्वार्थ उपदेशकों के अभाव से, विनिपात भी हुआ।

आचारहीनं न पुनंति वेदाः यद्यप्यधीताः सह षड्भिरंगैः॥
आचारः परमो धर्मः आचारः परमं बलम्॥

'चिमना आपा का बाड़ा' के नाम से एक स्थान भदैनी महल्ले में प्रसिद्ध है। आपा साहब जिस समय वहाँ नजरबन्द थे, उसी समय में केरल देश के अहोबल शास्त्री उन्मत्तवत्, 'नैगमो गोमुखश्चरेत्', मानो मनु की इस आज्ञा को चरितार्थ करने के लिये, काशी की गलियों में घूमा करते थे। किसी हेतु से अपने देश से खिन्न होकर यहाँ चले आये थे। सर्वशास्त्रवेत्ता श्रुतिधर अद्वितीय विद्वान् थे। उनकी कहानियाँ पंडित-मंडली में, चालीस-पचास वर्ष पहले अक्सर सुनने में आती थी। जिस किसी शास्त्र के जिस किसी ग्रन्थ में, जिस किसी को जो कुछ पूछना हो, उनको गलियों में ढूँढ़ लेता था। प्रश्न करता था। शास्त्रीजी उत्तर में पहले पूछते—'वाताशा आनीता ?' 'बताशा लाये हो ?', 'हाँ महाराज !'। एक कलछुली लिये रहते थे। कलछुली में बताशा रख दिया जाता था। लोग जानते थे कि यही गुरुदक्षिणा वह माँगा करते हैं, इसलिये साथ लेकर जाते थे। या तो तत्काल शंका समाधान कर देते थे, या यदि विचारने की आवश्यकता हुई, तो 'पुस्तक का पत्र दे दो, यहीं इसी समय कल फिर मिलना।' दूसरे दिन समाधान हो जाता था। आपा साहब के यहाँ नये पंडितों की परीक्षा होती थी और पारितोषिक मिला करते थे। एक दिन अहोबल शास्त्री परीक्षा के स्थान में जा बैठे। नये परीक्षक इनको पहिचानते न थे। मैली-कुचैली फटी-पुरानी धोती पहने थे। परीक्षक ने पूछा—'क्या चाहते हो ?' 'एक नयी धोती'। 'कुछ पढ़े हो, परीक्षा दोगे ?' 'हाँ'। 'इस (व्याकरण के) सूत्र का अर्थ कहो।' सारी सिद्धान्त-कौमुदी उस सूत्र की विस्तृत व्याख्या में कह गये। परीक्षक ने अहोबल का नाम और उनकी सनकों का हाल सुना था, समझा कि अवश्य यही होंगे, पहचाना और यथोचित आदर-सत्कार किया, बहुत... देना चाहा; पर उन्होंने कहा—'एक धोती ही के लिये आया था।' एक रात आपा साहब के यहाँ नृत्य हो रहा था। नजरबन्द कभी नृत्य से मन बहलाते थे, कभी शास्त्रियों के आदर-सत्कार से। अहोबल शास्त्री भी एक किनारे जा बैठे। इनको देखकर नृत्य-शास्त्र की चर्चा चली। आपने मयूर-नृत्य की फर्माइश की। नर्तकी से कैसे बनता। आपने स्वयं मयूरनृत्य करके दिखाया। ऐसी-ऐसी कहानियाँ इनके विषय में चालीस-पचास वर्ष पहले तक सुनी जाती थीं। कितना सत्य, कितना अतिरंजन इनमें था, यह कहना कठिन है। निष्कर्ष यह है, कि ये अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे, और सच्चे विरक्त थे, तथा यह कि ऐसे-ऐसे सज्जन काशी में आ जाया और रह जाया भी करते हैं।

आधुनिक काल में सच्चे वेदोद्धारक और हिन्दू समाज और आर्यवैदिक धर्म के मुमूर्षु शरीर में पुनः प्राणाधायक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती काशी में, संवत् १९२७ और १९३० के बीच में प्रायः छः बार आये, यहीं उन्होंने अपने वेदभाष्य का मुद्रण आरम्भ किया। यहीं तत्कालीन विद्या-तत्म पण्डितों के साथ 'मूर्त्तिपूजा वेद सम्मत है या नहीं' इस पर शास्त्रार्थ किया, और सहस्र वर्षों की रूढ़ भ्रांतियों की जड़ को हिलाया, भारतवर्ष की प्रसुप्त बुद्धि को जगाया, और सच्चे आत्म-सम्मान, आत्मावलम्बन, निर्भीक धर्मयुद्ध का, अपने 'आचरण' से भी और उपदेश से भी जैसा सच्चे 'आचार्य' को करना चाहिये, रास्ता दिखाया। उक्त शास्त्रार्थ के दिनों में, स्वामीजी, साम्प्रत लेखक के पिता श्री माधवदासजी के उद्यान में, दुर्गाकुंड पर, अतिथि रहे, इस बात का गौरव इस कुल को प्राप्त है।

साधारणतः सभी हिन्दुओं की इच्छा होती है कि शरीर काशी में छूटे और राख गंगा में पड़े। यहाँ तक कि श्री अन्नावासन्ती देवी (ऐनी बिसेन्ट) ने भी—जिन्होंने इस बार अंग्रेज शरीर में जन्म लेकर, भारतवर्ष में आकर, भारत माता को अपनी जननी जन्मभूमि मानकर, हिन्दू धर्म को अङ्गीकार कर, चालीस वर्ष (संवत १९५०

से १९९० तक) इस देश में बस कर, काशी में 'शान्ति-कुञ्ज' नाम का अपना घर बनाकर, सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज, तथा स्कूल, तथा सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, को स्थापित करके लड़कों और लड़कियों के लिये लौकिक शिक्षा के साथ हिन्दू धर्म के मुख्य-मुख्य सर्व-संग्राहक, भेदबुद्धि निवारक, बुद्धिसम्मत, तर्कानुसंहित आध्यात्मशास्त्रानुकूल, तत्त्वों और सिद्धान्तों की धार्मिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया, और हिन्दू धर्म के वर्तमान समय और अवस्था के अनुकूल, जीर्णोद्धार करने के लिए जैसा परिश्रम किया, वैसा स्यात् किसी भारतीय शरीरधारी ने भी नहीं किया—इन परम वाग्मिनी देवी की भी इच्छा यही हुई कि उनके शरीर की राख गंगा की गोद में रखी जाय। और यद्यपि,

नहि तेन पथा तनुत्यजः तनयावर्जितपिण्डकांक्षिणः,

तथापि, उस इच्छा का शिरसा धारण करके साम्प्रत लेखक ने, जो उनको अपनी आध्यात्मिक माता ही जानता था, उसका पालन किया, और उनके शरीर की राख को १ अक्तूबर सन् १९३३ को, काशी की गंगा की पवित्र धारा में रखा।

जो असाधारण व्यक्ति, शास्त्रकार, कवि, शूरवीर राजा, दानी, श्रेष्ठी, आदि, वेद-पुराणेतिहास-बौद्ध-जैन-काल से आज तक प्रत्येक शताब्दी में यहाँ यात्रा के अर्थ से, या विद्यासंग्रह के लिये, या युद्ध के लिये, या क़ैदी, बन्दी, नज़रबन्द होकर, या मुमुक्षा से यहाँ शरीर छोड़ने के लिये, आते रहे हैं, उनकी केवल सूची बनाई जाय, तो भारत-वर्ष का उत्तम और पूर्ण, बहुत रोचक और बहुत शिक्षाप्रद, इतिहास बन जाय। भारतवर्ष का उत्तमांग, मस्तक, हृदय, होने के कारण, काशी का इतिहास समग्र भारतवर्ष का इतिहास है।

शरीर यहाँ छोड़ने की इच्छा का मुख्य कारण यही है कि अनादिकाल से प्रथा भारतवर्ष में प्रथित है कि 'काश्यां मरणान् मुक्तिः'। जितनी कथा ऊपर कही गई है, इससे प्रायः स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इस पौराणिक प्रथा का, तथा इस दूसरी अध्यात्म शास्त्र की प्रथा का, कि 'ऋते ज्ञानान् न मुक्तिः,' कैसे समन्वय होता है।

काशी ज्ञान-प्रधान क्षेत्र है, इसकी हवा में आध्यात्मिक ज्ञान बस रहा है, यहाँ निवास करने से, सदाचार से रहने से, जिज्ञासा, शुश्रूषा, मुमुक्षा आपसे आप जगती है, ज्ञान का लाभ होता है और ज्ञान का लाभ होकर शरीर छोड़ने से मुक्ति मिलती है; अर्थात्—'ऋते ज्ञानान् मुक्तिः, काश्यां सदाचारेण वासाज् ज्ञानप्राप्तिः, ततः काश्यां मरणान् मुक्तिः'।

आधुनिक काशी

कलियुगीन गिरी दशा में भी, यद्यपि अन्य पवित्र पुरियों में, जो पहले युनिवर्सिटी का काम देती रहीं, विद्या का अभ्यास बहुत कम हो गया है, उनके पीछे के बने और बड़े पुराने विख्यात विद्यापीठ, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, उदन्तपुरी आदि सब लुप्त हो गये, काश्मीर, मिथिला, नवद्वीप, आदि में विद्या की चर्चा है भी, तो उतनी नहीं—इस गिरी दशा में भी, इन सब से बहुत अधिक पुरानी होकर भी, काशी आज तक बड़ी भारी विद्याधानी, संस्कृत ज्ञान का क्षेत्र, बनी हुई है।

एको दश सहस्राणि ज्ञानेनान्नेन पोषयन्।
योऽध्यापयति छात्राणां स वै कुलपतिः स्मृतः॥

ऐसे कुलपतियों के आश्रम, वशिष्ठ के, वाल्मीकि के, भरद्वाज के, अगस्त्य के, विश्वामित्र के, कण्व के, भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में, इतिहास-पुराण में देखे-सुने जाते हैं। काशी में अब भी उनका नमूना कुछ न-कुछ देख पड़ता है। यद्यपि कोई एक कुलपति नहीं है, तो भी बीस-पच्चीस उत्कृष्ट कोटि के विविध शास्त्रों के धुरंधर पंडित, सौ-सवा-सौ द्वितीय श्रेणी के विद्वान्, दो-ढाई सौ तृतीय श्रेणी के, काशी की गलियों में बने ही रहते हैं, और इनके द्वारा दो तीन सहस्र विद्यार्थियों की शिक्षा होती रहती है। इन विद्यार्थियों में से अधिकांश को अन्न-वस्त्र क्षत्रियादि राजाओं और वैश्य श्रेष्ठियों की स्थापित धर्मशालाओं और अन्न-सत्रों से मिलता है। अब तो इन श्रेष्ठियों ने बहुत-सी छोटी-मोटी पाठशालाएँ भी निर्दिष्ट गृहों में, चला दी हैं। जिनमें तीन-तीन चार-चार पंडित अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं और ब्राह्मणोचित अध्यापन-वृत्ति से जीविका पाते हैं। जिनके लिये पाठशाला के स्थान अलग नहीं बने हैं, वे अपने घर पर ही पढ़ाते हैं। यह तो पुरानी चाल की शिक्षा है। काशी ही में आज से प्रायः सत्तर वर्ष पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य को नया जन्म दिया, और चालीस वर्ष से नागरी-प्रचारिणी-सभा ने उनका पालन, पोषण तथा वर्धन किया है।



इस लेखक के जीवन काल में, सन्यासियों में हठ-योग-सिद्ध तैलङ्ग स्वामी बहुत प्रसिद्ध रहे। तथा विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध विशुद्धानंद स्वामी हुए, जिन्होंने एक्यानवे वर्ष की उमर में शरीर छोड़ा। मंगनीराम ब्रह्मचारी की भी विद्वत्ता प्रसिद्ध रही। इन्होंने भी बहुत दीर्घायु पाई। स्वामी मनीषानन्द, जिनको पूर्वाश्रम के नाम से हरिनाथ स्वामी भी कहते हैं, बहुत तीक्ष्ण बुद्धि के अद्वितीय पंडित थे। इन्होंने पछत्तर वर्ष की अवस्था में ढाई वर्ष हुए शरीर छोड़ा।

परमहंस भास्करानन्द ने भी बहुत ख्याति पाई विद्वत्ता तो उनमें विशेष नहीं थी; पर शीतोष्णसहिष्णुता और त्याग का उदाहरण वे बहुत वर्षों तक दिखाते रहे। जाड़ा गर्मी में दिग्वसन ही रहते थे। उनके शरीरत्याग के पीछे, एक धनाढ्य भक्त ने, दुर्गाकुण्ड पर जिस उद्यान में वे सदा रहते थे उसी में, एक सुंदर संगमर्मर का चैत्य बनवा कर उसमें उनकी मूर्ति रख दी है। पर, इन सब में अधिक तीक्ष्णबुद्धि और विद्वान् स्वामी मनीषानन्द थे, और सबसे अधिक सात्विक और धर्मिष्ठ स्वामी भावानन्दजी थे। ये सज्जन स्वामी मनीषानन्द के दीक्षा-गुरु थे। सन्यासोचित धर्म-कर्म में नितरां सत्यबुद्धि से परिणिष्ठित और अन्तःप्रकाशयुक्त ज्ञानी विद्वान् भी थे। सन्यासी को दिन में तीन बार स्नान लिखा है, तो तीन बार नहा लेना उन को ज़रूर, चाहे ज्वर भी चढ़ा हो। 'व्यङ्गारे भुक्तवज्जने', जब दोपहर की रोटी बन चुकी हो, अंगारे बुता दिये गये हों, सब घरवाले खा पी चुके हों, तब बचा खुचा मिल जायगा, इस आशा से संयासी माँगने जाय, ऐसी मनु की आज्ञा है, न यह कि सब से पहले उमदा ताज़ा खाना मुझी को मिल जाय। इस नियम के अनुसार, पाँच सद्गृहस्थों के घर से भिक्षा एक कपड़े की झोली में माँग लाना, और उस झोली को गंगाजी में एक बार बोर देना, फिर कुछ उसमें से खा लेना। जब शरीर वृद्धावस्था से अशक्त हो चला और यह क्रम न चल सका, तब दुर्गाकुंड के समीप एक उद्यान में बैठ गये, वहीं उनके श्रद्धालु जन उनकी आवश्यकतानुसार सेवा कर दिया करते थे। प्रायः सत्तर वर्ष पूरे होने पर एक दिन आपने निश्चय किया कि शरीर अब धर्म-कर्म के उपयुक्त नहीं रहा, अब इसको छोड़ देना चाहिये। उस दिन से अन्न त्याग कर केवल दूध लेते रहे। छः महीने तक यह क्रम रहा, दूध की मात्रा कम होती गई। एक दिन निश्चय हुआ कि अब समय आ गया, अब इसको भी छोड़ देना चाहिये। छोड़ दिया। केदारघाट के मंदिर के एक दालान में चले गये। श्रद्धालु जनों ने चौकी लगा दी। उसी पर लेटे रहते थे। मनीषानन्दजी ने दुःखित होकर पूछा—'महाराज' संयासी को तो अनशन का निषेध है?' कहा—'इस निषेध की रक्षा के लिये पानी पी लेता हूँ।' एक छोटे चमचे से कम पानी प्रति दिन पी लेते थे। तेईसवें दिन की संध्या तक अन्य भक्तों के साथ मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री गोविन्ददासजी और मैं उनकी पवित्र वाणी से तैत्तिरीयोपनिषद् की व्याख्या सुनते रहे। इस उपनिषद् में उनकी विशेष प्रीति रही। चौबीसवें दिन ब्रह्मलीन हो गये। जिन्हों ने उस समय का उनका दर्शन किया और उपदेश सुना, वे सौभाग्यवान् थे, उन्होंने सत्ययुगीन महर्षि का दर्शन किया और उपदेश सुना। 'तपो नाऽनशनात् परम्', इससे अधिक तपस्या तो सत्ययुग में भी हो नहीं सकती। अनशन से शरीर छोड़ देना, पवित्र उद्देश्य से, यह तपस् की पराकाष्ठा है। सत्ययुग में यदि सहस्र वर्ष भी वायुभक्ष हो कर जीते रहे तो यह उस समय के शरीरों की गुणवत्ता है, तपस्या की पराकाष्ठा नहीं है। 'कलियुग सम नहिं अन्य युग।' इस युग में भी समस्त सांसारिक बंधनों से आध्यात्मिक मोक्ष के लिये अनशन से शरीर छोड़ने वाले स्वामी भावानन्दजी देखने में आये। तथा 'आयर्लैंड' में महात्मा मैक्सीनी, और इस देश में महात्मा यतीन्द्रनाथदास और (बर्मा प्रान्त में) बौद्ध भिक्षु विजय, जिन्होंने भारतवर्ष के राजनीतिक बन्धन में मोक्ष के लिये ऐसे ही अनशन से शरीर छोड़ा। स्वामी मनीषानन्द ने स्वामी भावानन्द का जीवन चरित, 'यतीन्द्र चरितामृतं' नाम के बड़े काव्य में लिखा है।

प्रसिद्ध बाल शास्त्री के शिष्य, जो उनसे अधिक विख्यात हुए, महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री, आदि इन हरिनाथजी के सहपाठी थे। म० म० दामोदर शास्त्री, म० म० शिवकुमार शास्त्री, म० म० तात्या शास्त्री, और उदारबुद्धि म० म० राम मिश्र शास्त्री, तथा प्राचीन और पाश्चात्य नवीन गणित के अद्वितीय विद्वान्, संस्कृत और हिन्दी के रसिक कवि, उदारबुद्धि म० म० सुधाकर द्विवेदी, तथा म० म० कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य शिरोमणि ये सब एक ही समय में काशी की विद्वन्मंडली की और संस्कृत कॉलेज की शोभा बढ़ाते रहे।

इस समय भी विविध शास्त्रों के उत्कृष्ट विद्वान्, प्रायः पूर्वोक्त वृद्धों के शिष्यवर्ग में से ही वर्त्तमान हैं और ऋग्विऋग के निर्वचन में तत्पर हैं ; पर 'जीवत्कुवेराशयो न वक्तव्यः, उनका नामोल्लेख करने की आवश्यकता नहीं।

नये प्रकार के स्कूल-कॉलेज भी काशी में बहुत हो गये हैं। प्रायः साठ स्कूल तो म्युनिसिपैलिटी के हैं, जिनमें आठ-नौ हजार लड़के और कई सौ लड़कियाँ पढ़ती हैं। इसके बाद आज से प्रायः सत्तर वर्ष पूर्व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आरम्भ किया हुआ 'हरिश्चन्द्र स्कूल', तथा क्वीन्स कॉलेजियेट स्कूल, जयनारायण स्कूल, लंदन मिशन स्कूल, सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल, क्षत्रिय स्कूल, ऐंग्लो बंगाली स्कूल आदि हैं, जिनमें प्रायः चार पाँच-हजार लड़के पढ़ते हैं। क्वीन्स कॉलेज और क्षत्रिय कॉलेज में इंटरमीडियेट परीक्षा तक की शिक्षा होती है। गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज में, जिसका स्थापन काशी-नरेश की दी हुई जायदाद की आय के आश्रय पर, संवत १८४८ (ई० सन् १७९१) में हुआ, आज डेढ़ सौ वर्ष से उत्कृष्ट कोटि की संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा दे रहा है। ब्राह्म समाज के सूत्रारंभक यशस्वी राजा राममोहनराय, जो पीछे दिल्ली के बादशाह की ओर से दूत होकर लन्दन गये थे, यहाँ संस्कृत का अध्ययन किया। अब सर्वोपरि काशी-विश्वविद्यालय का बृहदाकार महोदय शिक्षागार है, जिसके विभिन्न विभागों में सब मिलकर प्रायः दो सौ अध्यापक और साढ़े तीन हज़ार विद्यार्थी हैं। यद्यपि इसकी नीव सेन्ट्रल हिंदू कॉलेज है ; पर वर्तमान विशाल स्वरूप श्री मदनमोहन मालवीयजी के सतत और अद्भुत परिश्रम और प्रार्थिना का फल है। भारतवर्ष के सच्चे उद्धार में, यह संस्था और इसमें 'संस्कार' पाये और इससे निकले छात्र कहाँ तक सहायता करेंगे, उन छात्रों के चित्तसंस्कार में सनातन-आर्य-मानव-वैदिक-बौद्ध धर्म के मूल तत्त्वों और सिद्धान्तों का कितना प्रवेश हुआ है, यह तो भविष्य का वृत्त ही बता सकता है। हमलोग अवश्य इच्छा और आशा करते हैं कि उनके चित्तों का इन तत्त्वों के प्रवेश से संस्करण परिष्करण हो और वे उस संस्कार के अनुसार भारतवर्ष के उद्धार में अग्रसर हों। काशी की गलियों में निर्धन रूप से अपना कार्य करता हुआ प्राचीन प्रकार का विद्यापीठ, तथा काशी की दक्षिण सीमा पर विशाल और उन्नत भवनों में बसा हुआ नवीन काशी विश्व-विद्यालय, दोनों मिलकर, देश को यह बात सिद्ध करके दिखा देवें कि काशी में वास करने से आध्यात्मिक और धार्मिक ज्ञान की प्राप्ति होकर, देहपातानंतर मुक्ति की सामग्री तो मिलती ही है, इस लोक में जीते जी, राजनीतिक, व्यावहारिक, आधिभौतिक बन्धनों से भी मुक्ति मिलती है। यह हमलोगों की हार्दिक प्रार्थना परमात्मा से है। अन्त में चर्चा उस 'काशी विद्यापीठ' की कर देना चाहिये, जिसकी स्थापना देशभक्त, देशभाषाभक्त, श्री शिवप्रसाद गुप्तजी की उदार हृदयता और दानशीलता से हुई और जिसका कार्यारंभ महात्मा गान्धी के पवित्र हाथों से २८ माघ संवत १९७७ को हुआ। इसके संकल्प-पत्र में इसका उद्देश्य 'अध्यात्म शास्त्र के अनुसार भारतीय सभ्यता शिष्टता का जीर्णोद्धार' कहा है। इसके अध्यापक और अध्येता प्रायः देशभक्त, त्यागी देशोन्नति के लिये अभिलाषी और कष्ट सहिष्णु हैं। भाग्यवशात दो वर्ष से देश के वर्त्तमान शासकवर्ग ने इसको बन्द कर रक्खा है। आशा है कि देश में शान्ति होने पर फिर से यह अपना कार्य कर सकेगा। यदि इसने अपने मूल संकल्प को ध्यान में रखकर तदनुसार कार्य किया, तो अवश्य आत्मप्रकाशिनी विद्या का पीठ स्थान बनेगा और भारत की उत्तमांग भूत काशी का गौरव और यश पुनरुज्ज्वल करने में सहायक होगा।

यदा चर्मवद् आकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः।
तदाऽऽत्मानमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥
आत्मनोऽन्यत्र भूतानि लोकान् देवानथापि वा।
ब्रह्म क्षत्रं तथाऽन्यद्वा सर्वं यत् किंचिदेव वा।
यो वेद तत्तदेवैनं परादात् मूढचेतनम् ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः।
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नाऽत्मानमवसादयेत् ॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ॥
आत्मप्रकाशिनी बुद्धिः यया, 'इदं' चापि काश्यते।
'दृश्यं' नाम जगत्सर्वं, सा काशीत्यभिधीयते ॥

॥ ॐ ॥

श्यामा : एक वैवाहिक विडम्बना

लेखक—श्रीयुत भुवनेश्वरप्रसाद

(एकांकी दुःखान्त नाटिका)

[जॉर्ज टाउन में मिस्टर पुरी के भव्य बंगले का एक सुसज्जित कमरा। कमरे के दाहिनी ओर दीवार में एक द्वार है, जिस पर लाल साटिन का पर्दा पड़ा है, औरों में चिकें। सलीब पर चढ़ा हुआ ईसा का भव्य चित्र। बाईं ओर, उसके नीचे ही उमर खय्याम की रुबाइयों के दो चित्र। दाहिनी ओर द्वार के इधर एक अर्द्ध अश्लील बेड-रूम चित्र और कई इटालियन लैण्डस्केप्स शोभित हैं। समय नवम्बर का एक मेघाच्छादित प्रातः और सूरज की कोई आवश्यकता नहीं। बीसवीं सदी का कोई दिन अन्धकार में नहीं रह सकता। मिस्टर अमरनाथ पुरी, आयु लगभग तीस वर्ष, गोरे-चिट्टे आँखों पर चश्मा, हाथों में चमड़े के गलव्स, आकृति में वैमनस्य, वाणी में रुचि वैचित्र्य। काला सर्ज का सूट पहने एक सोफे पर बैठे हुए निर्विकार रूप से हीटिंग स्टोव की ओर देख रहे हैं।]

मिस्टर पुरी (सहसा) **ब्वेरा ! ब्वेरा ! हीरा !**

(हरी सर्ज की अचकन में शीत से काँपते हुए एक अधेड़ मनुष्य का प्रवेश। सिर पर साफा पैर नग्न, पैजामें में उन्हें बराबर छिपाने की चेष्टा करता है)

हीरा—हुजूर।

मिस्टर पुरी—बाहर भी इतनी सर्दी है ?

हीरा— (मतलब न समझ कर) जी नहीं, हाँ, पानी बरसने ही वाला है

मिस्टर पुरी—मेम साहब कहाँ हैं ?

हीरा—(और भी अधिक नम्र होकर) चाय पी रही हैं हजूर, उन्हें मालूम है आप यहाँ हैं।

मिस्टर पुरी—(रुक कर) और वह बाबू, जो कल आये हैं?

हीरा—उन्हें बहू रानी ने अभी जगाया है (हँसने की चेष्टा करता है ; पर मिस्टर पुरी को ओर देखकर सहसा गंभीर हो जाता है)

मि० पुरी—हूँ।

हीरा—क्या उन्हें यहाँ भेज दूँ सरकार ?

मि० पुरी—(एक अनिश्चित इङ्गित करके ध्यान-मग्न हो जाते हैं)

(हीरा दो क्षण रुक कर चला जाता है। मिस्टर पुरी उठकर टहलने लगते हैं। मिस्टर अप्पो का प्रवेश। मिस्टर अप्पो चींटी से मेहनती, कौवे से चतुर, मृत्यु से भी अधिक व्यस्त और गंभीर दिखाने का प्रयत्न करते हैं)

मि० अप्पो—आज राजा खरीलिया की अपील है।

मि० पुरी—हूँ।

मि० अप्पो—वह मर्डर अपील भी तो आज दाखिल होगी।

मि० पुरी—(हाथों से अनिश्चतता का इङ्गित करते हैं)

मि० अप्पो—आज साँझ को... .....

मि० पुरी—(सहसा उद्विग्न होकर) आज साँझ को, कल साँझ को, परसों, कभी मैं कुछ न कर सकूँगा।

मि० अप्पो—(कुछ रुककर और स्तंभित होकर) मेसर्स शापुरजी के रुपये भेज दीजिये।

मि० पुरी—मेम साहब को दे दीजिये।

(मि० अप्पो कुछ कहना चाहते हैं ; पर सहसा रुक जाते हैं और सहसा जैसे कोई उन्हें बाहर बुला रहा हो, चले जाते हैं। मिस्टर पुरी उसी अनिश्चित-अस्थिर भाव से टहलते हैं)

मि० पुरी—हीरा !

हीरा— (बाहर से) हजूर !

मि० पुरी—कुछ नहीं।

(लाल साटिन के पर्दे वाले द्वार से मिसेज़ पुरी का प्रवेश। गोल, हँसमुख, लापरवाह चेहरा ; पर आँखों में विषाद की बुद्धिमत्ता। आयु प्रायः २३ वर्ष, अधरों पर विलास की सजीवता, खद्दर की साड़ी पारसी ढंग से पहने, ऊपर से एक काला ओवर कोट)

मिसेज़ पुरी—(हँस कर) मनोज को तो देखिये ! अभी मैंने उठाया, अब मुँह फुलाये बैठा है। कहता है, तुमने मेरा बड़ा सुन्दर स्वप्न भंग कर दिया।

मिस्टर पुरी—(हँसने का प्रयत्न करते हैं ; पर विफलता उनके अधरों पर अंकित हो जाती है) विचित्र पुरुष है।

मिसेज़ पुरी—(कुछ कहना चाहती हैं ; पर उसके पहले ही सरोवर-सी स्वच्छ हँसी हँस देती हैं)

मिस्टर पुरी—तुमने चाय पी ली शम्मी ?

मिसेज़ पुरी—हाँ। तुम स्वस्थ तो हो (गंभीर आकृति से) कैसा जाड़ा पड़ रहा है, तुम ओवर कोट भी नहीं पहनते। हीरा, (उत्तर की प्रतीक्षा न करके) साहब का लम्बा कोट ले आओ।

मिस्टर पुरी—मनोज को चाय पिलाओ।

मिसेज़ पुरी—वह नहीं पियेगा, उसे अपने स्वप्न का बड़ा शौक है। (इस बार वह तनिक भी नहीं हँसती है)

मिस्टर पुरी—(सूखी हँसी हँस कर) मुझे इसका बालकों के समान कोरी आँखों से एक क्षण में प्रफुल्लित और शोकान्वित होना, बहुत प्रिय लगता है।

मिसेज़ पुरी—और उसका क्रोध! अभी मुझसे बिगड़ रहा था, मैंने मुस्करा कर उसकी ओर देखा और बस, बालिकाओं-सा लजा गया?

मिस्टर पुरी—(दो क्षण गंभीर नीरवता रहती है। सहसा) आज क्या वह जायगा।

मिसेज़ पुरी—हाँ, मैंने उससे कह दिया।

मिस्टर पुरी—क्यों?

मिसेज़ पुरी—क्यों? (उनकी आँखों में एक टक देखकर) क्योंकि तुम उससे ईर्ष्या रखते हो।

मिस्टर पुरी—(चकित होकर) मैं उससे ईर्ष्या रखता हूँ? (उत्तेजना के साथ) उससे, उस अर्ध बालिका से, जो हर समय अपने पुरुष होने के लिये क्षमा याचना करती है। जो केवल एक रुपहली रात्रि के रूप की भाँति है, जो जीवन या प्रेम को इतना ही कम जानता है, जितना तुम मुझे—हूँ, मैं ईर्ष्यालु नहीं हूँ, शम्मी।

मिसेज़ पुरी—(दृढ़ भाव से) क्यों?

मिस्टर पुरी—(उसी तेज के साथ) क्योंकि मुझे तुम पर, तुम्हारे प्रेम पर विश्वास है।

मिसेज़ पुरी—आपको अपने गुणों पर गर्व है, आपको अपना इतना भरोसा है!

मि॰ पुरी (कृत्रिम भाव से) नहीं, मुझे तुम्हारी पवित्रता, तुम्हारी महत्ता का गर्व है, उसी का भरोसा है।

मिसेज़ पुरी (निर्विकार भाव से) तब आप मुझे प्रेम नहीं करते

मि॰ पुरी [धीमे स्वर में] यह मत कहो शम्मी, परमात्मा के लिये एक क्षण भर को भी ऐसी बात न सोचो।

मिसेज़ पुरी—तुम मुझसे प्रेम भी करते हो और उस पुरुष से दयालु भी नहीं हो, जिसको प्रेम करना किसी भी स्त्री के लिए इतना सरल और नैसर्गिक है, जैसे बसन्त का आगमन या प्रातः समीर में कलिका का खिलना! क्या तुम्हारे हृदय की भावनाएँ और वासनाएँ शरीर से विलग हैं?

मिस्टर पुरी—[कुछ देर चुप रहकर] क्या मनोज तुम्हें प्यार करता है?

मिसेज़ पुरी—मैं किसी के हृदय की बात क्या जानूँ।

मिस्टर पुरी—(अपने अन्तर के संघर्ष से विजय पाकर) और तु.........

मिसेज़ पुरी—यह तुम मुझसे अधिक जानते हो। समाज के सम्मुख मैं तुम्हें प्यार करने के लिए उत्तरदायिनी हूँ। और विवाह करके यदि मैंने जीविका के लिए अपने आपको नहीं बेचा है—यदि इस कठिन सत्य का सामना तुम नहीं करना चाहते—तो मुझे प्रेम चाहिये।

मिस्टर पुरी—(जैसे स्वप्न देखते हों) मैं अपना प्रेम शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता। तुम मेरे जीवन की उपक्रमणिका हो। तुम्हीं उसका उपसंहार हो।

मिसेज़ पुरी—यह सब कविता है, कोरी भावुकता है। इससे तो मुझे मनोज की उक्ति पसन्द है। जब उसका नायक कहता है—

'मैं उतरे मद का-सा खुमार,
तुम नयनों की मदिरा-सी॰'

मिस्टर पुरी—शम्मी, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ है। मेरे पास शब्द नहीं हैं, मेरे पास उनको आत्मा है। मेरे पास कविता नहीं; पर प्रेम में उसकी सजीवता है। तुम आज मेरे प्रेम की उपेक्षा कर सकती हो; पर एक दिन अवश्य तुम्हें उसकी आवश्यकता होगी।

मिसेज़ पुरी—हाँ, ठीक है, तुम्हें मेरी पवित्रता पर विश्वास नहीं है। तुम्हें अपनी महत्ता पर गर्व है। तुम्हे मनोज से ईर्ष्या नहीं है, मुझसे भय है।

मिस्टर पुरी—तुम क्या कह रही हो शम्मी, मैं एक शब्द भी नहीं समझता।

मिसेज़ पुरी—[अब वह मिस्टर पुरी के पास से आकर एक बनादी पर बैठी है। तुरन्त]

तुम क्या समझ रहे हो, मैं वैसा तो एक शब्द भी नहीं कहती।

[हीरा का प्रवेश]

हीरा—मोटर तैयार है सरकार!

मिस्टर पुरी—मनोज बाबू से पूछो, वह स्टेशन चलेंगे

या (श्यामा की ओर देखकर) यदि तुम लोग न चाहो, तो न चलो।

मिसेज़ पुरी—(शङ्कित-सी) मैं तो चलूँगी।

मिस्टर पुरी—(हीरा की ओर देखकर अपनी टाई सँभालते हुए) जाओ, मनोज बाबू को खबर कर दो।

दूसरा दृश्य

दिन वही, समय मध्याह्न।

[मिस्टर पुरी के बँगले का दूसरा कमरा। दीवारें सादी, स्वच्छ कारनिस के ऊपर एक सुकुमार और मधुर युवक का चित्र रक्खा है और वैसा ही एक १६ वर्ष का युवक गले में रेशमी रूमाल लपेटे रेशमी पैजामा और कुर्ता पहने, रेशमी काले लहराते-से बालों को हाथों से समेटे, किसी की प्रतीक्षा में बैठा है।

उस युवक की दृष्टि में उन्माद, अस्थिरता और स्निग्धता का इतना विचित्र समावेश है कि कोई भी उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। उसमें बालिका-सी लज्जा और कविता-सी मधुरता है।

दाहिनी ओर के द्वार से—जो ठीक उससे पीछे है—मिस्टर पुरी का प्रवेश।]

युवक—(कम्पित कंठ से) रानी !

मिस्टर पुरी—(अपना मानसिक उद्वेग भरसक दवाकर) नहीं, मैं हूँ मनोज, मैंने सोचा कि मैं भी तुम्हारे अप्रकाशित स्वप्न लोकों में से एक लोक छीन लाऊँ। क्या तुम वास्तव में हर समय स्वप्न ही देखा करते हो ?

मनोज—(उसकी ओर देख कर) क्योंकि स्वप्न ही इस संसार की एकमात्र वास्तविकता है। यथार्थ जीवन में तो किसी रस, किसी भी भावना की पुनरुक्ति असंभव है। मिस्टर पुरी, अपनी आत्मा को जान कर, मनुष्य स्वप्नों में ही रहना चाहता है (सहसा लज्जित होकर) पर...आप बैठ जाइये। [उठकर खड़ा हो जाता है और पीछे एक मेज से टकरा जाता है। मिस्टर पुरी मुस्कराकर उसे सँभालते हैं और उसके कन्धे पर हाथ रख-कर प्रेम-पूर्वक उसे अपने पास बैठा लेते हैं]

मिस्टर पुरी—आज साँझ को मैं 'लेबर इन्टेलिजेन्स ब्यूरो' में व्याख्यान दूँगा, तुम चलोगे ?

मनोज (नतमस्तक) मैं व्याख्यानों में विश्वास नहीं करता।

मिस्टर पुरी—(हँसकर) मैं तुम्हारे विश्वासों में विश्वास नहीं करता।

मनोज—(सहसा उनकी ओर देखकर) यही आपकी एक-मात्र सार्थकता है

मिस्टर पुरी—(कृत्रिम प्रफुल्लता से) तो तुम व्याख्यानों में विश्वास नहीं करते ?

मनोज—मैं व्याखानदाताओं में विश्वास नहीं करता। उनके लिये परिश्रम, तर्क, बुद्धि, ज्ञान, सामाजिक या व्यक्तिक किसी भी गुण की आवश्यकता नहीं है... ..

मिस्टर पुरी—(अप्रतिभ होकर) हूँ।

(कुछ देर नीरवता रहती है)

मनोज—(सहसा) मैं आप से एक बात कहना चाहता हूँ।

मिस्टर पुरी—(त्रस्त नेत्रों से उसकी ओर देखते हैं)

मनोज—(मानसिक विप्लव को भरसक दबा कर) मैं आपकी धर्मपत्नी से प्रेम करता हूँ।

मिस्टर पुरी—(जैसे उन्हें अपने ऊपर विश्वास न हो) ठीक है, उसको सभी प्रेम करते हैं, वह ऐसी सुन्दरी है, उसकी आत्मा ऐसी अपूर्व है, वह ऐसी सुन्दरी है, ठीक है।

मनोज—मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ।

मिस्टर पुरी—तब तुम मुझ पर अन्याय कर रहे हो ! यदि ऐसे कठिन और विकराल सत्य को तुम हँसी में नहीं कह रहे हो। यदि तुम इसे अपनी कविता की तरलता और सरलता नहीं दे सकते, तो तुम मुझ पर अन्याय कर रहे हो। मनोज, यह तुम्हारा अन्याय है !

मनोज—यह आपका भ्रम है मिस्टर पुरी, मैं आपके ही अन्तर से यह बात आपसे कहना चाहता हूँ। मैं आपके अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर आप से कहना चाहता हूँ कि 'श्यामा' आपकी नहीं है, वह मेरी है।

मिस्टर पुरी—तुम्हारी ! तुमने अभी उसे मेरी धर्म-पत्नी कहा है, अधर्मी, निर्लज्ज !

मनोज—(व्यवस्थित) तुम मुझे केवल कटु वचन कह सकते थे और अब तुम अप वचन भी कह रहे हो।...पर श्यामा तुम्हारी नहीं है !

मिस्टर पुरी—(उत्तेजित स्वर में) क्यों ?

मनोज—क्योंकि समाज की एक हृदय हीन लौह-विधि ने ही उसे तुम्हारी बनाया है, तुमने उसे पाने के लिये क्या त्याग किये हैं तुम्हारा उसपर क्या स्वत्व है ?

मिस्टर पुरी—(एक शहीद के स्वर में) मैं उसे प्यार करता हूँ।

मनोज—(हँसकर) तुम उसे प्यार करते हो और तुम इस विडम्बना को अपने जीवन का अङ्ग बनाये हुए हो।

मिस्टर पुरी—(विकंपित और उत्तेजित स्वर में) मैं उससे प्रेम करता हूँ।

मनोज—तुम, जिससे उसकी एक भावना भी नहीं मिलती। तुम, जो उसे एक निर्जीव लता के समान अपने अङ्ग में लपेटे रहना चाहते हो। तुम, जो केवल अपनी शारीरिक वासनाओं को तृप्त करना चाहते हो। तुम उसे प्यार करते हो? तुम, जो अपने सर्वोत्तम रूप में भी उसके साधारण-से-साधारण त्याग से निकृष्ट हो।

मिस्टर पुरी—(अत्यधिक उत्तेजित होकर) मैं उसे प्रेम करता हूँ।

मनोज—ठीक है, तुम उसे प्रेम करते हो, जिसको आशाओं और अभिलाषाओं की बलि करके तुमने अपने इस जीवन को रस दिया है। तुममें और उसमें क्या समानता है, तुम किस प्रकार उसके योग्य हो?

मिस्टर पुरी—(क्रोध से काँपते हुए) निकल जा मेरे घर से, निर्लज्ज! (उसे मारने दौड़ते हैं)

मनोज—(चीख कर) देखो, मेरे पास मत आना! मिस्टर पुरी, मैं आत्मघात कर लूँगा, अगर तुमने मुझे छुआ। मैं अपने जीवन का अन्त कर दूँगा!

मिस्टर पुरी—(तनिक शान्त होकर) कायर!

मनोज—(वैसा ही अव्यवस्थित) तुम मेरी हत्या कर सकते हो। तुम, तुम, कायर तुम हो।

मिस्टर पुरी—(शान्त होकर) अच्छा आओ, मैं तुमसे शान्त भाव में बातें करना चाहता हूँ। मैं...मुझे क्षमा कर दो।

मनोज—(वैसेही) नहीं, मैं रानी से कहूँगा, तुम मेरी हत्या कर सकते हो।

मिस्टर पुरी—नहीं, इससे क्या लाभ। यहाँ आओ, मैं देखता हूँ कि मेरा-तुम्हारा केवल सैद्धान्तिक मत-भेद है। आओ, हम स्थिर चित्त होकर बातें करें।

मनोज—(वैसे ही) नहीं, मैं रानी से कहूँगा, तुम मेरी हत्या कर सकते हो।

[बाहर मिसेज पुरी का कण्ठ-स्वर सुन पड़ता है। दोनों एकाग्र होकर उसी ओर ध्यान देते हैं।]

मि० पुरी—(व्यग्र होकर) नहीं मनोज, इससे कोई लाभ नहीं। क्या तुम उसकी सहानुभूति भी मुझसे छीनना चाहते हो? क्या तुम चाहते हो कि वह मुझे एक पतित ईर्ष्यालु मनुष्य समझे? मैं तुम से विनय करता हूँ, इसमें कोई लाभ नहीं है मनोज।

मनोज—(सहसा स्वस्थ होकर) तब वह तुम्हारी कभी नहीं हो सकती। आह! तुम उससे अपना यथार्थ स्वरूप छिपाते हो। मैंने तुम्हारा वास्तविक रूप देखा है, और मैं तुमसे सहानुभूति करता हूँ। वह उसे नहीं जानती और तुमसे घृणा करती है।

मि० पुरी—(हताश होकर) आह!

[सहसा मिसेज़ पुरी का एक श्वेत साड़ी में प्रवेश। उसके केश रूखे और बिखरे हुए हैं। उसकी आकृति चाँदनी के समान सरल है। उसके आते ही मिस्टर पुरी व्यस्त दीखने का प्रयत्न करते हैं और एक क्षण चित्र की ओर देखकर गुनगुनाते हैं। दूसरे क्षण रेलवे टाइमटेबिल उठाकर पढ़ने लगते हैं]

मिसेज़ पुरी—(मनोज की ओर देखकर) मैं तुम्हारी कब से प्रतीक्षा कर रही हूँ मनोज!

मनोज—रानी, मैं ....

[मिस्टर पुरी एक क्षण में आग्नेय और दूसरे में विनय-पूर्ण नेत्रों से देखते हैं]

मिसेज़ पुरी—अच्छा, अच्छा, आओ बाग़ में चलो; पर मैं तुम्हें तितलियाँ न पकड़ने दूँगी!

[वह उसे बांह पकड़ कर बाहर ले जाती है। मिस्टर पुरी उनकी ओर कातर दृष्टि से देखते हैं।]

मिसेज़ पुरी—(द्वार के पास सहसा मुड़कर) आप आज साँझ कहाँ भोजन करेंगे, कपूर के रेस्ट्रॉं में? मैं मनोज को मिसेज कौल के यहाँ ले जाऊँगी।

मिस्टर पुरी—मैं आज भोजन न करूँगा।

मिसेज़ पुरी—(तनिक चिन्तित होकर) क्यों, तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? (सहसा लौट पड़ती है और उनके पास जाकर) देखती हूँ, तुम्हें अपनी तनिक भी चिन्ता नहीं है।

[मिस्टर पुरी दूसरी ओर शून्य भाव से ताकते हैं]

मिसेज़ पुरी—अच्छा मनोज, तुम थोड़ी देर पार्क में हो आओ। एक सिगरेट, केवल एक सिगरेट पीना।

[मनोज गुनगुनाता हुआ चला जाता है। मिसेज पुरी, मिस्टर पुरी के पास बैठ कर, उनसे बातें करने की चेष्टा करती हैं]

घृणित आक्षेप

लेखक
श्रीयुत विशम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

'हंस' की अगस्त सन् १९३३ की संख्या में श्री० जगमोहन गुप्त-द्वारा लिखित निरालाजी के 'अप्सरा' उपन्यास की आलोचना प्रकाशित हुई थी। उस आलोचना का उत्तर अर्द्ध मासिक 'सुधा' की १ अक्टूबर की संख्या में दिया गया है। मुझे 'गुप्तजी'-द्वारा लिखित आलोचना के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है; क्योंकि जो व्यक्ति 'अप्सरा' तथा गुप्तजी की आलोचना दोनों को पढ़ेगा, वह स्वयं समझ लेगा कि आलोचना कैसी है; परन्तु श्री० कुँवर चन्द्रप्रकाश-सिंह-द्वारा लिखित उक्त आलोचना के उत्तर अथवा प्रत्यालोचना के सम्बन्ध में मुझे अवश्य कुछ कहना है; क्यों कि उसमें प्रेमचन्द्जी पर कुछ ऐसे दोषारोपण किये गये हैं, जिनके वह रंचमात्र भी दोषी नहीं हैं। सबसे पहले कुँवर साहब ने यह शङ्का की है कि जगमोहन गुप्त एक काल्पनिक नाम है, इस नाम का कोई व्यक्ति हिन्दी-संसार के सामने अभी तक नहीं आया। कुँवर-साहब के लिखने के ढंगसे यह भी प्रतीत होता है कि उनका ऐसा ख़याल है कि प्रेमचन्द्रजी ने उक्त आलोचना किसी को 'डिक्टेट' कराई है और उसपर जगमोहन गुप्त का काल्पनिक नाम देकर उसे 'हंस' में छाप दिया। इसके सम्बन्ध में कुँवर साहब से मैं यह कहूँगा कि यदि कुँवर साहब मासिक-पत्रों को पढ़ते रहते हैं, तो उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि श्री जगमोहन गुप्त, एक नये कहानी लेखक की हैसियत से हिन्दी-संसार के सम्मुख आये हैं और उनकी कहानियाँ इधर दो-तीन वर्षों से 'विशालभारत' 'हंस' और कदाचित 'माधुरी' तथा कलकत्ते के दो-एक साप्ताहिक-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। यदि कुँवर साहब को विश्वास न हो, तो वह 'विशालभारत' तथा 'माधुरी' के सम्पादकों से पूछ देखें। 'सरस्वती' सम्पादक पं० देवीदत्त शुक्ल भी गुप्तजी को जानते हैं। उनसे भी पूछ सकते हैं। यह कोई दलील नहीं है कि यदि कुँवर साहब गुप्तजी को नहीं जानते, तो उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह तो वैसी ही बात है कि जैसे मैं कहूँ कि कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह नाम का कोई व्यक्ति नहीं है; क्योंकि मैंने इसके पूर्व उनका नाम कहीं नहीं देखा—और यदि देखा हो, तो स्मरण नहीं।

दूसरी शङ्का, जो कुँवर साहब ने उठाई है, वह यह है कि स्वयं प्रेमचन्द्जी ने 'उक्त' आलोचना निकलवाई है और उक्त आलोचना में निरालाजी के विरुद्ध जो आवाज़ है, वह प्रेमचन्द्जी की आवाज़ है और यह आवाज़ इसलिए निकली है कि श्री नलिनीविलोचन शर्मा ने 'अप्सरा' की बहुत ही प्रशंसा की है और उसे प्रेमचन्द्जी के उपन्यासों से श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है। इसके संबंध में मैं यहाँ जो बातें लिख रहा हूँ—मुझे विश्वास है कि उनसे कुँवर साहब का भ्रम दूर हो जायगा।

श्री नलिनीविलोचन शर्मा की आलोचना प्रकाशित होने के छः-सात मास पूर्व ही गुप्तजी ने आलोचना लिख डाली थी और एक पत्र में प्रकाशित होने के लिए भेज भी दी थी। मुझे इस बात का पता था और मैंने इसकी सूचना 'सुधा'-सम्पादक श्री दुलारेलालजी को भी दे दी थी। मैं एक कार्यवश दुलारेलालजी से मिलने गया था, उसी समय प्रसङ्ग आने पर मैंने उनसे कहा था कि 'अप्सरा' की आलोचना लिखी गई है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। जिस पत्र में पहले-पहल आलोचना भेजी गई थी, उसके सम्पादक ने उसे यह कह कर वापस कर दिया था कि 'आलोचना बहुत बड़ी है, यदि इसे कुछ छोटा कर दिया जाय, तो छापी जा सकती है।' गुप्तजी ने आलोचना को छोटा करना उचित न समझ कर उसे 'हंस' में छपने के लिए भेज दिया। गुप्तजी 'हंस' के लेखक हैं; इसलिए प्रेमचन्द्जी ने आलोचना को वापस तो नहीं किया; पर टालते रहे। उनसे जब-जब उसे छापने के लिए कहा गया, तब-तब उन्होंने यहीं उत्तर दिया कि, 'मैं छाप तो दूँ; पर लोग यह समझेंगे कि मैंने ही द्वेष-वश यह आलोचना निकलवाई है।' इस प्रकार उक्त आलोचना तीन-चार महीने 'हंस' कार्यालय में पड़ी रही। अन्त में जब प्रेमचन्द्जी पर बहुत दवाव पड़ा और उन्हें उनके सम्पादकीय कर्तव्य का स्मरण दिलाया गया, तब विवश होकर उन्होंने उक्त आलोचना को छापा।

दुर्भाग्य से 'हंस' के सम्पादक प्रेमचन्द्जी हैं और वही प्रेमचन्द्जी हैं, जिन्हें हिन्दी-संसार सफल उपन्यास-लेखक

तथा कहानी लेखक मानता है ; इसलिये कुँवर साहब ने झट यह विश्वास कर लिया, कि इस आलोचना में प्रेमचन्दजी का हाथ है । इसके तो यह अर्थ हैं, कि कोई सम्पादक, जो स्वयं कहानी-लेखक और उपन्यास-लेखक है, किसी उपन्यास की आलोचना अपने पत्र में नहीं छाप सकता यदि छापेगा, तो उस पर ईर्ष्या तथा द्वेष का दोष मढ़ा जायगा ।

कुँवर साहब ने अपनी प्रत्यालोचना में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि प्रेमचन्दजी का युग बीत गया । अब वह कुछ नहीं लिख सकते और उन्होंने अब तक जो कुछ लिखा है वह 'निरालाजी' के 'अप्सरा' उपन्यास के समक्ष कुछ नहीं है । 'निरालाजी' के चार सौ पृष्ठ प्रेमचन्दजी के दस हजार पृष्ठों से श्रेष्ठ हैं । मेरी समझ में नही आता कि गुप्तजी की आलोचना की प्रत्यालोचना में इन बातों की क्या आवश्यकता थी ? यदि गुप्तजी ने अपनी आलोचना में यह लिखा होता कि निरालाजी की 'अप्सरा' प्रेमचन्दजी के उपन्यासों के मुकाबले में सर्वथा रद्दी है, तब तो कुँवर साहब का उक्त बातें लिखना युक्ति-संगत था ; परन्तु जब गुप्तजी ने कहीं ऐसी तुलना नहीं की, तब ऐसी बातें लिखना यह प्रकट करता है कि उक्त बातें लिखने से कुँअर साहब का यह मतलब है कि हिन्दी-संसार निरालाजी को प्रेमचन्दजी से श्रेष्ठ उपन्यासकार मानने लगे ; परन्तु मेरा अपना निजी अनुभव यह है कि हिन्दी-संसार इतना बेवकूफ़ नहीं है कि किसी चीज़ को दो-चार आदमियों के कहने से—वे आदमी चाहे जितने बड़े विद्वान क्यों न हों—अच्छा या बुरा मानने लगे । प्रत्येक समझदार पाठक किसी पुस्तक को पढ़कर अपनी सम्मति स्वयं बनाता है । उस पर दो चार विद्वानों की सम्मतियों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता ; क्योंकि प्रत्येक समझदार पाठक यह जानता है कि किसी पुस्तक के विषय में दो-चार विद्वानों की अनुकूल सम्मतियाँ प्राप्त कर लेना, किसी भी प्रभावशाली लेखक तथा प्रकाशक के लिये बाँए हाथ का खेल है । विशेषतः ऐसी दशा में जब कि कुछ प्रकाशकों तथा लेखकों का यह ढंग ही है कि अपनी पुस्तकें ऐसे लोगों के पास भेजकर, जो उनके मित्र हैं अथवा जिनपर उनका कुछ प्रभाव है, उनसे सम्मति अथवा अच्छी आलोचना लिखकर भेजने की प्रार्थना करते हैं । यदि पुस्तक अच्छी हुई, तब तो कोई बात नहीं और यदि पुस्तक प्रशंसा के योग्य न हुई, तो जो अपने अन्तःकरण की हत्या नहीं करना चाहते, वे चुप्पी साध जाते हैं, या अवकाश न मिलने का बहाना करके पिण्ड छुड़ा लेते हैं ; परन्तु, कुछ ऐसे भी होते हैं, जो यह सोचते हैं कि यदि उनके थोड़ा-सा कलम घिस देने से उनके मित्र लेखक या प्रकाशक का कुछ भला होता है, तो क्या हर्ज है । यह मैं अपने निजी अनुभव से लिख रहा हूँ, सुनी सुनाई नहीं है ; क्योंकि मेरे पास भी बहुधा सम्मति तथा आलोचना के लिये पुस्तकें तथा प्रार्थनाएँ आती हैं ; परन्तु, मैंने तो ऐसी प्रार्थनाओं पर ध्यान देना ही छोड़ दिया । पहले दो-तीन बार मैंने ध्यान देने की गलती की थी। पुस्तक के दोष लिख कर भेजे—गुण तथा दोष दोनों लिख कर भेजे । प्रकाशक महोदय ने दोष-सूचक सम्मति को छापा ही नहीं और उस दिन से पुस्तकें भेजना भी बन्द कर दिया और साथही पुस्तक के लेखक महोदय भी रुष्ट हो गये । मैंने भी सोचा, चलो पिण्ड छूटा । जिसमें गुण तथा दोष दोनों दिखाये, उसमें का गुण-सूचक स्थल तो छाप दिया और दोष-सूचक स्थल को साफ़ डकार गये । तब से मैंने सम्मतियाँ तथा आलोचनाएँ लिखना ही बन्द कर दिया ; क्योंकि अभी तक हिन्दी-संसार में वह दिन नहीं आया है, जब कि लेखकगण अपनी कृतियों की खरी अथवा विरुद्ध आलोचना को सहन कर सकें । विरुद्ध आलोचना को सहन करने वाले इने-गिने लोग हैं । अधिकांश ऐसे हैं कि विरुद्ध आलोचना करने वाले के विरोधी बन जाते हैं और कुछ तो ईश्वर की दया से ऐसे हैं कि विरुद्ध आलोचना करने वाले तथा छापने वाले दोनों से फौजदारी करने पर तैयार रहते है । उनका वश चले, तो लेखक से लेकर प्रूफ़ रीडर तक—सबको गोली मार दें । ऐसे दूषित वायु-मण्डल में कौन भला आदमी खरी आलोचना करने का साहस कर सकता है । कुँवर साहब गुप्तजी की सीधी-सादी आलोचना पर इतने जामे से बाहर हो गये कि गुप्तजी के अस्तित्व को भी मिटा दिया ! उन्हें आलोचना करने का अधिकारी भी नहीं समझा और साथ में प्रेमचन्दजी को भी जली-कटी सुना दी । स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा ने पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र 'विद्यावारिधि' (मुरादाबाद) द्वारा-लिखित बिहारी-सतसई की टीका पर आलोचना लिखी थी । वह

आलोचना आचार्य द्विवेदीजी के सम्पादन-काल में 'सरस्वती' में धारावाहिक रूपसे कई मास तक प्रकाशित हुई थी। उस आलोचना में शर्म्माजी ने मिश्रजी को इतनी बुरी तरह लताड़ा था कि यदि वैसी बातें कुँवर साहब अथवा उनके किसी प्रिय लेखक के सम्बन्ध में आजकल कोई लिखे, तो कुँवर साहब शायद उसका खून करने पर कटिबद्ध होजायँ। परन्तु, शर्म्माजी तथा मिश्रजी में कोई विरोध हुआ हो, यह कभी सुनने में नहीं आया।

प्रत्यालोचना की अन्य बातों के संबंध में तो गुप्तजी जानें; परन्तु भाषा-संबंधी एक-दो बातों के संबंध में, हिन्दी के नाते, मुझे कुछ कहना ही पड़ रहा है। निरालाजी ने 'अप्सरा' में चादर को स्त्री-लिङ्ग न लिखकर पुल्लिङ्ग लिखा है। उन्होंने लिखा है—'चादर ओढ़ लिया।' गुप्तजी ने 'चादर' को स्त्री लिङ्ग माना है। इस पर कुँवर साहब अपनी प्रत्यालोचना में लिखते हैं—'हिन्दी के स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए व्याकरण-विचार हिन्दी के अनुसार होना चाहिए। चादर शब्द का प्रयोग कोई स्त्री लिङ्ग में भले ही करे; पर उसका स्वरूप पुल्लिङ्ग में ही आता है।'

यहाँ कुँवर साहब ने उर्दू व्याकरण के अनुसार चादर को स्त्री लिङ्ग नहीं माना। चादर को स्त्री लिङ्ग मानने से हिन्दी के स्वातंत्र्य की हत्या होती थी; क्योंकि व्याकरण-विचार हिन्दी के अनुसार होना चाहिए। समझ में नहीं आता कि कुँवर साहब यह किस आधार पर कहते हैं कि चादर हिन्दी में पुल्लिङ्ग मानी जाती है। मैंने तो जहाँ कहीं भी सुना या पढ़ा, चादर को स्त्री लिङ्ग में ही व्यवहृत होते देखा। आगे चलकर कुँवर साहब लिखते हैं—'अजी जनाब, 'सुबह' अरबी का शब्द है और उस भाषा से इसका प्रयोग पुल्लिङ्ग में ही होता है, और इसीलिए यदि 'निरालाजी' ने सुबह का प्रयोग पुल्लिङ्ग में किया है, तो वह बिल्कुल उचित है। कहाँ तो कुँवर साहब हिन्दी के स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए उसमें उर्दू-लिंगों का व्यवहार पसंद नहीं करते और कहाँ अब 'सुबह' को हिन्दी में इसलिए पुल्लिङ्ग ही रखना चाहते हैं कि अरबी में वह पुल्लिङ्ग बोली जाती है। यहाँ हिन्दी के स्वातंत्र्य की रक्षा का ख़याल कुँवर साहब ने छोड़ दिया!

'हाथ आप-ही-आप उठकर कनक के गले पर रख गया।' इस वाक्य के संबंध में कुँअर साहब लिखते हैं—'आलोचक को व्याकरण का कुछ भी ज्ञान नहीं, उसे वाच्य तक का बोध नहीं। यह वाक्य कर्म-वाच्य (Passine Voice) में है, जिसका अर्थ है (Was Placed)।' रख गया का कर्म-वाच्य है—रक्खा गया, उसे कदाचित कुँवर साहब भूल ही गये। 'रख गया' को कर्म-वाच्य कहकर कुँवर साहब ने अपने व्याकरण-ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है। वास्तव में कुँवर साहब-जैसे व्याकरणाचार्य के सामने—जो कर्तृवाच्य को ज़बरदस्ती कर्म-वाच्यप्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं—गुप्तजी अबोध ही हैं।

छोटे ताले को ताली किस भाषा में कहते हैं, यह कुँवर साहब ने बताने की कृपा नहीं की। हिन्दी में तो किसी भी ताले को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, ताली नहीं कहते।

अन्त में मैं कुँवर साहब से इतना अवश्य निवेदन करूँगा कि इस प्रकार की प्रत्यालोचनाओं से वह न 'निरालाजी' का कोई हित कर सकते हैं और न हिन्दी-संसार का। प्रत्येक व्यक्ति को किसी पुस्तक की आलोचना करने का अधिकार है—और यह भी आवश्यक नहीं है कि आलोचना में केवल दोष ही दिखाए जाँय, या केवल गुण ही। यह तो आलोचक की समझ की बात है। यदि उसकी समझ में पुस्तक में दोष अधिक हैं और गुण कम, तो वह दोष ही दिखायगा और यदि गुण अधिक हैं और दोष कम, तो वह केवल गुणों का ही दिग्दर्शन करायगा और यदि वह गुण और दोष दोनों का ज़िक्र करे, तब तो कहना ही क्या, बड़ी उत्तम बात है। परन्तु, केवल दोष अथवा केवल गुण का ज़िक्र करने वाले को हम बुरा नहीं कह सकते अथवा उसपर विरोध या पक्षपात का दोष नहीं लगा सकते। चन्द्रमा के सौन्दर्य की प्रशंसा करते समय कवि उसके कलंक की बात भूल जाता है और संखिया की भयानकता का जिक्र करते हुए लोग यह भूल जाते हैं कि वह—भस्म होने के पश्चात्—अमृत भी बन सकता है। मनुष्य आधिक्य को ही देखते हैं। जिसमें जिस बात का आधिक्य होगा, सब से पहले उसी बात पर दृष्टि पड़ेगी।

केवल अनुमानों के बल पर किसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पर कीचड़ फेंकना अच्छी बात नहीं है। प्रेमचन्दजी ने

हिन्दी-साहित्य में जो उच्चासन प्राप्त किया है, वह अपने क़लम के ज़ोर से प्राप्त किया है। किसी ने कृपा करके, या उनपर तरस खाकर नहीं बख्शा है और न उन्होंने ज़बर-दस्ती हड़प लिया है। अब यदि कोई योग्य व्यक्ति प्रेमचन्द-जी के बराबर बैठना चाहता है, अथवा उनसे ऊँचा आसन प्राप्त करना चाहता है, तो उसे कुछ क़लम का जोर दिखाना चाहिये। प्रेमचन्दजी को उस आसन से नीचे गिराने का कुत्सित प्रयत्न करने से ही किसी को उनका आसन नहीं दिलाया जा सकता और न यह शोर मचाने से ही उनका आसन डिगाया जा सकता है कि 'प्रेमचन्दजी का युग बीत गया।' युग तो एक-न-एक दिन सबका बीत जाता है। आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सम्पादन करके जो अमरपद पाया है, वह आज भी उन्हें प्राप्त है, यद्यपि अब वह न 'सरस्वती' का सम्पादन ही करते हैं और न कोई मार्के की पुस्तक या लेख ही लिखते हैं। द्विवेदीजी का युग बीत गया है; परन्तु वह अपने आसन पर आज भी विराजमान हैं और हिन्दी के इतिहास में सदैव उसी आसन पर विराजमान रहेंगे। यदि किसी का युग बीत जाने पर संसार उसकी सेवाओं को भूल जाने का अभ्यस्त होता, तो आज संसार के इतिहास में वीरों, महात्माओं, कवियों तथा लेखकों का नाम भी ढूँढे न मिलता। उपन्यास-लेखन-कला प्रेमचन्दजी या अन्य किसी के साथ समाप्त नहीं हो सकती। एक के पश्चात् दूसरा उत्पन्न होता ही रहता है। यदि किसी में योग्यता होगी, तो वह लाख विरोध होने पर भी प्रेमचन्दजी के बराबर अथवा उनसे ऊँचा स्थान प्राप्त कर ही लेगा और यदि योग्यता न होगी, तो उसके लिये लाख ढोल पीटे जाने पर भी कोई लाभ न होगा। यदि केवल विज्ञापनबाज़ी, प्रशंसात्मक लेखों तथा सम्मतियों से ही विक्टर ह्यूगो, स्काट, टालसटाय इत्यादि जैसे प्रतिभाशाली लेखकों की सृष्टि होने लगती, तो आज हिन्दी-संसार में जिस ओर दृष्टि उठाई जाती, उस ओर इन्हीं महात्माओं के दर्शन होते।

यदि प्रत्यालोचना में कुँवर साहब ने प्रेमचन्दजी पर घृणित आक्षेप न किये होते, तो मैं यह लेख कदापि न लिखता; परन्तु उन पर जब ऐसे घृणित आक्षेप किये गये और मैं यह जानता हूँ कि वे आक्षेप सर्वथा निर्मूल तथा भ्राँति-जनक हैं, तो मैंने कुँवर साहब-द्वारा फैलाये हुए भ्रम को दूर करना अपना कर्त्तव्य समझा।

आज-कल हिन्दी-संसार में दल-बन्दी का ज़ोर है; अतएव सम्भव है, कुँवर साहब तथा उनके-जैसे विचार रखने वाले लोग, मुझे भी प्रेमचन्दजी का हिमायती और निरालाजी का विरोधी समझ लें; परन्तु मैं हिन्दी-संसार को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल में नहीं हूँ और न मेरा अपना कोई दल है। हाँ, आवश्यता पड़ने पर जो बात मुझे ठीक जँचेगी, वह मैं अवश्य कहूँगा—वह चाहे किसी दल के विरुद्ध पड़े, या पक्ष में, किसी दल से भय खाकर, या किसी दल की मुरव्वत करके मैं अपने विचार प्रकट नहीं कर सकता; क्योंकि, ईश्वर की दया से मुझे टालस्टाय स्काट, अथवा विक्टर ह्यूगो बनने का खब्त नहीं है। मुझ में इतनी योग्यता ही नहीं है कि मैं उनकी चरण-रज तक की समानता करने का ख़याल भी अपने दिल में ला सकूँ।

लोरी (गीत)

किरण-तल्प बिछ गई अतुल
अब सोओ, सोओ, मधुवाले।
श्यामघनों में तड़ित-लली सी
सोओ, सोओ, मधुवाले।
मूँदो अलसित पलक-पाँखुरी,
मृदु-मृदु बजती पवन-बाँसुरी,
नयन-मंच पर स्वप्न-अप्सरी
रास रचेगी अब बाले।
नखत-मालती-माल पहन तुम
सोओ, सोओ, मधुवाले।
ज्योति शिथिल अब दीपावलियाँ,
मूँद रहा जग पलकावलियाँ,
इन्दु-अङ्क में ज्योत्स्ना मोयो,—
रश्मि-सेज पर तुम बाले।
अयि, कुमुदिनि में रजत-विभा-सी
सोओ, सोओ. मधुवाले।

श्री गिरीशचन्द्र पन्त 'अनङ्ग'

रोज़े

लेखक—श्रीयुत जनार्दनराय

रहमत टट्टू पर गुड़ लादे शहर जाता और मंडी में सुबह से शाम तक बैठा रहता। जब शाम हो जाती और मंडी में सुन-सान हो जाता, तब चिड़ियाँ, कबूतर, और फाख्तों के झुण्ड-के-झुण्ड उतर आते और दिन भर की तृष्णा को बुझाने में मग्न हो जाते। रहमत एक ओर बिल्ली की तरह बैठा रहता। जहाँ मौका देखता, एक चादर डाल देता। झपट्टे में दो-चार आही जाते। उन्हें पींजरे में सँभालकर रख लेता। बड़ी रात गये घर आता और रोटी खाई-न-खाई कि गुदड़ी में दुबक जाता। जब रहमत घर आता, तो रुकिया के कपाल पर आतुरता की सलवटें पड़ी हुई होतीं, आँखों में उद्वेग और आकांक्षा छल-छलाती। रुकिया फटी हुई अचकन सँभालती। एक फटे-से रूमाल की गाँठें खोलने में व्यस्त हो जाती। जब चौराहे पर नगाड़े बजने लगते, तब कहीं जाकर रुकिया गाँठ में से तीन-चार रुपये निकाल पाती। पर, जब तीन या चार रुपये देखती, तो दिल बैठ जाता; आँखों में भय और हृदय में एक ग्लानि फूट पड़ती। बड़ी देर तक उन्हें देखती रहती और निराशा के अंधेरे में बहुत ढूँढ़ने पर भी जब आशा की कोई किरण दिखाई न देती, तो आँसुओं की झड़ी लग जाती। अब कल क्या होगा? सेठ के गुड़ के ही चार रुपये देने हैं और बिक्री तो तीन में ही हुई है! न मालूम खुदा को क्या मंजूर है! आज महीनों हो गए, यही हिसाब चालू है। पहले रहमत शहर के कारखाने में नौकर था। दिन के पाँच आने पैसे पाता। रुकिया भी पत्थर ढोती और तीन आने गाँठ में बाँधती। इधर रहमत दिन भर काम करता। एक मिनट भी पैर फैला कर बैठ न पाता था। मैनेजर जालिम था। हाथ में हंटर लिए घूमता। कहीं कोई जम्हाई भी लेता, तो डपटता—सूअर, सुस्ती फैलाता है! निकाल दिया जाएगा!! रुकिया भी तनतोड़ मिहनत करती, फिर भी मैनेजर झल्लाता रहता—कामचोर कहीं की! देखती नहीं है!! रुकिया दूनी मिहनत करने को कमर कसती। मन-ही-मन खुदा से ताकत के लिये गिड़गिड़ाती। कभी-कभी रो पड़ती। उसकी साथिन कहती—रुकिया, क्यों रोती है? तो रुकिया कोई बहाना बनाने लग जाती। शाम को दोनों जने घर जाते। रास्ते में दोनों में से कोई कुछ न बोलता। अँधेरी या उजेली में नीरव सड़क पर चले जाते। सन-सन करके हवा बहती। पास में गीदड़ बोलते और कभी-कभी सूअर भी नजर आ जाते; पर भाग्य—दुर्भाग्य—के द्वारा पीसे हुए व्यक्तियों में से कोई कुछ न बोलता। घर पहुँच कर रुकिया दलिया बनाती, और रहमत के आगे मिट्टी के बर्तन में उँडेल कर रख देती। पास में प्याज कतर कर रखती। रहमत थकान मिटाने के लिये लेटा रहता, आवाज सुनते ही झट उठता और बरतन को मुँह से लगा लेता। रुकिया कहती—धीरे-धीरे खाओ न! रहमत हँस देता, कहता—खुदा ने जब यही बख्शा है, तो व्यर्थ चोंचले क्यों? पलथी मार कर दस्तरख्वान पर जमे हुए, बड़े-बड़े थाल में खाना अमीरों की तकदीर में है। उस परवरदिगार की नजर से कुछ छिपा नहीं है। मैं किस बूते पर धीरे-धीरे खाऊँ? है तो कोरा दलिया ही? रुकिया निःश्वास लेती और कहती—तब कोई रोजगार क्यों नहीं करते। कोई टट्टू होता, तो कुछ लाद कर बेंच आते।

आखिर एक दिन शहर में मजदूरों ने हड़ताल कर दी! बात यह थी कि काम करने पर भी मैनेजर ने रहमत को हंटर लगाए थे। उसने रहमत से कहा कि तुम हमारे जूते साफ कर दो, गर्द लगी है। रहमत ने जवाब दिया—मेरे बाप-दादा ने यह काम नहीं किया, साहब! मैं क्या मुँह लेकर करूँगा। हजूर के कारखाने में मजदूर हूँ, न कि जूते पोंछनेवाला।

मैनेजर ने इसपर हंटर लगाने शुरू किये। रहमत मार खाता रहा। मजदूरों ने यह देखा, तो उबल पड़े—यह भी कोई इन्सानियत है! हम मजदूर हैं, हड्डी का चूरा करते हैं और इनकी शाही जरूरतों की फसल बोते हैं। पर, फिर भी हम इन्सान हैं। हमारे दिल हैं। कुटुम्ब की शरम और बाप दादों का गरूर है। क्या हुआ, हम पेट की हाय-हाय के

मारे दिन-रात पसीना बहाते हैं, तो जूतियाँ हरगिज नहीं खाएँगे ! आज रहमत को पीटा, कल किसी को गोली मारी जायगी ! यह नहीं सहा जा सकता ।

'मजदूर-सेवा-संघ' के मंत्री ने जब यह घटना सुनी, तो चट से सभा की। भाषण हुए और रोष-सूचक प्रस्ताव भी पास हो गये। इस पर, मैनेजर आग-बबूला हो गया। महीना पूरा होने वाला था, आधी से ज्यादा मजदूरी काटता गया। इस पर आग और भी जोरों से भभकी। भरी सभा में रहमत ने भी अपना रोष-पूर्ण मनोभाव यों प्रकट किया—हम लोगों की मिहनत पर, ये धनी-मानी गुलछर्रे उड़ाते फिरते हैं ! शराब पीते हैं, कबाब खाते हैं, और कोफ़ते उड़ाते हैं ! जहाँ हम दलिया पी कर दिन काटते हैं, वहाँ मैनेजर के देश में मजदूर राज करते हैं। राजों की तरह बंगलों में रहते और लुत्फ़ उठाते हैं। वहाँ कोई उनकी ओर आँख तक नहीं उठा सकता, कचूमर निकाल दिया जाय! इस तरह देखें, वहाँ कोई मनमानी करवा तो ले! इस तरह देखें, वहाँ कोई हंटर मार तो दे ! जिन्दा गाड़ देते हैं। वहाँ मजदूरी तो खूब मिलती ही है, ऊपर से सिनेमा, थेटर और नाच का इन्तजाम अलग होता है। साफ़-सुथरी कोठरी भी मिलती है। हरेक कोठरी के आगे बगीचा लगा होता है। बिजली, नल और घरों में खिड़कियाँ, कुरसी, टेबल, पंखे वगैरह, कुछ न पूछो। और यहाँ ? शहर भर का कूड़ा-करकट हमारी ही कोठरियों के आगे जमा होता है। ऊपर से यह सितम ! भाइयो, अगर मर भी जायँ, तो परवाह नहीं ! पर जूतियाँ न सहेंगे !

पर, दूध के उफान की तरह कुछ समय तक ही जोश रहा। कारखाने की चहार दीवारी में जमघट अवश्य लगा रहा। 'वन्देमातरम्' के नारे भी लगाये जाते रहे ; पर, जब पुलिस के सिपाहियों ने बन्दूकें तानीं, तो सब अपनी-अपनी जगह जा खड़े हुए। सारा जोश हवा हो गया। अकड़ पानी होकर बह गई। केवल रहमत अपनी जगह पर खड़ा रहा। मैनेजर ने बाहर आकर चपरासी से कहा—इस सूअर को धक्का मार कर फाटक के बाहर कर दो !

तब से रहमत गांव के एक सेठजी का गुड़ मंडी में ले जाता और बेच आता। सेठजी आधा मन गुड़ देते और तीन रुपये रखवा लेते ; रहमत था सीधा आदमी, उसने अभी तक कारखाने में मशीन चलाना ही सीखा था। मंडी में जाता और एक ओर खड़ा हो जाता। बनिये, व्यापारी और ग्राहक आते, गुड़ देखते और मुंह विचका कर चल देते। अन्त में ३) का गुड़, दो-ढाई में ही बेच कर घर आना पड़ता। हाँ, कबूतर, फ़ाख्ते, तीतर और अन्य परिन्दों को पालने का उसे शौक था। कबूतरों को उड़ना, एक दूसरे को कागज भेजना और तरह-तरह के नाच सिखाता। तीतरों को भी कुछ न कुछ सिखाता। इस प्रकार सीखे हुए परिन्दों को मेले में जा कर बेच आता। अमीरों के यहाँ पहुँच जाता, और उन्हें कबूतरों की जोड़ी दिखला कर उन की सिफ़्तें भी बताता। इस तरह महीने के अन्त में दस-बारह रुपये कमा लेता। रुकिया भी पत्थर ढोना छोड़कर एक मुन्शी के यहाँ नौकर हो गई थी। पांच रुपये और खाना मिलता था। दिया-बत्ती के बाद वह घर आती और चूल्हा जलाती।

• • •

एक दिन रहमत बैठा-बैठा कबूतरों को चुगा रहा था कि गाँव का थानेदार आता दिखाई दिया। रहमत उठ खड़ा हुआ और अपने बैठने का टाट आगे सरका कर बोला—आइये सरकार, गरीब पर बड़ी मिहरबानी की !

थानेदार ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर कहा—मियाँ, शहर से एक रुक्का आया है कि तुम लोगों की जेबें काटा करते हो। देखो, हम पुलिस वाले ठहरे, खुदा के घर तक की खबर रखते हैं !

रहमत ने आश्चर्य से कहा—थानेदार साहब, दुनिया में मैंने किसी की ओर टेढ़ी निगाह की होगी, गालियाँ दी होंगी, सब कुछ किया होगा ; मगर तीन बातों की ओर देखा तक नहीं—चोरी, छिनाली और बदगोई। गरीब हूँ, जो मिलता है, खाता हूँ ; पर बेईमान और डाकू नहीं हूँ। अगर आप के पास रुक्का आया है, तो वह गलत है।

थानेदार साहब ने मूछों पर बल देते हुए कहा— हो सकता है ; पर हमने तुम्हें बचा लिया है। लिख दिया है कि रहमत ऐसा करता तो नहीं है ; पर निगाह रक्खी जायगी।

रहमत ने ज़मीन की ओर देखकर कहा—बड़ी मिहरबानी हुई थानेदार साहब ! और कोई हुक्म ?

थानेदार ने रहमत के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—रहमत ! लच्छू चमार की लड़की रम्मी को अगर

किसी तरह उड़ा कर ला दो, तो २५) नगद दे सकता हूँ।

रहमत ने आँखें फाड़-फाड़ कर थानेदार की ओर देखा, जैसे उसकी संज्ञा हत हो गई हो। थानेदार ने यह भाव देखा, तो बोले—इसमें कौन खून करना है रहमत! जब वह अकेली घर लौट रही हो, तो उठा लाना है। उसकी माँ तो एकही लाठी की है!

रहमत ने सिर झुका कर कहा—थानेदार साहब, हुकुम हो, तो पत्थर ढो दूँ, पाखाना उठा दूँ; पर यह काम मुझसे न होगा!

थानेदार ने जरा अधिकार का उपयोग करते हुए कहा—रहमत! मैंने सोचा था, कि तुम्हारा हाथ तंग है, मदद कर देता; पर तुम तो बेगार से मानोगे!

रहमत ने हाथ जोड़कर कहा—आप मालिक हैं, चाहें तो गाँव से निकाल कर बाहर करदें। चाहें तो हंटरों से चमड़ा उधेड़ दें; पर ईमान और अस्मत के खिलाफ न जाऊँगा। आप उसके हुस्न पर फिदा हैं, आप को यह होश नहीं कि वह भी खुदा की बेटी है, और आप भी उसी के बेटे हैं। किसी की इज्ज़त उतारना सरासर हराम है।

थानेदार आग-बबूला हो गया। गुस्से में पगड़ी ठीक करते हुए बोला—रहमत! अभी मौका है। सोचलो। फिर लाख अफसोस करोगे—कुछ न होगा। पानी में रहकर मगर से बैर बाँधना अच्छा नहीं होता।

रुकिया बाहर खड़ी यह सुन रही थी। अन्दर आई और बोली—तो थानेदार साहब, खुदा की दुनिया में रहते हुए उसी के खिलाफ काम करना अच्छा है? आप अन्धे होकर आए हैं। हुकूमत के नशे में किसी की इज्जत और आबरू बिगाड़ना आप के लिए सहज है; पर हम गरीब हैं। हम से ऐसा नहीं हो सकता। तशरीफ ले जाइए-फांसी पर लटकवा दीजिएगा!

थानेदार ने अपलक रुकिया की ओर देखना शुरू किया। कूड़े-करकट से भरी हुई छबड़ी में रतन था। मैले-कुचैले लिबास में रुकिया दीपक की धीमी और सुनहली शिखा के समान दीप्तिमान थी।

थानेदार बोले—अच्छा, याद रखना, मेरा नाम हुसेन-अली है। किसी दर का न रक्खूँगा!

रहमत ने थानेदार के पैर पकड़कर कहा—मुआफी चाहता हूँ थानेदार साहब, आप तशरीफ ले जाइए। उसका सुभाव बड़ा खराब है। थानेदार पागलों की तरह बकता हुआ चला गया। रुकिया ने पैजामा सुखाते हुए कहा—खुदा ने जो सोचा होगा, वही होगा। फिकर करने से फायदा? उसका जलवा आफताब से लेकर ज़र्रे-ज़र्रे में मौजूद है। ईमान की भूख उसको है। जहाँ वह अपना नूर देखता है, वहाँ वह ऐसा ही करता है!

रहमत के चहरे पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच आई थीं; रुकिया को यह कहते सुना, तो खिल उठा। झोली के सब दाने कबूतरों के सामने उलट दिये और बोला—तो फिर ठीक है रुकिया!

० ० ०

अँधेरी हो चुकी थी। रुकिया शहर से वापस आ रही थी। बीचमें एक पुल पार करना पड़ता था। रुकिया को कुछ खटका हुआ, चारों ओर सतर्क होकर देखा, तो कोई उसके पीछे-पीछे आ रहा था। छाती धड़कने लगी। उस दिन से उसके दिलमें खटका बना ही रहता था; इसलिए उसका डरना स्वाभाविक था। सोचा, शायद कुछ गुनगुनाने से रास्ता कट जाए। गाने लगी।

उतार-चढ़ाव के भेद को वह न जानती थी। कहाँ कंठ को धीमा और कहाँ तीव्र करना पड़ता है—इसकी उसे खबर न थी, फिर भी गाने में एक विचित्रता और करुणा थी। मन का भय, कुछ-कुछ आशंका और चिन्ता, गहरे पक्के रङ्ग की तरह उसमें मिली थी। सहसा किसीने सामने आकर हाथ फैला दिये—बस, वहीं खड़ी रह रुकिया!

रुकिया थर-थर कांप रही थी, बोली—थानेदार, साहब मर्द हुए हो! अकेली औरत पर इस तरह हमला करते हो?

थानेदार ने रुकिया के उपदेश की ओर ध्यान न दिया। झटसे हाथ पकड़ कर नीचे गिरा दिया। रुकिया ने खूब हाथ-पैर पछाड़े, पर तीन-चार जवानों के आगे कुछ करते-धरते न बना। थानेदार ने धीमें से हँसकर कहा—अब कहो, इस वक्त तुम्हारा खुदा कहाँ है?

सहसा थानेदार की पीठ पर लाठी का एक भरपूर हाथ पड़ा। खड़े-खड़े पेशाब कर रहे थे, कमान की तरह अकड़ गये। इतने में दूसरा हाथ पड़ा और थानेदार साहब वहीं ढेर हो गये। उनके साथी उनके पहले ही गायब हो गये

थे। मूर्ति धीरे-धीरे रुकिया की ओर बढ़ी और बोली—उठ, चल घर की ओर!

'तुम कहाँ से आ निकले?'—रुकिया ने आश्चर्य से पूछा।

'इधर ही आ रहा था, तुझको देखने। उस दिन थानेदार की आँखों में तेरी शकल खिंची देखी थी। आज देरी हुई, तो भागा आया। ठीक पहुँचा कि नहीं?'

'पर'—रुकिया ने दबी जबान में कहा—'यह जो ढेर हो गया?'

'तो क्या होगा रुकिया, फांसी के सिवा और क्या होगा हँसते-हँसते मरूँगा।'

अँधेरी रात थी; इसलिए रहमत ने रुकिया की आँसुओं से भरी हुई आँखों को न देख पाया।

घर पहुँचकर दलिया बनाया और खा-पीकर दोनों ने कुरानशरीफ का पारायण आरंभ किया।

• • •

थानेदार को चोट लगी थी; पर दम न निकला था। घण्टे-भर बाद होश आया। घर आए, तो, बीबी ने पूछा—लँगड़ा क्यों रहे हो?

थानेदार ने खटिया पर सोते-सोते कहा—आज मोड़ में डाका पड़ा था। जवान लेकर मौके पर गया, तो पुल पर घोड़ा चमका और मुझको पछाड़कर न मालूम कहाँ भाग गया। बड़ी बुरी चोट आई है।

रात भर मालिश होती रही और थानेदार कराहते रहे। चार-पांच दिन में जाकर थाने में शान्ति हुई; क्योंकि थानेदार साहब ठीक होकर आये थे। इतने दिन तक कान्स्टेबल खैर मनाते और मौज करते रहे। रात को बड़ी देर तक शराब का दौर चलता, नाच होते, और दिन में मेंढे लड़ाए जाते।

थानेदार ने आते ही हुक्म दिया—रहमत को हाजिर करो।

रहमत बैठा दरी बुन रहा था। हुक्म सुना, तो उठ खड़ा हुआ। अन्दर जाकर बोला—जाता हूँ रुकिया! पर देख, डिगना मत। खुदा इम्तहान ले रहा है। हमारी हिम्मत का इम्तिहान इसी वक्त होगा। खुदा के नाम पर, उसके उसूलों पर रहना, तेग की धार पर चलना है।

रहमत चला गया, तो रुकिया को मालूम हुआ, जैसे उसमें कोई शेर का उतसाह भर गया था। हिम्मत का दरिया जैसे लहराने लगा था। दिल में आनन्द था और आँखों में ईमान का नूर। रुकिया ने उल्लास से गुनगुनाना शुरू किया।

आज के आलाप में जो दिव्यता थी, वह जसे रुकिया को बेहोश कर रही थी।

तीन दिन बाद रहमत शहर की कोतवाली में भेज दिया गया। गबन के मामले और अन्धेरी रात में लच्छू चमार की छोकड़ी पर हमला करने के अपराध में चालान हुआ था। स्वयं लच्छू ने आकर बयान दिया और रम्मी ने आकर कोर्ट में रोना शुरू किया—मैं मर ही गई थी हजूर! पर ईश्वर ने बचा लिया!

रहमत ने कठघरे में खड़े-खड़े कहा—लच्छू! नाचीज़ दौलत के लिये धरम क्यों बिगाड़ते हो? तुम्हारी लड़की, जो मेरी ही लड़की है, भला मैं उस पर बुरी निगाह डालूँगा? उमिर-भर तो निगाह धरती से न उठाई, अब सफेदी होने पर बेटी पर......थू थू!

पर उसकी सुनता कौन था? थानेदार ने एक नहीं, दस गवाह ला खड़े किये। सबने एक ही बयान दिया। आखिर रहमत को दो साल की कड़ी कैद हो गई। जिस वक्त रहमत को कैद हुई, और कोठरी में बन्द किया गया, तो रहमत ने भारी हथकड़ियों से लदे हुए हाथ आसमान की ओर उठाए और बन्दगी की—खुदा! तेरे सिवा हमारा कौन सहारा है! इस दुनिया में गरीबों के लिये इन्साफ कहाँ है? तेरे सिवा हमारी पुकार कौन सुनता है?

• • •

रोज़े के दिन थे। रुकिया बड़ी श्रद्धा से रोज़ा रखती थी। आज रहमत को जेल गये एक वर्ष और ग्यारह महीने बीत चुके थे। रोज़ों के अन्तिम दिनों में रहमत छूटकर आ जायगा। रुकिया की आँखों के सामने से दो युग और कितने ही कठिन समय निकल गये थे। काम पर अब भी जाती थी। अब भी घर में वह चूल्हा जलाती; पर वह उत्साह कहाँ था, जो उसके दिल से प्रवाहित होकर, रहमत की दुखी आहों को मुखरित कर देता था! वह धधक, जो उसमें फूटकर रहमत को ईमान का शहीद बनाती थी, वह कहाँ थी?



एक दिन शाम को रुकिया बैठी-बैठी यही सोच रही थी। पास में घड़ा पड़ा हुआ था। रस्सी दिल की कसक को छिपाये फैल रही थी। बाल्टी मलते-मलते उसको यह विचार आया—उनका क्या कुसूर था? लच्छू ने कौन जनम की दुश्मनी निकाली? क्या ईमान के लिए बुरे रास्ते न जाना कोई जुर्म है? धीरे-धीरे अँधेरा हो चला। हवा के मारे पेड़ गुनगुना रहे थे। पास ही लच्छू चमार का घर था। लच्छू की माँ बैठी-बैठी चिमनी साफ कर रही थी। और रम्मी अन्दर रोटी पका रही थी। सहसा दो-तीन आदमी बुढ़िया के पास आ खड़े हुए। एक बोला—बुढ़िया, लच्छू ने कहा है कि रम्मी को उसके ससुराल भेज दो। हम अभी वहाँ जा रहे हैं।

बुढ़िया ने सिर ढँककर कहा—उसको घर आने दो। पूछ कर भेजूँगी। अभी तो उसके ससुराल से लिखा आया था कि उन्हें रम्मी की जरूरत नहीं है।

इतने में बुढ़िया पर एक ने झपटकर उसका मुँह पकड़ लिया और नीचे गिरा दिया। बुढ़िया न चिल्ला सकी, न चीख ही सकी। केवल अपने बलहीन हाथों से उस यमदूत को ढकेलने का भरसक प्रयत्न करने लगी।

रम्मी ने एक साथ इतने आदमियों को घुसते देखा, तो उठ खड़ी हुई, बोली—कौन है, इस तरह घर में घुसकर आने वाला?

थानेदार ने हँसते हुए कहा—यह तो मैं हूँ—रम्मी, अब बता, तू कहाँ भाग कर जायगी? रोज-रोज बहुत भागा करती थी; पर अब?

रम्मी ने अपने को छुड़ाने की बहुत कोशिश की; पर कुछ न कर सकी। थानेदार पशु की तरह उस पर टूट पड़ा।

इतने में रुकिया ने अन्दर आकर थानेदार के भरपूर लात जमाई। थानेदार लथड़ाकर एक ओर जा रहा। उसे उठ खड़े हुए देखा, तो क्रोध से काँपती हुई रुकिया बोली—तुम मुसलमान हो! रोजे के दिन में इस तरह किसी की अस्मत पर हमला करते शर्म नहीं आती? सच्चा मुसलमान दूसरों की ओर बुरी निगाह तक नहीं डालता! तुम्हारे जैसे नापाक, जब से पाक इस्लाम में पैदा हुए, तभी से ईमान की आग बुझती गई!

थानेदार ने क्रोध से काँपते हुए कहा—रुकिया, अगर भला चाहती हो, तो चली जाओ! नहीं तो यहीं ढेर कर दूँगा! अभी तक जी नहीं भरा?

रुकिया व्यंग समझ गई। बोली—थानेदार, साहब तुम गरीबों की हिफाजत के लिए हो। गाँव की लड़कियाँ तुम्हारी बेटी हैं। तुम चाहो तो गाँव के लोगों को अपने कदमों में लोटा सकते हो, तुम चाहो, तो गाँव को जर-जेवर से माल-माल कर सकते हो; पर उल्टे तुम्ही डाकू बने हुए हो! उन्हें जेल भिजवाकर तुमने बहुत बड़ा इन्साफ करवाया है थानेदार साहब!

इतने में लछुआ पहुँचा। देखा, तो काठ मार गया! थानेदार ने आगे आकर कहा—लच्छू! तुम रात को बहुत देर में लौटते हो, पता नहीं है कि घर सूना है? यह तो ठीक हुआ, जो मैं आगया, नहीं तो आज तुम्हारे घर की खैर न थी!

थानेदार ने रुकिया को पकड़ने का हुक्म दिया। रुकिया ने चूँ तक न की और हाथ बढ़ा दिए। जब थानेदार चलने को तैयार हुआ, तो बोली—लच्छू! मुझे तो ये गिरफ्तार कर ले जाते हैं; पर खुदा सब कुछ देखता है।

जब थानेदार चले गए, तो लच्छू ने रम्मी के मुँह पर पानी छींटा और हवा करने लगा। इतने में बुढ़िया हाँफती हुई आई और बैठ गई। मुँह पर भय, त्रास और उद्वेग था। बोली—बेटा! गाँव में डाका पड़ा है।......उसने, आदि से अन्त तक अपनी सब राम कहानी कह दी।

लच्छू उठ खड़ा हुआ, बोला—अच्छा! तब यह इसी नीच की करतूत थी?

बुढ़िया ने रोका, रम्मी ने भी बहुत कहा-सुना; पर लच्छू न रुका! उसके रोम-रोम में ज्वाला फूट रही थी। बोला—माँ, आज मुझे अपनी करनी पर दुःख हो रहा है! रहमत के मुकदमे में गवाह बन कर मैंने अपना धर्म बिगाड़ा है। उस बदमाश की कठपुतली होकर मैंने कितने ही घर बिगाड़े। न जाने कितने किसानों को दुःख दिया, उनके ढोर चुराए, और लाँच ली। कितनों ही को चंगुल में फँसाया। रुकिया को फँसाने में मैं थानेदार का दाहना हाथ था और आज रुकिया ने ही मेरी बेटी की लाख लाखे की लाज बचाई है! देखो; पर अब मैं दुनिया में किसीसे नहीं डरता!

रम्मी, तू चाहे तो अपने ससुराल चली जाना, चाहे यहाँ रह कर बुढ़िया की सेवा करना...... !

रम्मी ने बहुत कोशिश की, कि लच्छू किसी तरह न जाय ; पर लच्छू अपने को छुड़ाकर बाहर चला गया ।

अभी थानेदार थाने में पहुँचे ही थे और कपड़े खोल कर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे । रुकिया सिर झुकाए सामने खड़ी थी । और दो-एक टहलुए कोठरी साफ़ कर रहे थे कि लच्छू बाघ की तरह दहाड़ा—सावधान पामर ! लच्छू के हाथों अब अपनी रक्षा कर ।

वह सँभलने भी न पाया था कि लच्छू थानेदार की ओर झपटा । रुकिया खड़ी थी, बिजली की तरह बढ़ी और थानेदार के आगे आ खड़ी हुई ।

खून का जुनून बुरा होता है । वह यह नहीं देखता कि उसकी कटार की नोक में बिंधने वाला कौन है ! वह तो गरम-गरम खून चाहता है । प्रतिहिंसा का भूत उसकी आँखों में आग भर देता है, हृदय में सितम करने की उग्रता । वह यह नहीं देखता कि एक क्षण में वह जीवन के उद्यान की चहार-दीवारी फाँद कर मौत की अँधेरी और त्रासदायिनी खाई में कूद पड़ेगा । उसे अपनी असीम, उद्धत और प्रलयङ्करी पिपासा में पता नहीं पड़ता कि वह आत्मबलिदान को जन्म दे रहा है । वह किसी का खून बहाता और किसी को उजाड़ देता है । लच्छू में भी ऐसी ही पियास हू-हूकर रही थी । रुकिया उस वक्त उसको न दिखी । उसे तो सर्वत्र थानेदार की भोंडी सूरत ही दिखाई पड़ती थी । उसको बालों से उभरी हुई थानेदार की छाती और अपनी कटार की नोक के अलावा और कुछ न दिखता था । उसे क्या पता कि आशाओं से लहलहाती छाती उसकी विषैली नोक के आगे एक खेल बन गई है । मिट्टी की वह तर जमीन बन गई, जिसमें खेल के लिए मेखें गाड़ी जाती हैं !

रोजे ख़तम हो चले थे । रहमत जेल से छूटा, तो दिन के थिरकते प्रकाश की भाँति उसमें भी आनन्द का प्रकाश फैल गया । जब जेल गया, तब भी उसके पीले चेहरे पर खुदाई नूर झलकता था । आज जब छूटा, तो वह तिगुना हो गया । बाल बढ़ गए थे । चेहरा भूत-सा लग रहा था । जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ वह गाँव में आ पहुँचा । सामने ही थानेदार लच्छू को पकड़े हुए शहर की ओर जाता मिला । रहमत को देखा, तो घोड़े से उतर पड़ा, बोला—लच्छू ने रुकिया का खून कर डाला, रहमत ।

रहमत की आँखें फैल गईं । मुँह से कोई शब्द न निकला । अन्त में जब लच्छू ने सारा किस्सा बयान किया, तो बहुत धीमे स्वर में बोला—चलो, ठीक हुआ, लच्छू ! जिन्दगी के रोजे अगर इसी तरह खतम हुआ करें, तो फिर क्या चाहिये । वह एक लड़की की अस्मत के लिए शहीद बन गई, यह मेरे लिए खुशी की बात है, दुःख की नहीं । फिर वह भी ईमान और इन्सानियत के लिए ईद के दिन ! थानेदार साहब, शहर से लौटें, तो गरीब के झोपड़े पर रोज़ा अफ्तारी के लिए जरूर तशरीफ लाइयेगा ।

मिलन-गीत

इस जीवन का क्या मोल-भाव ?
जिसका नित रहता हरा घाव !
पी-पी चातक निशि दिन कहता,
कूक-कूक कर कोकिल रहता ;
आखिर में उनका दुख बहता,
पर यहाँ न थमता नयन-स्राव ।

अलिकुल कैसे भाँवर भरते,
चुम्बन कलिकाओं का करते ;
अरुण उषा-अवगुण्ठन हरते ?
जान न पाया, क्या वस्तु चाव ?

मेरे दृग के मोती-दाने,
प्रेम और सुख ये ही जानें ;
मेरे रोदन ही हैं गाने,
रहा न पहला हँसता स्वभाव ।

मुझको रज-कण बन जाने दो,
प्रिय ! निज तन से लग जाने दो ;
मिलन-गीत फिर से गाने दो,
दो यही भीख, पूजें अभाव ।

कमलाप्रसाद अवस्थी 'अशोक' विशारद

मॉन्टीसोरी-पद्धति : शिक्षा पर एक नई दृष्टि

लेखक—श्रीयुत चन्दूलाल भट्ट

ऐसा कहा जाता है कि संसार में अनुभव-जैसा कोई ज्ञान नहीं। यदि यह सत्य हो, तो भी, मनुष्य ने अनुभव से पाये हुए ज्ञान-द्वारा कुछ फायदा नहीं उठाया, तो उस ज्ञान से क्या लाभ? और चूँकि मनुष्य एक बुद्धिमान् प्राणी है; अतएव उससे यह आशा की जाती है कि वह समय-समय पर जीवन को विकास-मार्ग पर पहुँचने वाली नई-नई बातों को ढूँढ़ कर बतलाए।

जब हम जीवन के किसी विषय पर विचार करने के लिये बैठते हैं, तो हमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीनों कालों का विचार करने का प्रयत्न करना पड़ता है। मेरा आज का विषय मान्टीसोरी-पद्धति—अर्थात् शिक्षण की नई दृष्टि—है; अतएव मैं उसी विषय को ध्यान में रख कर आगे बढ़ूँगा। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मान्टीसोरी-पद्धति ने शिक्षण-संसार में एक नया मार्ग खोल दिया है। यह मानव जाति को एक नये दृष्टि-कोण से देखने की आशा रखती है। इसको समझाने के लिए आजतक की शिक्षण-प्रथाएँ और उनके परिणामों का विचार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक पद्धति में गहरे उतरने के बजाय, सब जगह की आधुनिक शिक्षा की स्थिति का विचार करना ही पर्याप्त होगा।

प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को देखने से पता चलता है कि समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पाठशालाएँ केवल एक कारखाने के रूप में काम करती थीं। नियत समय पर बच्चे शाला में भेजे जाते थे और वहाँ पर समाज की आवश्यकतानुसार साँचे में ढलकर तैयार होते थे। शिक्षक कारखाने के मुख्य कार्य-कर्त्ता समझे जाते थे। समाज-रचना के नायक और शिक्षकगण आज तक इस बात को भूल-से गये मालूम पड़ते हैं कि इन कारखानों में आने वाला माल, माल नहीं; बल्कि जीते-जागते बच्चे हैं। दूसरों के अनुकूल होकर, दूसरों की आज्ञा के अधीन होकर, दूसरों की इच्छा पर, अपने जीवन को चलाने में छात्रों के मन पर कितना बुरा परिणाम होता है, यह कोई भी तटस्थ व्यक्ति देख सकता है। शिक्षक और छात्र इस तरह जन्म-भर के शत्रु हो जाते हैं और इसी कारण आजकल की पाठशालाओं में मनुष्यत्व का नाश हो रहा है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, मनुष्यों में प्रेम का भाव अधिक होता है; परन्तु पाठशाला एक ऐसी संस्था बन गई है, जहाँ प्रेम-तत्त्व लगभग नष्ट हो गया है। सत्य तो यह है कि पाठशाला एक ऐसी संस्था होनी चाहिये, जहाँ से सारी सृष्टि में प्रेम का संचार हो। शिक्षकगण अपनी अध्यापन पद्धति पर विचार नहीं करते और यह सोचते हैं कि शिक्षा-प्रदान करने का यही एक मार्ग है। आज समाज में शिक्षक को इसी कारण पर्याप्त आदर नहीं मिलता। आज-कल के शिक्षक स्वतंत्र रीति से यह सोचने के लिए नहीं ठहरते कि समाज के इस जीते-जागते धन का विकास किस प्रकार किया जा सकता है।

हम इसी का विचार करलें कि विद्यार्थी को पाठशाला जाना क्यों अच्छा नहीं लगता? दीर्घकाल से यह बात एक सनातन सत्य के तौर पर मानी जाती है कि बच्चे को पाठशाला में जाना रुच ही नहीं सकता। मैं विद्वान् पुरुषों से नम्रता के साथ यह पूछना चाहता हूँ कि क्या अब भी हम इसको एक सनातन सत्य मान कर चलते रहेंगे, अथवा ठहर कर इसका विचार करेंगे। आज एक ऐसा समय आ पहुँचा है कि हम इसका निर्णय करलें। यदि हमें ईश्वर में श्रद्धा हो, मानव जाति में विश्वास हो, तो हमें यह मानना चाहिये कि हम में आज तक अवश्य ऐसी कोई त्रुटि थी, जिसको सुधारने में हम किसी भी रूप से असमर्थ थे।

वर्त्तमान समाज के पाये बहुत कमजोर हैं। इसका कारण, हमारी गलतियों से भरी हुई शिक्षा-प्रणाली है। जिस शिक्षण से नीति, नियमनादि हृदय से नहीं उपजते—समाज की आवश्यकता होने के कारण ही जबरदस्ती बाह्य उपचारों से पैदा किये जाते हैं, वह कभी

हमारा उद्धार नहीं कर सकते । यदि हम यह मानते हों कि मानव जाति किसी ऊँचे आदर्श तक पहुँचने के लिए निर्माण की गई है, तो हमें चाहिये कि बच्चों के नियमन, नीति आदि के प्रादुर्भाव के लिए हम बहुत बुद्धि-पूर्वक प्रयोग की कसौटी पर सत्य सिद्ध हुए अनुभव के आधार पर काम करें। आज हम जिस नीति-नियम की आशा अपने बच्चों में करते हैं, वह न हममें है, न हमारे समाज में ही। कदाचित् इसी कारण हम उसकी प्राप्ति के लिए इतने आतुर हैं। 'सत्य बोलने वाला बच्चा सबको प्रिय होता है' 'सत्य की अन्त में विजय होती है' 'चोरी करना पाप है' 'बड़ों की आज्ञा मानो' इस तरह के अनेक उपदेश बच्चों में हम हू-ब-हू देखना चाहते हैं ! उपदेशों का कुछ अन्त नहीं। आज-कल हमारी पाठशालाओं में जो पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनमें ऐसी कई कहानियाँ रखी जाती हैं, जिनमें हमारे इच्छित उपदेशों के विरुद्ध चलने वालेका बुरा परिणाम दिखलाया जाता है। इतना ही कर लेने में हम नीति-शिक्षा को समाप्त समझ लेते हैं। इसके उपरान्त हम अधिक चतुर, अधिक आज्ञापालक, अधिक शान्त बच्चे को इनाम वगैरह दे कर द्वेषी, लालची और दंभी बनाते हैं। बच्चे हम से अधिक चालाक होते हैं और इसलिए बाहरी दिखावे में इनाम पाने के लालच से आगे आ जाते हैं।

कमज़ोर बच्चों का उत्साह कुंठित हो जाता है। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चलने की जो प्रकृति है, पारितोषिक आदि उसके घातक हैं। यथार्थ में आज्ञापालन-शक्ति, सत्यप्रियता आदि जीवन में अपने आप विकसित हों, इस तरह की शिक्षा होनी चाहिए।

जब बालक कोई छोटी-मोटी चीज़ का नुकसान कर बैठता है, (जैसा नुकसान हम लोगों के हाथ से भी कभी-कभी हो जाता है) उस समय माँ, बाप, अथवा बुजुर्ग बच्चे को बिना सोचे-समझे मार बैठते हैं, और फिर कभी बच्चे से भूल हो जाने पर उससे सच्ची बात कबूल कराने की आशा रखते हैं, यह एक दम व्यर्थ है। जब किसी बच्चे को अपनी शारीरिक अथवा मानसिक आवश्यकता पूरी करने के लिए किसी चीज़ की प्रबल आन्तरिक इच्छा होती है और जब वह नहीं मिलती, तो वह उसको कहीं से भी चुराकर पूरी करता है, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। जिन

माँ-बापों को अपने बच्चों की जरूरतों का विचार करने की फुरसत नहीं रहती, उन्हीं माँ-बापों को अपने बच्चों को सद्गुणी देखने की बड़ी आकांक्षा होती है। बच्चों में इन सद्गुणों को पैदा करने के लिए माँ-बाप उनको शिक्षकों को सौंपते हैं। शिक्षक भी इसकी जिम्मेदारी अपने सिर ले लेता है। मैं आज अपने शिक्षक-बन्धुओं से पूछता हूँ कि हम अपने जीवन में कितने गहरे पैठे हैं ? मैं एक पाठशाला में काम करता था। वहाँ के हेडमास्टर ने गरीबी के कारण, अथवा किसी भी कारण से, मेरे कुछ नोट-पेपर चुरा लिए थे और वेही महाशय पाठशाला में बच्चों को चोरी न करने का उपदेश देते थे। यह तो एक बिल्कुल साधारण उदाहरण है ; परन्तु यदि हम सब अपने-अपने अन्तःकरण से पूछें, तो पता चलेगा कि हम में विशाल दृष्टिसे चरित्र-बल की खामी है। दिन-प्रति-दिन हमारा चरित्र-बल कम होता जाता है। समाज का गठन शिथिल होता जाता है। विचारवान् मनुष्य इसको समझते हैं ; पर फिर भी स्पष्ट मार्ग दीख नहीं पड़ता ; इसलिए आगे कदम नहीं उठाते। परन्तु, जीवन में जिसको जितना प्रकाश देखना हो, उसको उतना आगे बढ़ना चाहिये। सम्पूर्ण प्रकाश न दीखे तबतक चुपचाप बैठ रहने की नीति सृष्टि के विकास-क्रम में बिलकुल सहायता नहीं कर सकती।

समग्र सृष्टि का विचार करें, तो भी अन्तिम सत्य यही है, ऐसा कोई दावे के साथ नहीं कह सकता। प्रत्येक में नई-नई बातें शोधने की इच्छा से तरह-तरह के प्रयोग चलते रहते हैं ; परन्तु केवल शिक्षा के प्रदेश में ही एक विचित्र शिथिलता आगई है। हम लोग बुद्धिमान् और मनुष्य जाति को आगे बढ़ाने का दावा करनेवाले हैं। यही सत्य है, यह मान कर आप भलेही आगे न बढ़ें ; परन्तु आज तक की शिक्षण-प्रथा से समाज को कोई लाभ नहीं हुआ, ऐसा प्रतीत होता हो, तो इस नये मार्ग पर चलने की कोशिश करनी चाहिए। समाज में आजकल शिक्षक का स्थान बिल्कुल नगण्य है। न उसका मान है, न स्वतंत्र व्यक्तित्व। इसके जवाबदेह हम ही हैं। इस पर भी यदि हम चाहें, तो समाज का पुनर्विधान करने के लिये कटिबद्ध हो सकते हैं। यदि हम समझ कर न उठें, तो समाज की अवनति के नैतिक जवाबदेह हम ही गिने जायँगे।

मैं जो आज आपके सामने खड़ा हूँ। एक स्वतंत्र शिक्षण की संस्था से—जहाँ स्वतंत्र शिक्षा प्रयोग हो रहे हैं—निकलकर आया हूँ। आजतक के पुराने ख़यालातों को छोड़ कर, जहाँ नई दृष्टि से काम होता है, ऐसी संस्था में ही छोटे से बड़ा हुआ हूँ। मेरे विकास में मेरे शिक्षकों का, मेरे माता-पिता से कम हिस्सा नहीं है। उनके साथ मेरा जीवन-सम्बन्ध जुड़ा है। आज मैं एक शिक्षक होकर बाहर आया हूँ। मैं इच्छा करता हूँ कि शिक्षक की हैसियत से ही मैं अपना कल्याण कर सकूँ। ये सब आज की नई शिक्षण-प्रथा के विचार हैं। इन्हीं विचारों के अनुरूप काम करने का रास्ता मिला है।

आजतक की शिक्षण-प्रथाओं में जो विधेय है, उसका विचार ही नहीं हुआ है। केवल पाठशालाओं का अभ्यास क्रम, रचना, नियम वगैरह ही को महत्त्व दिया गया है, जिसके लिए ये सब हैं, वह बिल्कुल भुला दिया गया है। जो हम सिखाना चाहते हैं, उसी का विचार करते हैं, सीखने वालों की वृत्ति, रस, परिस्थिति आदि का विचार भूल कर भी नहीं करते। परिणामतः हम इच्छित फल की प्राप्ति के लिये कृत्रिम उपायों—भय, लालच, प्रतिस्पर्धा आदि—का सहारा लेते हैं। यह सब पुरानी पद्धति का दोष है। यह दोष समाज की आवश्यकतानुसार मनुष्य बनाने के प्रयत्न का फल है।

आजकल के वैज्ञानिक लोग विज्ञान की प्रयोगशाला के अन्दर घंटों बैठकर शान्ति और स्थिरता से प्रयोग कर रसायनों में से प्रकृति के नियम खोजते हैं, समय आ चुका है कि अब हम मानव-जाति के मानसिक विज्ञान-सम्बन्धी प्रयोग करें और उसकी प्रकृति के अनुसार उसको विकास की ओर ले जायँ। इसी में मानव-जाति का हित है। मनुष्य के मनोभावों की बराबर वैज्ञानिक जाँच किये बिना उस पर तरह-तरह के बन्धन लगा देना अब बड़ा अनुचित मालूम होता है।

मॉन्टीसोरी-पद्धति इस प्रकार मनुष्य-जाति को एक नई दृष्टि से समझने का रास्ता दिखलाती है। यह एक मानसिक प्रयोगशाला है। डा० मान्टीसोरी ने वर्षों के प्रयोगों के पश्चात् इस पद्धति का निर्माण किया है। आज की मान्टीसोरी पाठ शाला मेडम मान्टीसोरी के प्रयोगों का परिणाम है। आप ही मान्टीसोरी-पद्धति की प्रणेता एक इटालियन महिला हैं। आप अविवाहिता हैं। आप में मानववंश-शास्त्री, शरीर-शास्त्री, मानस-शास्त्री, तत्त्व-वेत्ता और शिक्षण-शास्त्री—सबका दर्शन होता है। आपका जन्म सन् १८७० इस्वी में हुआ था। जन्म के पश्चात् अनेक आपत्तियों का सामना करते हुए उपर्युक्त तमाम शास्त्रों में पारंगत होकर अब एक शिक्षण-शास्त्री की हैसियत से अपना जीवन बिताती हैं।

मान्टीसोरी-पद्धति के सिद्धान्तानुसार आज केवल २½ वर्ष से १० वर्ष तक के बच्चे को शिक्षण दिया जाता है। फिर भी इन सिद्धान्तों का मनन करने से पता चलता है कि ये समग्र जीवन में लागू होते हैं। मानव जाति को पहचानने वाले और उसके विकास को सहायता पहुँचाने वाले मार्ग, इस पद्धति में दृष्टिगोचर होते हैं।

मान्टीसोरी-पद्धति पर चलने वाली किसी भी पाठशाला को जाकर यदि आप देखेंगे, तो वहाँ के बालकों को आप स्वाधीन पायँगे; अर्थात्—वे अपनी उम्र के प्रमाण से अपनी आवश्यकता के कामों को अपने-आप करते हैं। यह सब काम कैसे करना चाहिए, यह बच्चों को योग्य समय पर, योग्य रीति से बतलाया जाता है। इसके परिणाम-स्वरूप बिना हेतु की प्रवृत्तियाँ बन्द हो जाती हैं और बच्चों की शक्ति, जीवन को सुव्यवस्थित करने वाले कामों में लगती है। इसीलिये सारे जीवन में वे अपने को अपने अधीन रखने की शिक्षा पाते हैं।

जीवन में विशेषकर पराधीनता, बालकों, स्त्रियों और धनाढ्यों में पाई जाती है। बालकों और स्त्रियों को बहुत करके हम अपने स्नेह के वश होकर पराधीन बना देते हैं। हम बिना आवश्यकता के इन लोगों की सहायता करते हैं। बच्चों के खुद के काम कर देने में हमको कदाचित् कम तकलीफ होती है; परन्तु सच्ची शिक्षा बच्चे के काम को स्वयं कर देने की अपेक्षा, उसको उसका काम अपने हाथों से करना सिखाने में है।

मान्टीसोरी पाठशाला में दूसरी चीज बच्चों की स्वतंत्रता है। इस स्वतंत्रता के फल-स्वरूप नियमन का जन्म कैसे होता है, यह सहज में देखा जा सकता है। जब हम मान्टीसोरी पाठशाला को एक प्रयोगशाला कहते हैं, तो हमको चाहिये कि हम प्रयोग के विधेयों को पूर्ण स्वतंत्र छोड़

दूँ, ताकि हम उनके वैज्ञानिक परिणामों को भली-भाँति कूत सकें। विज्ञान की प्रयोगशाला में विधेयों पर आघात-प्रत्याघात करने के लिये योग्य वातारण तैयार करके, वैज्ञानिक को दूर रहकर निष्पक्ष रीति से वैज्ञानिक परिणामों को नोट करना चाहिये। डॉ० मान्टीसोरी की पाठशाला में आज जो-जो साधन हैं, वे सब, प्रयोग के बाद आवश्यक मालूम हुए हैं और इसी से बच्चे जब उन पर काम करते हैं, तब सानन्द आश्चर्य होता है। स्वाभाविक प्रेरणा से मनुष्य-मात्र बचपन से ही अपने विकास को पहुँचाने वाले मार्ग की खोज करता है। मान्टीसोरी पाठशाला के सब साधन बच्चों की इस प्रेरणा का पोषण करते हैं और इसी से बच्चों के सर्वतोमुखी विकास के द्वार खुलते हैं। मनुष्य-शरीर की इन्द्रियों को इनका द्वार समझना चाहिए। बच्चों में बुद्धि की क्रिया प्रारम्भ हो, इसके पूर्व उनकी इन्द्रियाँ विकास चाहती हैं। यह बात बहुत वर्षों के अवलोकन के पश्चात् सिद्ध हुई है। इस तरह का वैज्ञानिक इन्द्रिय-विकास बच्चों को बुद्धि के प्रदेश में ले जाने वाला है। मान्टीसोरी के साधन बच्चों की इन्द्रियों को विकसित करने के साथ जुदे-जुदे परिणामों का बोध कराते हैं। इन्द्रियों-द्वारा जुदे-जुदे परिणामों के अनुभव करने की शक्ति मिलने को ही इन्द्रिय-विकास कह सकते हैं। पहले इन्द्रियाँ इन सब परिणामों का अनुभव करती हैं और फिर जब इनको आज्ञा दी जाती है, तब बुद्धि-विकास का आरम्भ होता है। स्थूल से सूक्ष्म में जाने की यह एक क्रिया है।

यह इन्द्रिय-शिक्षा की मीमांसा है। प्रत्येक साधन किन किन इन्द्रियों के लिये उपयोग में लाये जाते हैं, उनमें से क्या-क्या परिभाषाएँ मिलती हैं, इसकी चर्चा स्थानाभाव से यहाँ नहीं की जा सकती।

अब आप लोग कहेंगे कि यदि बालकों को इस तरह इन साधनों में स्वतंत्र छोड़ दें, तो बड़ी गड़बड़ हो जायगी; पर प्रत्येक साधन को किस तरह व्यवहार में लाया जाय, यह हर एक बच्चे को बतलाया जाता है। इन साधनों का योग्य रीति से उपयोग करने में बच्चों को आनन्द ही आता है। वह कह नहीं सकता; पर अन्तःकरण में अनुभव करने लगता है कि इसी में मेरा विकास छिपा हुआ है और दुनिया के नियमानुसार, जिससे और जहाँ से विकास मिलता है, मनुष्य उसका आज्ञाधीन हो जाता है।

जिसको नियमन कहते हैं और जिसकी प्राप्ति के लिये तरह-तरह के बाह्य उपायों की योजना होती है, उसमें आज तक कहीं भी सफलता नहीं मिली। इसका अर्थ यही है कि मनुष्य जाति के लिये किस उम्र में, किस समय, कौन-सी वस्तु, कौन-सा वातावरण विकासक है, यह हम अभी तक नहीं जान सके हैं। सत्य तो यह है कि नियमन की प्रेरणा मनुष्य में स्वाभाविक होती है। नियमन जीवन का कानून है। मनुष्य, स्वभाव से व्यवस्था भंग करने वाला नहीं हैं। जब-जब वह उसके विकास के विरोधी वातावरण में रखा जाता है, तब-तब वह अपनी आवाज़ अवश्य उठाता है। प्रत्येक मनुष्य को कब-कब किस विकास की आवश्यकता है—इसको ढूंढ़ निकालने में ही मनुष्य जाति की महत्ता है। मान्टीसोरी की पाठशाला में बच्चा इस रीति से पूर्ण रूपेण स्वतंत्र रहकर अपनी इच्छानुसार अपने विकास के अनुरूप काम में लगता है। उसके फलस्वरूप उसमें से नियमन पैदा होता है। शिक्षक को इस नियमन के पालन कराने में किसी प्रकार के दंड का आश्रय नहीं लेना पड़ता। यहाँ तक कि स्वच्छतादि के नियमों को भंग करने के लिये भी कोई दंड आदि देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कारण, इस तरह की आदतें बनाने का बच्चे को मौक़ा ही नहीं दिया जाता। पाठशाला में ऐसा वातावरण रचा जाता है कि बच्चा भले और बुरे का भेद जानकर भले की तरफ़ ही झुकता है। नियमन एक मार्ग है। इस मार्ग पर चलने से, बच्चे को सद्-असद् का यथार्थ ज्ञान पैदा हो जाता है।

बच्चे को जो स्वतंत्रता दी जाती है, वह यदि सीमित हो, तो उससे सामाजिक हित ही होता है। इसलिए बालक जब असभ्य और दूसरों को तकलीफ़ देने वाला बर्ताव करे, तो उसे रोकना चाहिये। इसके सिवाय उसकी तमाम प्रवृत्तियाँ किसी-न-किसी निश्चित हेतु की ही होती हैं; इसीलिए उनको न रोक कर शिक्षक को चाहिए कि वह उनका बराबर अवलोकन करके उसे योग्य मार्ग पर लावे। बच्चे के ऊधम से यह प्रमाणित होता है कि उसके अन्दर उछलते हुए प्राण हैं। इस प्राण को योग्य मार्ग पर लगाने में हम असमर्थ रहते हैं और इसी कारण बच्चे ऊधम करते हैं।



नियमन के लिये अभी एक और विचारने-योग्य बात रह गई है। उसके बारे में मैं यहाँ पर कुछ कहूँगा।

कोई भी कार्य केवल इच्छा से ही सम्पादित नहीं किया जा सकता। इसके लिए क्रियाशक्ति की आवश्यकता है। जिस वक्त हम बच्चे को किसी काम के करने अथवा न करने को कहते हैं, उस समय हम मानते हैं कि बच्चों में उस कार्य के करने अथवा न करने की शक्ति है। यदि क्रियाशक्ति और बुद्धिशक्ति का विकास अच्छी तरह हुआ हो, तो नियमन एक स्वभाविक बात होनी चाहिये। आज की हमारी समस्त प्रथाओं में क्रियाशक्ति के विकास को कहीं भी स्थान नहीं है। बालक को उसका काम न करने देना और अपने स्वयं उसका काम करना, बच्चे को अपने आप पढ़ने देने के बजाय स्वयं पढ़ाना, उसको अपने-आप विचार न करने देना और अपने विचारों को उसमें भरना, आदि बातों से हम उसकी क्रिया-शक्ति के विकास में रोड़े अटकाते हैं और तिसपर भी हम बच्चे से आज्ञापालन, स्वाधीनता और सुचरित्र आदि गुणों की माँग करते हैं, जिनका आधार केवल क्रियाशक्ति है। मान्टीसोरी-पद्धति के सब साधनों में क्रियाशक्ति की शिक्षा मिलती है।

यह सब देखते हुए मान्टीसोरी-पद्धति, एक नया शास्त्र, एक नई दृष्टि मालूम पड़ती है। इसमें इसके साधन और सिद्धान्त बड़े महत्त्व के हैं। मान्टीसोरी-पद्धति में अलग-अलग विषय नहीं सिखाये जाते। इसमें सबसे पहली बात इन्द्रियों की शिक्षा है। इन इन्द्रियों की शिक्षा के परिणाम-स्वरूप जीवन के तमाम प्रदेशों में जाने का मार्ग खुलता है।

साधारणतया ज्ञानेन्द्रियाँ ५ मानी जाती हैं; पर मान्टीसोरी-पद्धति में ९ इन्द्रियाँ मानी गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ दर्शन की इन्द्रिय
२ रंग ,, ,,
३ स्पर्श ,, ,,
४ शीतोष्ण ,, ,,
५ वज़न ,, ,,
६ आँख की सहायता के बिना वस्तु को पहचानने वाली इन्द्रिय।
७ गंध की इन्द्रिय
८ शब्द ,, ,,
९ स्वाद ,, ,,

दर्शन की इंद्रिय का स्थान आँख में है। रंग की इंद्रिय का स्थान भी आँख में ही है; पर जो देख सकता है, वह संभव है कि रंग न पहचान सके; इसलिए रंग और दर्शन की इन्द्रियों का स्थान एक होते हुए भी अलग-अलग है।

स्पर्श की इंद्रिय का स्थान उँगली के पोरों में है। यों तो शरीर की सारी त्वचा ही स्पर्शेन्द्रिय कही जा सकती है; पर मान्टीसोरी-पद्धति के अनुसार उँगली के पोरों में उसका मुख्य स्थान माना गया है।

शीतोष्ण इन्द्रिय का समावेश स्पर्श इन्द्रियों में नहीं किया गया है। इसका प्रदेश उँगली के पोरों में है। वज़न की इन्द्रिय का स्थान भी उँगली के पोरों में है। शरीर के किसी भी दूसरे भाग पर किसी चीज के रखने से उसका वज़न ठीक-ठीक नहीं पा सकते; इसलिए इसकी एक स्वतंत्र इन्द्रिय मानी गई है।

बिना आँख की सहायता के पहचानने की इन्द्रिय का स्थान अपनी उँगलियों के स्नायुओं और चमड़ी में है। आँख से जिन वस्तुओं को हम देखते हैं, उनमें से बहुत-सी वस्तुओं को आँखें बन्द करके, केवल उस पर हाथ फिरा कर, पहचान सकते हैं। इस इन्द्रिय को स्पर्श की इन्द्रिय से अलग माना है। उसका विस्तृत विवरण देना, समयाभाव से, मुश्किल है।

गंध की इन्द्रिय का स्थान नाक है, स्वाद की इन्द्रिय का स्थान जीभ और तालू है।

इन नौ इन्द्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध मान्टीसोरी-पद्धति में किया गया है। इन प्रत्येक इन्द्रियों के अलग-अलग साधन हैं। आज तक के शिक्षण के इतिहास को देखने से पता चलता है कि शिक्षा का क्रम सदैव केवल बुद्धि को ही उद्देश्य मान कर रचा जाता था। इस कारण किसी भी वस्तु का परिचय पहले व्याख्यानों से दिया जाता था और इसके बाद वस्तु का परिचय। इसका अर्थ यही हो सकता है कि इतने प्रमाण में वस्तु का ज्ञान हमेशा अस्पष्ट ही रहता था। बहुत-से विषयों की शिक्षा केवल पुस्तकों से ही दी जाती है। उसके साथ-साथ इन्द्रिय शिक्षा नहीं दी जाती। इस तरह की शिक्षा अधिकांश में अपूर्ण ही रहती है। आज-कल शिक्षित वर्ग के मनुष्यों में से जिन लोगों ने व्यावहारिक शिक्षा अधिक



प्राप्त की है, वे अपनी इन्द्रियों से सच्चा अनुमान अधिक कर सकते हैं। डाक्टर मान्टीसोरी की यह दृढ़ धारणा है कि इन्द्रिय-विकास के बाद ही बुद्धि का यथार्थ विकास हो सकता है।

इन्द्रिय-विकास का अर्थ यही नहीं कि सब इन्द्रियाँ अपने-अपने स्वभावानुसार काम करें। हमारे इन्द्रियाँ हैं, हम कई वस्तुएं देखते हैं, उनका अनुभव करते हैं, तो भी उनका ख़याल नहीं कर सकते। इस अंश में हमारी इन्द्रियाँ अशिक्षित हैं। इन्द्रियों का पूरी तरह से विकास हो, यह शरीर का स्वभाव है। इन्द्रिय-विकास का योग्य समय तीन

विशाल दृष्टि से इस पद्धति के सिद्धान्तों की चर्चा करने का मैंने इसमें प्रयत्न किया है। इसी इन्द्रिय-शिक्षा के बाद बौद्धिक क्रम शुरू होता है। बच्चों की वर्त्तमान शिक्षा केवल लेखन, वाचन आदि तक ही सीमित है। लेखन-वाचन का समावेश मान्टीसोरी-पद्धति में भी होता है; पर यही सर्वस्व नहीं हो जाता। वह तो इन्द्रिय शिक्षा का एक आवश्यक परिणाम ही है। इसमें, जिस तरह आज-कल की शिक्षण-प्रथा से कार्यशक्ति का विनाश होता है, ऐसा नहीं होता। शक्ति के विकास का ही यह परिणाम है।

इस रीति से आजकल थोड़े बहुत शिक्षक काम करते

बुलबुल का गीत

युग-युग के हिय-अरमान अचानक दले गए,
सखि! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गए।
कुछ क्षण आये सपने-से वे जीवन में,
कर परिणत मेरा मरु कञ्चन-मधुवन में।
मैं नहीं जानती थी, रजनी अँधियाली।—
रचती थी सखि! मेरे सुहाग की लाली,
उस दिन विरहिणि जगती की श्यामल वेणी।
कुंकुम भर गई उषा चढ़ किरण-निसेनी,
पाये मैंने हँसते खोए धन अपने।
वे खोज दीर्घ दिवसों की, निशि के सपने।
क्षणभर देखा, फिर आह! नियति-कर मले गए,
सखि! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गए।

कितना प्रिय है सखि! सुन्दरता से नाता।
वह धन्य इसे जो क्षण भर भी अपनाता,
बन जाती वह शाश्वती स्वर्ग की झाँकी।
क्षण के प्याले जो घूंट पिलाता साकी,
क्षणभर की थी मुसकान, क्षणिक जीवन था।
पर सफल साधना का प्रपूर्ण सिरजन था।
क्षणभर का भी सहवास तपस्या-फल है,
कंटकमय जीवन-पथ का सखि! सँबल है।
सुन्दरता यदि जीवन में चिरता पाती,
होता कैसे तब स्वर्ग मृत्यु की थाती।
परदेशी थे, आए भूले, फिर चले गए,
सखि! दो दिन के पाहुन मेरे वे चले गए।

— 'श्री केसरी' —

लेखक की अप्रकाशित कविता पुस्तक 'त्रिवेणी' से—

से सात वर्ष की आयु है। इसी समय मान्टीसोरी की शिक्षा से बच्चों की अवलोकन-शक्ति का विकास होता है। जब बच्चों की इन्द्रियों की मर्यादा के पदार्थ इन्द्रियों के संसर्ग में आते हैं, तब इन्द्रियाँ ही समझ सकती हैं, और उनका आनन्द ले सकती हैं, ऐसा अनुभव होता है। जब बच्चा इस अनुभव में डूब जाता है, तब वह उस वस्तुजन्य अनुभव के साथ वस्तु के नाम को जोड़ने की शक्ति प्राप्त करता है। इस वस्तु-जन्य अनुभव को ऊँचे-से ऊँचे ले जाने में ही इन्द्रिय-विकास है। इसको इन्द्रियों की संस्कारिता भी कह सकते हैं।

हैं। उन लोगों के साथ मुझे भी एक नई रोशनी दीख पड़ती है। आजकल के शिक्षकवर्ग की जो स्थिति है, यदि यही कायम रही, तो नई रोशनी दीखते हुए भी हम अँधेरे में ही रहेंगे। जब तक शिक्षकगण की आर्थिक स्थिति ठीक न हो और वे जीवन के अन्य सब प्रलोभनों को छोड़कर एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह अपनी सारी शक्ति बच्चों की इस प्रयोगशाला में न लगा दें, तब तक इस पद्धति से काम करना बड़ी भारी जोखिम है, प्रत्युत एक निष्फल प्रयोग है, इसमें मुझे लेश मात्र भी सन्देह नहीं।

पिउ कहाँ

लेखिका—श्रीमती उषा मित्रा

वनस्पतियों की हरी चादर ओढ़े, शैल-माला 'संग्राम सागर' को चहुँ ओर से घेरे खड़ी थी। श्यामा बुल-बुल गीत गा-गा कर सदा उसकी चरण वन्दना किया करती थी। पवन के झोंके में अतीत की कहानी गुञ्जित हुआ करती—निरन्तर और सतत् के लिये।

नींद से झुकती-गोधूलि की मीठी अँधेरी, धीरे-धीरे सागर के नीले हृदय पर लोट रही थी। आराम से सिर निकाले तब भी महिष जल में पड़े थे। केवल उनकी आँखें ही न चमकती थीं; वरन् बीच में जो एक परम सुन्दर मुख, कमल की नाईं खिला हुआ था, उसकी दीप्ति उन नेत्रों से कहीं अधिक थी—स्थिर, शान्त और धीर।

झींगुर की अविराम झङ्कार से एक स्तब्ध अलसता छायी थी, जैसे—वह तन्द्रा-भरा गीत पहाड़-पर्वत, पेड़-पौधे को सुना रही हो।

'संग्राम-सागर' के बीचोंबीच टूटे-फूटे 'आमखास' के हृदय को चीरता, आम का जो घना पेड़ अपनी शाखा-प्रशाखाओं का विस्तार किये ऊँचे सिर से खड़ा था, उसी पर नाना प्रकार के पखेरू आकर बैठने लगे। रानी दुर्गावती का मन्त्रणा-गार 'आमखास' सम्भवतः आज पक्षियों का बसेरा बन रहा था।

ऐसे ही समय एक बलवान युवक मकान के बाहर निकला। घुटनों के ऊपर तक मोटी धोती, धारीदार बण्डी पर लाल मूँगे की माला, नीली पगड़ी, व कान के पीतल के कुण्डलों से वह भला बड़ा मालूम पड़ता था। एक छोटी-सी सीटी निकालकर उसने कई बार बजाई; किन्तु जब उसके संकेत का कुछ फल न हुआ, तब वह हताश होकर नाव को पानी में बहाता उस पर बैठ गया। बीड़ी के पत्तों की भारी गठरी भी अपने पास रख ली।

अचानक जल खिल-खिलाकर हँस पड़ा। युवक उसी ओर देखने लगा। उसे ऐसा विदित हुआ, जैसे कमल की एक पखुड़ी को बीच में रखकर भैंस के सीधे तिरछे सींग व्यूह की रचना कर बैठे हों। वह सिहर उठा।

'सीता, तुम अभी तक पानी में पड़ी हो? निकल आओ।' वह भय से पुकारने लगा।

'और जरा देर रहूँगी।'

'नहीं-नहीं, यहाँ आओ।'

भींगे कपड़ों से वह बालू पर आकर खड़ी हो गई।

'रात को कहीं पानी में रहा जाता है? किसी दिन तुम भारी अनिष्ट कर बैठोगी सीता।'

'जल की गोद बहुत भली लगती है, साँवलिया।'

'जानता हूँ; पर है क्या वहाँ?'

'सो नहीं जानती! यदि जानती हूँ, तो इतना ही कि वह मुझे पुकारता है—आओ, आओ। घर-द्वार, मेरे अपना कहने का, सब कुछ उसी में है।'

'डरता रहता हूँ सीता, यदि कहीं किसी दिन तुम डूब जाओ। और भी मैं तुम्हें फिर कभी देख न पाऊँ!'—साँवलिया ने दीर्घ श्वास खींची।

'तब क्या होगा साँवलिया?'—सीता कौतुक अनुभव कर रही थी।

'वह सुनो, तुम्हारी मामी पुकार रही हैं।'—उसके स्वर में भय था—'ठहरो, ठहरो घड़ा भर दूँ।'

सामने के पहाड़ पर कनकलता खड़ी थी।

जल से भरा घड़ा बगल में दाबे, सीता हरिन की नाईं चंचल गति से पहाड़ पर चढ़ने लगी।

साँवलिया भैंसे तथा बीड़ी के पत्ते की गठरी लेकर सागर के किनारे-किनारे लाल बालू के पथ से घर लौटा।

• • •

पर्वत पर महुए के नीचे, लाल पत्थर के मकान में वह रहती थी।

सुबह की सफ़ेदी में कोकिला जब सुरीली तान छेड़ती, श्यामा बुल-बुल अपूर्व राग की अलापना करती, तब वह अलसाई हुई आँखों को मलती आम के नीचे आकर खड़ी हो जाती। प्रकृति का नित देखा रूप उसके नेत्रों में रूप का



झरना खोल देता। कनकलता के शासन से वास्तव देश में लौटते हुए वह निकटवर्ती 'वाजनामठ' में अपने को खो बैठती। सुनी कहानी नेत्रों के सामने परिस्फुट होती, डाकुओं का सरदार, एक उसी की तरह सुन्दर नारी को 'काल-भैरव' के सामने बलि देने के लिये कटार उठाता, वह आँख बन्द कर लेती, तब सब एकाकार हो जाता। कोई दयावान अचानक पहुँच जाता, तरुणी उद्धार पाती। भय से डाकू भाग जाते। जल लाते समय वह एक बार 'वाजनामठ' नामक उस अन्धकार पूर्ण कमरे में झाँक लेती। हाथ पैर काँपने लगते। खून की नदी-सी बह जाती। सीता दीर्घश्वास लेती—आह! कितने अभागे यहाँ अपने को खो बैठे होंगे!

सागर के जल में घड़ा बहाकर अवाक् सीता 'आमखास' की ओर देखकर सोचा करती—रानी दुर्गावती की ताब—वह टूटा मन्त्रणागार एक दिन धन-सम्पत्ति, सौंदर्य से कैसा श्रेष्ठ न रहा होगा! साफ-सुथरे मन्त्रणाभवन में कीमती गलीचे पर, पदस्थ कर्मचारीगण रेशमी पगड़ी बाँधे, मखमल के कोट पहने, कानों में मोती के कुण्डल लटकाये बैठ जाते होंगे। रत्नजटित सिंहासन पर वीराङ्गना रानी दुर्गावती बैठतीं होंगी, उनकी चोलीपर हीरा-मोती की मालाएँ झूमती होंगी। साड़ी के अंचल पर बड़ा-सा मानिक चमकता होगा, सहेलियाँ चँवर झलती होंगी। सागर-जल में संगीत की कल तान गूँजती होगी। महुए की डाल पर पखेरू अपूर्व तानें छेड़ा करते होंगे। रानी गम्भीर चिंता में लीन हो जाती होंगी।

पेड़ के तले से आम चुनती-चुनती वह विस्मित दृष्टि से पथ की ओर देखती रहती। कितने ही पथिक बीड़ी के लिये तेंदू के पत्ते के बोझ से झुकते हुए सामने से चले जाते। समवेदना से उसका हृदय भर उठता—बेचारे कहीं शाम तक शहर पहुँचेंगे। पत्ते बेचकर शायद दो-चार आने पावेंगे। दो पैसे का नमक, कुछ मसाला, लड़कों के लिये शायद थोड़ी-सी शकर लेकर आप केवल एक पैसे के सत्तू पर ही गुजारा कर घर लौटेंगे।

वचपन की बात उसे स्वप्न की तरह थोड़ी-बहुत याद आती—बड़े यत्न से कोई उसका पालन करता था।

• • •

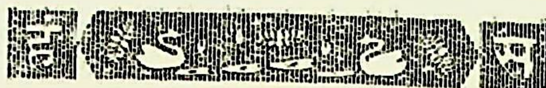
लोग कहते थे—सीता का दिमाग ठीक नहीं है; किन्तु मामी कनकलता का कहना था कि सीता परले सिरे की शैतान है, काम के डर से वैसी बनी रहती है। शान्त प्रकृति विमलचन्द्र कुछ भी न कहते थे। पत्नी के मत के विरुद्ध बात करने की हिम्मत उनमें ज़रा भी न थी। जिस दिन एक-मात्र सन्तान पारिजात शहर में पढ़ने के लिए भेजी गई थी, उस दिन भी अपनी प्रबल अनिच्छा को मन ही में दबाना पड़ा था।

यद्यपि स्त्री के कार्य से उसका शान्त, शुचि वायुपूर्ण मन विद्रोही हो उठा था—निष्ठावान पुरोहित वंश की लड़की आज शहर में क्रिस्तानों की तरह जूता-मोजा पहनकर स्कूल में पढ़ेगी, कितना अनाचार करेगी, न जाने क्या-क्या खायगी। गढ़ामण्डला की रानी दुर्गावती के पवित्र पुजारी-वंश की वह सन्तान, फिर भी केवल चुपचाप देखता ही रह गया था। उस दिन उसने जल तक स्पर्श नहीं किया था। पत्नी के विद्रोह-सूचक प्रश्न से उसे झूठ बोलना पड़ा था—पेट में दर्द है।

'फिर रोज नागा करने से स्कूल की नौकरी जाती रहेगी, तब लड़की का ब्याह कैसे करूँगी, और तुम्हारी प्यारी सीता के राक्षस पेट को कैसे भरूँगी?'

यद्यपि पत्नी को उत्तर देने के शब्दों की मन में भीड़-सी लग गई थी, फिर भी विमल सदा की नाईं मौन रहकर चार मील दूर जबलपुर स्कूल में पढ़ाने के लिए चला गया था। केवल एक दिन—जिसदिन अनाथा सीता को घर लाया था—खाली उसी दिन, उसने सद्साहस दिखलाया था। उसे घर में स्थान देने के लिए पत्नी की प्रबल आपत्ति, माना-भिमान, क्रोध, यहाँ तक कि 'संग्राम-सागर' में पत्नी के डूब मरने की सम्भावना तक को उसने हिमालय की तरह अटल-अचल रहकर सहन कर लिया था। इस घटना को बहुत दिन व्यतीत हो चुके थे, तब पारिजात व सीता छोटी थीं। उसके पीछे कई साल बीत गए। सीता का निर्यातन वह केवल देखा ही करता था। कनक कहती—काम के भय से वह बनी रहती है। असल में सीता जैसी चालबाज़ है, वैसी ही हिंसक भी है, मेरी लड़की से ईर्ष्या करती है।

विमल का मत स्त्री से सम्पूर्ण विपरीत था। वह अच्छी तरह जानता था, कि सीता अत्यन्त भावुक व अनमनी जाति की लड़की है, फिर भी मुँह से कुछ कह नहीं सकता



था। पहाड़ के विशाल हृदय पर रहते-रहते शायद वह पत्थर की नाईं मूक तथा बधिर हो गया था।

• • •

वन की झनझनाहट से कनक आँगन में निकल आई—तेरा सत्यानाश हो, सब बर्तन फेंक दिये? जा दूर हो यहाँ से चुड़ैल!

अपराधिनी की तरह सीता खड़ी थी।

'देखें, जगन्नाथी कटोरा फूटा या बचा; नहीं, बच गया, मेरी सास के हाथ के बर्तनों को यह कुलच्छनी फोड़ के बराबर कर बैठी। अब खड़ी ही रहोगी, या बासन उठाओगी राज रानी? मैं जरा कमला के घर जाती हूँ, तब तक तू गिलाफ में झालर लगा रखना, शनिवार को पारिजात आवेगी, स्कूल की छुट्टी है, कुछ दिन यहाँ रहेगी। बेर की चटनी बना रखना, वह अधिक पसन्द करती है।'

कुछ दूर जाकर कनक लौट पड़ी—वह सुनो, श्याम की वंशी बजी, देख, अब बड़ी हुई, उस ग्वाल छोकरे के साथ न रहा कर, समझी? दोपहर भर उसके साथ रहते, गाय चराते, पत्ते काटते तुझे शर्म नहीं आती? इधर घर का एक काम नहीं होता। यदि फिर उसके साथ देखूँगी, तो हड्डी तोड़ दूँगी। ठहर, मैं उनसे कहे जाती हूँ।

विमल को कुछ कहने की आवश्यकता न थी; क्योंकि वह कमरे के अन्दर से सब कुछ देख-सुन रहा था। रविवार को उस की छुट्टी रहती थी।

'सीता को देखते रहना।'—पति को उत्तर न देते देख कर वह चिढ़ी—'समझे नहीं? गुणवती सीता की बात कहती हूँ, देखना किसी दिन तुम्हारे मुँह में करखा लगा कर उसी छोकरे साँवलिया के साथ चली जायगी। तब मेरी लड़की का ब्याह होना कठिन हो जायगा।'

'नारायण, नारायण! यह क्या बकती हो, बचपन से वे दोनों भाई-बहन-से खेला करते हैं, आज मैं उन्हें कैसे रोकूँ!'

'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। मुझे क्या?'—क्रोध के मारे कनक आगे न बोल सकी। द्वार के शब्द से विमल समझा कि वह चली गई।

ऐसी अद्भुत बात सीता ने जीवन में प्रथम वार सुनी। वह असीम विस्मय से अपने अङ्गों को निहारने लगी; किन्तु किसी तरह भी उसे पता न चला कि वह किस तरह बड़ी हो गई।

अनमनी सीता धीरे-धीरे पहाड़ लाँघती साँवलिया के निकट जाकर खड़ी हो गई।

'इतनी देर क्यों लगाई सीता?'—वह बीड़ी के लिए पत्ते काट रहा था।

सीता उत्तर में कुछ भी न बोली, दूसरी कैंची से पत्ते काटने लगी।

सारी दुपहरी वे इसी निर्जन आम के नीचे रहते थे। निकटवर्त्ती सागर-जल में भैंसें तैरा करतीं, मैदान में गाय-बछड़े चरते रहते।

'मेरे ऊपर नाराज हो सीता?'—उसने सीता की कैंची छीन ली।

'छिः हाथ मत पकड़ो, मैं अब बड़ी हो गई हूँ।'

'आज तुम कैसे बड़ी हो गई?'—युवक हँस पड़ा।

'तो क्या मामी झूठ कहती थीं?'

'मामी कहती थीं? क्या कहती थीं? हाँ, अब मैं समझा। तुम्हें बड़ा कष्ट है, सीता। माता-पिता नहीं हैं, मामी तुमसे जलती हैं, मुझे बड़ा दुःख होता है; पर कर ही क्या सकता हूँ। कितने दिन से इसी विचार में पड़ा हूँ। तुम मेरे घर चलोगी सीता?'

'सदा तो जाती हूँ, तुम्हारी माँ को देखने से मुझे डर लगता है।'—कच्चा आम खाते हुए उसने कहा।

'माँ कुछ न कहेंगी, चलोगी?'

'जाया ही करती हूँ।'

'वैसा जाना नहीं, तुम्हें मैं ब्याह कर ले जाऊँगा।'

'छिः ऐसा कहीं हुआ है? तुम ग्वाल हो, हम ब्राह्मण हैं। मामा कहते हैं—सजातीय के सिवा ब्याह नहीं होता, तभी न पारिजात दीदी के लिए वर ढूँढ़-ढूँढ़ कर वे हैरान हो बैठे हैं।'

'क्यों नहीं होगा, आर्यमत से होता है। मैं सदा आर्य-समाज में जाता हूँ, उनके नियम कैसे भले हैं, मत कितना उदार है। तुम अस्वीकार मत करो सीता।'

सीता की हँसी देखकर साँवलिया विरक्त हो गया—हँसने की कौन सी बात है?

'रोना नहीं सीखा साँवलिया, अब मैं तुम्हारी भैंसें ले खेलने जाती हूँ।'

'जवाब देती जाओ।'

'क्या।'

क्या तुम मुझे जरा भी नहीं चाहतीं सीता ?'—बड़े प्रेम से व्याकुल होकर उसने पूछा।

'चाह ! वह कौन-सी वस्तु है ?'—सीता का आज का दिन विस्मय के भीतर से शुरू हुआ था। आश्चर्य के साथ उसने पूछा—चाह किसे कहते हैं ?

प्रश्न जरा अद्भुत-सा था, उत्तर देने में साँवलिया को कुछ देर लगी, जब जवाब देने के लिये उसने मुँह खोला, तब मालूम हुआ, कि सीता नहीं है।

° ° °

कनकलता की आज्ञा से सीता कच्चे आम तोड़ने आई थी। आम तोड़ चुकी थी, अब उन्हें बीन-बीन कर टोकरी में भर रही थी।

पैर की आहट से सिर उठाते ही कई लोगों पर उसकी दृष्टि पड़ी। उनमें जो कुछ बात हो रही थी, उसका कुछ अंश उसने सुना।

'वनदेवी है क्या ?'

'नहीं यार, पातालपुर की राजकन्या है।'

'अरे भाई, कैसे अन्धे हो, उसके फटे-मैले कपड़े नहीं देख रहे हो ?'

'चलो पानी माँगें।'

'हाँ चलो, इसी बहाने परिचय भी मिल जायगा।'

'पानी पिला सकती हैं ?'—एक ने आगे बढ़ कर पूछा।

सिर हिला कर सीता ने अपनी सम्मति ज्ञापित की।

'दीजिये' प्यास के मारे गला सूख रहा है।'

'मेरे साथ चलो, ठहरो-ठहरो आम उठा लूँ।'

'ऐसी असभ्य लड़कियाँ भी कहीं राजकन्या हुई हैं ? बात करना भी नहीं जानती।'—मृदु कण्ठ से धीरेन्द्र बोला।

यद्यपि धीरेन्द्र बहुत धीरे बोला था, फिर भी सीता के सतर्क कानों तक उनकी भनक पहुँच ही गई; पर उसने कुछ भी न कहा, केवल एक बार अवहेलना के साथ धीरेन्द्र की ओर देखा।

सुप्रकाश दुखित हुआ—ऐसा मत कहो, कहीं वह सुन लेगी।

'वाह ! प्रथम-दर्शन में ही प्रेम ?'—अमर हँस रहा था। मित्रों के परिहास में योग न देकर सुप्रकाश सीता को सहायता देता हुआ बोला—तुम खड़ी रहो, मैं सब उठाये लेता हूँ। किस तरफ जाना है ?

'मेरे पीछे चले आओ।'

'पहाड़ पर चढ़ना पड़ेगा ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'हम वहीं रहतीं हैं।—दबी हँसी के साथ सीता ने उत्तर दिया।

'तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं ?'

'मामा, मामी, मैं और दीदी। दीदी पढ़तीं हैं; इसलिए शहर में रहती हैं, जल्दी आवेंगी।'

चञ्चल गति से सीता ऊपर चढ़ने लगी। सुप्रकाश उसके साथ चला, और लोग जरा पीछे रह गये।

'पहाड़ पर रहते डर नहीं लगता ?'

'डर, डर कैसा ?'—विस्फारित नेत्रों से वह लौट पड़ी।

'नहीं, मैं योंही पूछता था।'—सुप्रकाश लज्जित हुआ।

कई क्षण के बाद सुप्रकाश ने पूछा—तुम्हें क्या कह कर पुकारूँ ?

'सीता।'

'माता-पिता कहाँ रहते हैं ?'

'कोई नहीं हैं ?'

'जन्म भर यहीं थीं ?'

'और एक जगह थी। स्वप्न-सा कुछ-कुछ स्मरण आता है, जैसे—एक बड़ा-सा मकान था, बहुत लोग थे, गाड़ी-घोड़ा न मालूम क्या-क्या था। अच्छा वह कौन-सा देश है, क्या तुम कह सकते हो ?'

उसका सरल प्रश्न सुप्रकाश को बहुत भला लगा। उसने कहा—शायद शहर में पिता के घर थीं। पहाड़ से नीचे कभी नहीं गई हो ?

'हाँ, जाती हूँ, 'मदन महल' साँवलिया के यहाँ, रामेश्वर के घर और मुनियाँ, कैलासी, पार्वती—इन सब के घर जाती हूँ।'

'वे कौन हैं ?'

'अरे, साँवलिया को तुम नहीं जानते ? हम दोनों गाय चराते, चिड़ियों के पर काटते, खेलते और मोर पकड़ते हैं।'



'और कहीं नहीं गई ?'

'नहीं, तुमने मदन-महल देखा है ?'

'कई बार, वहाँ घूमने जाया करता हूँ।'

'अपना नाम नहीं बतलाया ?'

उसके प्रश्न की रीति से सुप्रकाश आमोद अनुभव करने लगा—मेरा नाम तो सुप्रकाश है, तुम केवल प्रकाश ही कहना।

'प्रकाश बाबू कहूँ ?'

'हाँ, प्रकाश कहना, बाबू कहने की जरूरत नहीं। कुछ पढ़ी हो ?'

'मामा पढ़ाते हैं। देखो मामी खड़ी हैं। इन्हें पानी पिला दो मामी ?'

युवकों को देखकर कनक असन्तुष्ट न हुई; क्योंकि पारिजात के लिए वर ढूँढना था, शायद इन्हीं में से कोई मिल जाय।

० ० ०

आज कई दिनों से साँवलिया की वंशी रो-रो कर नीरव होजाती। कोई उत्तर नहीं देता। बन के पखेरू दाने के बिना लौट जाते। जामुन तले काले जामुन बिछे रहते। कोयल कुहुक-कुहुक कर थक जाती। जल के अन्दर महिष किसी की प्रतीक्षा में पहाड़ की ओर व्याकुल दृष्टि से देखते रहते। शैल-हृदय पर अब बार-बार हँसी की प्रतिध्वनि नहीं गूँजती। सुबह से शाम तक साँवलिया अधीर प्रतीक्षा में बैठा रहता। पीछे से अब कोई उसकी आँखें नहीं दबाता।

बालिका सीता कब, कैसे एक छोटे-से पल के अन्दर युवती बन बैठी है, सीता अपने आपही यह बात नहीं समझती। उसकी छोटी-सी छाती में एक नवीन पुलक बह जाती। वह अनजान-सी बनी रहती। किसी मायावी की माया से उसके अणु-परमाणु तक सजीव हो उठते। वह अपने को खो बैठती। सन्तोष की दीप्ति नेत्रों पर थिरकने लगती, आनन्द से मन मतवाला हो जाता। चाह, प्रेम का अर्थ न समझ सकने की समस्या कह जाती।

सन्ध्या-समय पत्थरों की आड़ में सीता और सुप्रकाश बैठे बातें कर रहे थे।

सुप्रकाश अब हर रोज़ आया करता था। सीता के मुँह तक झुककर उसने पूछा—तुम मेरी होगी न ? माता से शादी का प्रस्ताव करूँ ? सीता के अधखुले नेत्रों की ओर देखकर सुप्रकाश ने तृप्ति की साँस ली।

'सीता।'—कठोर स्वर से कनक ने पुकारा।

सीता का मोहन स्वप्न टूट गया, वह उठ खड़ी हुई। घर लौटकर कनक बोली—सुप्रकाश तुम्हारा बहनोई होगा, बस इससे ज्यादा कहना नहीं चाहती। अब कभी भी उससे बात करते देखूँगी, तो कठिन दण्ड दूँगी।

० ० ०

विस्मय के साथ जीवन में हठात् ऐसे परिवर्तन आ रहे थे, जिनकी सम्भावना स्वप्न में भी सीता को नहीं थी और न उसे कुछ विचारने के लिए समय ही मिला था। अद्भुत घटनाओं में पिसकर उसके मुंह की हँसी म्लान हो गई थी। आनन्द-चंचल-गति लोप हो चुकी थी। हृदय की विलासिनी प्रेमिका नारी की मृत्यु होकर जीवित थी—एक सर्वशान्त, वितृष्ण, जर्जरित अस्सी साल की थकी हुई बूढ़ी।

सुप्रकाश एवं पारिजात के मुँह की हँसी वह देखा करती, मन में थोड़ी-सी वेदना, जरा-सी दाह—शायद होती, शायद नहीं होती। वह काममें डूब जाती, सोच-विचार करने के लिए उसे वक्त ही कहाँ ? भावी जामाता के सुख-चैन के लिए उसे सारे दिन परिश्रम करना पड़ता था।

सुप्रकाश तथा परिजात के विवाह की रात्रि में सीता का कहीं पता न था।

दूसरे दिन सवेरे परिहास करते हुए कनकलता पति से बोली—मैंने जो कहा था, वही आगे आया न ? आर्यमत के अनुसार कल रात को साँवलिया से सीता की शादी हो गई है। मैं जानती थी, वह लड़की वंश में कलङ्क लगाएगी। छिः कैसी शर्म की बात है ! ब्राह्मण की लड़की ग्वाल के घर गई। यदि आज परदेस में न रहती, तो यह बात ही क्यों होती।

हाथ का ग्रास हाथ ही में रह गया, जैसे एक बड़ा-सा आघात सँभालता हुआ सुप्रकाश सोचने लगा—छिः ! वह ऐसी है ? चलो, जो कुछ हुआ सो अच्छा हुआ—शायद एक बार अंतर में यह बात भी जागी; परन्तु रुपये के लालच में पड़कर उसकी अवहेलना ही की गई। उसे रुपये अवहेलना न करके और करता ही क्या ?

का अधिक प्रयोजन था। चार हज़ार कर्ज का बोझ उसके सिर से उतर गया। चलो ठीक हुआ।

'झूठ बात है, तुमसे किसने कहा ?'

पति का व्याकुल कंठ-स्वर कनक के कानों में खटकने लगा। क्रोध के साथ उसने कहा—झूठ ही सही, हमारे ग्वाल की लड़की मुनिया तब झूठ कहती थी ? भला इससे उसे कौन-सा धन मिल जायगा ? पर मैं साफ-साफ कहे देती हूँ—उस कलङ्किनी का मुँह अब मैं न देखूँगी।

• • •

सीता को इस नये जीवन में प्रायः एक वर्ष व्यतीत हो गया था। सारे दिन कठोर परिश्रम के बाद कभी अन्न मिलता, कभी अन्न के बदले प्रहार।

शराब के नशे में साँवलिया उसे मारा करता था। कुछ देर के बाद फिर वह उठ बैठती, पानी भरती, बरतन माँजती, रोटी बनाती, पत्ते काटती, गाय-भैंस को दाना-चारा देती, दूध दूहती, और उन्हें लेकर चराने को चली जाती। कटे पत्ते लेकर साँवलिया बीड़ी बनाने चला जाता।

सीता सो रही थी। साँवलिया ने उसे पुकारा—इतने दिन चढ़े तक तुम सोया करती हो सीता, मट्ठा कब बनाओगी ? गाहक आकर लौट जायँगे।

सीता जल्दी से उठ बैठी—मुनिया आई थी न ?

'हाँ, आई थी। फिर उससे तुम्हारा मतलब ? वह मेरी जाति की लड़की है, रोज आवेगी, क्यों न आवे ?'

बिना कारण स्वामी को चिढ़ते देखकर सीता जरा विस्मित हुई।

'मैं योंही पूछती थी कि वह मुझसे मुलाकात किए बिना क्यों चली गई ?'

'उसकी तबीयत। यह मकान केवल तुम्हारा नहीं, उसका भी है। अब समझीं न ? तुम्हारी तरह वह दूसरी जाति की नहीं है। तुम्हारे लिए मेरा सब कुछ गया, बिरादरी से बन्द हो गया, छूआ पान तक कोई नहीं खाता। काका कहते थे—मुनिया से ब्याह करके, जाति वालों को रोटी देके, बिरादरी में हो जाओ। किन्तु......तुम हो......'

'अच्छी बात है, वैसा ही करो, मैं चली जाऊँगी'—म्लान हँसी के साथ उसने कहा।

'कहाँ जाओगी ?'

'उस पार के उस टूटे घर में रहूँगी।'

'रह सकोगी ? डरोगी तो नहीं सीता ?'—आग्रह के साथ साँवलिया ने पूछा।

'तुमसे भी भयानक जानवर तो वहाँ नहीं हैं, फिर भय कैसा ?'

साँवलिया चुप-चाप उसका मुँह निहारता रह गया, जैसे इन बातों को वह समझ न सका हो।

'सीता, तुम नाराज़ हो गईं ; किन्तु मैं क्या कहूँ, लाचारी से ऐसा करना पड़ा, तुम मेरी वही सीता रहोगी ; केवल.........।'

सीता उठी, बोली—गाय चराने जाती हूँ।

मानों वह सब कुछ सुन चुकी थी—इससे अधिक वह सुनना नहीं चाहती थी।

गाय चरने को छोड़कर अश्वत्थ के नीचे अंचल बिछाकर सीता सो रही थी।

किसी के स्नेह-स्पर्श से, मृदु आह्वान से, उसकी निद्रा गहरी हो गई, वह स्वप्न के देश में विचरने लगी।

'सीता'—कोमल कंठ से किसी ने फिर पुकारा।

इस बार वह उठ बैठी—तुम, तुम !

'मैं हूँ सीता'—धीरे से सुप्रकाश बोला।

'किन्तु मुझे इस तरह अपमानित करने क्यों आये हो ?'

सुप्रकाश लज्जित हो गया। वह समझ ही न सका, कि उस दिन की वह मूर्ख-असभ्य सीता आज ऐसी सभ्य रीति से बात करना कैसे सीख गई।

'जाइये सुप्रकाश बाबू'—उसने व्यथा के साथ कहा। इतनी देर के बाद सीता की ओर सुप्रकाश ने देखा, उसे प्रतीत होने लगा, जैसे—गुलाब का फूल सामने खिला हुआ है। पहले सीता सुन्दर थी ; पर इतनी सुन्दर नहीं थी, वह देखता ही रह जाता, यदि प्रहार की नीली लकीरों पर उसकी दृष्टि न पड़ती।

'ऐसा क्यों किया सीता ?'—उसकी आवाज में दर्द था।

'क्या ?'

'उस गँवार के घर क्यों गईं ? नीच ग्वाल तुम्हें कैसे समझ सकता है ? क्या रोज मारा करता है ?'

'यह सुन कर आप को लाभ न होगा।'

'इतनी जल्दी बदल गई हो सीता! जीवन में वही मेरी पहली भूल थी। क्या माफी माँगने का अवसर भी न दोगी?'

सीता के हाथ-पैर बरफ की नाईं शीतल हो चले थे; परन्तु फिर भी उसने अपने को संभाला।

'क्या यही बात आप इस निर्जन में कहने को आये हैं?'—दबी हँसी उसके ओंठों पर थिरकने लगी।

'नहीं, तुम्हें केवल चेताने आया हूँ, साँवलिया शीघ्र ही मुनिया से शादी करेगा। तब तुम कहाँ जाओगी सीता? दुनिया में तुम्हारे लिए और तो जगह नहीं है। क्या होगा सीता?'

इस बार सीता उन्हीं दिनों की तरह हँसते-हँसते लोटने लगी—धन्यवाद सुप्रकाश बाबू!

'तुम हँसती हो; पर मैं पागल हो रहा हूँ। यदि वह शैतान सामने रहता, तो मार ही डालता! क्या वह इसे खेल समझता है?'

'ऐसा मत करना सुप्रकाश बाबू, लोग कहेंगे—सुप्रकाश ने अपनी ही प्रतिमूर्ति की हत्या की; किन्तु आपके खेल का पर्दा यहीं गिरेगा, या अभी और भी चलेगा?'

गाय हाँकती, धीर भाव से सीता चली गई। सुप्रकाश उस ओर देख तक न सका।

• • •

पति और जामाता को चाय देती हुई कनक बोली—कल मुनिया से साँवलिया की शादी हो गई। वह रोटी देकर जात में मिल गया।

चाय का कप दूर फेंक कर विमल ने पूछा—लड़की कहाँ गई, जल्दी कहो?—वह अधीर हो रहा था।

'मैं नहीं जानती।'

'तुम जानती हो, सब जानती हो, यह सब तुम्हारा ही काम है, मेरी सीता कहाँ गई बतला दो?'

पति को पकड़ कर कनक बोली—कहाँ जाते हो? सच, कहती हूँ—उसका पता नहीं लगता, न जाने कहाँ चली गई।—पति के आचरण से आज वह डर रही थी।

'छोड़ो पारिजात की माँ, मुझे छोड़ दो। देखूँ, कहाँ चली गई वह अभागिनी?'

विमल के पीछे-पीछे सब लोग पहाड़ के नीचे उतरने लगे।

'वे पागल हो गये, देखो वैद्य, दौड़ो सुप्रकाश, वह देखो संग्राम-सागर में कूद रहे हैं, पकड़ो-पकड़ो!'

शङ्का से वह चिल्लाने लगी। अचेत विमल को उठाने के बाद सब की दृष्टि सागर पर पड़ी। सीता की मृत देह एक ओर पड़ी थी। कुछ देर के बाद विमल उठ बैठा।

'मेरी दुखिनी बेटी, आखिर सागर ने तुझे जगह दी!'

वह सीता से लिपट कर रोने लगा। शव की तरह विवर्ण मुख से सुप्रकाश खड़ा था। सिर के ऊपर कोई मधुर स्वर से पुकार उठा—पिउ-पिउ, पिउ कहाँ, पिउ कहाँ!

सुप्रकाश चौंक कर ऊपर की ओर देखने लगा। पक्षी करुण स्वर से वैसा ही पुकार उठा—पिउ कहाँ, पिउ कहाँ?

आज भी सागर के ऊपर 'पिउ कहाँ' पखेरू की पुकार सुन पड़ती है। दिग्-दिगान्तर में उसकी प्रतिध्वनि गुंजन किया करती है—एक विरह-कातरा तरुणी के व्याकुल रोदन की तरह।

चुम्बन

प्रियतम,

तुम पुष्पों का पराग बनकर पुष्पों में रम गए। साकी भवसागर में कूदकर उस पार निकल गया। स्वामी मादक वीणा के मृदुल स्वरों की भाँति आये और मुझे अलसाई देख शून्य में समा गए! मैं उनसे न बोली, क्योंकि तुम्हारे चुम्बन की मादक मदिरा ने मुझ में उत्पीड़न भर दिया था! उसी उत्साह से प्याली फोड़ी, सुराही के स्थूल शराब को क्षितिज पर ढुलकाया और चिर परिचित रजनी को तिरस्कार-पूर्वक ठुकरा दिया!

आँखें मूँद कर यह सब कुछ कहती गई; किन्तु मूर्च्छा टूटने के बाद ज्ञात हुआ, हम अवतरे तब तीन थे; किन्तु इस चुम्बन के आकर्षण ने मुझे अकेली बना दिया!

— दीनेशनन्दिनी चोरड़िया —

वेश्या-वृत्ति और पूंजीवादी सभ्यता

लेखक—श्रीयुत परमानन्द

सभ्य जनता की आँखों में वेश्यावृत्ति से बढ़कर निकृष्ट तथा पतित और काम नहीं है। 'यह घोर पापाचार है'—वे सोचते हैं। अगर किसी 'बाई' का नाम ले लीजिये उनके सामने, तो वे नाक-भौं सिकोड़ने लगेंगे। वे उनका नाम सुनना भी गवारा नहीं कर सकते। वास्तव में है भी यह मानव-सभ्यता की सबसे बड़ी कालिमा।

आज बहुत-से धर्मात्मा इस समस्या को 'कलि' का महात्म्य कह कर सुलझा देते हैं, मानों वेश्याएँ पहले ज़माने में थीं ही नहीं। वेश्यावृत्ति, वर्तमान युग की वस्तु निस्सन्देह नहीं है। यह बहुत पुराने समय से चली आ रही है। संस्कृत तथा लैटिन के बड़े पुराने-पुराने ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। उर्वशी और मेनका की अति प्राचीन कथाएँ आज भी प्रचलित हैं; अतएव, यह कहना, कि यह 'कलि' का महात्म्य या पाश्चात्य-सभ्यता का प्रभाव है, लचर दलील है।

समय-समय पर इसके सम्बन्ध में कई लेख निकल चुके हैं—कुछ पक्ष में और कुछ विपक्ष में; लेकिन, उनमें से बहुत कम ऐसे हैं, जिन्होंने इस पर वैज्ञानिक दृष्टि डालने की कोशिश की हो। इस प्रथा के समर्थकों की बात तो पूछिये मत। अभी उस रोज, एक धनी सज्जन से बातें होने लगीं। वे वेश्यावृत्ति के कट्टर पक्षपाती थे। उनकी दलीलें विचित्र थीं। वे कहने लगे—'जिस प्रकार एक शहर या मकान को साफ़-सुथरा रखने के लिये एक नाली की आवश्यकता होती है और उस नाली के न होने से गन्दगी इकट्ठी होकर सारे स्थान को दुर्गन्धमय बना देती है, उसी प्रकार समाज को यदि हमें पवित्र और स्वच्छ रखना है, तो हमें वेश्या-प्रथा को जारी रखना होगा, वरना—उन्होंने भय-प्रदर्शन करते हुए कहा—समाज के गुण्डों और लुच्चों को रोक रखना मुश्किल हो जायगा और फलतः प्रत्येक बहू-बेटियों का सतीत्व ख़तरे में रहेगा। वैसी अवस्था में आश्चर्य नहीं कि हम लोगों की इस Morality की दीवार टूट जाय।'

इस कायरता-पूर्ण दलील पर सिवा हँसने के कोई और क्या कर सकता था। उनकी दलील मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आई।

'चूंकि समाज में बहुतेरे चोर और डाकू रहा करते हैं'—मैंने उत्तर में कहा—इसलिए अब आप जैसे धनी-मानी व्यक्तियों को चाहिए कि उन चोर-डाकुओं से अपनी सम्पत्ति लुटवाने के लिए तैयार रहें; अन्यथा समाज के प्रत्येक मनुष्य के लिए अपने जान-माल की रक्षा करना अतीव कठिन हो जायगा और समाज में बड़ी गड़बड़ी फैलेगी। जिस प्रकार आप लुच्चों के डर से और अपनी बहू-बेटियों के सतीत्व-रक्षा के ख़याल से पराई स्त्रियों के सतीत्व लुटवाने, या यों कहिए कि वेश्यावृत्ति के कायम रखने के लिए तैयार हैं, उसी प्रकार आप को चोर-डाकुओं के डर से तथा आम जनता के जान-माल की रक्षा के ख़याल से अपना धन लुटाने के लिए तैयार रहना चाहिए।—वे फिर कुछ न बोले।

इस तरह व्यर्थ की बातें लोग बहुधा किया करते हैं, जिस पर ध्यान देना वस्तुतः समय को व्यर्थ नष्ट करना है। हमें क्या अधिकार है कि अपनी क्रूर और पतित लिप्साओं को शान्त करने के लिए दूसरों के चरित्र और आत्म-सम्मान का बलिदान करें?

क्या उनमें—वेश्याओं के—आत्म-सम्मान नहीं होता? क्या वे मानवात्मा नहीं हैं? क्या वे रबर की चलती-फिरती मूर्तियाँ हैं कि जिसकी इच्छा हो वही, जिस तरह चाहे उसी तरह उनके साथ व्यवहार करे? क्या उनके दिल नहीं है?

अगर ये प्रश्न मैं उन सभ्यों से पूछूं, जो इस वेश्या-प्रथा को समाज तथा राष्ट्र के लिए घातक समझते हैं, तो उनका उत्तर नकारात्मक होगा। वे समझते हैं—इन वेश्याओं के न तो दिल होता है और न उन में आत्म-सम्मान। वे सर्वथा भ्रष्ट, बेशर्म और अधम होती हैं। भोले-भाले रईसों को अपने बनावटी प्रेम-जाल में फँसा कर उनके एक-एक पैसे को



चूस लेना और उन्हें दर-दर का भिखारी बना देना—यही उनका काम है।

कहने को तो अनेक-अनेक विशेषणों से हम उन्हें बदनाम करते हैं ; परन्तु क्या कभी इस विषय पर सोचने का प्रयत्न किया है ? क्या यह जानने की कोशिश की है कि वे इस निर्लज्ज पेशे को क्यों अख्तियार करती हैं । आखिर वे भी तो मानवात्मा ही हैं । उन्हें भी तो हमी लोगों के समान शरीर है और सोचने की शक्ति है । वे भी कला इत्यादि (संगीत, नृत्य...) में उतनी ही प्रवीण हो सकती हैं और होती हैं, जितना कि एक कुलीन मनुष्य हो सकता है । फिर क्यों वे इस असभ्य पेशे को अख्त्यार करती हैं ? क्या मनुष्य-स्वभाव इतना पतित हो गया कि बिना किसी मज़बूरी के वह ऐसे जघन्य कार्य करने को तैयार हो जायगा ? मैं इसमें विश्वास नहीं करता । मनुष्य तो क्या, सृष्टि के प्रत्येक जन्तु में स्वभाव ही से स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान रहता है । प्रकृति ने बिना किसी पक्षपात के इन दोनों अमूल्य पदार्थों को प्राणी-मात्र में बिखेर दिया है । यह मनुष्य-स्वभाव का एक खास अङ्ग है । कोई भी किसी का अनुचित दबाव या व्यवहार बर्दाश्त करने को तैयार नहीं होता, जब तक किसी प्रकार की असह्य लाचारी न हो । वेश्याओं की भी ठीक यही हालत है ; वरना कौन ऐसी होगी, जो योग्य रमणी न बनकर बाज़ार में बैठना पसन्द करेगी, जहाँ उसे प्रतिष्ठा, सतीत्व तथा आचार का खून करना होता है । फिर वह कौन-सा दबाव है, जो हम लोगों की बहुत-सी बहनों को उस गड्ढे में ढकेल देता है ?—

सामाजिक-कुरीतियाँ

सुधारवादियों का मत है कि 'सामाजिक कुरीतियाँ' ही इन व्यभिचारों की जड़ और कारण हैं । आज भारतवर्ष में हजारों बाल-विधवाएँ सामाजिक रूढ़ियों की चोट से बेचैन होकर इस पेशे को कबूल कर रही हैं । पुरुषों की स्वार्थान्धता चरम सीमा तक पहुँची हुई है । मनुष्य खुद तो न जाने कितनी शादियाँ कर सकता है और करता है ; परन्तु उन बाल-विधवाओं को, जिन्होंने अपने पति की सूरत तक नहीं देखी है, दाम्पत्य सुख से वञ्चित रखता है । क्या यह सर्वथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध नहीं है ? एक नौजवान यदि वेश्यागामी भी हो जाता है, तो उस समाज के मनुष्य मक्कारी के साथ चुप्पी साध लेते हैं । किन्तु, वही अपराध किसी बहन से हो जाय, तो उसके करम फूट जाते हैं । कहीं रहने का ठिकाना भी नहीं रहता । एक तो सामाजिक रूढ़ि का प्रहार और दूसरे स्वतंत्रता की कमी के कारण हुनर और साहस का अभाव । ऐसी स्थिति में बहुत-सी बहनें वेश्याएँ बन जाती हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? उन्हें और भी उत्साह तब मिलता है, जब बड़े-बड़े धनी-मानी, प्रतिष्ठित और विद्वान् उसकी मदद करने लग जाते हैं ।

सुधारवादियों का यह मत सत्य है अवश्य ; किन्तु आंशिक । इसमें सन्देह नहीं, कि बहुत-सी बहने समाज के अत्याचारों से विचलित होकर इस पेशे को कबूल कर लेती हैं ; परन्तु इसका मुख्य कारण यह नहीं है । एक प्रतिष्ठित आर्यसमाजी से मैंने इस घृणित पेशे की उत्पत्ति का कारण और इसके निवारण का उपाय पूछा । उन्होंने भी वही कारण दिखाये । आपने यह भी कहा कि ऐसे व्यभिचारों को रोकने के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक युवक और युवती को विवाह-स्वतंत्रता मिले । पिता-माता का कर्तव्य यह होना चाहिये कि अपने पुत्र-पुत्रियों को उनके जीवन के साथी ढूँढ़ने के कार्य में केवल सहयोग और अच्छी सलाह दें । बस, इससे आगे न बढ़ें । आज-कल शादी करने वालों की इच्छा के विरुद्ध विवाह कर दिया जाता है । फल यह होता है कि उन्हें मज़बूरन आपस में प्रेम करना पड़ता है ; किन्तु 'प्रेम' कहीं किसी पर ज़बरदस्ती लादा जाता है ? उसका सम्बन्ध तो दिल से है । जिससे प्रेम हो, उससे शादी करना (To marry whom onel oves) स्वाभाविक आनन्द-दायक तथा उपयुक्त हो सकता है ; किन्तु जिससे शादी हुई हो, उसे प्यार करना (To love whom one Marries) बनावटी और दुखदाई हो सकता है । ऐसा बनावटी प्रेम आगे चलकर विरोध का रूप धारण कर सकता है । सम्भव है, ऐसे कारणों से ऊब कर भी युवक वेश्यागामी तथा युवतियाँ वेश्याएँ हो जाया करती हों ; अतएव विधवाश्रम, अनाथालय, विधवा-विवाह, विवाह-सुधार आन्दोलन ही—उन्होंने फरमाया—ऐसे साधन हैं, जो इस घृणित व्यवहार का मूलोच्छेद कर दें ।

बातें बिल्कुल ठीक हैं ; किन्तु वेश्या-प्रथा का यही

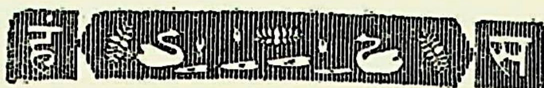
मुख्य कारण नहीं हो सकता। इसकी जड़ कहीं दूसरी जगह है। यदि यही मुख्य कारण होता, तो उस जाति अथवा राष्ट्र में, जहाँ ऐसी कुरीतियाँ नहीं हैं, वहाँ यह जघन्य पेशा होता ही नहीं। यूरोपियन लोगों में न विधवा-विवाह पर रुकावट है और न प्रेम-विवाह पर। उन्हें हर प्रकार की स्वतंत्रता है, जैसा चाहें कर सकते हैं। भारतवर्ष की तरह वे रोटी के गुलाम भी नहीं हैं; किन्तु तब भी वहाँ वेश्याओं की काफी संख्या है। फिर वह कौन ऐसा सार्वभौम कारण है—इस वेश्यावृत्ति का?

मुझे इन पंक्तियों के लिखने की आवश्यकता कदापि न होती, यदि मेरे विचार भी उसी तरह के होते। वेश्यावृत्ति पूँजीवादी सभ्यता का एक ख़ास अंग है। जब तक पूँजीवादी सभ्यता संसार में है, तब तक वेश्यावृत्ति भी है। नहीं-नहीं, चोरी, डकैती, उठाईगीरी इत्यादि कथित पाप भी तब तक जिन्दा रहेंगे, जब तक समाज का वर्तमान पूँजीवादी संगठन क़ायम है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सदा आर्थिक नियम काम करते रहते हैं और इसी कारण बहुतों को लाचार होकर ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनसे वे समाज में नीच और निर्लज्ज समझे जाते हैं। थोड़ी देर के लिये चोर और डाकुओं की मिसाल ले लीजिये। एक आप के घर जाकर रुपये चुरा लाता है, दूसरा पिस्तौल दिखला कर रुपये छीन लेता है। अब सोचिये तो सही कि वे ऐसा क्यों करते हैं? यदि उनके पास खाने-पीने का काफी सामान हो, पहनने को ट्रंकों में काफी कपड़े हों, अपने परिवार के लोगों का पालन करने के लिये, बच्चों को उचित शिक्षा देने के लिये यथोचित धन हो, तो वे अँधेरी रातों में इधर उधर मारे फिरने का, अपनी जान हथेली में रखकर दूसरे के मकान में घुसने के ख़तरे का, क्यों सामना करेंगे। संसार में आनन्द-पूर्वक रहने को यदि उन्हें उचित सुविधाएँ मिल जायँ, तो वे, अपने हाथ-पैरों के बल अँधेरी जगहों में, अनजान मकानों के भीतर, चुपके-चुपके चलकर, अपनी जान ख़तरे में कभी नहीं डाल सकते। ठीक यही हालत वेश्याओं की भी है। उन्हें भी यदि सम्मान-पूर्ण जीवन व्यतीत करने का मौका मिलता, रुपये-पैसे की कमी न रहती, तो इस प्रकार का कलुषित जीवन व्यतीत करने को वे हर्गिज राजी न होतीं।

अतएव यह कहना कि समाज में ये पापी—वेश्या, चोर, डाकू,—बुरे हैं, और बड़े-बड़े सेठ-साहूकार—जो जनता से चूसे हुए धन का एक छोटा हिस्सा दान कर के दानवीर कहलाते हैं—नेक, धर्मात्मा और भले हैं, सर्वथा अनुचित ही नहीं; बल्कि मक्कारी है। वाक़या तो यह है कि हम में न कोई बुरा है और न भला। सभी अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार अच्छे-से-अच्छा काम करना चाहते हैं और करते हैं। मैं इन 'पापियों' को उसी प्रकार निर्दोष बतलाऊँगा, जिस प्रकार बड़े रोजगारी, वकील, डाक्टर अपने पेशे में दोषी नहीं समझे जाते। रुपये के लोभ में पड़ कर एक वकील वैसे ही अपनी आत्मा का हनन करता है, जैसे एक वेश्या। अपने बड़े-बड़े कारखानों और कम्पनियों के सहारे एक अमीर, जनता को उसी प्रकार लूटता है, जिस प्रकार चोर या डाकू, जो बेचारे धन्धा-रोजगार न पाकर और गरीबी से तंग आ कर यह पेशा अख्तियार कर लेते हैं। किन्तु, फिर भी एक पापी समझा जाता है और दूसरा धर्मात्मा। यह इसलिए कि अमीरों को रुपये लूटने के अच्छे ढंग मालूम हैं। उनके पास कल हैं, कारखाने हैं, बेशुमार रुपये हैं और कानून का शस्त्र भी है, जिसके सहारे अपना लूट का कार्य बड़ी आसानी से करते हैं। गरीबों के पास वैसा कोई साधन नहीं, और उन्हें दुनिया में रहने के लिये कोई स्थान भी नहीं। सभी स्थानों पर अमीरों का अधिकार है। ऐसी अवस्था में गरीबों के लिए रोटियों का क्या प्रबन्ध हो सकता है? ऐसे ही व्यक्ति, जिन्हें कोई अच्छा धन्धा न मिला, निराश और लाचार होकर अपनी प्राण-रक्षा के लिये ऐसे निकृष्ट पेशे कबूल कर लेते हैं। इस में उनका क्या दोष? वे तो परिस्थिति के शिकार हैं।

आज-कल की व्यापारिक नीति बड़ी तरक्की कर रही है। समाज का धन कुछ थोड़े-से इने-गिने मनुष्यों के हाथों में इकट्ठा हो रहा है। दूसरी ओर लोग महान् दरिद्र हो रहे हैं। इसका फल क्या होगा? यही कि कोई धन्धा-रोज़गार न पाकर लोग इन 'पाप' कहलाने वाले कर्मों की शरण लेने लगेंगे। कोई ठग होजायगा, कोई चोर, कोई डाकू हो जायगा और कोई वेश्या; क्योंकि अपनी प्राण-रक्षा और सुभीता सभी खोजते हैं। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है कि वह अपना गुजारा आसानी से करे और समाज में इज्जत-



दार बन कर रहे; किन्तु उसके लिये चारों तरफ दरवाज़े बन्द हैं, उनके जन्म के पहले ही से दुनिया के चप्पे-चप्पे पर जमींदार और पूँजीपतियों का अधिकार हो चुका है। यहाँ पर वे इन अमीरों की लगाई गई जालिम शर्तों के अनुसार ही रह सकते हैं। ये जमींदार दूसरे मनुष्यों को अपने आनन्द के लिये लूटते हैं, जिससे उन बेचारों को घोर कङ्गाली में जीवन बिताना पड़ता है; परन्तु मनुष्य-स्वभाव —पहले कहा जा चुका है—सदा आराम के साथ रहने की कोशिश करता है और फलतः अच्छे रोजगार न पाकर घृणित पेशे तलाश कर लेता है।

पिछले साल मुझे एक रईस की बारात में शामिल होने का अवसर प्राप्त हुआ। महफिल की रौनक के लिये वेश्या का प्रबन्ध हुआ था। वेश्या धनी थी और सुन्दरी भी गाना इत्यादि हो चुकने के पश्चात् सभ्य रईसों ने उससे मज़ाक करना आरम्भ किया। वह भी सब के अश्लील और भद्दे मजाकों का अपनी कृत्रिम मुस्कराहट और कटाक्ष के साथ उत्तर देने लगी। मैं भौचक्का-सा सभी देख-सुन रहा था। सोच रहा था—वह इतने भद्दे मजाकों को सरे-आम कैसे बरदाश्त करती है? क्या मनुष्य का इतना पतन हो सकता है?—आखिर मैं उससे पूछ ही बैठा। पहले तो उसने अपनी झिझक के कारण इसे हँसी में उड़ा देना चाहा। पश्चात् मेरे हठ के कारण बड़ी गम्भीरता से बोली—बाबू साहब, यदि मैं भी आप लोगों के समान धनी होती, तो अपने से नीचों को उपेक्षा की दृष्टि से देख कर ऐसे ही प्रश्न करती। मेरा तो यही रोज़गार है। अगर ऐसा न करूँ, तो भोजन कहाँ से मिले।—मैं सर्द हो गया। मेरे पास उत्तर ही क्या था?

वास्तव में बात यही है भी। प्राण और शरीर इकट्ठा रखने के लिये ही उन्हें अपनी आत्मा को नीचे झुकाना पड़ता है। वह हँसती है, मुस्कराती है, मुहब्बत की बातें करती है और अपने 'शिकार' को मुग्ध करने के लिये तरह-तरह के छलकते भाव दिखलाती है। परन्तु, ये हँसी और प्रेमालाप सर्वथा कृत्रिम होते हैं। यह बनावटीपन ही उनका पेशा है, वे इसलिये प्रेमालाप नहीं करतीं कि वे किसी व्यक्ति से प्रेम करती हैं, या उन्हें इसमें मज़ा आता है; बल्कि इसलिये कि वैसा करने से उन्हें रुपये मिलने की आशा रहती है। अपनी बेइज़्ज़ती सह कर भी उन्हें हँसना होता है। कोई कितना भी वेश्या, बदसूरत और दुष्ट प्रकृति का क्यों न हो, उसके साथ भी उन्हें प्रेमालाप करना होता है; क्योंकि यही उनका पेशा है—रोटी-मक्खन का ज़रिया है।

एक मित्र ने मेरी इन बातों का खण्डन करते हुए बतलाया—वेश्याएँ अपनी इच्छानुकूल ही ऐसा काम किया करती हैं, उन्हें अपने कार्य्य में मज़ा मिलता है। अपनी धारणा की पुष्टि के लिये उन्होंने उन वेश्याओं का हवाला दिया, जो काफी धनी हैं और ऐसे घृणित कार्य्य में संलग्न भी हैं।

यदि हम लोग इस पर ध्यान-पूर्वक सोचें, तो पता चलेगा कि बातें वैसी नहीं हैं। कारण प्रत्यक्ष है—

(१) वे वेश्याएँ, जो धनी होने पर ऐसा करती हैं, दूरदर्शिता से काम लेती हैं। वे उस समय तक ठहरना नहीं चाहतीं, जबतक कि उनके पास में एक पैसा भी न रहे। अपने भविष्य-सुख को वे निर्विघ्न कर देना चाहती हैं।

(२) आज-कल की सभ्यता का ऐसा प्रभाव हुआ है कि धनवान बनने की इच्छा प्रत्येक प्राणी को रहती है। इस बीमारी से बहुत कम मनुष्य बचे हैं। कितना भी धनवान क्यों न हो, वह और भी धनी होना चाहता है। ये वेश्याएँ भी, वकील-डाक्टरों की भाँति, इस प्लेग से वंचित नहीं हैं।

(३) यह जानते हुए कि यह पेशा नीच है, आर्थिक भावनाओं से लोग उसे नहीं बदलते; क्योंकि यदि एक मनुष्य किसी खास पेशे में सिद्ध-हस्त हो गया है और वर्षों से उसी पेशे की तालीम पाई है, तो उसके लिये उस पेशे को बदलना बहुत कठिन हो जाता है। एक रोजगार में तजुरबा हासिल करने में न जाने कितने वर्ष लग जाते हैं, फिर कौन जाने कि नये रोज़गार में सफलता मिलेगी, या नहीं। जान-बूझ कर खतरे में पड़ना कौन चाहेगा। वेश्याओं की भी ठीक यही हालत है। अपने पेशे को बदलने में उन्हें काफी आर्थिक खतरा है और उस खतरे का सामना करने का साहस बिरले ही में है। आज बहुत-सी ऐसी बहनें, जो धनी हैं और जिन्हें अच्छी शिक्षा का भी लाभ हुआ है, इस पेशे को छोड़ रही हैं।

बहुत-सी वेश्याओं को शायद ऐसा संस्कार ही पड़

जाता हो कि कोशिश करने पर भी वे इस पेशे को नहीं छोड़ सकती हों। उनमें से बहुत-सी यह भी सोचने लगती हैं कि वे अपने इच्छानुकूल ही कर रही हैं और यदि चाहें, तो छोड़ दें। वे स्वयं इसके मूल कारण को नहीं जानतीं। ध्यान देने से मालूम होगा कि इन सब व्यभिचारों का कारण, आज के सामाजिक-संगठन में छिपा है। वे इसी पूँजीवादी संगठन की शिकार है। अपनी मर्ज़ी के अनुसार वे हर्गिज वैसा नहीं कर रही हैं, उन्हें लाचारी है और वीभत्स लाचारी है।

मैं पहले कह चुका हूँ कि वर्तमान सभ्यता की नींव यदि पूँजीवाद रहा, तो ये पाप कहलाने वाले रोज़गार अवश्य रहेंगे। यह न तो विधवाश्रम खोलने से रुक सकते हैं और न अनाथालय से; न कानून बनाने से रुक सकते हैं और न सुन्दर उपदेशों से। आज यदि संसार की सारी वेश्याएँ मार डाली जायँ और सामाजिक संगठन ज्यों-का-त्यों रहे, तो कुछ दिनों में आप-से-आप वेश्याओं की उत्पत्ति हो जायगी; क्योंकि अमीरों की लूट से गरीबों की दशा घोर कङ्गाली में डूबती जा रही है और कंगाली की चोट से बचने के लिए आदमी कुछ भी कर सकता है।

यदि हम इस पेशे को कानून-द्वारा रोकने की चेष्टा करें, तो भी यह नहीं रुक सकता। भेद इतना ही रहेगा कि वेश्याएँ खुले-आम बाज़ार में न बैठ सकेंगी और यह रोज़गार गुप्त रूप से चलने लगेगा; जैसे—कोकीन इत्यादि के रोजगार कानून के खिलाफ गुप्त रीति से चलाये जारहे हैं। और-तो-और पूँजीवाद-व्यवस्था में ऐसे कानून बनाना असम्भव-सा है; क्योंकि शासन-सूत्र बड़े-बड़े धनियों के हाथ में रहता है और उनके लिए वेश्याएँ विलास की सामग्रियाँ हैं। अपने विलास से वे कब अलग होना चाहेंगे, जो ऐसे कानून बनने देंगे?

इस कलंक को मिटा देने के कार्य में उपदेशकगण भी वैसे ही निकम्मे हैं; जैसे—कानून। उपदेशकों से कुछ भी नहीं हो सकता। वे सब को धर्मात्मा, ईमानदार तथा सज्जन बनने के उपदेश देते हैं और फरमाते हैं, कि धर्मात्मा मनुष्य ही सुख से जीवन व्यतीत करता है। पापी, झूठे, चरित्र-हीन और दगाबाज़ का जीवन दुःखमय होता है। किन्तु, प्रत्येक मनुष्य जानता है कि दगाबाज और झूठे ही यहाँ मौज उड़ाते हैं। सज्जन और धर्मात्माओं की सारी उम्र सख्तियों से लदी रहती है और इन सब का कारण है—सामाजिक व्यवस्था। ये उपदेशक अधिकांश तो अमीरों के एजेण्ट हुआ करते हैं, जो पूर्व-जन्म और पुनर्जन्म की झूठी फ़िलासफी में लोगों को भुलाकर निकम्मा बना देते हैं। अगर किसी सेठ ने अनाथालय बनवा दिया, तो वह धर्मात्मा के नाम से पुकारा जायगा। ये उपदेशक हमें यह बताने की कृपा नहीं करेंगे कि उसी धर्मात्मा की रक्त-शोषक नीति के कारण न मालूम कितने व्यक्ति अनाथ हो गये हैं और हो रहे हैं।

बस, इस पापाचार को रोकने की सिर्फ एक ही दवा है और वह है पूँजीवाद का नाश और स्वतंत्रता तथा समानता की नींव पर समाज की नवीन रचना। वेश्यावृत्ति, चोरी तथा डकैती समाज की बीमारी नहीं हैं, ये सब किसी भयंकर बीमारी के लक्षण हैं। लक्षणों की दवा नहीं की जाती, दवा मर्ज़ की ही की जाती है। उसके छूटते ही लक्षण आप-से-आप शान्त हो जाते हैं। यदि किसी मनुष्य का खून गन्दा हो गया हो, तो उसे तरह-तरह के फोड़े उठेंगे, सिर-दर्द रहेगा इत्यादि। उन फोड़ों पर आप लाख मरहम लगाएँ, वह आराम न होगा; क्योंकि वह तो केवल खून के गन्दा हो जाने के लक्षण हैं। यदि उसे उन फोड़ों से पिण्ड छुड़ाना है, तो पहले खून साफ करने की दवा पीना होगा। पश्चात् फोड़े आप-से-आप ठीक हो जायँगे। ठीक वही हालत यहाँ भी है। आप पूँजीवाद-व्यवस्था मिटा दीजिये, ये पापी रोज़गार आप-से-आप मिट जायँगे।

आज पूँजीवाद-व्यवस्था के कारण ही चारों ओर पाप-पूर्ण रोज़गार नज़र आते हैं। एक ओर तो कुछ थोड़े से मनुष्य बड़े-बड़े महलों में बिना हाथ-पैर हिलाये ही विलास-मय जीवन व्यतीत करते हैं; दूसरी ओर ज़मीन, कारखानों और खानों में गरीब लोग दिन भर गुलामों के सदृश काम करके भी मुश्किल से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बहुत-से मनुष्यों को जीवन-निर्वाह का मौका ही नहीं मिलता। यदि उन्हें सुख से अपनी रोटी पैदा करने का मौका मिले, तो वे ऐसे निकृष्ट कार्यों में हाथ क्यों लगावें। अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने एक बार अपने भाषण में कहा था—

'मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मुझे संसार के किसी जेल से पाँच सौ नीच-से-नीच अपराधी तथा किसी शहर

की गन्दी गलियों से निर्लज्ज-से-निर्लज्ज पाँच सौ वेश्याएँ चुन कर दे दो, और एक ऐसा स्थान दे दो, जहाँ उन लोगों के रहने तथा खेती-बारी के लिये काफी जमीन हो। कुछ समय के पश्चात् आप देखेंगे कि वे भ्रष्ट समझे जाने वाले लोग, उसी तरह के सभ्य और सज्जन बन जायँगे, जैसे संसार के साधारण मनुष्य होते हैं।'

बिल्कुल ठीक। यदि उन्हें अपने जीवन-निर्वाह का मौक़ा मिलेगा, तो भ्रष्ट पेशे को क्यों क़बूल करेंगे। जिस मनुष्य के घर में इतनी सामग्री हो, जिससे वह सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सके, तो वह चोरी-डकैती क्यों करेगा। यदि अपने घर ही में आनन्द-पूर्वक रहने का मौक़ा मिले, तो वेश्याएँ अपने रूप और यौवन को वेचकर पैसे पैदा करने के लिये बाज़ार में क्यों बैठेंगी।

अतएव, यदि हम लोगों को मानव-समाज के इस घोर कलङ्क को धोना है, तो सर्व-साधारण को जीवन-निर्वाह के लिये समान अवकाश देना होगा, अमीरों और गरीबों का भेद मिटाना होगा, जमींदारी इत्यादि जैसी प्रथाओं को—जो जनता के रक्त-शोषण की मशीनें हैं—ध्वंस कर देना होगा तथा हर प्रकार के विशेषाधिकारों को धूल में मिला देना होगा, जिससे साम्यवाद का आविर्भाव हो।

साम्यवाद के उस नवीन युग में, जब न कोई अमीर रहेगा न कोई गरीब, न अत्याचारी रहेंगे और न पीड़ित, ऐसे पापाचार क्यों रहेंगे? प्रत्येक पाप-कार्य करने वालों का लक्ष्य साधारणतः जीवन-रक्षा तथा धन पैदा करना ही होता है। जहाँ इसकी उन्हें गारंटी है और साथ-ही-साथ शिक्षा तथा उन्नति की सुविधाएँ प्राप्त हैं, वहाँ ख्वाम-ख्वाह नीच बनने की कोशिश कोई क्यों करेगा। यह मनुष्य-प्रकृति के विरुद्ध है।

तात्पर्य यह कि पूँजीवादी सभ्यता ही इन सारे पापाचारों का केन्द्र है। इसे ध्वंस कर दीजिए और देखिए कि आप-ही आप यह वेश्या-वृत्ति तथा अन्य पापाचार एक या दो पीढ़ी में समूल नष्ट हो जायँगे।

मेरा धर्म

(खम्माच)

सुख-दुख की क्या बात? हृदय ही मेरा कोई लूट गया
रहा प्रश्न क्या विष अमृत का प्याला ही जब टूट गया
आशा का दीपक जलता था झिल मिल कर उर में मेरे
एक निशानी थी उसको भी मिटा दिया कर ने तेरे
प्रेम कथाएँ सुना-सुना कर मुझे रुलाओ अधिक न और
वे दिन नहीं, न वह मैख़ाना, और न चलता है वह दौर
पीना छूटे, पंडितजी ने इस से तोड़ दिया प्याला
पर छुट सकता है क्या इस से पीना मेरा प्रिय-हाला

खूब घिरा हूँ उस में ही जो स्वयं बनाया था घेरा
पीना छोड़ दिया दुनिया ने पर न छुटा पीना मेरा
उर-उपवन में तरु-मनोर्थ के बढ़ने को छाँटे जाते
अगर न मर सकते नर जग में तो न कभी वह जी पाते
पंडित और मौलवी-निर्मित धर्म चाहिये मुझे नहीं
पीना मेरा धर्म और है मेरा साक़ी सभी कहीं
मैं पीने वाला, मैं साक़ी, मेरी है यह मधुशाला
पंडितजी कुछ बोल न सकते खूब पियूँगा मैं हाला

— पद्मकांत मालवीय —

एक अनुभव

लेखक
श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा

उस दिन मेरे मित्र नरेन्द्र ने दावत दी थी। यह तै हुआ था कि खाना और खाने का लुत्फ जितना अच्छा किसी अच्छे होटल में मिल सकता है. उतना अच्छा घर में नहीं। नवयुवकों की धमाचौकड़ी, एक दूसरे को गाली-गलौज और फिर बहुत गम्भीरता पूर्वक अपनी-अपनी प्रेम कहानियाँ इन सब की गुंजाइश भले घर में नहीं होती। पहले तो मातायें, बहनें तथा भौजाइयाँ इत्यादि-इत्यादि, दूसरे चश्मा चढ़ाये हुए और दाढ़ी फटकारते हुए बुजुर्गवार, जो किसी-न-किसी बहाने अपने बरखुरदारान व उनको खराब करने वाले शोहदे दोस्तों की हरकतें देखने के लिये कमरे में एक-आध बार अवश्य झाँक जाते हैं और तीसरे यदि खाना खराब बना तो घर वालों को मुक्त-कण्ठ से गालियाँ नहीं दी जा सकतीं; इसलिये होटल ही तै रहा।

शाम को हम सब लोग नरेन्द्र के घर पर ही इकट्ठा हुए। वहाँ से काश्मीरी होटल पहुँचे। हम लोग कुल सात आदमी थे। होटल को सूचना पहले से ही दी जा चुकी थी। सीधे डाइनिंग-हाल में पहुँचे। खाना पाँच मिनट के अन्दर ही हम लोगों के सामने आ गया।

हम लोगों ने खाना आरम्भ ही किया था कि एक सज्जन ने डाइनिंग-हाल में प्रवेश किया। हम लोगों की मेज के पास ही एक छोटी-सी मेज पड़ी थी। उसी मेज पर वे सज्जन बैठ गये और उनका खाना भी वहीं आ गया।

अपने बीच में उन सज्जन का आना बुरा लगा, और घनिष्ट मित्रों के बीच में एक अपरिचित व्यक्ति का आ जाना बुरा लगने की बात भी थी। रामेश्वर ने प्रस्ताव किया कि इन सज्जन को इतना बनाया जाय कि ये यहाँ से उठ जायँ। प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया। रामेश्वर ने उन सज्जन से कहा—महाशयजी आप अलग क्यों बैठे हैं? इसी मेज पर चले आइये, काफी जगह है।

उत्तर में स्वयं ही अपनी थाली लिये हुए वे हमारी मेज पर आ पहुँचे। उनकी इस बे-तकल्लुफी पर हमें आश्चर्य हुआ। वे मझोले कद के तथा गठे बदन के एक सभ्य पुरुष थे। सेटीन जीन की सूट पहने थे, दाढ़ी-मोछ साफ, रंग गेहुआँ और बातचीत से उच्च कोटि के समाज के व्यक्ति मालूम होते थे। उनका नाम था—पृथ्वीनाथ, जाति के कायस्थ थे, जमींदार और रईस थे। तफरीहन घूमा करते थे। एम. ए. पास थे। नेता बनने की धुन में थे। प्रायः व्याख्यान दे दिया करते थे और कभी-कभी लीडर तथा अन्य अंग्रेज़ी अखबारों में राजनैतिक लेख लिख मारा करते थे।

'अच्छा! तो आप लोग सब-के-सब इसी नगर के रहने वाले हैं।'—हम लोगों का परिचय पा कर उन्होंने कहा—'दावत का प्रबन्ध तो घर पर ही हो सकता था, फिर होटल क्यों चुना?'

मैंने कहा—साहब, होटल में जितनी सुविधा तथा स्वच्छन्दता प्राप्त है, उतनी घर पर नहीं मिलती।

'बात तो आपने ठीक कही। मुझको ही लीजिये, इस नगर में मेरे प्रायः एक दर्जन रिश्तेदार हैं; लेकिन मैं होटल में ही ठहरा करता हूँ। सुविधा तथा स्वच्छन्दता के साथ-साथ होटलों में कभी-कभी ऐसे अनुभव भी प्राप्त हो जाते हैं, जो जिन्दगी-भर नहीं भूलते।'

हम लोगों का कौतूहल बढ़ा। 'तो क्या कभी आप को ऐसा अनुभव प्राप्त हुआ है?'—परमेश्वरी ने पूछा।

'हाँ!'—पृथ्वीनाथ ने उत्तर दिया—'और एक अनुभव तो मैं शायद जिन्दगी-भर न भूलूँगा। यदि आप लोग चाहें, तो मैं उसे सुना सकता हूँ।'

'अवश्य सुनाइये!'—हम सब लोगों ने एक साथ कहा।

• • •

अभी पार साल की बात है। अक्टूबर का महीना था। काश्मीर से लौटते समय मैं दो दिन के लिए लाहौर रुक गया। लाहौर उत्तर-भारत के नगरों में विशेषता रखता है, और वहाँ मेरे दो-एक मित्र भी हैं। मैं वहाँ एक होटल में ठहरा। होटल का नाम मैं न बतलाऊँगा, इतना कह देना यथेष्ट होगा कि वहाँ का प्रबंध बहुत सुन्दर था और वहाँ हर तरह का आराम था। दिन भर मैं नगर में घूमता रहा, भोजन मैंने एक मित्र के यहाँ किया, आठ बजे के क़रीब मैं वापस आया। उस समय होटल के मैनेजर वहाँ न थे।

पंजाब में परदा नहीं होता। मैनेजर की पत्नी वहाँ पर अपने पति के स्थान पर आसीन थीं। उन्होंने मुझसे पूछा—खाना भिजवा दूँ?

'नहीं, धन्यवाद! मैं अपने एक मित्र के यहाँ भोजन कर आया हूँ।'

'और कोई प्रबन्ध चाहिये तो बतला दें? यहाँ हर प्रकार की सुविधा प्राप्त है।'—आँखें मटकाते और मुस्कराते हुए उसने मुझसे कहा।

'नहीं धन्यवाद!'—मैं उस स्त्री की बात का मतलब न समझ पाया था।

गर्मी समाप्त हो चुकी थी और गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। मैं सीधा अपने कमरे में गया, बिजली जलाई और कपड़े बदले। इसके बाद मैं कुरसी पर बैठकर ट्रिब्यून पढ़ने लगा।

मैं जिस कमरे में ठहरता था, उस कमरे की बाबत कुछ थोड़ा-सा बतला दूँ। कमरा काफ़ी छोटा था। केवल एक चारपाई उसमें आ सकती थी, बग़ल में एक मेज़ और एक कुरसी पड़ी थी।

वह कमरा एक हाल का टुकड़ा था। हाल काफ़ी बड़ा था और इसलिए होटल वालों ने उस हाल में चार कमरे निकाले थे। उन कमरों के दो ओर तो दीवार थी और दो ओर लकड़ी के तख़्तों के पार्टीशन थे, जिनपर सीमेण्ट का हलका-सा प्लास्टर कर दिया गया था। हाल की ऊँचाई प्रायः सोलह फ़ीट थी और पार्टीशन की ऊँचाई प्रायः आठ फ़ीट।

अच्छा तो जिस समय मैं ट्रिब्यून समाप्त करने वाला था, मुझे बरामदे में स्त्रियों के कुछ कंठ-स्वर सुनाई पड़े। एक क्षण के लिए मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ; पर यह सोचकर कि सम्भवतः होटल में इस समय कुछ अतिथि आए होंगे, मैं फिर पत्र पढ़ने लगा। इसके बाद होटल के कमरों के खुलने तथा बन्द होने की आवाज़ मुझे सुनाई दी।

मैंने पत्र समाप्त किया। घड़ी देखी, दस बज चुके थे। दिन-भर का थका था, बिजली बुझाकर मैंने सोने की ठानी, पलंग पर लेट गया, दिन-भर जो कुछ देखा-सुना था, उस पर विचार करने लगा। एकाएक मैं चौंक उठा।

पूरब वाले कमरे में से एक दबी हुई आवाज़ सुनाई दी। जनाब, मैं आपलोगों को बतला दूँ कि मैं कलाविद् हूँ; मैं गाना पसन्द करता हूँ और जब गाने वाले का कण्ठ कोमल हो, तब तो मुझे बड़ी बेचैनी मालूम होती है। यह सुरीली आवाज़ किसी स्त्री की थी, और वह स्त्री बहुत दबे हुए स्वर में एक पंजाबी गाना गा रही थी, जिसकी पहली पंक्ति मुझे अब भी याद है, और वह पंक्ति थी—कधी आउदाँ कधी नहीं आउदाँ।

जिस कमरे से यह आवाज़ आ रही थी, उस कमरे में ठहरे हुए सज्जन को मैं पहचानता था। ये सज्जन मेरे साथ ही लाहौर उतरे थे, उन्हीं के कहने से मैं इस होटल में ठहरा भी था। ये सज्जन अकेले थे। उनके कमरे में से निकलते हुए स्त्री के स्वर से मेरा कौतूहल बढ़ा और मैं कान लगाकर गाना सुनने लगा।

उसी समय उत्तर वाले कमरे में से कुछ स्पष्ट प्रेमालाप सुनाई पड़ा। उस प्रेमालाप के साथ-साथ उबलते हुए उच्छ्वासों की ध्वनि भी मिली हुई थी। अब पूरब वाले कमरे से हटकर मेरे कान उत्तर वाले कमरे की ओर लग गये। उत्तर वाले कमरे में जो सज्जन ठहरे थे, उनसे सुबह चाय पीते हुए मेरी बात चीत हुई थी। उस बात चीत से मुझे पता चल गया था कि वे विधुर हैं, विवाह पर विश्वास नहीं करते और उनके जीवन का ध्येय है—खाओ-पीयो मस्त रहो।

आप लोग मुझे नीच समझते होंगे कि मैं दूसरों की बातें सुनता था; पर मैं आप से सच कहता हूँ कि मैं इतना नीच नहीं हूँ। मैं दूसरों की बातों को सुनने को कभी उत्सुक नहीं रहा हूँ, और जो कुछ उन कमरों में हो रहा था, वह नहीं सुनना चाहता था; पर पार्टीशन इतना नीचा था कि मैं सुनने को बाध्य था। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि मेरी आँखों से नींद गायब हो गई थी और लाख कोशिश करने पर भी मैं उधर से अपना ध्यान न हटा सकता था।

एकाएक मेरी समझ में सारा रहस्य आ गया। मैनेजर की पत्नी का मुझसे पूछना—और कोई प्रबन्ध चाहिये, तो बतला दें!—स्त्रियों का कण्ठ-स्वर और कमरे का खुलना तथा बन्द होना इत्यादि। उस समय मेरा सारा शरीर जल रहा था, साँस जोरों से चलने लगी थी और चित्त बहुत उद्विग्न हो उठा था।

जनाब, यहाँ पर मेरा आपलोगों को यह बतला देना अनुचित न होगा कि मैं विवाहित हूँ और मेरे बाल-बच्चे हैं। आज तक मैंने अपने को, यदि विचारों में नहीं, तो कर्म में अवश्य पवित्र रखा है। पर, उन दिनों मैं दो

महीने से घर से बाहर था, और काश्मीर के जल-वायु तथा फलों के कारण मेरा वज़न करीब सात पौंड बढ़ गया था। मेरे चेहरे पर सुर्खी छा गयी थी। ऐसी अवस्था में, आप लोग समझ सकते हैं कि उस कमरे में मेरा दम घुटना अस्वाभाविक न था।

मैं उठ खड़ा हुआ, उठकर मैंने बिजली जलाई और द्वार खोला। ठंढी हवा का एक झोंका आया; पर उसका भी कोई विशेष असर न हुआ। मेरे कान लगातार दीवार की ओर लगे हुए थे।

उस समय मेरी मानसिक स्थिति क्या थी, आप लोग नहीं समझ सकते और न मैं उसको समझा ही सकता हूँ। वही मनुष्य समझ सकता है, जो कभी इस स्थिति में पड़ा हो। अपना ध्यान उस ओर से हटाने के लिये मैंने कुरसी पर बैठकर पत्र लिखना आरम्भ कर दिया। एक पंक्ति लिखता था और फिर ध्यान उन कमरों में दौड़ जाता था। इसके बाद क्या लिखना है, सब कुछ भूल जाता था। उस पंक्ति को काटकर दूसरी पंक्ति लिखने बैठा और फिर वही हाल।

मैं नहीं कह सकता कि कितनी देर तक मैं यह तमाशा करता रहा; पर उसी समय मुझे बाहर बरामदे में से स्त्रियों के कुछ कण्ठ-स्वर अवश्य सुनाई पड़े। एक कण्ठ स्वर को मैं अच्छी तरह से पहचानता था, वह मैनेजर की पत्नी का था, दूसरा अपरिचित था। रात का सन्नाटा था और मेरा कमरा खुला था; इसलिए मैं उन लोगों की बात-चीत—यद्यपि वह बहुत दबी हुई ज़बान में हो रही थी—भली-भाँति सुन सकता था।

मैनेजर की पत्नी ने कहा—तुम अभी तक क्यों नहीं आईं, अब बहुत देर हो गई; क्योंकि यहाँ पूरा इंतज़ाम हो चुका है।

इस पर उस अपरिचित स्त्री ने बहुत करुण-स्वर में कहा—मेरी तक़दीर! क्या करूँ, मेरे यहाँ कुछ लोग शराब पीकर घुस आए थे; इसीलिए देर हो गई। देखो कोई मेहमान ख़ाली हों!

मैनेजर की पत्नी ने कहा—नहीं, अब कोई मेहमान खाली नहीं हैं! पर कुछ सोचकर उसने फिर कहा—हाँ, एक मेहमान ज़रूर खाली हैं; लेकिन वह या तो आर्यसमाजी हैं, या बेवक़ूफ़ हैं।

उस स्त्री ने बहुत गिड़गिड़ा कर कहा—अच्छा, तो एक दफे फिर कोशिश कर लो!

मैनेजर की पत्नी मेरे कमरे में आई। इस बार मैंने उसको गौर से देखा। वह अधेड़ थी और उसका रंग था गेहुआँ। गालों पर झाईं पड़ गई थी; पर हृष्ट-पुष्ट थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी समय वह भी सुन्दरी रही होगी। उसने मुसकराते हुए मुझसे कहा—बाबूजी! रात को कोई इन्तज़ाम चाहिये?

मैं उस समय ग्यारहवाँ लेटर-पेपर फाड़ रहा था। मैंने कहा—भेज दो! लेकिन कितना देना होगा।

'पाँच रुपये!'—इतना कह कर वह बाहर चली गई।

उसके बाहर जाने के आध मिनट बाद ही एक स्त्री ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। उस समय मेरे हाथ में फाउन्टेन-पेन था और मेरे सामने खुला हुआ लेटर-पैड। वह दरवाजे पर रुक गई।

मैंने अपनी आँखें उठाईं। जो स्त्री मेरे सामने खड़ी थी वह सुन्दरी थी, इतना स्पष्ट था। उसका रंग गोरा था और बदन एकहरा। शायद वह दुबली थी और इसीलिए वह लम्बी मालूम होती थी। उसका मुख गोल था, और गालों का बैठना आरम्भ हो रहा था। उसकी आखें बड़ी-बड़ी थीं; पर उनमें आभा न थी। माथे पर लाल बेंदी थी।

वह एक नीली शलवार पहने थी, जो मखमल की थी और जिस पर गोटे का काम था। शलवार पर एक रेशमी कुरता था और उस पर महीन रेशमी चिकन का हरा दुपट्टा था। वह प्रतीक्षा कर रही थी कि मैं कुछ कहूँ।

मैं नहीं जानता था कि क्या करूँ। कभी पहले ऐसी परिस्थिति में न पड़ा था; पर कहना कुछ अवश्य था, इसलिए बैठे-ही-बैठे मैंने कहा—दरवाजा बन्द कर दो।

उसने दरवाजा बन्द कर दिया, और फिर मेरी ओर देखा। मेरे सामने फिर वही समस्या रह गई कि क्या किया जाय। एकाएक मेरे मुख से निकल पड़ा—अपने सब कपड़े उतार लो!

आप लोग शायद यह पूछें कि मैंने ऐसा क्यों कहा। मैं स्वयं ही कारण नहीं बतला सकता। बहुत सम्भव है कि आगे किस प्रकार बढ़ा जाय, यह सोचने के लिये मैं समय निकालना चाहता था, या बहुत सम्भव है कि मैंने वैसे ही बिना समझे बूझे यह वाक्य कह दिया हो; पर यह कह मैंने अवश्य दिया, और स्त्री ने निःसंकोच अपने वस्त्र उतार दिये। जिस समय वह अपने वस्त्र उतार रही थी, मेरी आँखें

मेज़ पर गड़ी थीं और मैं यह सोच रहा था कि क्या किया जाय। उस स्त्री ने कहा—बाबूजी, अब क्या करूँ?

इस समय तक मैं कुछ भी स्थिर न कर पाया था। मैंने उस स्त्री की ओर देखा। और वैसे ही मैंने यह चिल्ला-कर आखें फेर लीं कि 'अपने कपड़े पहन लो!'

मैंने यह क्यों किया, यह मैं स्वयं ही नहीं जानता। उस समय मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि रुपया मनुष्य को पशु बना सकता है। रुपये के वास्ते मनुष्य घृणित-से-घृणित काम करने को बाध्य होता है। स्त्री का सर्व-श्रेष्ठ प्राकृतिक गुण लज्जा है। मेरे सामने जो स्त्री खड़ी थी, चाँदी के कुछ टुकड़ों की आवश्यकता ने उसे इतना अधिक गिरा दिया था कि वह अपने सर्वोत्तम गुण को तिलांजलि दे चुकी थी। या बहुत सम्भव है कि मेरी संस्कृति तथा सामाजिक भीरुता ने काम किया हो, क्योंकि मैंने बाजार में बिकने वाले नग्न तथा अश्लील सौन्दर्य को प्रथम बार देखा था, या दोनों ही भाव मेरे हृदय में एक साथ मिले हुए आए हों; पर इतना निश्चय है कि मेरे हृदय में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई।

उस स्त्री ने कपड़े पहन लिये। मैंने उससे कहा—यहाँ आओ!

वह मेरे निकट आ गई। मैंने उसको सिर से पैर तक देखा, इसके बाद उससे पूछा—तुम इस पेशे में कितना पैदा कर लेती हो?

कुछ झिझकते हुए उसने कहा—करीब सत्तर अस्सी रुपया महीना।—

'और तुम कितना खर्च करती हो?'

'सब-का-सब खर्च हो जाता है। कभी दस पाँच रूपये बच गये तो बच गये।'

मैंने उससे पूछा—क्या तुम इस काम को पसन्द करती हो?

वह हँस पड़ी; पर उसकी हँसी कितनी रूखी थी, कितनी भयानक थी! मैं घबड़ा गया। उसने कहा—क्या सभी आदमी वही काम करते हैं, जिसे वे पसन्द करते हैं? हमारे सामने प्रश्न जिन्दा रहने का है और जिन्दा रहने के लिए तो लोग न जाने क्या-क्या किया करते हैं। फिर धीरे-धीरे आदमी अपने काम का अभ्यस्त हो जाता है और उसको पसन्द करने लगता है।

मैंने उसकी ओर आश्चर्य से देखा, वह अब भी मुस्करा रही थी। मैंने कहा—क्या एक काम करोगी?

'आप जो कुछ कहेंगे वह मैं करूँगी, यदि वह करने लायक होगा। आज रात के लिए मैंने अपने को आप के हाथ बेच दिया है।'

मैं चिल्ला उठा—रुपये-पैसे के सौदे की बात छोड़ो। मैं एक मनुष्य की हैसियत से तुमको मनुष्य समझते हुए पूछ रहा हूँ, करोगी?

इस बार उसने मेरी ओर बड़े आश्चर्य से देखा। शायद वह मुझे सनकी समझती हो, या बहुत सम्भव है, उसने पागल समझा हो; पर इतना निश्चय है, उसे मुझ पर आश्चर्य अवश्य था। फिर भी उसने मुझसे कहा—बाबूजी करने लायक काम होगा, तो मैं वादा करती हूँ करूँगी।

मैं अधिक भावुक नहीं हूँ। मैंने संसार देखा है और भावुकता तथा अनुभव में बहुत अन्तर है। इसीलिये मैं आज तक आश्चर्य करता हूँ कि मैंने ऐसा क्यों किया और शायद आप लोग भी आश्चर्य करें। मैंने अपना पर्स निकाला, उससे मैंने एक सौ रुपये का नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—देखो, मैं तुम्हारा नाम नहीं जानता और न जानना ही चाहता हूँ। तुम क्या थीं, और आगे चल कर तुम क्या होगी, इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं; क्योंकि मनुष्य अपने ही सुख-दुख के भार से इतना अधिक लदा हुआ है कि वह दूसरे लोगों के भार को नहीं उठा सकता। बहुत सम्भव है, तुम्हें इस काम में सुख मिलता हो, बहुत सम्भव है कि तुम्हें मजबूरन इस काम को करना पड़ता हो, मैं इसकी बाबत तुमसे कुछ न पूछूँगा। हम तुम क्यों मिले, यह एक पहेली है, जिसको शायद मैं कभी भी न सुलझा सकूँगा, और फिर कभी क्या हम दोनों मिलेंगे—इसको भी मैं नहीं जानता। इतना सब होते हुए भी एक प्रार्थना है और इसे तुम अस्वीकृत न करोगी। तुम कहती हो कि तुम महीने में सत्तर-अस्सी रुपया पैदा करती हो। यह सौ रुपये का नोट लो और एक महीने के लिये तुम अपने इस काम को छोड़ दो। एक महीने के बाद जो तुम्हारा जी चाहे करना।

इस बार उसकी मुसकराहट लोप हो गई। वह मुख, जिस पर कामुकता हँस रही थी, एकाएक पीला पड़ गया। मेरे सामने करुणा की एक प्रतिमूर्ति खड़ी थी।

उसने धीरे से कहा—बाबूजी, मैं यह रुपया न लूँगी!

'क्यों ? क्या तुम अपने काम को इतना पसन्द करती हो कि उसे एक महीने के लिये भी नहीं छोड़ सकतीं ?'

उसका गला भर आया—हाथ जोड़ती हूँ बाबूजी, हाथ जोड़ती हूँ, यह न कहिये। मैं करूँगी, आप जो कुछ कहते हैं, वह मैं करूँगी!—यह कह कर उसने नोट मेरे

इतना कह कर उसने अपना मुख फेर लिया। लाख कोशिश करने पर भी वह अपनी आँखों से गिरते हुए दो आँसुओं को मुझसे न छिपा सकी। और वह कमरे के बाहर चली गई।

वह चली गई और मैं सोचता ही रह गया—अरे! किस भगवान् से, यह मेरा भला करने को कह गई है ?

—वह—

वह रे अनन्त का नील हास,
तारागों का झिलमिल प्रकाश;
करते निवास जो निशि वासर
मेरे प्राणों के आस पास;
वह रे अनन्त का नील हास।

वह रे कञ्चन की किरण-कोर,
बन-विहगों की मधु-मदिर-रोर;
द्रुत बोर गया जिनसे मेरे
सूने मानस का ओर-छोर;
वह रे कञ्चन की किरण कोर।

वह रे कोकिल की कलित कूक,
कल विजनवती की तान मूक;
इक हूक उठा हिय में मेरे,
कर देती हैं जो टूक टूक;
वह रे कोकिल की कलित कूक।

वह रे सरिता का शुभ्र प्रतीर,
परिमल-पावन प्रातः समीर;
जो मेरे दुख की भीर चीर
हैं कर देते पुलकित शरीर;
वह रे सरिता का शुभ्र प्रतीर।

वह रे वल्लरियों का वितान,
तापस तरुओं का मौन ध्यान;
म्रियमाण प्राण को नव जीवित,
कर देते जो चिर-शान्ति-दान;
वह रे वल्लरियों का वितान।

वह रे सागर-जल का हिलोर,
लहरों का भीषण होड़-शोर;
जिन का अघोर-सा नृत्य निखर,
हो जाता मैं सुख से विभोर;
वह रे सागर-जल का हिलोर।

वह रे असीम की मृदुल गोद,
दूर्वाओं की शय्या; समोद—
सोता मैं जिस पर नित्य दिवस,
मधुबाला से करके विनोद;
वह रे असीम की मृदुल गोद।

वह रे बादल का घनालाप,
कौतुक-कलाप, प्रिय-इन्द्र-चाप;
जो अहा, आप ही आप बहा
देते धो मन के पाप-ताप;
वह रे बादल का घनालाप।

वह रे तुषार का कुन्द-हार,
रजतोज्ज्वल हिम का गुरु प्रसार;
बलिहार हुआ मैं बार बार,
जिन की सुन्दरता पर अपार;
वह रे तुषार का कुन्द-हार।

वह रे नीहारों का विहार,
उन्मुक्त गगन के आर-पार;
सुकुमार करों से जो मुझपर
बरसाते नित अक्षय दुलार;
वह रे नीहारों का विहार।

आरसीप्रसादसिंह

हाथ से ले लिया। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे।

'अच्छा, अब तुम जा सकती हो!'

उसने कहा—बाबूजी! यह नहीं सोचा था कि संसार में अभी दया, सहानुभूति और त्याग बाकी है। भगवान् आप का भला करें।

उसी भगवान् से, जो इसे इस घृणित जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर रहा है ? उसी भगवान् से, जो इसे गिराता ही जा रहा है ? उसी भगवान् से, जिसने इसको उठाना तो दूर रहा, पशु बना दिया है! क्या वह भगवान् इसके कहने से मेरा भला कर सकता है ?

: नव निर्माण के पथ पर :

लेखक—श्रीयुत बनारसीदास कौशिक, बी॰ ए॰

टार्च की तीव्र किरणें कदली की भाँति काँपते हुए एक काले चेहरे की सूखी आँखों पर पड़ीं। विस्मय, कौतूहल और अकुलता-पूर्ण नेत्रों से ताकती हुई शीला एक दम पलङ्ग से कूद मुझसे सट कर आ खड़ी हुई।

'देखो न शिल्ली! कितना साहस-हीन दीन चोर है यह!'

'ऐं-ऐं! क्या चोर......?'

'अच्छा जी चोर भाई, भला हुआ, जो तुम इसी घर में चोरी करने आये, नहीं तो......।'

'आह सरकार! मेरे भूखे बच्चों के लिए मुझ पर दया करो। आह...आ...!'

वह सिसकियाँ लेने लगा। बाँह पकड़ कर मैंने उसे कोठरी से निकाला और धीरे से कहा—देखो धीरे-धीरे बातचीत करो, नहीं तो लोग इकट्ठा हो जायँगे और फिर तुम सहज ही में पकड़े जाओगे। घबराओ नहीं, जो मैं पूछूँ, चुपके-चुपके उसका ठीक-ठीक उत्तर दिये जाओ।—

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'मुन्ना भगत'—काँपते हुए स्वर में उसने उत्तर दिया।

'कहाँ रहते हो?'

'यहीं जागेस्वर के पास वाले गाँव में।'

'क्या करते हो?'

'चमार हूँ सरकार। चर्से का ठीका लिया था, जमीदार का बेगारी भी हूँ।'

'कितने जने हैं कुटुम्ब में?'

'एक बीबी, दो लड़के, एक लड़की।'

'अच्छा देखो भगत, डरो मत। अब यह समझो कि तुम अपने ही घर में हो। मुझे अपना भाई ही समझ कर यह सच-सच बताओ कि तुम चोरी करने क्यों आये?'

टन-टन बारह बज गये। मकान के पास ही में एक गदहा ढीचु-ढीचु करके भागा चला गया। चौकीदार की 'जागते रहो' भी दूर से सुनाई पड़ रही थी। मुन्ना चुपचाप रो रहा था। उसकी निःश्वासें, उसकी आतुरता, सूखा मुँह, धँसी हुई आँखें, जीर्ण-शीर्ण मलीन वस्त्रों को शीला निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी—शायद कुछ विचार मग्न भी थी।

हाँ, तो उसने कहना प्रारम्भ किया—

'बाबूजी, मेरी कहानी बड़ी रुलाने वाली है। आज दो दिन से घर में चूल्हा नहीं जला। बच्चे भूखे पड़े बिलख रहे हैं और उनकी माँ पड़ी है—मौत की खाट पर! परसों राजा साहब के यहाँ से बेगार आई—हम सबको वहाँ दिवाली के लिए सफ़ाई करने जाना था, मेरी बीबी चलने जोग नहीं थी; पर हाय! पत्थर से दिल वाले सिपाही कब मानने वाले थे। उसको भी पकड़ कर ले गए। तीस-तीस डंडों की सीढ़ी पर चढ़कर महल के अन्दर उसे भी कली पोतनी पड़ती थी! ओह!......।'

'क्यों, क्या वह बीमार थी?'—मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ पूछा।

'नहीं बाबूजी, बीमार-उमार तो नहीं थी......पर हाँ, उसे छठा महीना... .....।'

फिर उसके हृदय का दुःख-स्रोत्त उमड़ आया।

'ओफ घोर पाशविकता, नर-कलंक!'—शीला ने वेदना-युक्त कम्पित स्वर से कहा।

'आह बाई! दीन और भूखों की न जाने राम कब सुनेगा? बस तो हाँ, उस दिन के काम से उसे रात को इतना कष्ट हुआ कि सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं! सारे शरीर में पीड़ा थी, दर्द से बिलबिला कर वह खटिया पर इधर-उधर करवटें ले रही थी। भूखे बच्चे रो रहे थे और मैं भी उस दुखिया की आह में आह मिला रहा था। फिर उसी शाम को बेगार का बुलौआ आया। हाँ, वह दिवाली की रात थी—रोशनी करने जाना था। उसके कुत्ते-घर और घुड़साल को चमकते दीपक से मुझे ही सजाना था। करता क्या? अपने रोते हुए, कराहते हुए, झोंपड़े को

दिवाली की रात में अँधेरा छोड़, दूसरों के हँसते हुए महलों को जगमगाने मुझे भी जाना था ! छाती पर पत्थर रख, सुखिया की ओर निराश भाव से देखता हुआ मैं डगमगाते पैरों से उन लाल पगड़ी वाले यमदूतों के साथ हो लिया। वहाँ से तीन घंटे के बाद लौटा, तो मारवाड़ियों के ऊँचे-ऊँचे भवनों पर लक्ष्मी हँस रही थी। इधर-उधर छक्के फेंके जा रहे थे। रुपयों की खनखनाहट हो रही थी। बाजारों में तितली के-से रंग-बिरंगे कपड़े पहने अमीरों के बच्चे पटाखे छोड़ हीहा-हूहा कर रहे थे—पर मेरे बच्चे ? हाय ! वह सूखी रोटी से भी वंचित हो, अपनी मरती हुई माँ की टूटी खाट के पास अँधेरी झोंपड़ी में बैठे-बैठे सिसकियाँ ले रहे थे! स्कूल और कॉलेज के लड़के इधर-उधर निगाह फेंकते किलोलें करते जाते थे। शहर की छोकड़ियाँ बढ़िया-बढ़िया चमक-दमक की पोशाकें पहने मोटरों से उतर-उतर खिलौने और मिठाइयाँ मोल ले रही थीं। ओह ! तब कितना थका-माँदा औह भूखा था मैं ! पर मैं तो एक बेजान था, पशु था, सदियों का गुलाम था, हिन्दुओं की साफ चमकती दिवाली के अन्धेरे में मेरा निवास था, और उनके झूठे टुकड़ों में मेरा जीवन......!'

मुन्नू ने अब कहीं जाकर एक दीर्घ श्वास ली, एक-एक वाक्य उसकी अंतर्वेदना से रञ्जित था। गाँव में पंचायत के प्रधान या पधान भी कभी-कभी ऐसी ही वकीलों की-सी ओजमयी वक्तृता दे डालते हैं। अन्त में मुन्नू का शब्द भर्राया हुआ था—वेदना की एक टीस, एक कसक, उसके एक-एक स्वर में थी। शीला का हृदय तो फिर अमीनाबाद की सहृदयता और कोमलता लिए हुए था। उसकी पलकें भीग रही थीं।

'हाँ तो भैया'—मुन्नू ने फिर कहना प्रारम्भ किया—'बाज़ार के उस साज व सामान को देख मुझे बड़ा धक्का लगा। मुझे अति दुःख हुआ कि क्यों मैं इतना दीन-हीन और बेकार पैदा हुआ। औरों के भाग को देख मुझे जलन हुई। बच्चों को मिठाई, सुखिया को दवाई और कुछ दिनों के लिये भोजन जुटाने की इच्छा मेरे इस पापी, भूखे पेट में हुई; ज़मीन से तो मुझे बेदख़ल करा ही दिया था, ठेके की किस्त भी सिर पर आ गई थी, चप्पलों और मिल के बूटों के सामने कोई मेरी बनाई जूती को ख़रीदता ही न था—बस, तो बाबू साहब ! इस गरीबी ने, बच्चों के प्यार ने, और आने वाले लाल पगड़ी वाले किस्तिया यमदूतों के डर ने मेरा जी दहला दिया और तब मैं चोरी करने इस घर में घुसा, आह ! पाप...महा...पा...प !'

शीतल वायु का एक अल्हड़ झोंका आया। शीला के असंयमित केश हिलने लगे; पर मुन्नू को कँपकँपी चढ़ने लगी। उसके फटे हुए मैले कुर्ते के दर्जनों छेदों से ठंढ के तीर उसकी क्षीण जर्जरित काया पर चोट कर रहे थे। मैंने झट उसे अपना कम्बल ओढ़ा दिया। उपकार और अनुग्रह से वह रो पड़ा। शीला चुपचाप सब देख रही थी।

'क्या देखती हो मेरी गृह-लक्ष्मी ! 'वसुधैव कुटम्बकम्' 'डीन वेलजीन' आ गया—मुन्नू अब हमारा अतिथि है। असली चोर कौन है, 'रिज़रेक्शन' में तुमने पढ़ ही लिया है। आओ, तो इस साधन-विहीन, गृह-विहीन दुखी प्राणी की आवश्यकताओं को यथाशक्ति पूरा करें। जीवन-यात्रा की पहली ही सीढ़ी है और फिर यात्रा ही ठहरी न ! जितना कम बोझ लादो, उतना ही अच्छा है। हाँ, तो लाओ दिवाली का प्रसाद। आओ, आज लक्ष्मी-तिरस्कृत आत्मा की, इस दुखी पतित और दलित की भीषण क्षुधा पहले शांत करें।'

यंत्रवत् कार्य हुआ। टाकी के छाया-चित्रों एवं रंडियों का गाना सुनने से भी उसे ऐसा आश्चर्य न होता, जितना मेरे इन शब्दों से हुआ। अशोक की लाट की नाईं वह स्तंभित था, संभव है गद्गद् भी हो रहा था।

स्वाध्याय-सदन (Study) की एक चटाई पर बैठा कर हमने उसे प्रेम-सहित भर-पेट भोजन कराया। एक बज रहा था। थके-माँदे, दुखित मुन्नू को चोरी के सामान-सहित वहीं सुला, मैं और शीला भी इस हृदय-द्रावक नाटकमय घटना पर बातचीत करके सो गये।

• • •

प्रातःकाल होते ही प्रतिदिन की नाईं सुरेश बाबू कुंडी खटखटाने लगे। आँख मलते हुए मैं उठा। उस प्रातः का भ्रमण स्थगित करके मैं उसे ऊपर ले गया। सुरेश मेरा एक आंतरिक मित्र है।......कॉलेज में हम सहपाठी रहे थे और हाँ, थे हम उस जीवन के सरस कविता-मय अध्यायों के स्फूर्तिपूर्ण पात्र ! हम दोनों ही समस्त आधुनिक वेदनाओं

से ओत-प्रोत थे। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के जितने महात्मा तत्ववेत्ता या सुधारक थे, उन सब के सिद्धान्तों की तुलनात्मक व्याख्या ने तब हमको 'क्रैक' (Crack) बना रखा था। सुरेश एक सम्पत्तिशाली वंश से था और पिछले ही वर्ष से वकालत करना प्रारम्भ किया था। रात्रि की इस घटना से उसे महान् कौतूहल हुआ।

'ओ ब्रेवो कॉमरेड ! माई प्रैक्टिकल सोशियलिस्ट ब्रेवो'—सुरेश ने मेरी कमर पर थपकी देते हुए कहा।

'अरे भाई, मैंने अभी किया ही क्या है? असली समस्या तो अब सुलझानी है—ऐसे पतित और दुखियों के इस संसार में होते हुए भी यह हमारा अतुल ऐश्वर्य और वैभव वृथा है। क्यों न मैं भी इन्हीं की आहों और निःश्वासों में अपने तुच्छ जीवन को विलीन कर दूँ? यह विषम वेदना क्या मुझे यों जीने......'

'छिः इस मर-मर के जीने ही में तो मजा है! यों इस प्रकार क्लांत होने की आवश्यकता नहीं है। माना कि अब तुम्हारा ऋषि हृदय अनेकों वेदनाओं का कुरुक्षेत्र है; पर कर्मक्षेत्र से वैराग्य होने की शंका का तो इसमें कहीं आभास भी नहीं होता।'—सुरेश ने किंचित हँसकर कहा। इतने में शीला भी कमरे में चली आई।

'कहो बहन, चोर के मिजाज-शरीफ कैसे हैं?'

'हज़रत बे-फिक्री की नींद सो रहे है।'—शीला ने भी मुस्कराकर सुरेश को उत्तर दिया।

'और जो तुम्हारे वयोवृद्ध पंडित पिता को तुम्हारे इस अतिथि-सत्कार का पता चले, तो?'

'वाह मैं तो स्वयं ही उन्हें आज वर्णाश्रम स्वराज्य-संघ के हेडक्वार्टर पर ही यह सब लिख रही हूँ। अब तो यह 'कानशन्स' का महाभारत है। 'केअर ए जाट नाऊ' मैं ऐसी संपत्ति को मिट्टी समझती हूँ।'

'खूब! खूब!! कहिए प्रोफेसर साहब, अब किस प्रकार इस 'सामाजिक रोगी' का उपचार कीजियेगा? क्षुधामय स्वतंत्रता? बस?'—सुरेश के प्रश्न में कुछ हल्के तेजाब की पुट थी।

'नहीं, जितना सामान उसने आवश्यकतानुसार चुराया है, या जितना और हमसे चाहता है, वह भी उसके साथ।' शीला ने बड़ी अतृप्तता से उत्तर दिया।

'प्रोब्लैम' कुछ ठीक हल न हुआ। यह सब समाप्त हो जाने पर वह फिर चोरी करेगा?'

'तो फिर तुम किस वास्ते हो जी? क्लैरेन्स डेरो की भाँति उसकी पैरवी करके छुड़ा लाना।'—शीला के तीव्र व्यंग ने सुरेश को कुछ अप्रतिभ-सा कर दिया। अन्यायपूर्ण एक तरफा पूँजीवादी कानून गढ़ने वालों को स्यात् ऐसा करना ही नहीं सिखाया जाता। तब फिर उनसे न्याय पाने के लिये झगड़ने वालों का तो कहना ही क्या है।

'खैर, जब अवसर आये, तो देख लेना'—सुरेश के नयन अबकी बार तेजमय हो चमक रहे थे। मैंने दृढ़ता-पूर्वक उसका 'डिफैन्स' किया—मैं तुम्हें खूब जानता हूँ—उस प्रलय-रात्रि की हार्दिक प्रार्थनाएँ तुमसे इससे भी अधिक कराने की आशा रखती हैं। और भाई सुनो, मैं तो इस चोर को अब 'साधु' बनाकर मानूँगा, चाहे मेरा यह टूटा-फूटा जीवन और भी अधिक क्यों न टूट-फूट जाय। स्वर्णमय अमर शान्तिप्रद प्रभात आ गया है, अब अधिक निद्रित न रहूँगा!

मुन्नू अब जाग उठा था। आँगन की धूप में बैठ चौंक-चौंक कर उत्सुक नेत्रों से इधर-उधर देख काँप रहा था। स्यात् मेरी सुप्त वेदनाओं की क्रान्ति पर विचार कर रहा हो, किंवा किन्हीं अति विरोधी दो संसारों की तुलना!

हम सब प्रेम और हार्दिक सहानुभूति से उसकी ओर आये। देखा उसको शीत-ज्वर की कँपकँपी चढ़ रही थी। हाँ, उसके भूखे नंगे बदन पर शीत-ज्वर ने आक्रमण कर दिया था! तिस पर भी सुखिया की वह दर्द-भरी आहें उसे न भूली थीं! हमें देखते ही घर जाने की अश्रुपूर्ण विनती करने लगा। मैंने उसका पूरा पता लेकर सब सन्दूक खोल के उसके सामने रख दिया; पर उसने अपने लिये, बच्चों के लिये, क्या माँगा? केवल सेर-भर आटा और नमक के दाने?

• • •

गोधूलि के समय मैं दुःख, दारिद्रय, दासता और मलनिता-पूर्ण मुन्नू के झोपड़े में घुसा। एक टूटी खटिया पड़ी थी और उससे निकल रही थीं असंख्य आहें! एक कोने में फटे-पुराने छप्पर के नीचे पुआल के बिछावन पर एक फटी गुदड़ी पड़ी थी। एक अलाव में थोड़े-से कूड़े करकट



का दुर्गन्धमय होम हो रहा था। दो-चार मिट्टी की ढिवरियाँ और तवाख़ रखे थे—यही उस घर की सम्पत्ति थी, यही था उसका समग्र वैभव-कोष ! मुझे देखते ही उस निर्जीव खटिया पर से एक निर्जीव-सा ही जीव उठा और रो पड़ा। एक बच्चा और भी जोर से रो दिया !

'क्यों भगत, इतने ज्यादा दुखी क्यों हो ?'

'भैया दुखियों पर और भी दुःख पड़ गया—इन बच्चों की माँ परलोक चली गई, बड़े लड़के और लड़की भी ला पता हैं, आह राम !......'

'ओफ़ ! ऐसा ? कब हुआ यह सब ?'

'बस मालिक तुम्हारे यहाँ से आया, तो सीधे गत ही करने गया। बेचारी का कोई रोने वाला भी न था ! बिहारी और रम्मो रात वैद्य को लिवाने गये थे, सो अभी तक नहीं लौटे। जी बड़ा ही घबरा रहा है। मेरे मालिक ! आज मुझसे अधिक दुखी और कौन होगा ?'

'वह मैं हूँ भगत !' भगवान् की अच्छाई में भरोसा रखो'—मैंने उसे अश्रुमय सान्त्वना दे, प्रेम से उसका हाथ पकड़ा—ओफ ! स्वयं भी बेचारा ज्वर से जल रहा था !

आज धनिकों की अधिष्ठात्री—सेठों की माणिकमुक्ता-सुसज्जित अमीर सेठानी, मदान्ध और उन्मत्त नरपतियों की विद्युत् छटामय सुकुमार नवयौवना रानी, कॉलिज के नवविवाहित युवकों की लावण्य और स्वर्णमयी सुहागरात निश्चित 'अललधत्त' लम्बोदर अफ़सरों के शानदार बँगलों की वह अल्हड़ युवा मादकता, गौराङ्ग प्रभुओं की वह अति रमणीक 'स्लैंडिड क्वीन' मसूरी, उन्मादी कवि, मौजी लेखक और शून्यात्मक सुधार का भोंपू बजाने वाले नाम-मात्र के सुधारक की वह निश्चिन्त स्वप्न-विहीन गाढ़ निद्रा, 'मॉडरेट' के ड्राइंगरूम के स्प्रिंगदार गुदगुदे सोफे और उनका वह ताजमहल होटल, एवं विश्वनाथ या गुरुवयूर के पंडों और पुजारियों की अखंड भव्य रूपराशि उर्वशी—दीपावली—की दूसरी गोधूलि थी !

और इस झोंपड़े में ?

मैंने समझा। मुझे प्रतीत हुआ कि इस दुःख, नैराश्य और मलिनता के समुद्र-तट पर खड़ा स्वार्थ-चन्द्र के तीव्र आकर्षण से गगन-स्पर्शी विकट ज्वार उठ रहा है, अथवा विसूवियस की लावा-मय लपटें—पौम्पाई को भस्मीभूत कर रही हैं—और हाँ, मैं भी उन्हीं लहरों में डूब रहा हूँ, उसी अग्नि में जल रहा हूँ ......!

असह्य दारुण व्यथा का एक झंझावात् मेरे हृदय में बह चला ......।

इतने में ही मुन्नू के पड़ौस की एक अधेड़ स्त्री ने लज्जा और दुख की व्यग्र दृष्टि से प्रवेश किया।

'कहो रल्लो क्या बात है, क्यों सटपटा रही हो ?'—मुन्नू ने धैर्य से उससे पूछा।

'क्या कहूँ भगतजी ! बड़ी बुरी खबर है—मुखिया से अभी सुनकर आई हूँ कि रम्मो पुलीस की हिरासत में है।'

'ऐं पुलीस में ?'—मुन्नू ने क्षण-मात्र स्तंभित रहकर महान् आश्चर्य से पूछा।

'हाँ।'

'और बिहारी ?'

'वह ? हाँ वह.........हाँ, उसकी मुझे कुछ मालूम नहीं।'

इस विशाल ब्रह्मांड में एकाकी मुन्नू ने कातरतापूर्ण नेत्रों से 'राम' कह कर आकाश की ओर ताका, फिर मेरी ओर। हाँ, फिर आकाश की ओर और फिर मेरी ओर !

ऐसे दुखी को धैर्य दिलाने के लिये मैं न तो इतना अनुभवी था और न इतना आध्यात्मिक ! उसकी विषम अवस्था और भी दुस्तर हो गई, उसके दुःखों की कल्पना-मात्र से मैं घबरा उठा। मेरे महामहोपाध्याय......कर्मवाद की दुहाई देकर स्यात् मुन्नू को वहीं ज्वर में जलते-जलते कौओं और गिद्धों के लिये उसका भौतिक शरीर, तथा भूत और पिशाचों के लिये उसकी आत्मा को छोड़, यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ कर, धूप-दीप-सुवासित अपने तीसरे फ्लोर के एक देव-मन्दिर में जा लालइमली का बढ़िया कंबल ओढ़ सिद्धासन मार निश्चिन्त हो प्राणायाम करने बैठ जाते !

तब मैं ही क्यों इन निरर्थक चिन्ताओं में अपने रक्त को अपने आप पिऊँ ; पर जी में तो था बड़ा—हाँ बड़ा—विकट 'क्रैक' और फिर मैं तो इस विशाल विश्व में कभी का अपनी आत्मा को लय कर चुका था—प्रलय का मुझे भय ही कब हो सकता था ! हाँ, तो ऐसा था मेरा 'बापू'-मय प्रारम्भिक जीवन ! तब क्या मैं मुन्नू को अकेला



छोड़ कहीं भाग सकता था ? तब क्या मैं मुन्नू को अकेला छोड़ कहीं भाग सकता था ?

'अच्छा प्यारे भगत घबराओ नहीं, राम को याद करो। मैं रम्मो से मिलूँगा और बिहारी का पता लगाकर कल फिर तुमसे मिलूँगा।'

मुन्नू के नेत्रों से उच्छ्वसित अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी !

० ० ०

शिवालयों पर सन्ध्या के घंटे और घड़ियालों से भस्म-धूसरित श्मशान-प्रिय दीनबन्धु भोलानाथ, त्यागवीर भगवान् शङ्कर का कोलाहलमय आवाहन हो रहा था; पर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि नन्दी उनको विद्युत् गति से मन्दिर में न लाकर सीधे दीन और पतित के झोंपड़े में ले भाग रहा है !

मैंने अपने भावुक हृदय से पूछा—क्या उस दीन-हीन दुखी, व्यग्र और अस्पृश्य भगवान् का भी कोई आवाहन करेगा ?

शिव-आरती का अन्तिम शंखनाद होते-होते मैं सुरेश के घर पहुँचा।

ड्राइंगरूम के रंग-बिरंगे शीशों में से धीमा-धीमा प्रकाश छन रहा था। मेमसाहब—'अमीरज़ादी', नरेश की नवल-नवेली श्रीमती स्वर्णलता श्रृंगार कर रही थीं। कार्य-सी व्यग्रता होते हुए भी मैं कुछ हल्के व्यंग्य का लोभ न त्याग सका। एक ओर को अपनी परछाईं छिपा खड़ा रहा—'हेअररिबन' को सुन्दर शीश पर कस 'लोशन' लगा अब 'लिप-स्टिक' से ओठों को बिम्बा की नाईं लाल कर, कपोलों पर एक अति श्वेत पाउडर 'टच' कर रही थीं। पाँच मिनट चुप खड़ा रहा। 'रिबन' खुला और घने लहराते कादम्बरी के-से काले घुँघराले केश, हल्की हरी साड़ी पर कमरे की स्वच्छ चन्द्र-ज्योत्स्ना से प्रकाश में कमल-से विस्तृत नेत्रों को छूते असंयमित हो बिखर गये। अब अवसर था भेंट करने का !

'गुड कलिंङ्ग भाभी !'

मानों जैसे आग पर पैर पड़ गया; पर वह वाक्पटु और 'टेबल-टॉक' प्रवीण चट सँभल कर मुस्करा कर बोलीं—ओ थैंक्स डियर बोल्ड इन्ट्रूडर ! अवर प्रैक्टिकल सोशियलिस्ट !'

'क्यों आज अकेली कैसे हो ?'—मैंने कुर्सी पर बैठते कहा।

'और तुम भी अकेले कैसे ? तुम्हारी शिल्ली कहाँ है आज ? शिल्ली ! हा-हा-हा-हा 'दि फेमिनन आफ पोयट शैली (Shelley) ?'—उसी चिर परिचित मधुर चपलता से उसने पूछा।

'क्या भैया अभी तक नहीं आये ? आज मुझे एक बड़ा आवश्यक काम है।'—अधिक हास्य-क्रीड़ा का उपयुक्त समय न देख मैंने संक्षेप में पूछा।

'बस अभी आते होंगे। क्लब से लौटने में कभी-कभी देर हो जाती है। आज मिस सुनामिला 'टाकी-स्क्रीन' पर हैं—आप भी देखने चलिये न ! 'सेकेंड शो' में चलेंगे—तुम्हारी, हाँ, अपनी शिल्ली को भी उधर हो से ले लेंगे।'

'बस आज तो माफी ! सुरेश इस समय पब्लिक लाइब्रेरी में ही होंगे। आजकल आधुनिक 'क्रिमोलौजी का विशेष अध्ययन कर रहे हैं, मुझे उनसे अभी शीघ्र मिलना है।'

'ऊँह, आपको भी सदैव ऐसे ही नये-नये काम लगे रहते हैं ! बैठिये भी !'

'बस, नाउ ए हैप्पी गुड कलिंग—हाँ भूला, 'गुडनाइट।'

'बड़े बने हुए हो।'

'अच्छा तो अब आप भी बनिये।'—एक मधुर हास्य हुआ, और मैं सुरेश की खोज में चल दिया।

मेरा अनुमान ठीक निकला।

'वाह खूब मिले। तुम्हारे ही यहाँ जाने वाला था।'—सुरेश ने लाइब्रेरी की पहली सीढ़ी से उतरते हुए कहा।

'और मैं तुम्हारे बंगले पर ही मिलने आया था। क्या सिनेमा का निमन्त्रण देना था, भाभी तो सेकेंड शो के लिये अभी से बन ठन रही हैं !'—मैंने हँसते हुए कहा।

'अजी उनके मारे तो नाक में दम है। जितना वह बन-ठन रही हैं, बस उतना ही मैं बिगड़ रहा हूँ। नाविल, सिनेमा, रेडियो, ब्रिज और चैस ! इस उच्छृंखलता-मय जीवन से......'

'अच्छा चलने दो, तुम पूर्ण रूप से जहाँ जागे नहीं, बस सब ठीक हो जायगा। अच्छा हाँ, एक बात सुनानी है।'

'और जी, मुझे भी एक बात सुनानी है।'

'तो आओ, कुछ देर सामने के पार्क में बैठें।'

सुनील स्निग्ध अंबर में तारे छिटक रहे थे। पार्क की श्वेत-हरी बारीक दूब पर हम दोनों बैठ एक दूसरे की ओर उत्सुकता और रहस्य-भरे नेत्रों से देख, बातचीत करने लगे—

'आज क्लब में मैजिस्ट्रेट साहब की सुपुत्री को 'कनवर्ट' कर लिया।'

'मिस प्रेमा को? यह तो बड़ा दुस्तर कार्य था जी! हाँ, तो कैसे?'

'उसी हत्याकांड सम्बन्धी वाद-विवाद में।'

'हत्याकांड! कैसा, कहाँ?'

'अरे तुम्हें अभी तक नहीं मालूम?'

'ना।'

'तो सुनो, एक चौकीदार, एक वैद्य और एक बिहारी नाम के चमार के लड़के का कल रात्रि में खून हो गया है। रम्मो नामकी एक लड़की इस सम्बन्ध में पकड़ी गई...।'

'अरे यह बिहारी और रम्मो तो उसी मुन्नू भगत की सन्तान हैं!'

'हाँ, मैंने भी जब सुना कि वह एक 'हरिजन' थी, तो मैं सन्ध्या-समय उससे हवालात में मिला। कहती थी, माँ का आर्त्तनाद और व्यग्रता सुनने की शक्ति न रख दोनों भाई और बहन वैद्यको बुलाने गये। दिवाली की अर्द्धरात्रि में तीन मील की दूरी पर उस शहरी, पर परिचित वैद्य के घर गये; पर उस जूए में मस्त, पियक्कड़ खिलाड़ी ने बिहारी को चपतें लगाकर निकाल दिया। उदास, असहाय, निराश और तिरस्कृत युगल दलित आत्माएँ शहर के किनारे वाले अँधेरिया बाग़ के बीच की पगडण्डी से दुःखाश्रु गिराती चली जा रही थीं कि सहसा झुरमुटों से निकल ननकू चौकीदार इनका रास्ता रोक कर खड़ा हो गया। यह दुष्ट अभी, अभी वैद्य के यहाँ जूआ खेल रहा था। इसने कई बार सेंध लगा-लगा कर बालिका रम्मो पर बलात्कार करने का प्रयत्न किया था। बिहारी उससे बड़ा सजग रहने लगा था। कुत्सित भावना का प्रदर्शन करते ही अभिमन्यु-सी अवस्था वाले बिहारी का लट्ठ ननकू के सिर पर पड़ा। सर्प चोट खाकर और भी फुंकारा। प्राण-प्यारी बहन रम्मो को पीछे कर बिहारी ने उसका वार सहा; पर अबकी बिहारी की चोट से ननकू के हाथ की लाठी गिर गई। रम्मो भी झट बिजली की नाईं उस पर टूट पड़ी; पर इधर बिहारी का सिर फूटा और साथही रम्मो की लाठी से पापी ननकू का।' मद्य में उल्लू बना हुआ वैद्य भी प्रकट हुआ, वह भी यमलोक भेज दिया गया—रम्मो साक्षात् दुर्गा ही बन गई थी! पास के एक खेतवाले ने पुलीस-चौकी में एक दम इस विकट घटना की सूचना दे दी। कुछ घंटे दारोग़ा की मेहमान रह कर, प्रातःकाल रम्मो हवालात में बन्द कर दी गई!

'वाह! शाबाश! धन्य! उस बहन के साहस को! क्या एक पतिता की आत्मा में भी 'हरक्यूलियन ब्लड' हो सकता है?'—मैंने कुछ उत्तेजित स्वर से कहा।

'और हाँ, मिस साहबा भी तो मेरे साथ उसे देखने गई थीं।'—सुरेश ने मुझे पहली बात स्मरण कराते कहा।

'अच्छा ऐसा! इतना 'इन्टरेस्ट?'

'अरे भाई, वह तो एक पाषाण हृदय साम्राज्यवादी जज के यहाँ अब एक स्वर्गीय 'इवा' सरीखी देव-कन्या प्रकट हुई है। उससे हमें बहुत कुछ आशा है। यह देखो Uncle Tom's Cabin लाइब्रेरी से मँगवाया है। तुम उसकी अन्तर्आत्मा से नितान्त अनभिज्ञ हो।'

'तो प्रणय-केलि के मधुर स्वर्णमय स्वप्नों में सदैव विचरने वाले विठ्ठल बाबू का क्या होगा?'

'एक विकट टोडी-हास्य।'

'या आई. सी. एस. की मृत्यु।'

'शिः उस उच्छृंखल में इतना साहस?'

हास्य की राख से दबी वेदना की चिनगारी फिर चमक उठी। और मैंने मुन्नू की स्त्री की मृत्यु और उसकी संतान के प्रति हृदय-विदारक चिंता का असफल चित्र सुरेश के सामने खींचा। विदा होते समय उसके नेत्रों में भी अश्रु छलछला आये थे!

• • •

जब मैं घर पहुँचा, तो गिरजाघर की घड़ी नौ बजा रही थी। मैंने देखा कि एक तश्तरी में 'सपर' के लिये उबाले हुए चने रखे हैं और शीला कुछ लिखने में व्यस्त है। 'टाम काका की कुटिया' और 'हमारा कलंक' नामक पुस्तकें खुली रखी हैं। देखा कि लेख का शीर्षक है 'अछूत और दास-प्रथा।' इस नवीन हत्याकांड की घटना से वह

और भी अधिक वेदनात्मक बन गई। रम्मो के साहस पर उसने सराहनाश्रु प्रवाहित किये।

'तो अछूत-प्रश्न को तुम भी इतना ही महत्त्वशाली समझती हो ?'—शीला के भावों की गहराई जानने के लिये मैंने पूछा।

'अवश्य'

'कैसे ?'

'जिस प्रकार उत्तर अमेरिका की दक्षिणी रियासतों के पूँजीवादी कठोर हृदय अंग्रेज बनिये कहा करते थे कि इन पशु-सरीखे काले हब्शियों को भगवान् ने 'डार्क कान्टिनैन्ट' में सभ्य धनी गोरे लोगों की गुलामी करने ही के लिये पैदा किया था, इसी प्रकार शास्त्रों की दुहाई देने वाले सनातनी संस्कृत पंडित भी यही विचारते और कहते हैं कि भंगी-चमारों को समाज का यही नीच काम करने के लिये भगवान् ने उन्हें बनाया है, तथा यह सब देश-काल के लिये आवश्यक है। यह न हुआ, तो बस सनातन धर्म डूबा।'

'तो सनातनी पंडित भी बनिए हैं ?'

'हाँ, हैं ! वे हैं धर्म-व्यापारी। उनका स्वार्थ, लोभ, मोह, मद, काम, अन्याय, तृष्णा और हिंसा किसी भी भाँति उनसे कम नहीं है।

'हिंसा ?'

'हाँ, हिंसा भी !—विचारों की हत्या करना, आत्मा को दलित और पतित कर रखना, क्या एक वीभत्स लिंचिंग (Lynching) नहीं है ?'

शीला के नेत्रों से प्रतिशोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। हाँ, उसने एक गहरी साँस ले कहना जारी रखा—

'पर, अब यह ढोंग खुल गया है। आज फिर 'बापू' के रूप में अब्राहम लिंकन की आत्मा अवतरित हुई है। अब भी यह पतित संसार पतित-पावन से शून्य नहीं है। हिन्दू-धर्म के यह गुलाम भी एक दिन अवश्य ही स्वतंत्रता के वायुमंडल में अपने टूटे घरों और रक्त-स्रावक हृदयों का स्फूर्तिमय नव-निर्माण करेंगे !

शताब्दियों की दासता, इन प्राचीन शास्त्र और स्मृतियों के आडम्बर-मय धर्म-व्यापार के साथ ही, शीघ्र, निकट में ही भस्मीभूत हो जायगी। ये धर्म-शास्त्र के एक तरफा कानून गढ़ने वाले समाज का कभी उपकार नहीं कर सकते, जब कि अधिकांश मनुष्य तो पशुओं की भाँति घोर घृणोत्पादक नरक का कार्य करने में दिनरात श्रम, अपमान और लांछन से पिस-पिस मरें और कुछ मोटे मठधारी, धर्मध्वजी, बाबू और रईस बनकर चैन करके अकड़ दिखायें, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनें, होटलों और क्लबों में सैर करें, स्त्रियाँ पारसी साड़ी पहन टेढ़ी माँग निकाल मोटरों पर चढ़ घूमने जाएँ, तथा उनके बच्चे स्कूल और कॉलेज जाएँ, एवं सभ्यता और स्वच्छता सीख दूसरों पर घृणा करना सीखें !

ऐसे धर्म-वणिकों की पोल खोलने के लिये भी एक रस्किन की आवश्यकता है।'

'मेरी झिल्ली ऐसा न कहो। तुम्हारे पिता......महा-महोपाध्याय की नाईं यह लोग बड़े ज्ञानी और धर्मात्मा होते हैं। जी, सैकड़ों ग्रंथों को हड़प किये होते हैं ?'—मैंने किंचित दबे हास्य से कहा।

'पिता का उदाहरण आपने फिर दिया। मेरे लिये ऐसा 'पितापन' कदाचित आसुरी है।'

और वे ज्ञानी ? आह ! उनके ज्ञान में स्वार्थ की गहरी पुट है; कभी नरमेध, कभी पशु-यज्ञ और कभी स्त्री-यज्ञ (सती), कभी बहुविवाह और कभी वृद्ध और बालविवाह ! इनके ज्ञानयुक्त-विधान की सत्यता दयानन्द या राममोहन-राय की दिव्य विकल आत्मा से पूछो।

और धर्मात्मा ?

लो यह 'टाम' की रचयिता बहन मिसेज़ स्टो क्या लिखती हैं ! ज़रा इस परिभाषा को तो फिर से सुनो—'धर्मात्मा कहलाने का अधिकारी मनुष्य, नहीं हो सकता; जब तक कि वह सब प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, अत्याचारों, दुःखों और कष्टों को दूर करने के लिये आत्मोत्सर्ग नहीं करता, देश में प्रचलित सारी कुरीतियों को जड़ से दूर उखाड़ फेंकने का यत्न नहीं करता, संसार का दुःख-दारिद्र्य दूर करने की चेष्टा नहीं करता, संसार के समस्त नर-पतियों के समान अधिकार दिलाने के संग्राम के लिये प्रस्तुत नहीं होता और उस संग्राम में जीवन की मोह-ममता तज कर प्राण विसर्जन करने पर कटिबद्ध नहीं होता !......।'

शीला स्फूर्ति की भव्य उत्तेजना से काँप रही थी। इस लावण्य और सौन्दर्य पर इतनी भाव-पूर्ण कर्त्तव्यमत्तता !

मैं विमुग्ध हो गया। मेरा जीवन आज धन्य हुआ, हाँ, अब अमृतमय बन गया। आज मैं सचमुच 'दो' हो गया। अब यदि किसी तट विहीन अनन्त पर्य्यन्त विस्तृत अथाह सागर में मेरी जीवन-नौका रचनात्मक क्रान्ति के किसी विवादी जल-मग्न ज्वालामुखी से टकरा कर टुकड़े-टुकड़े हो जाय तो क्या मुझे लेश-मात्र भी दुःख होगा ?

° ° °

बड़े वाद-विवाद के पश्चात् सुरेश ने रम्मो को 'शिवैलरस' (Chivalrous) सिद्ध करके मुक्त करा ही लिया। इस केस में खूब सनसनी रही। गवर्नमेंट प्लीडर ने खूब मुँह की खाई। सुरेश के बाल्यकाल की एक अतृप्त भावना की उस कार्य में पूर्ण समवेदना थी। रम्मो का अपराध परिस्थिति (Environments) की बेबसी पर निर्भर था। इस विस्मयोत्पादक साहस के साथ आत्मरक्षा करने के लिए तो वास्तव में गवर्नमेंट को उसे वीरता का कोई अति सम्मानसूचक 'आरडर आफ शिवैलरी' देना चाहिये था। अस्तु।

दूसरी ही सन्ध्या को मैं फिर तीसरी बार मुन्नू के झोंपड़े पर पहुँचा ; पर हाँ, केवल उसका शव उठाने के लिये ढाई गज कफ़न और मन-भर लकड़ी खरीद, उसके कलेजा दहलाने वाले छोटे बच्चे के रुदन के समीप गाँव के एक उजाड़ टीले पर जलती चिता में उसके सूखे, दीन, आर्त्त और भूखे अस्थिपिंजर का होम करने ! युवा पुत्र की मृत्यु और लड़की के पकड़े जाने की असह्य दुःख-यन्त्रणा को वह अति दुर्बल प्राणी अब कैसे सह सकता था ? उस नर-कङ्काल के पिंजरे में फँसी तड़फती आत्मा किसी स्फोट के भय से उसके पार्थिव शरीर को त्याग अनन्त की ओर भाग चली !

मुन्नू की यह साधारण मृत्यु थी, किंवा विलासमय पूँजीवाद तथा भ्रमात्मक शास्त्र, स्मृति, कर्म और भाग्य के नाम पर उसका 'लिंचिंग'—उसका जीवित भूना जाना ?

असहाय रोते अबोध रम्मू को साथ ले मैं जब घर आया, तो सुरेश, स्वर्णलता, मिस प्रेमा, शीला और रम्मो सब मेरी 'स्टडी' में बैठे कुछ वाद-विवाद कर रहे थे।

रम्मू दौड़कर सीधा रम्मो की गोद में जा बैठा—दलित और पतित होते हुए भी इन दोनों बच्चों के हृदयों में सत्य और सरल कौटुम्बिक प्रेम का दृढ़ साहस और उद्वेग था ! मैंने चटाई पर बैठते हुए कहा—कहिये कैसी मीटिंग हो रही है ?

'अछूतों की राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस।'—सुरेश ने मुस्करा कर कहा।

'तो क्या 'हेअर रिबन' वालों को कुछ 'सेफ़गार्ड' मिलेंगे ?'

इस पर खूब क़हक़हा उड़ गया। स्वर्ण झेंप कर बोलीं—नटखट-पन नहीं छोड़ोगे ? गहन दुःख के समय भी, इस तीव्र आत्मदंशन की अवस्था में भी तुम्हें हास्य सूझता है ! भाई उसे भी फूँककर आई हूँ। और जी चाहे, तो लो इन लम्बे-लम्बे कमनीय केशों को भी मूँड 'मीरा' बना दो।

यह तो महान् आश्चर्य-जनक परिवर्त्तन था। यह शुद्ध पश्चात्ताप और सच्चे त्याग की आवाज़ थी, भोग की नहीं। इतनी जल्दी ? ऐसा पुनरुत्थान ? हाँ, तो सुरेश की आत्म-व्यथा कहीं अधिक व्यापक थी। शृंगार-श्री के ऊपर वैराग्य-श्री की विजय हो चुकी थी अब !

'धन्य हो स्वर्ण ! मैंने तुम्हें अपने असमय के व्यंग्य से व्यर्थ दुःख दिया, क्षमा करो, स्वभाव से बेबस हूँ'—मैंने थोड़ा लज्जित और विशेष गद्‌गद् होकर कहा।

'हाँ, सो तो मैं सब जानती हूँ। अच्छा बताओ तो, इस कान्फ्रेंस में डाक्टर......कौन बनेंगे ?'

'हम'—सुरेश ने टेबल पर हाथ मारकर कहा।

'और बापू ?'

'तुम्हारे प्रोफेसर साहब।'

'और श्रमंग...?'

'मैं, हाँ मैं'—मिस प्रेमा ने आवेश से कहा।

'मीरा ?'

'तुम'—शीला ने हँसते हुए कहा।

'और तुम ?'—सुरेश ने शीला से पूछा।

'संघमित्रा'—मैंने मुस्कराते हुए शीला के अर्द्ध गम्भीर नेत्रों की ओर देख कर कहा।

'बस तो सब ठीक है'—कहकर स्वर्ण ने मेरे हाथ पर अपनी अतुल पैतृक सम्पत्ति का चेक रख दिया। यह था सब अछूतोद्धार के लिये ! हमारे नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो चले !

अब कल से उस 'यूटोपिया के निर्माण की नींव डालनी थी, जिसमें मानव-समाज और हरिजन-समाज प्रत्येक दशा में एक ही अर्थ रखते थे—अछूत वहाँ कोई न था !

० ० ०

कुछ दिनों के पश्चात् शीला के कट्टर सनातनी धनी पिता का पूना-पैक्ट के विरुद्ध 'प्रोपैगेन्डा' करने में डवल निमोनियाँ हो गया ; पर अब शीला अविचलित थी, जिसका वह आदर और प्रेम करती थी, उसकी तो कभी की शोक-विहीन मृत्यु हो गई थी ।

ऐसी थी उसकी स्थितप्रज्ञता !

रम्मो की अवस्था अभी बारह ही वर्ष की थी । अतः अभी कम-से-कम ६ वर्ष तक भली-भाँति शिक्षा ग्रहण कर सकती थी ; इसलिये उसे तो शीघ्र ही हमने आर्य-कन्या-महाविद्यालय बड़ौदा भेज दिया ।

सुरेश ने अपने वकालत के साइनबोर्ड के नीचे मोटे अक्षरों में लिख दिया था—'हरिजन, मज़दूरों और किसानों से कोई फ़ीस नहीं ।'

मैजिस्ट्रेट साहब की सुशिक्षित एकमात्र सन्तान—मिस प्रेमा—के क्लब की जगह अब हरिजन-आश्रम ने ली । टैनिस और वैडमिन्टन की जगह बच्चों के साथ गेंद खेलने के समय दिव्य वदन पर पड़े धूलकण उसकी आभा को कितना पवित्र और नैसर्गिक बना देते थे—सचमुच 'मिस अमेरिका' या 'मिस काश्मीर' न बन कर वह सचमुच ही 'इवा' या श्रभंग ऋषि-कुमारी बन रही थी ।

उस हरिजन-राउंड टेबल कान्फ्रेंस की और भी शीघ्र-शीघ्र बैठकें हुईं, आदर्श प्रस्ताव एकमत से पास होते और तत्काल ही रचनात्मक कार्य प्रारम्भ होने लगता । वीर-मन्दिर, उपासना-मन्दिर, व्याख्यान-मन्दिर, पुस्तकालय, औषधालय, पाठशाला तथा एक शिल्प-विद्यालय का फूँस की झोपड़ियों में ही निर्माण हुआ । कुछ सहृदय स्काउट, स्वयंसेवक, कुछ कॉलेजों के त्यागी वीर सेनानी युवक और सेवा-व्रत-धारिणी कुछ नवयुवतियाँ भी आ सम्मिलित हुईं । जंगल में मंगल हो गया—नरक की जगह स्वर्ग की स्थापना हुई ; एवं विलासी रईस-मंडली की जगह, हाँ पशु-मनुष्यों की जगह, देव पुरुषों (हरिजनों) का निर्माण होने लगा । और यह सब था शास्त्र-स्मृति के विरुद्ध ! पर क्या न्यायशील, पतितपावन, दरिद्रनारायण, सर्वव्यापी समदृष्टि ब्रह्म के विरुद्ध भी..........?

हरिजनों के बच्चे जो कभी समस्त समाज के एक-दो रुपये प्रति वर्ष पर, मैले-कुचैले रह जूठे टुकड़े खाते-खाते नीचातिनीच तिरस्कार और लांछना सह अपनी कूड़ी के शूकरों (वाराह !) और कुत्तों की भाँति अपवित्र अछूत रह 'बड़े लोगों' का उल्लू सीधा करते रहते थे, आज वही मद्य-मांस त्याग, प्रति दिन स्नान कर उपासना-मन्दिर में रामायण-महाभारत, रामनाम का पाठ कर पाठशाला और शिल्प-विद्यालय में अपने मस्तिष्क का विकास कर रहे हैं । हाँ, आज अवश्य ही उनमें सत्य धर्ममय साम्यवादियों, ज्ञानियों, राजनीतिज्ञों, सम्पादकों, वकीलों, श्रमजीवियों, कुशल कलाकारों, वैज्ञानिकों और तत्ववेत्ताओं के महाशक्तिशाली जीवाणु (Germs) प्रवेश कर रहे थे !

० ० ०

उषा की रागात्मिका लालिमा, हरिजनों को स्वर्ण-रंजित और विस्तीर्ण शान्ति-स्वप्न से जगा रही थी । उपासना-मंदिर के अमर संदेशों को स्पर्श करती धीमी-धीमी उत्तर वायु चल रही थी । पूर्णिमा की अति श्वेत चाँदनी आश्रम की उपवन-लताओं पर हँस-हँस कर लोट रही थी ।

ऐसे ही सुहावने समय में मैंने देखा कि संघमित्रा, मीरा एवं विश्वभारती (प्रेमा) कुदाली लिये मेरी विदेश-यात्रा पर बधाई देती आ रही थीं । आश्रम ने आश्चर्यजनक सफलता पा ली थी । पतित-पावन परम पिता की गोद में नवजात शिशु निर्भय निर्विघ्न हो खेल रहा था । कार्य त्याग, सेवा और संयम के साथ हो रहा था । अछूतोद्धार-अखिल-महासभा की भी पर्याप्त सहायता थी । मैं कुछ निश्चित हो, 'जर्नलिज्म' के लिये शिकागो जा रहा था । दो वर्ष का वियोग सम्मुख था । पर, उस शिशु-संघ को अपनी युवा माताओं का बल था । मेरी अनुपस्थिति अनिवार्य थी । एक इससे भी बड़ा सेवा-भाव मुझे ऐसा करने के लिये प्रेरित कर रहा था ।

बम्बई पोर्ट में एक भीमकाय धूमयान के डेक पर पश्चिमी वेष-भूषा में रम्मू खड़ा हुआ ज्वार की लहरों की बहार ले रहा था । कितना निश्चिंत और प्रसन्न ! ओफ ! चित्र की दूसरी आकृति की कल्पना करते ही मैं काँप उठा !



'क्यों रे रस्सू, तो तू अब डॉक्टर......बनने जा रहा है ?'

संघमित्रा ने एक हल्की-सी चपत मीरा की पीठ पर लगाकर कहा—छिः अब मिस्टर रामसे......कहो न !

'यस-यस ही विल डाक्टर दैम आल आन हिज़ रिटर्न'—सुरेश ने रस्सू को प्रेम से थपथपा कर कहा।

'तीन महीने में ही यह काया-पलट ! साहब का बच्चा जँचता है। देखो न, मानो किसी 'सिविलियन' का ही बच्चा हो !'

'हाँ, तो क्या हम 'सिविल' नहीं हैं ?'—मैंने हँस कर विश्वभारती से पूछा।

जल एक पैसा गिलास की दर से बेचता हुआ डेक में घूम रहा था।

राम का हाथ पकड़े मैं डेक के एक कोने पर चला आया और 'वैष्णव-जन वाला' गीत पुलकित हो गुनगुनाने लगा।

फिर मैंने राम से कहा—अच्छा तुम भी प्रार्थना करो।

'कौन सी ?'

'वही 'असतो' वाली।'

'ऊँ अछतो ता छद्गमय'—कह कर वह रुक गया।

'और आगे ?'

'तमछो मा ज्योतिर्गमय...मृत्योर्माऽमृतंगमय।'

गीत

उदयशंकर भट्ट

दो उत्सुक हृदय हिलोरों के यौवन की अलस कहानी हूँ

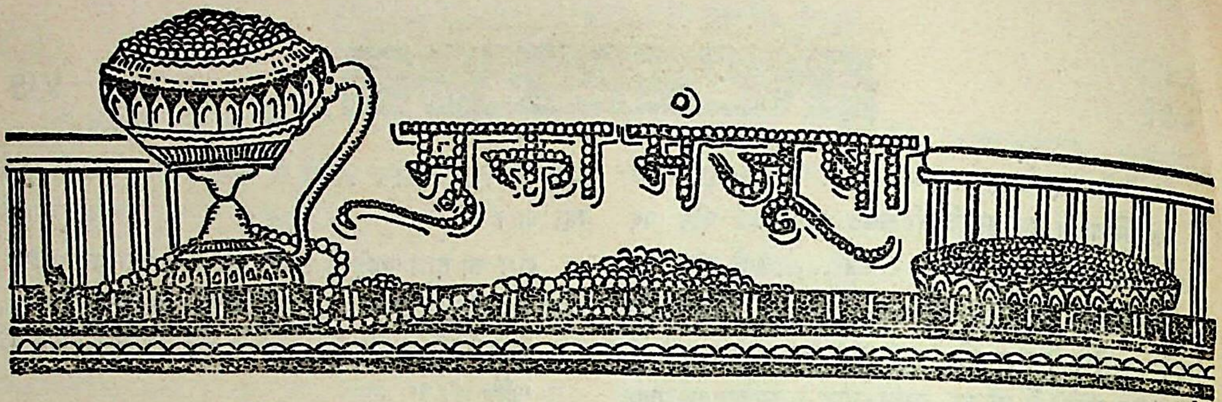
अनुरागों की अभिलाषा में प्रति फलित हुई मेरी छाया
माया के मोहक आसव के फेनों की पहनी यह काया
मद की लाली-सा यह मेरा अस्तित्व उभरता है आता
अन्तर बिम्बों का घटना का अव्यक्त कथानक बिखराता
मैं अपनी बनी पहेली हूँ अपने रहस्य की वानी हूँ
दो उत्सुक हृदय हिलोरों के यौवन की अलस कहानी हूँ

भेदों का भेद भरा मुझमें मैं उस अनन्त की कविता हूँ
कुछ सुलझी हूँ कुछ उलझी हूँ मैं अपनी आप निशानी हूँ
हैं फूल और काँटे दोनों माला-ममता के डोरों में
उल्लास उधर हूँ जीवन का, भय कम्पन कुसुमित कोरों में
इक मुसकाती-सी आशा के संकेतों की मनमानी हूँ
दो उत्सुक हृदय हिलोरों के यौवन की अलस कहानी हूँ

इतने में ही जहाज़ ने सीटी दी। हृदय-स्पर्शी विदा का उत्तर देने के लिये राम भी हैट उतार अपने 'हाफ़ हंटिंग' की जेब से निकाले, रूमाल को हिला, देर तक उत्तर देता रहा।

और हाँ, मैं ध्यान से देखता रहा कि सामने ही लोहे का एक बड़ा डोल हाथ में सँभाले, रस्सी को गले में डाले, खरिया का लम्बा तिलक लगाये, यज्ञोपवीत को मैले कुरते के ऊपर चमकाते, स्वयं ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने वाला एक ब्राह्मणदेव-कुमार यात्रियों की भीड़ को निर्मल स्वादिष्ट

चारों ओर मैंने दृष्टि फेंकी कि कहीं कोई पंडित राज या महात्मा इस बच्चे के कानों में पिघला सीसा न उँडेल दे, या कहीं इस सरल सौम्य बच्चे की कोई जिह्वा न काट दे ! पर स्थिर शान्त अरब सागर पर की ईथर (Ether) को कम्पायमान करता वह हरिमय धीमा मंत्र-स्वर, दुखी, निराश, एवं दलितों के आत्मा-लोक में पहुँच सुदूर क्षितिज के श्याम घन की झाँकी से पतित-पावन की मंगल-मय दिव्य छाया का हमारी ओर तीव्र आवाहन कर रहा था !



हिन्दी

अल्प संख्यक जातियों की समस्या

भारत के समान ही अन्य देशों में भी अल्प संख्यक जातियों की समस्या बड़ी विकट है। उन्हें यूरोप ने कैसे हल किया और कर रहा है, उसके लिये कौन-कौन सेसिद्धान्त बनाए गए हैं, इन सभी बातों का उल्लेख करते हुए श्री प्रभुदयाल मेहरोत्रा ने 'चाँद' में एक ज्ञानवर्धक लेख लिखा है। जिसमें आप ने अन्य देशों से भारत की तुलना करते हुए लिखा है—

'कहीं भी अल्पमत को न तो धारा-सभाओं में उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया है और न सरकारी नौकरियाँ हीं। वे लोग भी जो कुछ माँगते हैं, वह अपनी संख्या के अनुसार ही। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि जेनेवा में होने वाली अल्पमत-कांग्रेस ने केवल यह दावा किया था कि निर्वाचन का ढङ्ग ऐसा हो कि अल्पमत को उनकी संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व मिल सके; परन्तु भारतवर्ष के अल्पमत अपनी संख्या से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व एवं नौकरियाँ चाहते हैं। देखने में यह भले ही उनके लिए हितकर मालूम पड़े; पर वास्तव में यह है अहितकर। इसका परिणाम यह होता है कि बहुमत यह महसूस करता है कि किसका हक़ छीनकर अल्पमत को दे दिया गया है। बहुमत इस स्थिति से असन्तुष्ट रहता है और अल्पमत से नाराज़ रहता है। और अगर बहुमत अल्पमत से नाराज़ हो, तो वह सैकड़ों ढङ्ग से अल्पमत को परेशान कर सकता है। हमें भूलना न चाहिए कि अल्पमत की रक्षा के लिए सबसे बड़ी ढाल तो बहुमत की सद्भावनाएँ ही हैं। असन्तुष्ट बहुमत से अल्पमत की रक्षा पराधीन देश में तीसरा दल भले ही कर सके, अन्यथा कोई नहीं कर सकता। और सन्तुष्ट तथा प्रसन्न बहुमत से अल्पमत की रक्षा करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। दोनों मतों का सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहना देश की उन्नति तथा भलाई के लिए अत्यन्तावश्यक है और यह तभी हो सकता है, जब समस्या न्यायपूर्वक सुलझाई जाय। दोनों मतों के साथ न्याय हो, किसी के साथ अन्याय न हो, दोनों के अधिकार समान हों; पर एक के अधिकार छीन कर दूसरे को न दिए जाएँ। दोनों में से कोई भी यह महसूस न करे कि उसके साथ अन्याय किया गया है। न्याय और सद्भाव की आवश्यकता हमारे लिए और अधिक है; क्योंकि यहाँ एक नहीं अनेक अल्पमत हैं। बहुमत सन्तुष्ट रहे, तमाम अल्पमत प्रसन्न रहें, बहुमत और अल्पमत में आपस में प्रेम बना रहे तथा तमाम अल्पमतों में आपस में प्रेम बना रहे, यह कोई आसान काम नहीं है। इस संसार में, जहाँ बहुत बड़े-बड़े काम होते हैं, जटिल-से-जटिल समस्याएँ हल हो जाती हैं, वहाँ फिर भारतवर्ष में अल्पमत की समस्या क्यों नहीं सुलझ सकती? सुलझ सकती है, यदि हममें साहस है, बुद्धि है, दूरदर्शिता है, देश-प्रेम है और है सुलझाने की लगन। नहीं सुलझ सकती, यदि हम स्वार्थ से काम लेंगे और सौदा करने का प्रयत्न करेंगे।'

• • •

ब्रजभाषा के कवियों द्वारा स्त्रियों का अपमान

श्री पं० वेंकटेशनारायणजी तिवारी उन साहित्यिक व्यक्तियों में हैं, जो काफी अध्ययन और मनन के बाद कोई राय कायम करते हैं और इसलिये उनके विचार मौलिक और गहरे होते हैं। हमारा ख़याल है, हिन्दी के लेखकों में ऐसे बहुत कम आदमी होंगे, जिन्होंने साहित्य का ऐसा मंथन किया हो। आप हिन्दी-साहित्य के ही नहीं; पश्चिमीय साहित्य और राजनीति के भी पंडित हैं और भारतीय राजनैतिक प्रश्नों का जैसा सर्वांगी अध्ययन आपने किया है

वैसा किसी ने कम किया होगा। आपने दिसम्बर की 'सरस्वती' में ब्रजभाषा के कवियों के नग्न, कामुकता-पूर्ण श्रृङ्गार-वर्णन की आँखें खोलने वाली आलोचना करके हिन्दी-संसार पर बड़ा एहसान किया है। इससे पहले इसी पत्रिका में 'ईश्वर की छीछालेदर' नाम का लेख लिखकर अपने दिखाया था कि ब्रजभाषा वालों ने किस तरह अपनी कामुकता-पूर्ण भावनाओं से राधा और कृष्ण को कलंकित किया है, जिन्हें वे ईश्वर का अवतार समझते थे। इस लेख में आपने दिखलाया है कि—

'इन काम-परायण कवियों की दृष्टि में स्त्रियाँ केवल एक ही उद्देश्य की सिद्धि के लिये जन्म लेती हैं और वह पुरुषों की पाशविक कामनाओं की तृप्ति करना......स्वकीया और परकीया के भेद और उनके हाव-भाव के वर्णनों ने ऐसे मामलों में समाज के स्वाभाविक संयम के बाँध को बहा दिया। परिणाम यह हुआ कि जिन बातों के कहने-सुनने में भी हमजोलियों तक को एक दूसरे का संकोच होता था, वह एक दम से जाता रहा और बड़े बूढ़े भी नौजवानों के सामने इस तरह की कविता कहने और सुनने से न झिझकने लगे। होली के गीत और गालियाँ हमारे इसी गुण्डापन और लुचपन को संसार के सामने चिल्ला-चिल्ला कर घोषित करती हैं।'

इसके बाद आपने ऐसी कविताओं की बानगी देते हुए और हिन्दी के श्रृङ्गार-प्रेमी आलोचक महारथियों की चुटकी लेते हुए उन कारणों की इन शब्दों में विवेचना की है, जिन्होंने ऐसी कविता को जन्म दिया—

'समाज का संगठन जब ऐसी प्रणाली पर होगा, जिसमें धन और प्रभुता थोड़े-से आदमियों के अधिकार में होता है, तभी श्रृङ्गार-पूरित आमोद-प्रमोद का दौर-दौरा शुरू हो जाता है। धन और व्यभिचार सगे भाई हैं। व्यक्तियों की बात मैं नहीं कहता। जनक भी तो राजा थे; किन्तु राज-दरबार प्रायः काम-क्रीड़ा और रति-कला के केन्द्र होते हैं। अनियंत्रित सत्ता संयम के साथ एक दिन भी, खटपट के बिना, नहीं रह सकती। ऐसे समाज में बलवान् की दृष्टि में रूप का एक ही उपयोग है और श्री का एक ही अर्थ। इतना ही अनर्थ कुछ कम न था; परन्तु वह और भी भयंकर हो गया, जब उस पर धर्म ने भी अपनी स्वीकृति की छाप लगा दी। पूँजी-शाही के इतिहास को यदि कोई गौर से पढ़े, तो मध्यकालीन भारत की समस्या को समझने में उसे कुछ भी कठिनाई न होगी। वह तो जीती ही है कमाने वालों के खून को चूसकर और स्त्रियों के रूप को लूट कर। धर्म भी इन दिशाओं में उसकी सेवा करने के लिए सदा हाजिर रहता है। यही कारण है कि मध्य-कालीन ब्रजभाषा के कवि आचार्यत्व की खोज में रीति-ग्रन्थों के लिखने और नायिकाओं के भेद-भाव के वर्णन में अपने आदर्श को खो बैठे।'

लेकिन आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं, जो इन्हीं रचनाओं को हिन्दी-साहित्य की निधि समझते हैं और उन्हीं की व्याख्या और टीका करने में अपना जीवन खपा रहे हैं, हालाँ कि ऐसी रचनाओं को दियासलाई दिखाई जानी चाहिए और पाठ्य-क्रम में तो उनका कोई स्थान ही न होना चाहिये।

• • •

तिमाही

गत नवम्बर में हिन्दुस्तानी ऐकाडेमी में 'तिमाही' शब्द पर बड़ी मनोरञ्जक बहस हुई थी। एकाडेमी की ओर से हिन्दी और उर्दू की दो तिमाही पत्रिकाएँ निकलती हैं। श्री बाबू श्यामसुन्दरदास ने एतराज़ किया कि 'तिमाही पत्रिका' के बदले 'त्रैमासिक पत्रिका' होना चाहिये। उर्दू वाले भी 'तिमाही' की जगह 'सेहमाही' रखना चाहते थे। तिमाही और त्रैमासिक में अच्छी नोंक-झोंक हुई; पर अन्त में मैच 'ड्रान' रहा; बराबर की बाज़ी छुड़ा दी गई। 'सरस्वती' के इसी अङ्क में पण्डित कृष्णकान्त मालवीय ने उसी विषय पर अपनी राय इन शब्दों में दी है—

'अंगरेज़ लोग अंगरेज़ी भाषा में 'लूटेड' शब्द का प्रयोग करते नहीं घबराते, वे 'बाज़ार' को भी अपना लेते हैं; किन्तु बाबू साहब 'तिमाही' को हज्म नहीं कर सकते, यह तो जीवन का चिह्न नहीं। इस तरह की प्राचीन की पूजा तो साहित्य की सेवा नहीं है। 'तिमाही' में लंकाशायर और मैंचेस्टर के कपड़ों की चमक-दमक और मुलायमियत नहीं है; यह ठीक है, उतनी अच्छी रुई और मैशीन से संभव है, यह बना भी न हो; किन्तु 'तिमाही' में चर्खे और करघे की ध्वनि है, इसमें सन्देह नहीं। 'तिमाही' शब्द पर देहातियों

और शहर के रहने वालों, दोनों की मुहर है और 'तिमाही' शब्द की श्रेष्ठता का इससे बड़ा सुबूत और हो ही क्या सकता है ? मैं तो विद्वान् नहीं ; किन्तु सुनता हूँ कि 'उपरोक्त' शब्द ठीक नहीं है, ठीक शब्द शायद 'उपर्युक्त' है, हिन्दी के कितने ही लेखक 'उपरोक्त' शब्द का नित्य ही प्रयोग करते हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता ; किन्तु मैं यह जानता हूँ कि 'उपरोक्त' अब चलता सिक्का हो गया है और इसका चलन बन्द होना सहज नहीं। बाबू साहब यदि 'उपरोक्त' शब्द के प्रचलन के सामने सिर झुका बैठे हैं, तब 'तिमाही' से घबराने का तो उन्हें कोई कारण नहीं है। 'तिमाही' तो नया शब्द है, उर्दू के वज़न पर बन गया है, अपनी सुविधा के लिए लोगों ने इसे जारी किया है, और इससे तो पाणिनि की आत्मा को क्लेश भी नहीं पहुँच सकता। जब तक बाबू साहब के विरोध की दलीलें मालूम न हों, उनकी बातों का जवाब देना ठीक नहीं है। फिर भी बाबू साहब से मेरा निवेदन यही है कि भाषा को आगे बढ़ाने, उसकी वृद्धि करने और हिन्दी-भाषा के कोष में नये-नये शब्दों को भरने के लिए वे प्रयत्नशील हों, तो अच्छा। प्राचीन की पूजा अच्छी है ; किन्तु इस हद की नहीं, जो हमारे पैरों में पग-पग पर बेड़ियाँ जकड़े और हमें आगे न बढ़ने दे।'

• • •

राजा राममोहन राय की हिन्दी

राजा राम-मोहन राय संस्कृत, अंग्रेज़ी और फारसी आदि के विद्वान् तो थे ही, अब श्री हज़ारी-प्रसादजी द्विवेदी साहित्याचार्यने दिसम्बरके 'विशाल-भारत' में एक लेख लिखकर सिद्ध किया है कि वह हिन्दी के विधाताओं में थे। हमारे बंगाली भाई आज हिन्दी की उपेक्षा करते हैं ; पर राजा राममोहन राय ने सन् १८१५ में हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि के सौंदर्य और महत्त्व को हृदयंगम किया था। आपने अपने मत के प्रचारार्थ कई पैम्फ्लेट हिन्दी में छपाए थे। उसका एक नमूना हम इसी लेख से नकल करते हैं—

'जो सब ब्राह्मण साङ्गवेद अध्ययन नहीं करते सो सब व्रात्य हैं अर्थात् अब्राह्मण हैं यह प्रमाण करने की इच्छा करके ब्राह्मण धर्म-परायण श्री सुब्रह्मण्य शास्त्रीजी ने जो पत्र सांगवेदाध्ययन हीन अनेक इस देश के ब्राह्मणों के समीप पठाया हैं[१] उसमें देखा जो[२] उन्होंने लिखा है 'वेदाध्ययन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं और जिसने वेद का अध्ययन किया है, उस ही का केवल ब्रह्म विद्या में अधिकार हैं[१] और ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होने के पूर्व वेदोक्त और स्मृत्युक्त कर्म अवश्य कर्तव्य है[१] यह सब वाक्य यो[२] अब्राह्मणत्व के प्रमाण करणे में सम्बन्ध रखते नहीं—विशेष के द्वारा यह प्रमाण करणे की इच्छा करे हैं, यो[१] ब्रह्मयज्ञ देव यज्ञ हो सकता नहीं, यह जानके हम सब उत्तर देते हैं। ब्रह्मविद्या के प्रकाश के निमित्त वर्णाश्रम के कर्मों का अनुष्ठान कर्तव्य है यह सत्य, जिस लिये यह वेदादि शास्त्रों के सहित विरुद्ध नहीं, हम सबही यह अङ्गीकार करते हैं ; परन्तु यह सर्वथा अमान्य हैं[१], जो[२] वर्णाश्रम कर्म के अनुष्ठान विना ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति होती नहीं, जिसलिये भगवान् वेद व्यास वर्णाश्रम कर्म रहित मनुष्यों का भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है, यह दो सूत्र में लिखे हैं[१] सो यही दो सूत्र[४]। 'अन्तराचापि तु तद्दृष्टे। अपि च स्मर्यते।' और इन्हीं दो सूत्रों का भाष्य भगवान् भाष्याकार करते हैं[१]। जो[२] अग्नि रहित जो मनुष्य-सब[४] और द्रव्यादि सम्पत्ति रहित जो मनु-

---

१—यह उद्धरण जिस ग्रन्थ का है, वह राजा राममोहन राय की मृत्यु के बहुत दिन बाद पुनर्बार छपा था। हमें मूल प्रति उपलब्ध नहीं हुई, इसीलिये इसका पाठ पूर्णतया विश्वसनीय नहीं है। पर एक बचन में 'हैं' का प्रयोग इसमें कई बार आया है। जान पड़ता है, राजा राय ने इसे ऐसे ही उच्चरित होते सुना था। कहना नहीं होगा कि काशी के पण्डितों में अब भी इस प्रकार सानुनासिक उच्चारण प्रचलित है। आगे आत्मानन्दजी का उद्धरण देखिये।

२—'जो' का प्रयोग यहाँ 'कि' के अर्थ मे हुआ है। दो जगह यह 'यो' के रूप में लिखा है, जो छापे की अशुद्धि जान पड़ती है। वस्तुतः राममोहन ने 'जो' ही लिखा होगा ; क्योंकि सारे लेख में, केवल दो स्थानों को छोड़कर 'जो' प्रयोग ही पाया जाता है। पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिये कि 'कि' फारसी भाषा का शब्द है। मुन्शी इंशाअल्लाखाँ ने इस शब्द का प्रयोग क्वचित-क्वचित ही किया है। अधिकांश स्थलों में वे 'जो' का प्रयोग ही करते थे। एक उदाहरण लीजिए—'वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए, जिसको सब रानी केतकी कहते थे, उसके भी जी में इसकी चाह ने घर किया, पर कहने-सुनने को उसने बहुत सी नाहनूह की और कहा इस लग चलने को भला क्या कहते हैं और कहा 'जो' तुम झट से टपक पड़े यह न जाना 'जो' यहाँ अपने झूलती है।'

व सब जिनको किसी वर्णाश्रम के कर्म का ब्रह्मविद्या में अधिकार है, किम्वा नहीं, इसी सन्देह में पहिला बूझा जाता है यही जो[२] आश्रम कर्म रहित मनुष्य का विद्या में अधिकार नहीं, जिस्‌लिये विद्या के प्रति आश्रम कर्म कारण है और इन सब मनुष्यों को आश्रम कर्म की सम्भावना नहीं, इसी पूर्व पक्ष में वेदव्यास सिद्धान्त करते हैं जो[२], अनाश्रमि पुरुष भी ब्रह्मविद्या में अधिकारी हैं[४], जिस कारण रैक्वावा चक्नवी आदि आश्रम कर्म रहित मनुष्यों को भी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति भई है[७] यह वेद में देखते हैं। और सदा दिगम्बर रहते इस कारण वर्णाश्रम कर्म रहित जो सम्वर्त्त आदि तिन सब को भी महायोगी करके इतिहास में कहते हैं और ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी आदि स्त्री सब जिनो को वेदाध्ययन का अधिकार का कदापि सम्भव नहीं, तीनों का भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है, यह 'तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव आत्मा वा अरे द्रष्टव्य' इत्यादि श्रुति में बुझाया है। और सुलभा आदि स्त्री सब ब्रह्मज्ञानी थी, यह स्मृति में और भाष्य में देखते है और शूद्रयोनि में उत्पन्न भये थे। इसी निमित्त जो विदुर धर्मव्याध प्रभृति वो सब भी ज्ञानी थे, यह इतिहास में देखते हैं; अतएव जिन्होंने वेदाध्ययन करा है[६] उन्हीं का केवल ब्रह्म विचार में अधिकार है, यह जो नियम आपने किया है[६], तिनमें इन सब श्रुति-स्मृति का अवलोकन करते हैं, जो सब मनुष्य सो सब कदापि श्रद्धा करेंगे नहीं।'

३—राजा राममोहन 'ने' के प्रयोग से अपरिचित नहीं थे। यह बात इसी लेख से स्पष्ट हो जाती है; परन्तु फिर भी उन्होंने दो-एक जगह 'ने' का प्रयोग नहीं किया है। जिन्हें बनारस की हिन्दी सुनने का अवसर मिला है, वे इसपर कुछ भी आश्चर्य नहीं करेंगे। वस्तुतः यह 'ने' हिन्दी की अपनी चीज नहीं है। 'वीम्स' ने अपने ग्रामर में बताया है कि इसका प्रयोग हिन्दी में दो सौ वर्ष से पुराना नहीं है। रामायण में तथा हिन्दी के अन्य प्राचीन काव्यों में इसका अस्तित्व नहीं है, प्रभाव है।

४—क्रिया का त्याग संस्कृत और बँगला प्रभाव का फल जान पड़ता है।

५—'मनुष्य सब' प्रयोग 'मनुष्य-सकल' का प्रतिरूप नहीं है। पटने में इस प्रकार का प्रयोग अब भी होता है। राजा का बाल्यकाल इसी नगर में व्यतीत हुआ था।

६—'करा है,' 'किया है' दोनों प्रयोग इस लेख में पाये जायँगे, ये दोनों प्रयोग स्थान-विशेष में अब भी प्रचलित हैं।

७—'भगवान् भाष्यकार प्रमाण करे हैं' प्रयोग काशी के तारकालिक पंडित मण्डली में प्रचलित था। अब भी कुछ-कुछ है।

• • •

उमरख़य्याम की रुबाइयाँ

'माधुरी' विचारोत्तेजक साहित्य के प्रचार में पूर्ववत् अपने पद की रक्षा कर रही है। इधर कई महीनों से हम इसमें एक नई स्फूर्ति देख रहे हैं। गम्भीर विषयों में उसकी रुचि बढ़ गई है, यद्यपि मनोरंजक अंश का भी काफ़ी लिहाज़ किया जाता है। उसके प्रायः सभी अंकों में विचारपूर्ण, परिश्रम और अध्ययन से लिखे गये लेख मिलते हैं और सम्पादकीय-टिप्पणियाँ भी मौलिक, गम्भीर और ओजपूर्ण होती हैं। दिसम्बर ३३ का अंक हमारे सामने है। उसमें 'उमरख़य्याम की रुबाइयाँ' 'बंगाल की मेघ दूत समिति और उसका कालीदास,' 'बाणभट्ट के काव्य में सातवीं शताब्दी का प्रतिबिम्ब', 'भारत की वन्य सम्पत्ति,' 'भारतीय वस्त्र व्यवसाय', आदि लेख और 'ट्रेजेडी की उत्पत्ति' सम्पादकीय नोट पढ़ने और विचार करने योग्य है। यहाँ हम केवल 'उमरख़य्याम की रुबाइयों' की आलोचना से ही अपने को सन्तुष्ट करेंगे। उमरख़य्याम की रुबाइयों के हिन्दी में अब तक चार अनुवाद निकल चुके हैं और भारत की ही नहीं, संसार की कोई ऐसी सभ्य भाषा नहीं है, जिसमें उसके कई-कई अनुवाद न निकल चुके हों। तो, उसमें ऐसी कौन-सी ख़ूबी है, जो कवियों को मुग्ध कर लेती है? लेखक ने उमरख़य्याम के जीवन, समकालीन आध्यात्मिक विचार आदि का वर्णन करने और कई रुबाइयों का भावार्थ देने के बाद उसके विषय में अपना यह मत स्थिर किया है—

'इन रुबाइयों में उमर का अनात्मवाद प्रत्यक्ष अंकित है। उसकी यह धारणा थी, कि इस दैहिक जीवन से भिन्न दूसरी कोई अवस्था नहीं है, जिसे हम जीवन कह सकें। धूल ही से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है और धूल ही उसकी अन्तिम गति है। 'ऐ मनुष्य! यदि तू शराब को पसन्द करता है, तो अफ़सोस के लिये कोई कारण नहीं है। आख़िर तुझे नष्ट होना ही है, तो अभी से तू अपने को नष्ट क्यों नहीं मान लेता? किसी भी प्रकार की चिन्ता को तू अपने पास

मत फटकने दे, दिल खोलकर मदिरा-देवी की उपासना करता जा। नदी के किनारे हरियाली में बैठकर अंगूरी जुज़ पीता जा ; क्योंकि वह समय दूर नहीं है, जब यह पृथ्वी तुझे आत्मसात् कर लेगी, हड़प जायगी। उदाहरण के लिये बहराम की हालत को देख ! एक वह भी समय था, जब वह अपने रंगमहल में शौक़ से मदिरा-सेवन करता था ; पर आज उसके विशाल भवन में शृगालों की ध्वनि सुनाई देती है, सिंह अँगड़ाइयाँ ले रहे हैं और बहराम कहाँ है ? अफसोस ! आज वह क़ब्र के अन्दर गिरफ्तार है ; उसकी जान वा शान मिट्टी में मिल चुकी है ; आज उसकी वह बुलंद आवाज बंद हो गई है। इसीलिये मैं तुझसे कहता हूँ कि ऐ दोस्त, शराब पी ले, कुछ हविस बाकी न रह जाय ; क्योंकि आखिर तुझे भी बहराम के समान नष्ट हो जाना है। वहाँ क़ब्र के अन्दर तेरा साथी कोई न होगा। एक बात एकांत में सुन ले, मैं तुझे इस ज़िंदगी का राज़ बतलाये देता हूँ, किसी से कहना नहीं—वह क्या ? यह जीवन जब एक बार नष्ट हुआ, फिर मिलने का नहीं। बस यही अवसर है। इसके बाद—शून्य—महाशून्य..............।'

यही उपर्युक्त रुबाइयों का निचोड़ है। पाठक देखें कि इन वाक्यों में आत्मा की बू-बास भी नहीं है, जो कुछ है, यह शरीर है और शारीरिक जीवन है। इसके बाद—सर्वनाश ! इन रुबाइयों को पढ़ने के बाद यदि लोग उमर-ख़य्याम को नास्तिक कहें, तो इसमें अनौचित्य ही क्या ? जो मनुष्य शून्यवादी है और जिसे आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास नहीं, उपनिषदों के अनुसार वही नास्तिक है।'

लेखक के इस मत से हम पूरी तरह सहमत हैं, केवल भेद इतना ही है कि हम इस शून्यवाद को इन रुबाइयों का दोष न मानकर उनका गुण मानते हैं। उनकी सर्वप्रियता का मुख्यकारण भी यही था कि वह धर्म से ऊबे हुए एक मनुष्य की पुकार है, जो इस स्वर्ग और नरक, आत्मा और जीव, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म के झगड़ों से भागना चाहता है ; क्योंकि यह विषय अज्ञेय है और मनुष्य सब कुछ पढ़ लेने पर भी उसी अन्धकार में पड़ा हुआ है। यही कारण है कि सम्प्रदाय-प्रधान संसार को इन रुबाइयों में जीवन और सार्थकता का रस मिलता है।

गुजराती

कला का अमरत्व

अभी थोड़ा ही समय हुआ, गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ संगीताचार्य श्रीयुत पंडित ओंकारनाथजी, भारतीय संगीत-कला का वैशिष्ट्य प्रदर्शित करने के लिए यूरोप गये थे। वहाँ पर उनके संगीत की बहुत ख्याति हुई। इटली के भाग्य-विधाता मुसोलिनी तो आपके संगीत को मंत्रमुग्ध-से होकर सुनते थे, यह समाचार अखबारों में भी छप चुका है। इस प्रकार यूरोप में भारतीय संगीत की विजय-वैजयन्ती फहरा कर श्री ओंकारनाथजी हाल ही जन्म भूमि भारत में पधारे है और उनका स्थान-स्थान पर सम्मान किया जारहा है। अभी हाल ही गुजरात की प्रसिद्ध नगरी सूरत में 'कला-मण्डल' की ओर से पण्डितजी को एक मानपत्र अर्पित किया गया था। उसके उत्तर में पण्डितजी ने एक बहुत सुन्दर व्याख्यान दिया था। अपने व्याख्यान के सिलसिले में कला के अमरत्व के विषय में आपने जो कुछ कहा था, उसे 'देशीमित्र' साप्ताहिक-पत्र से लेकर यहाँ पर उपस्थित किया जाता है—

'संसार में साहित्य, संगीत और कला ही चिरञ्जीवी हैं, बाकी सब वस्तुएँ क्षणजीवी हैं। सीजर मर चुका ; पर रोम की कला आज भी जीवित है। रोम की कला आज भी जगत् को अपनी ओर आकृष्ट करती है। मनुष्य, साहित्य, संगीत और कला के द्वारा ही अमर हो सकता है ; अतः आप सज्जनों से मेरी प्रार्थना है कि इन तीनों के उत्कर्ष के लिए आप प्रयत्न करें, साहित्यकारों तथा कलाधरों को अपनाएँ ; क्योंकि ये ही सच्चे पैगम्बर हैं। सेन्ट पीटर का देवालय देखकर थोड़ी देर के लिए क्राइस्ट का विस्मरण हो जाता है और देवालय के निर्माता का स्मरण रह जाता है। मुनिवर कृष्ण द्वैपायन (व्यास) ने श्रीकृष्ण तथा उनके जीवन-सन्देश को गीता के अन्दर गूंथ दिया है और उन्हें अमर बना दिया है। जगत् की संस्कृति का जीवन, कला पर ही आश्रित है।'

भारतीय संगीत की विशेषता पर विवेचना करते हुए पण्डितजी ने कहा—

'भारतीय संगीत-कला के लिये यूरोप के देशों में पर्या-

दान करते हुए संगीतकार के रूप में मुझे जो सम्मान प्राप्त हुआ है, उसका भी आप सहृदय बन्धुओं ने अपने मानपत्र में उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में मुझे जो मान मिला है, उससे मैं मुक्त हुआ चाहता हूँ।

भारतीय संगीत अपूर्व है। भारत का संगीत आकाश-जैसा विशाल और सागर जैसा गहरा है। आर्यऋषियों-द्वारा बनाये गये रागों में इतने भाव भरे हुए हैं कि संगीत-कार को कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। 'संगीत तो विश्वभाषा है'—इस सच्चाई को मैं गुजरात में तथा भारत में भ्रमण करके नहीं जान सका; पर यूरोप के प्रवास में सीखा हूँ।

पश्चिम के संगीत में एक सप्तक में बारह स्वर हैं। वाद्य-सहित संगीत में बारह स्वर होते हैं। भारतीय संगीत इतना विस्तृत है कि एक सप्तक में बाईस स्वर हैं। कहाँ बारह और कहाँ बाईस! पश्चिम के संगीत में चार ही स्वर-रचनाएँ हैं—शुद्ध, काफी, आसावरी, और पीलू। इसके सिवाय अन्य स्वर-रचनाओं का वहाँ उपयोग नहीं होता। हमारी संगीत-प्रणाली अतिशय सुव्यवस्थित और गहरी है। जरा-सा परिवर्तन हो जाने पर सारा राग बदल जाता है। भार-तीय संगीत के-से बन्धन पश्चिमीय संगीत में नहीं हैं।

हृदय के भावों को मूर्तरूप देनेके लिए भारतीय संगीत में नव प्रकार के रसों के राग हैं। यूरोप में मुझे जब करुण रस का वातावरण जमाना होता था, तो मैं जोगिया, पीलू, नीलाम्बरी आदि रागों का उपयोग करता था और इस प्रकार सहज ही करुण रस का निर्माण हो जाता था। रागों में ही रस गुँथे पड़े हैं। भारतीय संगीत के प्रचार के लिए आपने मुझे जो मान दिया है, उसमें मेरा बहुत ही थोड़ा हिस्सा है। रागों का विधान तो आर्यऋषियों ने किया है; इसलिये इस मान के अधिकारी आर्यऋषि ही हैं।'

• • •

गाय के गोबर का वैज्ञानिक महत्त्व

मद्रास प्रान्त के आरोग्य-विभाग के अध्यक्ष लेफ्टिनेन्ट कर्नल बेबे ने मलाबार मेडिकल एसोसियेशन के समक्ष हाल ही में एक निबन्ध पढ़ा है। उसमें उन्होंने बताया है कि गाय के गोबर में से प्राप्त फेजिस नामक कीटाणु हैजे की व्याधि को रोकने वाले हैं। यह प्रयोग सफल सिद्ध हो चुका है। बम्बई का प्रसिद्ध गुजराती दैनिक-पत्र 'मुम्बई-समाचार' इसकी रिपोर्ट देते हुए लिखता है—

'कर्नल बेबे अपने निबन्ध में लिखते हैं कि कितने ही गरीब भारतियों के घरों में प्रतिदिन गाय का गोबर लीपा जाता है। गरीबों के इन गन्दे मकानों में बालकों का जन्म होता है और घाव को भरने के लिए तथा सूजन को कम करने के लिए भी गाय का गोबर उपयोग में लाया जाता है—ऐसा करने पर ज़रा भी बुखार आए बिना रोगी अच्छा हो जाता है। ऐसी अनेक घटनाएँ देखने से मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ था कि गोबर का उपयोग दवाई के रूप में किया जा सकता है। डॉक्टर एसश्रौफ़ ने इस विषय में अनुसंधान करके पता लगाया है कि गाय के गोबर में फेजिस नामक बेक्टीरिया (कीटाणु) होते हैं। इस अनु-संधान के विषय में पूने का प्रसिद्ध पत्र 'इंडियन शोशल रिफ़ा-र्मर' लिखता है—'इसके द्वारा यह ज्ञात होता है भारतवर्ष के इस वहम के अन्दर भी बड़ा रहस्य समाया हुआ है। बहुत वर्ष पहले यह सिद्ध हुआ था कि गंगाजल (जिसको भारतीय पवित्र मानते हैं) में कृमियों को नष्ट करने का गुण विद्यमान हैं। बेकन का कहना है कि वहमों को त्याग करने में भी वहम समाया हुआ होता है। अनेक पुरानी बातों को समयानुकूल परिवर्तित करना ही श्रेयस्कर है!'

• • •

रेल्वे इंजिनों की प्रगति

रेल्वे के इंजिनों में इस समय किस कदर उन्नति हुई है, इस का कुछ विवरण गुजराती के दैनिक पत्र 'मुम्बई समाचार' में प्रकट हुआ है। वहीं से लेकर नीचे की कंडिका दी जाती है—

'पिछले पचास वर्षों में रेल्वे इंजिनों में बहुत उन्नति हुई है। आज से पचास वर्ष पूर्व इंजिनों में ईंधन के लिये लकड़ियाँ प्रयोग में लाई जाती थीं और वे भी कुछ मील तक के लिये ही पर्याप्त होती थीं! आजकल एक इंजिन में एक बार भरा हुआ कोयला ३००-४०० मील तक की दूरी के लिये पर्याप्त होता है। उन दिनों एक इंजिन में १५० पौंड ही भाप रह सकती थी, और अब एक इंजिन में २५०

पौण्ड भाप रह सकती है। आधुनिक इंजिनों में ५५० डिग्री तक कि उष्णता पैदा की जा सकती है। उन दिनों केवल साठ पौण्ड वाली पटरियाँ ही इस्तेमाल की जाती थीं; पर अब १५० पौण्ड वाली रेल्वे पटरियाँ लगानी पड़ती है।

इसी प्रकार सिग्नलों के विषय में भी बहुत से परिवर्तन हुए हैं। सिग्नलों के द्वारा ड्राईवरों को बहुत सुभीता हो गया है। अमेरिका में सिग्नलों के लिये 'कोडर-पद्धति' प्रचारित की गई है।'

—शंकरदेव विद्यालंकार

उर्दू

कायस्थों में समाज-सुधार का प्रश्न

मुंशी दयानारायण निगम ने अपने प्रसिद्ध उर्दू मासिक पत्र 'ज़माना' में उपर्युक्त विषय पर एक विस्तृत लेख लिखकर कायस्थों का ध्यान उन बुराइयों की ओर खींचा है, जो उनके समाज में घुस गई हैं। हमारे ख़याल में करारदाद कायस्थ-समाज का सबसे बड़ा कलंक है। उसके विषय में लेखक महोदय कहते हैं—

'दर हक़ीक़त मेरी राय में जब तक औलाद की शादी का फ़र्ज़ वालदैन के ज़िम्मे रहेगा, उस वक्त तक यह रिवाज बंद न होगा; लेकिन अभी बहुत दिनों तक इसकी उम्मीद रखना फ़ुज़ूल है कि हमारे लड़के-लड़कियाँ अपनी शादी खुद करें। मगर कायस्थों में बाल-विवाह की प्रथा बाक़ी नहीं रही; इसलिये हमारे नौजवान इस बारे में बहुत कुछ कर सकते हैं...क्या कायस्थ नौजवानों से मैं अपील कर सकता हूँ कि वह इस रस्म के विरुद्ध आंदोलन करके इसको बिल्कुल उड़ा देने का निश्चय करेंगे?'

• • •

तारीख़ हिन्द की अबतरी

अब यह मान लिया गया है कि भारत में जो भिन्न मतवालों का भेद-भाव है, उसे दृढ़ करने में ऐतिहासिक पुस्तकों ने बड़ा भाग लिया है, विशेष करके अङ्गरेज़ी विद्वानों की लिखी हुई पुस्तकों ने। जब हमारे स्कूलों में इस भेद की बुनियाद पड़ जाती है, तो वह जीवन-पर्यन्त साथ नहीं छोड़ती। इस तरह का इतिहास पढ़ाने से तो यह कहीं अच्छा है कि वह हमारे पाठ्य-क्रम से निकाल दिया जाय। इस विषय पर रिसाला 'असमत' में, जो दिल्ली की प्रसिद्ध पत्रिका है, एक मुसलिम महिला के विचार सुनिए—

'स्कूलों और कॉलेजों में जो तारीख़ हिन्द पढ़ाई जाती है, वह निहायत गलत पैराए में लिखी गई है...यह अलफ़ाज़ देखकर कितना रञ्ज होता है कि मुसलमान बादशाहों का यक़ीन था कि हिन्दुओं को मुसलमान बनाने से खुदा खुश होता है; इसलिए वह ज़बरदस्ती ग़ैर क़ौमों को मुसलमान बनाते थे और जो कोई इसलाम पर ईमान न लाता था, उसे क़त्ल कर दिया जाता था। कहा जाता है कि इसलाम तलवार के ज़ोर से फैला। आलमगीर ग़ाज़ी के बयान में यह बात दुहराई गई है कि अगर कोई हिन्दू मुसलमान न होता, तो उसे कत्ल कर डाला जाता था। अब ख़याल करने का मुकाम है कि जब मुसलमानों के शासन-काल में इतने अन्याय हिन्दुओं पर बताए जाते हैं, तो मुमकिन ही नहीं कि उसका असर हिन्दू-मुसलमानों के ताल्लुक़ात पर न पड़े। यह जो आए दिन के हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े आप अखबारों में पढ़ते हैं, यह उसी ग़लत तारीख़ का ज़हरीला असर है और कानपुर, काश्मीर आदि में जो मुसलमानों पर क़यामत टूटी, यह हिन्दी तारीखों की ग़लत बयानी का अदना करिश्मा है और अभी न मालूम और क्या-क्या हंगामा हिन्दुस्तान में बरपा हो; पस इस अम्र की अशद ज़रूरत है कि फ़ौरन तारीख़ में से मनगढ़ंत क़िस्से निकाल कर सिर्फ सहीह वाक़यात लिखे जायँ, चाहे वह हिन्दुओं के बारे में हों, या मुसलमानों के। हिन्दू-मुसलिम-एक्य के लिए सबसे पहले तारीख़-हिन्द का सहीह होना है।'



नीरक्षीर

भगवान् गौतम बुद्ध—(जीवन और उपदेश) लेखक और सम्पादक पण्डित चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ; तथा संशोधक माननीय श्रीयुत उत्तम भिक्षु। डबल क्राउन सोलह पेजी के २८० पृष्ठ। सजिल्द। सचित्र। दाम २॥), मिलने का पता—हिन्दू-समाज-सुधार कार्यालय, सआदतगंज, लखनऊ।

इस पुस्तक को मैंने बड़े ही चाव से पढ़ने के लिए हाथ में लिया था। इसके कई कारण हैं। एक तो मुझे भगवान् बुद्धदेव के प्रति शुरू ही से श्रद्धा रही है। दूसरे, आजकल, कारण-वश, मैं बुद्ध और बौद्ध-धर्म पर किताबें भी पढ़ रहा हूँ। तीसरे, हिन्दी में यह पहली ही किताब है, जिसके विचारों और सामग्री को एक बौद्धाचार्य 'श्रीयुत भदन्त बोधानन्दजी महास्थविर, बुद्ध-विहार, लखनऊ' ने (इसी ग्रन्थ की रचना के लिए) संगृहीत किया, और जिसके संशोधन का भार एक दूसरे बौद्धाचार्य 'माननीय श्रीयुक्त उत्तम भिक्षु (बर्मा-निवासी), ने अपने ऊपर लिया है। अभी तक इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली जितनी किताबें हिन्दी में निकल चुकी हैं, उनके लेखक बौद्ध-सम्प्रदायवाले नहीं थे। इसी किताब को यह सौभाग्य प्राप्त है कि इसके प्रणयन में एक नहीं, दो-दो बौद्धधर्म के प्रतिष्ठित और यशस्वी आचार्य महोदयों ने भाग लिया है, यही इसकी विशेषता है। इसी खूबी को देखकर, मैंने इसे चाव के साथ पढ़ना शुरू किया। किताब को देखकर जो आशा हुई थी, वह इसे आद्योपान्त पढ़ने पर मिट गई। ऐसा क्यों हुआ?

इसलिए कि पूज्यपाद धर्माचार्यों ने इस जीवन को साम्प्रदायिकता के रङ्ग से इतना पोता है कि यह ऐतिहासिक जीवनी के बजाय एक पौराणिक गाथा बन गई है। असंगत और असम्भव घटनाओं के वर्णन से किताब भरी पड़ी है। इतना ही होता, तो भी गनीमत थी। दूसरा दोष इससे बढ़ कर है, जिसने पुस्तक की उपयोगिता को मिट्टी में मिला दिया। वह है इसका साम्प्रदायिक विद्वेष और दूसरे-मतों के प्रति घृणा और तिरस्कार का भाव, जिसके कारण पाठक को 'विचार-सामग्री दाता' और 'संशोधक' महाशयों की निष्पक्षता और ऐतिहासिक विवेचन की शक्ति में सहसा अविश्वास हो जाता है। इतना नहीं कि पाठक को लेखकों में अश्रद्धा हो जाय, उसे बुद्ध और बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ भ्रम भी उत्पन्न हो जाता है।

साम्प्रदायिक कट्टरता का एक ख़ासा नमूना यह ग्रन्थ है। बीसवीं सदी में बौद्ध-धर्म के प्रचार का यदि यही तरीक़ा जारी रहा, तो मुझे भय है कि सफलता तो दूर रही, आपस में मनोमालिन्य ही बढ़ेगा। बुद्ध का जीवन इतना निर्मल और विशाल है कि उसकी महत्ता को सिद्ध करने के लिए कपोल-कल्पित, मन-गढ़ी किम्वदन्तियों का आश्रय लेना सर्वथा अनुचित है। लेकिन, इन्हीं बे-सिर पैर की बातों से यह पुस्तक भरी गई है। इसमें उनके उपदेश और धर्म-सम्बन्धी सिद्धान्तों की व्याख्या भी ऐसे ढंग से की गई है कि पाठक प्रकाश से अन्धकार में जा गिरता है। भाषा साधारण और कहीं-कहीं दूषित है। चित्र भी बहुत ही मामूली हैं। क्या हम आशा करें कि बौद्धाचार्य इस पुस्तक के स्थान में बुद्ध के अनुरूप दूसरी किताब निकालेंगे? हमें खेद है कि हम उनके इस साहित्यिक प्रयत्न की प्रशंसा नहीं कर सकते।

—'वामन'।

• • •

हिन्दी-भाषा का इतिहास—लेखक, श्री धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए० ; प्रकाशक हिन्दोस्तानी एकाडमी, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ३४४, मूल्य ३॥)

उपर्युक्त पुस्तक हिन्दी-भाषा के विकास का वैज्ञानिक इतिहास है। हिन्दी में भाषा-विज्ञान अथवा विकास सम्बन्धी तीन पुस्तकें इसके पहले देखने में आ चुकी हैं। अपने अपने ढंग की वह पुस्तकें अच्छी हैं। विदेशी विद्वानों ने इस विषय पर महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखे हैं और अभी तक जो ग्रंथ हिन्दी में लिखे जाते हैं, उनपर उन ग्रंथों की छाप अथवा छाया दिखाई देती है, और यह अनिवार्य भी है। वर्माजी ने हिन्दी के विकास का जिस ढंग से विवेचन किया है, वह भाषा-विकास विशेषतः शब्दशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये बहुत ही उपयोगी है। शब्दों के विकास में

ध्वनि ने बहुत योग दिया है। हम ध्वनि-विज्ञान जाने बिना, जितने रूपान्तर होते चले गये हैं, उन्हें समझने में असमर्थ हैं। डॉक्टर बाबूराम सक्सेना का 'अवधी का विकास' अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। केवल उसके ध्वनिविषयक दो-तीन लेख पत्रिकाओं में देखने में आये हैं; इसलिये मुझे यह कहने का साहस होता है कि वर्माजी का यह प्रयास हिन्दी में सबसे पहला है, जो सर्व-साधारण के सामने उपस्थित, ग्रंथ विद्वत्ता-पूर्ण है, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं, लेखक का नाम इसके लिये काफ़ी है। ढंग मौलिक है, इसमें सन्देह नहीं।

जैसा ऊपर कहा गया है, इसका इतिहास भाग सबसे महत्त्वपूर्ण है। शब्द-शास्त्र से जिन्हें रुचि है, वह इस भाग को अवश्य पसन्द करेंगे। इस सम्बन्ध में मेरा कुछ निवेदन है। जहाँ उपसर्ग-प्रत्ययों का इतिहास दिया गया है, वहाँ लेखक ने अपना मत नहीं प्रकट किया कि कौन प्रत्यय किस काल से व्यवहृत होता चला आया है। बीम्स, हार्नेली अथवा चटर्जी में जहाँ मतभेद है, वहाँ लेखक का मत हम जानना चाहते थे। प्रत्ययों के विकास में भी जहाँ भेद दिखलाया गया है; जैसे—'अऊ', 'आई' में कौन ठीक है? जब तक यह न मालूम हो जाय, व्याकरण का रूप कैसे स्थिर होगा।

अंग्रेजी प्रत्ययों का जहाँ वर्माजी ने जिक्र किया है, वहाँ भी मुझे कुछ कहना है। 'सब' और 'हेड' जो सब-ओवरसियर अथवा हेड मास्टर के साथ है, वह प्रत्यय नहीं मालूम होते। सब ओवरसियर, सब रजिष्ट्रार, हेड मास्टर, हेड पण्डित, यह शब्द-के-शब्द हिन्दी में ले लिये गये हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग इनका व्यवहार करने लगे, यह हिन्दी में आगये; परन्तु हेड अध्यापक अथवा 'सब-मजदूरिन' कोई नहीं कहता। केवल 'हेड-मुहर्रिर' एक शब्द ध्यान में आता है। 'सब' उपसर्ग तो कहीं भी हिन्दी में लिखा या सुना नहीं जाता। संज्ञा के वचन प्रकरण में वर्माजी लिखते हैं—स्त्री लिंग ईकारान्त शब्दों में प्रथमा बहु वचन में यातो सिर्फ़ अनुस्वार जोड़ दिया जाता है या 'ई' के स्थान पर इयाँ कर दिया जाता है।

इस नियम के पहले भाग से मैं सहमत नहीं हूँ। लड़की का लड़कीं कहीं बोला या सुना नहीं जाता। लड़कियाँ ही लिखा और बोला जाता है। इसी प्रकार मुर्गी का मुर्गीं, पोथी का पोथीं घड़ी का घड़ीं प्रथमा बहुवचन में नहीं होता। यद्यपि यह व्याकरण की पुस्तक उस विचार से नहीं है, जिस अर्थ में व्याकरण साधारणतः लोग समझते हैं, फिर भी वाक्य-शास्त्र (Syntax) पर एक अध्याय होना आवश्यक था। किसी भाषा के साहित्य में उसके वाक्यों और मुहावरों के संगठन के विकास पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

पुस्तक की भाषा में भी दो-एक प्रयोग विचित्र हैं। ऐसे भेद लिखे गये हैं; जैसे—'लिपिएँ' 'सूचिएँ'। यह शब्द कहाँ तक इस रूप में ठीक है, विद्वान् लोग जानें, मैं तो इन्हें ठीक नहीं समझता। भूमिका भाग में भारतीय आर्यों के आदिम निवास-स्थान पर नोट देते हुए वर्माजी लिखते हैं—आजकल का यही मत है कि आर्यों का आदि-स्थान पूर्व-यूरोप में बाल्टिक समुद्र के निकट कहीं पर था।

पूर्व यूरोप में कोई सागर 'बाल्टिक' नामक नहीं है। इस विषय में लेखक ने भूल की है।

यह सब होते हुए भी पुस्तक उपयोगी, विद्वत्ता-पूर्ण और अध्ययन से लिखी गई है। हिन्दी के ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों तथा खोज करने वालों के लिये यह पुस्तक बड़े काम की होगी।

० ० ०

यशोधरा—रचयिता, श्री मैथिलीशरण गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी। मूल्य १॥)

हिन्दी के साहित्य-प्रेमी अभी गुप्तजी का 'साकेत' महाकाव्य न भूले होंगे। भूलने की चीज़ तो वह है भी नहीं। साहित्योद्यान का एक सौरभमय पुष्प है। अब यशोधरा की करुण-कथा सुनिये। यशोधरा बुद्ध-चरित है; परन्तु इसमें बुद्ध के बोधीसत्त्व का विकास नहीं दिखाया गया। बुद्ध के गृह-त्याग के पश्चात् यशोधरा की मानसिक तरंगों के उत्थान-पतन का शब्द चित्र है।

कथानक वहाँ से आरम्भ होता है, जब बुद्ध संसार की दुःखमय अवस्था का अनुभव करते हैं। फिर महाभिनिष्क्रमण है, इसके पश्चात् यशोधरा का विलाप-ही-विलाप। बीच में, जब शुद्धोधन और छन्दक लौट आये हैं, तब उनका रुदन है। अन्त में जब तथागत लौटे हैं, तब उनका थोड़ा-

ता विवरण है, इसके अतिरिक्त सारा ग्रन्थ यशोधरा तथा राहुल की बात-चीत है।

बुद्ध-चरित्र बहुतों ने लिखा; परन्तु यशोधरा को इतना महत्त्व किसी ने नहीं दिया। सर एडविन आर्नल्ड ने भी, अपने लाइट ऑव एशिया के सातवें अध्याय में महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् यशोधरा का ज़िक्र किया है, जब व्यापारी लोग आकर बुद्ध से मिलने का वर्णन करते हैं। गुप्तजी ने कथानक के चित्रण में कुछ ऐसा रङ्ग फेर दिया है कि बात ही बदल गई। वह सूखी-सूखी बातें या तो बुद्ध के भ्रमण की हैं अथवा उनके तपों का वर्णन छोड़ दिया है। सुन्दर काव्य के लिए नाज़ुक कल्पना की आवश्यकता है। यशोधरा के भावों को सोचिए, जिसका पति निद्रावस्था में छोड़कर चल दिया है, उस कल्पना को महान् वर्णन के साँचे में ढालकर कवि ने बलवती कर दिया है।

यशोधरा के चरित्र में कवि ने कहीं दुर्बलता नहीं आने दी है। राहुल जब कभी किसी प्रकार की शङ्का उपस्थित करता है, तब यशोधरा बड़ा सुन्दर उत्तर देती है; जैसे—राहुल पूछता है—

अम्ब, क्या पिता ने नहीं जन्म यहाँ पाया है?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें भाया है?

यशोधरा कहती है—

बेटा, घर छोड़ वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता है उन्होंने सब सृष्टि से
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

यशोधरा का सारा विलाप दार्शनिक भावों से भरा है। विश्व-प्रेम का पाठ है, बौद्धधर्म का संक्षिप्त प्रकरण है।

जहाँ कवि ने राहुल की शैशवावस्था का चित्र खींचा है, वह स्थल बड़ा मनोहर है। माता और पुत्र की बात-चीत, शिशु का हठ, माता का मनाना, दूध पिलाने का अनुरोध, राहुल का हठ, राहुल का कहानी सुनने के लिए मचलना और माता का वही भोली-भाली काव्यमयी कहानी सुनाना, बड़े सुन्दर ढंग से लिखा गया है। गुप्तजी की कलम की खूबी है कि नीरस बातों को भी काव्यमय बना देते हैं।

इस रचना में एक विशेषता यह है कि बीच-बीच में गद्य में नाटक की भाँति कथोपकथन भी है। यह नवीन ढङ्ग अभी तक किसी काव्य-ग्रन्थ में नहीं आया था। लोग इसे पसन्द करेंगे कि नहीं, मैं नहीं कह सकता; परन्तु मुझे भद्दा नहीं मालूम हुआ। काव्यमय तो वह भी है, हाँ छन्दोबद्ध नहीं है।

यह कह देना अनुचित न होगा कि कुछ स्थल ऐसे हैं, जो मुझे अच्छे नहीं मालूम हुए; जैसे—सिद्धार्थ कहते हैं—

बाहर से क्या जोड़ूँ जाड़ूँ।
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ।

अन्तिम पंक्ति सुन्दर रचना नहीं है। अथवा—

रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा भरा।
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

इसकी भी आखिरी पंक्ति कुछ शिथिल मालूम होती है। एक स्थान पर है—

'चला गया रे चला गया।
भला गया रे भला गया।'

यह पंक्तियाँ भी खटकती हैं।

महाभिनिष्क्रमण वाले सर्ग में बराबर गौतम यह दुहराते हैं—'ओ क्षणभंगुर भव राम राम!' राम की दुहाई देना बुद्ध के लिये ज़रा अनुचित-सा मालूम पड़ता है।

परन्तु यदि कलंक न हो, तो चन्द्रमा कैसा? सारा ग्रंथ सुन्दरता से भरा पड़ा है। ग़लतियाँ और भूलें खोजने बैठा जाय, तो बड़े-बड़े आदर्श ग्रंथों में निकाली जा सकती हैं। दो-चार उद्धरण मैं पाठकों के मनोरंजनार्थ देता हूँ। उन्हीं से ग्रंथ की सुन्दरता और कविता के रस का पता लग जायगा।

राहुल माँ को गाने के लिये तंग करता है। गोपा गाती है—

रुदन का हँसना ही तो गान।
गा-गाकर रोती है मेरी हृत्तंत्री की तान।
मीड़ कसक है कसक हमारी, और गमक है हूक,
चातक की हुत-हृदय-हूति जो, सो कोइल की कूक।
राग हैं सब मूर्छित आह्वान।
रुदन का........।

छेड़ो न वे लता के छाले, उड़ जावेगी धूल,
हलके हाथों प्रभु के अर्पण करदो उसके फूल।
गन्ध है जिसका जीवन दान
कादम्बिनी प्रसव की पीड़ा हँसी तनिक उस ओर,
क्षिति का छोर छू गयी सहसा वह बिजली की कोर।
उजलती है जलती मुसकान।

यशोधरा के यह वाक्य—

'सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये यही बड़ा व्याघात।'

कितनी वेदना से भरे हैं। अथवा—

'यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कहीं भी छाये,
मेरे ये विश्वास व्यर्थ यदि तुमको खींच न लाये।'

और—

'अपना कर सम्पूर्ण सृष्टि को मुझे न अपनाओगे,
उसमें मेरा भी कुछ होगा जो कुछ तुम पाओगे।'

बड़े मनोहर मनोभाव प्रदर्शित करते हैं। ऐसी रचनाओं से पुस्तक भरी पड़ी है। हिन्दी के काव्य-रसिकों को इसका स्वाद अवश्य लेना चाहिये।

० ० ०

मातृत्व या बच्चों की फ़िक्र—लेखक, पंडित कृष्णकान्त मालवीय; प्रकाशक, पद्मकान्त मालवीय; अभ्युदय प्रेस, प्रयाग। मूल्य ४) पृष्ठसंख्या ३२० + १०४ = ४२४.

पंडित कृष्णकान्त मालवीय स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी पुस्तकें लिखने की ख्याति बहुत पहले पा चुके हैं। 'सोहागरात' 'मनोरमा के पत्र' इस विषय के विख्यात ग्रंथ हैं, जिन्हें कितने ही युवक पढ़ चुके होंगे। उनके बाद यह पुस्तक बच्चों की देख-रेख, उनके लालन-पालन के सम्बन्ध में है। माता होने की अवस्था से लेकर बच्चों को किस प्रकार स्वस्थ बनाकर पालन-पोषण किया जाता है, इस पुस्तक में बतलाया गया है। अन्त में परिशिष्ट है, जिसमें गर्भवती के धर्म, तथा शिशुपालन पर और भी प्रकाश डाला गया है।

पहली पुस्तकों की भाँति इसमें भी पत्रों के रूप में सार शिक्षा दी गई है। भाषा ऐसी है, जिसे साधारण हिन्दी जानने वाली स्त्रियाँ भी समझ सकती हैं। मनोरंजक भी है। गर्भाधान से लेकर बालक या बालिका के प्रसव तक की क्रिया चित्त देकर समझाई गयी है। गर्भ-काल में स्त्रियों को कैसे रहना चाहिये, क्या खाना चाहिये, स्वास्थ्य कैसे क़ायम रखा जा सकता है, गर्भ-पात क्यों होता है, गर्भावस्था में पति का क्या कर्तव्य है आदि सारे विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अंग्रेज़ी में तो ऐसी हजारों किताबें हैं; परन्तु हिन्दी में कम हैं। यह पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। यद्यपि पण्डित कृष्णकान्त जी डाक्टर नहीं हैं; परन्तु पुस्तक देखने से मालूम होता है कि ग्रंथ बहुत पढ़कर और विचार से लिखा गया है। कोई उल-जलूल विज्ञापनबाज़ी की बातें नहीं आने पाई हैं। मेरी राय में तो प्रत्येक समझदार माता-पिता को अपनी विवाहिता पुत्री को यह पुस्तक उपहार में देनी चाहिये।

यह बात सब समझदार लोगों को मालूम है कि हमारे देश में बच्चों की कितनी मृत्यु हो जाया करती है। इसके कारण बहुधा अज्ञान, अनियमन इत्यादि हैं। उचित ज्ञान होने से कुछ तो रुकावट हो सकती है। पुस्तक पढ़ने की चीज़ है और अपने पास रखने की चीज़ है।

० ० ०

इटली का शहीद—लेखक, प्रो० बेनीमाधव अग्रवाल, एम० ए० नालन्द कॉलेज बिहार; प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मण्डल, देहली। मूल्य २)

इटली ने कितने शहीद पैदा किये हैं, इतिहास-वेत्ता जानते हैं। उन्हीं शहीदों में एक 'सीवोनारोला' भी था। यह १४५२ ई० में पैदा हुआ था। उस समय यूरोप में 'नव-जागरण' काल था। लोगों में नवीन जागृति स्फुरित हो रही थी। उधर पोप लोग धर्मान्धता में विलासी, ढोंगी, क्रूर और लालची हो रहे थे। उस समय राजनीति और धर्म में बड़ा सम्बन्ध था। सीवोनारोला ने पोपों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। धर्म और शासन दोनों का वह विरोधी था। ऐसे लोगों की क्या दशा होती है, दुनिया से छिपा नहीं है। शक्ति का विरोध करना, आग से खेलना है। सीवोनारोला का भी वही हाल हुआ, जो इटली तथा और देशों में उन लोगों का हुआ है, जिन्होंने सुधार का झण्डा उठाया। सीवोनारोला धर्म और राज दोनों क विरोधी

ठहराया गया और अनेक यंत्रणाओं के पश्चात् शूली देकर जला दिया गया। यही कथा इस पुस्तक में है। पुस्तक की भाषा शोधनीय है; परन्तु विषय बड़ा हृदय-ग्राही और रोचक है। भारतवासियों को तो अवश्य पढ़ना चाहिये। सीवोनारोला का चरित्र आदर्श है। ऐसे व्यक्ति संसार में सदा नहीं होते। पुस्तक पढ़ने से मन में स्फूर्ति और बल का संचार होता है।

—कृष्णदेवप्रसाद गौड़

• • •

स्वामी श्रद्धानन्द—लेखक, श्रीयुत सत्यदेवजी विद्यालंकार; सम्पादक, श्री० इन्द्र; प्रकाशक, विजय-पुस्तक-भण्डार, श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली। मूल्य सादी का ३॥) रु० और सजिल्द का ४) मात्र।

स्वामी श्रद्धानन्दजी देश की उन उज्ज्वलतम विभूतियों में एक थे, जिन पर देश को गर्व करना चाहिए। उनका जीवन अनेक दृष्टिकोणों से अपूर्व हुआ है। 'हिन्दी हिन्दू हिंद' के लिए उन्होंने क्या नहीं किया, कौन से कष्ट नहीं झेले? देश के लिये उनकी सेवाएँ इतनी हैं, कि उनको गिनना सम्भव नहीं। अछूतों के वे जैसे हितैषी थे, यह सब पर प्रकट है। महात्माजी तक से वे इसी एक बात पर चिढ़े रहते थे कि महात्माजी हरिजन-समस्या पर उतना अधिक ध्यान नहीं देते थे, जितना स्वामीजी चाहते थे कि वे दें। (काश! आज वे जीते होते!) गौ-विधवाओं के लिए भी वे सदा ही प्रयत्नशील रहे। शुद्धि-आन्दोलन को जन्म देकर उन्होंने एक अपूर्व साहस का कार्य किया। यद्यपि उसका तात्कालिक फल कलह की वृद्धि के रूप में हुआ; पर मैं उस आन्दोलन को एक दूसरी ही दृष्टि से देखता हूँ। एक तो उसने सोये हुए हिन्दू-समाज को जगा देने वाला एक ज़बर्दस्त धक्का दिया, दूसरे उसने इस सिद्धान्त की घोषणा भी की, कि प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह किसी भी मत का क्यों न हो, अपने धर्म-परिवर्तन का अधिकार है। उनका हिन्दू-सङ्गठन राजनैतिक चालबाज़ी नहीं थी। वह कायरताजन्य सिद्धान्त भी नहीं था और न वह मुसलमानों के द्रोह से ही भरा हुआ था। वे सन् २६ में भी उन दिनों का स्वप्न देखा करते थे, जब हिन्दू-मुसलमानों में प्रेम-तरु फैल चला था। जब वे जामा मसजिद से वाज़ फिर से दे सकें। (देखिये पृष्ठ ४८२) (हर्ष का विषय है कि श्री इन्द्र भी अपने पूज्य पिता के समान सुलझे मस्तिष्क के व्यक्ति हैं) इसीलिए, वे हिन्दू महासभा से अलग भी हो गये। हिन्दी के लिए भी उनकी सेवाएँ अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुईं। राजनीति के प्रांगण में उनका प्रवेश यद्यपि देर से हुआ, फिर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा। सत्याग्रह-आन्दोलन का महत्त्व समझने वाले वे पहले व्यक्ति थे। देहली में निर्मम गोरखे के आगे सीना खोल कर किरच के आगे खड़े होने वाले, अमृतसर में सर्वथा प्रतिकूल परिस्थियों में भी कांग्रेस को सम्भव करने वाले, गुरु के बाग़ में सहर्ष जेल जाने वाले, शहादत का अमृत पीने वाले, निर्भय-हृदय, कर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन प्रत्येक भारतीय के लिए उपदेश-प्रद है।

दो बातें और हैं, जिन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द के व्यक्तित्व को अत्यधिक ऊँचा उठा दिया है। एक तो संन्यासी होने पर भी उन्होंने लोक-सेवा से मुँह नहीं मोड़ा। 'मैंने संन्यास का अर्थ कर्म का न्यास नहीं समझा...(वरञ्च) कर्मफल में अनासक्ति को ही संन्यास समझा है। इसीलिए मैं उनके साथ सहमत नहीं हूँ, जो कहते हैं कि सर्व कर्मनाशी संन्यासी होता है।' (पृष्ठ ५२०) यही शुद्ध संन्यास है। सब संन्यासी यदि स्वामी श्रद्धानन्दजी के इस महान् आदर्श का पालन करें, तो वे अवश्य ही पुनः संसार-पूज्य हो जायँगे। विवेकानन्द और रामतीर्थ, रामकृष्ण और दयानन्द इत्यादि महात्माओं का अब भी आदर होता है। दूसरी बात जो उनके जीवन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हुई वह गुरुकुल की स्थापना थी। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के निन्दकों की कमी नहीं; पर परिवर्तन में सबसे पहले ठोस चीज़ देने वाले स्वामीजी ही थे। यद्यपि अन्त में उन्हें गुरुकुल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना पड़ा, फिर भी वे उसके जन्मदाता, पोषक और रक्षक थे! आर्य-समाज के इस महापुरुष को प्रकृति ने शरीर भी अत्यन्त भव्य दिया था। जो एक बार वर्तमान महामंत्री मि० मैकडानल्ड ने तो उनकी तुलना 'ईसा मसीह' से की थी। ऐसे महापुरुष की जीवन-गाथा से परिचित होना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। और, हम श्रीयुत सत्यदेवजी को ऐसी सामयिक पुस्तक के लिए बधाई देते हैं।

हिन्दी में अच्छे जीवन-चरित्रों की भयावह कमी है।

स्वा० श्रद्धानन्द का यह जीवन-चरित्र इस विभाग में पथ-प्रदर्शक का कार्य करे, यह हमारी सच्ची इच्छा है। पुस्तक पूर्ण है और प्रामाणिक भी। स्वामीजी के जीवन-संबंधी सभी उपलब्ध सामग्री को प्रयोग में लाया गया है। पुस्तक से स्वामीजी के जीवन पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। कैसे वे बुरी संगत में बिगड़े और फिर कैसे सुधरे, आर्य-समाज का उत्थान और उसका पतन, उसकी गृह-कलह, गुरुकुल का निर्माण तथा संबंध-त्याग कांग्रेस, तथा हिन्दू-महासभा से मत-भेद इत्यादि सभी बातों का मनोरंजक वर्णन है। लेखक अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ है, इसमें संदेह नहीं। पुस्तक की भाषा भी प्रायः निर्दोष है। हमारी इच्छा है कि पं० मालवीयजी, स्व० नेहरूजी, स्व० लाला-जी, स्व० हकीम साहब, देशबंधु दास, देशप्रिय सेन गुप्त आदि के भी ऐसे ही जीवन-चरित्र हिन्दी में प्रकाशित हों।

इस जीवन-चरित्र में एक बात की कमी है। यह उतना विश्लेषणात्मक नहीं है, जितना वर्णनात्मक। हिन्दी में लुड-विग, गार्डनर और लास्की अभी नहीं आये; पर वे शीघ्र ही आने वाले हैं, यह निश्चय है। एक बार फिर हम श्री सत्यदेव को बधाई और धन्यवाद देते हैं। श्रीयुत इन्द्रजी, जिनके तत्वाधान में और जिनकी प्रेरणा से यह श्रेष्ठ पुस्तक लिखी गई है, उनको हम धन्यवाद तक नहीं देंगे; इस पितृ-सेवा और मातृ-(भाषा) सेवा से उनको अपने परिश्रम का फल स्वयं मिल गया होगा।

प्रत्येक हिन्दीज्ञ सज्जन से हमारा अनुरोध है कि वे इसको पढ़ डालें और वह भी ख़रीद कर। सौ ख़र्च कम करके इसे ख़रीदें। इसके पढ़ने से मानसिक क्षितिज बढ़ेगा, आध्यात्मिक उन्नति होगी और पाठक को प्रकाश किरणों की भी प्राप्ति होगी। साढ़े छः सौ पृष्ठों की पुस्तक ३॥) रु० में सस्ती ही है।

—'तिमिरहर शर्मा'

• • •

रजकण—(कहानी संग्रह) लेखक, श्री चतुर-सेन शास्त्री; प्रकाशक, चाँद प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ३५७, मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक श्री शास्त्रीजी की बारह कहानियों का ताज़ा संग्रह है। श्री शास्त्रीजी में लिखने की शक्ति है, प्रतिभा है; परन्तु कभी-कभी वे उनका दुरुपयोग करते से जान पड़ते हैं, जिसका उदाहरण 'इसलाम का विष-वृक्ष' है। इस पुस्तक में भी वही बात है। कहीं कहीं का वर्णन बड़ा अस्वाभाविक और कामुकता-पूर्ण-सा हो गया है। शास्त्रीजी इसके लिए क्षमा करेंगे—कई कहानियों में तो उन्होंने वर्णन करने में बड़ी स्वतंत्रता से काम लिया है। उदाहरण के लिए 'अम्बपालिका' कहानी को ही लीजिए, 'अम्बपालिका' के वर्णन में वे इतने उदार हो गए जान पड़ते हैं कि पूछना ही क्या! पृष्ठ २२२ पर 'विधाता ने मानों उसे.........पूर्व भाग सदा खुला रहता था' तक ऐसा वर्णन है, जो संयत होते हुए भी उचित नहीं है। इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी कई स्थल ऐसे ही आ गए हैं।

सफलता की दृष्टि से बारह कहानियों में, 'विश्वास, सत्प्रण, बावर्चिन, वेश्या, जीवन्मृत, अम्बपालिका, पतिता, में ही मेरी समझ से वे अच्छे कहे जा सकते हैं। कई कहा-नियाँ आवश्यकता से अधिक बड़ी हो गई हैं, पढ़ने में तबी-यत ऊब जाती है।

—सर्वदानन्द वर्मा

• • •

आत्म विस्मृति—रचयिता, श्री पद्मकान्त माल-वीय; प्रकाशक, अभ्युदय-पुस्तक-भंडार, इलाहाबाद। मूल्य१)

पद्मकान्तजी ने हिन्दी में रुबाइयाँ लिखकर कविता-प्रेमियों को एक नई चीज़ देने की चेष्टा की है। मगर ग़ज़ल या मुसद्दस या रुबाइयों के लिए उर्दू की ज़मीन जितनी अनुकूल सिद्ध हुई है, शायद हिन्दी उतनी अनुकूल न हो। हाँ, यह बात ज़रूर है कि उर्दू को सैकड़ों उस्तादों से माँजे जाने का गौरव प्राप्त हुआ है, तब जाकर उसमें वह सफ़ाई आई है। पद्मकान्तजी की रुबाइयाँ तो गंगा-मदार, या शराब और गंगाजल का मिश्रण-सी मालूम होती हैं। हिंदी-कविता में प्याला और मधुशाला और पण्डितजी अभी अपरि-चित-से लगते हैं। सम्भव है, आगे चलकर भाषा के मँज जाने पर हिन्दी-रुबाइयों में भी अनीस या रवाँ की रुबाइयों का-सा मज़ा आए। अभी तो वह बात नहीं आई।

• • •

नवाब का हाथी—अनुवादक, मुंशी कन्हैयालाल ; प्रकाशक, पुस्तक-मंदिर, काशी, मूल्य १)।

मुंशी कन्हैयालाल ने हिन्दी को उर्दू-साहित्य के हास्य-रस से खूब परिचित कर दिया है। इस संग्रह में उन्होंने १० अच्छी-अच्छी कहानियों का संग्रह कर दिया है। 'बाई-सिकिल' और 'अंगूठी की मुसीबत' विशेष रोचक हैं। मगर ऐसी कोई कहानी नहीं है, जिसे पढ़कर हास्यमय मनोरंजन हो।

० ० ०

साहित्य-समीक्षा—लेखक, श्री कालिदासजी कपूर, एम०, ए०, एल-टी० ; प्रकाशक, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग। मूल्य ॥।)

कालिदासजी कपूर हिन्दी के सुपरिचित आलोचकों में हैं। इस पुस्तक में उनके आलोचना-संबंधी लेख, जो उन्होंने समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित कराये थे, संग्रह कर दिये गये हैं। सेवा-सदन, प्रेमाश्रम, और रंगभूमि की विस्तृत आलोचनायें भी दी गई हैं। कालिदासजी की आलोचनाएँ पक्षपात रहित होती हैं, यही उनकी खूबी है। 'हिन्दी में नाटक और अभिनय' और 'हिन्दी में उपन्यास-साहित्य' विचार-पूर्ण लेख हैं।

० ० ०

मानुषी—लेखक, श्री सियारामशरण गुप्त ; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी। मूल्य १)

सियारामशरणजी की कविताओं में जो शांति और माधुर्य की ही प्रधानता रहती है, वही विशेषता उनकी कहानियों में है, कहीं-कहीं निरीह चुटकियाँ भी लेते हैं। भावों में गहराई है अवश्य ; पर पाठक को वहाँ पहुँचने में कोई झटका, कोई हचकोला नहीं लगता। जैसे किसी लिफ्ट में बैठकर नीचे उतर गये। 'रुपये की समाधि', 'पथ में से' और 'कष्ट का प्रतिदान' बड़ी सुन्दर और मर्म-स्पर्शी कहानियाँ हैं।

० ० ०

विशाल-भारत-डायरेक्टरी—सम्पादक, श्री ब्रजमोहन वर्मा ; प्रकाशक, विशाल-भारत डायरेक्टरी-ऑफिस, १२०।२ अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता। मूल्य १॥)

वर्तमान युग में डायरेक्टरी, जीवन की एक जरूरी चीज़ बन गई है। व्यापार में तो इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। विशाल-भारत-कार्यालय ने इसे प्रकाशित करके एक बड़ी कमी पूर्ण कर दी है। इसमें इतिहास, भूगोल, विज्ञान की मोटी-मोटी बातें ; तार, डाक, रेल आदि के नियम, भारत की शासन-सम्बन्धी अनेक बातें, नाप-तौल, कांग्रेस, का इतिहास व्यापार सम्बन्धी हज़ारों बातें बतलाई गई हैं। एक अध्याय में ओटावे के समझौते का ज़िक्र भी किया गया है। स्टॉक एक्सचेंज, जहाज़ रानी, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आदि, सब कुछ मौजूद है। जो आँकड़े, जो जानकारी सैकड़ों पुस्तकों को उलटने-पुलटने पर भी मुश्किल से मिलेगी, वह यहाँ एकत्र कर दी गई है। अन्त में व्यापारियों की एक लम्बी सूची है, जो लगभग १५० पृष्ठों में समाप्त हुई है। लेखकों, और सार्वजनिक काम करने वालों के लिए तो इसकी एक प्रति रखना अनिवार्य है।

० ० ०

चाँद—नववर्षांक—हिन्दी मासिक पत्रों में 'चाँद' ही एक ऐसा पत्र है, जिसने एक आदर्श सामने रखकर सदैव उसको पूरा करने का यत्न किया है। उसके आदर्श से बहुतों को मतभेद हो सकता है ; पर उसने जो कुछ सत्य समझा है, उसका प्रतिपादन करता है और प्रशंसनीय निर्भीकता से। नवम्बर से उसका नया वर्ष आरम्भ होता है और इस साल उसका नववर्षांक बड़ी सजधज के साथ निकला है। कविताओं, कहानियों और इसके विशेष स्तम्भों के अतिरिक्त इस अङ्क में कई विचार-पूर्ण लेख हैं, जिनमें प्रो० रामदास गौड़ का 'भारतीय परलोक-वाद,' पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी का 'हमारी पतिता बहनें,' श्रीबालकृष्ण गुप्त का 'सोवियेट रूस,' श्रीसत्यजीवन वर्मा का 'प्राचीन भारत में गणिका,' तथा 'हिन्दू विवाह की रस्मों में परिवर्तन,' आदि लेख विचारणीय हैं। वाजपेयीजी ने जिस संगठन की चर्चा की है, उससे वेश्याओं का चाहे आर्थिक लाभ हो सके मगर समाज में सम्मान तो तभी मिल सकता है, जब उनके चरित्र में संयम आ जाय। यदि फिर वे नृत्य और गान को पेशा बनाकर भी गृहिणी बनकर रहें। वर्माजी ने बहुत-से प्रमाण देकर यह सिद्ध किया है कि पुराने ज़माने में गणिकाओं का समाज में अच्छा आदर था। आदर सदैव चरित्र से मिलता है। आज भी ऐसी वेश्याएँ मौजूद हैं,

जिन्होंने संगीत की उपासना को ही अपने जीवन का आधार बनाए रखा है। अनादर और अपमान तो रूप के बेचने से होता है। अगर आज भी प्राचीन गणिकाओं की भाँति वेश्याएँ नाचने-गाने को अपना मुख्य कार्य बनालें और केवल प्रेम होने पर किसी नारिक से संबंध करलें और एकाचारिणी बनकर रहें, तो कोई वजह नहीं कि आज भी उनका अनादर हो। श्रीमोहनलालजी ने अपने लेख में दिखाया है कि पुराने समय में हिन्दुओं की विवाह-प्रथा में क्या-क्या परिवर्तन हुए; पर विवाह की वर्तमान समस्या को हल करने की चेष्टा नहीं की, समाज की यह बड़ी कठिन समस्या है। हम अँधेरे में टटोल रहे हैं; पर कोई मार्ग नहीं पाते। एक ओर पुरानी बेहूदा रस्में हैं, दूसरी ओर पश्चिम की अन्धाधुन्ध नक़ल है और उससे पैदा होने वाले उपद्रव।

• • •

आकर्षण—मासिक-पत्र। अक्टूबर से देहली से निकलने लगा है। सम्पादक हैं, कुशल गल्प-लेखक श्रीभूदेव शर्मा। देहली से दैनिक और साप्ताहिक-पत्र तो निकलते थे; पर मासिक-पत्र का स्थान खाली था। हमें आशा है, भूदेवजी अपने शुभ उद्योग में सफल होंगे। पत्रिका में शिक्षा और मनोरंजन की काफ़ी सामग्री है, और उसे कई कुशल लेखकों का सहयोग प्राप्त हो गया है। पत्र-सम्पादन बड़ी जिम्मेदारी का काम है और हमें आशा है, शर्माजी ने जो यह भार उठाया है, उसमें वह सफल होंगे। वार्षिक मूल्य ५)

• • •

तूफ़ान—राष्ट्रवादी साहित्यक साप्ताहिक-पत्र है। कलकत्ता से श्रीराधामोहन गोकुलजी के सम्पादकत्व में निकला है। राधामोहन गोकुलजी इस वृद्धावस्था में भी नौजवानों का जोश रखते हैं। तूफ़ान में हास्य, बाल-विनोद, कहानी आदि मनोरंजन की काफी सामग्री रहती है। गंभीर और विचारपूर्ण लेख भी दिये जाते हैं। सम्पादक ने अपने कार्यक्षेत्र के विषय में लिखा है—'तूफ़ान देखने में कभी-कभी संसार के लिये बहुत अहितकर, बहुत भयावना और अवांछनीय प्रतीत होता है; किन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं। उसकी गर्मी, सर्दी, तरलता, सरलता, कठोरता आदि में से प्रत्येक गुण प्रकृति देवी के किसी-न-किसी उद्देश्य साधन के निमित्त ही होता है।' इसी से पत्र के नाम की यथार्थता सिद्ध होती है। वार्षिक मूल्य ३॥), एक प्रति का -)

• • •

मदारी—हास्य-रस का पाक्षिक पत्र है। प्रयाग से श्री बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक' की एडीटरी में प्रकाशित होता है। चार अङ्क निकल चुके हैं। कविताएँ और गल्पें भी देता है। हमें आशा है, मदारी साहित्यक गुटबंदियों से अलग रहकर अपने बंदरों को नचाता रहेगा। ऐसे एक पत्र की ज़रूरत थी। हाँ, मदारी का काम इतना आसान नहीं होता। कभी-कभी बंदर उसे काट भी लिया करते हैं। इसलिए बंदरों को नचाते समय चुमकार-पुचकार कर काम लेना अधिक निरापद होगा। वार्षिक मूल्य १॥), एक अङ्क का -)

• • •

अरुण—यह सचित्र मासिक-पत्र भी देहली से निकला है। अब वहाँ दो मासिक-पत्र हो गए। अरुण के सम्पादक हैं, श्री पृथ्वीराज मिश्र। उनका आदर्श ऊँचा और संकल्प पक्का है। उनकी लेखनी में ज़ोर है, साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त स्वास्थ्य और शृंगार, हास्य-मंजूषा, परिमल, हास्य-विनोद आदि इसके मुख्य स्तम्भ हैं। पत्र होनहार है। गेट-अप सुन्दर। वार्षिक ३॥) पृष्ठ संख्या ७२

• • •

जयाजी-प्रताप—वर्ष-गाँठ का अंक, १९३३; मूल्य १) जयाजी-प्रताप-कार्यालय, लश्कर, ग्वालियर।

इस पत्र में अङ्गरेजी और हिन्दी का सम्मिश्रण रहता है। इस वर्ष-गाँठ नंबर में भी आधे लेख अङ्गरेजी हैं, आधे हिन्दी। अंग्रेजी लेखों में प्रायः सभी पढ़ने-योग्य हैं। कई लेख तो ग्वालियर, उसके वर्तमान शासन और उसके व्यवसाय के विषय के हैं। गृह-निर्माण पर भी एक प्रकाश डालने वाला लेख है। बाघ-गुफाओं का सचित्र वृत्तान्त, जैनियों के समय का राज-दर्बारी जीवन, शिक्षा और नई जाग्रति, आदि लेख पठनीय हैं। 'हिन्दी-भाषा में भारतीय चित्र-कला का दिग्दर्शन' और 'संस्कृत-साहित्य के कुछ मुसलमान-भक्त' अच्छे लेख हैं। इस अंक में चार रंगीन और कितने ही सादे चित्र और कार्टून हैं। एक हास्य-रस की कहानी, और बच्चों के लिये मनोरंजक तुकबंदियाँ भी दी गई हैं। अंक संग्रह करने योग्य है।

हंस-वाणी

जीवन में घृणा का स्थान

निन्दा, क्रोध और घृणा यह सभी दुर्गुण हैं; लेकिन मानव-जीवन में से अगर इन दुर्गुणों को निकाल दीजिए, तो संसार नरक हो जायगा। यह निन्दा ही का भय है, जो दुराचारियों पर अंकुश का काम करता है, यह क्रोध ही है, जो न्याय और सत्य की रक्षा करता है और यह घृणा ही है, जो पाखंड और धूर्तता का दमन करती है। निन्दा का भय न हो, क्रोध का आतंक न हो, घृणा की धाक न हो तो जीवन विशृङ्खल हो जाय और समाज नष्ट हो जाय। इनका जब हम दुरुपयोग करते हैं, तभी ये दुर्गुण हो जाते हैं; लेकिन दुरुपयोग तो अगर दया, करुणा, प्रशंसा और भक्ति का भी किया जाय, तो वह दुर्गुण हो जायँगे। अन्धी दया अपने पात्र को पुरुषार्थ-हीन बना देती है, अन्धी करुणा कायर, अन्धी प्रशंसा घमंडी और अन्धी भक्ति धूर्त। प्रकृति जो कुछ करती है, जीवन की रक्षा ही के लिये करती है। आत्म-रक्षा प्राणी का सब से बड़ा धर्म है और हमारी सभी भावनाएँ और मनोवृत्तियाँ इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। कौन नहीं जानता कि वही विष, जो प्राणों का नाश कर सकता है, प्राणों का संकट भी दूर कर सकता है। अवसर और अवस्था का भेद है। मनुष्य को गन्दगी से, दुर्गन्ध से, जघन्य वस्तुओं से क्यों स्वाभाविक घृणा होती है? केवल इसीलिये की गन्दगी और दुर्गन्ध से बचे रहना उसकी आत्मरक्षा के लिये आवश्यक है। जिन प्राणियों में घृणा का भाव विकसित नहीं हुआ, उनकी रक्षा के लिये प्रकृति ने उनमें दबकने, दम साध लेनें या छिप जाने की शक्ति डाल दी है। मनुष्य विकास-क्षेत्र में उन्नति करते-करते इस पद को पहुँच गया है कि उसे हानिकर वस्तुओं से आप-ही-आप घृणा हो जाती है। घृणा का ही उग्र रूप भय है और परिष्कृत रूप विवेक। ये तीनों एक ही वस्तु के नाम हैं, उनमें केवल मात्रा का अन्तर है।

तो घृणा स्वाभाविक मनोवृत्ति है और प्रकृति-द्वारा आत्मरक्षा के लिये सिरजी गई है। या यों कहो कि वह आत्मरक्षा का ही एक रूप है। अगर हम उससे वंचित हो जायँ, तो हमारा अस्तित्व बहुत दिन न रहे। जिस वस्तु का जीवन में इतना मूल्य है, उसे शिथिल होने देना, अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारना है। हम में अगर भय न हो, तो साहस का उदय कहाँ से हो। बल्कि जिस तरह घृणा का उग्ररूप भय है, उसी तरह भय का प्रचंड रूप ही साहस है। ज़रूरत केवल इस बात की है कि हम घृणा का परित्याग करके उसे विवेक बना दें। इसका अर्थ यही है कि हम व्यक्तियों से घृणा न करके उनके बुरे आचरण से घृणा करें। धूर्त से हमें क्यों घृणा होती है? इसीलिये कि उसमें धूर्तता है। अगर आज वह धूर्तता का परित्याग करदे, तो हमारी घृणा भी जाती रहेगी। एक शराबी के मुँह से शराब की दुर्गन्ध आने के कारण हमें उससे घृणा होती है; लेकिन थोड़ी देर के बाद जब उसका नशा उतर जाता है और उसके मुँह से दुर्गन्ध आना बन्द हो जाता है, तो हमारी घृणा भी गायब हो जाती है। एक पाखंडी पुजारी को सरल ग्रामीणों को ठगते देखकर हमें उससे घृणा होती है; लेकिन कल उसी पुजारी को हम ग्रामीणों की सेवा करते देखें, तो हमें उससे भक्ति होगी। घृणा का उद्देश्य ही यह है कि उससे बुराइयों का परिष्कार हो। पाखंड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियों के प्रति हमारे अंदर जितनी ही प्रचंड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी। घृणा के शिथिल होने से ही हम बहुधा स्वयं उन्हीं बुराइयों में पड़ जाते हैं और स्वयं वैसा ही घृणित व्यवहार करने लगते है। जिसमें प्रचंड घृणा है, वह जान पर खेलकर भी उनसे अपनी रक्षा करेगा और तभी उनकी जड़ खोदकर फेंक देने में वह अपने प्राणों की बाज़ी लगा देगा। महात्मा गांधी इसीलिये अछूतपन को मिटाने के लिये अपने जीवन का बलिदान कर रहे हैं कि उन्हें अछूतपन से प्रचंड घृणा है।

• • •

साहित्य और कला में घृणा की उपयोगिता

जीवन में जब घृणा का इतना महत्त्व है, तो साहित्य कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता है, जो जीवन का ही प्रति-

बिम्ब है। मानव-हृदय आदि से ही सु और कु का रंगस्थल रहा है और साहित्य की सृष्टि ही इसलिये हुई कि संसार में जो सु या सुन्दर है, और इसलिये कल्याणकर है, उसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हो, और कु या असुन्दर, और इसलिये असत्य वस्तुओं से घृणा। साहित्य और कला का यही मुख्य उद्देश्य है। कु और सु का संग्राम ही साहित्य का इतिहास है। प्राचीन साहित्य, धर्म और ईश्वर-द्रोहियों के प्रति घृणा और उनके अनुयायियों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भावों की सृष्टि करता रहा। नवीन साहित्य समाज का खून चूसने वालों, रँगेसियारों, हथकण्डे-बाजों और जनता के अज्ञान से अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों के विरुद्ध उतने ही ज़ोर से आवाज़ उठा रहा है; और दीनों, दलितों, अन्याय के हाथ सताये हुओं के प्रति उतने ही ज़ोर से सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है। सम्भव है, वह भावुकता की तरंग में, और कठोर सत्य की ओर से आँखें बन्द करके संसार में क्रान्ति मचा देने का स्वप्न देख रहा हो; सम्भव है, जिन्हें वह दरिद्रता के कारण सहानुभूति का पात्र समझ रहा है, उनकी सारी बुराइयों को दुरवस्था और दरिद्रता के सिर मढ़ रहा है, वे इतने भोले-भाले प्राणी न हों; पर वह नवयुग का स्वर्ग-स्वप्न देखने में इतना मग्न है, कि इस समय उसे किसी बाधा-विघ्न की ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं है। लेकिन, उन कलाकारों का उद्देश्य क्या यह था, कि वे किसी व्यक्ति या समाज के प्रति घृणा फैलाएँ? वे व्यक्तियों के शत्रु नहीं हैं, न वे द्वेष या ईर्ष्या के कारण साहित्य की रचना करते हैं। वे उन परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के शत्रु हैं, जिनके हाथों ऐसे व्यक्ति उत्पन्न होते हैं। व्यक्तियों से उन्हें उतना ही प्रेम है, जितना अपने किसी भाई से हो सकता है। जिन सूदखोर महाजनों या मज़दूरों के पसीने की कमाई पर मोटे होने वाले मिल-मालिकों के प्रति वह अपनी कृतियों में ज़हर उगलता है, उन्हीं को संकट में देखकर वह उनकी सेवा करना अपना अहोभाग्य समझेगा। वह जानता है, कि ये गरीब खुद अपनी स्वार्थान्धता के हाथों दुखी हैं, और अपनी धन-लिप्सा के शिकार होकर गरीबों को सता रहे हैं। उसे उनसे सहानुभूति होती है; पर उन परिस्थितियों के साथ वे बिलकुल समझौता नहीं कर सकते, हो सकता है, उनमें कुछ ऐसे भी हों, जिन्हें सूदखोरों के हाथों कष्ट उठाने पड़े हों, सम्भव है, उन्हीं के हाथों उनका सर्वनाश हो गया हो; लेकिन अगर वह कलाकार है, तो उसमें इतनी क्षमा अवश्य होगी, कि वह व्यक्ति-विशेष पर दिल का गुबार निकालने न बैठेगा। हाँ, यह हो सकता है, कि सूदखोरी के प्रति उसकी लेखनी ज्यादा तीव्र और पैनी हो जाय। इन पंक्तियों के लेखक ही के विषय में एक कृपालु आलोचक ने यह आक्षेप किया है कि उसने अपनी रचनाओं में ब्राह्मणों के प्रति घृणा का प्रचार किया है। अव्वल तो उसे किसी ब्राह्मण के हाथों कोई कष्ट नहीं पहुँचा और मान लो किसी ब्राह्मण ने उस पर डिग्री करके उसका घर नीलाम करा लिया हो, या उसे सरे बाजार गाली दे दी हो, तो इसलिये वह समस्त ब्राह्मण-समुदाय का दुश्मन क्यों हो जायगा? जीवन में आदमी को सभी तरह के अनुभव होते हैं। प्रायः सभी समुदायों में उसके मित्र भी हो सकते और शत्रु भी, फिर वह किसी एक समुदाय को क्यों चुनकर उन्हीं के प्रति घृणा फैलायेगा? हाँ, चूँकि धर्म के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने वाले, श्रद्धा की आड़ में श्रद्धालुओं को नोचने वाले, गया में मुसलमानों और चमारों तक से पिण्डदान का संस्कार कराने वाले और नाना प्रकार से धर्म का पाखण्ड रचने वाले उस समुदाय के लोग हैं, जो दुर्भाग्यवश ब्राह्मण कहे जाते हैं; पर जो ब्राह्मणत्व से उतना ही दूर है, जितना नरक से स्वर्ग; इसलिये कोई लेखक, जो समाज में सद्व्यवहार और सद्धर्म और राष्ट्रीय-ऐक्य का राज देखना चाहता है, उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। कौन-सा इतना स्वाभिमानी भारतीय है, जो प्रातःकाल एक आदमी को अपने को ब्राह्मण बताकर भीख माँगते देखकर लज्जा से सिर न झुका लेगा। यह उस समुदाय को बदनाम करने वाले लोग हैं, जिन्होंने सच्चे जीवन और सच्चे विचारों की सरिता बहाई थी, जो हिन्दू-समाज के पथ-प्रदर्शक थे। उनका यह पतन! लेकिन यह कौन नहीं जानता कि वह ग़रीब ऐसी परिस्थितियों में पला है, जहाँ भिक्षा माँगना लज्जा नहीं। मेरा ख़याल है कि समाज में जितनी अनीति है, उनमें सबसे घृणित धार्मिक पाखंड और धूर्तता है। चोरी, बदमाशी, रिश्वत, दग़ा, झूठ, इन दुर्गुणों का किसी समाज-विशेष से संबंध नहीं। एक ज़माना

था, जब अधिकतर कायस्थ पटवारी और कानूनगो होते थे, वह भी बिहार और यू० पी० के पूर्वीय भाग में, शायद बुंदेलखंड में भी ; लेकिन, अब वह बात नहीं रही । इसलिये केवल कानूनगो और पटवारी कह देने से कायस्थ का बोध नहीं होता, न बनिया कह देने से किसी विशेष समुदाय का बोध होता है । अब तो जो दौरी-दूकान करते थे, वह पटवारी हैं, जो पटवारी थे वह दौरी-दूकान करते हैं । केवल पंडित या पुजारी ही ऐसा शब्द है, जिससे दुर्भाग्यवश ब्राह्मण का बोध हो जाता है, और यह कहना बड़ी दूर की कौड़ी लाना है कि जो इस पाखंडाचार के प्रति घृणा फैलाता है, वह ब्राह्मण जाति का द्रोही है । ब्राह्मणत्व की आड़ में यह पाखंडाचार देखकर जितनी ग्लानि इन पंक्तियों के लेखक को हो सकती है, उससे कहीं ज्यादा स्वयं उन्हें होती है, जो वास्तव में ब्राह्मण हैं । लेखक को अपने ५५ साला जीवन में ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं मिला, जिसने इस पाखंडाचरण को घृणा की दृष्टि से न देखा हो । लेखक की दृष्टि में ब्राह्मण कोई समुदाय नहीं ; एक महान् पद है, जिस पर आदमी बहुत त्याग, सेवा और सदाचरण से पहुँचता है । हरेक टके-पंथी पुजारी को, ब्राह्मण कह कर मैं इस पद का अपमान नहीं कर सकता । इस विकृत धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं, कितना राष्ट्रीय अहित हो रहा है, यह वर्णाश्रम स्वराज्य-संघ के हथकंडों से ज़ाहिर है । ऐसी असामाजिक, अराष्ट्रीय, अमानुषीय भावनाओं के प्रति जितनी भी घृणा फैलाई जाय, वह थोड़ी है ; केवल भावनाओं के प्रति, व्यक्ति के प्रति नहीं ; क्योंकि वर्णाश्रम धर्म के संचालक हमारे वैसे ही भाई हैं, जैसे आलोचक महोदय के ।

बस, इस विषय में कुछ और लिखने की ज़रूरत मैं नहीं समझता । मैंने अपनी पोज़ीशन बतला दी, अगर इस पर भी कोई सज्जन मुझे ब्राह्मण-द्रोही कहे जायँ, तो मुझे परवाह नहीं है, मैं उसे द्वेष और दिल का गुबार समझूँगा ।

इसी आलोचना में आलोचक महोदय ने दो-एक और मज़ेदार बातें कही हैं, मसलन यह कि मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें जो कुछ अच्छा है वह माल मशरूका है, जो कुछ बुरा है वह मेरा है, या यह कि मैंने दूसरों की खुशामद की है कि वे मुझे उपन्यास या औपन्यासिक सम्राट् कहें (और संभव है इस तरह की मेरी कोई दरख्वास्त आलोचक महोदय की सेवा में भी पहुँची हो) या यह कि मैं एक मित्र के आग्रह करने पर भी केवल इसलिये शान्ति-निकेतन नहीं गया कि मुझे स्वयं डा० रवीन्द्रनाथ ने नहीं बुलाया था और यह कि मुझे बंगाल का कोई कुत्ता भी नहीं जानता, यह सब बच्चों की-सी बातें हैं, जिनका मेरे पास कोई जवाब नहीं है। हाँ, इतना निवेदन करदेना चाहता हूँ कि आलोचक महोदय, या उनके कोई अन्य मित्र सम्राटई का मुकुट धारण करना चाहें, तो मैं बड़ी खुशी से उसे उनको भेंट कर दूँगा । उसके लिये उन्हें विशेष आन्दोलन और विद्रोह करने की ज़रूरत नहीं ! मैं दिल से तो नहीं चाहता कि अपना बहुमूल्य मुकुट उन्हें या उनके मित्रों को दे दूँ ; लेकिन यदि मेरे पास इस तरह का कोई डेपुटेशन आवेगा, तो अनिच्छा से ही सही ; पर ज्यादा हिचड़-पिचड़ न करूँगा, क्योंकि मैं समय की रफ्तार पहचानता हूँ और जानता हूँ कि इस डिक्टेटर-शिप के ज़माने में मुकुट कोई लुभावनी वस्तु नहीं है ।

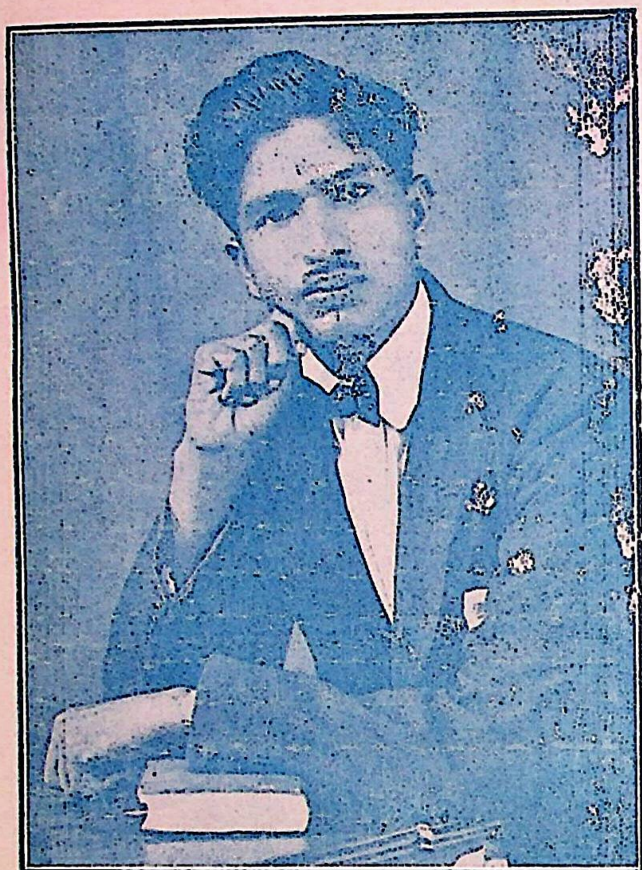
हंस





सम्पादक-प्रेमचन्द

विषय-सूची



'रूप-राशि' के लेखक सुकवि रामकुमार वर्मा, एम० ए०

(परिचय पृष्ठ ४४ पर देखिए)



वर्ष—४ : संख्या—४

जनवरी ... १९३४
पौष ... १९९०

वार्षिक मूल्य ... ३॥)
एक अंक का ... ।=)

मत पूछो

मत पूछो, यों निशिदिन क्यों मैं
रहती हूँ मतवाली - सी ;
क्यों मेरी आहें छिप मन में
जलती हैं दीवाली - सी ?
हे सखि ! क्यों तुम पूछ रही हो
किस ज्वाला में जलती हूँ ;
जीवन की अनमोल घड़ी क्यों
मैं झुलसाया करती हूँ ?
क्यों मैं तड़प-तड़प कर निशि दिन
जलती आहें भरती हूँ ;
कोयल की मृदु वाणी सुन मैं
कूक - कूक क्यों उठती हूँ ?
क्यों ढुल - ढुल खारे आँसू की
बूँदे गिरती रहती हैं ?
दृग - सीपी से निर्मल कोमल
मुक्ता बन कर झरती हैं ?
क्यों मधु टीसों के फूलों की
गूँथा करती हूँ माला ?

आह ! प्रतीक्षा किसकी करती
ले जीवन का मधु-प्याला ?
तुहिन-विन्दु बन कमल-दलों पर
जो मेरे दृग-जल विखरे ;
क्या वे चमक उठेंगे, री सखि !
बनकर नव मोती निखरे ?
क्यों मेरे हिय में बैठी है
छिप कर कब से पगली हूक ?
ज्वाला-सी जो जल उठती है
पाकर पीड़ा की लघु लूक ।
आह ! सजनि ! वह मेरे हिय की
जलती करुण - कहानी है ;
जिसमें छिपी हुई जीवन की
कसक - भरी नादानी है ।
व्यथा भरी मेरी कसकन में
किसका है मधुमय नाता ?
आह ! कौन है छिपा हुआ जो ,
नहीं सजनि ! जाना जाता ?

कमलाकुमारी

अम्माँ

लेखक—श्रीयुत ललितकिशोरसिंह, एम० ए०

जिस दिन महाजन ने संतसिंह की सारी ज़मींदारी नीलाम करा ली, उस दिन आशा का एक सूत्र बाकी था ; उन्तीसवाँ दिन पूरा होते ही वह भी टूट गया। संतसिंह महीने-भर सारे शहर की धूल छानते रहे ; पर रुपये का कहीं प्रबन्ध न हुआ। अंत में उन्हें हताश ही होना पड़ा।

बाप-दादों की जमींदारी, जाने कब से इस वंश में चली आरही थी। आज संतसिंह के हाथ उसकी कपाल-क्रिया हो गई। सिर पर इतने बड़े कलंक का टीका, हृदय में ऐसी कसक लेकर भला कोई जी सकता है ? संतसिंह का दिल ऐसा टूटा कि खाट की शरण लेनी पड़ी। डाक्टर, वैद्य की कोई तदबीर काम न आई। तीन महीने तक भीतर-ही-भीतर घुलते-घुलते, वे अपने कच्चे परिवार को अनाथ करके विदा हो गये।

संतसिंह की पत्नी रोहिणी असहाय हो गई। थोड़े दिनों तक तो उसने सोने-चाँदी के गहने, घर का सामान आदि बेच-बेच कर काम चलाया ; पर जहाँ आमदनी की कोई सूरत नहीं, वहाँ इस तरह कब तक चल सकता है। धीरे-धीरे दरिद्रता ने विकट रूप धारण कर लिया।

रोहिणी को अपने लिए इतना सोच न था, जितना अपने बच्चे मोहन के लिए। पैसे-दो-पैसे की चीज़ के लिए भी उसे तरसते देख माँ का कलेजा फट जाता था। फेरी वाले की 'मज़ा चूरन की पुड़िया' की टेर सुन जब मोहन ललचाई हुई निगाह से माँ की ओर देखता, तो माँ का जी चाहता कि वह मोहन के सामने से कहीं भाग कर अपनी आँखों के आँसू छिपाए। जिस दिन, महीनों से फ़ीस न देने से मोहन का नाम स्कूल से कट गया, उस दिन वह भविष्य के कारण भी निराश हो बैठी।

खाने-पीने का कष्ट, पहनने-ओढ़ने का कष्ट, उस पर आगे अँधेरा-ही-अँधेरा ! फिर पुरानी सुख-सम्पत्ति और वंश-मर्यादा की याद तो बिच्छू के डंक की तरह, उसे और भी पीड़ित किया करती थी। अपनी आँखों के सामने ही अपने बच्चे को दाने-दाने के लिए तरसते देख, उसका हृदय टूक-टूक हो जाता था। अस्तु, शोक-संताप से रोहिणी का शरीर जर्जर हो गया। आठों पहर अपने दिनों का उलट-फेर सोचते-सोचते वह पागल-सी हो चली।

परिवार की ख़रीदी हुई दाई अन्नदा न होती, तो रोहिणी कब की चल बसी होती। अन्नदा बीच-बीच में उसे ढाढ़स बँधाए जाती थी। कभी-कभी वह चिढ़ कर कहती—बहू, जो तुम सोच-सोच कर अपनी देह गला दोगी, तो मोहन का क्या हाल होगा ?

अन्नदा की चेतावनी से क्षण-भर के लिए रोहिणी सचेत हो जाती ; पर दूसरे ही क्षण दरिद्रता की चक्की में उसकी अन्तरात्मा तक पिसने लगती। फल यह हुआ कि इस दुनिया की सारी मोह-माया और बेटे मोहन की ममता उसे बहुत दिनों तक बाँध कर न रख सकी। एक दिन संध्या की धीमी-धीमी रोशनी में अन्नदा की गोद में मोहन को सौंप, वह भी पति की राह पर ही चल दी।

° ° °

मोहन का हाथ पकड़े हुए अन्नदा ने जाने कितने द्वार खट-खटाए ; पर सभी बन्द मिले। मोहन की दुरवस्था पर रोने वाले तो बहुतेरे थे ; पर उसे अपना कह कर गले लगानेवाला कोई न था। कई सम्पन्न सगे-सम्बन्धियों के यहाँ तो अन्नदा को ऐसा कटु अनुभव हुआ कि उसकी अन्तरात्मा तक हिल उठी, उसकी आँखों के सामने सम्पदा और विपदा अपने नंगे रूप में खड़ी हो गईं।

अन्नदा ने मोहन को उसके नाना की गोद में बैठाना चाहा। वे अपनी बेटी की याद करके फूट-फूट कर रोये। अन्नदा ने समझाया—इस छोटे बच्चे में अपनी बेटी को देखिए। आपके आसीस से जीता रहेगा, तो आपके दिल का दाग मिट जायगा।—अन्नदा की बातों से उन्हें कुछ सान्त्वना मिली। मोहन के दिन चैन से कटने लगे।

एक दिन अन्नदा ने उनसे कहा—बाबूजी, अब मुझे छुट्टी दीजिए। मोहन को छोड़ा तो नहीं जाता ; पर उसे यहाँ से बढ़कर आराम और कहाँ मिलेगा ? आपके साथ

रहेगा, तो पढ़-लिख कर आदमी हो जायगा। मेरा जी न मानेगा, तो बीच-बीच में देख जाया करूँगी।

यह सुनते ही नानाजी का मुँह भारी हो गया। गला साफ करके वे बोले—दाई, भला यह कैसे हो सकता है? मोहन की नानी रहती, तो मैं यह भार खुशी से उठा लेता; पर अब तो घर में बहुओं का राज है। जाने किसे बुरा लगे, किस-किस से झगड़ा-झंझट हो! तुम मोहन को अपने साथ ही लेती जाओ।

अन्नदा थोड़ी देर अवाक् खड़ी रही। उसकी समझ में न आया कि उसका क्या उत्तर दे। फिर धीमी आवाज में बोली—बाबूजी, मैं इसे साथ तो लेती जाऊँगी; पर वहाँ यह क्या खाकर रहेगा?

'मैं जब तक जीऊँगा, मोहन की मदद करता रहूँगा दाई! वह भी तो मेरे ही खून का अंश है; पर यहाँ रखने में बहुओं का मुँह जोहते रहना पड़ेगा। अब इस उम्र में मुझसे यह काम नहीं हो सकता। इसके अलावा, मोहन से अपने बाप-दादों का घर-द्वार मत छुड़वाओ।'

इन बातों से अन्नदा झुँझला उठी। जहाँ मोहन बच्चों के साथ बैठा गप्पें लड़ा रहा था, वहाँ वह गई और मोहन का हाथ पकड़कर बोली—नानाजी के घर बहुत सुख पा लिया मोहन! अब अपने घर चल। मोहन भौंचक-सा अन्नदा के पीछे-पीछे हो लिया।

जैसे-तैसे करके कुछ दिन और कटे। इस बार अन्नदा लाचार होकर मोहन की फूफी के घर चली। जिस समय वह मोहन को साथ ले घर से रवाना हुई, उसका जी भर आया। उसने सोचा—जिसके ब्याह में मोहन के दादा ने हजारों रुपये फूँक दिये, जिसे हजारों का दान-दहेज दिया, उस के घर आज मोहन टुकड़ों का भिखारी होकर जा रहा है। भगवान् यह दिन किसीको न दिखाए।

मोहन को फटे-चिथड़ों में कंगाल की भाँति अपने सामने देख सरस्वती विकल हो उठी; मोहन को खींच कर छाती से चिपटा लिया। फूफी के आसुओं से मोहन की सारी देह भींग गई। मोहन की भी हिचकी बँध गई। अन्नदा जी-भर कर रोई। इस मिलन को जिसने देखा, उसी ने आँसू बहाये।

कुछ शांत होने पर अन्नदा भरे हुए गले से बोली—बीबी, तुम्हारे बाप-दादों के वंश में यह एक टिम-टिमाता हुआ दिया रह गया है, जो इसे अपने आँचल से ढँक कर हवा के झोंके से बचाओ, तो यह निसानी रह जाय। नहीं तो कोई पुरखों को एक बूँद पानी देनेवाला भी न रहेगा।

सरस्वती इतना सुन, 'हाय भैया, हाय भैया' कह विलाप करने लगी। अन्नदा ने सरस्वती के आँसू पोंछते हुए कहा—अब भैया का सोच करने से क्या होगा, भैया को कौन लौटा सकता है? मोहन का मुँह देखो बीबी। दैव इसे बचाएगा, तो तुम्हारे बाप-दादों का घर फिर से बसेगा।

सरस्वती ने मोहन को अपनी गोद में बैठा लिया और शांत होकर बड़े प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

यहाँ आते समय अन्नदा का कलेजा धड़क रहा था—न जाने कैसा बर्ताव हो! शायद निराश ही होना पड़े! मोहन के नाना के व्यवहार ने उसके मन में एक अविश्वास-सा पैदा कर दिया था; पर सरस्वती के प्रेम ने उसका संदेह दूर कर दिया। फिर भी जाते समय सरस्वती से मिल कर जाने का साहस न हुआ। वह एक दिन वहाँ से चुपके निकल भागी। एक दाई से कहला दिया कि वह जरूरी कामसे घर चली गई।

• • •

किसी ने बाहर से पुकारा—अन्नदा दाई घर में है?

अन्नदा ने 'कौन है?' कह कर द्वार खोला। सामने एक अपरिचित व्यक्ति दीख पड़ा। अन्नदा जिज्ञासा से उसे निहार ही रही थी कि वह भीतर आ धम-से जमीन पर बैठ गया और अपने-आप बड़-बड़ाने लगा—ओह, कैसा गाँव है! कहीं घंटों चक्कर लगाते-लगाते घर का पता लगा! दाई, तुम भी लंका के छोर में रहती हो।

अन्नदा ने उत्सुकता के साथ पूछा—भाई, तुम आ कहाँ से रहे हो?

'मुझे भूल गई दाई? मैं किसुनगढ़ का रहने वाला हूँ। मैंने तो तुम्हें वहाँ देखा था।'

अन्नदा घबराकर बोली—किसुनगढ़? वहाँ का समाचार तो अच्छा है?

'अच्छा ही है। बहूजी ने कहा था कि दाई का घर बाबू के बँगले के पास ही है; पर मैं तो ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गया।'

अन्नदा बड़े संकट में पड़ी थी। साफ़-साफ़ कुछ पूछने का साहस न होता था और वहाँ का समाचार जानने की बेकली भी थी। उसने झुँझला कर कहा—भाई, अब तो घर का पता लग गया! बोलो, कैसे आए?

'थोड़ा सुस्ता लूँ, तो सब कहूँगा।'—यह कह वह आसन मार वहीं पर बैठ गया। वह दम लेकर फिर कहने लगा—'बाबू का बँगला देख कर तो अब रोना आता है दाई। पहले की सोभा कहाँ चली गई? अब तो जैसे.दरिद्दर का बास हो।'

कहार की बात सुन अन्नदा और भी घबाराई। उसका दिल बैठा जाता था। थोड़ा सहम कर उसने पूछा—बचा तो अच्छा है?

कहार जैसे नींद से चौंक पड़ा, बोला—कौन-सा बचा?'

'मेरे मालिक का बचा, मोहन!'

'ओह, बाबू के बारे में पूछती हो? उन्हें तो बँगले पर बैठाकर तुम्हारे घर की खोज में निकला था।'

अन्नदा की जान-में-जान आई। लम्बी साँस लेकर उसने पूछा—शरीर से तो बचा अच्छा है?

'शरीर से खूब अच्छा है दाई! इस उमर में इतना मज़बूत लड़का तो मैंने देखा ही नहीं था। टेसन से तीन कोस पैदल मेरे साथ चला आया, पट्ठा जरा भी कहीं न सुस्ताया।'

अन्नदा की आँखें जैसे चक्कर काटने लगीं। वह कहार से झल्लाकर बोली—तीन कोस से बच्चे को पैदल लिये आ रहे हो और अभी तक कहा नहीं। तुम कैसे ना समझ हो जी! चलो अभी मेरे साथ।

अन्नदा ने कहार का हाथ पकड़ खींचकर घर से बाहर निकाला और जल्दी-जल्दी द्वार में ताला डाल बाबू के बँगले की ओर दौड़ पड़ी।

बँगले पर पहुँचकर अन्नदा ने देखा कि मोहन बाहर की दालान में धूल-गोबर के बीच एक छोटी-सी गठरी पर बैठा है। मोहन को देखते ही वह हाथ फैलाकर दौड़ पड़ी, जैसे गाय अपने बिछुड़े हुए बछड़े की ओर दौड़ती है। उसने मोहन को खींचकर अपनी गोद में बैठा लिया और आँखों में आँसू भरकर बोली—ओह, टेसन से यहाँ तक आते-आते बचा कैसा थक गया है! पाँव कैसे लाल हो गये हैं!

मोहन को अन्नदा की बात पसंद न आई। उसने इतनी-सी उम्र में ऐसी बहादुरी का काम किया, अन्नदा को इस पर बाग-बाग हो जाना चाहिए था—शाबाशी देनी चाहिये थी। उलटे वह आँसू बहाने लगी। मोहन ने गर्व से माथा ऊँचा करके कहा—नहीं अम्माँ, मैं क्यों थकने लगा। यह बुड्ढा तो बीच में बैठा भी था; पर मैं कहीं न बैठा। अरे इतनी दूर क्या, मैं चाहूँ तो इतनी दूर और चला जाऊँ।

अन्नदा ने जैसे मोहन की बात पर ध्यान ही न दिया। वह कहने लगी—आखिर तो गँवार ठहरा। एक बैलगाड़ी ही भाड़े पर ले लेता, तो क्या बिगड़ता! मैं पैसे यहाँ दे देती।

प्यार का पहला उफान ख़तम होते ही वह जल्दी से पानी ले आई, खाट वहीं दालान में डाल दी। मोहन को खाट पर बैठा कर उसका कुर्ता खोला, पाँव मल-मल कर धोये और बग़ल में बैठ, बालों में उँगलियाँ फेर-फेर कर पंखा झलने लगी।

मोहन ठंडा हुआ, तो अन्नदा ने पूछा—बचा, अभी तो एक ही महीना हुआ था। इतनी जल्दी क्यों चला आया? तूही ने हठ किया होगा। तुझे भला अम्माँ के बिना कब कल पड़ने लगी!

'नहीं अम्माँ, मैंने हठ नहीं किया था। तेरी याद तो बहुत आती थी; पर तूने तो मुझे धमका दिया था कि यहाँ से जाने का हठ न करना।'

'तो फिर यहाँ आने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?'

'फूफी ने कहा कि तुम्हारा यहाँ बहुत दिनों तक रहना ठीक नहीं है।'

अन्नदा चौंक कर बोली—क्यों, तेरे वहाँ रहने से क्या बिगड़ता था?

'उन्होंने कहा कि यहाँ के बच्चे बड़े दुष्ट हैं। तुमसे झगड़ेंगे, मार-पीट करेंगे, जली-कटी सुनाएँगे और जो उन्होंने उलाहना दिया कि तुम यहाँ मुफ़्त की रोटी तोड़ने आए हो, तो भला मैं कैसे सहूँगी? सो अच्छा यही है कि तुम अपने ही घर जाकर रहो। अन्नदा वहाँ है है। मैं बीच-बीच में कुछ खर्च-वर्च भेज दिया करूँगी।'

अन्नदा गुस्से से लाल हो उठी, उसने नथुने फुलाकर कहा—इतनी सारी बातें तुझे रटा डालीं।

मोहन अपने पाठ की सफलता पर प्रसन्न होकर बोला—अम्माँ, फूफी ने कहा था कि ऐसे ही दाई को समझा देना, इसी से मैंने एक-एक बात याद रखी।

अन्नदा गुस्से में भरकर बोली—मैं सब समझ गई! इस गठरी में क्या लाया है?

मोहन अन्नदा के हृदय की गति नहीं समझ रहा था; इसलिए बड़े उत्साह के साथ बोला—एक तो इस धोती की जोड़ी है, एक डोरिए का कुर्ता है और थोड़ा च्यूड़ा और मिठाई।

इतना सुनते ही अन्नदा तेज़ी से उठी और भीतर से एक फटी-सी धोती ला मोहन को पहना दी। पीली धोती खोल ली, उस धोती को भी गठरी में बाँध, कहार को बुला उसके हाथ में दे दी और कहा—देखोजी, यह गठरी अपनी मालकिन को दे देना और कह देना कि अन्नदा ने आपका उपदेश समझ लिया। कहीं धोती-कुर्ते के लिए भी उनके बच्चे उलाहना न दें! इससे अच्छा है कि इन्हें भी वे अपने बच्चों के लिए ही रख छोड़ें। अन्नदा की देह मोहन के बाप-दादों के अन्न से ही पली है—इसने उनका बहुत नमक खाया है। जब तक यह जीती रहेगी, तब तक मोहन भीख न माँगेगा।

कहार भौंचक-सा रह गया। उसने घबराहट से कहा—यह तो बाबू का सामान......

'बस, बस, बोलने का कुछ काम नहीं। इसे अपने साथ ले जाओ। भूख लगे, तो गठरी में च्यूड़ा और मिठाई बँधी है, खा लेना—इतना कह अन्नदा ने कहार को बाहर कर दिया।

इधर मोहन का चेहरा सूख गया। रंगीन धोती खुल गई। डोरिए का कुर्ता भी गया, जो मोहन को कितना पसंद था। अभी च्यूड़ा और मिठाई कितने चाव से खाता! सब उलट-पलट हो गया। अम्माँ ने यह क्या किया?

मोहन का चेहरा देखते ही अन्नदा का गुस्सा जाने कहाँ गायब हो गया। उसने प्यार से मोहन को अपनी गोद में खींच लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने बड़े ही कोमल शब्दों में कहा—उदास मत हो बेटा, तुझे धोती-कुर्ता सब लाये देती हूँ। पराये के दिये हुए से कितने दिन कटेंगे?

मोहन को ढारस बँधाकर अन्नदा ने उसे खिलाया-पिलाया। फिर अपने घर जा बाँस की पिटारी से चाँदी का कड़ा बाहर निकाला। उसे ले बनिए की दूकान पर गई और गिरवी रख पाँच रुपए उधार ले आई। शाम को वह मोहन के साथ बाज़ार गई। मोहन ने अपनी पसन्द से धोती ख़रीदी, कुर्ते का कपड़ा ख़रीदा और दर्जी के हवाले किया। आज मोहन की खुशी की कोई सीमा न थी। निराशा के बाद जो सफलता मिलती है, उसमें बड़ा सुख होता है।

• • •

मोहन के परिवार की सेवा-टहल करके अन्नदा ने जो कुछ सम्पत्ति इकट्ठी कर रक्खी थी, धीरे-धीरे सब समाप्त हो गई। गहने गये, बरतन गये, कपड़े गये। सिर्फ़ घर-द्वार रह गया। फिर भी पेट की समस्या हल न हुई।

पर, अन्नदा को सिर्फ़ पेट ही की चिन्ता न थी; उसके बड़े-बड़े मनसूबे थे। वह मोहन को स्कूल में दाखिल कराने की भी सोच रही थी। मनसूबा पूरा करने की क्षमता भी उसमें है। उसके दिल में जिस बात की धुन समाती है, वह जब तक पूरी न हो जाय, उसे चैन नहीं पड़ती। उसने सोचा कि शहर में कहीं उसे अच्छी नौकरी मिल जाय, तो सब काम सिद्ध हो। बस, नौकरी की टोह में वह शहर में चक्कर लगाने लगी।

बहुत परेशानी उठाने के बाद एक सेठजी के यहाँ नौकरी मिल गई। वहाँ उसे काम बहुत करना पड़ता था। और तनख्वाह थी—पाँच रुपये सूखे; पर अन्नदा अपने काम में इतनी चतुर और ऐसी हँसमुख थी कि सेठजी, सेठानी-जी और उनके बच्चे, सब उससे प्रसन्न रहते थे। दस दिन काम करके ही उसने सेठजी को इतना सन्तुष्ट कर लिया कि उसे कुछ रुपये पेशगी मिल गये। उन रुपयों से अन्नदा ने मोहन का नाम स्कूल में लिखवा दिया।

मोहन का नाम लिख जाने के बाद अन्नदा ने सेठजी से सारा दुखड़ा रो सुनाया। स्कूल के सेक्रेटरी के घर जा कर मिन्नतें कीं। हेड-मास्टर के पावों पड़ी और जब तक मोहन की फीस माफ न हो गई, उनका पल्ला न छोड़ा।

अन्नदा को इतने से ही संतोष न हुआ। यह देख कर कि मोहन फटी धोती और मैला कुरता पहन, नंगे-पाँव स्कूल जाता है, उसके कलेजे में टीस-सी उठा करती थी। उसने देखा था कि जल-पान के अवकाश में छोटे-छोटे बच्चे कैसे उछलते कूदते, शोर मचाते, गाना गाते अपने-अपने कमरे से निकलते और खोंचे वाले के पास दौड़े जाते हैं; हाथ में मिठाइयाँ ले-ले आपस में कैसे चुहल और हँसी-खेल करते हैं। वह सोचती—उस समय उसका मोहन मुँह सुखाये कहीं एक ओर खड़ा रहता होगा; सभी के मुँह की ओर लालसा-भरी दृष्टि से देखता होगा और फिर आँखें नीची कर लेता होगा। कोई उदार साथी अपने संग मिठाइयाँ खाने को कहता होगा, तो 'अभी भूख नहीं है' 'मुझे मिठाइयाँ अच्छी नहीं लगती' 'मेरा मन अच्छा नहीं है' ऐसे कितने ही बहाने करके टाल देता होगा। अन्नदा ने ही तो उसे इतना संयम सिखाया है। बातों को सोच-सोच कर अन्नदा का अन्ततम विदीर्ण हो जाता था।

एक साल किसी तरह कट गया। मोहन ने अपनी लगन और साधुता से अपने शिक्षकों को प्रसन्न कर लिया। अब उनकी भी दया-दृष्टि इस पर रहने लगी।

इधर सेठजी को छोटे-छोटे बच्चों को अक्षराभ्यास कराने के लिए एक मास्टर की आवश्यकता हुई। सेठजी से यह बात सुन अन्नदा सेठानी के पीछे पड़ गई। उसने कहा—सेठानीजी, मोहन-सा गंभीर लड़का तो मुझे कहीं ढूँढ़े नहीं मिलता। मैं कुछ उसका पक्ष लेकर नहीं बोलती, मालकिन! आप स्कूल के मास्टरों से पूछ देखें। सब यही बात कहेंगे। फिर आपके यहाँ उसे सरन मिल गई, तो उसके दिन फिर जायँगे। इतना उपकार तो आप करही दीजिए। भगवान् आप का भला करेगा।

सेठानीजी गंभीर होकर बोलीं—अनजान लड़के को घर में रखना बड़ा जोखिम का काम है दाई! जाने कैसा सुभाव हो, कैसी लत हो। सेठ-साहूकारों का घर है; सौ-दो-सौ तो इधर-उधर पड़े ही रहते हैं।

अन्नदा का मुँह लाल हो गया। बड़े ही परिश्रम से अपने शब्दों को कोमल करके उसने कहा—सेठानीजी, आज वह मुझ-सरीखी छोटी जाति वाली दाई की गोद में पल रहा है; पर है वह बड़े घराने का बच्चा। उसके बाप-दादों ने लाखों-लाख फूँक दिये और वह आज द्वार-द्वार का भिखारी हो रहा है, यह परमात्मा की लीला है। पर, यह तो कोई मुझ से शर्त ले ले कि वह चाहे भूखों मर जायगा; पर कोई ओछा काम न करेगा।

सेठानीजी अन्नदा के जोश के सामने कुछ दब-सी गईं और झेंपकर बोलीं—नहीं, नहीं, मेरा यह कहना नहीं है। मैं क्या उसके घराने को जानती नहीं? बात यह है कि तुम्हारा मोहन तो अब लड़का नहीं रहा। भले आदमियों के घर में इसका भी ख़याल रखना होता है। बच्चों के लिए तो बुड्ढे मास्टर ही ठीक होते हैं।

अन्नदा के भीतर उथल-पुथल मच रही थी। दुर्दैव आज उसे कैसी-कैसी बातें सुना रहा है। उसका हृदय उबला पड़ता था; पर मुँह को बड़े यत्न से दबाये थी। अन्त को उसने बड़े ही कष्ट से, पर ऊँची आवाज़ में कहा—सेठानीजी, जिस दिन मोहन की बुद्धी ऐसी भ्रष्ट हो जायगी, उस दिन उसे ठोकरें खाने को जीता न छोडूँगी। उसे भी ज़हर दे दूँगी और आप भी ज़हर खालूँगी।

इतना कह आँसू छिपाने के लिए वह झाड़ू हाथ में ले, दूसरी ओर चली गई।

सेठानीजी उस समय तो अन्नदा का मुँह ही निहारती रहीं; पर उनके दिल पर अन्नदा की बातों का असर अवश्य हुआ। उन्होंने सेठजी से कह-सुन मोहन को अपने यहाँ रख लिया।

अन्नदा को ज़रा दम लेने की फ़ुर्सत मिली, उसने मनमें सोचा—विपद की एक मंज़िल तो तै कर ली, अब आगे का भगवान् मालिक!

• • •

मोहन के इन्ट्रेंस पास होने का समाचार सुन अन्नदा फूली न समाई। पल-भर में सारी पड़ोसिनों को यह समाचार सुना आई। पड़ोस के भलेमानसों में एक-दो ही ऐसे थे, जो अन्नदा की प्रशंसा किया करते और कभी-कभी इसे सहायता भी दिया करते थे, और तो हँसनेवाले ही थे। कुछ लोग तो यह कह कर इसकी निन्दा भी किया करते थे कि अन्नदा लड़के को अंग्रेज़ी पढ़ाकर ख़राब कर रही है; अभी से किसी काम में लगा देती, तो पाव-भर अन्न तो पैदा कर लेता। ऐसी बातों से अन्नदा जल-भुन जाती थी। इसी

से आज उसे मोहन के शुभचिन्तकों का हर्ष देखकर उतना ही सुख मिल रहा है, जितना निंदकों का झेंपा हुआ चेहरा देख कर। उसने मोहन से उत्साह के साथ कहा—बेटा, जाओ, बड़े-बूढ़ों के पाँव छू आओ। मोहन तुरत कुर्ता-टोपी पहन घर से निकल पड़ा। अन्नदा का हृदय गौरव और गर्व से भर उठा। अन्नदा के आँसू उसकी आँखों में छलछला आये। वह आप-ही-आप बोल उठी—देखूँ, अब अन्नदा के मनसूबों पर कौन हँसता है। अपने-आप को कुवेर समझने-वाले अपने बेटों को मिडिल तक भी न पढ़ा सके और मेरा मोहन इन्ट्रेंस पास हो बैठा।

पर, समस्या आगे की है। मोहन कॉलेज में पढ़ नहीं सकता, खर्च कहाँ से आवे? फिर अन्नदा कॉलेज का उतना मूल्य भी नहीं समझती। वह तो इंट्रेंस को ही विद्या की अवधि जानती है। अन्नदा ने कचहरी के बाबुओं की आमदनी की बात सुनी है। इसी से वह चाहती है कि मोहन को कचहरी में ही कुछ काम मिल जाय, तो अच्छा हो। अपने घर का काम भी देखेगा और रुपये भी खूब पैदा करेगा। इसी अभिप्राय से मोहन से उसने कहा—बेटा, अब तो बहुत पढ़ चुके, अब कहीं अच्छी-सी नौकरी ढूँढ़ लो, जिसमें चैन से दिन कटें, तुम्हारा सुख देख मैं भी सुखी हो सकूँ।

नौकरी ढूँढ़नी पड़ेगी, यह बात कान में पड़ते ही मोहन के चेहरे का रंग फीका पड़ गया। इस काम के लिए वह अपने-आप को एक दम अयोग्य और असमर्थ समझता था। यदि मोहन केवल दरिद्र ही होता, तो अपनी लालसा, अपनी आवश्यकताएँ निःसंकोच सबके सामने प्रकट करता; पर दरिद्रता के साथ खानदानियत का ख़याल उसे कभी सिर न उठाने देता था—किसी से आँखें न मिलाने देता था। लड़कपन से ही पराधीनता की चक्की में पिसते-पिसते, दूसरों की झिड़कियाँ सहते-सहते, उसके स्वभाव में सकपकाहट और शंका घुस गई थी, उसका दिल कभी उभरता न था। उसके भीतर उत्साह और बल का लेश भी न रह गया था। उस पर, अन्नदा के आँधी की नाईं वेगवान प्यार ने उसके पावों को बलहीन कर दिया था। अब तो वह बिना सहारे के खड़ा भी न रह सकता था।

बचपन से ही मोहन के अभाव को, उसकी लालसाओं को अन्नदा ने, जानें कैसे-कैसे पूरा किया। मोहन उसकी अद्भुत क्षमता देख-देख अचम्भे में पड़ जाता था। वह सोचता था—जिस दिन अम्माँ नहीं, उस दिन मैं भी नहीं। भला अम्माँ के बिना मैं क्या खाऊँगा? कहाँ जाऊँगा, कैसे जीऊँगी; पर आज अन्नदा नौकरी ढूँढ़ने को कहती है। इसमें मोहन को अपनी अम्माँ का अन्याय और कुछ अत्याचार-सा मालूम हुआ।

मोहन का निराश मुख देख अन्नदा ने फिर कहा—बेटा, तुम्हारे बाबूजी के जान-पहचान के बहुत-से लोग हैं। उनसे भेंट करो, बातें करो, नौकरी के लिए कहो। ऐसे ही आज न कल नौकरी मिल जायगी। यह कौन-सी बड़ी बात है।

मोहन ने भराई हुई आवाज में कहा—अम्माँ, मैं तो किसी को जानता नहीं, कहाँ-कहाँ जाऊँ? मोहन की अकर्मण्यता का पहला आभास पाकर अन्नदा के हृदय में कुछ ठेस-सी लगी। वह अपने भाव को दबाकर यह कहती हुई वहाँ से खिसक गई—अच्छा, अभी ऐसी जल्दी क्या है? सब ठीक हो जायगा।

अन्नदा मोहन के आगे से टल तो आई; पर उसके सिर में चक्कर आने लगा। उसने मन में सोचा—अरे, यह तो जीवन भर की माया लग गई। मैं तो सोचती थी कि मोहन को किसी रोज़गार में लगाकर अपनी बाकी जिन्दगी राम-भजन में बिताऊँगी; काशी जा बैठूँगी। अब इस दुनिया से तो जी ऊब गया; पर देखती हूँ कि मोहन तो बिना अम्माँ के एक दिन भी नहीं काट सकता, हे भगवान्! अम्माँ भला कब तक साथ रहेगी—सोचते-सोचते अन्नदा व्याकुल हो उठी।

पर, अन्नदा विघ्न-बाधा के सामने से भागना नहीं जानती। कठिनाइयों को सामने देख उसका उत्साह दूना हो जाता और कठिनाइयों पर विजय पाकर उसका चेहरा वैसे ही खिल उठता है; जैसे—शत्रु को परास्त कर किसी वीर का।

मोहन को पाल-पोसकर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया। अब उसके लिए नौकरी भी अन्नदा को ही ढूँढ़नी पड़ेगी, इस बात की ओर कभी उसका ध्यान ही न गया था। इसीसे पहले झके में तो उसके हाथ-पाँव फूलने लगे; पर

दूसरे ही क्षण वह सम्हल गई और अपनी स्वाभाविक धुन के साथ मोहन के लिए नौकरी ढूँढ़ने में लग पड़ी।

एक महीने में उसने सारे शहर को मथ डाला। नौकरी का पता कैसे लगाया जाय और उसके लिए सिफ़ारिश कैसे पहुँचाई जाय—ये सारी बातें उसने बात-की-बात में सीख लीं। अपने मालिक सेठजी की उसने बहुतेरी खुशामदें कीं। उनकी मदद से कई रईसों के घर उसका प्रवेश हुआ। वहाँ भी उसने हाय-तोबा मचाया। मोहन के लिए अन्नदा ने कोई बात उठा न रक्खी। वे-वे काम किये, जो अन्नदा के एकदम प्रतिकूल थे, जो वह जान जाने पर भी न करती। अन्नदा जिस काम में धुन से हाथ लगाए वह सिद्ध न हो, यह सम्भव नहीं। बहुतेरी ठोकरें खाने के बाद कलक्टर साहब के आफ़िस में उसने मोहन को एक किरानी की जगह पर बहाल करा दिया।

मोहन जिस दिन पहले-पहल आफिस के लिए रवाना हुआ, उस दिन उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानो यह जानकर भी कि उसे एक हाथ भी तैरना नहीं आता, कोई उसे अथाह जल में खींचे लिए जा रहा है।

आफ़िस के बड़े बाबू हरिशंकरसिंह मोहन को बहुत मानने लगे। इसके कई कारण कहे जाते हैं। एक तो मोहन उनकी बिरादरी का है, दूसरे, वह बिना अपनी टाँग अड़ाए, बड़े बाबू के इशारे पर काम करता है; यहाँ तक कि उनकी बेगार में ही उसका बहुत समय बीत जाता है। तीसरी और सबसे बड़ी बात यह थी कि बड़े बाबू को अपनी लड़की के लिए एक वर की तलाश थी। बहुत परेशानी उठाने पर भी अब तक उन्हें कोई मनचाहा वर न मिला था। हरिशंकर बाबू के, इस लड़की को छोड़, और कोई संतान न थी। इसी से वे ऐसा दामाद चाहते थे, जो बेटा बनकर रहे, जो इनके अधिकार में रहे, उन्हीं के घर रहे। मोहन का सीधापन और सुशीलता देख, उनका मन उसकी ओर खिंचा। जब उन्हें यह पता लगा कि मोहन के घर और कोई नहीं है; एक दाई ने इसे पाला-पोसा है, तब तो उन्होंने मन में सोचा कि उनकी कन्या के लिए इससे उपयुक्त वर मिल ही नहीं सकता। इसी अभिप्राय से उन्होंने एक दिन मोहन को अपने घर दावत दी। वहीं उन्होंने दबी-ज़बान ब्याह की बात भी छेड़ी; पर मोहन ऐसा झेंपा कि सिर ही न उठाया। लाचार उन्हें बीच ही में बात छोड़नी पड़ी।

उन्हें यह मालूम हो गया कि मोहन के सम्बन्ध में कुछ बातें करनी हों, तो मोहन की अम्माँ, अन्नदा दाई के पास जाना होगा। उन्होंने अन्नदा के बारे में बहुत-सी बातें सुनीं; सुनकर एक बार अन्नदा को देखने की इच्छा हुई।

एक दिन—जिस दिन छुट्टी थी—हरिशंकर बाबू मोहन के घर पहुँचे। मोहन तो हक्का-बक्का-सा रह गया; पर अन्नदा ने बड़े प्रेम से उनकी आव-भगत की। चलते-चलते उन्होंने, एकांत पाकर, अन्नदा से ब्याह की चर्चा की। सुनते ही अन्नदा का हृदय हाथों उछल पड़ा। वह नहीं समझती थी कि मोहन के भाग्य इतनी जल्दी पलटेंगे। उसकी धारणा थी कि कहारिन की गोद में पलना मोहन के ब्याह में बहुत बड़ा बाधक होगा। इसी से वह कभी-कभी बड़ी चिन्ता में पड़ जाती थी; पर आज बड़े बाबू अपने-आप मोहन के ब्याह के लिए कह रहे हैं। हर्ष और आश्चर्य से उसके गले से बात न निकली। जब हरिशंकर बाबू ने एक बार फिर वही बात कही, तो अन्नदा गद्गद् कंठ से बोली—मोहन आप ही का लड़का है, बाबूजी। उसे अनाथ जानकर आप अपनालें, तो उसके भाग जग उठें; और मुझे तो मुँह-माँगी मुराद मिल जाय। बाबूजी, आप ही लोगों के आसीस से आज मोहन को इतना बड़ा देख रही हूँ। नहीं तो मुझ दरिद्र कहारिन की क्या बिसात!

अन्नदा का प्रेम, निमग्नता और उत्सर्ग देख हरिशंकर बाबू जैसे किसी दूसरे ही लोक में पहुँच गये। उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—अन्नदा! तुझे दाई कौन कहता है? तू तो साक्षात देवी है!

आवेश के साथ कही हुई इस बात को सुन अन्नदा अपने को सम्हाल न सकी, भाव के आघात ने उसके हृदय में भी भाव की तरंगे पैदा कर दी। वह एकाएक हरिशंकर बाबू के पाँवों पर गिर पड़ी और आँसुओं की झड़ी के बीच गिड़गिड़ाकर बोली—मोहन को अपना बेटा बना लो बाबूजी, खुशी से बना लो; पर इस दुखिया अन्नदा से उसे एकदम मत छीन लेना। उसके बिना मैं जी न सकूँगी!

हरिशंकर अवाक्! ऐसा हृदय तो उन्होंने कभी नहीं देखा! इसकी विशालता के आगे हरिशंकर बाबू का सिर

आप-से-आप झुक गया। प्रेम के प्रवाह में बहते-बहते उन्होंने कहा—डरो मत अन्नदा ! तुम ही मोहन की माँ हो, और जब तक जीओगी, रहोगी। इतना ही क्यों, स्वर्ग की देवी होकर भी तुम मोहन पर आँचल डाले रहोगी, मेरी क्या शक्ति है कि मोहन को तुमसे छीन कर अपना दख़ल कर लूँ ?

अन्नदा को जैसे वरदान मिल गया ! उसके चेहरे पर सुख और सन्तोष की रेखाएँ झलक पड़ीं।

हरिशंकर बाबू जब घर की ओर चले, तो रास्ते में उनके पाँव ठीक नहीं पड़ते थे। आँखों के सामने अन्नदा का वह मुखड़ा नाच रहा था, जो प्रेम के आवेश से गुलाबी हो गया था और जिसके गालों पर आँसुओं की धारा बह रही थी। अपनी दुलारी इकलौती बेटी के लिए वे जैसा चाहते थे, वैसा ही वर मिल गया, इसकी प्रसन्नता तो होनी ही चाहिए ; पर आज तो अन्नदा के स्थूल और सूक्ष्म स्पर्श के हर्षातिरेक से उनका सारा प्राण भर उठा था, रह-रहकर रोमाञ्च-सा हो आता था। वह तो बार-बार यही सोचते थे—इस घोर कलिकाल में ऐसा हृदय ! अन्नदा सत्युग का संस्कार लेकर एक अदने कहार के घर पैदा हुई है !

० ० ०

मोहन का ब्याह हो गया। अन्नदा का कोई हौसला बाकी न रहा ! तिलक-दहेज की कोई बात न थी। दोनों ओर का खर्च हरिशंकर बाबू के मत्थे रहा। अन्नदा ने ब्याह की तैयारी के लिए जो-जो फर्माइशें कीं, हरिशंकर बाबू ने उनको पूरा किया। अन्नदा ने मोहन के सगे-सम्बन्धियों को बुलाया और विदाई के समय थान, धोती, साड़ी, रुपये आदि से उनका सम्मान किया। हरेक से हाथ जोड़-जोड़ कर विनती की—

'मोहन को भूल मत जाइएगा। आप ही मोहन के अपने हैं। मैं तो न तीन में न तेरह में, सेवा-टहल करने वाली दाई हूँ ! आप ही के असीस से मोहन के दिन फिरे हैं।'

बहू घर आई। उसका रूप देख अन्नदा सुध-बुध भूल गई। ऐसा रूप, ऐसी गठन ! मोहन ने कौन-सा पुण्य किया था कि ऐसा अनमोल रतन पा गया ! भगवान् की माया अपरम्पार है।—यह सोचते-सोचते अन्नदा रो पड़ती थी। बहू को कहाँ सुलाए, कहाँ बैठाये, कैसे रखे ? उसे कैसे आराम पहुँचाये, गोद में बैठाये रहे कि छाती से चिपकाये रहे—अन्नदा रात-दिन इसी चिन्ता में रहती। इसी चिन्ता में उसे अपार सुख मिलता। वह बार-बार मोहन से कहती—देख मोहन, बहू से कभी कोई कड़ी बात न कहना। नहीं तो लक्ष्मी रूठ जायगी। धन्य तेरे भाग, जो ऐसी बहू मिली।

मोहन सिर नीचा कर लेता ; मन-ही-मन सोचता—भला मैंने कब, किससे कड़ी बात कही है, जो अम्माँ चेता रही है।

मोहन का सौभाग्य देख-देख कर अन्नदा की छाती फूल उठती। सोते-जागते, उठते-बैठते हर घड़ी उसके चेहरे पर उमंग की झलक बनी रहती। पड़ोसिनों के आगे बहू की प्रशंसा करते उसका जी न भरता। यहाँ तक कि कोई-कोई ऊबकर कह बैठती—अभी तो नई दुलहिन है दाई। आगे भी ऐसाही सुभाव बना रहे तब न ! बहुएँ तो मर्दों का इसारा पाकर बिगड़ती हैं। अन्नदा इसका जवाब बड़ी लापरवाही से देती—नहीं जी, ऐसा भी कहीं हो सकता है, मेरा मोहन जैसे सैकड़ों में एक है, मेरी बहू भी वैसीही हज़ारों में एक है।

वर्तमान के हर्षोल्लास से अन्नदा का मन इतना भर गया है कि भविष्य की कोई कल्पना वहाँ घुस ही नहीं पाती। उसे बस एक ही भावना सदा बनी रहती है—बहू को किसी प्रकार कष्ट न हो। इसी से पड़ोस की हमजोली युवतियाँ बहू के पास अन्नदा के मारे बहुत देर तक बैठ नहीं पातीं। कोई नाते का देवर अधिक हँसी-चुहल नहीं कर सकता। बहू नहाने-खाने-सोने आदि नित्यकर्म में आलस्य नहीं करने पाती।

पर, किसी के हृदय को हर कोई नहीं पहचान सकता, इसी का रोना है। भामिनी माँ-बाप की इकलौती बेटी थी, इसी से बड़ी स्वतन्त्रता से पली थी। वह सदा अपने मन की ही किया करती थी। जब जी में आया खाया ; जब जी में आया खेला। सोना-जागना सब अपने मन का था। इसी से अन्नदा का चारों ओर से घेरे-घेरे फिरना उसे अखरता था। वह सोचती—कहाँ से यह बला मेरे गले पड़ी। यह तो हर घड़ी मेरे सिर पर सवार रहती है। न

किसी को सहूलियत से पास बैठने देती और न किसी से आदमी की तरह बात-चीत करने देती है।

धीरे-धीरे भामिनी की परेशानी कुढ़न में बदल गई। वह मुँह से तो कुछ नहीं बोलती; पर अब अन्नदा की बातों की कोई परवाह न करती। जब जैसा जी में आता, तब तैसाही करती। अन्नदा किसी से कहती—अब बहुत रात गई, बहू को सोने भी दोगी या नहीं, तो भामिनी इशारे से उसे और थोड़ी देर बैठने को कहती। अन्नदा से बहू की गति-विधि छिपी न थी; पर वह यह सोचकर अपने मन को समझा लेती थी कि बहू अपने माँ-बाप की लाड़िली है, इसी से इतनी लापरवाह है। अपनी माँ की बातें भी ऐसे ही टाल दिया करती होगी।

अन्नदा की मानसिक सुख-शान्ति में अधिक विघ्न नहीं पड़ने पाया। एक ही महीने बाद हरिशंकर बाबू भामिनी को अपने घर ले गये।

० ० ०

छः महीने पलक मारते बीत गए। अन्नदा को बहू के बिना घर सूना दीख पड़ने लगा। उसने मोहन से कहा—बेटा, कब तक अपने हाथों से रसोई बनाते रहोगे? बहू को जल्दी ले क्यों नहीं आते? छः महीने तो मायके रह चुकी। अब अपना घर भी सम्हालना चाहिए न।'

बहू के आते ही घर-द्वार फिर से चमक उठा और अन्नदा के अन्तस्तल में सुख और वात्सल्य की लहरें उठने लगीं।

जब से भामिनी मायके से आई, उसका रंग एक-दम बदला हुआ है। अब बात-बात पर अन्नदा का अपमान करने में उसे बड़ा सुख मिलता है। अन्नदा का भ्रम भी धीरे-धीरे दूर हो गया; पर क्या करे, एक तो उसका स्वभाव ऐसा कि वह कहीं से हार मान कर भाग नहीं सकती। दूसरे, मोहन के प्रेम का बन्धन तोड़े नहीं टूटता। अब तो भामिनी मुँह खोलकर झिड़कियाँ भी सुनाने लगी। कभी-कभी तो वह ऐसी कड़वी बात कह बैठती कि अन्नदा जी मसोस कर रह जाती। अन्नदा भीतर-ही-भीतर क्षोभ-दुःख-क्रोध से जलती; पर मुँह से आह न निकालती कि कहीं मोहन पर इसकी छाया न पड़ जाय। वह जानती है कि इस रोग की दवा मोहन के पास नहीं है।

बात बढ़ते देख अन्नदा ने सोचा कि मोहन के घर रहना है, तो बहू से किनारा खींच कर ही रहना अच्छा है। पर घर की दाई ठहरी, दिन भर में एक-दो बार तो उलझ पड़ने का अवसर आही जाता है।

एक दिन तो भामिनी ने साफ-साफ कह दिया—दाई होकर रहना हो, तो हमारे घर रहो; नहीं तो अभी घर से निकल जाओ।

पर अन्नदा ने गुस्से को दबा कर कहा—बहू, जिस दिन मोहन के मुह से इतनी बात निकलेगी, उस दिन से मेरी सूरत यहाँ नहीं देखोगी। कहने को तो कह दिया; पर जी में आया कि अब हद हो गई। मोह-माया छोड़कर अब अलग हो जाना ही उचित है। वह इतना सोच ही रही थी कि सामने मोहन आ पहुँचा। आते ही उसने पूछा—किस बातका झगड़ा है अम्माँ?

अन्नदा का गुस्सा गायब हो गया। उसने शांत हो कर कहा—कुछ नहीं बेटा! बहू को एक बात समझा रही थी—इतना कह वह वहाँ से टल गई।

मोहन ने भामिनी से डरते-डरते कहा—अम्माँ से तुम क्यों उलझा करती हो?

भामिनी ने तुनुक कर जबाब दिया—मैं क्या उलझती हूँ! मैं एक मामूली-सी दाई की ढिठाई नहीं सह सकती।

मोहन को कुछ क्रोध चढ़ आया। उसने ऊँचे स्वर में कहा—वह दाई नहीं है, मेरी अम्माँ है!

भामिनी हाथ नचाकर बोली—अम्माँ है, तो जाकर उसके पाँव पूजो, मैं तो उसे पाँव के नीचे ही रखूँगी; चाहे तुम्हें अच्छा लगे या बुरा।

इतना कह भामिनी कमरे के भीतर चली गई। मोहन ने खेल में हारे हुए बच्चे की तरह आखिरी हमला किया। उसने चिल्लाकर कहा—तुम ऐसा नहीं करने पाओगी।

पर, यह वार भी खाली गया। भामिनी ने वैसेही चिल्लाकर जवाब दिया—यह रोब यहाँ नहीं जमने का, कहीं और जाकर जमाना।

मोहन को अपनी दुर्बलता स्पष्ट दीखने लगी। वह ताव-पेच खाता हुआ बाहर चला गया।

कुछ दिन और कटे—बुरी तरह कटे, न तो भामिनी ही की कुढ़न कम हुई और न अन्नदा ही अपने पुराने संस्कार

मिटा सकी। अन्नदा के बहुत बच-बच कर चलने पर भी नित्य एक-दो बार झौड़ हो जाया करती थी।

पर एक दिन बात बहुत बढ़ गई। अन्नदा ने रसोई का सब सामान ठीक कर रखा; पर बहू ने अभी तक बिस्तरा न छोड़ा। आसरा देखते-देखते जब अन्नदा ऊब गई, तो जाकर भामिनी से बोली—बहू, क्या आज रसोई न बनेगी? देखो तो, कितना दिन चढ़ आया!

अन्नदा की बात कान में पड़ते ही भामिनी जल उठी। उसने सोए-सोए ही चिल्ला कर कहा—नहीं बनेगी, नहीं बनेगी! तुम क्यों मुझे बार-बार तंग करने आती हो?

मोहन के ऑफिस जाने का समय हो रहा है। उस पर बहू का यह जवाब! अन्नदा को असह्य हो उठा। वह भी कुछ झल्ला कर बोली—तो मोहन क्या भूखा ही कचहरी जायगा?

भामिनी ने खाट पर से बाघिन की तरह कूद कर कोने में पड़ी हुई झाडू उठा ली और चिल्लाकर बोली—दूर जा सामने से, नहीं तो अभी इसी झाड़ू से खबर लूँगी!

अन्नदा चट लौट पड़ी। उसकी धमनियों में जोर से रक्त बहने लगा, फेफड़े फूलने लगे। वह बाहर जा बड़ी कठिनाई से अपने आँसुओं को रोक कर मोहन से बोली—बेटा, अब मुझे छुट्टी दे दो। मैं बुड्ढी हो गई; अब मुझसे काम नहीं होता।

मोहन का दिल धड़क उठा। आज कोई गहरी चोट लगी है! वह व्याकुल होकर बोल उठा—अम्माँ, मैंने तो कुछ नहीं कहा, मुझसे क्यों रूठी जाती हो!

अन्नदा ने सूखी हँसी के साथ कहा—अरे, तू क्या पागल हुआ है, भला मैं क्यों रूठने लगी! जिन्दगी-भर क्या तेरी ही टहल करती रहूँ? कुछ दिन भगवान् की टहल करने दे!

मोहन अब अपने को न सम्हाल सका और क्रोध और जोश से लड़खड़ाते हुए शब्दों में बोला—नहीं अम्माँ, मैं सब समझ गया। मैं अभी इसकी दवा किये देता हूँ।

इतना कह, वह भीतर की ओर बढ़ा। अन्नदा ने लपक कर उसकी बाँह पकड़ ली और गिड़-गिड़ाकर कहा—यह क्या करते हो बेटा! घर में उपद्रव मत खड़ा करो।

मोहन रुका, अन्नदा ने उसके पाँव छूकर, उसी तरह गिड़गिड़ा कर फिर कहा—तेरे पाँव पड़ती हूँ, मेरे लाल! बहू से कुछ मत कहना। मेरे सिर की सौगन्ध, बहू ने मुझसे कुछ नहीं कहा है। तू उसे मत छेड़ना।

मोहन विमूढ़-सा खाट पर गिर गया और रुआसा होकर बोला—तूने मुझे कहीं का न रखा, अम्माँ। कहाँ से यह डायन मेरे गले में बाँध दी।

अन्नदा अब एक क्षण भी वहाँ न ठहर सकी। उसके हृदय में जाने कैसा महाभारत मच रहा था। वह जल्दी से वहाँ से निकल भागी।

माँ का हृदय कितना दुर्बल होता है!

• • •

अन्नदा बीच से हट गई; फिर भी मोहन और भामिनी एक दूसरे के पास-पास न आसके। मोहन सचमुच भामिनी से डरता था और उससे दूर-ही-दूर रहना चाहता था; पर जितना ही वह डरता था, उतना ही भामिनी का मिज़ाज भी ऊपर को चढ़ता जाता था।

एक रोज़ मोहन को खबर मिली कि अन्नदा बीमार है। वह छिपे-छिपे उसके घर गया, उसके बगल में बैठकर आँसू बहा आया। अन्नदा ने समझा कर कहा—बेटा, अब यहाँ मत आया करना, वह बुरा मानेगी। उसको अपने मान का बड़ा ख़याल रहता है बेटा! भले मानसों को ऐसा ही चाहिये। तुम दोनों प्राणी एक दूसरे को प्यार करते रहोगे, तो मैं भी सुख से मर सकूँगी, नहीं तो यह कलंक मेरे साथ ही जायगा।

मोहन लौट कर घर आया, तो देखा कि उसके अन्नदा के घर जाने की खबर भामिनी को मिल गई है। उसने आँखें तरेर कर मोहन से कहा—देखो, मैं कई बार चेता चुकी और एक बार फिर चेता देती हूँ, कि उसके घर गये तो अच्छा न होगा!

मोहन भी इसके लिए पहले ही से तैयार था। उसने सिर ऊँचा करके कहा—अच्छा क्या न होगा! मुझे क्या तुम्हारे हुक्म पर ही चलना होगा?

'मत चलो हुक्म पर, अपने मन की ही करो। मैं भी अपने मन की करूँगी, तमाशा दिखाकर दम लूँगी!'

मोहन ने तुनुक कर कहा—तुम क्या तमाशा दिखाओगी, ज़रा सुनूँ?

'तुम्हारे घर-द्वार पर थूक कर, जहाँ जी चाहेगा चल दूँगी, तुम्हारे मुँह पर कालिख पोत दूँगी। मैं तुम्हारे अत्याचार और बाबूजी के उपदेश से ऊब उठी। अब मैं और नहीं सह सकती।'

बात निशाने पर बैठी। मोहन को और झगड़ने का साहस न हुआ। भींगी बिल्ली की तरह भामिनी के सामने से सकपकाता हुआ बाहर चला गया।

• • •

भामिनी के डर से अन्नदा के घर जाने की हिम्मत तो मोहन की नहीं पड़ती थी; पर वह अन्नदा का हाल लोगों से पूछ लिया करता था। सुखिया नाइन, जो अन्नदा के घर आया-जाया करती थी, मोहन को नित्य उसका हाल सुना जाया करती थी।

सुखिया भी कई दिनों से दिखाई नहीं पड़ती है। औरों से भी अन्नदा की बीमारी का कोई हाल न मालूम हुआ। इससे आज मोहन बहुत ही बेचैन है। वह कभी-कभी सोचता है कि चाहे जो हो, वह अन्नदा को एक बार जरूर देखने जायगा। भामिनी के जी में जो आये करे।

वह इसी उधेड़-बुन में था कि सुखिया सामने से आती हुई दिखाई दी। मोहन ने आतुर होकर सुखिया से पूछा—अम्माँ अब कैसी है?

सुखिया ने गम्भीर होकर कहा—बाबू, अम्माँ तो अब घड़ी-पहर की मेहमान है। आज तो उसका कंठ भी बन्द हो गया। अब होस-हवास भी नहीं के बराबर है।

मोहन चौंक-सा पड़ा। आँखें फाड़ कर उसने कहा—अरे! यह हाल कब से हो गया? तुमने पहले खबर क्यों न दी?

'बाबूजी, दाई ने अपने सिर की सौगन्ध देकर मना कर दिया था कि बाबू से मेरा हाल मत कहना। मरने के बाद खबर देना। वह किसी से मेरी लास गंगा में फेंकवा देंगे।'

मोहन अकुला कर उठ खड़ा हुआ। न जूता लिया न कुर्ता; जैसे बैठा था वैसे ही उठ कर अन्नदा दाई के घर की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ अन्नदा खाट पर निश्चेष्ट पड़ी, बड़े कष्ट से आखिरी साँसें ले रही थी। बुझी हुई-सी आँखें कभी-कभी खुल पड़ती थीं और वह बड़ी चाह से एक बार चारों ओर घूर लेती थी; जैसे—किसी को ढूँढ़ रही हो।

मोहन भीतर जाते ही 'अम्माँ, अम्माँ' कह कर रो पड़ा और दौड़कर मरणासन्न अन्नदा की देह से लिपट गया। मोहन का स्पर्श पाते ही बुझती हुई अन्नदा, जैसे फिर एक बार बल उठी। उसने अपनी बलहीन बाहों से मोहन को पकड़ लिया। उसके कंठ से कुछ ध्वनि निकली, जो अस्पष्ट होने पर भी मोहन के अन्तस्तल में प्रवेश कर गई। मोहन अन्नदा की छाती में मुँह छिपाये जी-भर कर रोया—बिसुर-बिसुर कर रोया; पर सुनने वाला कौन था? उसने एक बार सिर उठा कर पुकारा—अम्माँ!

पर, अम्माँ कहाँ?

वह तो इतनी दूर निकल गई, जहाँ से मोहन उसे लौटा नहीं सकता!

नैराश्य-मग्न

१

नाविक! इस जर्जर तरणी को
खेने का कुछ काम नहीं;
ले जाओगे इसे कहाँ तुम,
इसका कोई धाम नहीं।

२

देख रहा हूँ दूर क्षितिज पर
वह धूमिल रेखा कब से;
निकट न आई, वहीं खिंची है
खेते आते हो जब से।

३

आशा त्यागो, हाथ रोक लो,
इस सागर का पार नहीं।
पार खोजते नहीं मिला तो
कहीं गई मँझधार नहीं।

४

आओ फेनोज्ज्वल शय्या पर
दोनों का हो साथ शयन;
बुद्‌बुदमय जीवन से, बुद्‌बुद—
जीवन का हो जाय मिलन।

५

फिर अनन्त तक बहनेवाली
पा प्रवाहिनी का अंचल;
कभी किसी विधि तो चूमेंगे
कूल इष्ट का कोमल तल।

कमलाप्रसाद अवस्थी 'अशोक'.

शिक्षित स्त्री-समाज

लेखक—श्रीयुत श्रीप्रकाश जैतली

मुझे विश्वास नहीं कि कोई पत्र या पत्रिका मुझे निम्नलिखित चंद लाइनों को लिखने और तत्सम्बन्धी विचार प्रकट करने का अवसर देगी; परन्तु फिर भी इस कटु सत्य को, जो सम्भव है, किसी हद तक कुछ असर करे, लिखने का साहस कर रहा हूँ। आज-कल जो कुछ भी शिक्षा और जागृति स्त्री-समाज में दृष्टिगोचर होती है, उस सब का श्रेय पुरुष-समाज को है और जिसे सुधारवादी पुरुष-समाज एहसान समझ कर नहीं; वरन अपना कर्तव्य—और वह भी एक महान् कर्तव्य—समझ कर, कर रहा है। इतना ही नहीं पुरुष-समाज का यह उन्नतिशील भाग इस कार्य में स्वयं अपने—जिसे यदि विशद-रूप में देखा जाय, तो सारी जाति तथा राष्ट्र के—उत्थान का एक प्रशस्त मार्ग तथा अनुपम साधन समझने में अदम्य उत्साह का अनुभव करता है। यह निश्चय ही सत्य तथा यथार्थ बात है।

परन्तु फिर भी हमारे स्त्री-समाज की कुछ वह बातें, जिन्हें हम कभी उनकी ओर से शिकायत के रूप में सुनते हैं, कम नहीं होती और न उनके लिये कोई प्रयत्न ही उस ओर से दिखाई पड़ता है। यद्यपि स्त्रियाँ—हम शिक्षिता-स्त्रियों की बात कहते हैं—यदि चाहें और उसके लिये प्रयत्नशील हों, तो यह सब बातें केवल यादगार की बातें ही रह जायँ तथा महिला-समाज को फिर ऐसा अवसर न मिले कि फिर कभी उनकी ओर से इस प्रकार की बे-सिर-पैर की बातें पैदा हों।

सबसे पहले एक ऐसी प्रथा का प्रसंग है कि जिसका स्त्री-शिक्षा और हमारे देश के व्यावहारिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है और वह है—पर्दा। पुरुष-समाज ने तो स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था कर दी। हम देखते हैं, सरकार ने भी इस विषय में हर प्रकार की सहायता दी। अनेक शिक्षित स्त्रियाँ डाक्टर हैं, वकील हैं, मैजिस्ट्रेट हैं, प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्या हैं और पुलीस में भी गवर्नमेंट ने मौका देने की व्यवस्था की है; परन्तु हम देखते हैं कि इतना सब होने पर भी स्त्रियाँ जहाँ-की-तहाँ हैं। सबसे प्रथम उनके विद्यार्थी जीवन की परिस्थितियों का अवलोकन कीजिये।

लड़कियों के छोटे-से-छोटे स्कूलों से लेकर बड़े-बड़े कॉलेजों तक, जहाँ जाइये, आपका स्वागत करने को महिलाओं की ओर से प्रबन्ध है! फाटकों पर लिखा है—'मर्दों को आने की सख्त मुमानियत है!' यह शिक्षिता स्त्रियों की व्यवस्था है। पर्दे का अन्त करने की कैसी अनोखी तरकीब है। अब बताइये, बेचारा पुरुष-समाज क्या करे? इस पर मज़े की बात तो यह है कि यदि आप अन्दर जाकर देखें, तो सुशिक्षिता देवीजी, जो यूनीवर्सिटी की डिग्री-धारिणी होंगी, खड़ी अपनी छात्राओं को बड़ी ओजस्वी भाषा में 'पर्दा विषय की बुराइयाँ' विषय पर समझा रही होंगी।

यही नहीं, वह महिलाएँ जो अपने समाज में Advanced या अधिक आगे बढ़ी हुई समझी जाती हैं और जो चुने हुए सुधारकों की कमेटियों में राय देतीं तथा अपने-अपने कॉलेजों में वाद-विवाद-सभा में Co-education (सह शिक्षा) पर लम्बा व्याख्यान झाड़ती हैं; जब कभी किसी सार्वजनिक सभा में पहुँचती हैं, तो या तो Dias या वक्तागण के आसन पर अधिकार जमातीं या फिर अन्य अधकचरी तथा पर्दा-प्रथा को तलाक न दे सकने वाली बहनों के बीच में बड़ी अकड़ से जा विराजती हैं, उस समय उनमें अंग्रेज महिलाओं की हिम्मत तथा आजादी का अभाव, उनकी शिक्षा को ध्यान में रखते हुए ऐसा खटकता है; जैसे—हैट पर घूँघट।

आजकल इन शिक्षिता बहनों ने अपनी कम पढ़ी और पर्दानशीन बहनों में अपना प्रभुत्व और रोब कायम करने का एक अजीब तरीका निकाला है। वह है, पर्दा-क्लबों की स्थापना। इन क्लबों की शाइस्ता तालीम के बाद यह उम्मीद की जा सकती है कि यदि प्रयत्न किया जाय, तो फिर वही पर्दा-क्लब कुछ दिनों में अतिरिक्त और Social (सामा-

जिक) सुधारों के साथ-ही-साथ पर्दा-निवारक-संघों में परिणित हो सकते हैं ; मगर वह तो तब हो सकता है, जब हमारी शिक्षिता बहनें, जो इन क्लबों की कर्णधार हैं, इसे मद्दे-नज़र रखकर उसके लिये कोशिश करें।

हमारी वह बहनें जो पश्चिमीय सभ्यता के आधार पर शिक्षा पा रही हैं—और जिन्होंने स्कूलों और कॉलेज़ों में रहकर फैशन को अपनाने में होड़ लगा रक्खी है—उन चटक-मटक वाली बहनों में इतनी हिम्मत नहीं कि अपनी शिक्षा से कोई विशेष लाभ उठावें, अपने दिलों को इतना मज़बूत बनावें, कि यदि उनकी कमज़ोरी के विज्ञापन, मर्दों की मनाही के साइन बोर्डस उतार देने पर, यदि कभी कोई अशिष्ट पुरुष उन तक पहुँचने का प्रयत्न करे, तो वह उसे ठोकर मार कर निकाल दें।

परन्तु हाँ, यह शिक्षिता बहनें अपने जीवन की कुछ बातें पहले से ही तै कर लेती हैं और उनके साधन न जुटने पर अपने भाग्य को कोसती और अपने गार्हस्थ्य-जीवन में एक कमी का अनुभव करती हैं। इसका कारण होता है—उनकी इस सारहीन शिक्षा का प्रभाव। बात यह होती है कि वह एक Extreme पर पहुँचने का स्वप्न देखती हैं। और फलतः वह वर्तमान रीति-नीति के विपरीत बग़ावत या क्रान्ति करना चाहती हैं ; परन्तु वह इन क्रान्तिकारी विचारों का अन्त, एक समझदार व्यक्ति की भाँति कभी भी सोचने का कष्ट नहीं उठातीं और व्यावहारिक जीवन से बहुत दूर रहती हैं। उनकी शिक्षा ही इसका कारण नहीं है ; बल्कि इसका कारण है शिक्षा-पद्धति और अगर कहा जा सके, तो एकांगी वातावरण।

उनकी यह वर्तमान शिक्षा-पद्धति, उन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं कराती ; वरन् उनके दिल में ऐसे भावों को जन्म देती है, जो यदि विस्तृत रूप से देखे जायँ और उनका पूरा होना सम्भव हो, तो वर्तमान संसार की प्रगति ही बदल जाय। बात यह है, कि उनका ध्येय है—पुरुष-समाज से जीवन, संग्राम में हथियार रखाकर उनके द्वारा चालित सभी विभागों पर स्वयं शासन करना। वह चाहती हैं कि शिक्षिता होने के कारण उन्हें, गृह-प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध न रखना पड़े। हाँ, यदि उनका पति रोटियाँ पकाने को तैयार हो, तो वह रोटियाँ बिलवा भले ही दें। उनका विचार तो पुरुष जाति की भाँति आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना, या Economic Slavery से निकल भागना है और समान अधिकार प्राप्त करना है, गोकि उनका यह मार्ग ग्रहण करना उनकी भूल है ; क्योंकि एक सुगृहणी के रूप में उन्हें इस कष्ट-साध्य मार्ग पर चले बिना ही वह सब अधिकार प्राप्त हैं। और फिर यह संसार की प्रगति तथा इतिहास देखने से असम्भव ही प्रतीत होता है। इस विषय में कृष्णकान्तजी मालवीय के यह शब्द बड़े उपयुक्त हैं, जिनसे समान अधिकार वाली बात पर अच्छा प्रकाश पड़ता है—

'किसी स्त्री का यह कहना कि पुरुष ऐसा करते हैं, मेरा भाई ऐसा करता है और इसलिए मैं भी वैसा ही करूँगी, मूर्खता होगी, प्रथा की पत्थर की दीवार के साथ सिर टकराना होगा और सर्वनाश के सिवा इन बातों का उसके लिये और कोई भी नतीजा नहीं होगा।.........यह पुरुष-निर्मित न्याय हो, सो बात नहीं है। मेरी समझ में प्रकृति की इच्छा, आदेश और नियम भी कुछ ऐसा ही मालूम होता है ; अगर प्रकृति के प्रबन्ध पर गौर कर किया जाय, तो यह दिखाई देता है, कि पुरुष ने प्रकृति की सहायता प्राप्त करने पर ही ऐसा नियम बना दिया है।'

वह आगे चलकर एक उदाहरण पेश करते हैं—

'एक स्त्री और पुरुष का साथ होता है। संसर्ग का फल स्त्री वहन करती है। बच्चे को पेट में नौ मास वह धारण करती है। प्रसव-वेदना के कष्ट को वह सहन करती है, बच्चे को वर्ष-भर दुग्ध वह पिलाती है, उसके पालन-पोषण का समस्त भार उस पर रहता है और पुरुष को इन कामों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, उसे कोई कष्ट भी नहीं सहना पड़ता, साथ ही वह स्वतंत्र घूमता रहता है। तुम्हीं सोचो, जब प्रकृति का ही यह एक तर्फा प्रबन्ध है, तो फिर पुरुषों का रोना हम क्या रोयें !'

महिला-संसार आज अपने पुराने स्थान से कई गुना आगे बढ़ चुका है और उनमें शिक्षा की भी कमी उस हद तक नहीं रह गई है, जो अब से कुछ वर्षों पूर्व थी ; अतः उन्हें अब अपना भला-बुरा, ऊँचा-नीचा सोचकर इस शिक्षा के मैदान में अग्रसर होने की आवश्यकता है। यदि महिलाएँ अपनी शिक्षा की पद्धति नहीं बदलतीं, तो आगे

क्या होगा, यह दूरदर्शी लोगों से—चाहे वह पुरुष हों चाहे स्त्री—छिपा नहीं है।

कहा जाता है, कि पढ़े-लिखे पुरुष हल चलाने, घास काटने से क्यों परहेज करते हैं, फिर पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ रसोई बनाना, बच्चों की सफ़ाई करना, घर का प्रबंध करना इन बातों में क्यों समय बितावें? परन्तु जैसा ऊपर कहा है, ज़रा व्यावहारिक (Practical) जीवन की ओर भी हमें देखना चाहिये। आज पुरुष-समाज में, जिसे हम शिक्षित कहते हैं, बेकारी ने किस बुरी तरह से अधिकार जमाया है; अतः अपने देश की हालत देखते हुए, अपने सामाजिक नियमों को ध्यान में रखते हुए हम अपनी शिक्षिता बहनों से प्रार्थना करते हैं कि वह इन शिकायतों पर पहले बहुत गम्भीरता पूर्वक विचार करें, मनन करें और तब अपना कार्य-क्रम निश्चित करें। हाँ, यहाँ एक बात और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है; क्यों कि उसका सम्बन्ध भी सोलहो आने हमारी महिलाओं से ही है और वह है, उनकी पुत्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में। इसके प्रथम उन्हें विचारना यह है कि वह अपनी पुत्रियों को पश्चिमीय स्त्रियों की भाँति क्लर्क और टेलीफोन-गर्ल बनाना चाहती हैं या आदर्श गृहिणी। हमारी समझ में साधारणतया लड़कियों के लिये कॉलेज की शिक्षा अनावश्यक है। उन स्त्रियों को छोड़कर जो अविवाहित रहना चाहें अथवा जो असाधारण प्रतिभाशालिनी हों, मिल्टन और शेक्सपियर रटने से कोई लाभ नहीं। कॉलेज की शिक्षा का कठिन परिश्रम, उनके शरीर-संगठन तथा भविष्य माता-जीवन के लिये बड़ा कठिन तथा हानिकर है; परन्तु इन विचारों को भी कार्यरूप में परिणत करना स्त्री-समाज पर ही निर्भर है; क्योंकि स्त्री-शिक्षा के इस युग में पुरुष-समाज अपने गार्हस्थ-जीवन में इन विषयों में स्वतंत्र नहीं। यह कोई छिपी हुई बात नहीं है।

आज-कल एक बात और सुनाई पड़ती है, वह भी स्त्री-स्वातंत्र्य की द्योतक है, वह है श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की निम्न-लिखित चौपाइयों के खिलाफ विद्रोह की आवाज़—

'वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना, अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना, नारि पाव यमपुर दुख नाना'

अब हमें देखना यह है, कि यदि विवाहित दम्पती में से पति अन्धा हो जाय, या कोई ऐसे रोग से ग्रसित हो जाय, जो असाध्य होते हुए भी वर्षों का किस्सा हो, तो पत्नी का क्या कर्तव्य है? क्या उसे छोड़ दिया जाय, या यदि पत्नी सम्पन्न है, तो उसे (पति को) अस्पताल में नर्सों के हवाले कर दिया जाय और पत्नी अधिक-से-अधिक उसे दूसरे-चौथे देख आया करे? क्योंकि भारतीय सभ्यता के अनुसार पति के प्रति पत्नी को ओर से या पत्नी के प्रति पति की तरफ से ऐसा व्यवहार होना अपमानजनक है। क्या भारतीय नारी, अपनी प्राचीन संस्कृति पर लात मार, सामाजिक नियम, लौकिक-व्यवहार तथा गार्हस्थ जीवन के पवित्र सम्बन्ध को एक ओर रख कर कभी ऐसी बात ध्यान में ला सकती है? फिर क्या बात है, फिर स्त्री-स्वातन्त्र्य की वह क्रान्तिकारी तथा अपरिपक्व बुद्धि-जनित बात कहाँ रह जाती है? हाँ, हमारी शिक्षा का प्रभाव होना चाहिये, हमारी Morality (चरित्र) पर। हमारा आदर हमारे प्राचीन नियमों, प्राचीन धार्मिक शृंखलाओं के प्रति और भी अधिक हो जाना चाहिये और हमारी शिक्षित बहनों का आत्मबल बढ़ना चाहिये—सीधे रास्ते पर।

यदि हमारा समाज हमारी किसी बहन को सतीत्व का मूल्य न समझने के कारण तिरस्कृत दृष्टि से देखता है; यदि उस बहन के लिये हमारे समाज में, हमारी व्यक्तिगत गृहस्थियों में स्थान नहीं है, तो निश्चय ही एक पतित पुरुष की भी वही दशा होनी चाहिये। उसकी पत्नी, उसकी माँ, उसकी बहन तथा उस घर और समाज की स्त्रियों में इतना बल होना चाहिये कि वह उसका बहिष्कार कर सकें। यह है वह वस्तु, जो हमारी शिक्षिता बहनों को अपनाना चाहिये और जिसके बगैर अपनाये वह, चाहे जितना उनके लिये किया जाय, उन्नति नहीं कर सकतीं। इसमें उच्च कोटि का त्याग है, आत्मबल है और है शक्ति अपने अस्तित्व को कायम रखने की और अपना वास्तविक स्वरूप और वास्तविक अधिकार प्रकट करने की।

बहनें सोचें इस कमी के लिये किससे शिकायत की जाय।

लेख लम्बा होजाने के भय से मैं इसे यहीं समाप्त करता हूँ; परन्तु हाँ अन्त में मुझे दो बातें अपनी शिक्षिता बहनों से कहनी हैं; क्योंकि महिला-संसार के सुधार का बड़ा भाग अब उन्हीं पर निर्भर करता है कि—

(१) महान कवि कालिदास के शब्दों में—

पुराण मित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नव मित्यि वद्यम्।
सन्तः परीक्षान्यतरद्भजन्ते मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।

अर्थात्—जो कुछ पुराना है, वह सब-का-सब अच्छा ही नहीं और जो कुछ नया है, वह आवश्यक रूप से सब बुरा नहीं। बुद्धिमान व्यक्ति किसी वस्तु के गुण, दोष पर विचार कर निर्णय करते हैं; किन्तु जो लोग दूसरों के ही निर्णय पर निर्भर हैं, वह वास्तव में मूर्ख हैं।

(२) अन्तिम परन्तु इस से भी अधिक आवश्यकीय बात यह है, कि बहनें अपने ऊपर भरोसा कर अपने पैरों खड़े होने का प्रयत्न करें—अपने अधिकारों का उचित प्रयोग करें तथा जिस प्रकार कालिदासजी ने दूसरों के निर्णय को निर्णय न मानने का उपदेश दिया है, उसी प्रकार दूसरों के सहारे अधिक दिनों तक चलने का प्रयत्न न करें और अपने अधिकारों को माँगते, बढ़ाते तथा काम में लाते वक्त देश तथा समाज को समय की तराज़ू पर तौल कर कार्य करें; क्योंकि हम तो Sheriden के शब्दों में यह कहते और मानते हैं कि—

Women govern us, let us render them perfect, the more they are enlightened, so much the more shall we be.

अन्वेषण

आदि काल से ढूँढ़ रहा हूँ क्या मेरी सुधि लोगे
बैठा-सा जाता मन मेरा क्या यों रोने दोगे ?

आँखें पथरागईं हृदय की तुम्हें खोजते मेरी
अन्तस्तल के कंकालों में होती हेरा-फेरी
सुना यही था दुखियों की आँखों में बसते आये
इसीलिये दुखिया के घर में मुझे प्राण ले आये
किन्तु यहाँ की कसकों में तड़पों में तुम्हें न देखा
अट्टहास में दुख-ताण्डव में मिली न कोई रेखा
सुना यही था दुखी देश की पीड़ा हरने आते
इसीलिये भारत की रज में प्राण खोजने जाते
किन्तु नहीं तुम कहीं मिले हो बोलो कहाँ मिलोगे
बैठा-सा मेरा मन जाता क्या यों रोने दोगे ?

रोज रुपहली रातों में तारों से तुमको पूछा
हिमकर से, दिनकर से, उत्तर पाया नीरस छूँछा
रोते हुए गगन से पूछा हँसती हुई उषा से
फूलों से कलियों से पूछा मन्दस्मयी दिशा से
शास्त्र-तत्व मथ डाले फिर भी तेरा पता न पाया
अरे मन चले ! किस पर्दे में तेरा रूप समाया
गर्भ-जाल से मुट्ठी में निज हृदय समेटे आया
यहीं उँडेल चला जाऊँगा, काया जीवन छाया
खोलो मैं हारा, तुम जीते, आँख मिचौनी होली
अब तो हँसकर आगे आओ करो न और ठठोली

— उदयशंकर भट्ट —

पहाड़ी

लेखक—श्रीयुत राधाकृष्ण

मैं अपनी ओर देखता हूँ, तो कुछ नहीं समझ पाता। कभी प्रसन्न, कभी उदास, कभी हठ, कभी चाञ्चल्य; जैसे ये विकार आप-ही-आप, बिना निमंत्रण दिये आते हैं, और बिना विदा किये ही चुपचाप चले जाते हैं। अवसर के अनुसार भी नहीं, कि उन्हें पकड़ कर कह सकूँ कि हाँ, तुम्हें पा लिया, तुम इस समय आते हो! कभी तो ऐसा होता है कि दुःख की बात सुनकर भी मुस्किरा देता हूँ, और उस समय मन में गर्व होता है कि मैं दुःख के समय भी हँस सकता हूँ। और कभी छोटी बात का तर्क-वितर्क भी कई दिनों तक माथा खपा डालता है। वह छोटी-सी बात जब मन को छोटा करके स्वयं बड़ी बन जाती है, तो अपने आपको भ्रान्ति के मार्ग से बुला कर प्रसन्नता के कुसुम-कुञ्ज में ले जाना बड़ा कठिन होता है।

पहले मैं मनोविज्ञान का विद्यार्थी था। दूसरों का चेहरा देखकर उसके मनोभावों को ताड़ने की चेष्टा किया करता था; किन्तु जब से अपने ऊपर दृष्टि पड़ी है, तब से मैं अपने ही आप आश्चर्यजनक बन गया हूँ। मालूम होता है कि अपने ही भीतर बाहर का भी सब-कुछ है, और होने पर भी अपना अकेला है। इसकी विलक्षणता तनिक भी समझ में नहीं आती, आ भी नहीं सकती। अपने-आपको सबसे अलग करके देखना आसान है; किन्तु सब के साथ-साथ अपने निज के निजत्व को पकड़ना कठिन है। जल की उठने वाली लहरें कदाचित् अपने-आप को देख सकती होंगी; पर पकड़ नहीं सकतीं।

जो हो, मैं अपनी ओर से आप ही लाचार हो गया हूँ। ये कल्पनाएँ, जो प्रभातकालीन बादलों के समान क्षण-क्षण में रंग बदलती हैं, मेरी अपनी होकर भी अपनी नहीं हैं। अपना बनाने जाकर मैं उन्हीं का हो जाता हूँ।

मैंने सोचा था, आज मेरे मित्र आवेंगे, तो उनसे कुछ बातें करूँगा। वे आम खाना पसंद नहीं करते, मैं आज उन्हें आम खिला कर ही छोड़ूँगा। देखूँ, मेरी बात रहती है कि जाती है।

कुछ बम्बई और मालदह के आम मँगवा कर रख लिये थे। जानता था कि निष्प्रयोजन किसी को चोट पहुँचा कर प्रसन्न होना अच्छा नहीं। उनके प्रति मेरा यह अन्याय होगा। वे एक दिन आम खाते हैं, तो तीन दिन उसके परिणाम की चिन्ता करते हैं। फिर भी यह मन की ज़िद थी—उन्हें खिलाऊँगा।...... और जरा सोचिये तो, क्यों? और इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। वे मेरे अंतरंग मित्र हैं। उनसे कोई पर्दा नहीं। वे मुझसे अत्यधिक स्नेह रखते हैं, मैं भी संसार में उनसे सबसे अधिक स्नेह करता हूँ। इस बात को वे भी जानते हैं, मैं भी जानता हूँ, सब कोई जानते हैं। आज, छः वर्षों की मित्रता के बाद, मुझे उनकी यह परीक्षा नहीं लेनी थी कि वे मेरी बात मानते हैं कि नहीं। मगर फिर भी आज उन्हें आम खिलाऊँगा। खिला-कर ही छोड़ूँगा। .. जबरदस्ती!......

एक उपन्यास पढ़ रहा था। पढ़ने में मन नहीं लगता था। उफ़! उपन्यास था कि पाशविक वासनाओं का नग्न वर्णन। जैसे जीवन की चरम सार्थकता—आलिंगन और चुम्बन में ही है, छीः!

मेरी दृष्टि रह-रह कर आमों की ओर उठ जाती थी। मालदह के आम, कैसे सुन्दर हैं? देखने में कितने अच्छे मालूम होते हैं! वे आवेंगे, तो आने के साथ ही झिझक उठेंगे।......और जब मैं कहूँगा कि आपको भी खाना पड़ेगा...तब?...न-न करने से काम नहीं चलेगा। किसी तरह भी आपको छोड़ नहीं सकता।...और वे जब लाचार होकर खाने लगेंगे, तो मुझे जरूर हँसी आ जायगी!

उनके आने में अभी बहुत समय बाकी था। वे चार बजे आते हैं और अभी तीन बजने का भी ठिकाना नहीं। यह उपन्यास तो पढ़ा नहीं जाता। तब तक इस 'इलस्ट्रेटेड वीकली' की पहेलियों को क्यों नहीं बूझूँ? कटी-कटी रेखाओं के टुकड़े हैं, इन्हें आप मज़े में कोई भी अक्षर बना सकते हैं; लेकिन ठीक होना चाहिये।

...कोई दरवाजा खटखटा रहा है। इतनी जल्दी?...

वे नहीं आये, आया एक तार। उन्हीं के नाम का था, खोल कर देखा—पहाड़ी मर गई।

पहाड़ी उनकी भानजी का नाम था। असल नाम मुझे मालूम नहीं, राधा, कुमुद, उषा, सुलेखा या ऐसा ही कुछ नाम होगा; किन्तु इन औपन्यासिक नामों के झुरमुट में मुझे 'पहाड़ी' नाम ही विशेष प्रिय था। शायद वे भी इसी नाम को पसन्द करते थे; क्योंकि जब वह उन्हें याद आती थी, तो पहाड़ी के नाम से ही और इस नाम का भी एक इतिहास है। पारसाल वे लोग वायुपरिवर्तन के लिये एक पहाड़ी ग्राम में गये हुए थे, वहीं वह पैदा हुई थी।...... आज पहाड़ी मर गई।

बड़ा दुःख हुआ। सोचा नवनीत के समान कोमल, चित्र के समान सुन्दर और हृदय के समान उनकी प्रिय पहाड़ी आज नहीं है।

मैंने आमों को उठाकर दूसरे आदमी को दे दिया। क्या सोचता हूँ, क्या होता है। सचमुच आज का दिन बड़ा मनहूस है।

चुपचाप बैठ गया। आकाश की ओर दृष्टि उठ गई। वहाँ काले काले मेघ उमड़े चले आ रहे थे।

इस समय वे अपने क्लास में बैठकर पढ़ रहे होंगे। साहित्य, इतिहास या ऐसा ही कोई विषय होगा। अभी उनके मन में उसी विषय का वाद्य गूँज रहा होगा। क्या वे कभी सोचते होंगे कि वहाँ जाकर मुझे यह सम्वाद सुनना पड़ेगा?

जिसे गोद में लिया था, प्यार से मधुर चुम्बन किया था, जो आशाओं की तस्वीर थी, स्वर्ग के वरदान के समान थी......आज वही......आह! कौन कह सकता है, कि जो होता है वह ठीक ही होता है? आज से वर्ष भर पहले उसने अपनी निर्दोष आँखें खोली थी, कुछ देख भी न सकी कि वे आँखें पुनः बन्द हो गईं। उसके जीवन की कहानी तनिक सी निर्दोष हँसी और सरल रोदन में ही समाप्त हो जाती है। उसने क्यों जन्म लिया था, क्यों मर गई? जिस संसार में वह आई थी, जिन लोगों ने उस पर अपने प्यार की मधुर वर्षा की थी, उन लोगों को भली-भाँति पहचान भी नहीं सकी और चली गई।......इस समाचार को सुन कर उन्हें कितना दुःख होगा?

बाहर वर्षा हो रही है। वह भी जैसे रिमझिम-रिमझिम करके अपनी सजल कहानी सुना रही है। भींगी हुई हवा ठंढी श्वास के समान वातायन-द्वार से प्रवेश कर रही है।

मैंने कभी पहाड़ी को देखा नहीं था। वह उन्हीं की भानजी थी, घर रहती थी और उनका घर यहाँ से बहुत दूर पर है; किन्तु उस समय मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे मैं पहाड़ी को देख चुका हूँ। जैसे न जाने कबके सुदूर स्वप्न में उस फूल-सी कोमल बालिका को गोद में लेकर चुम्बनों की अजस्र वर्षा की है; किन्तु साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि मैंने उसे नहीं देखा है। तो भी मेरे आगे उसकी एक काल्पनिक तस्वीर खिंच गई। एक सुन्दर पालने पर पड़ी हुई वह हाथ पैर फेंक-फेंक कर मचल रही है। मैंने उसे यथार्थ में नहीं देखा है, फिर भी यह नहीं कह सकता कि नहीं देखा, वह देखना नहीं कहा जा सकता; किन्तु उसीसे मुझे सन्तोष हो गया था। उसका वास्तविक रूप चाहे जैसा हो, यह रूप भी असत्य नहीं था; क्योंकि इसी रूप ने मेरे हृदय को स्पर्श किया था। मेरे निकट वह मिथ्या होकर भी सत्य था, सुन्दर था।......लेकिन पहाड़ी अब नहीं है!.........हृदय पर किसी ने पत्थर रख दिया। जैसे पराग के वन में बवण्डर आ गया, वसन्त के उपवन में वर्षा और वज्र का विप्लव मच गया।......पहाड़ी नहीं है! पहाड़ी नहीं है!......

मैं आलसी आदमी हूँ। किसी चीज का ठिकाना नहीं। जहाँ बैठता हूँ, पुस्तकों के ढेर लगे रहते हैं; उन्हें उठाकर आलमारी में रखना भूल जाता हूँ। पहाड़ी की मृत्यु के दुःख ने मन को शिथिल कर दिया। पलकें झिपने लगीं। सोचा—थोड़ी-सी नींद ले लूँ। यदि एकदिन, दिन को भी सो जाऊँगा, तो कोई हर्ज नहीं। हाँ, रोज-रोज दिन को सोना बुरा है।

मृत्यु के अन्धकार में वह प्यार की नन्ही-सी प्रतिमा खो गई। अपने हृदय की बत्ती जलाकर उसे खोजना व्यर्थ है। कोई नहीं पा सकता। वह चली गई सो चली गई, फिर नहीं आवेगी। मैंने उसे कभी देखा नहीं, विचारा नहीं, फिर आज उसकी मृत्यु का चिर-विच्छेद काँटे की तरह मेरे हृदय में क्यों गड़ रहा है? मैंने उसे देखा होता, और कदाचित् उसकी अम्लान मुस्कान मेरे हृदय को अपने रंग में रँग चुकी होती, तो सम्भव था कि वह अपने महा-

प्रस्थान के साथ-साथ मेरे आनन्द को कुछ काल के लिये लेती जाती ।...... पहाड़ी !

उसकी माँ रो रही है। गोद का कलरव अनन्त मौन के पट पर अदृश्य हो गया है। मृत्यु पहाड़ी के मुँह पर अपनी काली छाया छोड़ गई है। उसकी माँ का आधार नहीं रहा, अवलम्ब नहीं रहा, वह रो रही है। रोने के सिवा वह और क्या कर सकती है ? यदि उसे शक्ति होती, तो वह आकाश से भी ऊपर ऊर्ध्वलोक में अपने विकल प्राणों को मुक्त करके छोड़ देती—जहाँ न संसार है, न संसार का विकट परिवर्तन है।

कल तक, अभी थोड़ी देर तक पहाड़ी थी; वह हँस सकती थी, तुतली वाणी की अबोध, अमृत से अपनी माता के प्राणों को शीतल कर सकती थी; पर एक ही क्षण में क्या से क्या हो गया ? जल के बुलबुले की तरह जीवन मिट गया। पहाड़ी अब नहीं रही। उस की माँ रो रही है ।

और संसार उसी प्रकार चल रहा है। राजा का राज्य चल रहा है व्यापारियों का व्यापार चल रहा है, दूकानदारों की दूकानें चल रही हैं, सड़कों पर लोग चल रहे हैं। कुँजड़िन एक पैसे के लिए घंटों हुज्जत कर रही है, दो रुपये मासिक वेतन पाने वाला रामू रसोइया कंधे पर मैला अँगौछा डाले तेजी से मालिक के घर की ओर जा रहा है। लड़के हँसते और गप्पें लड़ाते हुए स्कूल से वापस आ रहे हैं। फेरीवाला चिल्लाता हुआ अपना सौदा बिक्री कर रहा है। पड़ोसी दीनानाथ के यहाँ विवाह की अविश्रान्त रोशनचौकी बज रही है। वही कलरव है, वही अशान्ति !

...और आज पहाड़ी नहीं है !

क्या वह दुनिया के लिए कुछ नहीं थी ? .....न हो, पर अपनी माँ के लिए तो वही दुनिया थी। ... लेकिन दुनिया के बीच आकर भी वह दुनिया की न रही।

उसकी माँ रो रही है। वह भी तो इसी संसार में है। अब संसार को पहाड़ी की कोई चिन्ता नहीं है, तो फिर क्यों अकेली उसी की विकलता सिर पटक-पटक अपनी जान दे रही है ?

मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया—न रोओ बहन, यह संसार है, यहाँ जो आता है, वह जाता ही है। जीवन के पीछे-पीछे मृत्यु छाया की भाँति लगी रहती है।

वह अपनी शोकाकुल अश्रुपूरित आँखों से देखने लगी। शायद वह कह रही थी, तुम भी सूरज के प्रकाश को दीपक से देखने वालों में से हो !

मैंने फिर समझाया—बहन, आत्मा अनित्य है, वह न जन्म लेता है और न मरता है। तुम गीता और उपनिषदों का अध्ययन कर चुकी हो, फिर इतनी कातर क्यों हो रही हो ?

वह बोली—न रोऊँ, तो क्या करूँ भैया ? मेरी गोदी का हँसता-खेलता सुख चला गया ! क्या मन को समझाने से गई हुई पहाड़ी लौट सकती है ? जब वह जीती थी, तो मैंने उसे अपना स्नेह-उपहार दिया था, आज वह चली गई, तो अपनी वेदना बिखेर रही हूँ। मन अपना अकेला मालिक है, एक पेड़ की तरह खड़ा है, कभी ठंढी हवा स्पर्श करती है, तो यह हर्ष से खिल उठता है और जब गर्म हवा बहने लगती है, तो मुर्झा जाता है। इसी प्रकार होठों पर हँसी और आँखों में आँसू आप-ही-आप आते हैं और चले जाते हैं। शुष्क ज्ञान का यहाँ कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अभी भी जो ललनाएँ गोद में बालक को लेकर लोरी गा रही हैं, वे भी तो मेरी विकलता नहीं समझ सकतीं। अपना अपनापन केवल अपने लिये ही है। आज मेरी गोदी सूनी करके पहाड़ी चली गई, वह फिर नहीं आवेगी, क्या यह झूठ है ? फिर आज नहीं, तो मैं कब रोने बैठूँगी ?

• • •

..... यह क्या ?...कोई दरवाजा खटखटा रहा है।... अरे ! तो क्या मैं स्वप्न देख रहा था ?......

उठ कर द्वार खोल दिया। वे मुस्किराते हुए अन्दर आये, पूछा—आज उदास क्यों हैं ?

मैं क्या करूँ, कैसे कहूँ, केवल यही कहा—और आप आज इतने प्रसन्न क्यों हैं ?

'आज एक हँसी की बात हो गई !'......वे हँस रहे थे। आँखें प्रसन्नता में लीन होकर चमक रही थीं।

......और मुझे क्या कहना पड़ेगा ?

बौने

लेखक—श्रीयुत जगेश्वरनाथ वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी०

पिगमीलैण्ड नीग्रेटिव लोगों को जन्म-भूमि बताई जाती है। यह विचित्र स्थान सेंट्रल नीदर लैण्ड न्यूगिनी के 'नासो' नामक प्रदेश की पहाड़ी भूमि के भीतरी भाग में बसा हुआ है। और कोई २६ हज़ार फ़ीट ऊँचे पहाड़ इसे चारों तरफ़ से घेरे हुए हैं। इन पहाड़ों की गगन-चुम्बी चोटियाँ बारह मासी हिम-वर्षा के कारण सदा बर्फ़ की श्वेत चादर में मुँह छिपाये पड़ी रहती हैं।

नीग्रेटिव लोग, जिन्हें हम बौने कह सकते हैं, इस पथरीले स्थान में सैकड़ों वर्षों से हज़ारों की तादाद में रहते-सहते चले आते हैं। इन बौनों का क़द लगभग साढ़े चार फ़ीट होगा। और उनकी सभ्यता प्राचीन पत्थर के युग की सभ्यता से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। उनका शरीर लम्बाई में कम होने पर भी काफी मज़बूत होता है। और रंग तो ऐसा काला होता है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। उनकी मुखाकृति प्रायः भोंडी ही देखी गई है। जान पड़ता है कि इन लोगों का सौन्दर्य-ज्ञान भी हम लोगों से विभिन्न है; इसीलिये जो व्यक्ति हमारी दृष्टि में सबसे अधिक कुरूप जँचेगा, यह लोग उसी को सबसे सुन्दर कहेंगे।

अब से प्रायः ६-७ वर्ष पूर्व न तो यह लोग किसी धातु के प्रयोग से परिचित थे और न इन्हें सभ्य जातियों के अस्तित्व तथा उनकी किसी प्रकार की कृतियों ही का कुछ ज्ञान था। यह बताना कठिन है कि यह लोग इससे पहले किस-किस भू-भाग में रह चुके हैं; फिर भी कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह लोग अफ़्रिक़ा के असली बाशिन्दे हैं, और यहीं से पूर्व तथा उत्तर की ओर बढ़ते हुए एशिया के समुद्र तट और आस-पास के टापुओं में फैल गये हैं।

इनके विषय में यह भी कहा जाता है कि यह पृथ्वी के इस अंग को आबाद करने वाले सर्व प्रथम जीव हैं। इसके उपरान्त धीरे-धीरे बड़े और अधिक पराक्रमी लोगों के आ जाने के कारण इनका दिन-दिन ह्रास होता गया और इस जंगली जन-समूह का अधिकांश भयंकर लड़ाइयों में कट-पिटकर धूलि में मिल गया। जो कुछ बचे खुचे, वह छोटी छोटी टोलियों में विभक्त होकर पृथ्वी के सुदूर क्षेत्रों में इधर-उधर बिखर गये।

बौनों की बड़ी बड़ी जातियाँ ट्रापिकल अफ़्रिका, अण्डमन द्वीप-समूह, फ़िलिपाइन और न्यू गिनी इत्यादि में देखी गई हैं। इनमें से न्यू गिनी के बौनों की संख्या सबसे अधिक है, इन्हें शेष समस्त संसार से एक दम अलग-विलग ही कहना उचित होगा और कदाचित् यही कारण है, कि उनमें प्राचीनता के सारे लक्षण आज भी स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उनकी सनातन रीतियों, भाव, भाषा, आहार-व्यवहार और वेष भूषा आदि में किसी प्रकार का किञ्चित् भी परिवर्तन नहीं हुआ है; पर इन सब बातों के चिन्ह इस वर्ग के अन्य देश वासियों में कहीं दिखाई नहीं देते।

वैसे तो पिगमीलैण्ड की निकटवर्ती गुफाओं तथा ओर-छोर की घाटियों में 'पापोन' नामक बर्बर जाति के लोग अधिकता से आबाद हैं; पर वास्तव में इनका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका कारण है और वह यह कि इन दोनों जातियों के बीच प्रकृति ने बड़े-बड़े जन-शून्य भयानक और घने बनों का एक वर्जित खण्ड स्थापित कर दिया है, जो इन दोनों जातियों को अभी तक पारस्परिक सम्पर्क से वंचित किये हुए हैं।

बौने आज तक उसी पतित अवस्था में पड़े हुए हैं, जिसमें कभी पाश्चात्य जातियों के पूर्वज सहस्रों वर्षों तक आर्य्य-सभ्यता के सूर्य्य की स्वर्ण-किरण से प्रकाश लाभ करने की चेष्टा में सिर धुनते रहे हैं। इतना सब होते हुए भी हम उन्हें पापोन लोगों की तरह एकदम जंगली नहीं कह सकते।

कुछ विशेषज्ञों को बहुत पहले इस बात का संदेह हुआ था, कि नासो के पथरीले मैदानों में बौनों की बस्तियाँ अवश्य होंगी; पर वैज्ञानिक-संसार को उनकी उपस्थिति का वास्तविक ज्ञान सब से पहले उस समय हुआ, जब अंग्रेज़ों के कुछ मनचले खोज-कर्त्ताओं का एक दल अद्भुत पशु-पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं की जाँच-पड़ताल करने के

लिये कप्तान रालिंग्ज़ की मातहती में पिकारे नामक नदी के तट पर जा निकला था। इन लोगों ने नासो पर्वत के दक्षिणी ढाल पर बहने वाली बहुत सी मुक्त धाराओं के सन्निकट बौनों का एक छोटा सा जमघट देखा था। जिसका नाम उन्होंने 'टापेरो' रक्खा था। दुर्भाग्यवश इस साहसी दल के मार्ग में बहुत-सी ऐसी परस्थितियाँ आ उपस्थित हुईं, जिनका कभी यात्रा-आरम्भ के समय संदेह भी न हो सकता था। इन्हीं कठिनाइयों से परास्त होकर उन्हें अपनी ज्ञान-पिपासा लिये हुए उलटे पैरों लौटना पड़ा और खोद-विनोद का यह महत्त्व-पूर्ण कार्य अधूरा ही पड़ा रह गया।

१९२० ई० में हालैण्ड के सैनिकों को डच उपनिवेशों के पूर्वीय भाग में विलहिलमीना पर्वत के उत्तरीय खण्ड की कुछ दुरुतर घाटियों में इस वर्ग के व्यक्तियों की एक घनी बस्ती मिली थी। उपरोक्त सैनिक-दल ने नासो की पहाड़ियों के पूर्वीय अंश पर बहुत कुछ प्रकाश डाला था; किन्तु पश्चिमीय अंग की ओर इनका भी ध्यान न गया था। अन्त में १९२६—२७ ई० को अमेरिका के विशाल अजायबघर के क्यूरेटर मैथ्यू स्टर्लिङ्ग और उनके अनेक साथियों ने इस कठिन कार्य को पूर्ण रूप से समाप्त करने का बीड़ा उठाया और घोर परिश्रम के बाद उन्हें आशातीत सफलता हुई।

माम्बर न्यू नदी के किनारे एक स्थान से, जो तट से लगभग ९मील की दूरी पर था, नासो की पहाड़ियों के इस छोर तक पाँच बड़े पड़ाव डाले गये और इन्हीं पड़ावों के द्वारा पहाड़ों के मध्य भाग तक (जो चार सौ मील से भी अधिक लम्बा होगा) खाद्य-पदार्थों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के लाने ले जाने का प्रबन्ध किया गया। इन दुर्गम पहाड़ों के गर्भ में प्रविष्ट होने के लिए वायुयान और नये ढंग की नौकाओं की सहायता लेनी पड़ी। विचित्र प्रकार की इन नावों को खेने के लिए जिन नाविकों को नियुक्त किया गया था, वह 'डायक' लोग थे।

स्टर्लिङ्ग और उनके सहचरों को लगातार छः मास तक पथरीली पगडण्डियों पर पैदल चलना पड़ा था और पिगमी-लैण्ड के निकट पहुँचने से पहले वानरेज की पहाड़ियों और लेक प्लेन के मलेरिया के कीड़ों से परिपूर्ण दलदलों और मनुष्य-भक्षक पापोनों की बस्तियों को पार करना पड़ा था।

मैथ्यू स्टर्लिङ्ग ने अपने इस भ्रमण का वर्णन न्यूयार्क के 'वर्ल्डस् वर्क' नामक मैगज़ीन में बड़े विस्तार के साथ किया है। उसी का कुछ अंश पाठकों की जानकारी के लिये संक्षिप्त रूप में दिया जाता है। वह लिखते हैं—इस यात्रा का अन्तिम भाग, जिसमें कई सप्ताह तक अकथनीय संकटों का सामना करना पड़ा था, पैदल चलकर ही समाप्त हुआ था; क्योंकि पहाड़ों की तह में नाला इतना तेज़ बह रहा था कि निपुण-से-निपुण माँझी भी उसमें नाव नहीं चला सकते थे और हमारे कुछ साथी तो एकदम निराश होकर हिम्मत हार बैठे थे। हमें जंगली पेड़ों से पटे हुए पहाड़ों से उतर कर उस पार पहुँचना था और उनपर चलना सूली पर चढ़ने से कम दुःखदायी न था। इन निर्जन-वनों में न कहीं कोई आदमी दिखाई देता था और न किसी पशु या पक्षी का कलरव ही सुनाई पड़ता था। नाले के बहाव के साथ-साथ किनारे पर एक मार्ग बनाकर चलना पड़ता था। जब हम किसी तरह इस 'दण्डकवन' से निकल गये, तो कहीं मनुष्यों की उपस्थिति के धुँधले चिन्ह दृष्टिगोचर हुए। यहाँ पर बहुत-सी पगडण्डियाँ आपस में मिल-जुल गई थीं और पहाड़ की चट्टानों पर पेड़ों की छालों से पटे हुए कुछ झोंपड़े भी इधर-उधर बिखरे हुए थे।

हम जितना आगे बढ़ते गये, यह चिन्ह उतने ही उग्र और स्पष्ट होते गये। हमने देखा कि झरनों के पार जहाँ बड़े-बड़े वृक्ष तोड़ कर गिराये गये थे, वहाँ पत्थर की कुल्हाड़ी से बहुत से लकड़ी के टुकड़े तोड़ कर इकट्ठे किये गये थे। अन्त में हम उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ नदी के दोनों किनारों पर ऊँची-ऊँची चट्टानों की दीवारें बनी हुई थीं। इन चट्टानों पर लकड़ी का एक पुल रक्खा हुआ था। यहाँ पहुँच कर हमें विश्वास हो गया कि अब नियुक्त स्थान बहुत दूर नहीं है।

पुल के दोनों तरफ पहाड़ों में पगडण्डियाँ थीं। हमने उस पथ का अनुसरण किया, जो पश्चिम की ओर जाता था। यह मार्ग बहुत स्वच्छ और सुगम था तथा एक ऊँचे टीले तक जाता था। जब हम उसकी चोटी पर पहुँचे, तो एक डायक एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर इधर-उधर देखने लगा, जिससे आस-पास का कुछ हाल मालूम हो जाय। उसने बताया कि दूर पश्चिम की ओर एक चोटी पर कुछ मैदान-सा है। जहाँ धुआँ-सा उठता दिखाई दे रहा है।

यह सुनकर हम लोग उधर ही हो लिये और ऊपर चढ़ने लगे। जब हम चार हज़ार फ़ीट ऊँचे पहुँच गये होंगे, तो अचानक हमें वह मैदान सामने ही दिखाई देने लगा। यह एक छोटी-सी वाटिका थी, जिसके चारों तरफ मजबूत जंगला लगा था। इसके ऊपरी सिरे पर लकड़ी के तख्तों के कई मकान बने हुए थे। जिन पर घास फूस के छप्परों के सायबान पड़े हुए थे। यहाँ हमें कोई मनुष्य दिखाई न दिया। हाँ, समीप ही के एक मकान से धुआँ निकल रहा था, जिससे गुमान होता था कि इसमें कोई-न-कोई अवश्य रहता होगा। हम इस मकान की दीवारों पर चढ़ गये और नीचे उतरने का सामान करने लगे। उस समय हमें इसका कोई भय न था कि अब क्या होगा—केवल एक आशा थी, जो हमारा हौसल बढ़ा रही थी और वह यह कि यहाँ बौने रहते होंगे।

इस घर के द्वार पर एक छोटी सी लड़की खड़ी थी। जो कदाचित् ६ वर्ष की होगी, उसके शरीर पर कोई वस्त्र क्या चिथड़ा भी न था। केवल छालों का बुना हुआ एक छोटा-सा दामन उसकी कमर से बँधा था और गुलाबी सीप की एक माला गले में पड़ी थी। हमें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस लड़की को हमें देखकर न तो कुछ भय हुआ और न वह कुछ संकुचित हुई। ऐसा मालूम होता था कि वह मुस्करा कर हमारा स्वागत कर रही है। हमने उसे कुछ घोंघे दिये और वह प्रसन्न होकर हमें घर में ले गई और एक बूढ़ी स्त्री से हमारा साक्षात् कराया। बूढ़ी महिला भी बालिका की तरह किञ्चित भी चकित या विचलित न हुई। हमने संकेत करके कहा कि हम और लोगों को देखना चाहते हैं।

हमारा अभिप्राय समझ कर वह मैदान में लोगों को बुलाने चली गई और छोटी लड़की को हमारे पास छोड़ गई। थोड़ी देर में वह दो युवती स्त्रियों को साथ लेकर लौट आई और दस मिनट में कई पुरुष भी आ पहुँचे। यही लोग नीग्रेटिव बौने थे, जो देखने से बड़े साधारण, सुशील और दयालु मालूम होते थे। उन्होंने भाँति-भाँति के संकेतों से हमें अन्यान्य ग्रामों के चिन्ह दिखाये और दो-तीन आदमियों को उन लोगों को बुलाने के लिए भेज दिया। हमने उन सब को कुछ-न-कुछ उपहार दिया, जिसके उपलक्ष में उन्होंने हमारे लिए सूअर का शिकार करने की प्रतिज्ञा की।

यह लोग हमारे साथ-साथ पड़ाव तक आये और संध्या तक तीस-चालीस आदमी आस-पास के देहातों से भी आ गये। यह लोग अपने साथ एक सूअर और दो या तीन केले की बड़ी फलियाँ लाये थे। सूअर को एक स्तम्भ से बाँध दिया गया और सब लोग उसे चारों तरफ से घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने संकेतों से हम से भी कहा कि हम उनके साथ सम्मिलित हों। दो ग्रामीणों ने सूअर को पकड़ लिया और एक तीसरे बौने ने कुछ दूर पर खड़े हो कर एक तीर से उसे मार दिया।

जब हमने उन्हें यह बताया कि हम लोग व्यापार करना चाहते हैं, तो वह माल लाने लगे। हमारे पास बहुत सी कौड़ियाँ थीं, जो हमें माम्बर न्यू के किनारे पर मिल गई थीं। यह कौड़ियाँ उनके लिए अमूल्य रत्नों से भी अधिक थीं। उन्होंने कौड़ियों को हमारे चाकू और कुल्हाड़ियों से ज्यादा पसन्द किया। और वह दृश्य तो सचमुच बड़ा ही दर्शनीय था, जब उन्होंने पहली बार हमारे दर्पणों में अपनी भौंड़ी आकृति देखी और बन्दरों की तरह मुह बना-बना कर हँसते रहे, फिर उन्होंने यह जानने का विफल प्रयत्न किया कि उन के पीछे क्या है। यह लोग व्यापार करने में बड़े चतुर प्रतीत हुए। लेन-देन और सौदा चुकाने में उन्होंने अपने-आप को बड़ा निपुण सिद्ध किया; पर जब किसी वस्तु के दाम नियत कर दिये गये, तो फिर उन्होंने किसी तरह की कोई आपत्ति न की। हमने इन अर्द्धसभ्य बौनों को बहुत सच्चा और ईमानदार पाया।

यह लोग जब कोई अद्भुत वस्तु देखकर आश्चर्य प्रकट करते हैं, तो अपने तोंदों को बिल्ली की तरह नाखूनों से खुरचकर बजाते हैं; पर स्त्रियाँ इसी भाव को दूसरी तरह दर्शाती हैं, वह पहले अपनी अंगुली दांतों से काटती हैं, फिर हाथ हिला कर छाती पर हत्था करती हैं।

वैसे तो हमारी हर एक चीज़ उन्हें अचरज में डालने वाली थी; पर नोटबुक के पन्ने उलटने में उन्हें विशेष आनन्द होता था। इन लोगों के मिलने का ढंग तो बिलकुल ही निराला है। वे प्रणाम या नमस्कार करने के बजाय एक दूसरे की मध्यमा अपनी अगुलियों में दबा लेते हैं और जब

एक स्वर के साथ अंगुलियाँ अलग करते हैं, तो कहते हैं— 'वाओ, वाओ, वाओ !

भ्रमण करने का इन्हें बड़ा चाव है और निकटस्थ पहाड़ी ग्रामों में बहुधा घूमा-फिरा करते हैं। पहाड़ी पगडण्डियों पर बड़ी तेज़ी से चलने का इन्हें इतना अभ्यास है कि जितनी दूर वह तीन दिन में निकल गये, वहाँ तक पहुँचने में हमें सात दिन लग गये। यात्रा के समय उनके साथ धनुष-बाण और एक थैले में कुछ शकरकन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। अतिथि-सत्कार को यह अपना सब से बड़ा कर्त्तव्य समझते हैं। पिगमीलैंड में यह नियम है, कि जब तक कोई आगन्तुक वहाँ ठहरता है, उसे खाना और रहने को स्थान दिया जाता है और उसके बदले में कोई चीज़ नहीं ली जाती। जिन दिनों हम वहाँ पहुँचे, तो उनके खेतों में फसलें अच्छी न थीं, फिर भी वह बराबर हमारे लिये केले और शकरकन्द भेजते रहे। उनका मुखिया और उसकी स्त्री नित्य ही सूर्यास्त के समय यह चीज़ें हमें पहुँचा जाते थे।

बौनों के मकान पापोन लोगों से अच्छे और स्वच्छ होते हैं। उनकी लम्बाई-चौड़ाई से लगभग दूनी होती है। कोई-कोई मकान तो अण्डाकार भी होते हैं, जिन सब की दीवारें पत्थर की होती हैं और पेड़ों की छाल का फर्श लगाया जाता है। फर्श के बीच में 'अग्निकुण्ड-सा' बना होता है। जो पत्थर से ढका रहता है। कमरों में फर्नीचर जैसी कोई वस्तु नहीं होती। संध्या के समय वह अग्निकुण्ड में आग जलाते हैं और उसके पास बैठकर शकरकन्द भूनते और गीत गाते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों के कमरे अलग-अलग होते हैं; किन्तु उन्हें एक दूसरे के घर में आने-जाने की कोई रोक-टोक नहीं है। कभी-कभी स्त्रियाँ भी पुरुषों को गायन-मण्डली में सम्मिलित होती हैं और फिर अपने घरों में सोने को चली जाती हैं।

यह लोग लकड़ी के टुकड़ों से किसी जल उठने वाली वस्तु को रगड़ कर आग जलाते हैं। रगड़ लगते ही धुआँ उठने लगता है। फिर सूखे हुए पत्तों से लकड़ियों को छुआ दिया जाता है। दस मिनट में कोयले सुलगने लगते हैं। इनकी प्रत्येक वस्तु—यहाँ तक कि कुल्हाड़ी भी पत्थर ही की होती है। एक प्रकार के हरे रंग के पत्थर को घिस कर द्विज के चन्द्रमा की तरह चाकू बनाये जाते हैं। उनके पास न तो कोई टोकरी ही होती है और न मिट्टी आदि का कोई दूसरा बरतन। एक जाली की थैली के अतिरिक्त और कोई ऐसी चीज़ नहीं होती, जिसमें भोजन की सामग्री रक्खी जाती हो।

रसोई बनाने के लिये एक गहरा गढ़ा खोद लिया जाता है। जिसके चारों तरफ केले के पत्ते और दूसरी घास-फूँस रख दी जाती है। उसमें शकरकन्द और दूसरी चीज़ें जो पकाना होती हैं रख दी जाती हैं, उसके बाद आग जला कर बड़े बड़े पत्थर तपा लिये जाते हैं, फिर उन्हें लकड़ी के चिमटों से पकड़ कर पत्तों में लपेट कर उस गढ़े में रख दिया जाता है और इस तरह रक्खी हुई चीज़ें एक या दो घण्टे में पक जाती हैं। खाना पकाने की यह रीति बड़ी पुरानी है। पत्थरों को धूप में गर्म करके भी यह काम लिया जा सकता है। दिन में केवल एक ही बार खाना खाया जाता है, जिसे रात के समय स्त्रियाँ पकाती हैं।

हर एक गाँव एक बड़े कुटुम्ब की तरह होता है और इस बड़े परिवार के लोगों में गोत्रज अथवा वैवाहिक सम्बन्ध होना अनिवार्य है। खेती बाड़ी का काम सब लोग मिल-जुलकर करते हैं और वंज-व्यवसाय से लेकर छोटे-से-छोटा काम तक सारे गाँव के हित के लिये किया जाता है। कोई व्यक्ति गाँव का मुखिया केवल इसलिए निर्वाचित नहीं हो सकता कि उसके पूर्वज मुखिया थे; वरन् योग्यता के आधार पर उसका चुनाव हुआ करता है। निर्वाचन के उपरान्त मुखिया अपने जाति-भाइयों पर शासन नहीं करता; बल्कि उनके आत्मीय और शुभ-चिन्तक के रूप में उनकी सहायता करता और समय-समय पर उचित सलाह देता रहता है।

बौने स्थायी रूप से देहात में रहते हैं और हम उन्हें कृषि-प्रधान जातियों की श्रेणी में रख सकते हैं। पहले घने वनों को काट कर साफ़ कर लिया जाता है; फिर मैदान के चारों तरफ झाड़ियाँ लगादी जाती हैं, जिससे जंगली सूअर अन्दर न घुस पायें। बनों को साफ करने और झाड़ियाँ लगाने का काम पुरुष करते हैं, कभी-कभी स्त्रियाँ भी पेड़ों के लगाने और देख-भाल करने में उनका हाथ बटा लेती हैं। इनकी बाड़ियों में शकरकंद बड़ी कसरत से होते

हैं। इसे यह लोग अपनी भाषा में 'पोबस' कहते हैं । इसके अतिरिक्त ईख, केले और नींबू की फस्लें भी अच्छी होती हैं ; पर तमाखू तो इस इफरात से होती है कि दुनिया के पर्दे पर कहीं न होती होगी। यहाँ के स्त्री, पुरुष, छोटे बड़े सभी तमाखू पीने के अभ्यस्त होते हैं । जब कोई दो-तीन वर्ष का बच्चा रोने लगता है, तो उसकी माँ उसे बीड़ी का एक कश लगवा देती है, जिससे वह चुप हो जाता है । यह लोग तमाखू को छोड़कर अन्य किसी मादक द्रव्य का उपयोग नहीं करते । भंग, मदिरा, सुरा और गाँजा इत्यादि का तो उन्होंने नाम तक न सुना होगा। पानी भी यह लोग बहुत कम पीते हैं और नहाना तो जानते ही नहीं । जब वह हम में किसी को झरनों में स्नान करते देख लेते थे, तो उन्हें बड़ा अचंभा होता था । साबुन के झाग उनके लिये अजीब चीज़ थे ।

साबुन को पानी से मलकर झाग बनाने में उनका बड़ा मनोरञ्जन होता था और वे साबुन के एक टिकिया के लिये अपने यहाँ की कोई भी चीज़ सहर्ष दे सकते थे। पिगमीलैंड में स्त्रियों की संख्या बहुत कम है । पुरुष, तादाद में उनसे बहुत ज्यादा हैं ; इसलिये विवाह के समय उनमें बड़ा भयंकर युद्ध होता है । इस डर से बहुत से आदमी कुँवारे ही रह जाते हैं । यह लोग कई-कई विवाह करना बुरा नहीं समझते और विधवा-विवाह को बड़ा महत्त्व देते हैं ; किन्तु फिर भी कोई विरला ही इतना भाग्यशाली होगा, जिसके दो स्त्रियाँ हों ।

'तोंबी' ग्राम का मुखिया हमारा गहरा मित्र हो गया था। उसने, जब तक हम वहाँ रहे, हमें हर तरह का आराम पहुँचाने में कोई कसर उठा न रक्खी। जब हम चलने लगे, तो उसे इतनी कौड़ियाँ दीं कि वह अपने परिवार में सबसे अधिक धनवान समझा जाने लगे। हमने उससे पूछा कि तुम इतनी सम्पत्ति को लेकर क्या करोगे ? तो उसने हँस कर उत्तर दिया कि एक दूसरा विवाह करूँगा। मानों दो स्त्रियों का स्वामी होना ही लक्ष्मी के कृपा-पात्र होने का लक्षण है ।

जो लोग व्याह करना चाहते हैं, उन्हें बहुत-सा धन रहते हुए भी असाधारण साहस और वीरता का परिचय देना होता है । कन्या के सारे सम्बन्धी इकट्ठे होकर उनपर चारों ओर से तीरों की वर्षा करते हैं और जब वह इस अग्नि-परीक्षा से सफल होकर निकल आते हैं, तो उन्हें वधू के माता-पिता की स्वीकृति लेकर मकान बनवाने पड़ते हैं, जहाँ बड़े समारोह से विवाहोत्सव मनाया जाता है। ऐसे अवसर पर उनके यहाँ यह बड़ी कुरीति प्रचलित है कि वधू की एक अँगुली पत्थर की कुल्हाड़ी से काट दी जाती है। उसके बाद यदि पुरुष रँडुआ हो जाता है, तो उसे भी एक अँगुली कटानी पड़ती है । इसी तरह विधवा जितनी बार पुनर्विवाह करेगी, उसे एक अँगुली कटानी पड़ेगी ।

इनका वैवाहिक जीवन बड़ा आनन्दमय और शान्त होता है । पति-पत्नी में परस्पर कोई कलह नहीं होता । स्त्रियों के साथ बड़ी शिष्टता का व्यवहार होता है । हम लोग जिन महानुभावों (?) को स्त्रैण कहकर उनका उपहास और निन्दा करते हैं, उन सरीखे वीर योद्धाओं को पिगमीलैंड में विशेष आदरणीय समझा जाता है ।

एक बार ऐगनावा नामक गाँव में हमने अपना पड़ाव डाला । वहाँ का सम्मानित मुखिया हमारे यहाँ बहुत आया जाया करता था । उसकी स्त्री रसोई बनाया करती थी ; पर लकड़ी लाने का काम उसी को करना पड़ता था। एक दिन वह यह काम किये बिना ही हमारे डेरे पर चला आया । सहसा उसकी स्त्री, जो उससे भी छोटी थी । वहाँ आई और उसे कान पकड़ कर बुरा-भला कहती हुई वहाँ से घसीट लेगई ।

स्वभावतः बौने इतने सीधे और शान्त होते हैं कि कभी अनजान में भी उससे कोई अपराध नहीं होता और 'चोरी' का तो वह लोग नाम भी नहीं जानते । पराई चीज़ को ठीकरी ही के बराबर समझा जाता है और इस प्रकार से यह बड़ी-बड़ी सभ्य जातियों से भी अच्छे कहे जा सकते हैं ।

राखी

लेखक
श्रीयुत वीरेश्वरसिंह, बी० ए०

मेरे हाथ में जैसे साँपिन ने लिपट कर डस लिया। मैं अपनी कलाई थामकर रह गया। वह स्थान जल रहा था। मेरी नाड़ी डूब-सी गई, मेरा मुँह सूख गया, मेरा सारा भविष्य काँप कर स्याह पड़ गया। राखी बँधते ही मेरा हृदय रो पड़ा। मैं जानता था कि मैं क्या कर रहा हूँ; पर मैं विवश था। मैंने धीरे से अपना हाथ आगे कर दिया और हेमलता ने धीरे से कलाई में एक राखी लपेट दी, फिर ......बड़ी कोमलता से माथे में एक लाल टीका काढ़ दिया। वह छिपी-छिपी हँस-सी रही थी। उसे क्या मालूम था, कि वह एक खून कर रही है—एक मिट्टी-सा भाई बनाने में एक जीवित प्रणयी की गला घोंट रही है।

मै लुट गया था। मेरी स्तंभित आत्मा में अन्धकार छा उठा था और उसमें कोई विलप रहा था—हेमलता, मेरी हेमलता, तुम कहाँ हो; जैसे—राम वन में खोई सीता ढूँढ़ रहे हों।

वास्तव में मेरी हेम मुझसे सदा के लिये खो चुकी थी। मेरी आँखों के सामने मेरे विनष्ट स्वप्नों के—मेरे भग्न ताजमहल के—टूटे हुए टुकड़े धूल में लोट रहे थे। वे जैसे पथरीली, निराश आँखों से मुझे काट रहे थे। अपनी मरी हुई आशा को गोद में चिपटाये मैं हेमलता को देखने लगा—आह! मेरा सोमरस पानी हो चुका था। अपनी सारी शक्ति संचय करके मैंने कहा—हेम बहन... पर मैं आगे न बोल सका। दिल के खून में मेरी आवाज़ डूब गयी।

उफ़! परिवर्त्तन की—पुनर्जन्म की—पीड़ा कितनी बेधक और क्रूर होती है! आज मुझे मालूम हुआ कि अपना चोला बदलने में मनुष्य को कितना कष्ट होता है। आज देखते ही-देखते मैं मरा और 'आह' करके जी उठा। मेरी आँखों के सामने मेरी मौत आई, और मेरे पहले के रंगीन कपड़े फाड़कर कुछ सादा कफ़न-सा पहना गई। मैं 'मैं' न रह गया। हेमलता अब भी थी; पर वह हेमलता अब मेरी न थी। मैंने उसकी ओर देखा; जैसे—कोई छूटी रेल देखते है—हाय! उसके साथ अपना क्या-क्या न चला गया! हम एक दूसरे की तरफ देखते हैं; किन्तु अफसोस, फिर उसी तरह दौड़कर गले नहीं मिल सकते! नहीं मिल सकते! हेम......अब असम्भव है......।

अब हेम मेरी प्रणयिनी नहीं, अब वह बहन, एक ही खून की-सी सगी बहन थी। राखी नहीं खुल सकती और न हेम अब वह हेम ही बन सकती है। इसमें किसी का दोष न था। प्रत्येक मनुष्य की भावी उसकी प्रकृति में ही निहित रहती है। हमारे हँसने में, हमारे रोने में, हमारे सोने में, और जागने में, हमारी भावी का श्रृंगार बनता-बिगड़ता है। हमारे रास्ते के नीचे अदृश्य रूप में बारूद बिछी है, और उसमें जब तक आग न लगे, तभी तक वह क्षण कल्प है, जो सुख से बीत जाय। और यह समय की बात है कि कब क्या आग बन जाय। कभी हँसी से आग लगती है, कभी आँसू से। आज मेरे उसी संस्कार ने उसी विचार, उसी आदर्श ने, जिसको मैं आगे करके चलता था, मेरे घर में आग लगा दी।

मुझमें एक अजीब ज़िद थी—वह ज़िद—जो कि अपने विचारों में विश्वास रखने वाले मनुष्यों में होती है और मेरे कई उसूलों में से एक उसूल था—स्त्रियों को यों ही माँ-बहन न कह देना। स्त्रियों को मैं सर्वदा आदर की दृष्टि से देखता था; किन्तु मैं जानता था कि यों सद्भाव से आदर रखना दूसरी बात है और माँ बहन कह देना दूसरी बात। ये शब्द मेरे लिये इतने सच्चे और महान् थे कि इनका साधारण उपयोग करना मेरी समझ में अधर्म था। मैं उन्हीं को माँ कहता, जिनकी गोदी में मेरा हृदय जाकर खेलने लगता, और उन्हीं को बहन कहता, जिन्हें देख मेरी नसों में संग संग पिया हुआ एक ही माँ के दूध सा कुछ जग पड़ता, जिनकी प्राकृतिक सरलता, स्वच्छता, और विश्वास से भरा हुआ स्नेह-व्यवहार मुझमें एक अत्यन्त प्रिय भाव का प्रस्फुरण कर देते थे। 'माँ' 'बहन' कहते हुए मुझे ऐसा लगता; जैसे—मैंने अपने कन्धों पर सुमेरु रख लिया हो। मैं जिसे माँ कहता, उसका पुत्र बन जाता, जिसे बहन कहता, उसका गुलाम भाई। फिर उन पर आँच

आना मुझपर आँच आना था। यही धर्म भार था, जिसकी वजह से माँ और बहन शब्द मेरे लिये इतने हलके न थे और राखी, तो मेरे लिए स्वयं माँ शक्ति थी, जिसके अलौकिक संसर्ग से वारांगना भी बहन हो सकती थी, और खूनी भी भाई हो सकता था। राखी—इस एक ही शब्द के उच्चारण से मेरे अन्तस्तल में राजपूत भाइयों का दिव्य शोणित और बहनों के अमृताश्रु सागर से उमड़ कर लहरा उठते थे। मैं स्वयं नैतिकता का सिर फोड़ सकता था; किन्तु राखी का बन्धन तोड़ना मेरे लिये असम्भव था। और यही राखी मेरी प्यारी, मेरी भोली हेमलता ने किस आसानी से मेरे हाथ में बाँध दी; किस आसानी से, उसने उन इने-गिने लोगों के काल-पाश में उलझा कर मेरे भाग्य-नक्षत्र को तोड़ दिया……!

हेमलता के घर और मेरे घर में दूरी होते हुए भी अक्सर आना-जाना होता रहता था; किन्तु मैं कभी उसके घर के अन्दर न जाया करता था। कभी-कभी बुलाये जाने पर मैं अन्दर जाता; किन्तु शीघ्र ही बाहर आ जाता। ये लोग आगरे ही के रहने वाले थे; किन्तु हमलोग आगरे में दो ही साल हुए आये थे। पिताजी की नौकरी थी। दूसरे साल के अन्त होते-होते, जाने कैसे मेरे युवक हृदय ने ऐसी मँहक पाई, जैसी कि विवाह की बातों में हुआ करती है। मेरे अन्दाज में तो ऐसी मँहक सिवा हेमलता के और कहीं से आ ही नहीं सकती थी। और एक दिन जब उसके यहाँ से मेरे अकेले की दावत हुई, तो मुझे बड़ा शक हो गया। अगस्त महीने के आखिर दिन थे, जब मैं दावत खाने गया। खाना बड़ा अच्छा था—गरम गरम स्वादिष्ट चीजें खाते-खाते मेरी नाक पर, माथे पर गालों पर, पसीने की बूँदें फूट निकलीं और मैंने दो बार जल्दी जल्दी पानी पिया। बस हेमलता को घर से आदेश हुआ कि पंखा तो कर दे, जाने कहाँ जाकर बैठी है। मैं जिस कमरे में खा रहा था वहीं एक खूँटी पर ताड़ का एक पंखा रखा था। हेमलता कमरे में घुसी, तो जैसे उसके संग उसके मन ने होली खेल डाली—मुख पर गुलाल छा गई और वह स्वयं जैसे भींग-सी गई। पंखे के लिये उसने हाथ बढ़ाया, तो पंखा हाथ में न पकड़ सकी। वह गिर पड़ा; यानी मेरे सन्देह ने मुझसे पूछा—मैं ठीक हूँ? और हेमलता ने आकर चुपके से कह दिया—हाँ।

हेमलता साफ-साफ उद्विग्न हो रही थी। अब मैंने भी उसकी ओर अपनी पढ़ने वाली आँखें उठाईं - देखा, वह वास्तव में बड़ी सुन्दरी थी। जैसे उसके शरीर में मिट्टी का अंश है ही नहीं, बस सोना पन्ना, लाल—इन्हीं का संयोग है। एकहरे बदन की—मालूम होता था; जैसे—पतली कमर वाला मदिरा का गिलास चमक रहा हो। वह प्यारी-सी नाक और उसकी नगवाली कील तो कलेजे में गड़ रहती थी। कान की दोनों पत्तियाँ झिलमिल झिलमिल हिलतीं, तो ऐसा लगता; जैसे—छोटी-छोटी दो परियाँ उड़ खेल रही हों और जाकर उन्हें चूस ले। नीचे का होंठ तो; जैसे—अंगूरों ही का बना था—ऐसा भरा खून-सा छलक रहा था। दो बड़ी बड़ी आँखें कलेजा चूम लेती थीं, और दो गोरी सुडौल बाँहों में पतली खूबसूरत चूड़ियाँ खुनखुना-खुनखुना उठती थीं। ऐसी लड़की को प्यार करने में कोई विशेष यत्न नहीं करना पड़ता। ऐसी को तो न प्यार करना ही कमाल है। मैंने देखा—यही हेमलता है, जिसके हाथ से पंखा गिर पड़ा है, और यह वास्तव में सुन्दरी है। दिल तो करता था कि वह कमरे ही में रहे; पर उसके पंखे की हवा मैं बर्दाश्त न कर सका। मेरा खाना बन्द-सा हो गया। उस आसानी और तेजी से न तो पूड़ियाँ ही टूटती थीं और न मुँह में ही जाती थीं। बड़ी मुश्किल से मैंने हेमलता को पंखा रख देने पर बाध्य किया। × ×

इसके बाद हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह जान गये। रोज़ कहीं-न-कहीं आते-जाते देखा-देखी होती, रोज दिन मुसकरा कर खिलता, रोज रात मुझसे लिपट कर हँसती और स्वप्न में करवटें बदलती। मुझे निश्चय था कि हेमलता अब मेरी है, और मैं प्रसन्न था; किन्तु कौन जानता था कि इन प्रसन्नता की कलियों के पीछे विषधर—मेरा ही विषधर—मैं स्वयं ही विषधर बनकर अपने को डसने के लिये बैठा हूँ! मेरा ही तो वह राखी का भाव था, जो मेरे लिये राह बन गया! मैं कमजोर हूँ, इसलिये अपनी उस दृढ़ता और आदर्शवादिता पर दुखित हो रहा हूँ; किन्तु उस समय मैं और तरह का कमज़ोर था और अपने विचारादर्शों को तोड़ न सकता था। मैं सच कहता हूँ कि मुझे ज़रा भी मालूम होता कि आज हेमलता राखी लेकर आवेगी, तो मैं घर छोड़कर कहीं चल देता; किन्तु यह होनहार थी।

दोपहर के क़रीब मैं हेमलता और उसकी छोटी बहन को अपने आँगन में देखकर चकित होगया। वह अन्तिम प्रणय-दृष्टि ! आह, वह कैसी खिली और फिर कैसी मुरझा गई ! जब सुना कि वह राखी बाँधने आई है, तो मेरा दम खुश्क होगया। हेमलता को नहीं मालूम था ; पर मुझे मालूम था कि उसके अर्थ मेरे लिये क्या हो जायँगे। माना कि हिन्दू-घरों में लड़के लड़कियों को एक दूसरे को देखने का अवसर माँ बाप और किस तरीके से देते ; किन्तु क्या राखी ऐसी मजाक़ की चीज़ है ? मैं उस समय शायद पागल था, शायद अब भी पागल हूँ ; किन्तु मुझे उस पागलपन पर गर्व है, और अब भी उस पागलनपन का बनाया हुआ छाती में वह घाव है। माँ ने अन्दर ही से कह दिया कि मैं राखी बँधवा लूँ। मेरी इच्छा हुई कि हेमलता से कह दूँ कि यह तुम क्या ग़ज़ब कर रही हो ; पर न तो मौक़ा था और न शब्द ही निकलते थे ! मैं मन्दिर में था और भगवान् द्वार पर खड़े थे। मैं जानता था कि मेरे जीवन की बलि होने वाली है ; किन्तु भागता किस राह से ? दरी पर बैठकर मैंने धीरे से अपना हाथ बढ़ा दिया—मेरा हृदय काँप रहा था। हेमलता ने धीरे से कलाई में राखी बाँध दी...और माथे में एक लाल टीका काढ़ दिया। एक क्षण में मेरा बसाया हुआ संसार धुएँ-सा उड़ गया। मुझे चारों ओर ख़ाली-ही-ख़ाली दीखने लगा। मेरा हृदय रो पड़ा। मेरे सारे भाव—सारी आशाएँ—सारे स्वप्न, इन दो शब्दों में कराह कर मर गये—हेमलता...बहन। मैं आगे न बोल सका। मेरी कोयल के बैठने की एक ही डाली थी, और वह टूट चुकी थी—अब वह किस सहारे पर कूकती ?........

उस दिन मैं सो न सका। रात का आँखों ही में ख़ून हो गया। हवा ने रुख़ बदल दिया—सितारों ने स्थान बदल दिया—समय कैसा जा रहा था ! पृथ्वी किस वेग से घूम रही थी, और रात कैसी तिल-तिल कर धीरे-धीरे कट रही थी ! भावोद्वेग से मैं थक गया। दिल ने ख़ून उगल दिया, पर उस सूत की राखी का बन्धन न टूटा !! उस अँधेरी रात में एकाकी लेटे-लेटे मैं कराह उठा—अब मैं क्या होगा......? मैंने देखा तारे कह रहे थे—सब कुछ होगा ; किन्तु तुम्हारा और हेम का सम्बन्ध न होगा। राखी का स्पर्श मेरी कलाई में फिर जल उठा,...उफ़ !... इच्छा हुई कि उसे तोड़ डालूँ, वह हाथ ही काट कर फेंक दूँ ; किन्तु......मुझमें अब अपने से लड़ने का दम न रह गया था। उसे छूने तक की मेरी हिम्मत न पड़ी। वह साँपिन—भावी-सी—मेरे हाँथ में लिपटी ही रही !!

(३० वें पृष्ठ का शेषांश)

बात तो यह है, कि अपने साथियों को मिलाकर वह काम निकालने में पारंगत है।

लेनिन ने रूस से ईश्वर की सत्ता उठा दी थी। यथार्थ में, बोल्शेविकों के प्रथम पदाघात से ही वह भर-भरा कर गिरने लगी थी। पीछे धर्म के विरुद्ध प्रचार का जो भीषण तूफ़ान आया, उसने रूस में धर्म को भूमिसात् कर दिया, ईश्वर को कुछ इने-गिने पादरियों की चर्चा का विषय बना दिया और रूस में एक नवीन शक्ति की प्रतिष्ठा हुई, जिसे आप भगवान् कहिये, धर्म कहिये, या कुछ भी कहिये ; पर बोल्शेविक उसे कहते हैं—विवेक। इसी विवेक को स्टालिन भी मानता है। फिर भी, अनीश्वरवादी रूस में आज लेनिन को वही प्रतिष्ठा प्राप्त है, जो ईश्वरोपासक देशों में ईश्वर को। और स्टालिन को लोग इस अनीश्वरवाद का पैगम्बर मानते हैं।

अपने नूतन पैगम्बर स्टालिन की देख-रेख में वर्त्तमान रशिया ने सचमुच बड़ी तरक्की की है। वहाँ आज घर-घर शिक्षा का प्रचार हो गया है। स्त्री-पुरुष, वृद्ध, बच्चे सभी सुखी हैं। औद्योगिक बातों में भी रूस अब किसी देश से पीछे नहीं है। कल-पुर्जों की ढलाई भी अब वहाँ होने लगी है। सैनिक तैयारी तो उसकी इतनी दृढ़, इतनी संगठित है कि आज सारा संसार उससे भयभीत हो रहा है। हाल ही में वहाँ जो लाल सेना का प्रदर्शन हुआ था, उसे देख कर लोग दंग रह गये थे। कहने का तात्पर्य यह कि आज रूस किसी बात में किसी देश से पीछे नहीं है। प्रत्युत वह कई बातों में औरों से आगे है। कैसे ? इसका विशद वर्णन कभी पीछे करूँगा। अभी इसे यहीं समाप्त करता हूँ।

वर्तमान रूस का राष्ट्र-पति—स्टालिन

लेखक—श्रीयुत कामेश्वर शर्मा 'कमल' साहित्य-भूषण

संसार में इस समय डिक्टेटरशाही का बोलबाला है। इटली में वर्षों से मुसोलिनी डिक्टेटर है, जो प्रजा की पुकार पर ध्यान न देकर, सिर्फ अपनी डफ़ली बजाने में ही तल्लीन है। तुर्की में कमालपाशा हैं, जिनकी देख-रेख में निस्सन्देह तुर्की की बड़ी उन्नति हुई है। ईरान में रज़ाशाह पहलवी हैं, जिनके विषय में, 'हंस' में मैं पहले ही लिख चुका हूँ। संसार के अभी सबसे टटके डिक्टेटर हैं—हिटलर, जिन्होंने प्रभुता प्राप्त कर केवल जर्मनी में ही नहीं, प्रत्युत सारे संसार में तहलका मचा दिया है। हिटलर ने काम तो आरम्भ किया था मुसोलिनी को गुरु मानकर; परन्तु उसने जर्मनी में इतनी विभीषिका उत्पन्न कर दी है, जिससे यह कहना पड़ता है कि उसने अपने गुरु को भी मात कर दिया। मुसोलिनी ने केवल अपने नीति-विरोधियों का ही बहिष्कार करवाया था; किन्तु हिटलर उन सब लोगों को अधिकार-वंचित करने पर तुला है, जो उनके सामाजिक विचार से घृणा करते हैं; और राजनीति में उनके शत्रु हैं। प्रो० आइन्स्टीन—विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक—का केवल यहूदी होने के कारण निकाल बाहर करना, यहूदी लेखकों की लिखी पुस्तकों और साहित्य को जलाकर अपनी रद्दी चीजों का प्रचार करना, कार्लमार्क्स, लेनिन, हेजेल प्रभृति लिखित साम्यवाद-साहित्य का बहिष्कार कर देना आदि ऐसे अमानुषिक कार्य हैं, जिनसे हिटलर की राजनीतिक योग्यता का सर्वथा अभाव सिद्ध होता है। आज जर्मनी की जनता में भीतर-ही-भीतर जो असन्तोष की आग सुलग रही है, कौन कह सकता है कि एक दिन वह बलात् धधक न उठेगी। खैर, यहाँ हमें हिटलर की नीति की चर्चा अभीष्ट नहीं है।

° ° °

हम यहाँ उस स्टालिन का परिचय पाठकों को देना चाहते हैं, जिसे साम्राज्यवादी देश, पूँजीपति राष्ट्र रूस का 'डिक्टेटर' बताते हैं; पर स्टालिन स्वयं उनके इस कथन का खंडन करते हुए कहता है—मैं डिक्टेटर नहीं हूँ। रूस के डिक्टेटर हैं वे किसान और मज़दूर, जिनकी कमाई की बदौलत आज हमारा देश उन्नति की सीढ़ी पर अग्रसर हो रहा है। और मैं? मैं तो उन्हीं का चुना हुआ, उन्हीं की इच्छा से उस कमिटी का एक चेयरमैन हूँ, जो रूस के हित के विचार से नीति या कार्य-क्रम निर्धारित करती है। चेयरमैन होने के कारण ही सेन्ट्रल कमिटी द्वारा निर्धारित कार्य-क्रम, निश्चय आदि के सम्बन्ध में मुझे विभिन्न सोवियटों को लिखना पड़ता है। सचमुच ही स्टालिन को डिक्टेटर न कहा जाना चाहिए; पर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह अपने सिद्धान्त का कट्टर आदमी और विचारक है, अतः 'प्रोलेटैरियन वैनागार्ड' में उसका बहुत प्रभाव पड़ता है। वह एक तपस्वी की तरह सदा रूस की उन्नति-साधना की चिन्तना किया करता है; अतः उसके विचार अन्यों की अपेक्षा अधिक परिपक्व और व्यावहारिक होते हैं।

° ° °

स्टालिन अपनी धुन का बड़ा ही पक्का है और यही कारण है, जो लेनिन के बाद उसके सरीखा कोई दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति रूस को नहीं मिला। अपने धुनी जीवन की शिक्षा स्टालिन ने स्वयं लेनिन से ही पाई थी। उस समय लेनिन के दो प्रसिद्ध उत्साही कार्यकर्त्ता थे। एक ट्रातस्की और दूसरा यही स्टालिन। प्रारम्भ में, ट्रातस्की और स्टालिन दोनों में खूब प्रेम था; किन्तु बाद में मत-भेद हुआ। मत-भेद का कारण यह था कि ट्राटस्की यह चाहते थे कि जिन किसानों को जमीन दी गई है, उनकी सब आय सरकारी खजाने में आनी चाहिए; ताकि देश का प्रत्येक व्यक्ति एक ही स्थिति में रहे। ट्रातस्की के मतानुसार, मध्यम और धनी श्रेणी के व्यक्ति सर्वथा त्याज्य थे; किन्तु स्टालिन इसके विपरीत था। वह कहता था कि जिन किसानों को जमीन मिल गई और उससे वह लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं, उनको यदि इतना शीघ्र छेड़ोगे, तो अच्छा न होगा। घर ही में द्वन्द्व शुरू होगा; पर, ट्रातस्की थे पूरे क्रान्तिवादी। परिणामतः कार्यकारिणी में जब यह बात पेश हुई, तो ट्रातस्की बहुमत से हार गये। अन्त में यहाँ तक नौबत आई कि रूस

से भागकर उन्हें अपना जीवन-यापन करना पड़ा। इन दिनों वह फ्राँसिसको द्वीप में हैं।

महामना लेनिन की दृष्टि में ट्रातस्की बहुत योग्य जरूर थे; किन्तु कभी-कभी वह ऐसा कार्य भी करने पर उतारू हो जाते थे, जिसे लेनिन पसन्द न करते थे। निम्न लिखित शब्दों में ट्रातस्की ने ऐसा स्वयं स्वीकार किया है—

'अनेक बार लेनिन की बातों से मेरा मतभेद हो जाता था; किन्तु, हरबार परिणाम से मुझे यही मालूम हुआ कि मैं गलती करता था और जो लेनिन कहते थे, वही सत्य होता था।' किन्तु, स्टालिन के लिये यह बात नहीं कही जा सकती। वह लेनिन की योजनाओं का अनुकरण अन्धे की तरह करता था और उसके इसी सिद्धान्त से खुश होकर लेनिन ने उसका नाम ही 'स्टालिन' रख दिया। रूसी भाषा में 'स्टालिन' शब्द का अर्थ है—'फौलाद का आदमी' जिसे न तो किसी के मारने में हिचकिचाहट हो और न स्वयं मार खाने में भय। अपने इसी विशेष गुण के कारण लेनिन की मृत्यु के बाद उसे सेन्ट्रल कमिटी ने वह इज्जत दी, ऐसी प्रतिष्ठा प्रदान की, जो ट्रातस्की और जीनोविव-सरीखे विद्वानों को भी न मिली। ट्रातस्की के देश-निर्वासन के सम्बन्ध में पूछे जाने पर एक बार स्टालिन ने कहा था—

'उसमें मेरा कोई हाथ नहीं वह तो रूस का शासन-कार्य चलाने वाले साम्यवादी दल की सेन्ट्रल कमिटी के निर्णय से हुआ।'

• • •

सन् १८७९ ई० में स्टालिन का जन्म जिआर्जिया के एक गाँव में, मोची माता-पिता के घर हुआ था। उसका लड़कपन टिफलिस में बीता, जहाँ वह शरारती लड़कों के साथ हर तरह का उपद्रव किया करता था। चौदह वर्ष की आयु में वह एक धार्मिक स्कूल में पढ़ने के लिये भेजा गया; पर धर्म का उसके ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा; बल्कि वहीं उसे पहले-पहल धर्म के प्रति विद्रोह का भाव पैदा हुआ। परिणामतः तीन वर्ष के बाद, सत्रह वर्ष की आयु में पहुँचते ही वह सोशल डेमोक्राटिक दल का एक सदस्य बन गया। उन्हीं दिनों उसने अपना एक गुप्त दल भी तैयार कर लिया था। साथ ही मार्क्स के साम्यवादी सिद्धान्तों को भी मनन करता जाता था। पर, स्कूल के अध्यापकों को ज्योंही स्टालिन के क्रान्तिकारी विचार ज्ञात हुए, वह स्कूल से निकाल दिया गया।

सत्ताईस वर्ष की उम्र में वह खुल्लम-खुल्ला क्रान्तिकारी हो गया और अपना बनावटी नाम रक्खा 'कॉमरेडकोवा' कॉमरेडकोवा के अद्भुत साहस और पराक्रम को देखकर उसके सभी साथी दंग रह जाते थे। जिआर्जिया में जो सबसे पहली हड़ताल हुई थी, उसका श्रेय उस समय 'कॉमरेड-कोवा' ही को था। टिफलिस और बातूल में भी इसने सम्राट् ज़ार के विरुद्ध बगावत के भावों का प्रचार किया था।

सन् १९०२ में वह पहली बार गिरफ्तार हुआ। सजा में साइबेरिया-वास मिला; किन्तु एक ही वर्ष के भीतर वह वहाँ से भाग निकला। सन् १९०४ में फिर टिफलिस आया। उन्हीं दिनों सोशल डेमोक्राटिक दल में गहरा मत-भेद हुआ, जिनके कारण 'बोलशेविक' और 'मेन्शेविक' दो दल हो गये। बोलशेविक-दल का नेता था लेनिन। कहना न होगा कि विद्रोही 'कॉमरेडकोवा' (स्टालिन) को लेनिन की शक्ति में आकर्षण और विश्वास हुआ; अतः उसने जाकर लेनिन का शिष्यत्व स्वीकार किया और तब से बराबर वह गुरुवर लेनिन के ही साथ रहा।

इसके बाद उसने काकेशस के कितने ही विद्रोहों में प्रमुख भाग लिया। लेनिन को अपने दल को चलाने के लिये उस समय धन की बड़ी आवश्यकता थी; अतः लेनिन ने धनियों के लूटने का आदेश किया और उन लुटेरों का सरदार था स्टालिन। स्टालिन ने कितने ही भयानक डाके डाले। एक डाके में तो उसने साढ़े-तीन लाख रूबल प्राप्त किये थे। यह सब धन बोलशेविक-दल के कार्यों में खर्च होता था। इस प्रकार के विद्रोहात्मक आन्दोलन में भाग लेते हुए, वह पाँच बार गिरफ्तार करके साइबेरिया भेजा गया; पर पाँचो बार बहादुरी के साथ वहाँ से भाग निकला। सन् १९१२ में वह बोलशेविक-दल का गुप्त इन्टेलिजेन्स अफसर था। १९१२ के बाद पुनः वह एक बार गिरफ्तार हुआ; पर इस बार वह भाग न सका। पाँच वर्षों तक उसे साइबेरिया की अस्वास्थ्यकर बर्फीली वायु के अनेक कष्ट उठाने पड़े। सन् १९१७ में जब लाल-क्रान्ति सफल हुई, तब स्टालिन को उस दूभर जीवन से मुक्ति मिली।

• •

क्रान्ति के बाद रूस में लेनिन की अध्यक्षता में, जो पहली सोवियट स्थापित हुई थी, उसमें स्टालिन को एक बहुत मामूली दर्जा मिला था। लाल-क्रान्ति के भीषण

युद्ध में सेनापति ट्रातस्की के नीचे रहते हुए भी उसने ऐसा कार्य किया था, जिसकी प्रशंसा मुक्त कंठ से लेनिन ने की थी। जिस समय क्रान्स्टएट के विद्रोही मल्लाहों में अशान्ति की लहर उठ रही थी, उस समय स्टालिन ने ही अपनी बुद्धिमत्ता से उन्हें शान्त किया था। इस गुरुतर कार्य के बाद ही वह सेण्ट्रल कमिटी का जेनरल सेक्रेटरी बना दिया गया और इसी पद से आज आगे आकर वह निखिल सोवियट सभा का सभापति है।

• • •

पाठक सोचते होंगे, क्या स्टालिन सचमुच ही बहुत विद्वान् और बुद्धिमान है? नहीं, उसने कोई अधिक अध्ययन नहीं किया है, और न उसकी मानसिक शक्तियाँ ही बहुत ऊँची हैं। उसके लेखों से भी कोई पांडित्य नहीं टपकता। वह कोई वक्ता भी अच्छा नहीं है और न रूसी भाषा का अच्छा जानकार ही। उसकी बात-चीत का ढंग भी बड़ा अक्खड़ है, और उसकी आदतें रूखी; किन्तु, उसकी विशेषता यही है, कि उसने अपने सुखों का कभी ध्यान नहीं किया।

क्रेमलिन में उसका ऑफ़िस सीधा-सादा है, उसमें कोई तड़क-भड़क नहीं, किसी प्रकार की साज-सज्जा नहीं। अगल-बगल कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं; सामने कार्लमार्क्स का एक बड़ा-सा तैल-चित्र रक्खा है। कमरे की सभी चीज़ें बिना किसी शान-गुमान के अपने-अपने स्थान पर पड़ी हैं। काम के समय स्टालिन कभी कालर भी नहीं लगाता, रूस के मजूरों की जैसी पोशाक है, वैसी-ही वह भी धारण करता है। ऑफिस के कार्य में उसे इतनी अस्त-व्यस्तता रहती है, कि बाहर के आने वाले मनुष्यों के सामने उसे सिर उठाने की भी फ़ुर्सत नहीं होती। किसी समय जब वह बेकार रहता है, तो विचार करते-करते सामने पड़े कागजों पर वृत्त, चित्र आदि अंकित कर लेता है।

काली चमकती आँखें, घनी काली मूँछें, ऊँचे गाल आदि सब बातें उसकी विचित्र-सी हैं। आधा मुँह मूँछों से ढका रहता है। बालों को भी वह सुव्यवस्थित अवस्था में रहने देना नहीं चाहता, दिन-भर उँगलियों से खोद-खोद कर इधर-से-उधर करता रहता है। आवाज़ बड़ी कड़ी है, मिठास का मानों नाम नहीं; किन्तु वह सुनने लायक होती है; व्यर्थ नहीं। अपने निवास-गृह को भी स्टालिन ने मजूरों की कोटि का ही बनवाया है। भोजन के लिये उसे सजे-सजाये कमरे की जरूरत नहीं। काम में व्यस्त होने पर वह कभी-कभी ऑफिस की मेज पर ही कलेवा कर लेता है। घर पर खाने के साथ अपने दो बच्चों को भी बैठा लेता है। पहली स्त्री को इसने तलाक दे दी थी, दूसरी स्त्री का हाल ही में देहान्त हुआ है। इसके साथ १९१९ में जब स्टालिन ने विवाह किया था, तब वह १६ वर्ष की थी। ये दोनों बड़े सुखी थे।

• • •

स्टालिन बड़े तड़के उठता है। मनोविनोद और शौक पूरा करने का समय उसके पास नहीं। दिन-भर काम करके जब घर लौटता है, तो कभी-कभी भ्राँझ या बाँसुरी बजाकर अपना मनोरंजन कर लिया करता है, बस, इतने ही उसके खेल हैं। घर पर वह तम्बाकू पीता और बाहर सिगरेट से काम चला लिया करता है।

वह कभी-कभी अपने ही ऊपर क्रुद्ध हो जाता है, और अपने को गालियाँ देने लगता है। एक बार कोई सहयोगी उससे मिलने गया। उसके कमरे से चिल्लाने की कड़ी आवाज़ आ रही थी, जैसे कोई कह रहा था—अरे, क्या तू अपने को मार्क्स का अनुयायी समझता है? तू मूर्ख है! क्यों? अरे तुझे तो मार्क्स की दाढ़ी के बाल भी सुलझाने की तमीज़ नहीं...... इत्यादि। थोड़ी देर बाद जब वह आदमी भीतर गया, तो स्टालिन से पूछा—वह दूसरा आदमी कहाँ गया?

स्टालिन ने पूछा—कौन दूसरा आदमी?

सहयोगी ने कहा—वही, जिस पर आप बिगड़ रहे थे? स्टालिन ने कहा—वह मैं ही हूँ। मैं नित्य आधे घंटे अपने को दर्पण के सामने गालियाँ दिया करता हूँ।

ऐसा विचित्र मनुष्य, जो अपने को नित्य कोसा करता है, आज सोलह करोड़ रूसियों का विधाता है। वह बोल्शेविज़्म का साक्षात् अवतार है। ट्रातस्की पहले कहा करता था—हमारे दल में वह सबसे प्रमुख था। वास्तव में वह बड़ा ही निर्भीक और परिश्रमी है। प्राणों का तो मोह उसे छू नहीं गया। जिद्दी भी परले दर्जे का है, मनोनीत कार्यों के करवाने के लिये वह अपने सहयोगियों को उत्साहित करता रहता है, और साथ ही उत्साह देकर उनसे कार्य लेना भी खूब जानता है। सभी

(शेषांश २७ वें पृष्ठ के नीचे)

अछूत

लेखक
श्रीयुत इन्द्रनारायण झा 'इन्द्र'

अ

वह अछूत था, अस्पृश्य। उच्च वर्ण वाले हिन्दू उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। देव-मन्दिर में, जहाँ और सभी कोटि के हिन्दू जा सकते हैं, उसे वह अधिकार प्राप्त न था। मन्दिर के द्वार पर उसके जाते ही जन-समुदाय में मानो खलबली मच जाती थी। उसकी जाति के लिये घर बनाने का स्थान अलग था। जहाँ वे लोग रहते थे, वह कहलाता था—अछूत-टोला। सड़क पर जाते समय यदि कोई उच्च हिन्दू दूसरी ओर से आता, तो उसे सड़क से नीचे हो जाना पड़ता। लोगों के कुए, बरामदे या घर पर, कहीं भी उसकी पहुँच न थी। नदी में सर्वसाधारण जिस घाट पर स्नान करते हैं, वहाँ वह नहीं जा सकता था। वह प्रतिदिन स्नान करता, देवालय के द्वार पर जा दूर से ही देव-दर्शन करता, दूसरों की तरह वह भी रामनाम बड़ी श्रद्धा और सच्ची भक्ति से लेता; परन्तु तो भी उसे लोग अपने पास नहीं फटकने देते। उन्हें उसकी आकृति, रंग, वाणी तथा शरीर, सभी से घृणा थी। वे उसकी परछाहीं से भी स्पर्श करना पाप समझते थे। उच्च कोटि के ब्राह्मण, जिनकी मर्यादा उसकी—अछूत कहलाने वालों की—सेवा पर निर्भर थी, जिनकी सहायता से वे घर के विभिन्न शुभ कार्यों को निर्विघ्न समाप्त करने में समर्थ होते थे, प्रातःकाल उसका मुख तक देखने को अशुभ समझते थे।

उसका नाम था—मक्खन। पर लोग उसे 'मखना' कहा करते थे। अवस्था करीब २० वर्ष की थी। परिवार में केवल एक बुढ़िया माता को छोड़ और कोई न था। जाति का था चमार; पर रहता बड़ा साफ-सुथरा था। पर, कुटिल, अधिकांश मैले-कुचैले, अपवित्र हिन्दुओं से अपनाए जाने के लिये क्या वही साधन पर्याप्त था? नहीं, पुरुष का व्यक्तित्व, रहन-सहन, आचरण कैसा भी हो, इनसे उन्हें कुछ मतलब नहीं, वे चाहते थे कि वह 'अछूत' कहलाने वाला न हो। पर मक्खन का ध्यान उधर किञ्चित भी न जाता था। अपने को 'अछूत' समझना उसे कर्त्तव्य प्रतीत होता था। उसे वह जगन्नियन्ता की इच्छा समझ सुख का सुखद आवरण देकर तिरस्कार में भी अपूर्व आनन्द अनुभव करता था। जब वह मन्दिर के द्वार पर ही धूल में सोकर मूर्त्ति को साष्टांग दण्डवत करता, तो ऐसा मालूम होता कि उसके रोम-रोम में आस्तिकता और भगवान् की सच्ची भक्ति विराजमान है। उस समय कोई कानों में चिल्ला-चिल्ला कर कहता रहता कि यह 'हिन्दू है', वहाँ की वायु कहती रहती थी कि 'यह हिन्दू' है। सहृदय जन अपने हृदय में कह रहे थे कि यह 'हिन्दू है', समाज में इसे भी समान अधिकार प्राप्त होना चाहिये, पर उसे कार्य रूप में परिणत करने का साहस किसी में न था।

छू

'थोड़ा हमें भी दो बाबूजी'—भीड़ से कुछ दूर पर खड़े हुए एक व्यक्ति ने बड़ी नम्रता से कहा।

'बड़ा लाट साहब का नाती बना है, जो सबसे पहले इसी को दूँ। है साला अछूत, लेकिन चाहिए सबसे पहले इसी को। मालूम होता है, जैसे यह इसी के लिये हो'—मन्दिर के पुजारी पण्डित दयाशंकरजी ने बड़ी ही कटुभाषा में उत्तर दिया।

कल भाद्र कृष्ण अष्टमी थी। मक्खन ने सुन रक्खा था कि उक्त तिथि में व्रत रखने से आनन्दकन्द-नन्दनन्दन श्री कृष्ण भगवान् प्रसन्न होते हैं; अस्तु, उसने भी व्रत रक्खा था। प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो, बहुत शीघ्रता से डग बढ़ाते हुए वह मन्दिर चला। रास्ते में सोचता जाता था कि 'आज उसके आराध्यदेव कितने प्रसन्न होंगे! उसे जो कुछ प्रसाद मिलेगा, उसे वह कितने चाव से खायगा; पर कुटिल, स्वार्थ-लोलुप पुजारी महोदय ने उसे प्रसाद नहीं दिया। प्रसाद उसे एक ब्राह्मण के बालक से, जो उसी के साथ भैंस चराता था, मिल गया; इसलिये प्रसाद न मिलने पर उसे उतना दुःख नहीं हुआ, जितना पुजारी दयाशंकर के अन्तिम वाक्य से हुआ। वह सोचता, 'मैंने कब कहा था कि यह मेरे ही लिये है; पर ऐसा भी तो नहीं है कि मुझे उसे ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त न हो।—घर तो आया; पर वह एक दम अशान्त था।

किसी कार्य में उसका मन न लगता था। रह-रहकर उसके मन में वही अंतिम वाक्य गूँज उठता था—मालूम होता है जैसे यह इसी के लिये हो।

उस दिन रात में जब वह भैंस चराने गया, तो खेतों में ब्राह्मण, हलवाई आदि सभी जाति के लोगों को वहाँ मवेशी चराते पाया। बस, वह भूली हुई बात उसे फिर याद आ गयी। वह पुनः शान्त हो सोचने लगा—ये भी तो मुझ जैसे हैं, मैं रंग का काला हूँ, तो ये भी तो वैसे ही हैं। मैं तो नित्य स्नान करता हूँ, मन्दिर जाकर दर्शन करता हूँ; पर ये तो महीनों स्नान नहीं करते और प्रसाद पाने के दिन छोड़कर कभी देवालय भी नहीं जाते। मुझ से तो इनमें कोई विभिन्नता नहीं है। ये हिन्दू हैं, तो मैं भी हिन्दू हूँ। मैं भी उसी देवी देवता को मानता हूँ, जिसे ये मानते हैं। तब इतनी विभिन्नता क्यों? हाँ विभिन्नता है; वे स्पृश्य हैं और मैं हूँ 'अछूत' अस्पृश्य; पर इतनी ही भिन्नता के लिये यह महान् अन्तर कि वे कितने भी अशुद्ध रहें, पैर में सैकड़ों मन धूल लगी हो, मन्दिर के ऊपर चले जायँ और मैं इतनी निष्ठा रखते हुए भी द्वार पर भी जाने का अधिकारी नहीं! क्या यही न्याय है?

त

मक्खन के गाँव के मालिक थे—बाबू हरीकृष्णजी। वे कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर अपने घर उत्सव किया करते थे। विविध प्रकार के नाच-गान का होना स्वाभाविक ही था। कत्थकों, भाँड़ों के साथ साथ गणिकाएँ भी बुलाई जाती थीं। आज उन्हीं की ओर से मन्दिर में उत्सव था। लोग एक-एक कर आकर बैठ रहे थे।

मानव-हृदय अधिक वेदना सहने की शक्ति नहीं रखता। सीमा से थोड़ा भी अधिक होने से उसे अधिक काल तक सहना दुश्वार हो जाता है। जब उसकी अति हो जाती है, उसे शीघ्र ही निर्मूल भी होना पड़ता है। मक्खन हृदय का बड़ा ही सरल था। उस पर भी ईश-वन्दना ने उसमें अत्यधिक सात्विकता ला दी थी। आज दिन भर वह पिछली बातों पर सोच चुका था, जिससे अब उसमें किञ्चित् उद्विग्नता भी आगई थी; इसलिए मन बहलाने की इच्छा से उसे भी उत्सव देखने की लालसा हुई। पैरों ने जाने की इच्छा प्रकट की, हृदय ने 'हाँ' कहा और कर्त्तव्य ने कोई बाधा नहीं दी। अस्तु, वह चल पड़ा और अपने पूर्व परिचित स्थान पर—मन्दिर के द्वार पर—आकर रुक गया।

पर, यहाँ आकर फल विपरीत ही हुआ। वह आया था पुजारी के कठोर वर्ताव से दुखित हृदय को ईश-दर्शन और भगवद्भजन से आह्लादित करने; पर मन बहलाने के अतिरिक्त वेश्या को मन्दिर के भीतर नाचते देख, उसकी मनोवेदना शतगुण अधिक हो गई। शरीर में हजारों बिच्छू के दंशन की-सी पीड़ा होने लगी। वह गुनगुनाने लगा—हाँ! ईश्वर! अब मैंने समझा, यह तुम्हारी इच्छा नहीं है कि मैं तुम्हारे समीप, तुम्हारे अति निकट रहने वाले हिन्दुओं के समीप जाऊँ। यह है उन पाखंडी हिन्दुओं की लीला। आह! क्या मैं उस वेश्या और इन यवनों से भी नीच हूँ? क्या वे हिन्दू हैं? नहीं तो, उनकी सब आकृति विधर्मियों की-सी थी। तो क्या मैं वास्तव में उनसे भी नीच हूँ? नहीं, कभी नहीं, नीच वे हैं, जो हम अछूतों को नीच कह कर हम लोगों से घृणा कर अपना अहित कर रहे हैं!

अब वहाँ अधिक देर तक ठहरने की उसमें क्षमता नहीं थी। वह उठा और सीधे खेत की ओर चला। इस दृश्य को देखकर उसकी जो कुछ भी बची-खुची आशा थी, वह भी उसे उद्विग्न छोड़ चली गयी। वह चला जाता था, और मन-ही-मन गुनगुनाता जाता था—तो क्या, ऐसे समाज में, जहाँ किसी के अस्तित्व तक की गिनती न हो, रहना श्रेयस्कर है? नहीं, हृदय अब इतना अपमान नहीं सहन कर सकता। वे स्वार्थी हैं। हाँ अवश्य हैं, नहीं तो मेरी 'अछूत' कहलाने वाली जाति से उनका कितना भारी उपकार होता है, इसकी ओर वे तनिक भी ध्यान नहीं देते? अछूत तो उनके घर की गन्दगी साफ किया करते हैं। वे ही तो समय आने पर उनके जान-माल की रक्षा किया करते हैं। पर, इसकी उन्हें कुछ भी परवाह नहीं। भले ही न रहें। अब अछूत भी उनका साथ न देंगे। इस प्रकार कई बातें उसके मन में आतीं और चली जाती थीं। आना भी तो स्वाभाविक ही था।

को

'देखो, इस समाज में रहोगे, तो योंही ठोकरें खाते फिरोगे। कभी तुम्हें उचित स्थान नहीं देंगे। इसी से तो कहता हूँ कि प्रभु ईशु की शरण में आओ। वे सब को

स्थान देते हैं। देखो न, मुझे तो तुमने पहले भी देखा था, उस दिन रामप्रसाद बाबू ने कितनी मार मारी, उस पर भी आश्चर्य्य यह कि मेरा कोई अपराध न था। अब ईशू की शरण में आने से कितना प्रसन्न हूँ! अच्छा भोजन करता हूँ, अच्छे कपड़े पहनता हूँ और साहबों के साथ खूब सैर किया करता हूँ। तुम भी अगर ईशू की शरण में आओगे, तो इन सुखों का अनायास उपभोग करोगे।'—अछूत से क्रिश्चन बने मिशनरी के एक आदर्मी ने कहा।

'नहीं मैं वह सुख नहीं चाहता। मैं इसी समाज में रहकर सुखी होना चाहता हूँ। शीघ्र ही वह दिन आवेगा, जब हिन्दू लोग हम लोगों को अपनावेंगे।'—उत्तर में मक्खन ने कहा।

'तुम विश्वास करो, ऐसा कभी न होगा। यदि ऐसी आशा में रहोगे, तो सदियों बीत जायँगी और योंही दुःख झेलते रहोगे। कहता हूँ, प्रभु ईशू की शरण में आओ।'—उसने फिर कहा।

'तब क्या वे मन्दिर में जाने देंगे?'—मक्खन ने पूछा।

उसने कहा—अवश्य, यदि तुम्हें नहीं तो तुम्हारे बच्चों को। क्या तुमने देखा नहीं था, उस दिन मन्दिर के उत्तर तरफ वाले बरामदे पर जो साँवले रंग के साहब तहकीकात करने आये थे, वह भी तो पहले हमही लोग-जैसे अछूत थे। वे बच्चे थे तभी प्रभु ईशू की शरण में आए। उन्हें पाला-पोसा गया। शिक्षा दी गई, नोकरी मिली, तब आज सुख से जीवन बिता रहे हैं। इसीलिए तो कहता हूँ कि दुःख मत झेलो, ईशू की शरण में आओ और सुख से रहो। बोलो आते हो?

हृदय की गति अबाध है। कब किधर जायगा, सोचना कठिन है। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े तक के हृदय को कोई वश में नहीं कर सकता। तोता, जब तक पिंजड़े में रहता है, कितनी स्वादिष्ट वस्तुएँ उसे खाने को दी जाती हैं, दूध-भात, फल-फूल; पर तोभी उसे जंगल का स्वाधीन एवं सुखमय जीवन जितना भाता है, उतना वह बन्दी-जीवन नहीं।

परिस्थिति ने लोभ दिया, कर्त्तव्य का बोझ हल्का हुआ और मक्खन का पैर डिगा। उसने अधिक कुछ सोचे बिना ही कह दिया—यदि वे मुझे अपनायँगे, तो मैं उनकी शरण में अवश्य जाऊँगा।

'अच्छा तो कल मैं गाड़ी लाऊँगा। मेरे साथ चले चलना।'—कहकर वह चला गया।

उ

दूसरे दिन प्रातःकाल ही समूचे गाँव में यह बात विदित हो गई कि मक्खन आज ईसाई बनेगा।

प्रातःकाल जब वह नदी-स्नान करने चला, तो लोग उसे देखकर हँसने लगे और धीरे-धीरे आपस में कुछ बोलने लगे, मानो वे उसका उपहास कर रहे हों; पर इसकी उसे तनिक भी परवाह न थी; क्योंकि वह तो यही सोच कर आनन्दित हो रहा था कि वह ठुकराने के बदले अपनाया जायगा। वह भी किनसे? उनसे, जिनकी तूती आज सम्पूर्ण संसार में बोल रही है।

उस दिन गाँव के छोटे से बड़े सब के मुख पर यही था कि मक्खन ईसाई हो गया। तत्स्थानवर्त्ती—हिन्दू-सभा के अध्यक्ष पण्डित केशवदेवजी ने भी सुना। उन्हें तो यह सुन कर काठ मार गया। वे दौड़े हुए सीधे मक्खन के घर पहुँचे और उससे प्रतिज्ञा तोड़ने की प्रार्थना की; किन्तु उसने कोरे शब्दों में उत्तर दिया—नहीं सरकार, मैं अब हिन्दू नहीं रहूँगा। अब जाता हूँ वहाँ, जहाँ अपनाया जाऊँगा और सुख से रहूँगा।

'क्या कहा, सुख से रहूँगा? वहाँ तुम्हें सुख मिलेगा? कभी नहीं, ऐसा कभी मत सोचो मक्खन। वहाँ तुम यहाँ से अधिक ठुकराये जाओगे। वहाँ तुम्हें लोग 'काला' कह कर पुकारेंगे। वहाँ तुम्हें अधिक मनोदुःख सहना पड़ेगा। घबड़ाओ मत, हम सभी इसी प्रयास में हैं कि तुम दलित, अछूत, अस्पृश्य न रहकर हम सब से हिल-मिल कर हमारे अति निकट रहो और यथोचित सम्मान प्राप्त करो। बिना समझे-बूझे किसी की बात में आकर कुछ न करना चाहिये। उसमें भी धर्म परिवर्त्तन? भगवान् ने इसीलिये इसका निषेध किया है।'—पण्डित केशवदेवजी ने कहा।

केशवदेवजी की बातों ने अपना पूर्ण प्रभाव दिखलाया। उनके कुछ शब्द—'वहाँ भी ठुकराए जाओगे', 'भगवान् ने निषेध किया है'—बारम्बार मक्खन के शरीर में रोमाञ्च ला देते थे।

उसने सहमते हुए बड़ी कातरता से पूछा—तो क्या भगवान् धर्म बदलने को कहते ही नहीं?

'नहीं, कदापि नहीं, उन्होंने तो यहाँ तक कहा है कि अपने धर्म में तो निधन होजाना भी अच्छा ; पर दूसरा धर्म बड़ा ही भयावह है।'—निशाना अचूक लगते देख पण्डित केशवदेवजी ने कहा।

'तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं कभी ईसाई न बनूँगा' आप विश्वास रक्खें ; पर सरकार ! उन लोगों की बातें बड़ी मुलायम और विचार बदलने में बड़ी अक्सीर होती हैं, सो थड़े दिन मुझे अपने ही साथ रखते, तो अच्छा होता।'—मक्खन ने कहा।

पं० केशवदेवजी उसे अपने साथ लेगये और उसे अपने गाँव की पाठशाला में चपरासी के स्थान पर नियुक्त कर दिया।

ठा

मक्खन ईसाई न हो सका। वह अब उस गाँव की पाठशाला में चपरासी था। लड़के उससे बहुत हिलमिल कर रहते। मृदुभाषी होने के कारण अधिकारीवर्ग तो प्रतिष्ठा किया करता था।

• • •

वैशाख का महीना था। कड़ी धूप से संसार झुलस रहा था। रह-रहकर लू चल रही थी। स्कूल में छुट्टी हो जाने के कारण लड़के घर आ रहे थे। पीछे-पीछे कुछ गाँव वाले भी आ रहे थे। पुजारी दयाशंकर का पुत्र भी आ रहा था। वह गरमी सहन न कर सका और एकाएक मूर्छित होकर गिर पड़ा। लड़के डर से भागे। गाँव वाले स्वयं ही सूर्य के प्रखर उत्ताप से जले जा रहे थे ; इसलिये देखा अनदेखा कर दिया। बालक ज्यों-का-त्यों पड़ा रह गया। पीछे से मक्खन आ रहा था। वह डाकखाने जा रहा था। बालक को यों पड़ा देख, उसका हृदय दहल गया। उसने शीघ्र उसे उठाया और छाया में लेजाकर उसके मुख पर छींटे दिये। जब लड़के को होश हुआ, तो उसे पण्डितजी को सौंप आया। लड़के के मुख से सुनकर कि गाँव वालों ने ध्यान नहीं दिया और मक्खन ने ही उनके पुत्र की रक्षा की है, पुजारीजी का हृदय उसके प्रति आदर-पूर्ण हो गया।

ओ

दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह पुनः पुजारीजी के घर गया। मार्ग में भय करता था कि कहीं पण्डितजी टूट न पड़ें ; परन्तु कर्तव्य की विजय हुई। वह अनिच्छा रहते हुए भी वहाँ पहुँचा और बड़ी कातरता से पुकारा—पुजारीजी महाराज हैं ?

'कौन है'—कहते हुए पण्डित दयाशंकर पुजारी बाहर निकले। मक्खन के पैर काँप रहे थे कि कहीं पुजारीजी बिगड़ न खड़े हों ; पर यह क्या ! पुजारीजी तो उसे अपने हृदय से लगा कर रोने लगे।

मक्खन अवाक् था। वह इस पहेली का अर्थ एक दम नहीं समझ रहा था।

परन्तु जब पुजारीजी की हिचकियाँ बन्द हुईं और हृदय का बोझ हलका हुआ, तो वह कहने लगे—भाई मक्खन ! मुझे क्षमा करना। मैंने तुम्हें सब दिन अपने से दूर रहते हुए भी नीच समझा, बिना अपराध के तुम पर गालियों की बौछार की। तुम्हें अछूत समझ कर तुम्हारी अवहेलना की ; पर इसमें मेरा कुछ दोष नहीं। मैं नहीं समझता था कि तुम्हारा हृदय इतना विशाल है !

यदि आज तुमने सहृदयता न दिखलाई होती, तो मेरा इकलौता लड़का कबका चल बसा होता। भीतर आओ, बैठ लो, तब जाना।

'नहीं पुजारीजी मैं अछूत हूँ, मेरा स्पर्श मत कीजिये। मैं भीतर न जाऊँगा।'—मक्खन ने कहा।

'नहीं, कभी नहीं, हम तुम सब एक ही प्रजापति की सन्तान हैं। तुम हमसे अलग नहीं रह सकते। तुमने सुना नहीं था, हिन्दू-सभा के अध्यक्ष उस दिन अपने भाषण में क्या कह रहे थे ! वे भी तो यही कह रहे थे। मैं आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक हम दोनों का अधिकार बराबर तथा हम दोनों एक न हो जायँ, तब-तक मैं अछूत' ही रहूँगा। मुझे इसी में सुख मिलेगा, इसी में सन्तोष। क्या अब भी तुम मुझे लज्जित करोगे ?

मक्खन चुप था। उसके होंठ हिल रहे थे ; पर उस पर केवल प्रकम्पन छोड़ और कुछ नहीं था। हाँ, उसकी मुखाकृति से स्पष्ट मालूम पड़ता था कि वह कृतज्ञ है। उसे अपनी खोई हुई निधि मिल गई है।

वह प्रायः मन-ही-मन कह रहा था कि आपका त्याग सराहनीय है। वही नहीं, वहाँ के किवाड़, उनके घर की वायु, उनका निवास, सभी कह रहे थे—आप की बुद्धि सराहनीय है, आपको 'ईश्वर' सुबुद्धि दें।

एल्यूमिनियम तथा उसकी उपयोगिता

लेखक—श्रीयुत पुरुषोत्तमदास स्वामी, विशारद

एल्यूमिनियम के बर्त्तनों का प्रचार इस देश में गत कुछ ही वर्षों से हुआ है। एल्यूमिनियम हमारे लिये एक नवीन वस्तु-सी है। यह मानव प्रकृति है कि समाज में किसी नवीन वस्तु का प्रवेश हमें एक बार अवश्य अखरता है। फल-स्वरूप हम उस नवीन वस्तु के गुणावगुणों का भली भाँति निर्णय किये बिना ही उसका विरोध करने लगते हैं। इसके लिये उस वस्तु के विरुद्ध कुछ आधी झूठी-सच्ची बातें भी प्रायः गढ़ ली जाती हैं और साधारण लोग उनसे सहज ही प्रभावित हो जाते हैं; क्योंकि वे उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल होती हैं। एल्यूमिनियम भी जनता की इस मनोवृत्ति का शिकार होने से न बच सका। सस्ता होने के कारण यह साधारण एवं मध्य श्रेणी के लोगों का प्रिय होता जा रहा है। हलका होने के कारण यात्री लोग इसे अपना रहे हैं। स्वच्छ सफेद होने के कारण इसमें कुछ आकर्षण भी है; किन्तु इसमें एक दोष भी है। नवीन होने के कारण इसकी उपयोगिता पर सन्देह किया जाने लगा। कोई-कोई तो यहाँ तक कहने लगे कि यदि यह अच्छी धातु होती, तो इसका उपयोग आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ही शुरू होगया होता; किन्तु वे भूलते हैं कि सहस्रों ही नहीं, लक्षों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने सूर्य की धूप में साधारण मिट्टी के कच्चे बर्तन तपाकर बनाना सीखकर इस धातु का उपयोग एक तरह से करना शुरू कर दिया था।

पृथ्वी पर मिलने वाली साधारण मिट्टी का आठवाँ भाग एल्यूमिनियम धातु से बना है। ओषजन तथा सिलिकन को छोड़कर एल्यूमिनियम हीं प्रकृति में सर्वाधिक परिमाण एवं विस्तृत रूप में मिलता है। यह स्वतंत्र रूप में नहीं पाया जाता, ओषजन के साथ यह नीलम, माणिक एवं कोरण्डम के रूप में मिलता है। बौकूसाइट एल्यूमिनियम का एक जल-संयोजित ओषिद है। याकूत, अभ्रक तथा अन्य खनिज पदार्थों एवं चीनी मिट्टी में यह सिलिकेट के रूप में मिलता है। एल्यूमिनियम के ये यौगिक भारतवर्ष के विभिन्न भागों में पर्याप्त परिमाण में पाये जाते हैं।

एल्यूमिनियम आजकल एल्यूमिना (एल्यूमिनियम ओषिद) के विद्युत् विच्छेदन से प्राप्त किया जाता है। एल्यूमिना बौक्साइट से तैयार किया जाता है। यह बौक्साइट भारत वर्ष में बालाघाट ज़िले एवं मध्यप्र देश में कटनी के आस-पास अत्यधिक परिमाण में मिलता है। एल्यूमिनियम एक सफेद धातु है। इसका आपेक्षिक घनत्व २-६ है। इसका द्रवणांक एवं क्वाथनांक क्रमशः ६५७° व १८००° शतांश-ग्रेड है। यह घन वर्धनीय तथा तन्य है, एवं इस पर काफी अच्छी चमक आती है। ६००° शतांश ग्रेड पर यह भंगुर हो जाता है, तब यह चूर्ण के रूप में आसानी से पीसा जा सकता है। साधारण तापक्रम में वायु का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एल्यूमिनियम एक तत्त्व है, इसके विपरीत पीतल और कांसा दूसरे तत्वों के यौगिक हैं। पीतल में दो भाग ताँबा व एक भाग जस्ता होता है; कांसा ताँबे, जस्ते तथा बंग (टीन) का यौगिक है। एल्यूमिनियम के लवण विषाक्त नहीं होते; अतः यह खाना पकाने के बर्त्तनों के लिये ही विशेष उपयुक्त है। हलका होने के कारण यह साँचे बनाने आदि के काम में नहीं आ सकता।

एल्यूमिनियम के इस थोड़े से परिचय के पश्चात् यह हमारे लिये एक नवीन तथा विचित्र धातु नहीं रह जाती, अब हम इसके गुणों से परिचित होने लगे हैं तथा इसके साथ हमने अपना पुराना संबंध भी निकाल लिया है।

पिछली अर्द्ध शताब्दी से भोजन का स्वास्थ्य पर प्रभाव सम्बंधी हमारा ज्ञान काफी बढ़ चला है। हम जानने लगे हैं कि विटेमिन नामक पदार्थ थोड़े परिमाण में होने पर भी स्वास्थ्य पर आश्चर्य-जनक प्रभाव डालते हैं। इसी आधार पर रसोई बनाने के बर्त्तनों के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि संभवतः इसी भाँति भोजन में रासायनिक पदार्थों का अत्यल्प अंश भी स्वास्थ्य के लिये हानिकर सिद्ध होता हो। यह सत्य है कि धातवीय लवणों का

निर्माण किसी भी विटेमिन की अपेक्षा कहीं अधिक सरल होता है ; पर इसका यह मतलब नहीं कि वे स्वल्प परिमाण में होने पर स्वास्थ्य पर कम प्रभाव डालें। कुछ ही वर्ष पहले इस बात का पता चला था कि घोड़ों को मैंग-नीज़ नामक धातु की अल्पमात्रा देने से उनके शरीर में प्रति जीवाणुओं (Anti-bodies) की उत्पत्ति में बड़ी सहायता मिलती है। प्रति जीवाणु रोगों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि एल्यूमि-नियम के लवणों को अंशरूप में प्रति दिन खाने से हमारे शरीर पर स्वास्थ्यकर या हानिकर-प्रभाव अवश्य पड़ता है।

इस बात की सत्यता निर्धारित करने के लिये एक-मात्र आधुनिक कसौटी है—विश्वसनीय वैज्ञानिक प्रयोग। जीव-रसायन-विज्ञान हमें बतलाता है कि जहाँ तक शरीर में भोजन-पाचन-प्रणाली से सम्बन्ध है चूहे, खरगोश तथा विशेषतः कुत्ते मनुष्य से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं ; अतः जो बात इसके विषय में सत्य होगी, वह मनुष्य के सम्बन्ध में भी ठीक होगी। इन प्राणियों पर एल्यूमिनियम के यौगिकों के प्रभाव की जाँच की गई है। ऐसे प्रयोगों के परिणामों के अध्ययन से एल्यूमिनियम का मानव शरीर पर प्रभाव सरलता से समझा जा सकता है। कई प्रयोग मनुष्यों पर भी किये गये हैं।

प्रशिया के युद्ध विभाग ने सैनिकों के लिये पानी की बोतलें तथा रसोई के वर्त्तनों के लिये एल्यूमिनियम के उप-योग पर विचार करते समय कुछ वैज्ञानिकों द्वारा खरगोशों पर एल्यूमिनियम के प्रभाव-संबंधी प्रयोग करवाये। इन प्रयोगों से पता चला कि एल्यूमिना की प्रति दिन १½ ग्रेन से ६ ग्रेन तक की मात्रा का छोटे खरगोशों की वृद्धि पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। यह मानना पड़ेगा कि वृद्धि विषयक परीक्षा सबसे अधिक माननीय है ; क्योंकि वृद्धि-अवरोध ही बच्चों तथा शिशु प्राणियों के स्वास्थ्य पर आघात पहुँचने का प्रारंभिक चिन्ह है ; अतः यह कहना ठीक ही है कि यदि एल्यूमिनियम के देने से वृद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ा, तो उसका खरगोशों पर कुछ भी हानिकर प्रभाव नहीं पड़ा।

अमेरिका के संयुक्तराज्य में इस बात पर बड़ा भारी प्रश्न उठा कि भर्जन चूर्ण (Baking powder)—जिसका चतुर्थांश भस्मीकृत सोडियम एल्यूमिनियम सल्फेट होता है—का उपयोग करना कहाँ तक उचित है। संयुक्त-राज्य के कृषि-विभाग ने इसी विषय पर अमेरिका के तीन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा अलग-अलग प्रयोग करवाये। तीनों ने मनुष्यों पर प्रयोग किये तथा तीनों एक ही परिणाम पर पहुँचे। इन में से प्रत्येक ने स्वस्थ नवयुवकों पर उनके भोजन में एल्यूमिनियम को किसी-न-किसी रूप में मिला-कर प्रयोग किया। सारा भोजन सावधानी से तौला जाता था तथा इसके मुख्य-मुख्य भागों के परिमाण का विश्लेषण किया जाता था। प्रत्येक युवक के शरीर का तौल, तापक्रम, श्वास-गति तथा नाड़ी का दैनिक विवरण रखा जाता था। विशेष चिन्ह दिखाई देते ही लिख लिये जाते। इस तरह किसी भी तरह की खराबी—स्वास्थ्य या शारीरिक कार्य सम्बन्धी—मालूम की जाती थी।

डा० चिटेंडन (शेफील्ड वैज्ञानिक विद्यालय, येल विश्व विद्यालय न्यू हैवन) अपने प्रयोगों से इस परिणाम पर पहुँचे कि एल्यूमिनियम के यौगिकों की अल्प मात्रा तथा अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा भी यदि प्रति दिन भोजन के साथ ली जाय, तो उसका शारीरिक पोषण और साधारण स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

डा० जे० एच्० लाँग मेडिकल स्कूल, (पश्चिमोत्तरीय विश्व-विद्यालय, शिकागो) का कहना है कि यह नहीं कहा जा सकता कि एल्यूमिनियम के यौगिक अल्प परिमाण में भोजन के साथ मिलाने से किसी विषैले या जीवनी शक्ति-नाशक पदार्थ की उत्पत्ति करते हों, या भोजन के गुणों में कमी या हानि कर परिवर्तन करते हों।

डा० एलॉन्ज़ो ई० टेलर (मेडिकल स्कूल, पेनसिल-वेनिया विश्वविद्यालय, फिलेडेलफ़िया) भी अपने सहकारियों से सहमत थे।

अमेरिका की वैज्ञानिक विद्वानों की तथ्य-निर्णायक-समिति ने एक मत से एक रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें सब सदस्यों ने हस्ताक्षर किये थे। उसमें लिखा था कि एल्यूमिनियम के यौगिक, जो भोजन में भर्जन चूर्ण के रूपमें उपयोग में लाये जाते हैं, उस भोजन की पोषण-शक्ति में हानिकर परिवर्तन नहीं करते।

आगे यह भी लिखा है—

'एल्यूमिनियम के यौगिक भोजन में स्वल्प परिमाण में ('३९ से १' १६ ग्रेन तक) भर्जन चूर्णों के रूप में मिलाने से कोई विषैला या अन्य हानिकर असर करते हुए नहीं पाये गये, जिसके कारण वह भोजन स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध हो। यही बात एल्यूमिनियम के उतने परिमाण के लिए भी सत्य है, जो एल्यूमिनियम भर्जन चूर्ण की साधारण मात्रा में विद्यमान होता है; अर्थात्—प्रति दिन लगभग २⅓ ग्रेन एल्यूमिनियम।

एल्यूमिनियम के यौगिकों को भोजन के साथ मिलाने से उसके गुणों तथा उपयोगिता में कोई कमी या हानि होती नहीं पाई गई।'

यह रिपोर्ट बड़े महत्व की है; क्योंकि यह संयुक्त-राज के प्रख्यात जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के सभापति श्रीयुत इरा रेमजेन की अध्यक्षता में लिखी गई है। हारवर्ड विश्वविद्यालय के तुलनात्मक रोगजन्तु विज्ञान (Pathology) के अध्यापक श्रीयुत थियोबॉल्ड स्मिथ ने भी इसमें भाग लिया था। इस रिपोर्ट का आधार तीन प्रमुख जीव विज्ञानवेत्ताओं के स्वतंत्र प्रयोग हैं, जो मनुष्यों पर बराबर छः महीनों तक किये गये थे और जो सब एकही परिणाम पर पहुँचे।

श्रीयुत मेयर्स तथा मॉरीसन ने सन् १९२८ में साधारण कुत्तों के शरीर में तथा उन कुत्तों के शरीर में भी, जिन्हें तीन महीने तक प्रतिदिन '२३ और १' ५५ ग्राम एल्यूमिनियम मुख से दिया गया था, मिलने वाले एल्यूमिनियम का परिमाण मालूम किया। हृदय, उपवृक्क तथा प्लीहा में एल्यूमिनियम के परिमाण में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया; किन्तु एल्यूमिनियम खिलाये हुए कुत्ते के यकृत में प्रति १०० ग्राम तंतु में ०' २७ मिलीग्राम एल्यूमिनियम पाया गया। जब कि साधारण स्वस्थ कुत्तों में प्रति १०० ग्राम केवल ०' १५ मिलीग्राम एल्यूमिनियम ही मिला। दो कुत्तों के शरीर में दो सप्ताह तक प्रति दिन ५ मिलीग्राम एल्यूमिनियम इंजेक्सन द्वारा प्रविष्ट किया गया एवं इंजेक्सन देना बन्द करने के ३४ दिन बाद तक शरीर के तंतुओं में एल्यूमिनियम के परिणाम में वृद्धि पाई गई, जिससे यह सिद्ध होता है कि तंतुओं में पहुँचा हुआ एल्यूमिनियम धीरे-धीरे शरीर से बाहर निकाला जाता है। इन प्रयोगों से पता चलता है कि जब एल्यूमिनियम के यौगिक कुत्तों को मुख द्वारा दिये जाते हैं, तो एल्यूमिनियम का शरीर में बहुत कम शोषण होता है।

श्रीयुत अन्डर हिल तथा पीटर मैन ने कई प्रयोग सन् १९२९ में कुत्तों पर किये थे। वे लिखते हैं—

(क) एल्यूमिनियम भूखे कुत्तों के रक्त तथा अन्य तंतुओं में पाया जाता है

(ख) रक्त में एल्यूमिनियम कुछ अधिक परिमाण में मिलता है तथा ऐसे कुत्तों के शारीरिक तंतुओं में भी अधिक परिमाण में मिलता है, जिनकी खुराक में एल्यूमिनियम बिलकुल नहीं मिलाया गया। इससे स्पष्ट है कि एल्यूमिनियम साधरण भोजन में विद्यमान रहता है तथा उसी में उसका शोषण कर लिया जाता है।

(ग) केवल एक खुराक में थोड़े से परिमाण में मिलाया हुआ एल्यूमिनियम का तुरन्त शोषण कर लिया जाता है।

(घ) जब ऐसी खुराक जिसमें एल्यूमिनियम विद्यमान रहता है, किसी विशेष समय तक दी जाती है, तो उस एल्यूमिनियम का बराबर शोषण कर लिया जाता है।

(ङ) दीर्घकाल तक ऐसा भोजन खिलाने पर एल्यूमिनियम का शोषण कम होने लगता है।

(च) शोषण में कमी के साथ-साथ एकत्रीकरण (storage) तथा एल्यूमिनियम के त्याग (excretion) में भी कमी पड़ जाती है।

(छ) शोषण किया हुआ एल्यूमिनियम रक्त में दौरा करता है और विशेषतः यकृत, मस्तिक, प्लीहा एवं चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid gland) में एकत्र होता है।

(ज) एल्यूमिनियम के त्याग का मुख्यमार्ग यकृत रस (Bile) है।

श्रीयुत मेकेन्ज़ी (रोवेट रिसर्च इंस्टीट्यूट, एबरडीन) लिखते हैं—चूहों को ऐसी खुराक, जिसमें एल्यूमिनियम विद्यमान हो, देने से वे एल्यूमिनियम का अन्न मार्ग (Alimentary Canal) द्वारा त्याग कर देते हैं।

श्रीयुत स्ट्यूडेल (Steudel) की अध्यक्षता में कई ऐसे प्रयोग किये गये, जिनमें पाँच चूहों को १८ अक्टूबर से $\frac{1}{60}$ ग्रेन एल्यूमिना प्रतिदिन खाने के साथ दी गई।

३ जनवरी तक एक चूहा कमजोर हुआ तथा बीमार पड़ गया, बाकी चार को ९ फरवरी तक यही खुराक दी गई। तब तक उनमें साधारण चूहों से कोई विशेषता नहीं मालूम हुई। वे बिलकुल स्वस्थ एवं प्रसन्न दीख पड़ते थे और उनको बराबर भूख लगती थी। इन चूहों की वृद्धि भी अन्य साधारण स्वस्थ चूहों की भाँति ही होती रही।

ऊपर लिखे हुए प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एल्यूमिनियम शरीर के लिये हानिकर नहीं है। ऊपर भर्जन चूर्ण सम्बन्धी प्रयोगों के विषय में जो लिखा गया है, वह एल्यूमिनियम के बर्त्तनों के विषय में उतनाही ठीकहै; क्योंकि भर्जन चूर्ण में एल्यूमिनियम का अंश काफी अधिक होता है। इतना अंश हमें बर्त्तनों द्वारा प्राप्त नहीं होता।

संयुक्त राज्य के कृषि-विभाग द्वारा जो खोज की गई थी, उसके विषय में यह प्रश्न खड़ा होता है कि वे सब प्रयोग पुरुषों पर और विशेषतः स्वस्थ नवयुवकों पर, जो संभवतः विश्वविद्यालय के विद्यार्थी होंगे, किये गये थे। एल्यूमिनियम के यौगिक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों—लगभग बीस वर्ष की आयु वालों—के लिये हानिकारक सिद्ध नहीं हुए, इससे यह कैसे कहा जा सकता है कि वे उनसे कमजोर तथा बड़ों व स्त्रियों के लिये भी हानिकारक नहीं हैं? क्या डॉ० चिटेंडन, डॉ० लाँग तथा डा० टेलर ने देखा है कि एल्यूमिनियम उतना ही हानि रहित होता, यदि वे अपने प्रयोग २६ नवयुवकों पर करने की अपेक्षा २६ वृद्धों पर करते? यह प्रायः देखा गया है कि अधिक मदिरा का प्रभाव नवयुवक एवं व्यायामशील पुरुषों पर कुछ नहीं होता तथा इसके विपरीत इसका भयंकर प्रभाव वृद्धों तथा एकान्त जीवन व्यतीत करने वालों पर अधिक होता है; इसलिये क्या एल्यूमिनियम के यौगिकों का नवयुवकों पर जो प्रभाव होगा, वह अधिक आयु के मनुष्यों के लिये झूठा साबित न होगा?

यदि देखा जाय तो यह तर्क ठीक प्रतीत होता है; पर यह बात कुछ जँचती नहीं कि जो वस्तु वृद्धों एवं स्त्रियों के लिये हानिकारक होगी, वह नवयुवकों के लिये बिलकुल निर्दोष हो। इसलिये यह सोचना कि यह वृद्धों के लिये हानिकर होगी, जब तक इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न हो, कहाँ तक उचित है?

शेफर, फोंट्स, लेब्रेटन, ऑबरलिंग तथा थिवोल एल्यूमिनियम को बड़ी हानिकारक धातु मानते हैं। ये महाशय कुत्तों में एल्यूमिनियम के उन हानिकर प्रभावों को नहीं पा सके, जो उन्हें चूहों में मिले थे। उन्होंने कुत्तों के आमाशय तथा क्षुद्रान्त्र में कुछ भी खराबी नहीं पाई; पर उन्हें दीर्घान्त्र में स्पष्ट घाव मिले।

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त-सा है कि यदि हम किसी वस्तु की परीक्षा इस निश्चय से करें कि यह वस्तु हानिकर है, तो परीक्षा-फल भी यही प्रकट करेगा कि वह वस्तु वास्तव में हानिकारक है। ये महाशय भी पहले से ही इस पर पक्का विश्वास किये हुए थे कि एल्यूमिनियम के यौगिक हानिकर हैं; अतः जब तक उन्हें कुत्तों के दीर्घान्त्र में घाव दिखाई दिये, तो उनका एक मात्र कारण उन्होंने बेचारे एल्यूमिनियम को समझा; पर वास्तव में यह बात नहीं है। यह बात कि वे कुत्तों के आमाशय एवं क्षुद्रान्त्र में घावों को न पा सके, जो कि उन्हें चूहों में मिले थे, इस बात का पक्का प्रमाण है कि कुत्तों में—अतः संभवतया मानव प्राणियों में—एल्यूमिनियम के यौगिक आमाशय तथा क्षुद्रान्त्र के अंतरभाग पर आक्रमण नहीं करते। दीर्घान्त्र में जो घाव पाये गये थे, वे एल्यूमिनियम के कारण नहीं थे; क्योंकि उन्होंने उन कुत्तों पर, जिन्हें एल्यूमिनियम बिलकुल न दिया गया हो, प्रयोग किये ही नहीं। कुत्तों का दीर्घान्त्र प्रायः हानिकर अतिथि कीटाणुओं (Parasites) द्वारा घिरा हुआ होता है; अतः उसके घावों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता।

सीवर्ट तथा वेल्स ने सन् १९२९ में यह प्रमाणित किया कि एल्यूमिनियम के यौगिकों का इंजेक्शन खरगोशों के लिये हानिकारक है। उन्होंने फिटकरी (एल्यूमिनियम सोडियम (पोटेशियम) सल्फेट) का इंजेक्शन एक खरगोश को दिया एवं फलस्वरूप हीमोग्लोबिन * की प्रतिशत संख्या तथा लाल रक्ताणुओं की संख्या में कमी होने लगी। एक विचित्र बात यह हुई की रक्ताभाव—जो पहले था—तब तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जब तक कि इंजेक्शन देते ११ से २० दिन न हो गये। प्रतिदिन फिटकरी का इंजेक्शन दिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि खरगोश

* यह रक्त को लाल रंग प्रदान करता है।

को ४४ से ८ ग्राम तक कुल मिला कर फिटकरी प्राप्त हुई तथा यह तादाद खरगोश ऐसे छोटे प्राणी के लिये बहुत अधिक है ; इसलिये रक्ताभाव होना व हीमो ग्लोबिन एवं लाल रक्ताणुओं में कमी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह इस बात का सबसे अच्छा प्रमाण है कि एल्यूमिनियम निर्दोष एवं हानि-रहित है। यहाँ यह भी देखना चाहिए कि यदि मुँह द्वारा एल्यूमिनियम दिया जाय, तो यही चिन्ह दिखाई देंगे या नहीं। बहुत से पदार्थ ऐसे मालूम हुए हैं, जो मुँह द्वारा दिये जाने पर हानिकारक नहीं होते ; पर इंजेक्शन से शरीर में प्रविष्ट कराये जाने पर बहुत बुरा प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिये मगनेसियम ओषिद-मगनेसिया को लीजिये। यह छोटे बच्चों को रेचक के रूप में दिया जाता है तथा मगनेसियम सल्फेट, इपसम लवण की तरह, दस्तावर के रूप में दिया जाता है। यह सब होते हुए भी यदि वे चमड़ी या रक्तशिरा में इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराये जायँ, तो उनसे नारकोसिस * की उत्पत्ति होगी। मगनेसियम एल्यूमिनियम से बहुत कुछ अंशों में मिलती-जुलती धातु है ; अतः इससे यह अन्दाज लगाया जा सकता है कि जो प्रभाव एल्यूमिनियम के इंजेक्शन देने में होंगे, वह उसके मुँह द्वारा लेने से नहीं।

सॉलमेन की Text book on Pharmacology में लिखा है—एल्यूमिनियम के, भोजन पकाने के बर्त्तनों से जो अंश एल्यूमिनियम का मिलता है या कमज़ोर अम्लों द्वारा जो अंश प्राप्त होता है, वह इतना कम होता है कि उसपर कुछ ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं मालूम होती।

पौलसन की Text book on Pharmacology में लिखा हैं—'भोजन पकाने के काम में एल्यूमिनियम के बर्त्तनों का उपयोग करना स्वास्थ्य के लिये कुछ भी खतरे वाली बात नहीं है।'

श्रीयुत कशनी अपनी Text book on Pharmacology and Therapentics में लिखते हैं—बहुत थोड़े परिणाम में एल्यूमिनियम के लवणों का आमाशय व क्षुद्रांत्र में शोपण कर लिया जाता है ; अतः बिना किसी विषैले परिणाम के इन लवणों का आंतरिक उपयोग किया जा सकता है। एल्यूमिनियम के बर्त्तन खाना पकाने के काम में—यहाँ तक कि अम्लों को रखने के काम में—बिना किसी विपत्ति के भय के लाये जा सकते हैं।

मिसिगन विश्वविद्यालय में औषधि-विज्ञान के प्रोफेसर श्रीयुत एडमंड्स कहते हैं—इन बड़े खोज-पूर्ण तथा श्रम-जनक प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि एल्यूमिनियम के बर्तनों का उपयोग स्वास्थ्य के लिये हानिकारक नहीं है ; अतः इस विषय में जो कुछ डर हो, उसे दूर कर देना चाहिये।

यह पूछा जा सकता है कि यदि ये बातें सत्य हैं, तो एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाना बंद कर देने से मनुष्य क्योंकर रोग से छुटकारा पा जाता है। प्रायः देखा गया है कि कोई-कोई नई औषधि एक-आध रोगी के लिये लाभप्रद प्रतीत होती है ; यद्यपि ऐसी बहुत-सी औषधियाँ बहुत शीघ्र ही व्यर्थ सिद्ध होती हैं। एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाना बंद कर देने पर स्वास्थ्य-लाभ करना भी ऐसा ही है। इतने अधिक प्रमाण मिलने पर कि एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाना हानिकारक नहीं है, यह निश्चित है कि एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाना बन्द करने से लाभ होना डॉक्टर की रोगी के प्रति मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया का फल है। यदि डॉक्टर का यह विश्वास हो कि ये बर्तन स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं, तो उसे इन बर्तनों में खाना पकाना बंद करा देने से थोड़े से रोगियों को लाभ होता दिखाई देगा।

यह संदेह भी उठाया जाता है कि एल्यूमिनियम के बर्तनों में खाना पकाने से कैंसर (नासूर) की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिकों को कैंसर की उत्पत्ति का ज्ञान वर्त्तमान समय में बहुत कम है, बहुत से कार्यकर्त्ता वर्षों से इस विषय में खोज कर रहे हैं। रासायनिक साधनों का सहारा लेकर कैंसर का उत्पत्ति-ज्ञान प्राप्त किये जाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं और यह ज्ञात हुआ है कि तारकोल तथा काजल से इसकी उत्पत्ति होती है। यदि यह सत्य हो कि एल्यूमिनियम के यौगिकों से यह उत्पन्न होता है, तो

* बड़ी भारी अचेतनावस्था को कहते हैं। यह नींद से इसी बात में मिलती है कि मूर्छित मनुष्य बड़े प्रयत्नों से थोड़ा-सा सचेत किया जा सकता है तथा इससे ज्ञानतंतु बिलकुल निकम्मे नहीं हो जाते। यह अधिकतः अफ़ीम के लेने से होती है।

यह खोज बड़े काम की हो ; क्योंकि तारकोल की जगह एल्यूमिनियम के यौगिक काम में लाये जा सकते हैं ; अतः यह कहना कि एल्यूमिनियम के खाना पकाने के बर्त्तनों से कैंसर होता है, उतनी ही हास्योपादक बात है, जितनी यह कि कृत्रिम रेशम के वस्त्र धारण करने से कैंसर हो जाता है।

चूँकि जमीन का आठवाँ भाग एल्यूमिनियम का है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि फलों तथा शाकों—जो जमीन में उत्पन्न होते और बढ़ते हैं—में एल्यूमिनियम विद्यमान हो और शायद अपने में उसको मिला भी लेते हैं। रसायनज्ञों का कहना है कि अनाज के हरेक दाने में एल्यूमिनियम का अंश मिलेगा एवं फल-स्वरूप रोटी के प्रत्येक टुकड़े में, दूध में भी यह मौजूद होगा।

एल्यूमिनियम के यौगिक मनुष्य-द्वारा खाये हुए भोजन में वर्तमान होते हैं तथा उस पानी में भी विद्यमान हैं, जो वह पीता है ; क्योंकि यह भोजन का एक आवश्यक अंग है।

अतः हम अब इसी अंतिम परिणाम पर पहुँचते हैं कि एल्यूमिनियम के बर्त्तनों में यदि खाना पकाया जाय, तो स्वास्थ्य को बिलकुल धक्का नहीं पहुँचता। जब एल्यूमिनियम के लवण मुँह द्वारा लिये जाते हैं ; तो उसका कुछ अंश रक्त तथा शरीर के अन्य तंतुओं में मिल जाता है। एल्यूमिनियम के लवणों में यह विशेषता है कि जब तक ये बहुत परिमाण में शरीर में इंजेक्शन-द्वारा प्रविष्ट न किये जायँ, कोई हानि नहीं पहुँचाते। यदि एल्यूमिनियम के बर्त्तनों में खाना पकाया जाय, तो एल्यूमिनियम का जो अंश भोजन के साथ मिलता है, वह प्रति दिन एक छोटे से दाने से भी कम मिलता है और यह अंश सहज ही में अवयवों में मिला लिया जाता है तथा यह बिलकुल हानि नहीं पहुँचाता।

एल्यूमिनियम के बर्त्तन खाना पकाने की दृष्टि से निम्नलिखित कारणों से उत्तम हैं—

(क) ऐसी सस्ती, एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम धातु अन्य कोई नहीं है।

(ख) एल्यूमिनियम के बर्त्तन इतने शीघ्र तथा बराबर गरम होते हैं कि इनका उपयोग करने से ईंधन तथा रुपयों की बचत होती है।

(ग) यह बर्त्तन बहुत हलके होते हैं और साथ-साथ खूब मजबूत भी।

'ब्रिटिश मेडिकल जर्नल' का तो यहाँ तक कहना है कि सोने तथा प्लेटिनम को छोड़कर एल्यूमिनियम ही खाना पकाने के लिये सबसे श्रेष्ठ धातु है—चाँदी से भी बढ़कर।†

† इस लेख के लिखने में हमें श्रीयुत जे० एच्० बर्न एम्० ए०, एम्० डी०, की एक पुस्तिका से कुछ सहायता मिली है ; अतः हम आपके अत्यंत कृतज्ञ हैं।—लेखक।

यौवन से

१

तुम कौन, कहाँ से आए हो,
प्रति-गति में मृदु-स्पन्दन लेकर ?
किस शशि को छूने ऐ जीवन—
के ज्वार उठे क्रन्दन लेकर ?

२

शैशव के प्याले में भर दी
क्यों यह पीड़ाकर मद लेकर ?
भावों के भव्य-भवन में ये—
आकांक्षायें सद्सद् लेकर ?

३

मानस के विकसित कमल-कोश—
में होता किस अलि का गुञ्जन ?
मन को किस अलस भरे मधु ने—
है बना दिया उन्मन-उन्मन ?

४

क्यों मन सागर की चल लहरें
मर्याद लाँघने हैं जातीं ?
छवि के शशि का कर खींच
प्रेम के पास बाँधने हैं जातीं ?

५

बस वैभव-वर्षा रुके-रुके,
जीवन का प्याला भरे नहीं।
न तु छलक पड़ेगा भर कर रे,
देखो मधु समधिक झरे नहीं॥

सुरेन्द्र 'बाल्हपुरी'

क़ैदी का स्वप्न

लेखक—श्रीयुत नवलकिशोरप्रसादसिंह 'नवल'

हार्डिंज-पार्क में मस्ती के साथ झूमने वाली सन्ध्या सैर करने वाले शौक़ीन बाबुओं को पार्क की ओर आकर्षित कर रही थी। रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित क्यारियाँ मौज के साथ लहरा कर उनका स्वागत कर रही थीं। बीच-बीच में रखे हुए बेंचें उनको बैठने के लिए अपनी ओर बुला रही थीं। हवा खाने वालों की टोलियाँ इधर-उधर घूम रही थीं। वह एकान्त भाव से कोने में रखे हुए एक निर्जन बेंच पर बैठकर सोच रहा था—अगर मैं स्त्री होता? ओह! अगर मैं स्त्री होता, तो संसार को दिखा देता, कि स्त्री-जाति पुरुष-जाति से कम बलवती नहीं होती। मैं अपने सामने महाभारत की नायिका द्रौपदी या अफगानिस्तान के भूत-पूर्व अमीर अमानुल्ला की बेगम सुरैया का आदर्श रखता। हाँ, लेकिन उन दोनों के समान मैं विवाह न करता, पुरुषों के सन्दिग्ध विचार के फेर में पड़कर धोखा न खाता, उलटे पुरुष-जाति को ही चकमा देकर बार-बार नाक रगड़वाता, गलियों की धूल फँकवाता, सड़कों पर ठोकरें खिलवाता और इन सब दृश्यों को देख-देख कर मन-ही-मन खूब हँसता, मचलता और स्त्री-जाति पर किये गये पुरुषों के अत्याचार का भली-भाँति बदला लेता। ओह! नहीं-नहीं स्त्री बन जाने पर, तो क्रिया पद भी बदल जाता, उस समय कोई कार्य अच्छा या बुरा सम्पादन करता, नहीं; बल्कि करती। हाँ, ठीक है।

'और क्या करता, नहीं-नहीं करती। सोलह श्रृंगार कर, वेणी गूँथ कर, चमकीली बॉडी पहन कर, रंगीन साड़ी धारण कर, सेंट से अपने सुकुमार अंगों को सुगन्धमय बना कर, मुख-प्रदेश पर सुगन्धित पाउडर मलकर, सड़कों पर या इसी पार्क में टहलने निकलती। कितने कामी युवक कुत्ते की तरह पीछे-पीछे घूमते नजर आते, किसी-किसी पर तिरछी चितवन डाल निहाल कर देती, किसी को आशा भरे इशारे से कृतकृत्य कर देती; परन्तु क्या मैं किसी के चंगुल में फँसती? नहीं, कभी नहीं। कितने बिरह से मरते, कितने चोट खाकर तिलमिला उठते और कोई बातें कर अपने को सौभाग्यशाली समझते—इत्यादि-इत्यादि।'

इसी प्रकार, बैठकर, वह हवाई किला बनाने में व्यस्त था कि इतने में सोलह सत्रह वर्ष की उम्र के एक हृष्ट-पुष्ट नवयुवक को उसने अपनी ओर आते देखा। उसकी विचार-श्रृङ्खला भंग हो गई। वह आगन्तुक की ओर देखने लगा। नवयुवक के गोराई लिए हुए वदन-प्रदेश पर मूँछ की रेखा भी नहीं निकली थी। सिर पर लीडरनुमा गाँधी टोपी, घुटने से भी नीचे तक लटकती हुई सफेद खादी की बँगलानुमा धोती, कमीज के ऊपर एक ऊनी कोट, मोजे के साथ-साथ फ्लेक्स जूते के अतिरिक्त हाँथ में बेंटदार चमकीली छड़ी, कलाई पर मैचलेस की घड़ी, ऊपर की जेब में पार्कर और आँखों पर गोल्डेन फ्रेमदार चश्मा, बस इतनी ही चीजें उसके बदन पर, नख से शिख तक, शोभ रही थीं, वह नवयुवक की ओर देखने लगा और नवयुवक चुप-चाप आकर बेंच के दूसरे छोर पर बैठ गया। एकान्तता ने दो रूप धारण कर लिये।

उस सुन्दर नवयुवक को देखकर उसका मन उससे बातें करने के लिए ललचा गया। इस लोभ को संवरण करने की असमर्थता ने उसे धर दबाया। उसने नवयुवक से पूछा—महाशय, आपका शुभनाम? नवयुवक ने लापरवाही से उत्तर दिया—आपको आवश्यकता? वह पहले तो झेंप गया, अपनी धृष्टता पर कुछ लज्जित हुआ; लेकिन लापरवाही से भरे हुए मधुर वचन ने उसके कौतूहल को और भी बढ़ा दिया। वह फिर बोला—शिष्टाचार के नाते आपको ऐसा उत्तर न देना चाहिए। भला, नाम बताने में भी पैसे खर्च होते हैं? नवयुवक ने एक पैनी नज़र उसकी ओर फेंकी, फिर मुस्कुरा कर बोला—अरे, आप क्रुद्ध हो गये! लीजिए मैं अपना पूरा परिचय ही आपके सामने शब्द-चित्र द्वारा अङ्कित कर देता हूँ। इसी शहर में बी० एन० दास नाम के एक ब्रह्म-समाजी बैरिस्टर हैं, शायद आपने उनका नाम सुना होगा। मैं उन्हीं का सम्बन्धी हूँ। घर कलकत्ते में है और नाम है चन्द्रकुमार; और कुछ?



वह इतने से ही सन्तुष्ट न हुआ, मैत्री बढ़ाने की अभिलाषा से प्रेरित होकर उसने बातचीत का सिलसिला कायम रखने के लिए फिर पूछा—क्या आप यहाँ के किसी कॉलेज में पढ़ते हैं? उत्तर मिला—हाँ, बी० एन० कालेज में। साथ ही मानव-समाज रूपी विशाल-विश्व-विद्यालय का भी विद्यार्थी हूँ। इस उत्तर से वह चौंक पड़ा। जिस रूप में वह अब तक उस नवयुवक को देख रहा था, वह रूप भ्रमपूर्ण था। नवयुवक निपट अनुभव-हीन नहीं; बल्कि दुनिया के कटु अनुभवों से भी घना कर परिचित दीख पड़ा। बातें करने की उत्कंठा बढ़ती गई। वह बोल उठा—अच्छा, यह तो बतावें कि आजकल देश की इस विषम समस्या के समय, जब कि चारो ओर सरकार का भीषण दमन-चक्र चल रहा है, हजारों देश-भक्त युवक जेल में सड़ रहे हैं, देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत होकर नवयुवक-समाज सत्याग्रह के समर-क्षेत्र में कूद रहा है—क्या आप कॉलेज में पढ़ना उचित समझते हैं? क्या हिन्दुस्तान के गौरववान् नवयुवक के लिये यह शोभा दे सकता है? क्या यह देश के प्रति विश्वासघात नहीं हुआ?

नवयुवक का चेहरा तमतमा उठा, शरीर उमंग से फूल उठा। आँखों में श्रद्धा के भाव भर आए। वह नम्रभाव से बोला—आपका कहना सोलहो आने ठीक है; लेकिन मैं अकेला इस मैदान में कूदना नहीं चाहता। एक जबर्दस्त साथी की खोज में मैं कई महीनों से परेशान हूँ। और वह भी ऐसा साथी, जो मेरे मन के अनुकूल हो, मेरे भावों का समर्थक और सदा सुख दुःख में साथ रहने वाला हो। यही कारण है कि मैं कई महीनों से मानव-समाज के अध्ययन में ही अपना ज्यादा समय व्यतीत करता हूँ।

नवयुवक की वाणी में उसने आशा का अभ्युदय देखा। वह बोला—क्या आप मुझे अपना सहयोगी बना सकते हैं? मैंने भी अपना ध्येय देश-सेवा ही बना रखा है। भारतमाता को बन्धन-मुक्त करने के लिए मैं सदा आप का साथ दूँगा। अगर आप को मुझ पर विश्वास हो, तो मुझे अपना साथी बनाकर आज ही रणक्षेत्र में, पावन मातृवेदी पर बलि होने को खड़े हो जाइए। क्या आप मेरे प्रस्ताव से सहमत हैं?

तरुण चन्द्रकुमार ने गम्भीर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कुछ क्षण के लिये विचार की धारा में निमग्न हो गया। कुछ सोच कर उसने कहा—मैं आप पर कैसे विश्वास करूँ; किन्तु विश्वास नहीं करने का भी तो कोई कारण नजर नहीं आता। खैर, आपसे मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। सन्तोष-जनक उत्तर पाने पर मैं अपना निर्णय सुना दूँगा। मैं बहुत देर से आप की ओर देख रहा था। आप के स्वभाव का अध्ययन करने के लिए ही कुछ देर तक आप को नीरवता के नीरव उपवन में विचार करने के हेतु विचरण करने के लिए छोड़ दिया। मैं मन में सोच रहा था कि शायद आप किसी गम्भीर विचार में निमग्न हैं और ऐसे विचार में, जिसके पवित्र स्रोत में डूबते हुए आप असीम आनन्द का अनुभव कर रहे थे। मुझे तो ऐसाही भास हुआ, जो हो, मैं अब आप से यही पूछना चाहता हूँ कि, आप मुझे ठीक-ठीक बता दें कि आप किस चिन्ता में विभोर थे? बस, यही मेरा प्रश्न है।

पहले तो वह कुछ घबड़ाया-सा मालूम हुआ; लेकिन पुनः हृदय से लज्जा को विदा करते हुए, उसने किसी-न-किसी रूप में अपना विचार नवयुवक के सामने प्रकट कर दिया। स्त्री बनने की अपनी एकान्त अभिलाषा स्पष्टतः प्रकट कर दी। नवयुवक ने मुस्कुरा दिया। उस मुस्कुराहट में संतोष की भावना थी; लेकिन वह उसे समझ न सका। नवयुवक ने उसपर विश्वास प्रकट करते हुए कहा—मैं आप को अपना संगी बनाने को पूर्णतः तैयार हूँ। आप के उग्र विचार को देख, मैं वास्तव में बड़ा प्रसन्न हूँ; लेकिन एक बात है। आप को एक शर्त करनी पड़ेगी। अगर स्वीकार करें, तो मैं कह दूँ।

वह बोला—मुझे सब तरह स्वीकार है। आप बतलाएँ। नवयुवक ने हृदय को बिलकुल कठोर बना लिया और अपनी छाती में छिपे हुए पिस्तौल को निकाल कर कहा—देखिये, यह पिस्तौल है। अगर आप मुझसे अलग होने लगेंगे, तो मुझे अधिकार होगा कि मैं इसी पिस्तौल से आपके जीवन का अन्त कर दूँ। यही शर्त है। अगर यह शर्त स्वीकार हो, तो आइए दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़ कर इस निर्जन पार्क में प्रतीज्ञा करे कि हम दोनों कभी एक दूसरे को धोखा न देंगे, दोनों आजीवन देश और समाज की सेवा करेंगे और दोनों एक दूसरे के सुख और

दुःख के साथी रहेंगे। देखिये ऊपर अनगिनत तारे आकाश मण्डल से झाँक-झाँक कर हमलोगों की प्रतिज्ञा के साक्षी बनने को तैयार हैं।

वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। पिस्तौल देख कर उसका हृदय धड़क उठा था; लेकिन न जाने उस नवयुवक की वाणी में कौन-सा जादू था कि बिना मीन-मेष किये उसने उसकी शर्त स्वीकार कर ली और नवयुवक का हाथ पकड़ कर प्रतिज्ञा करने को प्रस्तुत हो गया।

संध्या की विदाई थी और रात्रि का आगमन। इसी संधि काल में दो पृथक्-पृथक हृदय प्रतिज्ञा और शर्त के कमजोर धागे के सहारे एक साथ जुट जाने के लिए उतावले हो उठे। पक्षियों का कलरव शुरू हो गया। उसी कलरव के बीच दो हृदय प्रतिज्ञा-बद्ध हो गये। दिशाएँ काली साड़ी पहन कर झूमने लगी थीं। सामने भारत के भूतपूर्व गवर्नर जेनरल की विशाल काली प्रतिमा उस अन्धकार में अपना अस्तित्व खो रही थी और एक ओर से पटने से दीघाघाट जाने वाली रेलगाड़ी का भयंकर शब्द हो रहा था। उसी समय कोयल कूक उठी—कुहूँ-कुहूँ; अर्थात्—कहाँ जाते हो, धोखा है, भ्रम है।

नवयुवक आगे-आगे चला, पीछे-पीछे वह भी। कुछ ही मिनटों के बाद नवयुवक ने उसे साथ लेकर एक विशाल अट्टालिका के अहाते में प्रवेश किया। वहाँ जाकर वह एक कोठरी में पहुँचा। कोठरी नये ढंग से सजी थी। नवयुवक ने बिजली का बल्ब जलाया, कमरा प्रकाशमय हो उठा। नये मित्र को सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठने का इशारा कर नवयुवक वहाँ से निकल गया, न जाने कहाँ चला गया। वह चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया और नवयुवक के आने की प्रतीक्षा में कल्पना के ऊँचे पहाड़ पर जाकर चिन्ता की गोद में पड़ रहा।

लगभग एक घण्टा बीतने पर अचानक कमरे में सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा एक नवयुवती ने प्रवेश किया और एक दूसरी कुर्सी को उसके निकट खींच कर उस पर बैठ गई। मधुर मुस्कुराहट के साथ उसने कहा—महाशय, आइये, अब हमलोग अपने भावी कार्यक्रम को निश्चित कर लें, जिससे लड़ाई के मैदान में कूदने में बिलम्ब न हो। मैंने अपने पिताजी से भी राय लेली। वे भी सहमत हैं।

अब तो उसके होश ही उड़ गये। यह क्या, कहाँ तो वह स्त्री बन कर पुरुषों को मजा चखाने की बात सोच रहा था, और कहाँ एक नवयुवती के चंगुल में स्वयं फँस गया। ओह! आश्चर्य, महान् आश्चर्य! एक ओर अति सुन्दरी दूसरी ओर समाज और जाति का भय। एक ओर भ्रम-पूर्ण प्रतिज्ञा और कठोर शर्त दूसरी ओर समाज से बहिष्कृत हो जाने की आशंका। खूब सोच-विचार कर उसने काँपती हुई आवाज में कहा—धोखा, ओह! मैं एक ब्रह्म समाज की बालिका से ब्याह नहीं कर सकता। मुझे छोड़ दो! मुझे छोड़ दो!

नवयुवती ने कहा—आप क्या कह रहे हैं। देश-भक्ति के पवित्र मार्ग पर समाज का बन्धन। क्या आपने सोच-समझ कर प्रतिज्ञा नहीं की थी? ओह! पुरुष समाज भी कितना धोखेबाज होता है। आप की कल्पना की ऊँची उड़ान पर मैंने विश्वास कर लिया कि आप जरूर ही स्त्री-समाज के साथ सहानुभूति रखने वाले जीव हैं; लेकिन हृदय में इतनी दुर्बलता? छीः! अच्छा आप तैयार रहें, मैं अपनी शर्त पूरी करके ही छोड़ूँगी।

इतना कहते हुए वह नवयुवती काँपने लगी। ओठ चबाते हुए उसने अपना पिस्तौल निकाला और घोड़ा चढ़ा कर उसकी ओर ताना। वह तो सुध-बुध सब खो चुका था; लेकिन इतने में ही निद्रा देवी ने स्वप्न-मय संसार से खींचकर जागृत दुनिया में ढकेल दिया। बेचारा मरने से बचा। नींद टूटने पर उसने अपने को हार्डिंज-पार्क से पाँच मील की दूरी पर अवस्थित पटना कैम्प जेल के ७१ नम्बर वार्ड में बन्द पाया। उस समय रात्रि के तीन बजे थे।

'रूप-राशि' का परिचय

लेखक—श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

'रूप-राशि' से परिचित कराने के पहले मैं उनके लेखक श्री रामकुमार वर्मा, एम० ए० से परिचित करा देना आवश्यक समझता हूँ। कुमार की कविताओं ने मेरे हृदय में जो कोमल और सुन्दर प्रतिमा अंकित कर दी थी, वही मैंने साक्षात् भी देखी। कुछ भी अन्तर न दिखा, वही 'रूप-राशि'-सा मुस्कुराना और मधुर ममत्व से भरा हुआ व्यवहार। कुमार के व्यक्तित्व ने मुझे मोहित कर लिया, फिर कविताएँ क्यों न प्रिय लगें।

श्री रामकुमार वर्मा की जन्मभूमि मध्यप्रदेश (सी० पी०) है। इनके पिता श्री लक्ष्मीप्रसादजी वर्मा, एक उच्च पद पर सरकारी नौकर थे। उन्हें अपने कार्य-निरीक्षण के लिये मध्यप्रदेश के कोने-कोने में जाना पड़ता था; इसलिये कुमारजी की शिक्षा भिन्न-भिन्न स्थानों में और मराठी से प्रारम्भ हुई। इनको हिन्दी सिखाने का श्रेय इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी को है, जो उस समय की कवयित्रियों में अपना विशेष स्थान रखती थीं।

प्रतिभा छिपाये नहीं छिप सकती। कुमार में प्रारम्भ से ही प्रतिभा के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देते थे। ये अपनी कक्षा में सदैव प्रथम आया करते थे। पाठन-कार्य के साथ-ही-साथ शाला के अन्य कार्यों में भी काफी सहयोग देते थे। अभिनेता बनने की सदैव से इनकी प्रबल इच्छा रही है नाटक में ये अभिनय भी अच्छा कर लेते हैं। मालूम होता है, इसी कारण ये एकांकी नाटक लिखने में अधिक सफल दिखाई देते हैं; क्योंकि अभिनेता नाट्य-कला की विशेषताओं को और भी भलीभाँति समझ सकता है।

ये सन् १९२२ में 'इन्ट्रेन्स क्लास' में पहुँचे। इसी समय भारत में प्रबल वेग से असहयोग की आँधी उठी और ये राष्ट्र-सेवा में हाथ बटाने लगे तथा एक राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ता के रूप में जनता के सम्मुख आये।

इसके बाद इन्होंने फिर अध्ययन प्रारम्भ किया और सब परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करते हुए प्रयाग-विश्वविद्यालय से हिन्दी-परीक्षा में प्रथम आकर एम० ए० हो गये और इसी कारण वहीं हिन्दी के प्रोफेसर भी हुए।

कुमार का यह हुआ वैयक्तिक परिचय—अब साहित्यिक परिचय देखिये—'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार कुमार में कवि के सभी गुण प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं। जब ये मिडिल स्कूल की निम्नश्रेणी की कक्षा में अध्ययन कर रहे थे, तभी इनकी नोट-बुक में ये पंक्तियाँ लिखी हुई पाई गईं—

'ईश्वर मुझको पास कराओ अब,
और मिठाई खूब-सी खाओ तब।'

यही पंक्तियाँ कवि कुमार के जीवन-प्रभात की प्रथम रश्मियाँ हैं। इसके बाद कुमार ने जुलूस में गाये जाने वाले कई राष्ट्रीय गीत लिखे। यदि इनकी कविता पर कालान्तर में 'रहस्यवाद' का प्रभाव न पड़ा होता, तो इनकी कविता में—'मुझे तोड़ लेना बन माली, उस पथ में तुम देना फेंक; मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।' जैसी भावनाएँ ही रहतीं। फिर भी कुमार के 'रहस्यवाद' में कुछ तथ्य है—वास्तविक रहस्यवाद है—आकाश-पाताल के कुलाबे नहीं।

कुमार अपनी अञ्जलि में भाव-प्रसून भर कर लाये। उन प्रसूनों पर पीड़ा का पराग बिखरा हुआ दिखा। कहने का तात्पर्य 'अञ्जलि' की सभी कविताएँ निराशा के नीहार से आच्छादित हैं। कुमार को अखिल विश्व में सतत प्रयत्न करने पर भी अपना प्रियतम नहीं मिलता, इसीलिए इनका जीवन वेदना-पूर्ण होजाता है। इनकी वेदना विस्तृत रूप धारण कर लेती है—

मेरी जीवन-तन्त्री में कितनी आहों के तार लगे;
मेरे रोम-रोम में कितने ही दुख के संसार लगे।
मेरी अन्तर बहिर प्रकृति में प्रबल तार के तार लगे;
मेरे जीवन-नभ को दुख-यामिनि के चपल प्रहार लगे।

• • •

कुमार रो-रो कर अपने प्रियतम का आवाहन करने

लगी। अन्तस्तल की आभा इनकी काली लेखनी को उज्ज्वल करने लगी। इनकी वेदनाओं का सागर उमड़ पड़ा और इनकी कविता की लहरों पर निराशा नाचने लगी—हम भी कुमार के आँसू और उच्छ्वासों में अपनी उसासें मिलाकर कह उठते हैं—

मुझे न छूना, जतलाओ मत अपना झूठा प्यार;
धूल समझ कर छोड़ चुका हूँ यह सारा संसार।
यही निराशामय उलझन है क्या माया का जाल;
यहाँ लता में लिपटा रहता छिपकर भीषण ज्वाल।

उपर्युक्त रोना आरोपित किया हुआ झूठा रोना नहीं। कुमार का हृदय वास्तव में उस प्रियतम के वियोग में रो रहा है, जो सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की मूर्ति है।

कविता की लता जब सत्यता, वास्तविकता और भावुकता आदि के पुष्पोंसे पुष्पित हो जाती है, तभी उसका सौन्दर्य निखरता है। कुमार अपने कवि-जीवन में रोये भी हैं और हृदय खोलकर रोये हैं; परन्तु आधुनिक अन्य कवियों के रोने में और इनके रोने में अन्तर है। इनका रोना वैयक्तिक रुदन न रहकर आध्यात्मिक रुदन है; इसलिए उसका महत्त्व अधिक है। कुमार की इन्हीं विशेषताओं के कारण 'हिन्दी-साहित्य के विवेचनात्मक इतिहास' में इनके संबंध में उसके विद्वान लेखक ने लिखा है—

'कुमार की कविता विषाद के कङ्काल को स्मृति की मरुस्थली में नङ्गा नचा देती है। वह हृदय के टूटे तारों को खींचने में अत्यन्त पटु है। कुमार विषण्णात्माओं के संतप्त निःश्वासों को कविता की कोथली में बन्द करके नैराश्य-रञ्जित स्तब्धता के उत्तुङ्ग शिखर पर चढ़ जाता है।'

मानव-जीवन में आशा और निराशा उसी प्रकार अवतरित होकर नष्ट हो जाती हैं; जैसे—सागर में लहर। प्रारम्भ में कुमार की कविता में निराशा की आँधी रही, पीड़ाओं का वायु-वेग रहा और रहा प्यार का पतझड़-परिहास। इसमें सन्देह नहीं कि कुमार की कविता में हृदय-भेदने की शक्ति है।

एक प्रकार से सारा संसार निराशा है। चिर आनन्दमय लोक में बहुत कम प्राणी पहुँच पाते हैं। सभी उस सर्व शक्तिमान आदि पुरुष की खोज में हैं; लेकिन वह सहज में नहीं मिलता। परमात्मा का हमारी आत्मा में सतत प्रयत्न करने पर ही कुछ प्रभाव पड़ता है। कितने मनुष्य उस तक पहुँचने का विचार कर निराश हो जाते हैं; इसलिये निराशापूर्ण कविताएँ लिखना स्वाभाविक भी है और इसीलिये मैं आशा से कहीं अधिक मूल्य निराशा का करता हूँ। निराशा का नर्तन विश्वताण्डव के रूप में हमें कुमार की कविता में स्पष्ट दिखाई देता है। इसी भावना को प्रकट करते हुए कविवर श्री सुमित्रानन्दन ने 'निशीथ' का परिचय कराते हुए लिखा है—

'विदारुण वियोग के 'निशीथ' के घोर नील आवरण को फाड़ कर तुम्हारी सजल-सजल कल्पना, मूर्तिमत करुणा की तरह, मौन अनिमेष दृष्टि से किस शून्य की ओर झाँक रही है?...विरह की अँधियाली अमा में करुण कल्पना की दीपावलि! तुमने निष्फल प्रेम के विपन्न अन्ध नभ को अपनी 'दीप-शिखा'—प्रतिभा के स्पर्शों से जगा दिया है।'

इस प्रकार कुमार ने अपने प्रियतम के अन्वेषण से क्या सीखा? उसे अपना प्रियतम कहाँ मिला? उसकी निराशा के तार कहाँ जाकर चुभ गये, जिससे उस के हृदय को संसार की निस्सारता का घाव लगा और उसने अन्त में संसार के रोने को व्यर्थ बताते हुए कहा—

धूल हाय! बनने ही को, खिलता है यह फूल अनूप।
वह विकास है मुरझा जाने, का ही पहिला रूप।
मदमाती आँखों वाले ओ! ठहर अरे नादान।
एक फूल की माला है, उसपर इतना अभिमान!

यहीं से कुमार के रुदन-गीत बन्द हो जाते हैं। मालूम होता है, इन्हें जग-नश्वरता का परिचय मिल गया और इन्हें अपना प्रियतम लताओं में, तारों में, लहरों में कलियों में, पत्थरों में, प्रकृति के अणु-अणु में दिखाई देने लगा और इनके हृदय में मिलन-सागर तरंगित हो उठा। इन्हें अपना प्रियतम मिल गया, जिससे 'रूप-राशि' का जन्म हुआ, निराशा इनसे कोसों दूर भाग गई और इन्होंने प्रकृति-प्रेयसी का आह्वान करते हुए कहा—

मेरे जीवन में जब आवें अन्धकार के श्याम प्रहर;
तब तुम खद्योतों में छिपकर—आ जाना चुपचाप उतर।

वर्तमान कविता की धाराओं में एक धारा रहस्यवाद (छायावाद) के नाम से विख्यात है। रहस्यवाद की परिभाषा कुमारजी के शब्दों में इस प्रकार है—

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का

प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।'

जब कवि एक बिन्दु में ही सारा सागर, एक कण में अखिल विश्व, और अपने ही परमात्मा का अनुभव करता हुआ इस प्रकार एकेश्वरवाद की ओर अपनी कवित्व शक्ति को झुका देता है, तो वह सच्चा रहस्यवादी कवि हो जाता है। इस प्रकार के रहस्यवादी कवियों में कुमारजी का अच्छा स्थान है।

इन्होंने अपनी 'रूप-राशि' में—प्रकृति में—अपने प्रियतम के दर्शन किये हैं। इन्हें विश्व के कण-कण में अपना-प्रियतम दिखाई देता है और ये उससे मिलने की आकांक्षा प्रकट करते हैं—

समय शान्त है मौन तपस्वी-सा तप में लवलीन,
रात्रि मुझे तो दिन ही है केवल दिनकर से हीन।
नभ के पद पर धरा पड़ी है, यह है चिर अभिशाप,
तारे अपना हृदय खोलकर—दिखलाते सन्ताप।
॰ ॰ ॰
नभके उर में विमल नीलिमा, शयित हुई सुकुमार।
उसी भाँति तुमसे निर्मित हो—मेरा उर-विस्तार।

इन पंक्तियों में कवि अपने प्रियतम से मिलने की आकांक्षा प्रकट करता है। एक दूसरी कविता की पंक्तियों में कुमारजी मिलन संगीत गा रहे हैं—विश्व के विराट् रूप में किसी का अस्पष्ट चित्र-सा देखते हैं—जो उन्हें विश्व-प्रियतम-सा दीखता है—

फूलों में किसकी मुसकान?
बिखर गई है कलिकाओं में भरने को आनन्द महान।
फूलों में किसकी मुसकान?

कुमार को इन पंक्तियों में प्रियतम का आभास मिला था। आगे देखिये उन्होंने अपने प्रियतम को कितने सुन्दर रूप में पा लिया—

मैं तुम से मिल गया प्रिये! यह है जीवन का अन्त;
इसी मिलन का गीत कोकिले गा जीवन-पर्यन्त।

इस प्रकार कुमार ने स्थान-स्थान पर छायावाद की झलक दिखाते हुए कल्पनाओं की सुन्दर झाँकी से कविता का सौन्दर्य और भी बढ़ा दिया है। ललित कल्पनाओं के यान में उड़कर सौन्दर्य-संसार का अवलोकन करते हुए कुमारजी ने काव्य-क्षेत्र में अपना अलग स्थान बना लिया है, जैसा उन्होंने रूप राशि की भूमिका लिखते हुए स्वीकार भी किया है—

'कविता में मुझे कल्पना सबसे अच्छी मालूम पड़ती है। वही एक सूत्र है, जिसको पकड़ कर कवि इस संसार से उस स्थान पर चढ़ जाता है, जहाँ उसकी इच्छित भावनाओं के द्वारा एक स्वर्ण संसार निर्मित रहता है। भावना तो इच्छा का केवल तेजस्वी और परिष्कृत रूप है। वह हृदय को कोमल और वेगवान बना देती है; किन्तु कवि में निर्माण करने की शक्ति कल्पना के ही द्वारा आती है। मैं कल्पना का उपासक हूँ; इसीलिये मेरी रूप-राशि केवल कल्पना से ही निर्मित है।'

कुमारजी की कल्पना की उड़ान और कोमलता देखिये—

कुछ दूर आगरे में अनूप
संचित है स्मृति का अश्रु-बिन्दु;
वह ताज (वेदना की विभूति)
अङ्कित है भू पर पूर्ण इन्दु।
यह शाहजहाँ है एक व्यक्ति,
जिसने इतना तो किया काम;
दे दिया विरह को एक रूप
है ताज उसीका व्यथित नाम।
पर है प्रेयसि की स्मृति पवित्र,
कितनी कोमल, कितनी अनूप;
फिर शाहजहाँ न बन कठोर,
क्यों दिया इसे पाषाण रूप।
यदि फूलों से निर्मित अम्लान
यह ताज महल होता सहास;
तब होता स्मृति का उचित चिन्ह
मैं क्यों रहता इतना उदास।

इस प्रकार कुमारजी ने रूप-राशि में अपनी कविता-सरिता के प्रवाह में कभी विश्व को हँसता और कभी रोता हुआ देखा है—उनकी कविता-धारा भावनाओं की शिलाओं से टकराती हुई, अमल जीवन का संचार करती हुई प्रत्येक

(शेषांश ४७वें पृष्ठ के नीचे)

लड़कपन में, नासमझी से, ख़राब लड़कों की संगति में फँस कर, बुरे कामों द्वारा, अपना पुंसत्व या मर्दानगी खोकर,

सच्चे संसारी सुख को तरसने वालो !

निराश और मायूस मत हो

क्योंकि

स्वास्थ्यरक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय सात भाग के लेखक

बाबू हरिदास वैद्य

धातु-सम्बन्धी रोग—धातुक्षीणता, प्रमेह, जिरियान, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, सोज़ाक, उपदंश-सिफलिस, खूनख़राबी एवं अस्सी प्रकार के वायु रोगों के इलाज में विशेषज्ञ और पूर्ण अनुभवी हैं।

उनके लिखे ग्रन्थरत्न

स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्साचन्द्रोदय साफ़ तौर से गवाही दे रहे हैं कि चिकित्सा-कर्म में उन्हें जितना अनुभव है, उतना बहुत वैद्यों को न होगा। आप उनके लिखे चिकित्साचन्द्रोदय के अकेले चौथे भाग को ही एक बार पढ़ जावें। आप को भी कहना पड़ेगा कि बेशक ऐसा वैद्य और नहीं है।

१६ आने सत्य है

कि ऐसे सौ-दो-सौ नहीं, हज़ारों रोगी उनकी सुचिकित्सा से आजसंसार का सुख भोग रहे हैं, जो किसी समय संसार के सच्चे सुख के लिये नौ-नौ आँसू रोते हुये आत्महत्या या खुदकुशी को तैयार थे। इस जन्म में पुत्ररत्न का सुखचन्द्र देखने की ज़रा भी उम्मीद न करते थे, उनके घरों में नित्य देवासुर संग्राम-सा मचा रहता था, परन्तु आज उनके घरों में सुख की बाँसुरी बजती है।

सचाई का सुबूत क्या ?

सचाई के सुबूत में रोगियों के प्रशंसापत्र पेश किये जा सकते हैं; पर ऐसे रोगों के रोगी अपने दिये प्रशंसापत्र अखबारों में छपने से अपनी लज्जा भंग होना समझते हैं; लेकिन चन्द ऐसे स्वभाव के भी होते हैं जो संसार की भलाई के लिये अपने बुरे कामों को पब्लिक के सामने रखने में कोई ऐब नहीं समझते। बहुतेरों ने हमें अपने प्रशंसापत्र छाप देने की आज्ञा दे दी है। जो हमें ऐसी आज्ञा नहीं देते, हम उनके प्रशंसापत्र भूल कर भी नहीं छापते। गन्दे रोगों के रोगियों के सिवा और तरह के रोगियों के पत्र हम छाप सकते हैं; नीचे हम तरह-तरह के रोगियों के प्रशंसापत्रों का सार, अविश्वासी और वहमियों के शक और वहम दूर करने को छापते हैं। जिन्हें इस तरह भी विश्वास न आवे उनकी दवा धन्वन्तरि और लुक़मान के पास भी नहीं है।

लीजिये देखिये—

बाबू कन्हैयालाल साहब पँवार, मालगुज़ार, मौज़ा पिंडरई, पोस्ट खवासा, ज़िला सिवनी-छपरा लिखते हैं—मैंने अज्ञानावस्था में, मैथुन द्वारा अपना सत्यानाश आप कर लिया था। शरीर की वृद्धि और विकास के समय मैंने उसकी वृद्धि और विकास में बाधा डाली। मेरा सब कुछ चला गया था, कुछ भी बाक़ी न था। मुझे एक-एक रात में तीन-तीन बार स्वप्नदोष होते थे, पेशाब के साथ सफ़ेद धातु गिरती थी, सच्चे संसारी

सुख के लिये रोता और तरसता था। ज़िन्दगी से भारी और निराश था। भाग्य से 'चिकित्साचन्द्रोदय' ग्रंथ मेरी नजर तले आया। मैंने बाबू हरिदासजी से लिखा-पढ़ी की। आपने मुझे आठ महीने में और का और बना दिया। धातुक्षीणता, प्रमेह, स्वप्नदोष, शरीर का पोलापन......का टेढ़ापन, ढीलापन वगैरः सारे रोग चले गये, अब मैं पूर्ण स्वस्थ और निरोग हूँ। बाबू हरिदासजी दीर्घजीवी हों। यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

बाबू कामताप्रसाद साहब, वकील, आनरेरीमैजिस्ट्रेट और सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल-बस्ती लिखते हैं—पहले मैं बिल्कुल काम न कर सकता था। आपकी दवाओं के सेवन से सब काम कर लेता हूँ। १०।१५ बरस से मैं आप से दवा मँगाता हूँ। आपकी सभी दवाएँ अकसीर का काम करती हैं। परमात्मा आपको चिरंजीवी रक्खे। भारत का महान उपकार आपने चिकित्साचन्द्रोदय और स्वास्थ्यरक्षा इत्यादि अमूल्य पुस्तकों की रचना करके किया है। उसकी तारीफ़ करना मेरे ऐसे तुच्छ मनुष्य की लेखनी की शक्ति के बाहर है। वास्तव में, इन ग्रन्थों ने आपके नाम और कीर्ति को अचल-अमर कर दिया है।

बाबू शिवनारायण वाच मेकर, राजवाड़ा, इन्दौर लिखते हैं—आपके यहाँ से दो शीशी सर्व सोजाकनाशक चूर्ण मँगाई थीं, उनके खाने से मुझे आराम हो गया।

बाबू बद्रीप्रसादजी करे, जिला छोटा पारा, रायपुर से लिखते हैं—आप से प्रमेह की जो दवाएँ मँगाई थीं, उनसे बहुत फ़ायदा हुआ। वसन्तकुसुमाकर-रस निःसन्देह रामबाण है।

बाबू द्वारकाप्रसादजी मारवाड़ी, पो० बरहज बाज़ार ज़ि० गोरखपुर लिखते हैं—अर्क आबेहयात जो आपके यहाँ से आया था, उसमें से डेढ़ बोतल सेवन किया। उसकी तारीफ़ मैं कहाँ तक लिखूँ। वह दस्त साफ़ लाने, भूख बढ़ाने और असली रोग नाश करने में अव्वल दर्जे की दवा है। इतनी भूख बढ़ी कि भोजन दो बार की जगह तीन बार बनवाना पड़ता था।

महात्मा लालचैतन्यजी ब्रह्मचारी, पो० दो मेल (काश्मीर) से लिखते हैं—मेरा स्वास्थ्य आपकी दवा सेवन करने से पूर्णतया अच्छा है।

बा० भूपनारायणसिंह साहब, पो० पदमा जिला हज़ारीबाग लिखते हैं—आपके औषधालय से मैंने कई किस्म की दवाएँ मँगा कर सेवन कीं, जिनसे बहुत लाभ हुआ है। द्राक्षासव तो कई मर्तबे मँगाया, उसके बिना एक साइत भी अच्छा नहीं लगता।

बाबू कामताप्रसादजी वकील, बस्ती से लिखते हैं—मैंने अपने दोस्त को आपसे रति-विलास चूर्ण मँगाया था, जिससे उनको पूरा फायदा हो रहा है, वे आपको धन्यवाद दे रहे हैं।

बाबू शिवप्रसाद साहब, पो० पगारा, जिला छिन्दवाड़ा से लिखते हैं—अपने मामू साहब को मैंने आपका धातुपुष्टिक अरक दिया था, उन्हें इस दवा ने अच्छा फायदा किया।

बाबू श्यामलाल साहब C/O बाबू भूरेलाल गुलाबचन्द मिस्तरी, बालागंज, होशंगाबाद से लिखते हैं—मुझे आपकी दवाओंसे अच्छा लाभ हुआ, सब तरह की व्याधियाँ नष्ट हो गईं।

बाबू सैनाथराम साहब 'सैटिलमैण्ट ऑफिसर सरगुजा स्टेट से लिखते हैं—मैं बहुत अर्से से आपकी कम्पनी से दवाएँ मँगाता और इस्तेमाल करता हूँ। उनसे खूब फ़ायदा होता है। इसी कारण मैंने और जगह से दवा मँगाना बन्द कर दिया है।

बाबू ताराचन्दजी छाबड़ा, पो० पलाशबाड़ी (आसाम) से लिखते हैं—आपका प्रमेहान्तक चूर्ण मैंने सेवन किया, उससे मुझे बहुत लाभ हुआ। पेशाब बहुत साफ़ आता है।

हरिदास एण्ड कम्पनी, लालदरवाजा—गंगा-भवन, मथुरा (यू० पी०)

प्रायश्चित्त

लेखक—श्रीयुत बलदेवप्रसाद

'तो अब क्या कहते हो ?'

'जो कहो ।'

'क्या तुम समझते नहीं ? आख़िर कुछ दिनों के बाद भी तो यह समस्या हल करनी ही होगी !'

'तो क्या तै किया जाय ?'

'बस, एक ही तो बात है। साहस-पूर्वक समाज का सामना करो ।'

'पर, समाज का सामना करने में कितनी कठिनाइयाँ हैं ! जाति, इष्ट-मित्र सबको छोड़ना पड़ेगा ।'

'तो यह पहले ही क्यों न सोच लिया था ?'

'ग़लतियाँ भी तो मनुष्य ही से होती हैं !'

'तो तुममें इतना साहस नहीं है ? सिर क्यों झुकाते हो, बोलो ?'

'नहीं ।'

'तो तुम्हें एक विधवा को कलङ्कित करने का क्या अधिकार था ?'

'पर, समाज का सामना किये बिना भी तो काम चल सकता है !'

'कैसे ?'

'यदि तुम इस गर्भ को—'

'नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती। अच्छा तो, तुमने जवाब दे दिया न ?'

'रुपये-पैसे से जो मदद कहो, मैं देने को तैयार हूँ ।'

'जरूरत नहीं मुझे उसकी'—डबडबाई आँखों से, क्रुद्ध गले से, फड़कते हुए ओठों से, उसने जवाब दिया ।

जगमगाते दिन में सबने देखा कि 'उसका' पता नहीं । धीरे-धीरे प्रकट हो गया कि वह कहीं भाग गई, अपनी उमड़ती जवानी के साथ ।

• • •

चार महीने बाद—

माघ के जाड़े में ठिठुरती हुई एक स्त्री गंगा-तट की ओर बढ़ती चली आ रही थी। गोद में एक नवजात शिशु था। तारे आखें मल-मल कर यह दृश्य देख रहे थे। तट के समीप आकर उसने बच्चे को ज़मीन पर रख दिया। बच्चा धीमे स्वर में रो उठा।

'चुप रह अभागे !'—स्त्री ने कहा और वहीं पड़ा हुआ एक बड़ा-सा पत्थर उठा कर तान लिया। बच्चे पर निशाना साध कर वह कुछ देर खड़ी रही और तब एकाएक पत्थर को एक किनारे फेंक, झपट कर बच्चे को उठा कर छाती में छिपा लिया और मुँह दबा कर रोने लगी। कुछ देर बाद उस पर चुम्बनों की बौछार कर दी और कहने लगी—लाल ! क्या मैं भी तुम्हारे निर्दयी बाप-सी बन जाती ! पाप तो मैंने किया है न ! तुम उसका फल भोगने वाले कौन ? तुम्हारे जीवन का अन्त कर, अपना पाप छिपानेवाली मैं कौन ? तुम सुख से रहो। मैं ही इस कलुषित देह को नष्ट किये डालती हूँ ।'

वह जाने क्या-क्या कहती; पर 'राधेश्याम, सीताराम' आदि शब्द सुन कर चौंक पड़ी। देखा, कुछ दूर पर कई लोग स्नान करने चले आ रहे हैं।

उसने बच्चे को अन्तिम बार चूमा और ज़मीन पर रख कर, झपट कर गंगाजी की ओर—बच्चे को देखती हुई—बढ़ी।

ज़रा रुक कर फिर बच्चे की ओर अन्तिम बार देखा और हाथ पसार कर, धरा-प्रवेश के समय सीताजी की तरह, माँ गंगा के वक्षस्थल में समा गई।

बच्चा ज़ोर से रो पड़ा।

(४६वें पृष्ठ का शेषांश)

मानव-हृदय के सागर में लय हो जाती है। यदि नवयुवक सचमुच रहस्यवादी कवि बनना चाहते हैं, तो कुमारजी का अनुकरण करें; क्योंकि इनकी कविता में प्रतिभा की प्रभा है, अपने प्रियतम का विराट् दर्शन है—कल्पना की झाँकी है और है स्पष्टता का सौन्दर्य—कविता में भी यही चाहिए कि और भी कुछ ?

'रूप-राशि' सरस्वती-प्रेस काशी से मिल सकती है—इसका मूल्य ।।) है।

गरीब की आत्मा

लेखक—श्री० पं० राधारमणशर्मा, शास्त्री, साहित्यभूषण, काव्यतीर्थ

(श्री)

वह युवक था। उसकी आँखें अन्दर धँस गई थीं जरूर, उसके गालों में गढ़े पड़ गये थे जरूर, उसका आपाद-मस्तक पीला पड़ गया था जरूर, और उसकी हड्डियाँ चमड़े की क्षीण ओट से—अन्दर से—भी झाँका करती थीं जरूर, फिर भी वह युवक था; क्योंकि अभी उसने अपने जीवन में कुल २५ ही पतझड़ तो देख पाये थे। पतझड़ के सिवा और वह देखता ही क्या? बसन्त? शरद्? आह! इन्हें देखने का उसे अधिकार कहाँ था? हाँ, ग्रीष्म की श्मशान-सी शोभा निहारने के लिए वह जरूर स्वतंत्र था।

वह शिक्षित भी था। जिस समय उसके पिताजी जीवित थे, उसकी माताजी मौजूद थीं, उस समय वह उन लोगों की कड़ी मिहनत से आये हुए, और भीषण उदर-ज्वाल से भी बचाये हुए, पैसों से किसी तरह स्कूल की शिक्षा समाप्त कर—'मैट्रिक्यूलेशन' परीक्षा पास कर चुका था; किन्तु उस शिक्षा से इसे कहाँ तक लाभ हुआ था, उसका कितना असर उस पर हुआ था—यह बेचारी लौह-लेखनी क्या जाने! सौभाग्य या दुर्भाग्य से उसने ब्राह्मण-कुल में जन्म लिया था और नाम था उसका रामाश्रय। बस। उसके पास पैसा कहाँ था, जो वह रामाश्रय शर्मा या पं० श्री रामाश्रय शर्मा कह या कहला सकता!

जिस ताजी घटना को ये पंक्तियाँ उगलने जा रही हैं, उसके घटित होने के पाँच वर्ष पूर्व ही उसके पिता-माता दोनों व्यक्ति एक ही साथ महामारी की सहायता से इस लोक को छोड़ चुके थे। उसके बाद वह अपनी सुशीला पत्नी के साथ किराये की एक गन्दी छोटी कोठरी में अपना गुजर-बसर कर रहा था। उसके एक नन्हा-सा बालक था; गुलाब-सा सुन्दर, चन्द्र-सा आकर्षक। वही उस दरिद्र दम्पती का स्वर्णकोष था; वही उन दोनों का प्राण था। वही उन दोनों की समस्त आशाओं, सम्पूर्ण सुखों का एकमात्र केन्द्र था और वही उन दोनों का सब कुछ था। वे उस बालक पर नज़र पड़ते ही अपनी अवस्था भूल जाते—अपने दुखों को भूल जाते, अपने को भूल जाते, और आनन्द-समुद्र में हिलोरें लेने लगते थे। रामाश्रय इन दिनों १०) मासिक पर रेलवे में पैटमैन का काम करता था और उसकी स्त्री घर पर ही सीने-पिरोने का काम कर कभी-कभी कुछ पैसे पा लेती थी। यही उस परिवार के जीने का ज़रिया था। बालक बड़ा चंचल था। वह कभी माता के साथ रहता, तो कभी पिता के। पिता के पास रह, दौड़ती हुई ट्रेनों को देखने में उसे बड़ा आनन्द आता था। पत्थर के छोटे-छोटे रंगीन टुकड़ों को चुनने का उसे व्यसन था।

हाँ, एक बात तो कहना ही भूल गया, और वह भी प्रासङ्गिक। रामाश्रय में कितने दुर्गुण भी भरे पड़े थे। वह सत्य को प्यार करता था। छल-कपट उसे काट खाने दौड़ते थे। बेईमानी और विश्वासघातकता से वह घोर घृणा करता था। अनुचित लोभ उसे लुभा न सकते थे। और दुराचार का वह दुर्धर्ष द्वेषी था। आज के जमाने में ये दुर्गुण नहीं, तो और क्या हैं? महीनों और वर्षों तक आफिसों की खाक़ छानने पर भी, जब उसे उसके योग्य कोई काम न मिला, तब विवश हो उसने धनराज सेठ की दूकान पर कपड़े बेचने पर नौकरी कर ली। पर, वहाँ भी वह अपने उपर्युक्त दुर्गुणों के कारण ही अधिक दिनों तक न रह सका। एक दिन एक अपरिचित सज्जन कपड़े खरीदने आये। उस समय वह कहीं बाहर गया हुआ था; अतः मालिक ने कपड़े दिखलाये। मूल्य तय हुआ। कपड़े ले उन सज्जन ने ज्योंही मूल्य चुकाना चाहा कि वह आ पहुँचा। उन कपड़ों को उन सज्जन को ले जाते देख वह मालिक से बोल उठा—सरकार! इन कपड़ों को एक-दो जगह चूहों ने काट लिया है। सेठजी ने उन सज्जन को दूसरे कपड़े दे दिये। उन्होंने रास्ता लिया। इधर उसी

समय अभागे रामाश्रय को भी इस 'विक्रयकला-अनभिज्ञता' के लिए मालिक की झिड़कियों के साथ घर का रास्ता लेना पड़ा। उसके बाद बड़ी मुश्किल से इसने रेलवे में 'पेटमेन' की जगह पाई थी और अबतक उसी पद की शोभा बढ़ा रहा था।

(२)

उस दिन दशहरे का पर्व था। शहर में चारों ओर चहल-पहल थी। पुरुष भी प्रसन्न थे और स्त्रियाँ भी; बालक भी खुश थे और बूढ़े भी। सभी के हृदय में एक उत्सुकता भरी हुई थी। उनके हृदय में भी, जो मालपूआ और रसगुल्लों से अपने पेट को पाट, और ऊपर से 'पाचक' की दो गोलियाँ खा—मैंचेस्टर के बने हुए भारत शोषक चमचम कपड़े पहने अपने लाड़लों के साथ मोटरों पर दशहरे का जुलूस और स्वाँग देखने चले जा रहे थे; और उनके हृदय में भी, जो भूख की आग से जलते हुए अपने पापी पेट को एक हाथ से दबा, दूसरे हाथ ले फटे-कटे चिथड़ों में लिपटे हुए अपने मुन्ना को गोद में ले, पैर घसीटते और आहें भरते हुए उसे दशहरे का जुलूस और स्वाँग दिखाने चले जा रहे थे—त्यौहार था! बरस दिन पर आने वाला पर्व था! यह दूसरी बात है कि इन त्यौहारों और पर्वों का भी दादागुरु 'पैसा' होता है। और इसी में उनका सारा आकर्षण, उनकी सारी महत्ता, उनकी सारी रोचकता, और उनकी सारी धूम सन्निहित रहती है।

उस दिन दशहरे का पर्व था। संयोगवश रामाश्रय को आज कुछ ही घण्टे ड्यूटी देनी थी; और उसके बाद उसे छुट्टी थी; इसलिए वह छुट्टी हो जाने पर, मेला दिखाने के लिए अपने साथ अपने दुलारे बालक 'दुलारे' को भी गुमटी पर लेता गया था। दुलारे की माँ ने एक पुरानी धोती सोडे से साफ कर और उसे रङ्ग कर दुलारे को पहना दी थी। नन्हा बालक उसी रंगीन धोती को पहन फूला न समा रहा था। धीरे-धीरे घण्टे बीतने लगे। भारत की शिक्षितम्मन्य जनता की भाँति सूर्यदेव भी पूर्व को छोड़ पश्चिम की ओर ही आकर्षित होते जा रहे थे। अब अधिक देर न थी। एक घण्टे के अन्दर ही रामाश्रय के कर्मक्षेत्र—उस गुमटी—के सामने से बॉम्बे मेल और हवड़ा-दिल्ली-एक्सप्रेस दोनों साथ ही पास करने वाली थीं और उसके बाद ही उसे छुट्टी थी; इसलिये उन ट्रेनों के स्वागत में उसके पलक-पाँवड़े बिछे हुए थे। आँखें उत्सुकता पूर्वक बार-बार सिग्नल और लाइन और ट्रेन की ओर निहार रही थीं।

इसी समय रामाश्रय ने देखा हरनारायणप्रसाद उसी ओर चले आ रहे थे। हरनारायणप्रसाद उन आधे दर्जन व्यक्तियों में प्रथम और अन्यतम थे, जिन्हें रामाश्रय अपना परिचित बतलाता था। हरनारायण और रामाश्रय एक दूसरे को बाल्यकाल से ही जानते थे। रामाश्रय के उत्सुक हृदय ने सोचा—चलो यह कुछ समय इनसे बातें करने में बीत जायगा। हरनारायण आये। दोनों गप-शप करने लगे। इधर दुलारे पिता की कैद से मुक्ति पा, पिता की आँख बचाकर रेलवे लाइन के नीचे बिछे हुए पत्थरों में से लाल-लाल छोटे-छोटे पत्थर चुनने लगा।

अचानक रामाश्रय को इंजिन की क्षीण आवाज सुन पड़ी। उसने देखा 'सिग्नल' डाउन था। अप बॉम्बे मेल आ रही थी। उधर डाउन दिल्ली-एक्सप्रेस के अगला स्टेशन छोड़ चुकने का भी सिग्नल हो गया था। वह झट पैट पर दौड़ पड़ा। और दोनों हाथों से पैट दबाकर खड़ा होगया। ऊपर का चक्का घूम गया।

हम दस रुपया मासिक पाने वाले पैटमैनों के उत्तरदायित्व और उनके कार्यों की गुरुता को नहीं समझते। उनकी एक महज़ ज़रा-सी भूल से सुगमता-पूर्वक लाखों मनुष्य काल के ग्रास बन जा सकते हैं। रामाश्रय अभी कुल २४ महीनों से ही यह काम कर रहा था; पर कर रहा था बड़ी लगन से। जिस समय वह पैट पकड़ कर खड़ा होता, सारे विश्व को भूल जाता। उसके मन-प्राण पैट देवता के पाद-पद्मों में न्योछावर हो जाते। सौभाग्य से उससे आजतक कोई भूल न हुई थी, न होने की सम्भावना ही थी।

गड़गड़ाहट के दिग्कम्पनकारी निनाद के बाद बॉम्बे मेल की सूरत नज़र आई। ड्राइवर ने देखा—पैटमैन पैट पकड़े खड़ा है। लाइन साफ है। पर, रामाश्रय ने यह क्या देखा? उसने भय और आश्चर्य से विस्फारित नेत्रों से देखा एक छोटा-सा बालक लाइन के बीच में कुछ चुन रहा है। और वह, और वह, और कोई नहीं उसी का दुलारे है!

वह भय से काँप उठा । उसके पैरों के नीचे से मिट्टी खिसक गई । वह चिल्ला उठा ; पर, दुलारे दूर था । पत्थरों को चुनने में मस्त था । उसका मुँह गाड़ी की ओर न था । हवा भी दूसरे रुख की थी ; इसलिए शायद वह गाड़ी की गड़गड़ाहट भी न सुन रहा था । रामाश्रय चिल्लाया, और फिर चिल्लाया, और गला फाड़ कर फिर चिल्लाया ; पर सब व्यर्थ ! दुलारे ने पिता की चिल्लाहट नहीं सुनी, वह पत्थर चुनते-चुनते दूर निकल गया था । रामाश्रय क्या करता ? मेल पैट से अब हजार हाथ भी तो दूर न थी ।

(म)

रामाश्रय हतबुद्धि हो गया । उसे मालूम हुआ—वह दुर्भाग्य, जो अब तक सदा-अप्रत्यक्षरूप से उसके अरमानों, उस के सुखों को कुचलता आ रहा था, आज मूर्तिमान हो प्रत्यक्षरूप से उसके सर्वस्व को कुचलने चला आ रहा था । उसके मस्तिष्क-पट पर फिल्म की भाँति सहस्रशः विचार आने-जाने लगे । वह सोचने लगा—अब क्या करूँ ? आफत की तरह रेलगाड़ी दौड़ी चली आ रही है, बस अब दुलारे के प्राण गये !

मगर ! मगर एक उपाय है । मेरे हाथ में पैट है, यदि चाहूँ, तो पैट घुमा कर गाड़ी को दूसरी लाईन पर ले जाने का इशारा ड्राइवर को कर दूँ । पर उस तरफ से डाउन दिल्ली-एक्सप्रेस आना ही चाहती है, अगर यह गाड़ी उस लाइन पर चली जायगी, तो दोनों गाड़ियाँ लड़ पड़ेंगी । और हजारों बे-मौत मरेंगे । इस तरह दुलारे की जान तो बच जायगी ; पर हजारों की जान खतरे में पड़ जायगी ! पर, इस से क्या, दुलारे—मेरा सर्वस्व—तो बच जायगा । रामाश्रय के हाथ पैट घुमाने चले । इसी समय उसकी आत्मा पुकार उठी—नीच ! अगर तूने ऐसा किया, तो रौरव-नरक में भी तेरे लिए जगह नहीं । पर, हृदय ने कहा—पागल ! ये हजारों तेरे कौन हैं ? यदि तूने अपने दुलारे को यों कुत्ते की मौत मरने दिया, तो क्या तुझे महापाप नहीं होगा ? उसने फिर पैट घुमाना चाहा और फिर जरा सहमा । बस अब देर न थी । एक ओर हजारों की जानें थीं, एक ओर उस की जान की जान थी । रामाश्रय के हृदय में बिजली की भाँति ये विचार आये और गये । उस की बुरी गत थी । उस का हृदय फिर चिल्लाया—मूर्ख ! गाड़ी के ये हजारों तेरे कौन हैं ? कोई नहीं ! दुलारे तेरा सर्वस्व है । जल्दी कर, पैट घुमा !

रामाश्रय ने निश्चय कर लिया । वह पैट घुमाने चला । इसी समय दो इंजिनों के भोंपू एक साथ गरज उठे । उसे मालूम हुआ, मानों हजार-हजार वज्र उस के सिर पर गिर पड़े । उसी वज्रघोष के साथ किसी ने—शायद आत्मा ने ही कहा—राक्षस ! यह क्या करता है ?

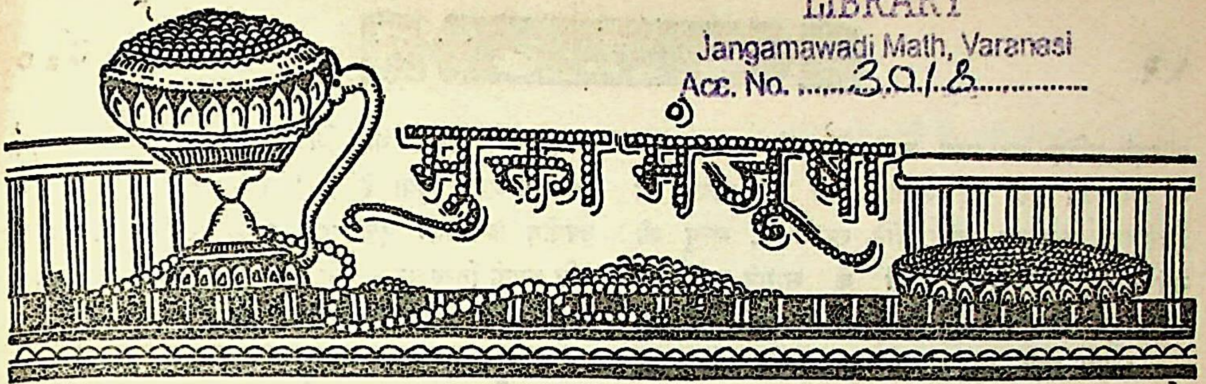
'कुछ नहीं, मैं राक्षस नहीं'—कहकर रामाश्रय ज्यों-का-त्यों पैट पकड़े खड़ा रह गया । उसने कहा—नहीं, एक जान के लिए मैं हजार जान नहीं लूँगा । मैं ऐसा नीच, राक्षस, नहीं । दुलारे ! माफ करना बेटा !—रामाश्रय ने आँखें मूँद लीं । दुनिया उसके लिए अन्धकार-पूर्ण हो गई ।

जिस समय ड्राइवर ने दुलारे को देखा, ट्रेन रोकने का कोई उपाय न था । गाड़ी हड़हड़ाती हुई उस के ऊपर से निकल गई ।

(ण)

रामाश्रय की आँखें तब खुलीं, जब दोनों गाड़ियाँ गुमटी से कुछ दूर निकल गईं । वह छाती पीटते हुए पागलों की भाँति, दुलारे की लोहू से तराबोर लाश, उसकी चूर-चूर हड्डियाँ, उस के टुकड़े हुए अङ्ग देखने दौड़ा ; पर उस ने जाकर देखा—दोनों लाइनों के बीच में दोनों हाथ लम्बे फैलाए दुलारे औंधा पड़ा है । उस ने झट-पट उसे उठा लिया । दुलारे जीवित था ; दुलारे होश में था । केवल ललाट में एक जगह खरोंच आ गयी थी, जिससे खून के कुछ कतरे निकल आये थे । दुलारे अपने अपराध और उसके इस महाभयङ्कर परिणाम को देख बड़ा ही डर गया था । उसने डरते-डरते अपने पिता से कहा—बाबा मुझे अधिक चोट नहीं आई । तुमने एक बार मुझे बतलाया था कि जब कभी ऐसा मौका आवे, तो दोनों हाथ आगे की ओर फैलाकर दोनों पटरियों के बीच में लम्बे लेट जाना चाहिए । मैंने वैसा ही किया । जल्दी लेटने में एक जगह सिर में चोट लग गई । उफ् ! ओह ! मालूम होता था, मानों एक बहुत बड़ा पहाड़ मेरे ऊपर से चला आ रहा है । बाप रे बाप ! कैसी भयानक

(शेषांश ५१ वें पृष्ठ के नीचे)



हिन्दी

उमरख़ैयाम की रुबाइयाँ

'माधुरी' के दिसम्बर वाले अंक में इस नाम से जो लेख शुरू किया गया था, वह जनवरी के अंक में समाप्त हो गया है। उमरख़ैयाम की इतनी सुन्दर और सारगर्भित साहित्यिक और दार्शनिक विवेचना हमने कहीं नहीं देखी। पं० रामदयाल तिवारी ने इस विषय का गहरा अध्ययन किया है। इस लेख में ख़ैयाम की कई रुबाइयों का भावार्थ देकर, उसके धार्मिक और सामाजिक विचारों का रहस्य खोलने की चेष्टा करते हुए आप लिखते हैं—

'अस्तु, ईरान के इस 'विश्वकवि' के संबंध में चाहे जितना मतभेद हो; परंतु हमारी यह निश्चित धारणा है कि एक सूक्ष्मदर्शी समालोचक की दृष्टि में उमरख़ैयाम का एक ही अंतःस्वरूप है। न तो वह मुहम्मदी धर्म का माननेवाला है, न वह सूफ़ी मत का ही क़ायल है; न तो वह अध्यात्मवादी है, न वह ईश्वर-भक्त ही है। वह एक अंतर्दृष्टिहीन जड़वादी एवं निराशावादी है। शरीर और ऐहिक भोगविलास ही उसके लिए सब कुछ है। वज़ीर निज़ामुलमुल्क की बदौलत उसे जीवन-निर्वाह की चिंता बिलकुल नहीं थी। खाने-पीने के लिए उसके पास यथेष्ट साधन प्रस्तुत थे। यही कारण है कि दीन, दरिद्री और दुःखी मनुष्यों के प्रति करुणा के भाव उसके हृदय में जागृत ही नहीं हुए। वह केवल अपने आमोद-प्रमोद में—सुरा-सेवन और सुंदरी के प्रेमालिंगन में मस्त था। उसकी रचना में हमें एक भी रुबाई ऐसी नहीं मिली, जिसमें उसने संतप्त संसार के लिए आँसू बहाये हों।

हाँ, वह रोता ज़रूर है; परंतु दूसरों के लिए नहीं—दुःखी जन-समाज के लिए नहीं—केवल अपने लिए, सिर्फ़ अपने विलासी जीवन के निश्चित अवसान की चिंता से। प्रत्येक विलासी मनुष्य का यही स्वाभाविक मनोधर्म होता है। उमरख़ैयाम के मस्तिष्क से जब

(५० वें पृष्ठ का शेषांश)

आवाज़ थी। मैं तो उस आवाज से ही मरा जा रहा था।'

रामाश्रय ने दुलारे को छाती से लगा लिया। उसकी आँखें बरसने लगीं। उसने रुँधे कण्ठ से कहा—चल बेटा! चल, मैंने तुझे बलि दे, हजारों की जान बचाई। इसलिये दयालु ईश्वर ने तेरी जान मुझे वापस कर दी। चल बेटा! आज से भीख माँगूँगा; किन्तु अब यह नौकरी हर्गिज़ न करूँगा।

• • •

समय बीतते देर नहीं लगती। उपर्युक्त घटना को आज एक वर्ष बीत गया। उस दिन स्टेशन-मास्टर के पास बॉम्बे-मेल के ड्राइवर की लाचारी से रास्ते में एक बालक के कुचल जाने की रिपोर्ट पहुँचने के बाद ही, रामाश्रय का इस्तीफा और घटना की पूरी रिपोर्ट भी पहुँची थी। रामाश्रय का इस्तीफा बड़ी मुश्किल से मंजूर हुआ था। उस उदार हृदय महामना भारतीय स्टेशन मास्टर ने स्वेच्छा से रेलवे-एजेण्ट से बहुत-कुछ लिखा-पढ़ी कर रामाश्रय को ४००) रु० दिलवाये और एक सौ रुपये स्वयं पुरस्कार-स्वरूप दिये थे। सुना है, उन्हीं रुपयों से सचाई और ईमानदारी की नींव पर रामाश्रय इन दिनों दिल्ली में कपड़ों का कारबार करते हुए अपनी पत्नी और पुत्र के साथ सुख-संतोष-पूर्वक अपने दिन बिता रहा है।

शीराज़ी मदिरा का नशा उतर जाता है, प्रणयालिंगन का जोश जब ठंढा पड़ जाता है, तो उसे जीवन की निःसारता कुछ-कुछ प्रतीत होने लगती है, मृत्यु की भयंकर मूर्ति उसकी आँखों के सामने अट्टहास करती हुई दिखायी देती है। उससे बचने का उसे कोई उपाय नहीं सूझता। सृष्टि-रहस्य का उसे कोई ज्ञान नहीं। मृत्यु के उस पार उसकी प्रकाशहीन आँखें कुछ देख ही नहीं सकतीं। जीवन-मरण की गुत्थी को सुलझाने में वह अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है। ऐसी बेचैनी की हालत में उसके पास कोई युक्ति ही नहीं रह जाती। अपने भयावह और अनिश्चित भविष्य की कष्टदायक कल्पना वह अधिक समय तक बरदाश्त नहीं कर सकता; इसी मानसिक दुरवस्था में और निराशा से त्रस्त होकर वह अपनी प्रणयिनी को पुकारकर कहता है—'प्रिये, लाओ शीराज़ी मदिरा; देखो यह क्षण-भंगुर जीवन बीत रहा है। मृत्यु—महाशून्य मुँह बाये दौड़ा आ रहा है। जल्दी करो, फिर यह समय आने का नहीं।' यही मानसिक प्रवृत्ति उसकी अधिकांश रचना का मूलाधार है।'

अस्तु ख़ैयाम विलासवादी कवि था और उसे जो कीर्त्ति यूरोप में प्राप्त हुई वह वर्त्तमानकालीन विलासासक्त यूरोपियन समाज की बदौलत। मगर फिट्ज़जेरल्ड, जिसने उमरख़ैयाम की कीर्तिध्वजा स्थापित की, वह भी इस कवि की आध्यात्मिकता का क़ायल नहीं था। वह स्वयं इस विषय में क्या कहता है, देखिए—

'इस बात को सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक प्रमाण अधिक हैं कि उमरख़ैयाम की वैज्ञानिक दृष्टि तथा योग्यता अपनी समकालीन परिस्थित से बहुत आगे बढ़ी हुई थी। उसकी महत्त्वाकांक्षा तथा आवश्यकताएँ भी उतनी ही थीं, जितनी कि एक वैज्ञानिक विद्वान् के लिए पर्याप्त हो सकती हैं; अतएव जो लोग उसे रहस्यवादी नहीं समझते, वे मेरे इस विचार से संतोष मान सकते हैं कि उमरख़ैयाम ने जिस मदिरा की प्रशंसा की है, वह अंगूरी शराब के सिवा और कुछ भी नहीं है; परंतु वह मदिरा का उपयोग उतना अधिक नहीं करता था, जितना कि उसने उसे अपनी रचना में महत्त्व दिया है। 'मय' का रूहानी अर्थ में उपयोग करनेवाले सूफ़ी संप्रदाय के कपटी कवियों के प्रति अपनी तिरस्कार-भावना को प्रकट करने की इच्छा से ही उसने संभवतः ऐसा किया होगा।'

० ० ०

भारतवर्ष में नमक का धंधा

नमक उन वस्तुओं में है, जिनपर ईस्टइंडिया कम्पनी ने एकाधिकार करके भारत में लिवरपूल का नमक प्रचलित किया। उसके पहले बंगाल में चटगाँव से नमक आता था। समुद्र के खारे पानी को सुखाकर नमक बना लेते थे। कम्पनी ने बंगाल पर दखल करते ही यह नियम बना दिया कि जितना भी नमक बनाया जाय, वह सब कम्पनी के हाथों बेच दिया जाय। इसका क्या परिणाम हुआ, इस विषय पर 'वीणा' के जनवरी-अंक में प्रो० शंकरसहाय सक्सेना ने एक छोटा-सा; पर उपयोगी लेख लिखा है। आप कहते हैं—

'इस प्रकार उत्पत्ति पर अधिकार करके कम्पनी के अधिकारियों ने कम्पनी के लाभ के लिये नमक का मूल्य बहुत अधिक कर दिया। इसका फल यह हुआ कि अन्य अंगरेज व्यवसायियों ने इंगलैंड का नमक लाकर बंगाल में सस्ते दामों पर बेचना प्रारम्भ कर दिया और वह धंधा जिससे कि हजारों समुद्र-तट-वासियों को रोटी मिलती थी, नष्ट हो गया। इस समय बंगाल में लगभग पाँच लाख टन नमक की खपत होती है। विदेशी व्यवसायी संगठित रूप से इस लाभदायक धंधे को अपने अधिकार में किये हुए हैं। अनेक अवसरों पर जब कराँची के नमक-व्यवसायियों ने बंगाल के व्यापार को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया, उसी समय 'साल्ट इम्पोर्टर्स एसोसिएशन' ने विदेशी नमक के मूल्य को कम करके इस प्रयत्न को विफल कर दिया। यदि भारत-सरकार विदेशी नमक पर कर लगाकर बंगाल में देशी नमक बिकवाने का प्रयत्न करती, तो अच्छा होता। विदेशी व्यवसायी स्वदेशी व्यवसायियों को बंगाल के बाजार में नहीं घुसने देना चाहते। भारत-सरकार का

यह कर्तव्य है कि वह स्वदेशी व्यवसायियों की सहायता करे।'

टैरिफ़बोर्ड ने इस प्रश्न की जाँच करके जो राय क़ायम की, वह भी देखिए—

'बोर्ड का कथन है कि अच्छी जाति का नमक कुछ ही वर्षों में यहाँ उत्पन्न हो सकता है। बोर्ड की सम्मति में ऐसी आवश्यक वस्तु के लिए विदेश पर निर्भर रहना युद्ध के समय कठिनाई का स्वागत करना है। बोर्ड को जाँच करने से ज्ञात हुआ कि विदेशी व्यवसायी स्वदेशी व्यापार को नहीं पनपने देना चाहते; इसीलिए बोर्ड ने इस धन्धे को सहायता देने के लिए सरकार से प्रार्थना की; किन्तु टैरिफ़बोर्ड का ख़याल था कि एकाएक बंगाल की समस्त माँग स्वदेशी नमक से नहीं पूरी हो सकती। इसलिए, बंगाल के लिए नमक का एक बोर्ड स्थापित किया जाय, जो बंगाल में मिलने वाले समस्त देशी नमक को मोल ले ले, एवं जितने नमक की और आवश्यकता रह जावे वह विदेशी व्यसायियों से लिया जाय।'

• • •

पंजाब का महिला-समाज

'चाँद' के जनवरी-अंक में प्रोफेसर जगदीशचन्द्र शास्त्री काव्यतीर्थ ने ऊपर के विषय पर प्रत्येक दृष्टि से विचार करते हुए, पंजाब के महिला-समाज का जो चित्र हमारे सामने खींचा है, उसे देखकर हम चकित रह जाते हैं। हम पंजाब को वीर-प्रसविनी भूमि समझते आये हैं और आज भी देश को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं; लेकिन पंजाबी महिलाओं का यह विलास-प्रेम देखकर हमारे मनमें अनिवार्य रूप से यह प्रश्न उठता है कि पश्चिम की नक़ल हमें पतन की ओर तो नहीं ले जा रही है! यह तो हमें पहले भी मालूम था कि पंजाबी छात्रों में जितनी विलासिता आ गई है, उतनी शायद भारत के किसी अन्य प्रान्त में नहीं आई। वहाँ साधारण विद्यार्थी का ख़र्च भी १००) मासिक से कम नहीं होता; लेकिन हमें यह मालूम न था कि पंजाबी देवियाँ इस मैदान में मरदों से भी दो क़दम आगे हैं। पंजाबी देवियों में शिक्षा का खूब प्रचार है, धर्म से भी उन्हें श्रद्धा है, वह गृह-कार्यों में खूब कुशल होती हैं; लेकिन—

'यह सब कुछ है; परन्तु पञ्जाबी महिलाओं में फ़ैशन का रोग बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। लेख के प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पञ्जाब में फ़ैशन बहुत अधिक है। शिक्षा की वृद्धि के साथ सादगी नहीं; परन्तु विलास और शृङ्गार बढ़ता जा रहा है। यूरोप का फ़ैशन का भूत पञ्जाबी महिलाओं के सिर पर सवार होता जा रहा है। आज पेरिस से जो फ़ैशन निकलता है, वह सीधे लाहौर आ पहुँचता है। यहाँ के युवक और युवतियाँ प्रत्येक बात में यूरोप की नक़ल करते हैं। लड़के और लड़कियों के कॉलेजों के छात्रों में एक प्रकार की प्रतियोगिता शुरू हो गई है; इसलिये पञ्जाबी युवकों और युवतियों का भविष्य अब संकट में है। निश्चय उनके संरक्षकों की जेब में पैसे हैं, वे उन्हें अपनी गाढ़ी कमाई का पैसा उड़ाने के लिये दे सकते हैं; परन्तु क्या उनका इस सम्बन्ध में कुछ भी कर्तव्य नहीं है? यदि ऐसी ही दशा रही, तो हम कह सकते हैं कि पञ्जाब फ़ैशन की आँधी में उड़ जायगा। देखें आगे होता क्या है!!'

• • •

स्त्रियों में गालियों की प्रथा

'चाँद' के इसी अंक में गालियों की भ्रष्ट प्रथा पर श्री वृन्दावनदास ने यह छोटा-सा पठनीय नोट लिखा है। आप बहुत ठीक कहते हैं कि स्त्रियों की अशिक्षा ही इस प्रथा का मूल कारण नहीं है; बल्कि इसमें पुरुषों का दोष भी कुछ कम नहीं है—

'यहाँ पर स्त्रियों में घुसी हुई इस बुरी प्रथा के कारणों पर विचार करना असंगत न होगा। कहने की आवश्यकता नहीं, कि यह प्रथा अशिक्षित समुदाय में ही अधिक प्रचलित है। वस्तुतः स्त्रियों की घोर अविद्या ही इस अन्धकार का कारण है। परन्तु, इस प्रथा का सम्पूर्ण दोष केवल स्त्रियों की अविद्या के माथे ही नहीं पटका जा सकता—पुरुषों पर भी इसका भारी उत्तरदायित्व है। बहुधा देखा गया है कि प्रत्येक समाज में कुछ अशिक्षित छैला ऐसे होते हैं, जो स्त्रियों की इन गालियों को अमृत-वर्षा के समान देखते हैं।

यदि किसी विवाह अथवा किसी अन्य शुभ अवसर पर उनका नाम ले-लेकर गालियाँ नहीं गाई गईं, तो उनकी दृष्टि में वह विवाह अथवा अन्य उत्सव कुछ हुआ ही न था। हमने स्वयं सभाओं और पञ्चायतों में इस कुप्रथा के विरुद्ध भाषण किये अथवा प्रस्ताव आदि उपस्थित किये हैं; परन्तु खेद है, इसमें भी हमारा विरोध किया गया। एक दफ़ा एक सभा में गालियों के बन्द किये जाने के प्रस्ताव के निषेध में एक महाशय बोले—यह विषय सभा द्वारा निर्णीत न होना चाहिये, अपने-अपने घर का प्रबन्ध तो लोगों को अपने आप ही करना चाहिए। दूसरे छैला बोले—अरे भाई! अब घर का कौन-कौन सा प्रबन्ध सभा किया करेगी? देखना चाहिए, किस चालाकी के साथ लोग इस समस्या की उपेक्षा कर जाते हैं!'

० ० ०

क्या ईश्वरोपासना संस्कृत में होनी चाहिए?

यद्यपि हमारे बहुत से धर्म-ग्रन्थ हिन्दी में अनुवादित हो गये हैं; पर कर्म-कांड अभी तक संस्कृत ही में होता जा रहा है। पंडितजी चाहे दो-चार श्लोक या मंत्र ही रटे हुए हों; पर दक्षिणा या संकल्प का मंत्रोच्चारण संस्कृत ही में करेंगे। इससे उनकी पंडिताई का रंग कुछ चोखा हो जाता है। यजमान अधिकतर संस्कृत से अनभिज्ञ होते ही हैं। उन पर पंडितजी के पांडित्य का रोब छा जाता है। इसीलिये आज भी बे-सिले लम्बे पन्नों की पोथी का जितना आदर है, उतना या उसका शतांश आदर भी किताबी आकार में छपे हुए धर्म-ग्रन्थों का नहीं है। देवी भागवत या बाल्मीकीय रामायण जो पंडित रायल साइज़ की छपी पोथी से बाँचे, तो वह पंडित नहीं समझा जायगा। यह अतीत-पूजा अभी तक उन लोगों में भी प्रचलित है, जो कितने ही निरर्थक ढकोसलों को त्याग चुके हैं, वे भी संध्या करेंगे, तो संस्कृत में ही। पंडित लोग अपनी पंडिताई का मोह न छोड़ें, तो स्वाभाविक है; क्योंकि संस्कृत-ज्ञान पर उनकी जीविका अवलम्बित है; लेकिन, जो सज्जन किसी तरह रट-रटाकर गायत्री मंत्र पढ़ लेते हैं, वे संध्या करते समय कहीं मंत्र के दो-चार शब्द भूल गए, तो संध्या ही भंग हो गई। वे भी संस्कृत का मोह नहीं छोड़ सकते। मुसलमानों में भी अभी तक अरबी धर्म भाषा है, हालां कि तुर्कों ने कुरान का तर्जुमा तुर्की भाषा में करा लिया और अरबी की गुलामी से अपने को मुक्त कर लिया है। यूरोप में तेरहवीं सदी से बाइबल का अनुवाद हरेक भाषा में हो गया। इसी जटिल विषय पर जनवरी के 'युगान्तर' में साहित्यभूषण पंडित विश्वनाथ शास्त्री एम० ए० ने अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उनका एक अंश हम उद्धृत करते हैं—

'अब इस समस्या पर विचार करना है कि क्या प्रत्येक मनुष्य को नियम-पूर्वक संस्कृत पढ़नी चाहिए और ईश्वरोपासना, अर्थ समझ कर, करनी चाहिये। यह पुरानी भाषा, जिसका व्याकरण पढ़ने में ही कई वर्ष (द्वादशभिर्वर्षैर्व्याकरणमधीयते) लग जाते हैं, साधारण मनुष्यों के लिये अति कठिन है। पहले तो मनुष्य आयु का एक बड़ा भाग भाषा के समझने में व्यतीत करे, फिर कहीं उपासना को समझ-बूझ कर करने में समर्थ हो। इतना झंझट साधारण मनुष्यों से नहीं हो सकता। इस भाषा को पढ़ना तो कुछ इने-गिने व्यक्तियों का ही काम है। जनता के लिये उपासना का माध्यम हिन्दी अथवा प्रान्तीय भाषा होना चाहिए, जिसे वे अच्छी प्रकार समझ सकते हों। इस प्रकार से पठित और अपठित दोनों उपासना में एक सा आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। भाषा की दृष्टि से संस्कृत और हिन्दी दोनों समान हैं। हमने संस्कृत को मानसिक दासता के कारण पवित्र समझ रखा है; अन्यथा इसमें पुरानी होने के अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है। परिवर्त्तन में ही जीवन होता है। नवीन बातों का भी स्वागत करना चाहिये। प्रत्येक भाषा की अवनति होना भी अनिवार्य है। जिस प्रकार ईश्वर-भक्ति के लिये उच्चवर्ण की आवश्यकता नहीं है, इसी प्रकार संस्कृत-जैसी कठिन भाषा का होना भी कोई आवश्यक नहीं। सच्ची भक्ति के लिये तो भाषा वा शब्दों की भी आवश्यकता नहीं। ईश्वर यह नहीं चाहता कि हमारी उपासना संस्कृत में ही छन्दोबद्ध हो। अन्य भाषाओं में उपासना करने वाले हम संस्कृतज्ञों से ईश्वर के दरबार में कम सम्मान नहीं पावेंगे।

कई सुधारकों का ध्यान इस ओर गया है। गुरु नानकदेवजी ने पञ्जाबी भाषा को ही अपनी भक्ति का माध्यम बनाया है। भाषा बड़ी ही सुबोध और सरल है। अपठित

ग्रामीण व्यक्ति भी आनन्द ले सकता है। ईसाइयों की बाइबल इब्रानी भाषा में थी; परन्तु उन्होंने उसका अनुवाद दूसरी देशी भाषाओं में कर लिया है। वे अपनी ही भाषा में उसका अध्ययन और स्मरण करते हैं। हाल ही में टर्की देश में अरबी के स्थान में तुरकी भाषा में उपासना की जाने लगी है। सनातन धर्म्म में भी कुछ पद्य, सुबोध भाषा में 'श्री कँवल नेत्र' इत्यादि नाम से रचे गए हैं; परन्तु अभी तक हम आर्यसमाजियों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। हमारी सन्ध्या, हवन, संस्कार इत्यादि संस्कृत में ही होते हैं। ये सब सरल सुबोध प्रान्तीय अथवा हिन्दी भाषा में अनूदित हो जाने चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति उनका आशय समझ सके। इससे लोगों की यह शिकायत कि उपासना में मन नहीं लगता, बहुत कुछ दूर हो जाएगी। हर बात के लिये पुरोहित को भी न बुलाना पड़ेगा। बहुत से धार्मिक कृत्य लोग आप ही कर लिया करेंगे।'

० ० ०

पढ़े-लिखों की पहेली

भंगी या मेहतर को हम इसलिये पतित समझते हैं कि वह मल-मूत्र की सफ़ाई करता है। वह खुद किसी भद्र-पुरुष को यह कर्म करते नहीं देखता; इसलिये वह इसी काम को अपने पतन और अस्पृश्यता का हेतु समझता है। और यह ठीक भी है। अगर हम स्वयं अपने घरों की सफ़ाई करने लगें, तो भंगी भी इस काम को हेय समझना छोड़ देगा और उसके मन में आत्म-सम्मान का भाव उदय होगा। इसी तरह का एक प्रत्यक्ष उदाहरण हिन्दी 'हरिजन-सेवक' में प्रकाशित हुआ है—

'हरिजनों में जो लोग पढ़-लिख गये हैं, उनके सामने एक उलझन आ गई है। इस देश ने बस यही सीख लिया है, कि शिक्षा का अंतिम लाभ नौकरी-प्राप्ति ही है। बंगाल प्रांत के लोग दो-तीन पीढ़ियों से बचपन में ही यह पाठ सीख लेते हैं, कि जो पढ़-लिख लेगा, उसे घोड़ा-गाड़ी चढ़ने को मिलेगा। घोड़ा चढ़ने को मिले, बस इसी के लिए लिखना-पढ़ना सीखना चाहिए। गाड़ी या घोड़ा सवारी को न मिला, तो सारी शिक्षा बेकार ही गई! नौकरी करने की सभी कोशिश करते हैं। नौकरी करके ही घोड़ा-गाड़ी मिलेगी; या फिर डाक्टर, इंजीनियर अथवा वकील बनकर गाड़ी-घोड़े की सवारी मिलेगी। पर इतनी नौकरियाँ आख़िर आवें कहाँ से? वकीलों के लिए इतने मुवक्किल कहाँ से लाये जायँ और इंजीनियरों को इतना काम कहाँ से जुटाया जाय? होता क्या है, कि पढ़-पढ़कर धड़ल्ले से पास होते जाते हैं, वकील, मुख्तार या डाक्टर भी बनते चले जाते हैं; पर पैसे की तंगी तो वैसी ही बनी हुई है। सवर्ण लोगों में ही नौकरी के लिए हाय-हाय मची हुई है। अपने नातेदारों या परिवार के लोगों को ही कितने आदमी नौकरी दे-दिलाकर खुश रख सकते हैं? यह सब होते हुए भी नौकरी का मोह छूटता नहीं। बड़ी जात के हज़ारों लड़के पास हो-होकर नौकरी के लिए हायतोबा मचा रहे हैं। फिर ग़रीब हरिजनों को वहाँ कौन पूछे? उनमें भी जिन्होंने उच्च शिक्षा पाई है, वे तो नौकरी ही खोजेंगे। पर आज-कल के ज़माने में उन्हें नौकरी मिलना बहुत ही कठिन है। जहाँ 'नौ खाये तेरह की भूख' है, वहाँ उदारता का क्या काम! ऊँची जातियों से सारी जगहें पहले से ही भर चुकी हैं। नौकरियाँ तो आजकल अपने आश्रित कुटुम्बियों को ही दी जाती हैं, तब हरिजनों को कोई जगह मिलना असंभव ही है। पढ़े-लिखे हरिजन नौकरी न मिलने से हताश तो होते ही हैं, समाज की ओर देखकर वे यह भी कहते हैं—'इतने परिश्रम से लिखना-पढ़ना सीखकर जब बेकार ही बैठे हैं, तो हमारे आदमी हमारी खिल्ली क्यों न उड़ायें। कहते हैं, 'पढ़ी फ़ारसी बेचें तेल; यह देखो क़ुदरत का खेल!' शिक्षा का यह नतीजा देख कर ही हमारे दूसरे भाई अब पढ़ने-लिखने के लिए तैयार नहीं होते।

उत्तरी बंगाल के एक पढ़े-लिखे मेहतर युवक को जब अपनी आजीविका चलाने का कोई ठीक रास्ता न मिला, तो उसने मुझे बड़ी नम्रता से एक पत्र लिखा। उसे मैंने लिख दिया, कि मुझ से एकबार वह आकर मिल ले। वह मैट्रिक पास था। पास करने के बाद नौकरी की खोज में इधर-उधर बेचारा मारा-मारा फिरा। मेडिकल कॉलेज या स्कूल में भर्ती होने की भी चेष्टा की। पैसा गाँठ में न होने से वकालत या डॉक्टरी भी न पढ़ सका। नौकरी की तलाश

में मुंसिफ़ की कचहरी में गया; पर मुंसिफ़ था मुसल्मान। उसने कहा, कि मुसल्मान हो जाओ, तो नौकरी दिला दूँ। मिशनरियों के भी यहाँ चक्कर काट आया। वहाँ से भी ऐसा ही जवाब मिला, कि ईसाई होने पर ही तुम्हें नौकरी मिल सकेगी; पर वह न तो मुसल्मान होने को तैयार था और न ईसाई ही। मुझे वह लड़का शान्त और संस्कारी दिखाई दिया। मैंने उससे पूछा—'क्यों भाई, आखिर तुम्हारी इच्छा क्या है?' उसने कहा—'आप ही कोई रास्ता बताइये न।' उसे अब नौकरी तो करनी नहीं थी और उसकी रुचि भी नहीं थी। डाक्टरी वग़ैरह पढ़ने की भी कोई ऐसी खास इच्छा न थी। रोटी-भाजी भर रोज़ मिलती जाय, यह सोचकर उसने एक मामूली-सी दूकान खोल रखी थी। उसका छोटा भाई और वह खुद उस दूकान में काम करते थे, बाप झाड़ूदार था। इतने से ही किसी तरह घर-गिरस्ती चल रही थी; पर इस काम से उसे सन्तोष नहीं था। उसके जात बिरादरी वाले उसका मज़ाक उड़ाया करते थे—'यह देखो, दुनिया-भर की किताबें घोटकर भी अन्त में दूकानदारी ही बदी थी! नौकरी भी बाबू साहब को नसीब न हुई।' जिनके लड़के हाईस्कूल में पढ़ रहे थे, उन्होंने शिक्षा की निरुपयोगिता देखकर उनका नाम स्कूल से कटवा लिया और उन्हें अपने काम-धन्धे में लगा दिया। इससे इस युवक को बड़ा दुःख हुआ उसे उसकी निष्फलता ही व्यथित कर रही थी। समाज का हित करना तो दूर रहा, उलटा वह अहित का दृष्टान्त बन गया। उधर सवर्ण हिन्दू जुदे उस पर तरस खाकर कहा करते थे—'इस पढ़ाई-लिखाई से तो तेरा एक भी काम न सधा!' मैंने देखा, कि उसके असन्तोष का मुख्य कारण यह था, कि वह हाथ से काम करने में कोई गौरव की बात न देखता था। यह बात न थी, कि वह हाथ की कारीगरी जानता न हो। यह काम उसे पसन्द भी था। गुज़र लायक इस काम से उसे रोज़ी भी मिल जाती थी। वह तो उसका अपना घरू रोज़गार था ही; पर उस काम से वह समाज में प्रतिष्ठित नहीं बन सकता था।

मैंने उससे कहा, कि तुम कुछ दिन मेरे साथ रहो। हमारे यहाँ आश्रमवासी पाखाने की सफाई तो अपने हाथ से करते ही हैं। उन सबको दो-एक दिन जब काम करते देखा और इसी प्रसंग की चर्चा भी आई, तो उसकी आँखें खुल गईं। वह बोला—'मुझे अब मेरा रास्ता मिल गया। मैं जो दूकान चला रहा हूँ और छतरी तथा चामडोल बनाने का जो काम करता हूँ, उससे ही मुझे अब सन्तोष रहेगा। गृह-उद्योग कुछ बुरा नहीं है। मेहतर के घर में मेरा जन्म हुआ है और अपने सम्बन्धियों व घर वालों को मेहतर का ही काम करते नित्य देखता हूँ। यह सब होते हुए भी शिक्षा के दोष से ही मैं इन कामों को हेय समझ बैठा था, पाखाना हाथ से साफ करने की कल्पना भी मैं अपने मन में नहीं कर सकता था।' आश्रम में आकर वह अपने हाथ से सफ़ाई का काम करने लगा और कहने लगा—'मेरे यहाँ झाड़ू बना-बना कर बाजार में बेचने का धन्धा बाप-दादे से चला आ रहा है। सो अब उसी कामको मैं आग्रह-पूर्वक आरंभ करूँगा। घर में बैल और गाड़ी भी है। वह भी चलाता रहूँगा। इस सबसे पैसे की तंगी नहीं आ सकती। अपने मन में उसे इतना सन्तोष हो गया, कि उसने उसी वक्त यह संकल्प कर लिया कि—'मेरी जात बिरादरी के लोगों में शिक्षा के विकृत आदर्श का जो अज्ञान छा रहा है, उसे अवश्य दूर करने का प्रयत्न करूँगा।' छतरी और चामडोल बनाने का काम भली-भाँति चलाने के लिए सारा ज़रूरी सामान वह अपने साथ ले गया और जो सबसे अधिक वस्तु वह लेकर गया, वह था उसका अत्यन्त आत्म-सन्तोष।

उस मेहतर युवक की मनोवृत्ति में जो परिवर्तन हुआ, वैसा परिवर्तन यदि शिक्षित हिन्दुओं एवं हरिजनों में हो जाय, तो वे बहुत ही सुखी रहें। नौकरी करने या हाथ से काम करके प्रतिष्ठित बनने का मोह इसी प्रकार कम होगा और धीरे-धीरे दूर होता जायगा।'

० ० ०

कला-संबंधी कुछ स्वतंत्र विचार

'सरस्वती' के नववर्षांक में अच्छे-अच्छे पढ़ने के लायक लेखों का अच्छा संग्रह किया गया है। श्रीस्वामी सत्यदेवजी का 'कला-संबंधी स्वाधीन विचार,' भाई परमानन्द का 'निट्शे और उसकी फ़िलासफ़ी', पंडित दयाशंकरजी दूबे का 'भारत में हरिजनों की दशा', श्रीशीतलासहाय का 'किसान ऋणी

क्यों हैं ?' और श्रीमती सूर्यदेवी अनूपकौर का 'अमरीका का मातृकार्य', विशेष रूप से विचारोत्पादक हैं। पं० वेंकटशनारायणजी ने श्रीराधा रानी स्वकीया थीं या परकीया', में फिर व्रजभाषा के कवियों की खबर ली है, और श्रीसेंट निहालसिंहजी की जो लेख-माला कई महीनों से चल रही थी, वह अब भी जारी है और इस अंक में आपने स्वर्गीय श्री विट्ठल भाई पटेल के कुछ संस्मरण दिए हैं, जो बड़े ही मनोरंजक हैं।

स्वामी सत्यदेवजी ने कला के संबंध में अपने जो विचार प्रकट किये हैं, उनमें नवीनता है, मौलिकता है, और बहुत कुछ वास्तविकता है। जैसा आपने कला का विकास-क्रम दिखाया है, यह रचनात्मक कला का युग है, और वह धर्म और पुराण और खुशामद की मंज़िलों को तय करती हुई इस पद तक पहुँची है और उसको विशेषता है मस्तिष्क और हृदय का समन्वय। आप बहुत ठीक कहते हैं—

'मस्तिष्क-शून्य हृदय की अनुभूति एक ऐसी भ्रमात्मक उक्ति है, जिसकी लीला भारत के बड़े-बड़े ग्रेजुएट और दिग्गज पंडित भी आज तक नहीं जान सके। हृदय की अनुभूति के साथ मस्तिष्क का विकास लाज़मी है। दोनों साथ-साथ चलने चाहिएँ, तभी निर्दोष कला का स्वरूप संसार के सामने आ सकेगा और सौंदर्य की महिमा हम समझ सकेंगे।'

आगे आप लिखते हैं—

'यह बात ठीक नहीं है कि पश्चिम की कला में हृदय की ज्योति की झलक नहीं दिखलाई देती। राजनैतिक क्षेत्र को छोड़कर बाकी सब विभागों में पाश्चात्य देशों के विद्वान् बड़ी सचाई और ईमानदारी से सत्य की खोज करते हैं। जब उन्हें अपनी भूल स्पष्ट मालूम हो जाती है, तब वे उसे उदारता से स्वीकार कर आगे बढ़ने के लिये कमर कसते हैं। उनकी उदारता का यह ज्वलन्त उदाहरण है कि उनके बड़े-बड़े लब्धप्रतिष्ठ धर्माचार्यों ने महात्मा गान्धी को एक दूसरा ईसामसीह स्वीकार किया है। एशिया के लोगों में ऐसी विशाल हृदयता कहाँ ? क्या हिन्दू लोग कभी किसी अच्छे-से-अच्छे योरपीय को भगवान् कृष्णचन्द्र या मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के समान मान लेंगे ? क्या मुसलमान किसी श्रेष्ठतम चरित्र-वाले पाश्चात्य महापुरुष को हजरत मुहम्मद-जैसा मान सकते हैं ? क्या बौद्ध लोग किसी भी पश्चिमीय सच्चरित्र विद्वान् को भगवान् बुद्ध की तरह मानकर उनका आदर करने को तैयार हैं ? कदापि नहीं। एशिया के लोगों में इस संबंध में विनय और उदारता की अत्यन्त कमी है ; इसीलिये संसार की दौड़ में वे पीछे रह गये हैं। कला में भी उनकी यही अवस्था है। अपनी भोंडी कला को दोषयुक्त न मानकर वे 'हृदय की अनुभूति' की आड़ में उसकी उलटी-सीधी व्याख्या करने बैठ जाते हैं और अपनी कला-शून्य मूर्तियों तथा चित्रों में कोई-न-कोई विशेषता निकालने को भरपूर कोशिश करते हैं। पश्चिम के चित्रकार अपने मनोविज्ञान और पदार्थ विज्ञान की सहायता से अपनी कला को बहुत आगे बढ़ा रहे हैं और पूर्व अपनी पुरानी, दक़ियानूसी और भोंडी कला की आध्यात्मिक व्याख्या करने में लगा हुआ है, वह यह समझता है कि अपनी भूल मान लेने से शायद उसका गौरव कम हो जायगा। वह अपने अध्यात्मवाद के घमण्ड में अपनी कला की स्पष्ट भूलों को भी देखना नहीं चाहता और पुराने पण्डितों की तरह वेद के मंत्रों से ही सभी अच्छी-अच्छी बातें निकाल कर अपनी कीर्ति स्थापित करना चाहता है ? इसी बीमारी के कारण आज हम कला के यथार्थ स्वरूप को भी नहीं पहचान रहे हैं। विज्ञान ही संसार का भविष्य बनाएगा और उसी का सहारा लेने से विश्व की कला के रहस्यों का उद्घाटन होगा। हमें अपनी आत्मा में स्वतंत्रता की दामिनी की स्थापना करनी चाहिए और अपने नेत्रों में विज्ञान का प्रकाश लाना चाहिए। जब तक हम इन दो साधनों को नहीं अपनायेंगे, हमें कदापि बाह्य और आभ्यन्तरिक जगत् के गूढ़ रहस्यों का पता नहीं लगेगा।'

• • •

अमरीका का मातृकार्य

प्रत्येक राष्ट्र का भविष्य उसके बालक हैं और उन्नत राष्ट्र बालकों के पालन, शिक्षण और रक्षण में कोई कसर नहीं उठा रखते। इस लेख में श्रीमती अनूपकौर ने उन योजनाओं का उल्लेख किया है, जो इस विषय में अमरीका ने की हैं। सरकार ने एक ब्यूरो बना दिया है, जो बालकों

के स्वास्थ्य, चरित्र आदि के विषय की जाँच-पड़ताल करता रहता है। इस ब्यूरो के कुछ कार्यों की चर्चा करते हुए आप लिखती हैं—

'उक्त ब्यूरो अपने जन्मकाल से ही इस बात पर जोर डालता रहा है कि यदि बच्चे अच्छे ढंग से उत्पन्न हों और उनकी ठीक-ठीक देख-रेख हो, तो बच्चों की मृत्यु-संख्या नहीं के बराबर हो जाय। उसने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि बच्चों की मृत्यु-संख्या इस बात के जानने का अचूक स्टैंडर्ड प्रस्तुत करती है कि माता-पिताओं की सच्चरित्रता, बुद्धिमत्ता और स्वास्थ्य कैसा रहा है तथा शिक्षकों, स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारियों, चिकित्सकों, दाइयों की कैसी योग्यता रही है।

उक्त ब्यूरो केवल बच्चों के जीवन-सम्बन्धी अवस्थाओं का ही परिचय नहीं प्राप्त करता रहा है; किन्तु उन अवस्थाओं से व्यवहार करने के मार्ग का भी वह निर्देश करता रहा है और इस पिछली बात के सम्बन्ध का उसका कार्य महत्त्व-पूर्ण और व्यावहारिक हुआ है।

उदाहरण के लिये मैं तत्सम्बन्धी उसके साहित्य का ही यहाँ उल्लेख करती हूँ। बच्चों की मृत्यु घटाने और उनका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य सुधारने के विचार से ही उसने वैसा साहित्य निर्माण किया है। इस विषय की छोटी-छोटी पुस्तिकायें विशेषज्ञों से लिखाई गई हैं और वे इस ढंग से लिखी गई हैं कि साधारण शिक्षित भी उन्हें भले प्रकार समझ सकता है। उनका मूल्य भी इतना कम रक्खा गया है कि गरीब-से-गरीब आदमी उन्हें खरीद सकता है।

उक्त ब्यूरो ने अपनी उद्‌देश-सिद्धि के लिए संसार के दूसरे देशों के अनुभवों का उपयोग करने में चूक नहीं की है। उदाहरण के लिये मैं यहाँ एक विज्ञप्ति का उल्लेख करूँगी। उसने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके संक्षेप में यह बतलाया है कि बच्चों की मृत्यु कम करने के लिये न्यूज़ीलैंड में सार्वजनिक संस्थाएँ तथा व्यक्तिविशेष कितने महत्त्व का कार्य कर रहे हैं। वास्तव में इस क्षेत्र में यह देश संसार के अन्य देशों से बहुत आगे है।

जो बच्चे स्वाभाविक स्थिति से हीन या बढ़े रूप में उत्पन्न होते हैं, उनके सम्बन्ध में ब्यूरो ने बहुत कुछ महत्त्व का कार्य किया है। स्वाभाविक अवस्था से हीन रूप में उत्पन्न होने वाले बच्चे जन्मजात दोष या माता-पिता की मूर्खता, असावधानी या दरिद्रता से अथवा रोग या दुर्घटना से शारीरिक या मानसिक त्रुटि वाले होते हैं; अतएव उनकी देख-रेख की विशेष आवश्यकता रहती है।

इसके सिवा जो बच्चे स्वाभाविक स्थिति की अपेक्षा बढ़े हुए रूप में उत्पन्न होते हैं, उनमें पशु-भावनायें अधिक मात्रा में होती हैं; अतएव वे बुराई में पड़ जा सकते हैं। या उनमें ऐसा पैतृक स्वभाव आजाता है, जो उन्हें चोरी करने या किसी पर अत्याचार करने को उत्तेजित करता है। या वे अपने माता-पिता की अयोग्यता, उदासीनता, या लोभ से दूषित परिस्थितियों में डाल दिये जाते हैं, जहाँ उनका दुष्टस्वभाव और भी पक्का हो जाता है और वे यथा समय समाज के शत्रु बन जाते हैं। उनकी भी देख-रेख करनी चाहिये और उन्हें उनके बिगाड़ने वालों से बचना चाहिये।

बच्चों के भिन्न-भिन्न ऐसे अस्वाभाविक रूपों का विशेषज्ञों ने परिश्रम के साथ परीक्षण किया और उन्हें यह क्षेत्र बहुत विस्तृत ज्ञात हुआ। मैं यहाँ स्थानाभाव से इसकी मुख्य-मुख्य बातों का भी उल्लेख नहीं कर सकूँगी। और न संस्थाओं तथा लोक-हितैषी व्यक्तियों की कार्य-विधि का ही परिचय दे सकूँगी, जो इस क्षेत्र में इसके कारणों के अन्वेषण और उनके दूर करने का कार्य कर रहे हैं।

परन्तु, यह सब कार्य व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों के लिये उपयोगी है। इसका बहुत समुचित ज्ञान प्राप्त करने के लिये सावधानी और सहानुभूति की आवश्यकता है। अब यह निश्चित हो गया है कि भारत में संघ सरकार की स्थापना कुछ ही दिनों में हो जायगी; अतएव मुझे आशा है कि अमेरिका के उपर्युक्त अनुभव को आत्मसात करने का यहाँ भी प्रयत्न होगा।

भारत-सरकार का अपना कृषि विभाग है ही। पशुओं तथा वैसी दूसरी बातों की भी वह पूरी देख-रेख रखती है। तब दिल्ली में ऐसा कोई छोटा-मोटा विभाग क्यों न खोल दिया जाय, जो बच्चों की भी सँभाल किया करे?'

गुजराती

अनुवाद करने की कला

गुजराती-साहित्य-परिषद् का ११ वाँ अधिवेशन हाल ही में कविवर 'कलापी' की जन्म-भूमि लाठी (काठियावाड़) नामक नगर में बड़े समारोह के साथ मनाया गया था। परिषद् में अनेक विषयों पर सुन्दर-सुन्दर निबन्ध पढ़े गये थे ! श्री० मनसुखलाल-मगनलाल झवेरी ने 'भाषान्तर (अनुवाद) की कला' इस विषय पर एक मननीय निबन्ध पढ़ा था। उसी निबन्ध का कुछ उपयोगी अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

'भवभूति ने साहित्य को आत्मा की कला कहा है। आत्म-गुंजन-द्वारा वह समस्त प्रजा की आत्मा को गुंजित कर देती है। उसकी वीणा के द्वारा प्रजा की हृदय-वीणा के तार झंकृत हो उठते हैं। उसके नाद से समस्त प्रजा का हृदय प्रतिध्वनित हो जाता है। उसका आदि, मध्य और अवसान आत्मा ही है। आत्मा से ही वह उत्पन्न होती है, आत्म-प्रदेश में ही वह विकसित होती है और आत्मा में ही वह लीन हो जाती है।

भाषा साहित्य का वाहन है। कवि के हृदय में जब गहरा मन्थन हो रहा होता है, आत्मा की कला बहिर्मुख होने के लिए प्रयत्नवान होती है, तब भाषा उसका वाहन बन जाती है और इस प्रकार शब्दों का मूर्तरूप बनी हुई आत्मकला देशकाल का निर्माण करने वाली होने पर भी देश और काल से अतीत होती है।

आत्मकला ईश्वर प्रदत्त है ; परन्तु उसका वाहन भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है। मानव-जीवन के द्रष्टाओं की आत्मकला अमुक भाषा में ही अवतरित हो, यह कोई नियम नहीं है। होमर की आत्मकला ग्रीक में, और वर्जिल की आत्मकला लैटिन में अवतरित हुई ! व्यास, वाल्मीकि और कालिदास की आत्मकला संस्कृत-भाषा में प्रकाशित हुई ! शेक्सपीयर और मिल्टन की आत्मकला ने अंगरेजी भाषा को उज्ज्वल किया ! ईश्वर-प्रदत्त आत्मकला भाषा से निरपेक्ष रहती है और इसीलिए उसका इतर भाषा में भी अवतरण किया जा सकता है।

आत्मकला का अवतरण इतर भाषा में भाषान्तर तथा अनुवाद द्वारा ही हो सकता है और इसीलिए साहित्य में अनुवाद और भाषान्तर आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

अनुवादकों का अतिरेक तथा उसके कारण उदीयमान साहित्यकारों का शीघ्र ही बहिर्जगत् में आने का भ्रममूलक मोह, इन दो कारणों से ही अनुवादों का मूल्य इस समय घट गया है। तथापि साहित्य की समृद्धि के लिए अनुवादों की आवश्यकता तो है ही।

भय का स्थान अनुवाद-वृत्ति नहीं है ; अपितु अविवेक दृष्टि है। अनुवादक में विवेक-दृष्टि की आवश्यकता अनिवार्य है। अनुवादक स्वभाव में जिस जाह्नवी का जल प्रवाहित कर रहा है, वह वास्तव में आत्मकला है वा नहीं, इस बात का निर्णय करने का विवेक जिस व्यक्ति में हो, वही अनुवाद करने का अधिकारी हो सकता है। अनुवादक यदि पर-भाषा में से आत्मकला के सिवाय अन्य वस्तु ले आता है, तो उसमें उसके श्रम की सफलता नहीं है।

यहाँ पर एक बात को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। आत्मकला रसात्मक साहित्य में ही प्रकट हो सकती है, यह कोई आवश्यक नहीं है। विवेचनात्मक साहित्य में भी आत्मकला प्रकाशित हो सकती है। भाषान्तर या अनुवाद की दृष्टि से श्रीयुत केशवलाल हर्षदराय ध्रुव द्वारा अनूदित गीतगोविन्द की अपेक्षा श्री० मोहनलाल दवे द्वारा अनूदित संस्कृत-साहित्य के इतिहास की उपयोगिता कुछ कम नहीं है। साहित्य के पोषण और विकास के लिए दोनों की आवश्यकता समान ही है। दोनों से ही साहित्य समृद्ध और तेजस्वी बनता है ; परन्तु रसात्मक साहित्य का अवतरण प्रायः अनुवाद-द्वारा, तथा विवेचनात्मक साहित्य का अवतरण भाषान्तर द्वारा होना चाहिए !

भाषान्तर और अनुवाद में दोनों पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। फोटो और तैल चित्र में जितना भेद होता है ; उतना ही भेद भाषान्तर और अनुवाद में होता है। फोटो में मूल वस्तु की रेखाएँ तो ठीक-ठीक अवतरित होती हैं, पर मूल वस्तु का रूप-सौन्दर्य तथा रंग-सौन्दर्य नहीं उतरता। तैल चित्र में दोनों का ही अवतरण हो सकता है। कुशलता की तो दोनों में ही आवश्यकता है।'

—शंकरदेव विद्यालङ्कार

(शेषांश दूसरे पृष्ठ के नीचे)



नीर-क्षीर

टर्की का मुस्तफ़ा कमाल पाशा—लेखक, श्री० शिवनारायण टंडन; प्रकाशक, गंगा पुस्तक माला लखनऊ। मूल्य २) पृष्ठ २६४।

जिस वीरात्मा ने टर्की को गुलामी, धर्म, पाखंड और स्वेच्छारिता से मुक्त किया, उसी मुस्तफ़ा कमाल पाशा का यह जीवन-चरित्र है, जो कई अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है। मुस्तफ़ा कमाल ने जिस वक्त होश सँभाला, टर्की-साम्राज्य का अन्त हो चुका था। एक ओर गृह-कलह का बाज़ार गर्म था, दूसरी ओर यूरोपियन शक्तियों का आतंक। देश के हितैषी उद्धार की कामना कर रहे थे। नौजवान तुर्की पार्टी की स्थापना हो चुकी थी और वह प्रत्येक मुख्य स्थान में गुप्त रूप से देश में नवीन जाग्रति पैदा करने का उद्योग कर रही थी। कितने ही उच्च राज-कर्मचारी इस नौजवान पार्टी में थे। मुस्तफ़ा कमाल को ज़मीन एक तरह से तैयार मिली। उसके ऊपर कई बार सन्देह हुआ; पर हर बार वह कर्मचारियों के सहयोग से बच गया। यूरोपीय महायुद्ध में उसे अपनी सैनिक योग्यता दिखाने का अवसर मिला और उसने दरे-दानियाल में विपक्षी सेनाओं को परास्त करके अपना सिक्का बिठा दिया। फिर उसने किस तरह अनेक बाधाओं और कठिनाइयों में अपने प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व का परिचय देते हुए, सुलतान को माजूल किया, किस तरह देश को देश-द्रोहियों से मुक्त किया, किस तरह राज्य को शक्तिशाली बनाया, किस तरह सामाजिक सुधार किये, यह सारा वृत्तान्त इस पुस्तक में इतने मनोरंजक ढंग से किया गया है कि उपन्यास का मज़ा आता है। भाषा चुलबुली और मँजी हुई है। जीवनकार को अपने नायक में जो श्रद्धा का होना लाज़िमी है, वह एक-एक शब्द से टपकती है। यदि अध्यायों का स्पष्ट रूप से वर्गीकरण कर दिया जाता, तो पुस्तक और भी उपयोगी हो जाती। 'प्रारम्भिक जीवन' 'यूरोपीय युद्ध,' 'तुर्की क्रांति,' आदि परिच्छेदों से हमें विषय के समझने में ज्यादा सुगमता होती। तुर्की का एक नकशा भी होना जरूरी था। ऐसे महान् व्यक्ति की जीवनी ऐसी होनी चाहिए कि उसकी जीवन-कथा के साथ-साथ देश की ऐतिहासिक और राजनैतिक प्रगति पर भी प्रकाश पड़ता जाय। यह दोष खटकता है। हमें आशा है, दूसरे एडिशन में यह कमी दूर कर दी जायगी।

° ° °

गांधी-विचार दोहन—लेखक, श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला; प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर। मूल्य ।।।) पृष्ठ २२०

श्री मशरूवाला को महात्मा गान्धी के सम्पर्क में रहने का बहुत अवसर मिला है, महात्माजी की पुस्तकों और लेखों का आपने खूब स्वाध्याय किया है। इस पुस्तक में आपने धर्म, समाज, सत्याग्रह, स्वराज्य, वाणिज्य, उद्योग, गोपालन, स्वच्छता और आरोग्य, शिक्षा, साहित्य और कला, आदि विषयों पर महात्माजी के विचारों का मंथन करके नवनीत निकाल कर रख दिया है। महात्माजी का जीवन एक फिलासफ़ी है, आप के हरेक शब्द, हरेक वाक्य, हरेक कार्य की तह में आध्यात्मिक तत्व छिपे होते हैं। उन तत्वों को यहाँ सूत्र-रूप में संग्रह कर दिया गया है। हमने ऊपर जो विषय दिये हैं, उनमें हरेक के अन्तर्गत कई-कई प्रकरण हैं। 'धर्म' के अन्तर्गत 'परमेश्वर, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, कायिक-परिश्रम, स्वदेशी, अभय, नम्रता, व्रतप्रतिज्ञा, उपासना' की अलग-अलग विवेचना की गई है। महात्माजी ने संसार के सामने मानवता का परिष्कृत और महान् आदर्श रखा है, केवल सैद्धान्तिक नहीं; सम्पूर्णतः व्यावहारिक। जिसने उस आदर्श पर चलकर, उन्हीं सिद्धान्तों के साँचे में अपना जीवन ढालकर, जो दुर्लभ था, अगम्य था, उसे अपने जीवन में सुलभ और सुगम बनाकर मानवता को उच्चतर बना दिया है। ऐसे अवतारी पुरुष Super man—के विचार-तत्वों को एक छोटी-सी पुस्तक में जमा करके लेखक ने समाज का बड़ा उपकार किया है। इन्हें कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। हम यहाँ दो-चार उदाहरण देकर पाठकों को दिखाना चाहते हैं कि

महात्माजी के विचारों का दोहन कितनी योग्यता और सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है—

अहिंसा—प्रेम के शुद्ध रूप का नाम अहिंसा है; परन्तु प्रेम में राग और मोह की गंध आ जाती है। जहाँ राग और मोह होगा, वहाँ द्वेष का भी बीज अवश्य होगा। इसीलिए तत्ववेत्ताओं ने 'प्रेम' शब्द का प्रयोग न करके 'अहिंसा' की योजना की है और कहा है कि 'अहिंसा परम धर्म है' 'अहिंसा धर्म का अर्थ इतना ही नहीं है कि दूसरे के शरीर या मन को दुख या चोट न पहुँचाना।' यह तो अहिंसा धर्म का एक दृश्य परिणाम कहा जा सकता है। स्थूल दृष्टि से देखें, तो ऐसा प्रतीत हो सकता है कि किसी के शरीर और मन को तो दुख या हानि पहुँच रही है; परन्तु वास्तव में वह शुद्ध अहिंसा धर्म का पालन है। हाँ, इसके विपरीत ऐसा भी हो सकता है कि वास्तव में हिंसा तो की गई है; परन्तु इस तरह से कि जिससे शरीर या मन को दुख अथवा हानि पहुँचने का आरोप न किया जा सके; अतएव अहिंसा का भाव दृश्य-परिणाम में नहीं; बल्कि अन्तःकरण के राग-द्वेष-हीन स्थिति में हैं।

नम्रता—नम्रता को अहिंसा ही का एक अंश कह सकते हैं। जहाँ अहंकार है, वहाँ नम्रता में कमी समझना चाहिये। जो अहंकारी है, वह सर्वात्म भाव नहीं रख सकता; इसलिये उसकी अहिंसा में कमी आ जाती है।

अभय—मनुष्य आम तौर पर बीसों बातों से डरता रहता है—जैसे मौत से, शारीरिक कष्टों से, धन-नाश से, मारकाट से, जुल्म और अत्याचार से, मानहानि से, लोक-निन्दा से, कौटुम्बिक क्लेश से, अथवा इस ख्याल से कि कुटुम्बियों को दुख होगा, खयाली वहमों से, आदि आदि से, जो मनुष्य डरता है वह धर्माधर्म का गहरा विचार करने का साहस ही नहीं कर सकता। वह सत्य की खोज नहीं कर सकता और न प्राप्त होने के बाद उसपर आरूढ़ ही रह सकता है। इस तरह उससे सत्य का पालन भी नहीं हो सकता।

—प्रेमचन्द

चुन्नू-मुन्नू—ले०, श्री सुदर्शनाचार्यजी, बी० ए०; प्रकाशक, 'शिशु'-कार्यालय, प्रयाग। मू० तीन आने।

बत्तीस पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में बालकों का दिल बहलाने वाली दस कहानियाँ हैं, ३३ इकरंगे चित्र हैं और मुख पृष्ठ पर एक सुन्दर तिरंगा चित्र है। सब कहानियाँ पद्य में हैं और पुस्तक की छपाई दो-रंगी की गई है। इस पुस्तक को देखकर कोई भी बालक खुश हो सकता है।

• • •

बच्चू का ब्याह—लेखक और प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य चार आने।

इस पुस्तक में भी दस मजेदार कहानियाँ हैं, सोलह इकरंगे चित्र हैं और मुख पृष्ठ पर एक हँसाने लायक तिरंगा चित्र है। सब कहानियाँ सुन्दर, सरस और सरल भाषा में लिखी गई हैं।

• • •

दोनों भाई—लेखक, श्रीनाथसिंहजी; प्रकाशक, वही पृष्ठ-संख्या ३२, मूल्य तीन आने।

इस पुस्तक में बालकों का मनोरंजन करने वाली आठ कहानियाँ हैं, २७ इकरंगे चित्र हैं, मुख पृष्ठ पर एक कलापूर्ण तिरंगा चित्र है और पुस्तक दो रंगों में छपी हुई है। यह पुस्तक बड़ी मजेदार और बालकों को खूब हँसाने वाली है।

• • •

नवेली कहानियाँ—लेखक, ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शर्मा; प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य छः आने।

इस पुस्तक में दस कहानियाँ हैं और वे सब बालकों को हँसा देने वाली हैं। उन्हें पढ़कर हमें प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक में किसी प्रकार की तड़क-भड़क नहीं है, फिर भी, कहानियाँ इतनी अच्छी हैं, कि कहीं मन नहीं ऊबने पाता।

• • •

मनोरंजन कहानियाँ—लेखक, श्री शिवनाथसिंह शाण्डिल्य; प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य पाँच आने।

इस पुस्तक में आठ कहानियाँ हैं, और वे सब हमें पसन्द आईं। हाँ, एक बात हमें कहनी है। इसकी अन्तिम कहानी 'राजकुमार और भेड़िया' लेखक की मौलिक कहानी नहीं है और वह एक प्रसिद्ध रूसी कहानी को तोड़-मरोड़ कर लिखी गई है। मूल कहानी इससे कहीं अधिक सुन्दर

है। अगर लेखक उसका अनुवाद-मात्र ही करते और इसका उल्लेख पुस्तक में कर देते, तो अधिक अच्छा होता। फिर भी यह कहानी काफ़ी मनोरंजक है। यह पुस्तक भी बालकों का दिल बहलाने वाली है।

° ° °

बालक प्रह्लाद—लेखक, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी; प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य ६ः आने।

इस पुस्तक में बाल-भक्त प्रह्लाद का कहानी-मय जीवन-चरित्र है। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने इसे बड़ी सरस और सरल भाषा में लिखा है। एक तिरंगा, एक दुरंगा और तीन इकरंगे चित्र देकर इस पुस्तक को और सुन्दर बना दिया गया है। बालकों के लिए ऐसी चीज़ों की बड़ी आवश्यकता है।

° ° °

बालक ध्रुव—लेखक तथा प्रकाशक वही। पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य छः आने।

इस पुस्तक में बाल-भक्त ध्रुव का कहानी-मय जीवन-चरित्र है। एक मनोहर तिरंगा तथा दो इकरंगे चित्र पुस्तक की सुन्दरता को और बढ़ा रहे हैं। ऐसी शिक्षाप्रद पुस्तकों का बालकों में खूब प्रचार होना चाहिए।

—श्री नरेन्द्र वर्मा, मालवीय

° ° °

आरोग्य मित्र का विद्यार्थी अंक—आकार हंस का-सा। पृष्ठ-संख्या ७५; प्रकाशक, आरोग्य मित्र-कार्यालय, लश्कर (ग्वालियर)। वार्षिक मूल्य २) इस अङ्क का मूल्य १)।

प्रस्तुत विशेषांक के सम्पादक हैं, कृष्ण-रमाकान्त गोखले 'नारद मुनि'। प्रारम्भ में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक का दिव्य-सन्देश है। इसके बाद स्वर्गीय महाराज माधवराव-जी सेन्धिया लिखित 'स्वर्णपंक्तियाँ' हैं। वास्तव में यह स्वर्ण पंक्तियाँ ही हैं। इसमें स्वर्गीय महाराज के उच्च-विचार एवं शिक्षा-प्रेम का दिग्दर्शन है। तदुपरान्त 'शिक्षा या भिक्षा या रक्षा' नामक सम्पादकीय लेख हैं। लेख की भाषा ठीक नहीं है; फिर भी लेख पठनीय है।

१—विद्यार्थियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ भूलें, २—विद्यार्थियों का ध्येय, ३—आधुनिक शिक्षा का विद्यार्थियों पर परिणाम, ४—'भौतिक विज्ञान और स्वास्थ्य-नाश', ५—प्राचीन भारत और शिक्षा, ६—आधुनिक स्त्री शिक्षा और स्वास्थ्य-नाश, ७—'व्यायाम और शरीर' आदि लेख पठनीय हैं।

इस अङ्क का अन्तिम लेख है 'विद्यार्थी और उनकी वैद्यकीय परीक्षा' आरोग्य मित्र के साधारण पाठक इसका अर्थ 'वैद्य विद्यार्थियों की वैद्यकीय परीक्षा' ही समझेंगे; परन्तु यह लेख विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-सम्बन्धी परीक्षा के विषय में लिखा गया है। लेख की भाषा कहीं-कहीं बहुत भद्दी है। खेद की बात है, कि यह लेख इस पत्र के स्थायी सम्पादक डॉ० आर्य मार्त्तण्ड दामोदर पुस्तके द्वारा लिखा गया है, फिर भी इसमें बहुत गलतियाँ रह गई हैं। हाँ, आपके लेख में व के स्थान पर ब और 'ध' के स्थान पर 'झ' छप गया है। ऐसी त्रुटियों को हम प्रेस की त्रुटियाँ कह सकते हैं; पर व्याकरण और वाक्य रचना की त्रुटियाँ आपकी अपनी त्रुटियाँ हैं। भाषा की त्रुटियों पर ध्यान न दिया जाय, तो लेख अच्छा है।

छपाई को हम निकृष्ट ही कह सकते हैं। शायद प्रूफ देखने का तो कोई नियम ही आपके यहाँ नहीं है। प्रोफ़ेसर माणिकरावजी राज्य-रत्न के लेख का नाम ही विषय-सूची में देना भूल गये हैं। इन त्रुटियों के होते हुए भी यह अङ्क विद्यार्थियों के उपयोग और संग्रह के योग्य है।

—काशीनाथ शर्मा, शाकल्य

° ° °

चित्रमय जगत् का जर्मनी-अंक—सम्पादक, त्र्यंबक-रघुनाथदेव गिरीकर, बी० ए०; प्रकाशक, चित्रशाला-प्रेस, पूना।

चित्रमय जगत् मराठी भाषा का पुराना और एक श्रेष्ठ मासिक-पत्र है। बड़े-बड़े विद्वान् इसका सम्पादन कर चुके हैं। देशी भाषाओं में यह पत्र अपनी जोड़ का अकेला रहा है और आज भी अपनी इस विशेषता की रक्षा करता चला आ रहा है। २५ वें वर्ष का यह विशेषांक जर्मनी-अंक के नाम से प्रकाशित हुआ है। बड़ा सुन्दर अंक है। महायुद्ध के बाद जर्मनी में आज तक जो राजनीतिक और आर्थिक उथल-पुथल हुई हैं, उन सब का भली-भाँति विवेचन किया गया है। इसके सिवा, साम्प्रत जर्मनी की परिस्थिति क्या

है, इसका भी सविस्तर वर्णन दे दिया गया है। वर्त्तमान जर्मनी का चित्रात्मक, सांगोपांग वर्णन किसी को देखना हो, तो इस विशेषांक को अवश्य पढ़ना चाहिए। महायुद्ध के बाद का जर्मनी, जर्मनी का आर्थिक पुनरुत्थान, जर्मनी का लोक-तंत्र का ढिंढोरा, जगत् की मंदी व जर्मनी, जर्मनी की सैनिकशाही, नाज़ी के मानी, हिटलर का परिचय, ज्यू लोगों का छल, हिटलर की राजनीति का मर्म आदि १६ लेख इस अंक में छापे गये हैं, जो सभी पठनीय और ज्ञान-वर्द्धक हैं, 'जर्मन जासूस की देश-भक्ति' नामक एक कहानी भी इसमें छापी गई है। सन् १९३४ का कैलेन्डर भी साथ में है। जो सज्जन मराठी भाषा समझ सकते हों, उन्हें इस अंक का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

आनन्द (विशेषांक)—सम्पादक-मंडल-द्वारा सम्पादित ; प्रकाशक, आनन्द-कार्यालय, सदाशिव पेठ, पूना। वार्षिक मूल्य २)।

मराठी भाषा में प्रकाशित होनेवाला बालकों का यह बहुत पुराना और सुन्दर मासिक पत्र है। प्रति मास एक हिन्दी कहानी भी प्रकाशित करता है। २८वें वर्ष का यह सातवाँ अंक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। बालक-बालिकाओं के पढ़ने और मनन करने योग्य बहुत ही मनोरंजक सचित्र सामग्री इसमें दी गई है। हमेशा की तरह एक हिंदी कहानी इस अंक में भी है।

शालापत्रक का स्वदेशी अंक—चित्रशाला-प्रेस, पूना से प्रकाशित।

चित्रशाला-प्रेस से 'शाला पत्रक' नामक मासिक-पत्र विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित होता है। उसी का यह 'स्वदेशी अंक' है। सरल और सुबोध भाषा में, सभी स्वदेशी वस्तुओं की जानकारी कराने वाले छोटे-छोटे सुन्दर लेख इसमें दिये गये हैं। बड़ा उपयोगी अंक है। बालकों के हिन्दी-पत्र भी ऐसा अंक निकालें, तो बड़ा अच्छा हो।

—हरिहर शास्त्री।

(५९वें पृष्ठ का शेषांश)

विदेशों के विचित्र न्यायालय

मध्यकाल में विदेशों में मनुष्यों की तरह पशु-पक्षियों पर भी मुकदमे चलाये जाते थे, तथा उनको दण्ड दिया जाता था। गुजराती साप्ताहिक 'आर्य प्रकाश' में ऐसे कई मुकदमों का वर्णन प्रकाशित हुआ है। पाठकों के मनोरंजनार्थ उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है—

(क) इंगलिस्तान के एक शहर में एक पालतू तोते पर यह दोषारोप किया गया था कि उसने पाँच बालकों को काटा है। इस अपराध पर न्यायालय की ओर से तोते को मृत्यु-दण्ड की सजा दी गई थी ; परन्तु उसकी ओर से बहुत कहा-सुनी करने पर उसे क्षमा कर दिया गया था!

(ख) फ्रान्स देश के एक प्रसिद्ध वकील ने अनेक प्रकार के जन्तुओं को देश-निकाला देने का एक कानून बनाया था। उस कानून के अनुसार चौमासे में दीपक पर आक्रमण करने वाले जन्तुओं को अपराधी ठहरा कर उनको बिरादरी से बाहर निकाल दिया गया था। इसी प्रकार एक धर्माधिकारी पादरी ने प्रार्थनालय (गिरजाघर) में गन्दगी करने वाली चिड़ियों को गंभीरता पूर्वक अधर्मी सिद्ध करके जाति-बहिष्कृत कर दिया था।

(ग) ब्राज़ील देश के एक मठ में चींटियों का बड़ा उपद्रव था। इन चींटियों से मठ के धर्मभीरु पादरी बहुत तंग आ गये थे। तथापि उनके प्रति दया का भाव रखने की दृष्टि से—'हमारी बुरे मार्ग पर चलने वाली बहनें'—इस प्रकार की शब्दमाला उन चींटियों के विषय में प्रयुक्त की जाती थी। ये चींटियाँ इतनी बे-परवाह थीं कि न्यायालय का समन मिलने पर भी वहाँ उपस्थित नहीं होती थीं। इस पर बड़े पादरी ने सब को कालेपानी की सजा दी। एक पादरी चींटियों के आवास स्थान पर गया और खड़ा होकर उच्च स्वर से बड़े पादरी का हुक्म सुनाने लगा। बुद्धि की बलिहारी!

(घ) अमेरिका के एक नगर में एक कुत्ते ने वहाँ के एक प्रतिष्ठित राज्याधिकारी की भेड़ पर आक्रमण करके उसे मार दिया था! इस कारण सेशन कोर्ट में कुत्ते पर मुकदमा चलाया गया। वादी और प्रतिवादी दोनों ओर के साक्षियों का बयान पूरा होने पर न्यायाधीश ने बड़ी गंभीरता-पूर्वक अपराधी के लिए मृत्यु-दण्ड का फरमान सुना दिया।

—शंकरदेव विद्यालंकार

वह प्रलयंकर दिवस !

ता० १५ जनवरी का भारत का वह प्रलयंकर दिवस संसार में अमर होगया। किसे मालूम था कि उस दिन यह ताण्डवकाण्ड हो जायगा। दोपहर का समय था, सब लोग खा-पीकर अपने-अपने कामों में लगे थे कि अचानक हर्राटा हुआ, लोग चौंके, मकानों से निकले और आसमान की ओर देखने लगे कि कहीं हवाई जहाज़ तो नहीं मँडरा रहे हैं; पर क्षण-मात्र में ही मालूम हुआ कि पृथ्वी काँप रही है ! मकानों के हिलने, फटने और गिरने ने प्रलयकाल का भय भर दिया। बड़ी मुश्किल से शाम हुई और रात बीती। दूसरे दिन से समाचार आने लगे और भय बढ़ने लगा। मुज़फ्फरपुर के समाचारों ने लोगों को व्याकुल कर दिया कि मुँगेर के समाचार आये। तीसरे दिन दरभंगा आदि के समाचार भी पढ़े गये। इस अनभ्र वज्रपात ने संसार में खलबली मचादी। नेपाल के समाचार तो अभी तक ठीक नहीं मालूम हो रहे हैं; किन्तु अभी-अभी नेपाल महाराज का जो तार म० मालवीयजी के पास आया है, उससे पता चलता है कि जन-हानि से धन-हानि ही अधिक हुई है। फिर भी ३००० के लगभग मृतक संख्या प्रकाशित हो चुकी है। श्री० पं० जवाहरलालजी नेहरू तथा अन्य देखने वालों का कहना है कि जबतक मुजफ्फ़रपुर वगैरहः नगरों का मलबा नहीं हटा दिया जाता, तब-तक पूरी मृत-संख्या नहीं मालूम हो सकती; पर अभी तक जो लाशें पाई गई और निकली हैं, उनकी संख्या जान कर दिल दहल जाता है, आँखें पथरा जातीं और बदन को काठ मार जाता है। मुजफ्फरपुर, मुँगेर, दरभंगा और सीतामढ़ी आदि बड़े नगरों में ही लगभग ५०,००० मनुष्यों के जीवन नष्ट या नष्टप्राय हो गये हैं। निकटस्थ ग्रामों में यद्यपि अधिक प्राणहानि नहीं हुई; पर धरा और धाम तो अवश्य ही नष्ट हो गये हैं। मुजफ्फरपुर में लग-भग १०,००० हजार मनुष्यों के प्राण गये और पता नहीं अभी कितने दबे पड़े हैं। मुँगेर में तो इससे भी अधिक मृत-संख्या बताई जाती है ! मुँगेर में उस रोज दुर्भाग्यवश अमावस्या का मेला था, बाहर के हज़ारों यात्री पर्व मनाने आये थे। ठीक दोपहर के वक्त जब लोग स्नान-ध्यान से फ़ारिग होकर, खा-पीकर, सौदा-सूत खरीद रहे थे, तभी भूकम्प हुआ और बेचारे अभागे यात्रियों और नगर-निवासियों को ज़रा भी इधर-उधर होने का अवसर न मिला। सब जहाँ-के तहाँ रह गये !

हमारे ऑफ़िस में मुँगेर के एक भुक्तभोगी विद्यार्थी आये थे, उन्होंने बयान किया कि जिस समय भूकम्प आया, हम लोग दुमंजिले पर थे। मकान बड़े वेग से हिलने लगे और हम लोग दौड़ कर सीढ़ी से नीचे उतरना चाहते थे कि अचानक सीढ़ी टूट गई और मकान का कुछ हिस्सा भी घर के लोगों पर गिर गया। हम लोग जहाँ-के-तहाँ रह गये। बड़ी कठिनाई से बाजार की तरफ के बरन्डे में गये कि वहाँ से बाज़ार में कूद जायँगे; पर जब वहाँ से सामने के मकानों को भी गिरते देखा, तो रूह कब्ज़ हो गई ! अचानक हमारे बरन्डे पर सामने के मकान का कुछ अंश ढह पड़ा और हम भी बरन्डे-सहित नीचे आ रहे। ईश्वर की कृपा कहिए कि नीचे आ जाने पर हाथ में और कमर में चोट तो आई; पर बरन्डे का टीन हमारे ऊपर हो गया और उसने छाते की तरह हमें ढाँक रखा ! मकान गिर रहे थे, और हम साँस बंद किये दबे-दुबके खड़े थे। चार-छः मिनट में ही यह प्रलयकाण्ड हो गया। किसी प्रकार हमारे घर के दो-एक प्राणी बचे और सब दब गये थे। एक छः वर्ष की बहन को तो उसके बाल देख कर बमुश्किल मलबे के नीचे से निकाला गया। चारों ओर हाहाकार मचा था। थोड़ी देर के लिए यह मालूम होता था कि नगर पर असंख्य बम-वर्षा की गई है। चारों ओर अन्धकार-सा-छा गया था, सूर्यदेव भी वह दुर्दशा देख कर ज़रा देर को अस्त-से हो गये थे ! सारा शहर चौपट हो गया और लाशों की दुर्गन्ध के मारे अब वहाँ खड़ा रहना भी कठिन हो गया है। बड़ा वीभत्स दृश्य है !

दरभंगा और लहरियासराय भी चौपट हो गये हैं। इन नगरों में भी दो-तीन हजार मनुष्यों के मरने का अन्दाज़ लगाया जाता है।

दो सौ वर्षों के इधर की भूकम्प-सम्बन्धी जो जानकारी प्राप्त होती है, उससे मालूम होता है, कि भारत में

यह भूकम्प सबसे भीषण और विशेष क्षतिकर हुआ है।

इसके पहले भी भूकम्प हुए थे, उनका वर्णन भी पत्रों में छपा है—सन् १९०५ के अप्रैल मास की ४ तारीख को कांगड़ा प्रदेश में एक भूकम्प हुआ था और उसे भारतवासी अभी भूले नहीं हैं। उस समय भी समस्त उत्तर भारत ने इस भूकम्प का अनुभव किया था। पश्चिम प्रदेश के अफ़गानिस्तान और सिन्ध से लेकर, पूर्व प्रदेश में पुरी पर्यन्त इसकी ध्वंस-लीला से न बच पाये थे; किन्तु कांगड़ा और मसूरी के प्रदेश ही उस महाध्वंस के चरम क्षेत्र में परिणत हुए थे। उस समय मृत-संख्या २०,००० तक पहुँची थी। इस भूकम्प का कारण हिमालय का स्तर-स्खलन बतलाया गया था।

इसके भी आठ वर्षों पूर्व, सन् १८९७ ई० में जून मास की १२ तारीख को आसाम में जो भूकम्प हुआ था, वह भी एक चिरस्मरणीय घटना थी। उस समय मूलकम्पन के साथ अनेक सप्ताह व्यापी साधारण कम्पन होता रहा था। इस भूकम्प की ध्वंस-लीला के कारण शिलांग की ओर तो कुछ बाकी ही न रह गया था। घर, गिरजा, रेल और सड़कों के पुल, सब कुछ एक दम विनष्ट होगये थे। विशाल पहाड़ के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे और उसने आसाम की भूमि को कुछ-का-कुछ कर दिया था। नदी ने अपना नया प्रवाह-मार्ग बना लिया था।

इसके भी पूर्व इस देश में भूकम्प होगये हैं; उनमें दो सौ वर्ष पूर्व सन् १७२० में दिल्ली में, सन् १७३७ में कलकत्ता में, और १७६२ में पूर्व वङ्ग और आराकान में होने वाले भूकम्प ही विशेष उल्लेख्य हैं। वैसे १८१९ में कच्छ और ब्रह्मदेश में भी भूकम्प हुए थे।

भूकम्प का प्रकोप, भारतवर्ष की अपेक्षा जापान में ज्यादा भयानक होता है। १ सितम्बर सन् १९२३ को जापान की राजधानी टोकियो और याकोहामा में इसी के कारण भीषण और भयानक कांड उपस्थित हुआ था। केवल ५ मिनटों में २,००००० मनुष्यों का मरण हो गया था। आँधी और अग्नि-कांड ने तो और भी ग़जब ढा दिया था। याकोहामा में १ लाख मनुष्य मरे थे। पचास हजार मनुष्य तो न जाने कहाँ ला पता हो गये थे! एक लाख आदमी आहत भी हुए थे। और, धन-सम्पत्ति की हानि १२ हजार करोड़ से भी अधिक की हुई थी।

यों तो संसार के अनेक स्थानोंमें भूकम्प की विध्वंस लीला हो चुकी है; पर दो सौ वर्षों से अधिक का हाल नहीं मिलता। किन्तु इसी बीच १७५५ ई० में पुर्तगाल की राजधानी लिसबन में जो भूकम्प हुआ था, कहा जाता है कि उसमें ६० हजार आदमी मरे थे।

दक्षिण इटली तो भूकम्प के लिए नित्य का लीला-क्षेत्र ही होगया है। सन् १९०८ में इटली के मेसिना नामक स्थान में भूकम्प हुआ था, उसमें केवल ४० सेकेण्ड में ही १ लाख मनुष्य मर गये थे।

भूकंप एक ऐसी विपत्ति है कि उससे बचना मनुष्य के लिए अभी असंभव है। वैज्ञानिकों की दृष्टि इस ओर अवश्य गई, और जापान के वैज्ञानिकों ने इसके लिये एक समिति भी स्थापित की थी, जिसने ५० वर्षों में बहुत कुछ खोज की है। इस विषय का साहित्य भी उसने प्रकाशित किया है।

१९ वीं सदी के अन्त में प्रो० मिलने नामक वैज्ञानिक ने भी बहुत कुछ प्रयत्न किया था। इसके पूर्व दो-एक अन्य वैज्ञानिकों ने भी प्रयत्न किया; पर १८ वीं सदी में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री प्रिस्टले ने बिजली से भूकम्प का सम्बन्ध करने का प्रयत्न किया था।

सन् १८०७ ई० में प्रो० यंग ने यह सिद्धान्त निश्चय किया था कि जिस प्रकार शब्द हवा की तरंगों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, उसी प्रकार भूकम्प भी एक स्थान से आरम्भ होकर तरङ्ग उत्पन्न करता और उसी के सहारे बहुत दूर तक पहुँच जाता है। इस तथ्य की पुष्टि आयरिश एकाडमी ने भी की थी।

स० १८६७ के नेपल्टन के भूकम्प के बाद वहाँ लगभग दो मास तक ध्वंसावशेषों के ढेरों का पर्यवेक्षण करने के बाद एक विवरण प्रकाशित हुआ था, उससे प्रकट होता है कि भूगर्भस्थ एक स्थान से एक कम्पन की उत्पत्ति होती है, उसी स्थान के ऊपर स्थित ज़मीन, ऊपर और नीचे से कंपित हो जाती है। केन्द्र-स्थल से दूर तरङ्गों की गति वक्र भाव से होती है। किसी फटे हुए मकान की दरार को देख कर जाना जा सकता है कि इस जगह जमीन किस ओर कम्पित हुई थी। इस प्रकार कम्पन का कोण निश्चय कर लेने पर कम्पन का केन्द्र स्थिर किया जा सकता है।

मध्ययुग के विद्वानों का ख़याल था कि ज्वालामुखी के द्वारा अग्न्योत्पात ही भूकम्प का कारण है। इसका कारण यह बताया जाता है कि जापान, इटली वगैरहः में, जहाँ ज्वालामुखी हैं, वहाँ भूकम्प अधिक होते हैं। ज्वालामुखी से जब अग्न्योत्पात होता है, तो बड़े वेग से गंधक और वाष्प आदि गरम पदार्थ बाहर निकलते हैं, और वेग की प्रबलता के कारण पृथ्वी काँप उठती है। परन्तु जहाँ ज्वालामुखी नहीं हैं, वहाँ भी तो भूकम्प होते रहते हैं—यह प्रश्न विचारणीय है।

पृथ्वी का जिस प्रकार ठोस और कठोर होना ख़याल किया जाता है, असल में वह उस प्रकार नहीं है। भूगर्भ में विशाल गह्वर या खाइयाँ हैं और एक विशाल पर्वतखंड के साथ दूसरे पर्वतखंड मिल कर परस्पर एक दूसरे का भार सँभाले रहते हैं। वाष्प और गंधक के बाहर निकलते समय, खाइयों के ऊपर की मिट्टी वगैरहः नीचे धँस जाती है और भूकम्प का आरम्भ होता है।

सिस्मोग्राफ और सिस्मोमीटर के द्वारा भूकम्प-सम्बन्धी गवेषणा का कार्य सरल हो गया है। यह यंत्र एक महीन सुई के द्वारा कागज पर भूकम्प का कम्पन अंकित कर देते हैं और वैज्ञानिक लोग उसके द्वारा कम्पन की स्थिति, परिमाण और कंपन होने वाली दिशा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उन्नीसवीं सदी में जापान वालों ने इन यंत्रों का वास्तविक उन्नत रूप दिया और लगभग ५० वर्षों के प्रयत्न से ही आज हमें भूकम्प-सम्बन्धी सब ज्ञान प्राप्त होने लगा है।

इसके पूर्व भी अनेक विद्वान् और दार्शनिकों ने भूकम्प सम्बन्धी अनेक अनुमान किये थे। भारतीय धर्म-शास्त्रों और पुराणों में भी भूकम्प के सम्बंध में बहुत कुछ गपोड़े लिखे मिलते हैं, जिनमें से एक यह भी प्रचलित है कि शेषनाग अपने सहस्र फनों पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं, और जब वे फनों को बदलते हैं, तभी भूकम्प होता है! जापानी लोग भी किसी समय विश्वास करते थे कि उनका देश एक बृहत् मछली की पीठ पर अवस्थित है, और जब यह मछली किसी कारण अपनी देह को हिलाती है, तभी भूकम्प होता है; किंतु इन सारी निर्मूल धारणाओं को वर्तमान युगीन विज्ञान ने नष्ट कर दिया और भगवान् शेषनाग का भी अन्त ला दिया है। फिर भी हमारे देश में अभी आस्तिक लोगों की अपनी-अपनी धारणाएँ उपस्थित हैं। अभी उस दिन महात्माजी ने ही कहा कि हमारे पापों के कारण ही यह भूकम्प हुआ है और उनकी धारणा में अछूत कहलाने वाले मनुष्यों के साथ दुर्व्यवहार ही महापाप है। इसी प्रकार वर्णाश्रम स्वराज्य संघ वाले महात्माजी को कोसते और कहते हैं कि अछूतों को मन्दिर में प्रवेश कराने के पाप का ही परिणाम यह भूकम्प है!

यदि आस्तिकता, भूकम्प का कारण पाप बतलाती है, तो यह प्रश्न हो सकता है कि क्या सचमुच परमात्मा ने बिहार में वास्तविक पापियों को ही दण्ड दिया है? जितने प्राणी भूकम्प में मरे, क्या वे सभी महान् पापी थे? और यहाँ, इस देश में जो बड़े-बड़े पापाचारी और गरीबों का रक्त चूस जाने वाले, बड़ी-बड़ी तोंद वाले, बड़े-बड़े तिलकधारी ढोंगी पड़े हुए हैं, क्या परमात्मा उन्हें नहीं देख पाता? अस्तु, यह सब व्यर्थ की बातें हैं। भली भाँति विचार करने पर मालूम हो जाता है कि भूकम्प किसी पाप-पुण्य के कारण नहीं हुआ; यह प्रकृति की एक लीला है और भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक परिणाम है।

इधर जो समाचार प्राप्त हुए हैं, वे तो और भी भयानक और हृदय को विगलित कर देने वाले हैं। भयानक वर्षा ने उनके बचेखुचे हरे खेतों को जलमग्न कर दिया और उनकी जिन्दगी को आफत में डाल दिया है। आज हजारों आदमी वहाँ वस्त्रों के बिना ठिठुर रहे और अन्न-जल के बिना भूखों प्यासों मर रहे हैं। उनका सर्वस्व तो वैसे ही नष्ट हो गया, तिस पर वर्षा के कारण प्राणहारी जाड़े का सामना करना पड़ रहा है। ईश्वर ही रक्षक है।

अब हमारा कर्तव्य यही रह जाता है कि इस भीषण विपत्ति के समय लोगों को धैर्य बँधाएँ और जी-जान से उनकी सेवा-सहायता करें।

'हंस' में विज्ञापन-छपाई के रेट

साधारण स्थानों में—

एक पृष्ठ का	१५)	प्रति मास
आधे ,, ,,	८)	,, ,,
चौथाई ,, ,,	४)	,, ,,

विशेष स्थानों में—

पाठ्य-विषय के अन्त में—

एक पृष्ठ का	१८)	प्रति मास
आधे ,, ,,	१०)	,, ,,
चौथाई ,, ,,	५)	,, ,,
कवर के दूसरे या तीसरे पृष्ठ का	२४)	,, ,,
,, ,, चौथे ,,	३०)	,, ,,
लेख सूची के नीचे आधे पृष्ठ का	१२)	,, ,,
,, ,, ,, चौथाई ,,	६)	,, ,,

नियम—

१—विज्ञापन बिना देखे नहीं छापे जायँगे।

२—आधे पृष्ठ से कम का विज्ञापन छपानेवालों को 'हंस' नहीं भेजा जायगा।

३—विज्ञापन की छपाई हर हालत में पेशगी ली जायगी।

४—अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जायँगे।

५—विज्ञापन के मजमून बनाने का चार्ज अलग से होगा।

६—कवर के दूसरे, तीसरे और चौथे पृष्ठ पर आधे पृष्ठ के विज्ञापन नहीं लिये जायँगे।

७—उपर्युक्त रेट में किसी प्रकार की कमी नहीं की जायगी; किन्तु कम-से-कम छः मास तक विज्ञापन छपवानेवालों को =) रुपया कमीशन दिया जायगा। एक वर्ष छपानेवालों के साथ इससे भी अधिक रिआयत होगी।

८—साहित्यिक पुस्तकों के विज्ञापनों पर २५ प्रतिशत कमी की जायगी।

व्यवस्थापक—'हंस' सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी।

हंस के 'काशी अंक' ने हिन्दी-संसार में धूम मचा दी !

क्या आपने 'काशी अंक' अभी तक नहीं देखा ?

न देखा हो, तो तुरन्त १।) भेज कर इस अंक को प्राप्त कर लीलिए ; वर्ना यह अंक फिर न प्राप्त होगा ! अगर इस अंक को पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता, तो ५०० पृष्ठों का—तिरंगे, दुरंगे और इकरंगे ७५ चित्रों वाला—पोथा हो जाता और इसका मूल्य ३॥) से कम न होता ; ३॥) भेज कर 'हंस' के ग्राहक बनने वालों को यह मुफ़्त ही में मिलता है, और फुटकर खरीदारों को सिर्फ़ १।) में दिया जाता है। बड़े-बड़े विद्वानों और पत्र-सम्पादकों ने एक मुख से इसके विषय में सम्मति दी है कि 'यह अंक प्रत्येक पढ़े-लिखे भारतवासी के संग्रह योग्य है।'

कुछ सम्मतियाँ देखिए—

श्री० पं० नरदेवजी वेद-शास्त्री

'हंस का काशी अंक' दो सप्ताह एकान्त में बैठ कर प्रतिदिन दो-दो घंटे ध्यान-पूर्वक पढ़ने की वस्तु है।

श्री० पं० राधेश्यामजी कथावाचक

'काशी अंक' से घर बैठे काशी की यात्रा हो जाती है। गजब की चीज़ निकली।

श्री० पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी

'काशी अंक' मिला। बड़ा अच्छा है। बहुत-सी ऐसी बातें, जो काशी जाकर भी मालूम न होतीं, वह घर बैठे मालूम हो गईं।

श्री० पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय

'काशी अंक' बहुत ही सुन्दर निकला। कई लेख पठनीय ही नहीं आदरणीय भी हैं। यह अङ्क निधि के समान रक्षणीय और संग्रहणीय है।

श्री० रामाज्ञा द्विवेदी, एम० ए० 'समीर'

'काशी अंक' साहित्य-क्षेत्र में अनूठा है।

'वर्त्तमान' लिखता है

'यह अंक इतना सुन्दर और संपूर्ण है कि प्रत्येक पुस्तकालय में जिल्द बाँध कर रखा जायगा।'

'भारत' लिखता है

'काशी अंक' है या काशी की इंडियन ईयर बुक है ? काशी में जो कुछ ज्ञातव्य और Who is who है, सो इस अंक में भरा पड़ा है।'

लेख-सूची भी पढ़ लीजिए

(१) काशी और उसके तीन रूप, (२) सारनाथ, (३) काशी, हिन्दू संस्कृति का केन्द्र, (४) भारतीय बृटिश कालीन राजनीतिक जीवन में काशी का स्थान, (५) काशी और हिन्दी-साहित्य, (६) काशी के स्कूल, (७) काशी की कुछ अद्भुत बातें, (८) काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय, (९) काशी से निकलने वाले सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ, (१०) काशी के कुछ प्रसिद्ध मेले, (११) काशी के संस्कृत-विद्यालय, (१२) काशी का संक्षिप्त इतिहास, (१३) काशी और उसके जैन-तीर्थ, (१४) काशी मरणान्मुक्तिः, (१५) काशी की गलियाँ, (१६) काशी का संगीत, (१७) काशी के साहित्यिक हास्य-रसिक, (१८) काशी के तीर्थाध्यक्ष, (१९) काशी के निवासियों की विशेषताएँ, (२०) काशी के अखाड़े, (२१) धरहरा, (२२) काशी में पर्वतीय, (२३) काशी के गुजराती, (२४) काशी के मैथिल, (२५) काशी और खत्री-समाज, (२६) काशी और मद्रासी, (२७) काशी-विश्वनाथ, (२८) काशी के नवयुवक-कवि, (२९) गोस्वामी तुलसीदासजी के समय काशी, (३०) काशी के महाराष्ट्र, (३१) काशी और वर्तमान हिन्दी-साहित्य, (३२) काशी का प्राचीन कवि-समाज, (३३) काशी का बनारसी वस्त्रों का व्यवसाय, (३४) काशी-नरेश, (३५) संस्कृत-साहित्य और काशी के पंडित, (३६) काशी का शिल्प और व्यवसाय। आदि।

पता—'हंस' कार्यालय, सरस्वती-प्रेस, काशी।

सहकारी सम्पादक—श्रीप्रवासीलाल वर्मा, मालवीय-द्वारा सरस्वती-प्रेस, काशी से मुद्रित और प्रकाशित।

